

॥ श्रीः ॥

महाकविभासप्रणीतं

भासनाटकचक्रम्

संस्कृत-हिन्दीव्यारूपोपेतम्
विद्वन्मण्डलसम्पादितम्

प्रथम-सम्पादकः

डॉ० सुधाकर मालवीयः
एम. ए., पी. एच्. डी., साहित्याचार्यः
संस्कृत-विभागः, बलासनामः
काशी हिन्दू विश्वविद्यालयः, वाराणसी

[प्रथमो भागः]



कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

१९८७

प्रकाशक : कृष्णदास अकादमी; वाराणसी

मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, वि० सवत् २०४४

मूल्य : रु० १२५-०० (माग १-२)

© कृष्ण दा स अ का द मी

पो० बा० नं० १११८

बौक, (चित्रा सिनेमा बिल्डिंग), वाराणसी-२२१००१

(भारत)

अपर च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन

पो० बा० १००८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)

फोन : ६३१४५

THE
BHĀSANĀTAKACHAKRAM

(Thirteen Trivandrum Plays of Bhasa)

Edited With the
Sanskrit & Hindi Commentaries

By
A Board of Scholars

Chief Editor
Dr. SUDHAKAR MALAVIYA
M. A., PH. D., Sakityacharya
Department of Sanskrit, Arts faculty
Banaras Hindu University

[Part—Z]



KRISHNADAS Academy

VARANASI-221001

1987

© KRISHNADAS ACADEMY

Oriental Publishers and Distributors

^{us} Post Box No. 1118

Chowk, (Chitra Cinema Building), Varanasi-221001
(INDIA)

First Edition

1987

Price : Rs. 125-00 (Parts 1-2)

Also can be had from

CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE

K. 37/99, Gopal Mandir Lane

Post Box 1008, Varanasi-221001 (India)

Phone : 63145

भासनाटकचक्रम्

प्रथमो भागः

- | | |
|------------------|------------------|
| १. मध्यमव्यायोगः | ५. ऊरुभङ्गम् |
| २. दूतवाक्यम् | ६. पञ्चरानम् |
| ३. दूतघटोत्कचम् | ७. प्रतिभाभाटकम् |
| ४. कर्णभारम् | ८. अभिषेकनाटकम् |

द्वितीयो भागः

- | | |
|---------------------------|----------------------|
| ९. बालचरितम् | १२. स्वप्नवासवदत्तम् |
| १०. अविमारकम् | १३. चारुदत्तम् |
| ११. प्रतिज्ञायोगन्धरायणम् | |
-

‘भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः’
(प्रसन्नराघव)

२३

महाकविश्रीभासप्रणीतः

मध्यमव्यायोगः

‘ज्योत्स्ना’-‘सरला’-संस्कृत-हिन्दी-व्याख्यासहित-
विस्तृत-भूमिका-परिशिष्टादि-विभूषितः

सम्पादको व्याख्याकारश्च

डा० सुधाकर नाल्कीयः

एम. ए., पी-एच. डी., साहित्याचार्य.

(संस्कृत पालि-विभाग : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी)
प्रस्तावक.

डा० विश्वनाथ भट्टाचार्यः

एम. ए., पी. एच. डी.,

प्रमुख प्रोफेसर : संस्कृत पालि विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी)



कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

१९८८

प्रकाशक : कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

मुद्रक : चौखम्बा प्रेस; वाराणसी

संस्करण : द्वितीय, वि० सं० २०४५

मूल्य : रु० ६-००

© कृष्णदास अकादमी

पो० बा० नं० १११८

चौक, (चित्रा सिनेमा बिल्डिंग), वाराणसी-२२१००१

(भारत)

अपरं च प्राप्तस्थानम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर ठेक

पो० बा० १००८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)

फोन : ६३१४५

KRISHNADAS SANSKRIT SERIES

23

MADHYAMA-VYĀYOĠĀ
[THE MIDDLE ONE]

OF

BHĀSA

*Edited with Hindi & Sanskrit Commentaries,
Critical Introduction, Explanatory Notes
and Appendices*

BY

Dr. Sudhakar Malaviya

M. A., Ph. D., Sahityacarya

*Department of Sanskrit & Pali, Banaras Hindu University
and*

Foreword by

Dr. Biswanath Bhattacharya

M. A., Ph D.

*Mayurbhanja Prof. of Sanskrit, Department of Sanskrit & Pali
Banaras Hindu University*



KRISHNADAS Academy

VARANASI-221001,

1988

2

© KRISHNADAS ACADEMY

Oriental Publishers & Distributors

Post Box No. 1118

Chowk, (Chitra Cinema Building), Varanasi-221008
(India)

Second Edition

1988

Price Rs 6-00

Also can be had from

Chowkhamba Sanskrit Series Office

K. 37/99, Gopal Mandir Lane

Post Box 1008, Varanasi-221001 (India)

Phone : 63145

प्रस्तावना

महाकवि कालिदास को भी नाटक लिखने के संकल्प करते हुए जनायात जिनका स्मरण हो आया वह भास संस्कृत नाट्यकला के क्षेत्र में निःसंदेह श्रेष्ठतम कौटिक के बजायकार हैं। यह दुर्भाग्य की बात है कि 'प्रदत्तमया' इस कवि की नाट्यकृतियाँ १९१० ई. तक आंशिक रूप में नाममात्र से ज्ञात थीं। म० म० गणपति शास्त्री ने केरल के 'पाण्यार' संप्रदाय के लोगों से जब इनका उच्चार किया तब ही 'भासनाटकसङ्घ' के रूप में १३ नाटक संस्कृतसमाज में सादर वर्णन के विषय बने। परवर्ती काल में एक और भी नाटक, समान लक्षणों के कारण, भास की ही कृति मान लिया गया, जो 'यज्ञफलम्' नाम से 'प्रतिमानाटक' के पूर्ववर्ती रामकथा पर आधारित है।

समीक्षक-ऐतिहासिकों के सुदीर्घ परिश्रम से इसका निःसंदेह मान लिया जा सकता है कि ये सारी नाट्यकृतियाँ एकवर्तुक हैं और मध्यन-सीकर्म में अद्वितीय हैं। महकवित 'श्वप्न' नाटक के साहचर्य के कारण इन सभी के रचयिता भास ही हैं ऐसा मानना भी पूर्णतया संगत है। साथ ही यह भी मानना आवश्यक है कि नाटककार की मूलरचना उपलब्ध कृतियों में संभवतः सर्वथा सुरक्षित नहीं है। यही कारण है कि स्थान-स्थान पर संगति ठीक नहीं बैठती है, ऐसा प्रतीत होता है।

भास की कृतियाँ यस्तु, नेता तथा रस शीतो दृष्टियों से विलक्षण वैचित्र्य से भूषित हैं। संस्कृत साहित्य में इतनी अधिक एवं विविध प्रकार की नाट्य रचना करने वाला दूसरा नाटककार नहीं है। नाट्यशास्त्रीय लक्षणों से इन्हें हम बाँव पायें अपवा नहीं, ये सभी कृतियाँ रसनिष्पत्ति की दृष्टि से अनुपम हैं। शृंगार, धीर तथा क्रोध के अभिव्यञ्जन में भास तिस्रहस्त हैं और शृंगार के अनुपम हास्य का भी सुन्दर समावेश इनकी विशेषता है।

दीप्त रस प्रधान एकाङ्क नाट्य का शास्त्रकारो ने 'व्यायोग' की संज्ञा दी है। भासकृत 'मध्यमव्यायोग' इस कोटि की सर्वप्राचीन रचना है। सर्वप्राचीन होने पर भी यह सर्वोत्कृष्ट भी है—यही भास की प्रतिभा की अनन्य महत्ता है। संक्षिप्त एक कथानक के द्वारा अरने परिवार की रक्षा के लिए मध्यम पुत्र का आत्मत्याग, राक्षस तक के हृदय में मातृमत्ति की सर्वोच्च प्रतिष्ठा और साथ ही मध्यमपाण्डव भीमसेन की शरणागत की रक्षा करने का महान् आदर्श इसमें नाट्यकार ने प्रतिपादित किया है। भीम घटोत्कच से संबद्ध हो जाने से वीर के साथ ही हास्य का पुट जुड़ गया है और सारी स्थिति ब्राह्मण परिवार की करुण दशा के कारण पूर्णतया सहृदयावर्जक बन गई है।

स्नेहभाजन डा० मालवीय ने लघुकाय इस नाट्य का जो सटीक तथा सानुवाद संस्करण प्रस्तुत किया है उसमें विद्यार्थियों की जिज्ञासा की पूर्ति होगी यह मेरा विश्वास है। विस्तृत भूमिका में सम्पादक ने भास सम्बन्धी सारे तथ्यों का आकलन करते हुए अद्यावधि उपलब्ध पूर्ण सामग्री का प्रचसनीय विवेचन और नाट्यकला की दृष्टि से भी इस कृति का मूल्यांकन किया है। साथ ही सारे परिशिष्ट विद्यार्थी तथा विद्वान् दोनों के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होंगे। मैं इस संस्करण की जनप्रियता की कामना करता हूँ।

दीपावली २०३६
संस्कृत तथा पालि विभाग
काशी हि वि वि., वाराणसी

विश्वनाथ भट्टाचार्य

दो चर्च

महाकवि मास हृत् मध्यमव्यायोग नामक एकाङ्की नाटक का यह संस्करण विश्वविद्यालय एवं सामान्य विद्यालयों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए ही मुख्य रूप से प्रस्तुत है। इस सम्करण में पाठभेद सहित मूल-पाठ उसकी संस्कृत व्याख्या, दृष्टिकोणों के अन्वय, पदार्थ, हिन्दी अनुवाद तथा तामोषी विस्तृत भूमिका और व्यायोग-नमीशा भी दी गई है। इससे यह संस्करण परीक्षार्थी छात्रों तथा अनुसन्धाताओं के लिए भी अत्यन्त उपयोगी है।

इन पुस्तक के सम्पादन में मुझे पं० टी० गणपतिशास्त्री एवं प्रो० देवधर के सम्करणों से विशेष सहायता प्राप्त हुई है। इसके लिए मैं उन विद्वानों का कृतज्ञ हूँ। प्रस्तावना लेखन के लिए मैं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत पाणि विभाग के मधुरमङ्गल प्रोफेसर गुरुवर्य डा० विश्वनाथ मट्टाचार्य का अत्यन्त आभारी हूँ। पूज्य पिता स्व० प० रामशुभेर मालवीय (साहित्य-विभागाध्यक्ष, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय और सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्व-विद्यालय) के पुनीत चरणों में बैठकर भाग के नाटको का जो आस्वाद मैं ले पाया था उसे आज साहित्यमार्ग में देखते हुए अत्यन्त हर्ष ही रहा है। वस्तुतः इस सब का श्रेय मेरी श्रेष्ठमा गुरुवर्य प्रोफेसर डा० पद्म मिश्र (भूतपूर्व प्रोफेसर संस्कृत विभाग, का० हि० वि० वि०) को ही है, जिन्होंने पाण्डुलिपि का आद्योपान्त सशोधन किया। अतः इस महती कृपा और उनके अथक परिश्रम के लिए मैं श्रेष्ठतः आशीर्वाद की कामना करता हूँ।

अन्त में इस कृति के प्रकाशक कृष्णादाम अकादमी के संचालक गुप्त बन्धुओं का मैं अत्यन्त आभार स्वीकार करता हूँ, जिनकी प्रेरणा से यह कार्य हो सका।

दीपावली १९७९,
३१/२१ लच्छा,
वाराणसी-२२१००५

विदुषी वसुदेवः
सुधाकर मालवीय

भूम्निका

महाकवि भास संस्कृत साहित्य के नाटककारों में अग्रगण्य हैं। इनकी कृतियाँ इतनी प्रसिद्ध थीं कि कालिदास ने भी अपने 'मालविकाग्निमित्र' नामक नाटक में बड़े आदर के साथ इनका स्मरण किया है।^१ घाणभट्ट [७वीं शती] ने 'हर्षचरित' में इनके नाटकों की विशेषताएँ बतलाते हुए इन्हें सूत्रधार से प्रारम्भ होने वाला बताया है।^२ भामह [७वीं शती] ने 'प्रतिज्ञा-योगन्धरायण' की मूल कथा की आलोचना के साथ साथ इसके एक प्राकृत पद्य को भी संस्कृत रूप में उद्धृत किया है।^३ बालचरित एव चारुदत्त में उपलब्ध 'लिम्पतीष तमोङ्गानि' के अलङ्कार की दण्डी [७वीं शती] ने पाण्डित्यपूर्ण मीमांसा की है।^४ वाक्पतिराज [८वीं शती] ने 'गडडवहो' नामक प्राकृत भाषा के महाकाव्य में इनको ज्वलनमित्र [अग्नि का मित्र] कहा है।^५ वामन [९वीं शती] ने 'काव्यालङ्कार' और उसकी 'सूत्र-वृत्ति' में भास के तीन उद्धरण दिये हैं।^६ राजशेखर [१०वीं शती] ने 'स्वप्न-

१. प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविदुश्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानकवे-
कालिदासस्य क्रियाया कथं परिपद्ये बहुमानः ।
२. सूत्रधारकृतारम्भेनटिकैवंहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥ हर्षचरित, श्लोक १५
३. हुतोऽग्नेन मम भ्राता मम पुत्रः पिता मम—काव्यालङ्कार, अ० ४
४. काव्यादर्श २.२२६
५. भासमि जलणमित्ते कुन्तीदेवे अ जस्य रघुकारे ।
सौबन्धे अ बन्धमि हारीचन्द्रे अ आणन्दो ॥
[भासे ज्वलनमित्रे कुन्तीदेवे च यस्य रघुकारे ।
सौबन्धे च बन्धे हारीचन्द्रे च आनन्दः ॥] 'गडडवहो'
६. (i) शरच्छशाकगोरेण वाताविद्धेन भामिनि । काव्यलङ्कारसूत्रवृत्तिः ५.३
काशपुष्पलवेनेदं साधुपातं मुक्तं मम ॥ स्वप्नवासवदत्तम्, अंक ४
- (ii) यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युष्येत् । प्रतिज्ञायोगन्धरायण ४.२
- (iii) यासां बलिर्भवति मद्गृहदेहलोना,
हसंश्च सारसगर्णश्च विलुप्तपूर्वं । काव्यालङ्कार १.५
- तास्वेव पूर्वंबलिरुद्धवाङ्कुरासु चारुदत्त १.२
बीजाञ्जलिः, पतति कीटमुखावलीढः ॥

चासवदत्तम्' नाटक की 'नगद्वयमीमांसा' में उक्तम पोटि का स्वीकार किया है।^१

अभिनवगुप्त [१० वीं शती] अभिनवभारती में 'स्वप्नवागवदत्तम्' का उल्लेख किया है।^२ इसके अनिश्चित 'स्वप्नवागवदत्तम्' में इस नाटक से एक दसोह भी उद्धृत किया है। किन्तु यह सम्प्रति मुद्रित ग्रन्थ में प्राप्त नहीं है।^३ महाराज भोज [११ वीं शती] ने 'शृङ्गारप्रकाश' में 'स्वप्नवागवदत्तम्' का उल्लेख किया है।^४ रामचन्द्र-गुणपद्म [१२ वीं शती] ने 'नाट्यदर्पण' में 'स्वप्नवागवदत्तम्' से एक श्लोक उद्धृत किया है।^५ आगच्छारिष जयदेव [१२ वीं शती] ने 'प्रणमराघव' की प्रस्तावना में 'उद्धृष्टविद्या-वामिनी' का हाम कहा है।^६ इस प्रकार प्राचीन काल में माग का महत्त्व साहित्य में बड़ा गौरवपूर्ण स्थान था।

माग के नाटकों की खोज और उनका एककतृत्व—

महत्त्व साहित्य के इतने प्रगट रूप होने पर भी बहुत दिनों तक विद्वानों को इनका केवल नाम ही मान्य था। इनके काल, जीवन वृत्त और प्रयोग के

१ भागनाटकचतुष्टयि छेके लिखे परीक्षितुम् ।

स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभूत्त पावकः ॥

२ अविन् प्रीडा यथा स्वप्नवागवदत्तायाम् । अभिनवभारती १.७४

स्वप्न० अंक २

३ मन्थनपक्षपाट नयनद्वारं स्वरूपनटनेन ।

उद्घाटय सा प्रविष्टा हृदयगुह्ये मे नूतनरुजा ॥

४. स्वप्नवागवदत्ते पद्यावतीमस्वस्या द्रष्टुं राजा ममुद्रगृहक गत । पद्यावतीरहितं च सदवलोक्य तस्या एव शयनीये मुद्राप । वागवदत्ता च स्वप्नवदस्वप्ने ददशं । स्वप्नायमानश्च वासवदत्तामावभाषे ।

शृङ्गारप्रकाश, स्वप्नवागवदत्तम्, पंचम अंक का मक्षेप ।

५. यथा मागृते स्वप्नवासवदत्ते—

दोहालिकाशिलातलमवलोक्य यस्तराजः ।

पदानान्तानि पुष्पाणि तोष्म चैदं शिलातलम् ।

नूनं वाचिदिहामीना मां दृष्ट्वा सहसा गता ॥ नाट्यदर्पण

६ नामो हासः कविमुल्लसुः वासिदासो विलासः ।

प्रमदराघव

विषय में कुछ भी ज्ञान न था। सौभाग्यवशात् १९१२ ई० में महामहोपाध्याय श्री टी० गणपति शास्त्री ने 'स्वप्नवासवदत्तम्' आदि तेरह नाटक त्रिवेन्द्रम् से अनन्त-शयन ग्रन्थमाला में प्रकाशित कराये और उन्हें भास की रचाना बतलाया।

य नाटक अन्य संस्कृत नाटको से कुछ विलक्षण थे। संस्कृत नाटको के आरम्भ में ग्रन्थकार अपना परिचय देते हैं। कालिदास, भवभूति आदि नाटक-कार इसी शैली का अनुसरण करते हैं। परन्तु इन नाटको में ग्रन्थकार का नाम नहीं स्मरण किया गया है। कल्हणकृत मूक्तिमुक्तावली में राजशेखर का एक श्लोक उद्धृत है, जिसमें 'स्वप्नवासवदत्तम्' को उत्कृष्ट नाटक बताया गया है। प्रस्तुत तेरह नाटको में एक 'स्वप्न नाटक' भी है जिसमें वत्सराज उदयन और वासवदत्ता की कथा है। प० टी० गणपति शास्त्री ने अनुमान किया कि राजशेखर निर्दिष्ट स्वप्न-वासवदत्ता यही है, और क्योंकि स्वप्न-वासवदत्ता के कर्ता राजशेखर द्वारा भास माने गए हैं अतः प्रस्तुत स्वप्न नाटक के कर्ता भी भास ही हैं। उन्होंने आगे लिखा कि-१ क्योंकि रचना शैली आदि में ये सब नाटक एक ही प्रकार के हैं, अतः इनके कर्ता भास ही होंगे। एतद्देशीय और विदेशीय अनेक विद्वानों ने प० टी० गणपति शास्त्री द्वारा निकाला गया परिणाम स्वीकार कर लिया। २ परन्तु अनेक ऐसे भी विद्वान् हैं जो ऐसा नहीं मानते। उनके अनुसार ये नाटक भास के नहीं हैं।

३ इन दोनों मतों के अतिरिक्त एक तीसरा मत भी है। उसके मानने वालों का कथन है कि भारत के केरल आदि दक्षिण प्रान्तों में प्राचीन कवियों के अनेक नाटकों का संक्षेप और परिवर्तन जो किया गया उसका यही प्रयोजन था कि ये नाटक रंगमंच पर आसानी से अभिनीत हो सकें। इसी कारण शकुन्तला आदि नाटकों का भी संक्षिप्त एवं परिवर्तित रूप वहाँ मिलता है। इसी प्रकार त्रिवेन्द्रम् से प्रकाशित होने वाले ये स्वप्न नाटक आदि तेरह ग्रन्थ भी प्राचीन नाटकों का संक्षेप एवं रूपान्तर ही हैं।

यह तीसरा मत कुछ विद्वानों को मान्य है। इसका कारण यह है कि अनेक प्राचीन ग्रन्थकारों ने भास कृत 'स्वप्न-वासवदत्तम्' के नाम से कई श्लोक अपने अपने ग्रन्थों में उद्धृत किए हैं। सम्प्रति मुद्रित 'स्वप्न नाटक' में वे सब श्लोक नहीं प्राप्त होते। अतः विद्वानों का अनुमान है कि प्रस्तुत 'स्वप्न-नाटक' में अनेक श्लोक सम्भवतः संक्षेप के कारण लुप्त हो गए। अस्तु,

इस विवाद के रहने हुए भी इनका तो मुनिञ्चिन ही है कि भाग ने कोई 'स्वप्न-वामयदत्तम्' नाटक रचा था और प्रस्तुत 'स्वप्न-नाटक' उगी का रूपान्तर है। इस रूपान्तर का मूल में बितना अन्तर है यह कुछ कहा नहीं जा सकता।

१० टी० गणपति शास्त्री द्वारा प्रकाशित अन्य बारह नाटकों के अन्त में भी प्रत्येक का नाम निर्देशन नहीं प्राप्त होता। यही नहीं आरम्भ में भी कवि अपने नाम का स्मरण भी नहीं करता। विन्तु रचनाओं की समानता के कारण १० टी० गणपति शास्त्री ने यही परिणाम निकला कि यह तेरह नाटक एक ही कवि की कृति हैं और यह कवि नाम ही हैं। फिर जो जिन शकों के आधार पर विद्वान् भाग के कर्तृत्व का विरोध प्रस्तुत करते हैं वे इस प्रकार हैं—

१. इन शकों में कवि का नाम नहीं दिया गया, अतः यह भास की रचनाओं पर आधारित निम्नी अन्य कवि की कृतियाँ हैं।

२. इनमें मूलधार नान्दी के बाद प्रवेश करता है। यह विशेषता इन तेरह शकों की ही नहीं, अपितु सामान्यतः समस्त दक्षिण भारतीय रूपकों की है।

३. इनमें उपनयन नाट्यकला नाम की ही अपनी नहीं, अपितु वैंगी नाट्यकला तो दक्षिण भारत के सभी रूपकों में मिलती है।

४. इन रूपकों में भरतमुनि के नाट्यशास्त्रीय नियमों का पूर्णतया पालन न होना भी इनकी प्राचीनता का द्योतन नहीं है, क्योंकि निषिद्ध दृश्य तो पञ्चकालीन रूपकों में सामान्यतः अधिक प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से अपना लिये गये हैं।

५. जहाँ तक भाषा का प्रश्न है उसे भी ठोस आधार नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अपाणिनीय प्रयोग तो आपं काव्य, पुराण साहित्य और अत्यन्त पञ्चवर्ती अनेक ग्रन्थों में विखरे मिलते हैं। दूसरे, प्राकृत के प्राचीन प्रयोग मलयालम हस्तलेखों की विशेषता है। इसके अतिरिक्त रूपकों की प्राकृत हस्तलेखों के लेखन-स्थल एवं काल पर निर्भर है, न कि नाट्यकार के काल पर।

६. बाद के लेखकों ने जो पद्य उद्धृत किये हैं, उन्हें उन्होंने मास, छे सवद नहीं बताया है।

२ इन रूपको में अनेक अपाणिनीय प्रयोग मिलते हैं। जैसे—‘आप्रच्छ’ का प्रयोग परस्मैपद में है।

३ अनेक नाटको में नाटकीय व्यङ्ग्य (पताका-स्थानक) का प्रयोग मिलता है।

४ कतिपय अप्रचलित छन्दो का प्रयोग इनमें प्राप्त होता है। जैसे—सुवदना, दण्डक आदि। अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग बहुत अधिक किया गया है।

५ कुछ नाटक एक दूसरे से सम्बद्ध से जान पड़ते हैं; जैसे—‘स्वप्न-वासव-दत्तम्’ प्रतिज्ञायोगन्धरायण’ का ही उत्तरार्द्ध लगता है। इसी प्रकार प्रतिमा नाटक भी अमिपेक से सम्बद्ध है।

६ इनमें से अनेक नाटको में छोटे पात्रों के नामों में भी समानता है, जैसे ‘प्रतिज्ञायोगन्धरायण’ व ‘दूतवाक्य’ में कञ्चुकी का नाम ‘वादरायण’ है। इसी प्रकार ‘स्वप्नवासवदत्तम्,’ ‘प्रतिमा,’ ‘प्रतिज्ञा-योगन्धरायण’ और ‘अमिपेक’-चारों नाटको में प्रतिहारी का नाम ‘विजया’ है।

७ प्रायः सभी नाटको में नाट्यनिर्देशों की न्यूनता समान रूप से मिलती है। जो नाट्यनिर्देश हैं उनमें दो-तीन निर्देश साथ-साथ दिये गये हैं, जैसे ‘निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य’ या ‘सविस्मयम् परिक्रम्यावलोक्य च’ आदि।

इस प्रकार सभी नाटको में समान दृश्यों की अवतारणा, समान भाव और समान शब्दों एवं समान वाक्यों की उपलब्धि और अन्ततः समान वर्णन पद्धति के आधार पर यही सिद्ध होता है कि इन नाटको का प्रणेता निश्चित ही कोई एक व्यक्ति है जो राजसेखर और अमिनवगुप्त के साक्ष्य से भास ही हैं।

भास का काल

महाकवि कालिदास द्वारा ‘मालविकाग्निमित्र’ में स्मरण किये जाने से यह निश्चित ही है कि भास कालिदास के पहले प्रथित-यश वाले हो चुके थे। किन्तु कालिदास का काल ही निश्चित नहीं है। कुछ विद्वान् कालिदास का काल ४०० ई० मानते हैं। अतः उनके अनुसार भास ४०० ई० से प्राचीन थे। अन्य विद्वान् कालिदास को प्रथम शती का मानते हैं। अतः उनके अनुसार भास ई० की प्रथम शती के पहले विद्यमान थे। इसी आधार पर ५०० टी० गणपति शास्त्री भास को तृतीय शती ई० पू० का मानते हैं। चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में ‘अपीह दलोको भवतः’—कहकर जो दो दलोक उद्धृत किये हैं, इनमें दूसरा

श्लोक 'प्रतिज्ञागीगन्धरायण' में मिलता है।^१ चाणक्य चन्द्रगुप्त के मन्त्री थे। उन्होंने निश्चित ही यह श्लोक भास से लिया होगा क्योंकि यदि स्मृति से लेते तो अवश्य ही 'इति स्मृती' लिखते। जैसा कि इतिहासकारों के अनुसार चन्द्रगुप्त ३२१ ई० पू० राजगद्दी पर आसीन हुए थे, अतः भास का समय उनसे लगभग ५० वर्ष पूर्व मानना ठीक होगा। भास के 'प्रतिमानाटक' में बृहस्पति कृत अर्थशास्त्र में रावण की दशता का उल्लेख हुआ है।^२ बाह्यस्पत्य अर्थशास्त्र चाणक्य से बहुत पहले का है। यदि भास चाणक्य के बाद होते तो उनके अर्थशास्त्र का उल्लेख अवश्य करते। अतः भास के काल की निम्नतम सीमा ४०० ई० पू० ही सिद्ध होती है।

लोकमान्य तिलक के अनुसार भास कालिदास के पूर्ववर्ती थे, और उनका स्थितिकाल दूसरे या तीसरे शतक के बाद का वदापि नहीं है।^३ वस्तुतः 'मगधगीता' के आदि में 'गीता ध्यान' नाम से नौ श्लोकों की चर्चा करत हुए लोकमान्य का यह भी कथन है कि इन नौ श्लोकों में जो 'भीष्मद्रोणतटा जयद्रथजलाम्' आदि श्लोक उद्धृत हैं, वह महाकवि भास के 'ऊरुमङ्गल' का आदि श्लोक है।^४ कुछ विद्वान् भास को नारायण काण्व का समकालीन सिद्ध करते हैं।^५ नारायण काण्व का समय ५३-४१ ई० पू० माना गया है। वेलवल्कर के मत से सूद्रक का मृच्छकटिक भास के चारुदन से बहुत प्रभावित है अतः भास का समय तीसरी शती ई० पू० होना चाहिए।^६

१ नवं शराव मलिलं सुपूर्णं सुसंस्कृतं दमं कृतोत्तरीयम् ।

तत्तस्य मा भून्नरकं स गच्छेद् यो भ्रूणपिण्डस्य कृते न युध्येत् ।

(कौटिल्य अर्थ० १०३; प्रतिज्ञा० ४२) ।

२ भीष्म काश्यपगोत्रोऽस्मि, साङ्गवेदमधीय, मानवीय धर्मशास्त्र महेश्वर योगशास्त्र, बाह्यस्वल्पमर्थशास्त्र प्राचेतस आदकल्पञ्च ।

(प्रतिज्ञा० अंक ५)

३ लोकमान्यतिलक कृत गीता रहस्य, पृ० ५६० ।

४ गीतारहस्य, पृ० ५६१ ।

५ J O A. S. D. Bengal, Jaisawal, p 259, 1913

६ S K Velwalkar, The Relationship of Sudraks's Mrichhakatika to the Carudatta of Bhasa, Presy of the first Oriental conference 1919, Vol II p. 189-204.

२ इन रूपको मे अनेक अपाणिनीय प्रयोग मिलते हैं । जैसे—'आप्रच्छ' का प्रयोग परस्मैपद मे है ।

३ अनेक नाटको मे नाटकीय व्यङ्ग्य (पताका-स्थानक) का प्रयोग मिलता है ।

४ कतिपय अप्रचलित छन्दो का प्रयोग इनमे प्राप्त होता है । जैसे—मुवदना, दण्डक आदि । अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग बहुत अधिक किया गया है ।

५ कुछ नाटक एक दूसरे से सम्बद्ध से जान पडते हैं; जैसे—'स्वप्न-वासव-दत्तम्' प्रतिज्ञायोगन्धरायण' का ही उत्तराह्नं लगता है । इसी प्रकार प्रतिज्ञा नाटक भी अमिपेक से सम्बद्ध है ।

६ इनमे से अनेक नाटको मे छोटे पात्रो के नामो मे भी समानता है, जैसे 'प्रतिज्ञायोगन्धरायण' व 'दूतवाक्य' मे कञ्चुकी का नाम 'बादरायण' है । इसी प्रकार 'स्वप्नवासवदत्तम्,' 'प्रतिज्ञा,' 'प्रतिज्ञा योगन्धरायण' और 'अमिपेक'-चारो नाटकों में प्रतिहारी का नाम 'विजया' है ।

७ प्राय ममी नाटको म नाट्यनिर्देशो की न्यूनता समान रूप से मिलती है । जो नाट्यनिर्देश हैं उनमे दो-तीन निर्देश साथ-साथ दिये गये हैं, जैसे 'निष्क्रम्य पुन प्रविश्य' या 'सविस्मयम् परिऋम्यावलोक्य च' आदि ।

इम प्रकार ममी नाटको मे समान दृश्यो की अवतारणा, समान भाव और समान शब्दो एव समान वाक्यो की उपलब्धि और अन्तत समान वर्णन पद्धति के आधार पर यही सिद्ध होता है कि इन नाटको का प्रणेता निश्चित ही कोई एक व्यक्ति है जो राजशेखर और अभिनवगुप्त के साक्ष्य से भास ही हैं ।

भास का काल

महाकवि कालिदास द्वारा 'मालविकाग्निमित्र' मे स्मरण किये जाने से यह निश्चित ही है कि भास कालिदास के पहले प्रयित-यश वाले हो चुके थे । किन्तु कालिदास का काल ही निश्चित नहीं है । कुछ विद्वान् कालिदास का काल ४०० ई० मानते हैं । अत उनके अनुसार भास ४०० ई० से प्राचीन थे । अन्य विद्वान् कालदास को प्रथम शती का मानते हैं । अत उनके अनुसार भास ई० की प्रथम शती के पहले विद्यमान थे । इसी आधार पर ५० टी० गणपति शास्त्री भास को तृतीय शती ई० पू० का मानते हैं । चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र मे 'अपीह श्लोको भवत'—कहकर जो दो श्लोक उद्धृत किये हैं, इनमे दूसरा

श्लोक 'प्रतिज्ञागौणधरायण' में मिलता है।^१ चाणक्य चन्द्रगुप्त के मन्त्री थे। उन्होंने निश्चित ही यह श्लोक भास से लिया होगा क्योंकि यदि स्मृति से लेते तो अवश्य ही 'इति स्मृतौ' लिखते। जैसा कि इतिहासकारों के अनुसार चन्द्रगुप्त ३२१ ई० पू० राजगद्दी पर आसीन हुए थे, अतः भास का समय उनसे लगभग ५० वर्ष पूर्व मानना ठीक होगा। भास के 'प्रतिमानाटक' में बृहस्पति वृत्त अर्थशास्त्र में रावण की दक्षता का उल्लेख हुआ है।^२ बाहंस्पत्य अर्थशास्त्र चाणक्य से बहुत पहले का है। यदि भास चाणक्य के बाद होते तो उनके अर्थशास्त्र का उल्लेख अवश्य करते। अतः भास के काल की निम्नतम सीमा ४०० ई० पू० ही सिद्ध होती है।

लोकमान्य तिलक के अनुमार भास कालिदास के पूर्ववर्ती थे, और उनका स्थितिकाल दूसरे या तीसरे शतक के बाद का कदापि नहीं है।^३ वस्तुतः 'मगवद्गीता' के आदि में 'गीता-ध्यान' नाम से नौ श्लोकों की चर्चा करते हुए लोकमान्य का यह भी कथन है कि इन नौ श्लोकों में जो 'भीष्मद्रोणतटा जयद्रथजलाम्' आदि श्लोक उद्धृत हैं, वह महाकवि भास के 'ऋषभङ्ग' का आदि श्लोक है।^४ कुछ विद्वान् भास को नारायण काण्व का समकालीन सिद्ध करते हैं।^५ नारायण काण्व का समय ५३-४१ ई० पू० माना गया है। वेल्वल्कर के मत से सूद्रक का मृच्छकटिक भास के चारुदत्त से बहुत प्रभावित है अतः भास का समय तीसरी शती ई० पू० होना चाहिए।^६

१ नवं शराव सलिलं. सुपूर्णं सुसंस्कृतं दमं कृतोत्तरीयम् ।

तत्तस्य मा भूप्ररक स गच्छेद् यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत् ।

(कौटि० अर्थ० १० ३; प्रतिज्ञा० ४.२) ।

२ भो काश्यपमोश्रोऽस्मि, साङ्गवेदमधीये, मानवीष धर्मशास्त्र महेश्वरं योगशास्त्रं, बाहंस्पत्यमर्थशास्त्रं प्राचेतस श्राद्धकल्पञ्च ।

(प्रतिज्ञा० अंक ५)

३. लोकमान्यतिलक वृत्त गीता रहस्य, पृ० ५६० ।

४ गीतारहस्य, पृ० ५६१ ।

५. J. O. A. S. D. Bengal, Jaisawal, p. 259, 1913

६. S. K. Velwalkar, The Relationship of Sudraks's Mrichhakatika to the Carudatta of Bhasa, Presy of the first Oriental conference 1919, Vol II p. 189-204.

भास की निम्नतम-सीमा पर विचार के बाद उनकी उपरिम सीमा का विचार आवश्यक है। भास के नाटको में कुछ का सम्बन्ध वत्सराज उदयन से है। भास ने प्रद्योत, दर्शक और उदयन को समकालीन चित्रित किया है। इतिहासकार स्मिथ के अनुसार दर्शक और उनके उत्तराधिकारी का राज्यकाल ४७५ ई० पू० से ४५ ई० पू० के मध्य था।¹ इस प्रकार भास के काल की आदिम सीमा ४५० ई० पू० से पहले भी नहीं मानी जा सकती। अतः भास का काल ५०० ई० पू० होना चाहिए।

भास के नाटको से प्राप्त अनेक आभ्यन्तर प्रमाण भी इसी काल की ओर संकेत करते हैं। इन नाटको में पाये जाने वाले अपाणिनीय प्रयोगों से यह स्पष्ट है कि पाणिनि के पूर्व भास के नाटको की रचना हो चुकी थी। भास के प्राकृत कालिदास के प्राकृतों की अपेक्षा प्राचीन मालूम पड़ते हैं। भास के नाटको से व्यक्त सामाजिक अवस्था मौर्यकाल की सामाजिक अवस्था के समान है। भास कृत नाटको की रचना शैली भरत के 'नाट्यशास्त्र' में वर्णित शैली से प्राचीन है। 'मानवीय धर्मशास्त्र' उपलब्ध 'मनुस्मृति' का परामर्श नहीं करता। वह शब्द धर्मसूत्रकार गौतम द्वारा उल्लिखित मानवीय धर्मशास्त्र का बोधक है। गौतम का काल ई० पू० ६०० माना जाता है। महेश्वरकृत 'योगशास्त्र' के समय का ठीक पता नहीं चलता। इसी प्रकार 'प्राचेतस श्राद्धकल्प' का भी पता नहीं चलता। भास के भरतवाक्यों में आये 'राजमिह' शब्द से ऐसा मालूम पड़ता है कि भास उपर्युक्त तीनों राजाओं में से किसी एक राजकवि थे। 'स्वप्नवासवदत्तम्' और 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' से ऐसा प्रतीत होता है कि भास वत्सराज उदयन को अमर बनाना चाहते हैं। इस प्रकार नाटको के आभ्यन्तर भाष्यों के आधार पर भी ई० पू० ५०० शती के ही सिद्ध होते हैं।

भास की कृतियाँ और उनके कथा-स्रोत के आधार

कथा स्रोतों के आधार पर भास की कृतियों का विभाजन हम पाँच प्रकार से कर सकते हैं—

कथा-स्रोत का आधार

| | | |
|---------------|---|--------|
| १ प्रतिमानाटक | } | रामायण |
| २. अभिषेक | | |

1 Early History of India, P. 38 39.

| | | |
|-------------------------|---|------------------------|
| ३ मध्यमव्यायोग | } | महामारत |
| ४ दूतवाच | | |
| ५ दूतपटोत्तर | | |
| ६ वरुणमार | | |
| ७ जलमन्त्र | | |
| ८ पञ्चरात्र | } | हरिवंश |
| ९ बालचरित | | |
| १० स्वप्नवासवदत्तम् | } | वृहत्सभा |
| ११ प्रतिज्ञायोग्यशरणापण | | |
| १२ अविमारक | | |
| १३ चाण्डाल | | |
| | | लोकप्रचलित व कालान्तिक |

इन उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त वृद्ध विद्वान् 'यज्ञफल' को भी भासद्वारा मानने हैं। इसे गोण्डल निवासी राजबंश जीवराम कालिदास शास्त्री ने १९४१ में प्रकाशित किया। यह रामायण पर आधारित है। इस सम्बन्ध में प्रोफेसर साता का कथन है कि यद्यपि 'यज्ञफल' नाम के अन्य नाटकों की तरह ही प्रारम्भ और समाप्त होता है। किन्तु इसमें बहुत-सी नवीन बातें हैं जो भास के समय में नहीं थीं। राम धनुर्भङ्ग से पूर्व प्रेम की दृष्टि के लिए सीता से उद्यान में मिलते हैं। राम को भी दुष्यन्त के ही समान शङ्का होती है कि यह कहीं व्रह्मर्षि की पुत्री तो नहीं हैं। विप्रवामित्र नगर एवं ग्राम्य जीवन की तुलना कर ग्राम्य जीवन को श्रेष्ठ बताने हैं, आदि। अतः सम्भव है कि 'यज्ञफल' नाम के नाटकों के अनुकरण पर किसी अन्य परवर्ती नाटककार की रचना हो।

भास के नाटकों का संक्षिप्त परिचय

I. रामायण पर आधारित नाटक—

१. प्रतिमानाटक—इसमें रामवनगमन, नीनाहरण आदि में लेकर रावणवध पर्यन्त सम्पूर्ण राम-कथा सक्षेप से वर्णित है। यह सात अंक का है। दशरथ की प्रतिमा को देखकर उनके दिवात हो जाने का अनुमान भरत द्वारा नगर से बाहर ही कर लिए जाने से इसका नाम 'प्रतिमानाटक' है।

२. अभिषेक—इसमें क्लिप्तिग्याण्ड से राम के राज्याभिषेक तक की कथा सक्षेप में है। यह छ अङ्क का नाटक है। राज्याभिषेक के कारण ही इसका नाम 'अभिषेक' है।

II. महाभारत पर आधृत नाटक—

३ मध्यमव्यायोग—इस एकाङ्की में मध्यम पाण्डव भीम द्वारा घटोत्कच से ब्राह्मण के मध्यम पुत्र के मुक्ति की कथा है। 'मध्यम' शब्द भीम और उम वालक दोनों का बोधक होने से इसका नाम 'मध्यमव्यायोग' है।

४. दूतवाक्य—इस एकाङ्की में पाण्डव पक्ष से दुर्योधन के पास कृष्ण के दूत बनकर जाने और वहाँ उनके द्वारा पाण्डवों के भाग (हिस्सा) माँगने पर दुर्योधन द्वारा कृष्ण को पकड़ने की आज्ञा देने पर कृष्ण के विराट् रूप ग्रहण करने की कथा वर्णित है।

२ दूतघटोत्कच—इस एकाङ्की में अभिमन्यु की मृत्यु के बाद घटोत्कच दूत बनकर कृष्ण का सदेश कौरवों के पास ले जाता है। दुर्योधन और घटोत्कच के बीच गरमा गरमी हो जाती है जिसे घृतराष्ट्र शान्त करते हैं। घटोत्कच अभिमन्यु के वध का बदला अर्जुन द्वारा लिए जाने की धमकी देकर चला जाता है। इस एकाङ्की में 'भरतवाक्य' नहीं है।

६ कर्णभार—इस एकाङ्की में द्रोणाचार्य के निधन पर कौरवों की ओर से कर्ण के सेनापति हो जाने पर युद्ध का सारा भार कर्ण पर आ पड़ता है। यह उनके लिए भारस्वरूप हो जाता है जबकि ब्राह्मणवेपथ्वारी इन्द्र को वे कवच और कुण्डल दान में दे देते हैं।

७ ऊरुभंग—इस एकाङ्की में द्रौपदी के अपमान के प्रतीकार स्वरूप भीम द्वारा दुर्योधन की जघा (=ऊरु) को भङ्ग करके उसका वध करने की कथा वर्णित है। मस्कृत-साहित्य में मात्र यही एक दुःखान्त नाटक है।

८ पचरात्र—इसमें दुर्योधन के द्वारा यज्ञ करने और यज्ञ पूर्ण होने पर द्रोण को मुँहमागी दक्षिणा देने के लिए कहता है। द्रोण ने दुर्योधन से दक्षिणा रूप में पाण्डवों को आधा राज्य दे देने की माँग की। दुर्योधन इस शर्त पर तैयार होना है कि पाँच रात्रि के अन्दर यदि पाण्डव मिल जाएँगे तभी ऐसा हो सकेगा। कौरवों ने विराट् की राजधानी पर गायों के लिए आक्रमण किया। राजकुमार उत्तर कौरवों से लड़ते हैं। अज्ञातवास में स्थित पाण्डवों की सहायता में उसकी विजय होती है, और पाण्डवों के प्रकाश में आ जाने पर द्रोण द्वारा प्रतिज्ञा की याद दिलाई जाती है। इस पर दुर्योधन आज्ञा राज्य दे देने के लिए मान जाता है।

III. हरिवंश पर आधृत नाटक—

९.—वालचरित—इसमें भगवान् श्रीकृष्ण की बाल-सीता का वर्णन है। पाँच अङ्कों में श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर कम बध पर्यन्त की कथा वर्णित है।

IV. बृहत्कथा पर आधृत नाटक—

१० स्वप्नवासवदत्तम्—इसमें बल्हराज उदयन के वासवदत्ता के साथ स्वप्न में मिलन की कथा है। इसीलिए इसका नाम 'स्वप्नवासवदत्तम्' है। उज्जयिनी के राजा प्रद्योत के महन में वामयदत्ता के हरण के बाद उदयन विनामी हो जाते हैं। इसने धनु आरुणि का आक्रमण करने का अवसर प्राप्त हो जाता है। किन्तु उदयन के मन्त्री यौगन्धरायण आरुणि को परास्त करने के लिए भगधराज दशक से सहायता लेने के लिए वामयदत्ता को मिलकर सावाणन में उनके अग्नि में जन मरने का समाचार उडा देने हैं और वामयदत्ता को भगधराज की कुमारी पद्मावती के पास धरोहर रूप में रख देते हैं। बाद में उदयन का विवाह पद्मावती में होता है। एक बार उदयन स्वप्न देखता है। उनकी स्मृति ताजी हो जाती है। वासवदत्ता प्रकट होती है और उदयन का उनमें मिलन होता है। उधर उदयन का सेनापति सम्ययान् आरुणि को युद्ध में पराजित कर देना है। इस प्रकार छ अङ्कों का यह सुत्तान्त नाटक है।

११ प्रतिज्ञायौगन्धरायण—इसमें बल्हराज उदयन द्वारा उज्जयिनी के राजा प्रद्योत की कन्या वासवदत्ता के हरण और प्रेम विवाह का वृत्तान्त है। प्रद्योत द्वारा उदयन के कैद कर लिए जाने पर उदयन के मन्त्री यौगन्धरायण द्वारा उदयन को छुड़ाने और वामयदत्ता के साथ उमका विवाह कराने की प्रतिज्ञा करता है। इसलिए इसका नाम 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' है। चार अंक के इस 'ईहाभृग' नामक नाटकभेद में यौगन्धरायण को पूर्ण भक्षण दर्शाया गया है।

१२ अविमारक—इसमें राजा कुन्तिभोज की कुमारी कुरङ्गी और सीवीर राजा के पुत्र विष्णुसेन के प्रेम-विवाह की कथा है। विष्णुसेन का ही दूसरा नाम अविमारक है। विष्णुसेन ने किसी समय 'अवि' नामक भेडरुधारी राक्षस को मारा था। इसीलिए नाटक का नाम 'अविमारक' है।

V काल्पनिक—

१३. चारुदत्तम्—इसमें निर्धन किन्तु उदारमना ब्राह्मण चारुदत्त एक गणिका वदन्तसेना के प्रेम सम्बन्ध का वर्णन है। नायक के नाम पर ही नाटक का नाम 'चारुदत्त' रखा गया है। यह चार अंक का 'प्रकरण' है।

भास की नाटककला और मध्यमव्यायोग

इस प्रकार भास ने अपने प्रायः सभी नाटकों की कथावस्तु रामायण व महाभारत से ली है। कुछ बृहत्कथा पर आधारित है और एक काल्पनिक है। भास ने जो भी कथास्रोत ग्रहण किया उसे सभी नाटकों में उन्होंने अपने रुचि के अनुसार बदल दिया है। इसी कारण प्रायः सभी कथानक बड़े ही रोचक हो गये हैं और मंचन के योग्य हो गए हैं। इनमें नाट्यनिर्देश बहुत कम हैं, जिसे अभिनेता को स्वयं ही करना है। मध्यमव्यायोग में भी इसी प्रकार 'नाट्यनिर्देश' बहुत कम है और महाभारत के ही पात्रों को लेकर घटना का क्रम कल्पित है। नाटक बहुत बड़ा नहीं है। मात्र कुछ घण्टों का ही दृश्य है जिसमें नाटक समाप्त हो जाता है अतः इसका मफयतापूर्वक मंचन किया जा सकता है।

मध्यमव्यायोग की समीक्षा

मध्यमव्यायोग की कथावस्तु—

मध्यमव्यायोग की कथावस्तु का प्रारम्भ ब्राह्मण परिवार और घटोत्कच की आकास्मिक मुलाकात से होता है। कुरुजाङ्गल प्रदेश के मूपग्राम के निवासी अध्वर्यु केशवदास अपने मातुल यज्ञवधु के यहाँ उपनयन संस्कार में सम्मिलित होने के लिए उद्यामक ग्राम जा रहे हैं। उनके साथ उनके तीन पुत्र और पत्नी भी हैं। जाने का मार्ग जङ्गल से होकर पड़ता है। दुर्घोषन से जुए में पराजित पाण्डव इसी वन में निवास कर रहे हैं। किन्तु इस समय वे धीम्य मर्हणिक के आश्रम पर 'शतकुम्भ' नामक यज्ञ देखने गए हैं। मात्र भीम निवासस्थान के रक्षार्थ रुक गए हैं। इसी समय घटोत्कच भी माता की आज्ञा से उसके उपवास के पारणार्थ एक मानव को लाने के लिए चल पड़ा है। घटोत्कच ब्राह्मण परिवार का पीछा करता है। वह राक्षस तरण सूर्य की किरणों के समान बिखरे बालों वाला, भ्रूकुटि की मञ्जी से प्रदीप्त एवं पीले रङ्ग की अश्वि बाना, कण्ठमूत्र से युक्त, विद्युत् युक्त मेघ के समान स्थित युग के सहार में प्रवृत्त भगवान् शङ्कर की प्रतिकृति रूप है। उसकी दोनों अश्वि सूर्य-चन्द्र की भाँति चमकीली हैं, वक्षस्पल विस्तृत है, वह पीला कौशेय वस्त्र पहने हुए

है। उमके दाँत हाथी के बच्चो के दाँत के समान कुछ निकले हुए हैं। उमके हाप हाथी की मूड के समान हैं।

घटोत्कच कहता है—'डरपोक ब्राह्मण, कहीं भाग रहे हो? तुम मेरे सामने उसी प्रकार हो जैसे क्रुद्ध गरुड के सामने स्त्री-महित भरा हुआ नाग हो।' इस पर वृद्ध अपने पुत्र और स्त्री से कहता है कि मत डरो, क्योंकि इसकी वाणी विवेकपूर्ण है। फिर जलबिलग्न मुनि ने कहा था कि यह वन निरापद नहीं है, और इस निर्जन वन में कितने पुकारा जाय। अतः इस संकट से मोक्ष का उपाय घटोत्कच से ही पूछना है इस पर घटोत्कच कहता है कि इन तीनों में मैं एक को ले लूँगा और तब प्राग्नि से अन्य को जाने दूँगा। इस शर्त पर सभी ने अपने को उत्तमगं करना चाहा। किन्तु जरा जीर्ण होने के कारण ब्राह्मण और स्त्री होने के कारण ब्राह्मणी छोड़ दी जाती हैं। तीन पुत्रों के बीच ज्येष्ठ को पिता नहीं छोड़ना चाहता और छोटे को माता नहीं छोड़ना चाहती। अतः मध्यम पुत्र ही पिता और माता से न बचा जाकर बच रहता है जो राक्षस के नाश जाने को तैयार हो जाता है। तब घटोत्कच की अनुमति लेकर मध्यम पुत्र समीप के जलाशय में पन पीने जाता है।

मध्यम पुत्र को लौटने में जब विलम्ब होता है तो घटोत्कच उसे 'मध्यम' 'मध्यम' कहकर पुकारता है, क्योंकि माता के पारणा का काल बीता जा रहा था। भीम अपना नाम सुनकर आश्चर्यान्वित होते हैं कि मुझे कौन बुला सकता है, और घटोत्कच के द्वारा पुकारने पर कहते हैं कि 'यह मैं आ गया' दोनों एक दूसरे को देखकर टिठक जाने हैं। वह कहना है कि 'क्या आप भी मध्यम हैं।' भीम कहते हैं—'हाँ मैं भी मध्यम हूँ।' वृद्ध ब्राह्मण मोचते हैं कि यह अवश्य ही पाण्डव मध्यम भीम होंगे, जो हम लोगों को मुक्ति दिलाने माध्यवशात् ही आ गए हैं। इसी बीच मध्यम पुत्र आ जाना है और उसे लेकर घटोत्कच जब चढ़ने लगता है तब वृद्ध ब्राह्मण कातर दृष्टि से भीम से रक्षा की याचना करते हैं। भीम घटोत्कच से कहते हैं कि इस ब्राह्मण परिवार रूपी चन्द्र के लिए तुम क्यों राहु बने हो? ब्राह्मण अवध्य हैं अतः इन्हें छोड़ दो। वह कहता है कि माझात् पिता भी यदि थाकर कहे कि 'छोड़ दो' तो भी नहीं छोड़ूँगा क्योंकि मैं अपनी माता की आज्ञा से इसे ले जा रहा हूँ। भीम उनकी माता का नाम पूछते हैं और उससे 'हिडिम्बा' नाम सुनकर पुत्र

की मातृभक्ति पर प्रसन्न होते हैं। भीम मध्यम पुत्र को रोककर उसके स्थान पर स्वयं ही जाने को तैयार हो जाते हैं और घटोत्कच से कहते हैं कि 'यदि तुम्हारे पास ताकत हो जो मुझे जबरदस्ती ले चलो।'

भीम और घटोत्कच के बीच कुस्ती होती है। किन्तु भीम की हार नहीं होती। घटोत्कच उन्हें मायापाश में बांध लेता है, भगवान् शङ्कर से प्राप्त मन्त्र से उससे भी भीम मुक्त हो जाते हैं। अन्ततः घटोत्कच उन्हें पूर्वं शर्त की याद दिलाता है तो वे उसके साथ चलने लगते हैं। अपने निवास स्थान पर पहुँचकर भीम को खड़ा करके वह माता को खुशखबरी देने जाता है। हिडिम्बा जब मनुष्य को देखने आती है तो आश्चर्यचकिन्सी होती है और आर्यपुत्र' कहकर भीम का अभिवादन करती है और घटोत्कच को भी प्रणाम करने को कहती है। घटोत्कच अपने कृत्य पर लज्जित-सा हो जाता है और पिता को प्रणाम करते हुए पूर्वापराध के लिए क्षमा माँगता है। हिडिम्बा भी पारणार्थ मानव के आनयन में मात्र भीम को ही पुनः पाने का आशय भीम से प्रकट करती है। भीम भी पुत्र को गले लगाकर घृतराष्ट्र रूपी वन के लिए दवाग्नि के समान घटोत्कच को प्राप्तकर अत्यन्त प्रसन्न हो उसे पराक्रमी होने का आशीर्वाद देते हैं। घटोत्कच बृद्ध ब्राह्मण को भी प्रणाम करता है। तीनों मिलकर उन ब्राह्मण केशवदास को आगे की यात्रा के लिए आश्रम द्वार तरु छोड़ने जाते हैं और भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

मध्यमव्यायोग की कथा का महाभारतीय परिवेश—भास के द्वारा इन व्यायोग में महामारत की कई घटनाएँ अपने ढङ्ग से जोड़ दी गई हैं। महामारत में हिडिम्ब-वध और हिडिम्बा से भीम का विवाह होना और उसमें घटोत्कच की उत्पत्ति का कथानक है।^१ यद्यपि घटोत्कच द्वारा ब्राह्मण परिवार का पीछा करने की घटना वहाँ नहीं है, किन्तु बकामुर से भीम द्वारा ब्राह्मण परिवार की मुक्ति की कथा अवश्य है।^२

कथानक के अनुसार बक एक नरमत्सी राक्षस था, जो एकचक्रा से दो कोम की दूरी पर यमुना नदी के किनारे वेत्रवन नामक घने जङ्गल की एक गुफा में रहता था। इसका एकचक्रा नगरी तथा वहाँ के जनपद पर शासन

१. महामा० आदि० १५४।

२. महामा० आदि० १ ६-१६३।

चलना था । एकचक्रा नगरी के व्यक्तियों ने अत्यधिक परेशान होकर इसे घर बैठे ही भोजन भिजवा देने के लिए हर व्यक्ति की पारी बाँध दी । अब हर एक दिन इसके भोजन के लिए ३० मन चावल, दो मंस तथा एक व्यक्ति नगर-निवासियों की ओर से भेजा जाने लगा ।^१ एक दिन एक गरीब ब्राह्मण की पारी आयी, जिसके घर लाक्षाग्रह से बच निकलने के बाद कुन्ती के माय पाण्डवों ने निवाम किया था । युधिष्ठिर आदि चार भाई भिक्षा के लिए बाहर गए थे । किन्तु भीम किमी कार्यविशेष के कारण कुन्ती के साथ घर पर ही रह गए । ब्राह्मण के घर में सहमा घड़े जोर का आतनाद होने लगा । कुन्ती ने भीमसेन से कहा—‘निश्चय ही इस ब्राह्मण पर कोई कष्ट आ पडा है अतः इसकी सहायता करनी चाहिए । भीतर जाकर कुन्ती ने ब्राह्मण को परनी, पुत्र और कन्या के साथ नीचे मुँह किए बैठे देखा । सभी विपत्ति से छुटकारा पाने की चिन्ता में मग्न थे । ब्राह्मण के मन में यह चिन्ता थी कि स्वयं को बचाकर राक्षस के लिए कैसे वह अपनी स्त्री को दे दे जिसे वह विवाह करके लाया था अथवा अपने पुत्र या पुत्री को दे दे जो मदा उस पर निर्भर करते हैं । स्त्री स्वयं मरने के लिए उद्यत होती है,^२ और कहती है कि हाँ सख्ता है कि वह स्त्री समझकर मुझे छोड़ दे ।^३ लेकिन इस पर कन्या कहती है कि ‘आप मुझे ही जाने दीजिए, क्योंकि मेरा परित्याग आप धर्मत एक न एक दिन करेंगे ही ।’^४ उसके ऐसा कहने पर तीनों फूट फूट कर जब रोने लगे तो ब्राह्मण का छोटा बालक एक तिनका उठाकर अपनी तीनली धोनी में कहने लगा कि मैं इसीसे उस नरमक्षी राक्षस को मार डालूंगा ।’

अब कुन्ती ने ब्राह्मण से उनका कष्ट पूछा और अन्त में ब्राह्मण के ऊपर आयी हुई विपत्ति को देखकर, कुन्ती द्वारा भीम सब खाने पीने के सामान के साथ राक्षस के निवाम पर पहुँचे । भीम बक के यहाँ पहुँचकर मारे सामान को म्रय खाने लगे । यह देख बक बड़ा क्रोधित हुआ और भीम पर झपटा ।

१ ‘महिषी पुरुषद्वेषको मस्तदादाय गच्छति’ महामा० आदि० १५९.६ ।

२. स कुरुष्व मया कार्यं तारयात्मानमात्मना ।

अनुजानीहि मामायं सुती मे परिपालय ॥ महामा० आदि० १५७.३०

३. ‘अवध्या स्त्रियमित्याहुः’ महामा० १५७.३१

४. ‘त्यक्तव्या मा परित्यज्य आहि सर्वं ममैकया’—महामा० आदि० १५८.३

दोनो मे मल्लयुद्ध आरम्भ हो गया और अन्त मे भीम ने वकासुर का वध करके ब्राह्मण परिवार को मुक्ति दिलाई ।

महाभारत मे घटोत्कच का यज्ञ व ब्राह्मणो का विद्वेषी होना उल्लिखित है^१ । वैसा ही यहाँ भी कथानक मे रक्खा गया । मध्यम पुत्र को माता व पिता द्वारा न चाहा जाना 'ऐतरेय ब्राह्मण' के शुन शेषाख्यान मे ही उल्लिखित है । अत भास ने इस घटना और महाभारत के ब्राह्मण परिवार की भीम द्वारा मुक्ति की घटना को मिलाकर हिडिम्बा के चिर-प्रतीक्षित मिलन की कल्पित कथा को बडे ही कलापूर्ण ढङ्ग से सयोजित कर दिया है । वस्तुतः 'हिडिम्ब-वध-पूर्व' मे घटोत्कच की उत्पत्ति के बाद भीम से हिडिम्बा का पुन मिलना कही भी महाभारत मे आगे उल्लिखित नहीं है । महाभारत मे, क्योंकि राक्षसियो को गर्भधारण करते ही सन्तान पैदा हो जाती है,^२ अत घटोत्कच ने उमी समय उत्पन्न होकर माता-पिता दोनो को प्रणाम किया । यह भास को ठीक नहीं लगा । अत मानव की सन्तान होने के कारण उसे उन्होने बडी कुशलता के साथ अप्रत्याशित ढङ्ग से मिला दिया है । वस्तुत यह भास की अपनी उद्भावना है जो व्यायोग को और भी रोचक बना देती है । पुत्र के विरुद्ध पिता का मल्लयुद्ध भास की अपनी उद्भावना है जिससे वह यह दिखाना चाहते हैं कि भीम के ही समान अब घृतराष्ट्र रूपी-वन के लिए दवाग्नि स्वरूप उनका पुत्र तैयार हो गया है । और उसे भीम भी अत्यन्त बली व पराक्रमी होने का आशीर्वाद देते हैं जब कि महाभारत मे घटोत्कच के अभिवादन का कोई उत्तर नहीं दिया गया है । इस प्रकार हिडिम्बा और घटोत्कच दोनो को ही भास ने महाभारतीय स्वरूप से अलग मानवीय रूप प्रदान किया है । यह भीम की—'माता मनुष्यो के देवो की देव है'—इस उक्ति से परिलक्षित है, और फिर वह यहाँ मनुष्य को खाना भी नहीं चाहती ।^३

१ महाभा० द्रोण० १८१.२६-२७ ।

२ महाभा० आदि० १५४ ३६ ।

३ 'अय स घातंराष्ट्रवनदवाग्नि' । म० व्या० पृ० ६६

४. 'माता किल मनुष्याणाम्' म० व्या० ३७ ।

शुन.शेष की कथा में परिवर्तन—ऐतरेय ब्राह्मण में शुन शेष माता-पिता के द्वारा अपनी इच्छा से स्वयं ही बेच दिया जाता है । किन्तु यहाँ मध्यम पुत्र को जाना ही पड रहा है जो निश्चय ही महामारत के वकामुर की कथा पर आपत है । ऐतरेय ब्राह्मण में अजीमर्त का परिवार के प्रति सम्पूर्ण व्यवहार अमानवीय-सा है जिसे मास ने एकदम बदल दिया है । शुन शेष की मुक्ति वरुण द्वारा प्रार्थना से होती है किन्तु यहाँ भीम द्वारा मुक्ति दिलाना वकामुर की कथा का ही महामारतीय रूपान्तर है ।

नाटक का प्रकार और मध्यम व्यायोग—प्रस्तुत नाटक एक 'व्यायोग' है । व्यायोग की परिभाषा^१ के अनुसार व्यायोग के मुख्य तत्त्व निम्न हैं—
 (१) इसमें इतिवृत्त इतिहास प्रसिद्ध होता है, (२) नायक इतिहास प्रसिद्ध और दिव्य होता है, (३) इसमें स्त्रीपात्र बहुत कम होते हैं और पुरुष पात्र अधिक होते हैं जैसा कि इस शब्द की व्युत्पत्ति से भी ज्ञात होता है—'क्योकि इसमें बहुत से पुरुष व्यायुक्त अर्थात् लगे रहते हैं अतः इसे 'व्यायोग' कहते हैं ।^२
 (४) इसमें मुख्य रस वीर होता है और [शृङ्गार और हास्य को छोड़कर] अन्य पाँच रस अङ्ग होते हैं । (५) इसमें मुख्य रूप में कुस्ती अथवा मघपं व युद्ध होता है, (६) किन्तु यह युद्ध स्त्री के निमित्त नहीं होता ।^३ (७) यह मात्र एक अङ्क का ही होता है और (८) इसमें एक दिन का ही वृत्तान्त होता है ।

१. व्यायोगस्तु विधिर्ज्ञः कार्यं प्रख्यातनायकगरीरः ।
 अल्पस्त्रीजनयुक्तस्त्वेकादशकृतस्तथा चैव ॥

बहवश्च तत्र पुरुषा व्यायच्छन्ते यथा समवचारे ।
 न तु तदप्रमाणयुक्तं कार्यंस्त्वेकाङ्क एवायम् ॥
 न च दिव्यनायकवृत्तं कार्यो राजपिनायकनिबद्धः ।

युद्धनिगुद्धाघर्षणसंघर्षवृत्तश्च वक्तव्यः ॥
 एवविधस्तु कार्यो व्यायोगो दीप्तकाव्यरमयोनि ॥

—भरत, हेमचन्द्र के द्वारा काव्यानुशासन में उद्धृत और व्याख्यात,
 पृ० ३८७ गु० दश० ३. ६०-६२ ।

२ व्यायुज्यन्तेऽस्मिन् बहवः पुरुषा इति व्यायोगः । दश० ३.६० पर धनिक ।

३. 'अस्त्रीनिमित्तसंग्रामो'—दश० ३.६१

प्रस्तुत नाटक उपर्युक्त सभी मुख्य तत्वों को लेकर ही गठित है। नायक भीम महाभारत की कथा के इतिहास-प्रसिद्ध पात्र हैं। इसमें मात्र दो ही स्त्री पात्र हैं, ब्राह्मणी और हिडिम्बा और इनका अभिनय में भी विशेष योगदान नहीं है। नाटक का मुख्य इतिवृत्त भीम और घटोत्कच के बाहु-युद्ध के मध्य ही निहित है। यह एक अङ्क का नाटक है, और मात्र एक दिन प्रातःकाल के दो-चार घण्टों की कथा ही इसमें वर्णित है। इस प्रकार नाटक के प्रकार व्यायोग की परिभाषा इस एकाङ्की पर पूर्णरूपेण घट जाती है।

‘मध्यमव्यायोग’ नाम का कारण—इस नाटक का शीर्षक अत्यन्त उपयुक्त और अर्थगमित है। यह शीर्षक निम्न बातों का अभिव्यञ्जक है—

१. ‘मध्यम’ शब्द पाण्डवों में मध्यम-पाण्डव भीम के लिए प्रयुक्त है, और
२. ‘व्यायोग’ शब्द रूपक के एक प्रकार के लिए पारिभाषिक शब्द के रूप में प्रयुक्त है। पुमालकर के अनुसार वस्तुतः (i) ‘मध्यम’ शब्द ‘भीम’ और उस ‘मध्यम ब्राह्मण बालक’ का बोधक है जिसे भीम घटोत्कच से मुक्ति दिलाते हैं और ‘व्यायोग’ शब्द नाटक के प्रकार की संज्ञा है। दूसरी व्युत्पत्ति से उनके अनुसार (ii) मध्यम पाण्डव भीम का हिडिम्बा से विशेष रूप से संयोग होना ही मध्यमव्यायोग नाम का कारण है।^१ इस प्रकार इस रूपक के शीर्षक की व्युत्पत्तियाँ और भी हो सकती हैं, जैसे—(i) मध्यम भीम कुन्ती-तनयत्वावच्छिन्नपाण्डवेषु तस्यैव मध्यमत्वात् । मध्यमम् उद्दिश्य कृत व्यायोगः मध्यम-प्रायोगः । (ii) मध्यमस्य भीमस्य व्यायोग, व्यायुज्यते इति व्यायोग —मध्यमव्यायोगः । (iii) मध्यमस्य ब्राह्मणपुत्रस्य व्यायुक्तिनिमित्तकः मध्यमस्य भीमस्य व्यायोग, युद्धनियुद्धरर हिडिम्बायोगावसानश्च, तम् उद्दिश्य कृत मध्यः ।

वस्तुतः सम्पूर्ण व्यायोग की कथा ‘मध्यम’ अर्थात् मध्यम पाण्डव भीम और मध्यम-ब्राह्मणकुमार के ही चारों ओर केन्द्रित होने के कारण ही इस नाटक का नाम ‘मध्यमव्यायोग’ है, जो अत्यन्त उपयुक्त और सारगमित है।

१ (i) मध्यममधिकृत्य कृतो व्यायोगसंज्ञो नाटकप्रकारः ; (ii) मध्यम- (भीम)स्य (हिडिम्बा सह) व्यायोग (वि + आ + योग = विशेषण संयोग), (iii) मध्यमो (भीमो ब्राह्मणकुमारश्च व्यायुज्यते अस्मिन् इति नाटकम् । ए. डी. पुमालकर, मास-ए स्टडी, पृ० २०४ ।

मध्यमव्यायोग में रस और अलङ्कार—इस व्यायोग में मुख्य रस 'वीर' है और अन्य रस भी इसे ही पुष्ट करने में प्रयुक्त हैं। ब्राह्मण और घटोत्कच की मुलाकात में भयानक रस है। ब्राह्मण परिवार के प्रत्येक व्यक्ति का अपना जीवन दे देने का प्रस्ताव करण रस प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार घटोत्कच के साथ भीम की भिडन्त में रौद्र और हास्य तथा उन दोनों के द्वारा माया-नाश का प्रयोग और उसमें छुटकारा पाना अद्भुत रस प्रकट करता है।

मम्पूर्ण नाटक में उपमा और रूपक का ही मुख्य रूप से प्रयोग किया गया है। घटोत्कच के स्वरूप का वर्णन करते हुए ब्राह्मण-परिवार की मयान्वित अवस्था का चित्रण उपमा और रूपक के माध्यम से बहुत सुन्दर प्रस्तुत किया गया है, जैसे—

(i) घटोत्कच के द्वारा ब्राह्मण परिवार का पीछा उसी तरह किया जा रहा है जैसे बत्स के सहित गाय का पीछा मिह करता है—

भ्रान्तं सुतैः परिवृतस्तरुणैः सदारो वृद्धो द्विजो निशिचरानुचरः स एषः ।
व्यात्रानुमारचकितो वृषभः सधेनुः सन्त्रस्तवत्सक इव कुलतामुपैति ॥

(ii) स्त्री-पुत्रों की रक्षा में असमर्थ घटोत्कच के नय से विनष्ट घँयवाला मयमोत ब्राह्मण उसी प्रकार जा रहा है जैसे गरुड के पक्ष के अग्रभाग से उठी हुई वायु से प्रचण्ड प्रोघाग्नि वाला उत्तेजित मयत्वीक तथा दीन सर्प जाता है। किं यामि मद्भयविनाशितघँयंसारो वित्रस्तदारसुतरक्षणहीनशक्ते ।
तादर्यप्रपक्षपवनोद्धतरोपवह्नितीव्रकलत्रसहितो भुजगो यथार्तः ॥ ८ ॥
इसी प्रकार प्रस्तुत नाटक के इन श्लोकों में हमें उपमा देखने को मिलती है—

१, ३, ४, ५, ८, २४, २६, २७, ३२, ३८, ४६, ४७ और ४८ आदि।

रूपक के माध्यम से माम ने घटोत्कच का बहुत सुन्दर चित्र-सा खींच दिया है, जैसे—'यह गिरिराजों के लिए वज्रपात-सा, सभी पक्षियों के लिए बाज-सा और मृगसमूह के लिए सिंह-सा मानव शरीर धारण कर साक्षात् मानो यमराज ही आ गये हो—

वज्रपातोऽचलेन्द्राणां श्येनः सर्वपतत्रिणाम् ।

मृगेन्द्रो मृगसङ्घानां मृत्युः पुरुषविग्रहः ॥ ७ ॥

इसी प्रकार आगे भी इन श्लोकों में रूपक प्रस्तुत किया गया है—७, १५,

२३, ३३ और ४२।

इसी प्रकार ६, ३०, ३१, ३३ श्लोक में उत्प्रेक्षा, ४४ में दृष्टान्त, २० श्लोक में वर्णान्तरन्यास, १० में काव्यलिङ्ग आदि अलङ्कारों का प्रयोग हुआ है।

प्रस्तुत व्यायोग में अनुप्रास तो स्वामाविक-सा प्रतीत होता है, जैसे— १, ३, ६, २४, २५, २६, ३२ और ३८ में प्रयुक्त है।

मध्यम व्यायोग में भास की काव्यकला—प्रस्तुत नाटक में रस और अलङ्कार का प्रयोग जितनी सफलता के साथ किया गया है वैसे ही भाषा में काव्यात्मक लाने के लिए एक ही शब्द का या उपसर्ग का प्रयोग भी बार-बार एक ही स्थान पर किया गया है। जैसे—२९ वें और ३०वें श्लोक में मध्यम शब्द का आठ बार प्रयोग करके कवि ने बड़ा ही चमत्कार प्रस्तुत किया है। एक ही शब्द की पुनरुक्ति कवि की अपनी कला है, जिसे उन्होंने अन्य स्थल में भी किया है जैसे २२वें श्लोक में 'परिष्वज' का प्रयोग और ५२वें श्लोक में 'प्रभव' का प्रयोग।

नाटक का उद्देश्य—हिडिम्बा ने घटोत्कच को जो पारणार्थ किसी मनुष्य को लाने के लिए कहा था उसका मात्र उद्देश्य यही था कि उससे भोग का पुनर्मिलन हो। वह जाति से राक्षसी थी। अपने आचारों में वह मानव ही थी। जैसा कि कवि ने भोग की इस उक्ति से 'जात्या राक्षसी न समुदाचारेण' प्रकट किया है। यही मत म० म० टी० गणपति शास्त्री का भी है, जैसा कि 'मध्यमव्यायोग' की संस्कृत टीका में उन्होंने बड़े विस्तृत रूप में इसे प्रदर्शित भी किया है—'मानुषानयनतात्पर्यं रहस्यस्य स्वप्नमात्रश्रवणीयत्व-तन्वमाना स्वमर्तुं कर्णे तत्रिवेदपति-कर्णे इत्यादि। ईशमिव स्वप्नद्वी वाक्य-भूषणम्। ईश्वर फलरहस्यमित्यर्थः। तच्च पूर्वोत्तरार्थपर्यालोचनयोन्नेन शक्य-मिति ग्रन्थे न निबद्धम्। तद् उत्तरवाग्ने विगदयाम। तदनिगाररहस्यश्रवणेन परितुष्ट आह जात्येति। जात्या जन्मता राक्षसी, अर्थात् वन् नमुदाचारेण न, राक्षसी न भवति। अयमाशयः स्वमर्तुंसमागम इति वृत्तः।'

अन्य बातों से भी नाटक का यही प्रयोजन हमें प्राप्त होता है जैसे—हिडिम्बा ने कहा था कि इसी वन से मनुष्य खोजकर लाओ।^१ फिर जब ब्राह्मणी ने

१ हिडिम्बायात्मकारितस्य मानुषग्रहणस्य भीमनेनसमागम एवानन्यथा सिद्ध प्रयोजनमभिनहितम्। म० व्या०, उपोद्घात पृ० २।

२. अस्मिन् वनप्रदेशे कश्चिन्मानुष परिमृग्यानेतव्य इति म० व्या० पृ० १९।

ही अपना शरीर देना चाहा तो घटोत्कच ने यही कहा कि मेरी माँ को स्त्री नहीं चाहिए ।^१ इसके बाद वृद्ध ने जब अपना शरीर देना चाहा तो भी उसने यही कहा कि 'अरे वृद्ध तुम अलग हटो ।' घटोत्कच द्वारा चिरामिलपितः शब्द के प्रयोग से भी यही प्रतीत होता है कि हिडिम्बा को बहुत दिन से भीम से मिलने की अभिनाया थी । इस प्रकार नाटक का मुख्य प्रयोजन भीम का हिडिम्बा से पुनर्मिलन है ।

चरित्र चित्रण—

भीम अपने नाटको में पात्रों का बड़ा ही सजीव चित्र उपस्थित करते हैं । इसी से प्रभावित होकर वाणभट्ट ने उनके नाटको को 'चरित्रप्रधान' कहा है— 'सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्वहभूमिकै ।' प्रस्तुत नाटक में छ पुष्पः पात्र हैं और दो स्त्री पात्र हैं । इनमें से कुछ के चरित्र-चित्रण के सम्बन्ध में विचार किया जा रहा है—

भीम—प्रस्तुत व्यायोग के नायक भीम महाभारत के भीम के ही समान अतुलनीय शक्ति वाले चित्रित किये गये हैं । खुले मैदान में वे नित्य व्यायाम करने वाले हैं । घटोत्कच जो स्वयं इतना बलवान् है कह उठता है कि 'अरे यह तो दर्शनीय पुरुष है ।' इसकी आकृति मिह के समान है ताड के वृक्ष के समान लम्बे हाथ हैं ।^२

भीम धीरोद्धत नायक हैं । वह बहुत गर्विले और गर्म स्वभाव के होकर भी ब्राह्मण के प्रति दयावान् हैं । उनका पुत्रवात्सल्य अत्यन्त स्नेहिल है । घटोत्कच का बाल-स्वभाव देखकर उन्हें सुमद्रा-पुन अभिमन्यु का स्मरण हो आता है ।^३

भीम मध्यम पाण्डव हैं । उन्होंने अत्यन्त गर्व के साथ अपने को आठ वस्तुओं में मध्यम बतलाया ।^४ भीम के मन में ब्राह्मणों का बड़ा सम्मान दृष्टि-गोचर होता है । ब्राह्मण को कष्ट में देख वे तुरन्त उन्हें छोड़ देने के लिए कहते हैं ।

१ न खलु स्त्रीजनोऽभिमतस्तत्रभवत्या । म० व्या० पृ० २३ ।

२ अहो दर्शनीयोऽयं पुरुष । य एष सिंहाकृतिः कनकतावसमानवाहू'—
म० व्या० २७ श्लो० ।

३. दृष्ट्वंतद् बालशीण्डीर्यं मौभद्रस्य स्मराम्यहम् ॥ ३५ श्लोक

४. "मध्यमोऽहमवघ्यानाम्" " म० व्या० २८ श्लोक ।

भीम का चरित्र एक वीर के रूप में चित्रित है। वह केवल बाहु की महायता से ही बिना अस्त्र घातक के युद्ध करते हैं। उन्हें दिव्य शक्ति भी प्राप्त है। वे महेश्वर द्वारा प्राप्त शक्ति से मायापाश से अपने को छुड़ा लेते हैं। यह सब कुछ होकर भी उन्हें सत्य के प्रति आस्था है, जैसा कि घटोत्कच ने जब कहा कि 'अपने पूर्व कथन का स्मरण करो'—तब तुरन्त ही वे उसके पीछे चल पड़ते हैं।

मास ने भीम को प्रेमी पति और पुत्र स्नेही पिता के रूप में चित्रित किया है। बहुत दिनों बाद हिडिम्बा से मिलकर उनकी 'अस्माक भ्रष्टराज्याना' आदि उक्ति के द्वारा प्रसन्नता ही प्रकट होती है। हिडिम्बा कृत पूर्व उपकारों के प्रति वे अत्यन्त कृतज्ञ होते हैं।^१ पुत्र के प्रति उनका स्नेह हमें तब प्रकट होता है, जब वे कहते हैं—'पुत्रापेक्षीणि पितृहृदयानि'।^२, इस प्रकार मध्यम पाण्डव भीम का व्यक्तित्व सर्वातिशायी बन पड़ा है। इस प्रकार वे ब्राह्मणों के अभयदाता, निर्भीक एवं स्वाभिमानी क्षत्रिय योद्धा के रूप में चित्रित किये गये हैं।

घटोत्कच—भीम के बाद प्रस्तुत नाटक में घटोत्कच की ही मुख्य भूमिका है। वह एक राक्षस होकर भी अत्यन्त मातृभक्त है। अपनी माता की आज्ञा का पालन करने के लिए अपने पिता की आज्ञा का भी उल्लंघन कर सकता है। ब्राह्मण को छोड़ देने के लिए जब भीम कहते हैं तो वह कहता है कि यदि मेरे पिता भी आकर कहें कि इसे छोड़ दो तो भी इसे मैं नहीं छोड़ूंगा; क्योंकि इसे हमने अपनी माता की आज्ञा से पकड़ा है। राक्षसी हिडिम्बा से उत्पन्न होकर घटोत्कच को उत्तराधिकार में साहम और अतुल बल प्राप्त हुआ है। पाण्डवों के मध्य उसे मानव रूप में चित्रित किया गया है। उसे देवी अस्त्र भी प्राप्त है। बाहु युद्ध में जब वह भीम से हार जाता है तब माता से प्राप्त मायापाश का प्रयोग करता है। उसके आकृति की प्रशंसा भीम भी करते हैं।^३ उसका मुख सिंह के समान है। उसकी आँखें चन्द्र-सूर्य की भाँति तेजस्वी हैं।

१ अये, देवी हिडिम्बा—अस्माकम् भ्रष्ट म० व्या० पृ० ६४।

२ एह्येहि पुत्र, व्यतिक्रमकृत क्षान्तमेव । अयं स घातंराष्ट्रवनदवाग्नि ।
पुत्रापेक्षीणि खलु पितृहृदयानि । पुत्र, अतिबलपराक्रमो भव ।

३ अहो ! दशंनीयोज्य पुरुषः । अयं हि सिंहास्य सिंहादष्ट्रो—म० व्या० पृ० ६६ ।
२६ श्लोक ।

भीम के द्वारा राक्षस होने हुए भी घटोत्कच को मानवीय भूमि पर प्रतिष्ठित किया गया है। उसे मालूम है कि ग्राहण अवध्य होते हैं। किन्तु यह माता की आज्ञा की अवहेलना नहीं कर सकता। उसमें राक्षसी कठोरता नहीं है। शीघ्रता होने पर भी वह ग्राहण यालक को पानी पीने के लिए जाने देता है। घटोत्कच के हृदय में वानोचित चापल्य होकर भी रडता एवं निर्भयता है। अत्यन्त बलवान् भीम को पाकर भी उनसे लड़ जाता है। यह बुद्धिमान् भी है। जब भीम से यह हार जाता है तो उनके पूर्व कथन के द्वारा उन्हें घसने के लिए राजी कर लेता है। घटोत्कच में विनय विद्यमान है। माता के पाम भीम को लेकर जब वह पहुँचता है और माँ की उपस्थिति में जब उसे यह शात होता है कि जिस मनुष्य को वह पकड़ लाया है, वह उमका पिता ही है, तो उसे अपने कृत्य पर बड़ी लज्जा आती है और वह अपने पिता भीम से क्षमा याचना करता है।^१

हिडिम्बा—भीमसेन की स्त्री राक्षसी हिडिम्बा को अत्यन्त बुद्धिमत्ती और चतुर स्त्री के रूप में चित्रित किया गया है। वस्तुतः वह जाति से राक्षसी है, अपने कर्मों से नहीं^२। जब उमके पति भीम के द्वारा वस्तुस्थिति के बारे में पूछा गया तो उसने अपने प्रिय से मिलने की इसे एक युक्ति ही बतलाया। यह बात उसके द्वारा भीम के कान में फही गई उक्ति (ईशमिव) से भासित होता है। कुछ भी हो, किन्तु भीम उसके उत्तर में आश्चर्य होकर यही कहते हैं कि तुम तो जात्या राक्षसी जरूर हो किन्तु कर्मणा तो नहीं। वस्तुतः अपने पति के प्रति उमका प्रेम इतना अधिक है कि वह उसे सुलाने के लिए कोई भी युक्ति अपना सकती है। भीम को वह अपने देवता के रूप में देखती है। घटोत्कच द्वारा लाए हुए भीम को वह जब देखती है तो घटोत्कच से यही कहती है कि ये मेरे और तुम्हारे देवता हैं।^३ अतः स्वयं भी उनका अभिवादन करती है और पुत्र में भी अभिवादन करने को कहती है।

‘दीपावली’ १९७९

संस्कृत-पालि विभाग, का० हि० त्रि० वि०
वाराणसी

—मुद्यान्तर मालश्रीम

१ पुत्रचापल्य क्षन्तुमर्हसि । म० व्या० पृ० ६५ ।

२ जात्या राक्षसी न समुदाचारेण । म० व्या० पृ० ६५ ।

३. ‘उन्मत्तक, देवन सन्वय ।.....तव ज, गम ज ।.....’

अभिवादन पितरम्—म० व्या० पृ० ६५ ।

पात्राणि

पुरुषाः—

वृद्ध —ब्राह्मण केशवदासनामा ।

प्रथम —वृद्धस्य ज्येष्ठ पुत्रः ।

द्वितीय —वृद्धस्य द्वितीय पुत्रो मध्यमनामा ।

तृतीय —वृद्धस्य कनिष्ठ पुत्र ।

घटोत्कच —राक्षसो हिडिम्बा भीमसेनयोः सन्तु ।

भीमसेन —मध्यम कुन्तीपुत्र ।

स्त्रियः—

ब्राह्मणी—वृद्धस्य भार्या ।

हिडिम्बा—राक्षसी भीमसेनस्य पत्नी ।

॥ श्रीः ॥

मध्यमव्यायोगः

ज्योत्स्ना-सरला-संस्कृत-हिन्दी-व्याख्योपेतः

प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः)

ज्योत्स्ना

यत्कृपालवमानेण प्रपूयन्ते मगोरपा ।

वाग्देवी विघ्नराजं च तौ कन्देऽहं पुनः पुनः ॥ १ ॥

मिश्रा गुरुवरा पद्मा नीमि ज्ञानप्रदायिनीम् ।

यस्याः सवित् मुधाम्मोषेः शीकरोऽपि रक्षाण्यः ॥ २ ॥

श्रीमासकूनकस्तोमे नानारससमाधने ।

ध्यात्वा मध्यमपूर्वस्य ध्यायोगस्य विरच्यते ॥ ३ ॥

टीकानभिनवां रम्यां 'ज्योत्स्नां' च 'सरलां' तया ।

करोति स्पष्टबोधार्थं मालवीयः सुधाकरः ॥ ४ ॥

कविकुलमूर्धन्यः कविताकामिनीहासो महाकविभासो मध्यमव्यायोगामिधाने रूपके निविघ्नपरिममात्सुभिकायाः पूर्वरङ्गप्रधानाङ्गायाः नान्द्याः समगन्तरे सूत्रधारस्य प्रवेशं सूचयति—नान्द्यन्त इत्यादिना । नान्द्यन्ते नन्दिरानन्दः; तस्या इयं नान्दी नाम नाटकप्रयोगारम्भे देवतापरिपदानन्दार्थमभिनयप्रारम्भसूचनार्थं च सम्पाद्यमाना यादित्र त्रिव्योच्यते^१ । तस्या नान्द्या अन्ते अवसाने नान्दीसमाप्त-नानन्तरमित्यर्थः । ततः तदनन्तरं गीतादित्रियापरिसमाप्तव्यवहितोत्तरकाले

[नान्दीपाठ के अन्त में सूत्रधार का प्रवेश]

१. नान्दीलक्षणं यथा—आशीर्वाचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।

देवद्विजगुणादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥

सूत्रधारः—

पायात् स षोऽसुरवधूहृदयावसादः

पादो हरेः कुवलयामलखड्गनीलः ।

यः प्रोद्यतस्त्रिभुवनक्रमणे^१ रराज

वैदूर्यसङ्क्रम^२ इवाम्बरसागरस्य ॥ १ ॥

इत्यर्थ । सूत्रधार—सूत्र प्रयोगानुष्ठान धारयति निर्वाहयतीति सूत्रधार ।^३
प्रविशति रङ्गम् ।

प्रवेशानन्तर सर्वकार्यकारित्वात् नाट्यस्य प्रधानभूतः सूत्रधार आशीर्वादि-
पुर सर मङ्गलमातनोति पायादिति । असुरवधूहृदयावसाद = असुरवधूनाम्
असुरस्त्रीणां हृदयस्य अवसाद दुःखकर, विषात्प्रदो वा, तदमर्तुविध्वसनेन ।
कुवलयामलखड्गनील = कुवलयामल नीलोत्पलविशुद्ध खड्गनील असि-
च्छयामश्च, कुवलय नीलोत्पलम् अमलखड्गो मत्तापेतोऽसि तदनील इति वा ।
हरे = वामनरूपेणावतीर्णस्य, स प्रसिद्ध पाद = चरण व = युष्मान् रङ्गस्थान्,
पायात् = रक्षेत् । प्रकृतरूपकप्रयोगप्रेक्षणरूपामीष्टमिद्वधा योजयेदित्यर्थ । तच्छब्देन
निदिष्टस्य पादस्य विशेषमाह—य = पाद । त्रिभुवनक्रमणे = लोकत्रयमाने,
महाबल्याख्यासुरस्य निग्रहार्थं क्रियमाणे सकलभुवनमाने—इत्यर्थ । प्रोद्यत =
ऊर्ध्वलोकमानार्थं प्रकर्षणोत्क्षिप्त धनु । अम्बरसागरस्य = गगनरूपस्य समुद्रस्य ।
वैदूर्यसङ्क्रम इव = वैदूर्येण स्वच्छनीलवर्णयुतेन मणिविशेषेण निर्मित सङ्क्रम
सेतु इव । 'सङ्क्रमो दुर्गसञ्चर' इत्यमर' । रराज = शिशुमे । अत्र 'कुवलयाम-

सरला

सूत्रधार—भगवान् विष्णु [का वामन अवतार] का वह चरण आप
की रक्षा करे, जो असुरों की पत्नियों के हृदय में विषाद उत्पन्न करने वाला,
नीले कमल के समान निर्मल तथा वृषाण के समान श्याम वर्ण एव तीनों
लोकों को नापने के लिए प्रकृष्ट रूप से उठाया गया [जो चरण] आकाश रूपी
समुद्र में वैदूर्यमणि से निर्मित सेतु के समान सुशोभित हुआ ॥ १ ॥

१ भुवनक्रमणे—इति वा पाठ ।

२ वैदूर्य—इति वा पाठ ।

३ तल्लक्षण मया—नाट्यस्य यदनुष्ठानं तत् सूत्र स्यात् सवीजकम् ।

रङ्गदेवतपूजाकृत सूत्रधार उदीरित । ना० शा०

एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि । अये किन्तु खलु मयि विज्ञापन-
व्यप्रे शब्द इव श्रुयते । अङ्ग ! पश्यामि ।

सखङ्गनील.' इति लुप्तोपमा, अम्बरसागरस्य [अम्बरमेव सागरः] इति रूपकम्,
तथा वैदूर्यसंक्रम इवेत्युत्प्रेक्षा अलङ्काराः । वसन्ततिलकावृत्तमिदम् । तल्लक्षणं
तु—'जेवा वसन्ततिलका तनजा जगौ ग.' ॥ १ ॥

अन्वय—हरे. स. पादः वः पायात् य' असुरवधूना हृदयाश्वसादः, कुवल-
यामलखङ्गनील', त्रिभुवनक्रमणे प्रोद्यत अम्बरसागरस्य वैदूर्यसंक्रम इव रराज ।

पदार्थ—हरे =मगवान् विष्णु का [वामनावतार काला], स.=वह प्रसिद्ध,
पाद.=पंर, व =आप [सहृदय सामाजिक] लोगो की, पायात् =रक्षा करे;
य.=जो, असुरवधूना=दैत्यराज [बलि] की परित्यो के, हृदयाश्वसाद'=हृदय
मे व्यासद पैदा करने वाला, कुवलय-अमल-खड्ग नील.=नीले कमल के समान
निर्मल तथा कृपाण के समान श्यामल; त्रिभुवनक्रमणे=तीनों लोकों को माफने
के लिए; प्रोद्यत'=प्रकृष्ट रूप से उठाया गया, अम्बरसागरस्य=आकाशरूपीममुद्र
के, वैदूर्य-संक्रम इव =वैदूर्यमणि से निर्मित सेतु के समान; रराज =शोभित हो
रहा है ॥ १ ॥

एवमाशिपामिमुखीकृत्य सामाजिकान् नाटकस्य कथावस्त्वश विज्ञापयति—
एवमित्यादिना । एवम् =अनेन वक्ष्यमाणेन प्रकारेण । आर्यमिश्रान् =आर्याः
सम्या मिथाः पूज्याः, आर्याश्च मिथाश्च आर्यमिथास्तान् । 'मिथश्च' शब्दश्च
आदरार्थक । पूज्या माननीया इत्यर्थं । यद्यपि आर्यशब्देनैव भावोऽप्य व्यज्यते
तथापि 'द्वौ नमो प्रकृतार्थं द्रढयत.' इतिवत् आर्यमिथशब्दौ सम्यक् आदरातिशय
द्योतयत । विज्ञापयामि=सूचयामि । अये इत्यव्ययमाश्रयं विपादे वा । अये
इति विज्ञापनाभङ्गेनोत्पन्नं विपादम् । अकस्माच्छब्दध्वनेन सजातमाश्रयं वा
द्योतयति । किन्तु खलु=तु इति वितर्कं, कि कारणम् । मयि विज्ञापनव्यप्रे-
विज्ञापनभ्यासक्तचित्ते विज्ञाप्यबोधनार्थमुद्यते । 'व्यप्रे व्यासक्त आकुले' इत्य-
मर । 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' पा० सू० २ ३ ३७ इति भावे सप्तमी ।

इन प्रकार मैं आप महातुमार्यों को सूचित करता हूँ । अरे, सूचना देने
मे व्यस्त मुझको यह कैसा शब्द-सा सुनाई दे रहा है । अच्छा देखूँ तो ।

(नेपथ्ये)

भोस्तात ! को नु खल्वेपः ।

सूत्रधार.—भवतु, विज्ञातम् ।

भोः शब्दोच्चारणादस्य ब्राह्मणोऽयं न संशय ।

त्रास्यते निर्विशङ्केन केनचित् पापचेतसा ॥ २ ॥

शब्द इव = अनिश्रितरूप शब्द, इवपदस्थानिध्वयार्थत्वात् नेपथ्यगतशब्दस्यास्फुटत्वाच्च । श्रूयते = कर्णगोचरी भवति । 'अङ्ग' इति सम्बोधने सम्भ्रमे वा । 'स्यु पाट्प्याङ्ङ् हेहेभो' इत्यमरः । तच्च सामाजिकविषयम् । पश्यामि = 'कुतोऽयं किमर्थंश्च शब्दोऽयम्' इति परीक्ष्य ज्ञास्यामि । नेपथ्यम् = जवनिकान्त-भार्गो नटप्रसाधनस्थलं वा 'कुशीतवकुटुम्बस्य स्थल नेपथ्यमुच्यते' इत्युक्तलक्षणत्वात् । शब्दस्याकारमाह—भोस्तातेति । भोः = इति विपादे । हे तात ! = पित ; एप = सन्निकृष्टो विपादोत्पादक पुरुषः । भवतु विज्ञातम् = शब्दस्य यथार्थस्वरूपं ज्ञात इत्यर्थः । 'कस्य वाऽयं शब्दः, किमर्थं वा प्रयुज्यते' इति सदेह सर्व-धैव निवृत्तः ।

यत्क्षन्तु ज्ञातं तदेव कथयति—भो शब्देत्यादिना । अस्य = भोस्तातेत्यादि वदतः पुरुषस्य । भो शब्दोच्चारणाद् = भो शब्दस्य विपादार्थस्य उद्घोषणात् । विज्ञातम् = नेपथ्ये श्रूयमाणस्य शब्दस्य निमित्तम् । तदेव विवृणोति—अयं ब्राह्मणः = सन्निकृष्टः किन्तु अग्रचरो विप्रः । निर्विशङ्केन = निर्भयेन, पापचेतसा = पापं दुरिताभिनिवेशि चेतो हृदय यस्य तेन तथाभूतेन दुष्कृतात्मनेत्यर्थः । केन-चित् = अज्ञातेन पुंसा, त्रास्यते = भोष्यते । न संशय = नास्त्यत्र सन्देह लेशोऽपि । अनुष्टुप् छन्दः । तल्लक्षणं तु—'श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् । द्वि-चतुष्पादयोर्ह्रस्व सप्तमं दीर्घमन्ययो ॥' इति । अनुष्टुप् छन्दः श्लोकपदेनापि व्यवहियते ॥ २ ॥

(नेपथ्य मे)

हे तात ! यह कौन है ?

सूत्रधार—अच्छा समझ गया ।

इसके 'भोः' इस शब्द के उच्चारण से 'यह ब्राह्मण है'—इसमें कोई सन्देह नहीं है । यह ब्राह्मण किसी निर्भय और दुष्कृतात्मा के द्वारा डराया जा रहा है ॥ २ ॥

(पुनः नेपथ्ये)

भोस्तात ! को नु खल्वेपः ।

सूत्रधारः—हन्त, दृढं विज्ञातम् । एष खलु पाण्डवमध्यमस्या-
त्मजो हिडिम्वारणिसम्भूतो राक्षसाग्निरकृतवैरं ब्राह्मणजनं विना-
सयति । भोः ! कष्टं कष्टं खलु पत्नीसुतपरिवृतस्य वृत्तान्तः !
अत्र हि,

अन्वय—अस्य 'भो', [इति], शब्दोच्चारणात् अयं ब्राह्मण, [इत्यत्र],
न, मशयः । [अयं] केनचित् निविशङ्केन, पापचेतसा, आस्यते ॥ २ ॥ .

पदार्थ—अस्य=इसके, भो. [इति] शब्दोच्चारणात् = 'भो.' इन शब्द
के उच्चारण से, अयम्=यह, ब्राह्मण = ब्राह्मण है, [इत्यत्र] न मशयः.=इस
विषय में कोई सन्देह नहीं है । [अयम् = यह ब्राह्मण] केनचित् निविशङ्केन=
किमी निर्भय, पापचेतना = और दुष्कृतात्मा के द्वारा, आस्यते = भयभीत कराया
जा रहा है ॥ २ ॥

शब्दस्य कारणं ज्ञात्वा सूत्रधार तद्विषय विवृणोति—हन्तेत्यादिना । हन्तेति
विषादे । दृढम्=सम्यक् । विज्ञातम्=शब्दनिमित्तम् अवगतमित्यर्थः । एष खल्वि-
त्यादिवाक्येन विशेषाकारविवरणम् । पाण्डवमध्यमस्य=पाण्डवेषु पञ्चमु मध्यमस्य
भीमसेनस्य । यद्यपि भीमार्जुनकुलास्त्रयोऽपि मध्यमा, तथापि तेषु प्रायम्याद
भीमसेन इह मध्यमो गृह्यते । हिडिम्वारणिसम्भूतः=हिडिम्बा तदभिग्या
राक्षसी, अरणि तत् स्वरूपाया तस्या सम्भूतः । राक्षसाग्निः=राक्षस एवाग्निः,
संतापकत्वात् । स च घटोत्कच । अकृतवैरम्=अकृतविरोधम्, निरपराधमि-
त्यर्थः । वृत्तान्तः=दशा ॥

(पुनः नेपथ्ये मे)

हे तात ! यह कौन है ?

सूत्रधार—ओह ! वस्तुतः अब मैं समझ गया । निश्चय ही यह पाण्डवों के
मध्यम [भीम] का पुत्र, हिडिम्बा रूपी अरणि से निकला हुआ अग्नि रूप
राक्षस [घटोत्कच] है जो ऐसे ब्राह्मण जन को सत्रस्त कर रहा है जिन्होंने
उससे कभी भी द्वेष नहीं किया । ओह ! कष्ट है, स्त्री एवं बच्चों से घिरे हुए
इस दीन ब्राह्मण के हृत् पर अत्यन्त कष्ट है । क्योंकि यहाँ—

१. कष्ट...वृत्तान्त —वचनित् पुस्तके नास्ति ।

१ श्रान्तैः सुतैः परिवृतस्तरुणैः सदारो^२

वृद्धो द्विजो निशिचरानुचरः स^३ एष ।

४ व्याघ्रानुसारचकितो वृषभ सधेनु

सन्त्रस्तवत्सक

इवाकुलतामुपैति ॥ ३ ॥

श्रान्तैरिति । श्रान्तै = वनाध्यम आरक्षितं । तरुणं = युवम्, सुतै = तनयै, परिवृत, सदार = सकलत्र, वृद्ध = स्वविर, निशिचरानुचर = निशिचरो राक्षस अनुचर अनुगन्ता यस्य स, तथाभूत स एष द्विज = ब्राह्मण । व्याघ्रानुसारचकित = व्याघ्र हिंस्रपशुविशेष, तस्यानुसरणेन अनुगमनेन चकित त्रस्त । सधेनु. = धेनुर्नवप्रसूता गौ तथा सहित । सन्त्र-स्तवत्सक = सम्पक् त्रस्त भीत वत्सको यस्य स । स्वार्थे कन् । वृषभ इव = महोक्ष इव । आकुलताम् = उद्विग्नत्वम्, उपैति = प्राप्नोति । उपमालङ्कार । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ३ ॥

अन्वय—तरुणै, श्रान्तै, सुतै, सदारै, परिवृत, निशिचरानुचर, एष, स, वृद्ध, द्विज सन्त्रस्तवत्सक सधेनु व्याघ्रानुसारचकित, वृषभ, इव, आकुलताम् उपैति ॥ ३ ॥

पदार्थ—तरुणं = युवक, श्रान्तै = थके हुए सुतै = पुत्रों, सदारै = और पत्नी से, परिवृत = घिरे हुए, निशिचरानुचर = राक्षस से अनुगम्यमान, एष स = वह यह, वृद्ध द्विज = बुढ़ा ब्राह्मण, सन्त्रस्तवत्सक = भयभीत छोटे छोटे बछड़ों और सधेनु = गाय से युक्त, व्याघ्रानुसारचकित = चीते के आक्रमण से सम्भ्रान्त, वृषभ इव = बैल के समान, आकुलताम् व्याकुलता को, उपैति = प्राप हो रहा है ॥ ३ ॥

युवक एव डरे हुए पुत्रों और पत्नी स घिरे हुए राक्षस से अनुगम्यमान यह वृद्ध ब्राह्मण भयभीत छोटे बछड़ों और गाय से युक्त व्याघ्र के आक्रमण, से डरे हुए बैल के समान, व्याकुलता को प्राप्त हो रहा है ॥ ३ ॥

१ श्रान्तै—इति वा पाठ । २ सदारै—इति वा पाठ ।

३ सरोप—इति वा पाठ ।

४ अनुसारचकितो, नुसारचकितो इति वा पाठौ ।

(निष्क्रान्तः)

स्यापना

(ततः प्रविशति सुत्रयकतत्रपरिवृतः वृद्धः ब्राह्मणः पृच्छतो घटोत्कचम् ।)

वृद्धः—मोः ! को नु खल्वेषः,

तद्वृणरविकरप्रकीर्णकेशो

निष्क्रान्तः=निर्गतं सूत्रधारः ॥

स्यापनेति । स्यापना=प्रस्तावना आनुवंशं वा । वस्तुनः स्यापनाभिनेन सूत्रधारसहायकेनेदं कर्तव्यम् । कव्यायस्य स्यापनाद् स्यापकः । तेन च स्यापकेन यत्र कथावन्तु बीजं पात्रं वा स्याप्यते सा स्यापना । अत्र च तत्कार्यं सूत्रधारैर्णैव निर्वाहितम् ।

प्रविशतीति । सूत्रधारोद्दिष्टानां पात्राणां प्रवेशः सूच्यते । रङ्गमिति शेषः । घटोत्कचेनानुपातः सुत्रयकतत्रः सत्यस्तः वृद्धः ब्राह्मणः प्रविशति । 'घटोत्कच' इत्यभिधानं महानारते एवं व्याख्यातम्—'घटो हास्योत्कच [ह अत्र उत्कचः] इति माना तं प्रत्यभाषत, अत्रवीर्तेन नामान्य घटोत्कच इति स्मह ॥^१ अर्थात् उत्कचः केसरहितः घटः शिरो यस्य सः घटोत्कचः ॥

तरणेति । तरुणरविकरप्रकीर्णकेशः=तरुणस्य अश्रीडस्य बालत्वेन यावत् । रवेः सूर्यस्य केशाः किरणा इव प्रकीर्णा अस्यतप्रसारिता केशा यस्य सः । भ्रुकुटिपुटोज्ज्वलपिङ्गलायताक्षः=भ्रुकुट्याः य पुटः मञ्जी तेन उज्ज्वले दीप्ते पिङ्गले कपिले आयते दीर्घे च अक्षिणी यस्य सः । सरुणसूत्रः=रुण-

(सद्यः चले जाते ह)

स्यापना ।

..(इसके बाद तीन पुत्र एवं परनी से परिवृत वृद्ध ब्राह्मण प्रवेश करता है । साथ ही पीछे से घटोत्कच भी आ जाता है ।)

वृद्ध (ब्राह्मण)—ओह ! यह कौन है ?

तरुण सूर्य को किरणों की भाँति बिखरे बालों वाला, भ्रुकुटि की भंगी से दीप्त व पीले रंग की आँखों वाला, रुणसूत्र से युक्त, विद्युत् युक्त शेष के

१. ब्राह्मण—इति वा पाठः । २. अरुण० इति वा पाठः ।

३. द्र० महामारतः आदि पर्व १५५.३८ ।

भ्रुकुटिपुटोज्ज्वलपिङ्गलायताक्षः ।
 सतडिदिव घनः सकण्ठसूत्रो
 युगनिघने प्रतिमाकृतिर्हरस्य ॥ ४ ॥
 प्रथम.—भोस्तात ! को नु खल्वेपः ।
 ग्रहयुगलनिभाक्ष पीनधिस्तीर्णवक्षा

सूत्रेण कण्ठघार्येण स्वर्णानरणविशेषेण सहित । सतडिदिव घनः=विद्युत्सहितो मेघ इव स्थितः । श्यामत्वात् मेघसाम्यम् । कण्ठसूत्रस्य हिरण्यमत्वात् तडित्-साम्यम् । युगनिघने=युगसंहारे, प्रवृत्तस्येति शेषः । हरस्य=विश्वसंहरणशील-स्य रुद्रस्य, प्रतिमाकृतिः=प्रतिमाकृतिस्वरूप मीपणत्वात् । एपः=सन्निकृष्टः पुरुष, को नु खलु ? उपमालङ्कार । पुष्पिताग्रा वृत्तम् । तल्लक्षण तु=‘अयुजि न युगरेफतो यकारो युजि च नजी जरगाश्च पुष्पिताग्रा’ ॥ ४ ॥

[ब्राह्मण के द्वारा राक्षस के स्वरूप का चित्रण इस प्रकार प्रस्तुत है—]

अन्वय—तरुण-रवि-कर-प्रकीर्ण-केश, भ्रुकुटिपुटोज्ज्वलपिङ्गलायताक्ष, सकण्ठसूत्र, सतडित्, इव, घन युगनिघने, हरस्य, प्रतिमाकृतिः ॥ ४ ॥

पदार्थ—तरुण =अप्रौढ़, रवि-कर इव=सूर्य की किरणों की भाँति, प्रकीर्णः केशः=विखरे हुए बालों वाला, भ्रुकुटिपुटोज्ज्वलपिङ्गलायताक्षः=

भ्रुकुटि की मझी से उज्ज्वल और कपिल वर्ण के दीर्घ नेत्रों वाले, सकण्ठसूत्रः=

कण्ठसूत्र से युक्त, सतडित् इव घनः=विद्युत् युक्त मेघ के समान स्थित, युग-

निघने=युग के संहार में प्रवृत्त, हरस्य=भगवान् शङ्कर के, प्रतिमाकृति=प्रति-

कृति रूप में (यह पुरुष कौन है) ? ॥ ४ ॥

भीतः तत्सुतोऽपि आत्मप्रतिक्रिया विज्ञापयति ग्रहेत्यादिना । ग्रहयुगल-

निभाक्ष =ग्रहयुगलनिभे औज्ज्वल्याद् युगलयोः सूर्यचन्द्रयो १ तुल्ये नयने यस्य स ।

समान स्थित, युग के संहार में प्रवृत्त भगवान् शङ्कर की प्रतिकृति रूप (यह पुरुष कौन है ?) ॥ ४ ॥

प्रथम (पुत्र)—हे तात । वस्तुतः यह है कौन ? ,
 (सूर्य एव चन्द्र रूप) ग्रह-युगल के समान आँखों वाले, स्थूल एवं विशाल

१. इ० 'नेत्रे चन्द्रदिवाकरो' अग्निपेकनाटके ६३० ।

कनककपिलकेशं^१ पीतकौशेयवासाः ।

तिमिरनिवहपणं पाण्डरोद्भूतदंष्ट्रो

नव इव जलगर्मो लीयमानेन्दुलेखः ॥ ५ ॥

द्वितीय — क एष भो !

पीनविस्तीर्णवक्षाः—पीनं पीवरं विस्तीर्णं च वक्ष उरः यस्य सः । कनक-
कपिलकेश—स्वर्णपिङ्गलकेश, स्वर्णम् इव कपिलाः पिङ्गलाः केशाः कुन्तलाः
यस्य सः । पीतकौशेयवासाः—पीतं हरिद्रावर्णं कौशेयवामः क्षौमवस्त्रं यस्य
सः, घृतपीतवस्त्र इत्यर्थं । तिमिरनिवहवर्णं—सम पुञ्जश्यामः । पाण्डरोद्-
भूतदंष्ट्रः^२—पाण्डरे मुखे उद्भूते उत्क्षिप्ते दंष्ट्रे राजदन्तपाशवंस्यो दन्तो
यस्य सः । सन्निहितविशेषणद्वयश्यामुपमामाह—लीयमानेन्दुलेखः—लीयमाना
सखिलप्यन्ती इन्दुलेखा चन्द्रलेखा यस्मिन् स । ताराशो नव—नूतनः, श्याम इति
यावत् । जलगर्म इव—जपयुक्तमेघ इव स्थितः । 'तद्विद्वपतिः पयोगर्मो नदनु-
मुंदिरोऽम्बुनृद्'—इति वंजयन्ती । एष 'को नु खनु' इति ब्राह्मणपुत्रस्यापि
जिज्ञासा । उपमालकार । मालिनीवृत्तम् । तल्लक्षण तु—'ननमयययुतेय मालिनी
भोगिलोकैः' ॥ ५ ॥

[राजस के स्वल्न को पिता ने मुनकर पुत्र भी अपनी अनुभूति इस प्रकार व्यक्त करता है—]

अन्वय—ग्रहयुगलनिमास, पीनविस्तीर्णवक्षा, कनककपिलकेश, पीत-
कौशेय-वामा, तिमिर-निवह-वर्णं, पाण्डरोद्भूतदंष्ट्रः, लीयमान-इन्दु-लेखः,
नवजलगर्मः, इव, [भाति] ॥ ५ ॥

पदार्थ—ग्रह-युगल-निमास—(सूर्य और चन्द्र रूप) ग्रह-युगल के समान

वक्षस्यन्त वाले, स्वर्ण के समान पीले केशों वाले, पीत एव रेगमी वस्त्र पहने
हुए अन्धकार के समान वर्ण वाले (उस राजस) के अत्यन्त घबल और बाहर
निकले हुए दांत—चन्द्रकला जिसमे अन्तर्भूत हो रही हों, ऐसे नवीन मेघों के
समान (प्रतीत हो रहे) हैं ॥ ५ ॥

द्वितीय (पुत्र)—ओ ! यह कौन है ?

१. कनककपिलकेश इति वा पाठः । अत्र कपिशशब्द कृष्णपीतवाची ।

२. द० 'उद्भूतदंष्ट्रः' अमिषेकनाटके १-१३ । 'उद्भूत स्यात् त्रिपुक्षिप्ते'
इति मेदिनी ।

कलभदशनदष्ट्रो लाङ्गलाकारनास
 करिवरकरवाहुर्नीलजीमूतवर्ण ।
 हुतहुतवहदीप्तो यः स्थितो भाति भीम-
 स्त्रिपुरपुरनिहन्तु शङ्करस्येव रोप ॥ ६ ॥

बाँखो वाला, पीन-विस्तीर्ण-वक्षा = स्थूल एव विशाल वक्षस्थल वाला, कनक-
 कपिल-केश = स्वर्ण के समान पीले केशो वाला, पीत-कौशेय-वासा - पीला
 एव रेशमी वस्त्र पहने हुए, तिमिर-निवह-वर्ण = अन्धकार के समान वर्ण
 वाले (जस राक्षस के), पाण्डरोद्बृत्तदष्ट्र = अत्यन्त घबल और बाहर निकले
 हुए दाँत, लीयमान-इन्दु-लेख = चन्द्रकला जिसमें निमज्जित हो रही हो
 ऐसे, नव = नवीन, जलगमं इव [भाति] = मेघसमूह के समान (प्रतीत
 हो रहे हैं ॥ ५ ॥

कलभेति । कलभदशनदष्ट्र - कलभदशनौ करिषावकस्य दन्ताविव दष्ट्रे
 यस्य न । लाङ्गलाकारनास = बक्राग्रत्वात् लाङ्गलाकारा इव हलसमानाकारा
 नासिका यस्य सः । करिवरकरवाहुः = करिवरकर इव गजश्रेष्ठशुण्डेव बाहुयस्य
 सः । नीलजीमूतवर्ण = नीलस्य जीमूतस्य मेघस्येव वर्णो यस्य सः । 'धनजीमूत-
 मुदिरजलमुद्युमयो नय' इत्यमरः । एष क इति द्वितीय पुत्रस्य जिज्ञासा ।
 हुतहुतवहदीप्त = हुतो दत्ताग्याद्याहृति अर्थात् सविशेषण प्रदीप्त इत्यर्थं, एव-
 भूतो हुतवह हुत देवान् प्रति वहतीति हुतवह = अतिरिव दीप्त प्रज्वलित ।
 अतएव भीम = भयकर । स्थितः = गमननिवृत्त । य पुरो दृश्यमान,
 त्रिपुरपुरनिहन्तु = त्रिपुरासुरनगरध्वंसिन (इद विशेषण रोपतीव्रत्वसूचकम्),
 शङ्करस्य = हरस्य, रोप इव = कोप इव, भाति = शोभते । उपमालकारः ।
 मालिनीवृत्तम् ॥ ६ ॥

अन्वय-कलभ-दशन-दष्ट्र, लाङ्गल-आकार-नास, करि-वर-कर-

हाथी के वच्चे के दाँतों के समान दाँतो वाला, हल के आकार के सदृश
 नाक वाला, मत्त हाथी के सूँड के समान भुजाओं वाला, नीले मेघ के समान
 वर्ण वाला, यज्ञाग्नि के समान प्रज्वलित सा जो [राक्षस]—त्रिपुर नामक
 दैत्य के शरीर का हनन करने वाले भगवान् शंकर के भयकर क्रोध के समान
 उपस्थित सा प्रतीत हो रहा है [यह कौन है ?] ॥ ६ ॥

तृतीय.—भोस्तात ! को नु खल्ययमस्मान् पीडयति ।

वज्रपातोऽचलेन्द्राणा श्येन. सर्वपतरिन्नाम् ।

मृगेन्द्रो मृगसञ्चाना मृत्यु पुरुषविग्रह. ॥ ७ ॥

ब्राह्मणो—अय्य ! को एसो अम्हाअ सन्दावेइ ।

(आर्य ! व एपोऽस्मान् सन्तापयति)

बाहु नील-जीमूत-वर्ण, हृत-हृतवह-दीप्त, य, त्रिपुरपुरनिहन्तु शकरस्य, भीम, रोप, इव, स्थित, भाति ॥ ६ ॥

पदार्थ—कलम-दशन-दण्ड = ह्याधी के बच्चे के दाँतों के समान दाँतों वाला, साङ्गल-आकार-नास = हल के आकार के सद्यः नास वाला, करि-वर-कर-बाहु = मत्त गज के सूँड के समान [लम्बी] भुजाओं वाला, नील-जीमूत-वर्ण = नीले मेघ के समान वर्ण वाला, हृत-हृतवह दीप्त = धन की अग्नि के समान प्रज्वलित, य = जो [राक्षस], त्रिपुर-पुर-निहन्तु = त्रिपुर नामक राक्षस के शरीर का हनन करने वाले, शकरस्य=भगवान् शकर के, भीम = भयकर, रोप इव=कोध के समान, स्थित=उपस्थित सा, भाति=प्रतीत हो रहा है ॥ ६ ॥

सत्रस्त तृतीय पुत्रोऽपि आत्मप्रतिक्रिया प्रदर्शयति—वञ्चेत्यादिना ।

अचलेन्द्राणा=गिरिवराणाम् । वज्रपात = कुलिशपात, कुलिशो यथा पर्वत-भेदनशक्तस्तथाप्रमपीत्यर्थ । सर्वपतरिन्ना = सर्वपक्षिणाम् । श्येन = पक्षिविशेष, य महतोऽपि पक्षिणो विनाशयति, घातमत्वात् सत्तुल्य । मृगसञ्चानाम् = पशुसमूहानां कृते, मृगेन्द्र = सिंह । अतएव, पुरुषविग्रह = घृतपुरुषशरीर, मृत्यु = यमराज एव, अयम् = एष पुर स्थित 'को नु अस्मान् पीडयति' इति । रूपकालङ्कार । अनृष्टृप् छन्द ॥ ७ ॥

[तृतीय पुत्र अपनी समावना इस प्रकार प्रकट कर रहा है—]

अन्वय—[अयम्] अचलेन्द्राणा, [कृते], वज्रपात, सर्वपतरिन्ना [कृते] श्येन, मृगसञ्चाना [कृते] मृगेन्द्र, [एव] पुरुषविग्रह, मृत्यु, इव दृश्यते ॥ ७ ॥

तृतीय (पुत्र)—हे तात ! यह कौन है, जो हम लोगों को कष्ट दे रहा है । यह गिरिराजों के लिए वज्रपात सा, सभी पक्षियों के लिए बाज सा और मृगसमूह के लिए सिंह-सा मानव शरीर धारण कर [साक्षात्] यमराज के समान [दिखाई पढ़ रहा] है ॥ ७ ॥

ब्राह्मणी—आर्य ! यह कौन है जो हम लोगों को सन्तप्त कर रहा है ?

घटोत्कचः—भो ब्राह्मण ! तिष्ठ तिष्ठ ।

किं यासि मद्भयविनाशितधैर्यसारो
विश्रस्तदारसुतरक्षणहीनशक्ते ! ।

ताक्ष्याग्रपक्षपवनोद्धतरोपवह्नि-

तीव्रः कलत्रसहितो भुजगो ययार्तः ॥ ८ ॥

पदार्थ—[अयम् = यह राक्षस], अचलेन्द्राणा [कृते] = गिरिराजो के लिए, वज्रपातः = वज्राघात, सर्ववतरिणा [कृते] = सभी पक्षियों के लिए, श्येन = बाज, मृगसङ्घानां [कृते] = मृगसमूह [अर्थात् पशुमात्र] के लिए, मृगेन्द्र [एव] = सिंह ही, [एवं] पुरुषविग्रह = इस प्रकार मानवशरीर धारण करके [साक्षात्], मृत्यु [एव] = यमराज ही के समान [दृश्यते = दिखाई पड़ रहा है] ॥ ७ ॥

घटोत्कच उद्धतवदाह—किं यासीत्यादिना । विश्रस्तदारसुतरक्षणहीन-शक्ते ! = विश्रस्तानां विशेषेण भीताना दारसुताना कलत्रपुत्राणा, रक्षणे हीना क्षीणा शक्ति सामर्थ्य यस्य स', तत्सम्बुद्धौ । मद्भयविनाशितधैर्यसारः = मत्सकाशाद् भय मद्भयं, तेन विनाशित, धैर्यस्य सार' बलं यस्य स' । आर्तः = पीडित. । ताक्ष्याग्रपक्षपवनोद्धतरोपवह्नितीव्र = ताक्ष्यस्य गरुडस्य, वृक्षस्य नाम कश्यपस्य मुने अपत्य पुमान् ताक्ष्यं, तस्य अग्रपक्षपवनेन पक्षाग्रजनितेन वातेन, उद्धत' सर्वाधत धो रोपवह्नि कोपाग्नि', तेन तीव्र', तीक्ष्णः । कलत्र-सहितः भुजगो यया = सर्प इव । किं यासि = कथम् अपमर्षि, मा यासी-त्यर्थं । अत्र गरुडागमनत्रस्तभुजगोपमदा ब्राह्मणपरिवारस्यापि विनाशस्यावश्यं-भावित्वं सूच्यते । उपमानकार । असन्ततिलका वृत्तम् ॥ ८ ॥

अन्वय—ताक्ष्याग्रपक्ष-पवनोद्धत-रोप-वह्नि तीव्र' कलत्रसहित' आर्तः

[श्रीघाभिभूत घटोत्कच उन्हे रोकता हुआ कहता है—]

घटोत्कच—हे ब्राह्मण ! ठहरो, ठहरो ।

गरुड के पक्ष के अग्रभाग में उठी हुई बायु में प्रचण्ड श्रीघाग्नि' वाला एवं उत्तेजित व सपत्नीक एव दीन सर्प जिस प्रकार जाता है उसी प्रकार विशेष रूप से भयभीत स्त्री एव पुत्रों की रक्षा में असमर्थ (हे ब्राह्मण) मेरे भय से विशेष रूप से नष्ट हुए धैर्य एव बल वाले [तुम] क्यों जा रहे हो ? ॥ ८ ॥

भो ब्राह्मण ! न गन्तव्यं न गन्तव्यम् ।

वृद्ध — ब्राह्मणि ! न भेतव्यं, पुत्रका ! न भेतव्यम् । सविमर्शा
ह्यस्य वाणी ।

घटोत्कच.—भो ! कष्टम् । [स्वगतम्]

जानामि सर्वत्र सदा च नाम

द्विजोत्तमा पूज्यतमा. पृथिव्याम् ।

मृजग यथा [अपयाति तथा] वित्रस्तदार-मुत-रक्षण-हीन-शस्त्रे, मत्-भय-
विनाशित-धैर्य-सार [त्व] कि याति ॥ ८ ॥

पदार्यं—तास्पर्शात्-पक्ष-यवनोद्धत-रोप-वह्नि-सीत्र = गरुड के पक्ष के
अग्रभाग से उठी हुई वायु से प्रचण्ड श्रोत्राग्नि वाला एव उत्तेजित, क्लृप्त-
सहित = सपत्नीक, आतं = हीन, मृजग यथा = सप जित प्रकार,
[अपसर्पं = जाता है, तथा = उसी प्रकार] वित्रस्त-दार-मुत-रक्षण-हीन-
शस्त्रे = विशेष रूप से भयभीत, स्त्री एव पुत्रो की रक्षा म क्षीण सामर्थ्य वाले
[हे ब्राह्मण ?], मत्-भय-विनाशित-धैर्य-सार = मेरे भय से विशेष रूप
से नष्ट हुए धैर्य एव बल वाले [त्वम्-तुम्], यामि-क्या जा रहे हो ? ॥ ८ ॥

विमर्श—वृक्ष अर्थात् कश्यप मुनि की सन्तान होने से गरुड ताक्ष्यं
बहलाए । 'नीत्रार्थाना भयहेतु' इस सूत्र से भय के हेतु 'मत्' ने पञ्चमी हुई है ।
निवारितमपि गमनाद् अनिर्वर्तमान ब्राह्मण सोपलम्भमाह—भो ब्राह्मणो-
त्यादिना । न गन्तव्यम् = नापमनव्यम् । न भेतव्यम् = अपमुत्कटमनधं-
मुलादयिष्यति इति भय ते मा भूत्-इत्यर्थ । हि-यस्मात् कारणत् । अस्य-
उद्धतस्यापि राक्षसस्य, वाणी = वचनम्, सविमर्शा-विमर्शं साध्वसाधुविचार,
सद्युक्ता ॥

जानामीति । पृथिव्याम् = भूमण्डले, द्विजोत्तमा = ब्राह्मणश्रेष्ठा,
सर्वत्र सदा च = सर्वस्मिन् देशे, सर्वस्मिन् काले च, पूज्यतमा-अनिशयेन पूज-
नीया एव, जानामि नाम = निश्चयेन उक्तमर्थमह साम्यम् वेद्यीत्यर्थं । अद्य =

हे ब्राह्मण । मत जाओ, मत जाओ ।

वृद्ध—हे ब्राह्मणी हमें डरना नहीं चाहिए, मा डरो मेरे पुत्रो, कयोवि
इसकी वाणी विमर्श युक्त मालूम पड़ती है ।

घटोत्कच—ओह ! बड़ा कष्ट है ।

यद्यपि श्रेष्ठ ब्राह्मण, पृथ्वी पर सर्वदा और सभी स्थान पर अत्यन्त पूज-

अकार्यमेतच्च मयाद्य कार्यं

मातुर्नियोगादपनीतशङ्कम् ॥ ९ ॥

वृद्ध.—ब्राह्मणि ! किं न स्मरसि तत्रमवता जलविलस्रेण

इदानीम्, मया=घटोत्कचेन, एतत् अकार्यम्=इदं गृहितं कर्म, अर्थात् वक्ष्यमाण-
वृद्धब्राह्मणकुटुम्बेऽन्यतमस्य मातुराहारार्थं नयनम्, मातुः=मज्जनन्याः; नियो-
गात्=निदेशात्, अपनीतशङ्कम्=निःशङ्कं यथा भवति तथा, कार्यं च=कर्तव्यं च,
चशब्दस्तुल्यकालयोगे । इत्थं द्विजोत्तममाहात्म्यज्ञानसमकालमेव द्विजोत्तम-
निघनानुकूलं मया चेष्टितव्यम् इत्यहो वैकल्यम्—इति भावः । उपजातिः । सा
चेत्तमुपजातिरिन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रा ममिश्रता । तन्लक्षणं च—'न्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ
जयौ न' । 'उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ' । 'अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजी पादौ
यदीयावुपजातयस्ता' ॥ ९ ॥

[प्रस्तुतं श्लोकं मे ब्राह्मणवधं से सम्भावितं शोकं चौरघटोत्कचकी
मातृभक्तिं दिखाई गई है—]

अन्वयः—[यद्यपि] द्विजोत्तमा, पृथिव्या, सदा, च, पूज्यतमाः
[भवन्ति इति अहं] जानामि, नाम, [तथापि] मातुः नियोगात् अपनीत-
शङ्कम्, अद्य, मया, एतत् अकार्यम् [अपि] कार्यम् ॥ ९ ॥

पदार्थः—[यद्यपि] द्विजोत्तमा = यद्यपि श्रेष्ठ ब्राह्मण, पृथिव्याम् =
पृथ्वी पर, सदा सर्वत्र च = सर्वदा और सभी स्थान पर, पूज्यतमा = अत्यन्त
पूजनीय [भवन्ति—इति अहं = होते हैं = यह मैं] जानामि नाम = निश्चित रूप
से जानता हूँ, [तथापि = फिर भी], मातुः = माता के, नियोगात् =
आदेश से, अपनीतशङ्कम् = शङ्का को छोड़कर अर्थात् निःशंक होकर ।
अद्य = आज, मया = मुझको, एतत् अकार्यम् [अपि] = इन अकरणीय
कार्य को [भी], कार्यम् = करना है ॥ ९ ॥

ब्राह्मणीति । जलविलस्रेण = तन्नाम्ना मुनिना । अनपेतं राक्षसम् = अन-

नीय [होते] हैं—[यह मैं] निश्चित रूप से जानता हूँ । [तथापि] माता के
आदेश से निःशंक होकर आज इस अकरणीय कार्य को [भी] करना है ॥ ९ ॥

वृद्ध—हे ब्राह्मणी ! क्या तुम्हें याद नहीं है कि पूजनीय जनकिलस्रेण मुनि
ने कहा था कि—'यद्यपि [सर्वथा] राक्षसों से विहीन नहीं है । अतः वडी

१. 'अपनीय शङ्कम्' इति वा पाठः ।

मुनिनोक्तम्—अनपेतराक्षसमिदं घनमप्रमादेन गन्तव्यमिति ।
तदेवोत्पन्नं भयम् ।

ब्राह्मणी—किं दाणि अय्यो मज्झत्यवण्णो विअ दिस्सदि ।
(किमिदानीमायो मध्यस्थवर्ण इव दृश्यते) ।

वृद्ध—किं करिष्यामि मन्दभाग्यः ।

ब्राह्मणी—णं विक्कोसामो । (ननु विक्रोशाम,) ।

प्रथमः—भवति ! कस्य वयं विक्रोशामः ।

इदं हि शून्यं तिमिरोत्करप्रभै-

नंगप्रकारंरवरुद्धदिवपथम् ।

खगमृं गंश्चापि समाकुलान्तरं

पेता. अहीनाः राक्षसा. यस्मात् तत् राक्षसयुत यनम् । अप्रमादेन=अवधानेन गन्तव्यम् । तदेव भयम्=जलशिलशत्रुचनतर्कित राक्षसभयमेव, उत्पन्नम्=उपस्थितम् । मध्यस्थवर्ण इव=उदामीन इव दृश्यते भवान्, गणपतिशास्त्रि-महोदयेनापि शब्द द्विधा व्याख्यात (क) मध्यस्थ त्रिपु वर्गेषु मध्यगतो वर्ण, अर्थात् क्षत्रिय, स इव घोरव्यवहारित्वात् । (ख) अथवा मध्यस्थस्य उदामीनस्यैव वर्णसंख्याया यस्य स । उपस्थितविपत्प्रतीकारयन्नाकरणात् ॥

इद हीति । तिमिरोत्करप्रभैः=तिमिरस्य उत्कराः स्तोमा राशय तेषां प्रमा इव प्रमा पेयाम्, तमस्तोमश्यामैरित्यर्थः । नंगप्रकारं=विविधै. वृक्षै. विभिन्नप्रकारं पर्वतैर्वा । अवरुद्धदिवपथम्=उपरुद्धदिङ्मार्गम्, वृक्षसकुलत्वात् अस्मिन् यने दिङ्मार्गो न दृश्यते; आवृत पन्था यस्मिन् तत् वनमित्यर्थः । खगैः=

सावधानी से जाना चाहिए । [जो कहा था] वही भय सामने उपस्थित हो गया है ।

ब्राह्मणी—किं कर्तव्यविमूढ से आप इस समय क्यों दिखाई दे रहे हैं ?

वृद्ध—मैं भाग्यहीन क्या कर सकता हूँ ?

ब्राह्मणी—हम लोग [सहायता के लिए] क्यों न ? चिल्लाएँ ।

प्रथम (पुत्र)—माँ हम किसे बुलावें ?

क्योंकि, यह वन अत्यन्त सूना है, बड़े-बड़े वृक्षो [अथवा पर्वतों की शृङ्खला] के कारण पुञ्जीभूत अन्धकार की प्रभा से [यहाँ] दिशाओं के रास्ते रोक

वन निवासाभिमतं मनस्विनाम् ॥ १० ॥

वृद्धः—ब्राह्मणि । न भेतव्य, न भेतव्यम् । मनस्विजननिवास-

पक्षिमि, मृगै = पशुमिश्र समाकुलान्तरम् = सम्यक् रूपेण आकुल परिपूर्णम्
अन्तरम् अन्तरालम् यस्य व्याप्तावकाशमित्यर्थ । तादृश, इदं हि=पुरो दृश्यमान
वनम्=अरण्यम् शून्यम्=निर्जनम्, मनस्विनाम्=प्रशस्तमनस्काना भुनीनामिति
यावत्, तपोबलादियोगात् मनसः प्राशस्त्यम् । निवासाभिमतम्=निवासाय
अभिमतम् इष्टम् । अतः अस्मद् विक्रोशध्वनि तु अरण्यपरोदनमेव स्यात् । काव्य-
लिङ्गालकार । वशस्थवृत्तम् । तल्लक्षणं तु—'जतो तु वशस्थमुदीरितं
जरो' ॥ १० ॥

[प्रस्तुतं श्लोक मे प्रथमं पुत्र के द्वारा यह बतलाया जा रहा है कि यहाँ
चिल्लाना बेकार है क्योंकि—]

अन्वय—हि इदं, वन, शून्यम् । तिमिरोत्कर-प्रमै, नगप्रकारै, अवरुद्ध-
दिक्पथम्, अपि, च, खर्गै, मृगै समाकुलान्तरम्, वन मनस्विनाम्, निवासा-
भिमतम् ॥ १० ॥

पदार्थ—हि इदं=क्योंकि यह, वनम्=जङ्गल, शून्यम्=अत्यन्त सूना है ।
तिमिर-उत्कर-प्रमै = पुञ्जीभूत अन्धकार की प्रभा से, नगप्रकारै = एव बड़े
वृक्षो [अथवा पर्वतो की शृङ्खला] से, अवरुद्धदिक्पथम्=दिशाओं के पथ
रोक दिए गए हैं । अपि च=और खर्गै मृगै च=पशु और पक्षियों से, समाकुल
अन्तरम्=[इस जङ्गल का] अन्तराल सम्यक् रूप से घिरा हुआ है [अतः
हम लोगों की आवाज यहाँ कौन सुनेगा ? अर्थात् यहाँ चिल्लाना अरण्यपरोदन
ही होगा] [इस प्रकार का यह वन तो] मनस्विनाम्=तपस्वियों के ही
निवासानभिमतम्=निवासयोग्य है ॥ १० ॥

विमर्श—सपर्यन्तीयस्यार्थस्य काव्यलिङ्ग समर्थनम्' इस लक्षण से यहाँ
काव्यलिङ्ग अलङ्कार है ॥ १० ॥

दिए गए हैं, और पशु एव पक्षियों से [इस जङ्गल का] अन्तराल सम्यक्
रूप से घिरा हुआ है, यह तो तपस्वियों के ही निवास के योग्य है । [अतः हम
लोगों की आवाज यहाँ कौन सुनेगा ?] ॥ १० ॥

वृद्ध—है ब्राह्मणी । मत डरो, मत डरो । यह वन मनस्वियों के निवास
योग्य है—ऐसा सुनकर मेरा भय चला सा गया है । मैं सोचता हूँ कि पाण्डवों

योग्यमिति श्रुत्या विगत द्वय मे सन्गासः । शङ्के नागातिदूरेण
पाण्डवाभमेण भवितव्यम् । पाण्डवास्तु,

युद्धप्रियाश्च शरणागतवत्सलाश्च

दीनेषु पक्षपतिता वृत्तसाहस्राश्च ।

एय यद्यप्रतिभयाकृतित्चेष्टितानां

दण्ड यथाहंभिह धारयितु समर्थाः ॥ ११ ॥

एतास्यां निघटे सशमा पाण्डवा अस्मान् रक्षितुं समर्था इत्यभिप्रायेणाह-
पाण्डवास्तु, युद्धेति । पाण्डवा-मीमहेतुप्रमुखा पञ्चपाण्डवा, प्रवृत्त्या
युद्धप्रिया = रणरक्षिका, शरणागतवत्सलाः = शरणागतेषु जनेषु वत्सला
स्निग्धा, दीनेषु-आर्तजनेषु पक्षपतिता-पक्षपातिता वृत्तसाहस्राश्च-कृतम्
सगृह्य प्रदत्त साहसं यैस्ते, एयविद्यप्रतिभयाकृतित्चेष्टितानाम्-एतद्राक्षस-
शरणागतानां प्रतिभयाकृतित्चेष्टितानां भयकराचारपरिताना दुर्वृत्तजनानामित्यर्थः ।

'दाह्य भीषण भीष्म घोर भीम भयाङ्कम् । भयवर प्रतिभयम्' इत्यमरः । तेपा
यथाहं-यथोचितम्, दण्ड धारयितुम्-नियमा वक्तुम् समर्था-शक्ता सन्तीति
शेषः । एतास्यामयंकराशुभानां निघटे पाण्डवा समर्था । परिकरालकार ।
वसन्तिसनानुसम् ॥ ११ ॥

[प्रस्तुत इत्येव मे वृत्त के द्वारा पाण्डवो की शरणागतवत्सलाता का प्रति-
पादन हो रहा है—]

अन्वय—[पाण्डवाः सु] युद्धप्रिया, य, शरणागतवत्सला दीनेषु, पक्ष-
पतिता, वृत्तसाहस्राश्च । इह, एयविद्य-प्रतिभय-आकृति-चेष्टिताना, यथाहंम्,
दण्ड धारयितु समर्था [सन्ति] ॥ ११ ॥

या आभय यहाँ से बहुत दूर नहीं होना चाहिए, और पाण्डव तो-‘बड़े ही
युद्धप्रिय हैं और शरण में आए हुए मनुष्यों पर दया करने वाले हैं । पक्षहार्थों
की सहायता करने वाले हैं और साहस कर्मी [भी] हैं । [अतः] यहाँ पर
इस प्रकार के भयङ्कर आकृति वाले एव क्रूर कार्य करने वालों को यथोचित
दण्ड देने में [वे] समर्थ [हैं] ॥ ११ ॥

१ 'न पातिदूरेण' इति वा पाठः ।
२ इ० 'प्रतिभयमभ्युदितास्परप्यवासम्' स्वप्न० ६ १ ।
२ म० व्या०

प्रथम — भोस्तात ! न तत्र पाण्डवा इति मन्ये ।

वृद्ध — पुत्र ! कथं त्वं जानीषे ।

प्रथमः—श्रुतं मया तस्मादाश्रमादागतेन केनचिद् ब्राह्मणेन कथितं—शतकुम्भं नाम यज्ञमनुभवितुं महर्षेर्धौम्यस्याश्रमं गता इति ।

वृद्धः—हन्न, हता स्म ।

प्रथम — तात ! न तु सर्व एव । आश्रमपरिपालनार्थमिह स्थापित. किल मध्यम ।

वृद्ध — यद्येवं, सन्निहिता सर्वे पाण्डवाः ।

पदार्थ—[पाण्डवा, तु = पाण्डव तो] युद्धपिया = बड़े ही युद्ध प्रिय हैं, च = और, शरणागतवत्मला = शरण में आए हुए जन पर दया करने वाले हैं । दीनेपु = असहायो का, पक्षपतिता = पक्षपात करने वाले हैं, वृत्तसाहस्राञ्च = और माहसी कर्मों को करने वाले हैं, इह = यहाँ पर, एवत्रिधम् = इस प्रकार के, प्रतिभय-आकृति-चेष्टितानाम् = भयङ्कर स्वरूप और [कृर] कर्म करने वाले को, यथाहम् = यथोचित, दण्ड धारयितुम् = दण्ड देने में, [ते] समर्था [सन्ति] = [वे] समर्थ हैं ॥ ११ ॥

विमर्श—मानिप्राय विशेषण होने में यहाँ परिकरानङ्कार है ।

शतकुम्भ नाम यज्ञम् = श्रौतादियानेषु नास्य नाम पठ्यते । हन्तेति विपादे । हता - आत्मरक्षा प्रति भग्नाशा इत्यर्थः । इह = आश्रमे । मध्यमः =

प्रथम (पुत्र)—हे तात ! मेरा अनुभव है कि पाण्डव आश्रम में नहीं हैं ।

वृद्ध—तुम कैसे यह जानते हो ?

प्रथम (पुत्र)—वहाँ से आते हुए किसी ब्राह्मण से हमने सुना है कि—वै शतकुम्भ नामक यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए महर्षि धौम्य के आश्रम पर गए हैं ।

वृद्ध—ओह ! हम लोग मारे गए ।

प्रथम (पुत्र)—हे तात ! वे सब [वहाँ] तो नहीं गए हैं । [जैसा कि हमने सुना है] आश्रम के परिपालनार्थ मध्यम पाण्डव [भीम] नियुक्त किये गए हैं ।

वृद्ध—यदि ऐसा है [तो] सभी पाण्डव उपस्थित ही हैं ।

प्रथमः—त चाप्यस्या वेलाया व्यायामपरिचयार्थं विप्रकृष्ट-
देशस्य इति श्रूयते ।

वृद्धः—हन्त, निराशा स्म । भवतु, पुत्र ! व्यपश्रयिष्ये !
तावदेतन्म ।

प्रथम —अलमलं परिश्रमेण ।

वृद्ध —पुत्र ! निर्वेदप्रत्ययिनी त्वु प्रार्थना । भवतु, पश्याम-
स्तावत् । भो पुरुष ! अस्त्यस्माकं मोक्ष ?

घटोत्कच —मोक्षोऽस्ति समयत ।

वृद्ध —क समय ?

घटोत्कच —अस्ति मे तत्रभवती जननी । तयाऽहमाज्ञप्त —
पुन ! ममोपवासनिसर्गार्थमस्मिन् वनप्रदेशे कश्चिन्मानुष परि-
मृग्यानेतव्य इति । ततो मयाऽऽसादितो भवान् ।

मध्यमवाण्डवो भीमसेन । अस्या वेलायाम्—एतस्मिन् रामये, व्यायामपरिच-
यार्थम्=व्यायामो मत्नव्यापारः, तस्य परिचयोऽभ्यासो दैनन्दिनमुष्णान,
तदर्थम् । विप्रकृष्टदेशस्य =स्वाश्रमविदूरप्रदेशगत, “स्वाद दूर विप्रकृष्टम्”
इत्यमर । व्यपश्रयिष्ये =प्रार्थयिष्ये, वि + अप + आ + श्रि + लृट्, निर्वेद-
प्रत्ययिनी =विरागो निर्यत्नत्व वा, तस्य प्रत्ययिनी विरोधिनी त्वु प्रार्थना ।
उपवासनिसर्गार्थम् =उपवासस्य निरर्गं उत्तर्गं, तदर्थम्, उपवासाङ्गभूत-

प्रथम (पुत्र)—[किन्तु हमने] यह भी सुना है कि—इस समय वे भी
व्यायाम करने के लिए कहीं दूर चने गए हैं ।

वृद्ध—ओह ! हम लोगों को अब कोई आशा नहीं है । ठीक है, बेटा, तब
हम इन्हीं से अनुनय विनय करें ।

प्रथम (पुत्र)—नहीं, परिश्रम करना व्यर्थ है ।

वृद्ध—ह पुत्र ! प्रार्थना शान्ति की अभिलाषा से होगी । अच्छा, तो देता
जाय । हे पुरुष ! हम लोगों के छुटकारे का क्या बोर्ड उपाय भी है ?

घटोत्कच—हाँ ! एक शत पर छुटकारा हो सकता है ।

वृद्ध—क्या शत है ?

घटोत्कच—मेरी पूजनीया माता हैं । उन्होंने यह आदेश दिया है कि—

१ 'व्यापश्रयिष्ये' इति वा पाठ । २ 'प्रतिगृह्णा०' इति वा पाठ ।

पत्न्या चारित्रशालिन्या द्विपुत्रो मोक्षमिच्छसि ।
 बलाबलं परिज्ञाय पुत्रमेकं विसर्जय ॥ १२ ॥
 वृद्ध—हे भो राक्षसापसद ! किमहमब्राह्मण ?

पारणार्थमित्यर्थः । समयः=शपथ, 'समय शपथाचार कालसिद्धान्तसविद' इत्यमरः ।

शपथस्य प्रकार प्रदर्शयति-पत्येत्यादिना । त्व यदि, चारित्रशालिन्या=पतिव्रतया धर्मपत्न्या सह, द्विपुत्रः=पुनद्वयविशिष्टः, मोक्षम्=मद्वस्तात् मोचनम्, इच्छसि=अभिलषसि । तर्हि निपु अन्यतमम् एक पुत्रम् बलाबलम्=बलाबले, 'विप्रतिपिद्ध चानधिकरणवाचि' (पा० सू० २४१४) इति विकल्पाद् द्वन्द्वैकवद्भावः । तेषा प्रियत्वम्, रक्षणीयत्वम् अरक्षणीयत्व वा, परिज्ञाय=पर्यालोच्य, विसर्जय=परित्यज, मूढम् अपंथ इत्यर्थः । एव 'पुत्रमेकमुत्सृजन्त द्विपुत्र पत्न्या सह त्वा मोचयिष्ये इति समय । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥१२॥

अन्वयः--[हे वृद्ध !] चारित्रशालिन्या, पत्न्या [सह], द्विपुत्र [यदि मत्त], मोक्षम्, इच्छसि, [तर्हि] बलाबल, परिज्ञाय, एक, पुत्र, विसर्जय ॥१२॥

पदार्थः--[हे वृद्ध !], चारित्रशालिन्या पत्न्या=सदाचारी और शीलवती पत्नी [और] द्विपुत्र =दो पुत्रों के सहित [यदि मत्त =यदि मुझसे] मोक्षम् इच्छसि=मुक्ति की इच्छा रखते हो, [तर्हि=तो], बलाबलम्=योग्य और अयोग्य का, परिज्ञाय=विचार करके एक पुत्रम्=एक पुत्र को, विसर्जय=छोड़ दो ॥ १२ ॥

राक्षसापसद =राक्षसेषु मध्ये हीन !, हे नीचराक्षस ! वृद्धोऽहं श्रुत-

'हे पुत्र ! इस वनप्रदेश से मेरे उपवास की पारणा के लिए किसी मनुष्य को खोजकर लाओ ।' तभी आप मेरे द्वारा आक्रमित हुए हैं । अतः —

[हे वृद्ध !] सदाचारी एव शीलवती पत्नी और दो पुत्रों के सहित [यदि मुझसे] मुक्ति की इच्छा रखते हो [तो], योग्य और अयोग्य का विचार करके एक पुत्र को छोड़ दो ॥ १२ ॥

वृद्ध—ओह ! हे दुष्ट राक्षस ! क्या मैं ब्राह्मण नहीं हूँ ?

ब्राह्मणः^१ श्रुतवान् वृद्ध. पुत्र शीलगुणान्वितम् ।

पुरुषादस्य दत्त्वाहं कथं निर्वृतिमाप्नुयाम् ॥ १३ ॥

घटोत्कचः—

यद्यथितो द्विजश्रेष्ठ ! पुत्रमेकं न मुञ्चसि ।

सकुटुम्ब क्षणेनैव विनाशमुपयास्यसि ॥ १४ ॥

वृद्ध—एष एव मे निश्रयः—

वान् = श्रुत शास्त्र तद्वान्, शास्त्रज्ञ । शीलगुणान्वितम् = शीलरूपगुणेन समन्वितम्, पुत्रम् = तनयम् 'आत्मस्तनयस्सूनू सुत पुत्र' इत्यमर । पुरुषादस्य = पुरुष नरम् अस्ति खादतीति पुरुषात् तस्य नरमक्षकस्य राक्षसस्य दत्त्वा = अपंपयित्वा, कथम् = केनोपायेन, निर्वृतिम् = सुखम् आप्नुयाम् = लभेय । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ १३ ॥

अन्वय—[हे राक्षस !] अहम्, वृद्ध, श्रुतवान्, ब्राह्मण, शीलगुणान्वितम्, पुत्र, पुरुषादस्य, दत्त्वा, कथम्, निर्वृतिम् आप्नुयाम् ॥ १३ ॥

पदार्थ—[हे राक्षस !] अहम् = मैं, वृद्ध = बुद्धा [अर्थात् बुजुर्गं],

श्रुतवान् = शास्त्रज्ञ, ब्राह्मण = ब्राह्मण होकर, शीलगुणान्वितम् = शील और गुण से युक्त, पुत्रम् = पुत्र को, पुरुषादस्य = मानव-भक्षी राक्षस को, दत्त्वा = देकर, कथम् = किस प्रकार, निर्वृतिम् = मुक्ति को, आप्नुयाम् = प्राप्त करेंगा ॥ १३ ॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! = द्विजपु विप्रेषु श्रेष्ठ पूज्यतम तत् सम्बुद्धौ, प्रशस्य थ्र,

यदि = चेत्, अथित = भया याचित मन्, एकम् = त्रिषु अन्यतमम् एकम्,

पुत्रम् = तनयम्, न मुञ्चसि = न अपंपयसि, तर्हि, सकुटुम्ब = परिवार-

सहित, पुत्रकलशोपेत, क्षणेनैव = झटिति, विनाशम् = विनष्टो भविष्यसि,

उपयास्यसि = प्राप्स्यसे । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ १४ ॥

[हे राक्षस] मैं बुजुर्ग और शास्त्रज्ञ ब्राह्मण होकर शील एव सब गुण से युक्त

पुत्र को नरमक्षी [राक्षस] को देकर किस प्रकार मुक्ति प्राप्त करेंगा ? ॥ १३ ॥

घटोत्कच—हे श्रेष्ठ ब्राह्मण ! यदि मांगे हुए एक पुत्र को नहीं छोड़

दोगे [तो] क्षण मे ही सपरिवार विनाश को प्राप्त हो जाओगे ॥ १४ ॥

वृद्ध—[ठीक है] मेरा भी यही निश्रय है कि—

१ 'किमहम्' इति वा पाठ ।

कृतकृत्यं शरीरं मे परिणामेन जर्जरम् ।

राक्षसाग्नौ सुतापेक्षी होष्यामि विधितंस्कृतम् ॥ १५ ॥

ब्राह्मणी—अप्य ! मा मा एवं । पदिमत्ताधम्मिणी पदिब्बदत्ति

अन्वय—हे द्विजधेष्ठ ! यदि, अर्पित, एकम्, पुत्रम्, न, मुञ्चसि, (तहि) क्षणेनैव, सकुटुम्ब, विनाशम्, उपयास्यसि ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे द्विजधेष्ठ=हे ब्राह्मणो मे धेष्ठ ! [अर्थात् पूज्यतम ब्राह्मण] यदि=यदि, अर्पित=याचित [मांमे हुए], एकम्=एक, पुत्रम्=पुत्र को, न मुञ्चसि=नहीं छोड़ दोगे, [तहि=तो], क्षणेनैव=क्षणमात्र मे, सकुटुम्ब=परिवार के सहित, विनाशम्=विनाश को, उपयास्यसि=प्राप्त होगे ॥ १४ ॥

कृतेति । सुतापेक्षी=मुत्स्य पुत्रस्य अपेक्षा अस्ति यस्य स, सुतरक्षणार्थित्यर्थ । [अहम्] परिणामेन=वृद्धावस्थया, वृद्धत्वस्य परिपाकेन, जर्जरम्=शिथिलम्, कृतकृत्यम्=कृतार्थम्, कृत कृत्य येन तम्, ऋणत्रयापाकरणरूप स्वधर्मोऽनुष्ठितो येनेत्यर्थ । विधिसंस्कृतम्=विधिपूर्वकोऽनुष्ठान संस्कृत पूतम्, मे=मम वृद्धस्य, शरीरम्=पार्थिवविग्रहम्, राक्षसाग्नौ=हवि स्थानीय स्वशरीर राक्षसरूपेऽग्नौ, राक्षस एव अग्नि राक्षसाग्नि तस्मिन्, होष्यामि=आहुतिकरिष्यामि । इदं कृतकृत्य शिथिल च शरीर सुतरक्षार्थं राक्षसमिदं समर्पयिष्यामि । रूपकालङ्कार । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ १५ ॥

अन्वय—परिणामेन, जर्जरम्, मे, शरीरम्, कृतकृत्यम् । विधिसंस्कृतम्, [शरीरम्] सुतापेक्षी, राक्षसाग्नौ, होष्यामि ॥ १५ ॥

पदार्थ—परिणामेन=आयु बीत जाने मे, जर्जरम्=शिथिल, मे शरीरम्=मेरा शरीर, कृतकृत्यम्=कृतार्थ हो चुका है । विधिसंस्कृतम्=अनुष्ठानो से पवित्र [शरीरम्=शरीर को], सुतापेक्षी=अपने लड़के की रक्षा के लिए, [मैं स्वय ही] राक्षसाग्नौ=राक्षस की [क्षुधा रूप] अग्नि मे, होष्यामि=हवन कर दूँगा ॥१५॥ पतिव्रता=पतिपरायणा, पतिमात्रधर्मिणी=पतिरेव एकमात्र धर्मो यस्या

आयु के विपरिणाम [बीत जाने] से जर्जर मेरा शरीर कृतार्थ हो चुका है । [अत] अनुष्ठानो से पवित्र [इत] शरीर को अपने लड़के की रक्षा के लिए राक्षस की [क्षुधा रूप] अग्नि मे हवन कर दूँगा ॥ १५ ॥

ब्राह्मणी—हे आर्य ! ऐसा आपको नहीं सोचना चाहिए, क्योंकि पतिव्रता

णाम । गृहीतफलेण एदिणा सरीरेण अय्यं कुलं अ रविखदुमि-
च्छामि । (आर्यं ! मा मैवम् । पतिमानघमिणी पतिव्रतेति नाम । गृहीतफले-
नैतेन सरीरेणार्यं कुल च रक्षितुमिच्छामि) ।

घटोत्कचः—भवति ! न खलु स्त्रीजनोऽभिमतस्तत्रभवत्या ।

वृद्धः—अनुगमिष्यामि भवन्तम् ।

घटोत्कचः—आः ! वृद्धस्त्वमपसर ।

प्रथम.—भोस्तात ! व्रवीमि खलु तावत् किञ्चित् ।

वृद्ध—पुत्र ! कथय ।

प्रथम—

मम प्राणैर्गुरुप्राणानिच्छामि परिरक्षितुम् ।

सा पत्यमावे घमंविहीनेत्यर्थं । गृहीतफलेन = कृतकार्येण, गृहीत प्राप्त फल
पुत्रोत्पादनरूप प्रयोजन येन । तथा च महाभारते—

‘यदर्थमिष्यते भार्या प्राप्तः सोऽर्थस्त्वया मयि ।

कन्या चैका कुमारश्च कृताहमनूणा त्वया ॥

भुक्ते प्रियाण्यवाप्तानि धर्मश्च चरितो महान् ।

त्वत्प्रभृति प्रिया प्राप्ता न मा तप्स्यत्यजीवितम् ॥

(महाभा० ब्रह्मवैवर्तेण १५८ ७, ३३)

स्त्रीजन., न खल्वभिमत = नैवेष्ट घटोत्कचजनन्या । उक्त च महा-
भारते—‘अवध्या स्त्रियमित्याहुर्धर्मज्ञा धर्मनिश्चये ।’ (महाभा० अ० १५७ ३१)

वृद्ध अस्थिपञ्जरमात्र शरीरस्त्वम् उपवासपारणाय वनपुत्र, अत, अपसर =
इतो दूरं गच्छ ।

पितुर्देहत्यागमसहमानो ज्येष्ठ. पुत्र. परिवारस्य परित्राणाय स्वप्राणान्
समपंयन् वदति = ममेत्यादिना । मम = आत्मन, प्राणै = जीवनदानेन,

स्त्री के लिए पातिव्रत-धर्म ही सब कुछ है । अत इत कृतकृत्य शरीर से आर्य
और कुल की रक्षा मैं चाहती हूँ ।

घटोत्कच—हे देवि ! किन्तु मेरी पूज्या माँ को स्त्री-अभिप्रेत नहीं है ।

वृद्ध—तो मैं ही आप के साथ अनुगमन करूँगा ।

घटोत्कच—अरे वृद्ध ! तुम अलग हटो ।

प्रथम (पुत्र)—हे तात ! तो मैं कुछ कहना चाहता हूँ ।

वृद्ध—कहो बेटा ।

प्रथम (पुत्र)—मैं अपने प्राणों के द्वारा [माता-पिता] गुरुजनो के

रक्षणार्थं कुलस्थास्य मीकतुमर्हति मा भवान् ॥ १६ ॥
द्वितीय — आर्य ! मा भवम् ।

ज्येष्ठ श्रेष्ठ कुले लोके पितृणा च सुसंप्रिय ।

ततोऽहमेव यास्यामि गुरुवृत्तिमनुस्मरन् ॥ १७ ॥

गुरुप्राणान् = गुरुणा प्राणान् तान्, गुरो बृद्धस्य पितु भवत प्राणान् असून्;
परिरक्षितुम् = परित्रातुम्, इच्छामि । [अत] भवान्, अस्य, कुलस्य =
कुटुम्बस्य, रक्षणार्थम् = परित्राणार्थम्, मा मीकतुमर्हति = परित्यक्तुं योग्यो-
ऽस्ति । मम परित्यागो भवता कर्तव्य इत्यर्थं । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ १६ ॥

अन्वय — मम, प्राणै, गुरुप्राणान् परिरक्षितुम्, इच्छामि, [अत.]

अस्य, कुलस्य, रक्षणार्थम्, भवान्, मा, मीकतुम्, अर्हति ॥ १६ ॥

पदार्थ — मम = मेरे, प्राणै = प्राणों के द्वारा, गुरुप्राणान् = [माता पिता
आदि] गुरुजनों के प्राणों के, परिरक्षितुम् = परित्राण के लिए, इच्छामि = मैं
सोचता हूँ । [अत] अस्य = इसलिए इस, कुलस्य = कुल की, रक्षणार्थम् = रक्षा के
लिए, भवान् = आप, मा मीकतुम् = मुझे छोड़ देने में, अर्हति = समर्थ है ॥ १६ ॥

एव वदन्त ज्येष्ठ भ्रातर वारयन् मध्यम पुत्र. कथयति — ज्येष्ठ इति ।

लोके = इह समारे, कुले = वंशे, ज्येष्ठ — अग्रज, श्रेष्ठ = अतिशयेन प्रशस्य ।
गुणवान् ज्येष्ठो लोके पूज्यतम साधुमिश्राणर्हितो भवति । तथा च मनु —

'ज्येष्ठ पूज्यतमो लोके ज्येष्ठ सद्भिरर्णहित ॥' (मनु० ९.१०९)

पितृणाम् = गुरुजनानाम्, सुसंप्रियश्च = अत्यन्तप्रिय स्नेहपात्र भवति, अथवा
विण्डदाने अग्रजस्य अधिकार, अत अन्यपुत्रापेक्षया प्रियतर । ततः = तस्मात्
कारणात्, तव रक्षणीयत्वादित्यर्थं । अहमेव = मध्यम एव, गुरुवृत्तिम् =
ज्येष्ठ प्रति वृत्तिम् आचारम्, अनुस्मरन् = चिन्तयन्, यास्यामि = गमिष्यामि,

प्राणों की रक्षा करना चाहता हूँ । इसलिए इस परिवार की रक्षा के लिए
मुझे छोड़ देने में आप समर्थ है ॥ १६ ॥

द्वितीय (पुत्र) — आर्य ! इस प्रकार न कहे । [वयोकि —]

ज्येष्ठ पुत्र परिवार में और लोक में सदा श्रेष्ठ [अर्थात् पूज्य] होता
है, और माता-पिता को सबसे अधिक प्रिय भी होता है । अत अपने गुरुजनों के
प्रति अपने कर्तव्य का स्मरण करता हुआ मैं [मध्यम पुत्र] ही जाऊँगा ॥ १७ ॥

तृतीयः—आर्यो ! मा मैवम् ।

ज्येष्ठो भ्राता पितृममः कथितो ब्रह्मवादिभिः ।

ततोऽहं कर्तुं मत्स्यहो गुर्या प्राणरक्षणम् ॥ १८ ॥

प्रथमः—बन्धु ! मा मैवम् ।

चक्रामनारण्यार्यं राक्षसेन महति दीय । ज्येष्ठो भ्राता विनामामावेजुजात्
भ्रातृन् मत्काञ्छादनादिभिः पितेव विभृतात् । अनुजात्र भ्रातरं पुना इव ज्येष्ठे
भ्रातरि धर्माय वर्तेरन् । इत्याचारमनुस्मरन् । तथा च मनु —

‘पितेव पालयेत् पुत्रान् ज्येष्ठो भ्रातृन् यवीयम ।

पुत्रवच्चापि वर्तेरन् ज्येष्ठे भ्रातरि धर्मतः ॥ (मनु० ९ १०८)

अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ १७ ॥

अन्वय—ज्येष्ठ कुले, लोके श्रेष्ठ पितृणा, च, मुमुक्षुः, तत्र गुरुवृत्तिम्,
अनुस्मरन्, अहमेव, याम्यामि ॥ १७ ॥

पदार्थ—ज्येष्ठ=ज्येष्ठ पुत्र, कुले=कुल [एव] लोके=सनार मे,
श्रेष्ठ=दूज्य होता है । पितृणा च=श्रीर पिता को मुमुक्षुः=अत्यन्त प्रिय होता
है । तत्र=इसलिए, गुरुवृत्तिम्=अपने गुरुजनों के प्रति कर्तव्य का, अनुस्मरन्=
स्मरण करता हुआ, अहमेव=मैं [मन्मथ पुत्र] ही याम्यामि=जाऊँगा ॥ १७ ॥

कनिष्ठ पुत्र उवाच भ्रातरो वारयन्नाह—ज्येष्ठ इति । ज्येष्ठ भ्राता,
पितृमम = पितृमत् पूजनीय - इति, ब्रह्मवादिभिः = ब्रह्मज्ञानमन्त्रं मन्वादि-
धर्मयाम्यकारं, कथित = प्रोक्त । तत = तस्मात् कारणात्, गुरुणां =
अन्मज्येष्ठानाम् गुरुषु गोप्यतो श्रेष्ठे - इत्यमरः । पिता ज्येष्ठो भ्रातरो च
गुरुव तेषां गुरुणां, प्राणरक्षणम् = जीवनस्य परिचायम्, कर्तुम् = मन्वादिभिरुम्
अहं [कनिष्ठ पुत्र], अहं = मन्मथ अस्मि । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ १८ ॥

अन्वय—ज्येष्ठ, भ्राता, ब्रह्मवादिभिः, पितृमम, कथित । तत्र, अहम्,
[एव] . गुरुणा, प्राणरक्षणम्, कर्तुम् अहं, अस्मि ॥ १८ ॥

तृतीय (पुत्र)—आर्य, इस प्रकार न कहें । [क्योंकि—]

ब्रह्मवादियों के द्वारा ऐसा कहा गया है कि—वडा माई पिता के समान होता
है । इसलिये मैं ही अपने गुरुजनों की जीवत रक्षा करने में योग्य हूँ ॥ १८ ॥

प्रथम (पुत्र)—बन्धु, नहीं, ऐसा नहीं । [क्योंकि—]

वृद्धः—एह्ये हि पुन !

विनिमाय गुरुप्राणान् स्वैः प्राणैर्गुरुवत्सल । ।

अकृतात्मदुरावाप ब्रह्मलोकमवाप्नुहि ॥ २१ ॥

द्वितीयः—अनुगृहीतोऽस्मि । अम्ब ! अभिवादये ।

ब्राह्मणी—जाद ! चिर जीव [जात ! चिरं जीव] ।

द्वितीयः—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्यं ! अभिवादये ।

प्रथमः—एह्ये हि वत्स !

राक्षसेन सह प्रस्थानायोद्यत्स्य पुत्रस्य अभिवादनानन्तर वृद्धस्य आशीर्वचनम्-
विनिमायेत्यादि । हे गुरुवत्सल = हे गुरुजनानुरागि, गुरुपु वत्सल भक्त-
तत्सम्बुद्धी, स्वैः प्राणैः = स्वकीयै प्राणै अमुभि, गुरुप्राणान् = पूज्यजनजीवनानि
त्तात् विनिमाय = परिवर्त्य, त्यबन्तप्रयोग, वि + नि = भेद् प्रणिदाने, प्रणिदान
विनिमय प्रत्यपण च, स्वप्राणविनिमयेन तेषा जीवनरक्षा विधातुमिति भाव ।
अकृतात्मदुरावापम् = अकृतात्मनि दुरात्मनि दुरावाप दुर्लभम् । दु खेत
अवाप्तु शक्यम्, दुर + अव + आप् अनधिगतात्मज्ञानैरित्यर्थ । ब्रह्मलोकम् =
ब्रह्मणः लोक देवलोकविशेषम्, अवाप्नुहि = लभस्व । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ २१ ॥

अन्वय—हे गुरुवत्सल !, स्वै, प्राणै, गुरुप्राणान् विनिमाय, अकृतात्म-
दुरावापम्, ब्रह्मलोकम्, अवाप्नुहि ॥ २१ ॥

पदार्थ—हे गुरुवत्सल ! = हे पूज्य जनो मे अनुराग रखने वाले पुत्र,
स्वै प्राणै = अपने प्राणों के द्वारा, गुरुप्राणान् = अपने पूज्यजनो के प्राण का;
विनिमाय विनिमय (अर्थात् अदता बदली) करके, अकृतात्मदुरावापम् = अजि-
तेन्द्रियो को सर्वथा दुर्लभ, ब्रह्मलोक = स्वर्गलोक को, अवाप्नुहि प्राप्त करो ॥ २१ ॥

वृद्ध—आओ, आओ, मेरे पुत्र ।

पूज्य जनो के अनुरागी तुमने अपने प्राणों के विनिमय द्वारा गुरुजनों के
प्राणों की रक्षा की है । अतः तुम्हें वह ब्रह्मलोक प्राप्त हो जो पापात्माओं को
सर्वथा दुर्लभ है ॥ २१ ॥

द्वितीय (पुत्र)—मैं अनुगृहीत हूँ । माँ ! मेरा प्रणाम स्वीकार करे ।

ब्राह्मणी—चिरजीवी होओ, मेरे पुत्र !

द्वितीय (पुत्र)—मैं अनुगृहीत हूँ । माई ! मेरा प्रणाम स्वीकार करें ।

प्रथम (पुत्र)—आओ, आओ, मेरे माई !

परिष्वजस्व गाढ मां परिष्वक्तः शुभैर्गुणैः ।

कीर्त्या तत्र परिष्वक्ता भविष्यति वसुन्धरा ॥ २२ ॥

द्वितीयः—अनुग्रहीतोऽस्मि ।

तृतीयः—आर्य ! भविवादये ।

द्वितीयः—स्वस्ति ।

तृतीयः—अनुग्रहीतोऽस्मि ।

द्वितीयः—भोः पुरष ! किञ्चिद् अघोमि ।

भविवादनस्य प्रत्युत्तर प्रथमः सहोदर यशोलाभाय एवम् भविवदति—
परिष्वजस्वेत्यादिना । शुभैः गुणैः=दयादाक्षिण्यादिभि शोभनगुणैः ; परि-
ष्वक्तः=उपेत , त्वम्, माम्=ज्येष्ठ सहोदर, गाढम्=हृदम्, परिष्वजस्व=
आलिङ्ग । तत्र=भवत ; कीर्त्या=कुलरक्षणजन्येन यज्ञसा, वसुन्धरा=
वसूनि धारयतीति वसुन्धरा वसुमती पृथ्वी, 'सर्वसहा वसुमती वसुधोर्वा वसुन्धरा ।
गोत्रा कु पृथिवी पृथ्वी' इत्यमर । परिष्वक्ता=परिष्वक्ता भविष्यति, अत
त्वम्, गाढालिङ्गनयोग्योऽसि । 'ष्वज्' परिष्वज्जे—इति घातो अस्मिन् इलोके
अर्थत्रये प्रयोगः, यथा परिष्वजस्व=आलिङ्ग, परिष्वक्त =उपेत , परिष्वक्ता=
व्याप्ता । अनुप्रासालङ्कार । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ २२ ॥

अन्वय—शुभै, गुणै, परिष्वक्त, [त्वम्], मा गाढ, परिष्वजस्व ।
तव, कीर्त्या, वसुन्धरा, परिष्वक्ता, भविष्यति ॥ २२ ॥

पदार्या—शुभै गुणै = [दया-दाक्षिण्य आदि] शोभन गुणो से,
परिष्वक्त = विभूषित [त्वम् = तुम] मा = मुझे, गाढम् = गाढ रूप से,
परिष्वजस्व = आलिङ्गित कर लो । तव = तुम्हारे, कीर्त्या = धरा से, वसुन्धरा =
[सम्पूर्ण] पृथ्वी, परिष्वक्ता = व्याप्त, भविष्यति = होगी ॥ २२ ॥

[दया-दाक्षिण्य आदि] शुभ गुणो से विभूषित तुम मेरा गाढालिङ्गन करो ।
तुम्हारी कीर्ति से सम्पूर्ण पृथ्वी व्याप्त होगी ॥ २२ ॥

द्वितीय (पुत्र)—मैं अनुग्रहीत हूँ ।

तृतीय (पुत्र)—आर्य ! आपको मेरा प्रणाम है ।

द्वितीय (पुत्र)—तुम्हारा मार्ग प्रशस्त हो ।

तृतीय (पुत्र)—मैं अनुग्रहीत हूँ ।

द्वितीय (पुत्र)—महाशय ! आपमे कुछ प्रार्थना करना चाहता हूँ ।

घटोत्कचः—ब्रूहि, ब्रूहि शीघ्रम् ।

द्वितीयः—एतस्मिन् वनान्तरे जलाशय इव दृश्यते । तत्र मे प्रकल्पितपरलोकस्य पिपासाप्रतीकारं करिष्यामि ।

घटोत्कचः—दृढव्यवसायिन् ! गम्यताम् । अतिकामति मातुराहारकालः । शीघ्रमागच्छ ।

द्वितीयः—भोस्तात ! एष गच्छामि । (इति निष्क्रान्त)

वृद्धः—हा हा परिमुषिताः स्मो भोः ! परिमुषिताः स्मः ।

यस्त्रिशृङ्गो मम त्वामीग्नमनोज्ञो वशपर्वतः ।

स मध्यशृङ्गमङ्गेन मनस्तपति मे भृशम् ॥ २३ ॥

मानु पारणकालातिरुमो मा भूत्, अतः शीघ्र ब्रूहि—इति भावः । प्रकल्पितपरलोकस्य = लोकान्तर प्रस्थातुमुद्यतस्य । पिपासाप्रतीकारम् = पातुमिच्छा पिपासा तस्या प्रतीकार शान्ति जलपानमित्यर्थः ।

दृढव्यवसायिन् = दृढ व्यवसाय लोकान्तर-गमनोद्यमो यस्य सः दृढव्यवसायी तस्य सम्बुद्धो । परिमुषिताः = पुत्रस्य हरणात् परिलुण्ठिता । लुण्ठनजनितमनोव्यथा वृद्ध प्रकाशयति—यस्त्रिशृङ्ग इत्यादिना । यः, मम = स्थविरस्य, त्रिशृङ्गः = त्रीणि शृङ्गाणि पुत्रत्रयरूपाणि शिखराणि यस्य स, [अन] मनोज्ञः—हृद्यः; वशपर्वतः = वश एव पर्वत सुप्रतिष्ठत्वात्; आसीत् = अभूत्, सः वशपर्वत, मध्यमशृङ्गमङ्गेन = मध्यमपुत्ररूपशृङ्गस्य नङ्गेन पातेन हेतुना, मे मनः = मम मानसम्, 'चित्त तु चेतो हृदय स्वान्त हृन्मानस मन' इत्यमरः; भृशम् = अत्यन्तम्; तपति = सन्तापम् अनुभवति । अतः सावयवरूपकालङ्कारः । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ २३ ॥

[वृद्ध पिता अपना खेद इस प्रकार प्रकट करता है—]

अन्वय—य, तु, मम, मनोज्ञ, वशपर्वतः त्रिशृङ्ग, आनीत् । म, मध्यशृङ्ग—नङ्गेन, मे, मन भृशम्, तपति ॥ २३ ॥

घटोत्कच—कहो, शीघ्र कहो ।

द्वितीय (पुत्र)—इस घने जंगल में मुझे वहाँ जलाशय-सा दिखाई पड़ रहा है । वहाँ मैं परलोक यात्रा के लिए तैयार होने के लिए अपनी प्यास बुझा लूँ ।

घटोत्कच—हे दृढ निश्चय वाले ! जाओ, क्योंकि मेरी माता के भोजन का समय बीत रहा है । (लत जाकर) जल्दी आओ ।

द्वितीय (पुत्र)—हे तात ! अब मैं जाता हूँ । (चला जाता है) ।

वृद्ध—हाय, हाय, हम लोग लूट लिए गए; ओह, हम लोग लूट लिए गए ।

हा पुत्रक ! । कथं गत एव ।

तरुण ! तरुणतानुरूपकान्ते !

नियमपराध्ययनप्रसक्तबुद्धे ! ।

कथमिह गजराजदन्तभग्न-

स्तरुखि यास्यसि पुष्पितो विनाशम् ॥ २४ ॥

पदार्थ—य = जो; मम = मेरा, मनोज्ञ = मनोहर, वश पर्वत =

बंशरूपी पर्वत, त्रिशृङ्ग आसीत् = तीन शिखरो वाला था । स मध्य-
शृङ्ग मङ्गलेन = [मध्यमपुत्र रूपी] मध्य शृङ्ग के टूट जाने से, मे मन =
मेरा मन, भृशम् = अत्यन्त; तपति = सन्ताप का अनुभव कर रहा है ॥ २४ ॥

बृद्ध स्वमतोव्यथा ज्ञापयति—तरुणेत्यादिना । हे तरुण = हे युवक; हे
तरुणतानुरूपकान्ते = हे यौवनानुरूपशोभासम्पन्न; तरुणस्य भावः तरुणता
तस्या तरुणताया अनुरूपा सङ्गी वान्ति शोभा यस्य तत्सबुद्धी, नियमपराध्य-
यनप्रसक्तबुद्धे = हे अध्ययनतत्परमते, नियमपरा व्रतनिरता अध्ययनप्रभक्ता
च बुद्धि यस्य तन्मन्बुद्धौ, इह = वने, गजराजदन्तभग्नः = गजेन्द्रोत्पाटित ;
गजाना हस्तियुथस्य राजा स्वामी द्विरदपति, तस्य दन्त रद तेन भग्न
उत्पाटित, पुष्पितः = मञ्जातपुष्प, तरुखि = वृक्ष इव, कथम् = केन
प्रकारेण, विनाशम् = संहारम्, यास्यसि = प्राप्स्यसि । प्रथमचरणे 'तरुण-
तरुण०'—इति यमकालङ्कार । तारुण्यभूषितस्य तनयस्य पुष्पितवृक्षेण सह
सादस्यत्वात् उपमालङ्कार । पुष्पिताग्रा वृत्तम् । तन्लक्षणं तु—'अयुजि नयुग-
रेफलो मकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा' ॥ २४ ॥

[पिता अपने सन्ताप को इस प्रकार प्रकट करता है—]

अन्वय—हे तरुण, हे तरुणतानुरूप कान्ते !, नियम पराध्ययन प्रसक्तबुद्धे,
इह, गजराज दन्त-भग्न, पुष्पित, तरु, इव, कथम्, विनाशम्, यास्यसि ॥२४॥

पदार्थ—हे तरुण !—हे पुत्रक !, हे तरुणतानुरूप-कान्ते=हे युवावस्था

जो मेरा तीन शिखरो वाला मनोहर वश रूपी पर्वत था, उसके [मध्यम पुत्र
रूपी] मध्य शृङ्ग के टूट जाने से मेरा मन अत्यन्त मन्ताप का अनुभव कर रहा है ।
हाय वेटा, क्या तुम चले ही गए ।

हे युवक, हे युवावस्था की तरुणाई के अनुरूप वान्ति वाले, हे मयमी एव
निरन्तर अध्ययन में तत्पर चित्त वाले, यहाँ प्रसक्त गजराज के दन्ताघात से
भग्न, फूलों से भरे हुए वृक्ष के समान किस प्रकार विनाश को तुम प्राप्त
हूए हो ॥ २४ ॥

घटोत्कचः—चिरायते खलु ब्राह्मणवटुः । अतिक्रामति मातुराहारकालः । किन्तु खलु करिष्ये । भवतु दृष्टम् । भो ब्राह्मण ! आहूयतां तव पुत्रः ।

वृद्धः—आः, अतिराक्षसं खलु ते वचनम् ।

घटोत्कचः—कथं रुष्यति । मर्षयतु भवान् मर्षयतु । अयं मे प्रकृतिदोषः । अथ किन्नामा तव पुत्रः ?

वृद्धः—एतदपि न शक्यं श्रोतुम् ।

की तरुणाई के अनुरूप कान्ति वाले !, नियम-पराध्ययन-प्रसक्त-बुद्धे—हे सयमी एव निरन्तर अध्ययन में तत्पर चित्त वाले !; इह—यहाँ, गजराज-दन्त-भग्न = प्रमत्त गजराज के दन्ताघात से भग्न, पुष्पित = फूलों से भरे हुए; तह = वृक्ष, इव = के समान, कथम् = किस प्रकार, विनाशम् = विनाश को यास्यसि =] तुम] प्राप्त हुए हो ॥ २४ ॥

विमर्श—इस श्लोक में पूर्णोपमा इस प्रकार बत पड़ी है—उपमान के रूप में 'तह' और उपमेय ब्राह्मण कुमार है । तर्हण और पुष्पित का विम्ब-प्रतिबिम्बभाव ही साधारण धर्म है । अथवा 'विनाश यास्यसि' भी साधारण धर्म हो सकता है । उपमावाचक शब्द इव है ।

चिरायते = विलम्ब्यते, चिरशब्दात् 'लोहितादिडाज्म्य क्यप्' (पा० सू० ३-१-१३) इति क्यप् ।

अतिराक्षसम् = राक्षसान् अतिक्रान्तम्, = राक्षसोऽपीदृश क्रूर वचन न ब्रूयादिति भाव । रुष्यति = कुप्यति । मर्षयतु—क्षम्यताम् । प्रकृतिदोषः = अनुचितवक्तृत्व तु मम स्वभावगतदोष । अथेति प्रश्ने । किन्नामा = कि नाम यस्य स । तपस्वी = दीन, 'मध्यम'—इति पितृम्याम् उपेक्षितत्वात् । सदृशम् = अनुरूपम् ॥

घटोत्कच—ब्राह्मण-बालक तो देर लगा रहा है । माता के आहार का काल व्यतीत हो रहा है । क्या किया जाय ? अच्छा ममज्ञ गया । हे ब्राह्मण, अपने पुत्र को बुलाओ ।

वृद्ध—ओह, तुम्हारी वाणी अत्यन्त रुक्ष है ।

घटोत्कच—क्यों रुष्ट हो रहे हैं ? आप मुझे क्षमा करें, क्षमा करें । यह मेरा स्वभावगत दोष है । किन्तु आपके पुत्र का क्या नाम है ?

वृद्ध—यह भी [तुम हमसे] नहीं सुन सकते ।

घटोत्कचः—युक्तम्, भोः ! शाह्यणकुमार ! किन्नामा ते भ्राता ?

प्रथमः—तपस्वी मध्यमः ।

घटोत्कचः—मध्यम इति सदृशमस्य । अहमेवाह्वयामि । भो मध्यम ! मध्यम शीघ्रमागच्छ ।

(ततः प्रविशति भीमसेन)

भीमः—कस्यायं स्वरः ?

खगशतविरुते विरोति तारं

द्रुमगहने दृढसङ्कटे वनेऽस्मिन् ।

जनयति च मनोज्वरं स्वरोऽयं

बहुसदृशो हि धनञ्जयस्वरस्य ॥ २५ ॥

‘मध्यम’—इति सम्बोधनशब्दश्रवणान्तरम्, अहमेवाहूत इति मत्प्रमानस्य

भीमसेनस्य प्रवेशं सूचयति—तत इत्यादिना ।

स्वरसादृश्येन विस्मितस्य भीमसेनस्य कौतूहलं दर्शयति—खगेत्यादिना ।

खगशतविरुते—पक्षिशतस्य विरुतं शब्दं यस्मिन् (तस्मिन् वने), द्रुमगहने—

द्रुमं वृक्षं गहने व्याप्ते; दृढसङ्कटे—मृगनिविडे, अतः बाधापन्ने, अस्मिन् वने—

अरण्ये, ‘अटव्यरण्यं विपिनं गहनं काननं वनम्’ इत्यमरः, स्वरोऽयम्—अयं ध्वनिः

तारम्—अत्युच्चं यथा भवति तथा; विरोति—शब्दायते । एवमेव, च—तथा,

मनोज्वरम्—उत्कण्ठा कौतूहलं वा; जनयति—उत्पादयति; हि—यत; धनञ्जय-

घटोत्कच—ठीक है, हे शाह्यण बानक, तुम्हारे भाई का क्या नाम है ?

प्रथम (पुत्र)—दीन मध्यम ।

घटोत्कच—‘मध्यम’ नाम इसके अनुरूप है । मैं ही बुलाता हूँ । हे मध्यम, हे मध्यम, शीघ्र आओ ।

(उसके बाद भीमसेन प्रवेश करते हैं)

भीम—यह किसका स्वर है ?

संकटों पक्षियों के कलरव से युक्त, अत्यन्त सकटापन्न, अनेक गहन वृक्षों

से संकुलित इस वन में उच्च स्वर से [कौन] पुकार रहा है । यह स्वर मेरे

मन में अत्यन्त उत्कण्ठा उत्पन्न कर रहा है कि [मह] अर्जुन के स्वर के

अत्यन्त समान है ॥ २५ ॥

१. ‘धनञ्जयस्य शब्दः’ इति वा पाठः ।

घटोत्कचः—चिरायते खलु ब्राह्मणवटुः; अतिक्रामति मातु-
राहारकालः । किन्तु खलु करिष्ये । भवतु, वृष्टम् । उच्चैः शब्दा-
पयामि । भो भो मध्यम ! शीघ्रमागच्छ ।

भीमः—भोः ! को नु खल्वेतस्मिन् वनान्तरे मम व्यायाम-
विघ्नमुत्पाद्य मध्यम ! मध्यम ! इति मा शब्दापयति । भवतु,
पश्यामस्तावत् । (परिक्रम्यावलोक्य सविस्मयम्) अहो दर्शनीयोऽय

स्वरस्य = अर्जुनस्वरस्य, धन जयति, अरीन् निजित्य नर्जयतीति धनञ्जय ।
अस्य निश्चित्यथा महामारते—

सर्वान् जनपदान् जित्वा विनमाश्रित्य केवलम् ।

मध्ये धनस्य तिष्ठामि तेनाहुर्मा धनञ्जयम् ॥ (४४२१३)

बहुमदृश = अत्यन्तानुकारी, अर्जुनवाण्या सदृशोऽयं स्वर इति भाव ।
अत स्ववन्धुभाव द्योतयति । स्मरणालंकार । पृष्पिताया वृत्तम् ॥ २५ ॥

[घटोत्कच के शब्द को सुनकर भीम इस प्रकार की सम्भावना प्रकट करते हैं—]

अन्वय—खग शत विस्ते, दृढमकटे, द्रुम गहने, अस्मिन् वने, तार, विरोति
अयम्, स्वर, मनोज्वरम्, जनयति हि धनञ्जयस्वरस्य, बहुसदृश ॥ २५ ॥

पदार्थ—खगशत विस्ते = सैकड़ों पक्षियों की चहचहाहट से युक्त, दृढ-
मकटे = अत्यन्त सकटापन्न, द्रुमगहने = अनेक गहन वृक्षों से सकुलित, अस्मिन्
वने = इस वन में, तार = उच्च स्वर से, विरोति = पुकार रहा है । अयम्,
स्वर = यह स्वर, मनोज्वरम् = कौतूहल, जनयति = उत्पन्न कर रहा है;
हि = कि, धनञ्जयस्वरस्य = [१६] अर्जुन के स्वर के, बहुमदृश = अत्यन्त
समान [अस्ति = है] ॥ २५ ॥

शब्दापयामि = आह्वयामि, शब्दाद् णिच्, पुगागम । अपाणिनीयोऽयं प्रयोग ।
दूराह्वानं तु न भरतसम्मतं, यथा—दूराह्वानं वधो युद्धं राजददेशादिविघ्नव ।
दर्शनीयः = बिगिष्टाकृतित्वात् द्रष्टुं योग्य ॥

घटोत्कच—ब्राह्मण बालक तो देर कर रहा है और, माता के बाहर
का काल व्यतीत हो रहा है । क्या किया जाय ? अच्छा, समझ गया । जोर से
बुलाऊँ । हे मध्यम, शीघ्र आओ ।

भीम—आह, यह कौन है जो इस गहन वन में मेरे व्यायाम में विघ्न
उत्पन्न करके 'मध्यम' 'मध्यम' कहते हुए मुझे बुला रहा है । अच्छा, तो देखूँ ।
(घूमकर और देखकर विस्मय के साथ) अहा, यह पुष्ट तो दर्शन

पुरुषः । अयं हि,—

सिंहास्यः सिंहदंष्ट्रो मधुनिभनयनः स्निग्धगम्भीरकण्ठो

बभ्रुध्रु श्येननासो द्विरदपतिहनुर्दीप्तविशिलष्टकेशः ।

व्यूढोरा वज्रमध्यो गजवृषभगतिलम्बपीनांसवाहुः

सूव्यक्तं राक्षसोजो विपुलबलयुतो लोकवीरस्य पुनः ॥ २६ ॥

घटोत्कचस्य दशनीयत्व वर्णयति—सिंहास्य इत्यादिना । सिंहास्य=सिंहमुख, सिंहस्य मृगेन्द्रस्य आस्य मुखम् इव मुख यस्य स, सिंहदंष्ट्रः=व्याघ्रस्य दंष्ट्रा दन्त इव दंष्ट्रा यस्य स, मधुनिभनयनः=मधुनिभे रक्तवर्णत्वात् मधुतुल्ये नयने यस्य स, स्निग्धगम्भीरकण्ठः=स्निग्धो मधुर गम्भीरश्च कण्ठ कण्ठनादो यस्य स, बभ्रुध्रुः=बभ्रु पिङ्गले ध्रुवो यस्य स, श्येननासः=गृध्रनास, श्येनस्य नासा इव नासिका यस्य स, द्विरदपतिहनुः=गजराजस्य हनुरिव हनु यस्य स, दीर्घविशिलष्टकेशः=दीर्घा विशिलष्टा विरला प्रकीर्णाश्च केशा कुन्तला यस्य स, 'विकुर कुन्तलो बाल कच केश शिरोरुह'-इत्यमर । व्यूढोरा=व्यूढ विस्तीर्णम् उरो बक्ष यस्य स; अपाणिनीयोऽय प्रयोग । 'उर प्रभृतिभ्य कप्' (पा सू ५४.१५१) इत्यनेन कप्रत्ययमात्र । वज्रमध्यः=वज्र कुलिश तदिव काठि-यादिना मध्यभाग यस्य स, गजवृषभगतिः=गजेन्द्रगति, वृषभशब्दोऽथ श्लेष्ठावाचक, यथा—

स्फुरत्तरपदे व्याघ्रपुगवर्षभकुञ्जरा ।

मिहशार्दूलनागाद्या पुमि श्लेष्ठायंवाचका ॥

लम्बपीनांसवाहुः—लम्बो पीनो पुष्टौ च अमौ स्कन्धौ बाहु भुजे च यस्य स, विपुलबलयुतः=महदबलसयुत, राक्षसोज=राक्षस्या जात घोरा-कृतित्वात्, लोकवीरस्य पुनः=लोके वीर शूर तस्य जगत्प्रख्यातशूरस्य पुन

के योग्य है । क्योंकि, यह—

सिंह के समान मुख वाला, सिंह के समान दाढी वाला, मदिरा के समान [मादक] भाँखे वाला, विक्रान्त वीर उन्नत कण्ठ वाला, भूरी भीही वाला, श्येन पक्षी के समान नाक वाला, गजराज के समान ठोड़ी वाला, चमकीले वीर ।

घटोत्कचः—चिरायते खलु ब्राह्मणवटुः । उच्चैः शब्दापयामि भो भो मध्यम ! शीघ्रमागच्छ ।

भीमः—भोः ! प्राप्तोऽस्मि ।

घटोत्कचः—न खल्वयं ब्राह्मणवटुः । अहो दर्शनीयोऽयं पुरुषः ।
य एष —

सूनु रस्तीति, सुव्यक्तम्=सुस्पष्टम् । इह बद्धीनामुपमाना ससृष्टिः । स्रग्धरा वृत्तम् ।

तल्लक्षण तु—अर्म्भैर्याना त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ॥ २६ ॥

[घटोत्कच के शरीर की गठन को देखकर भीम इस प्रकार उसका वर्णन प्रस्तुत करते हैं—]

अन्वय—सिंहास्य, सिंहदंष्ट्र, मधुनिभनयन, स्निग्ध-गम्भीर कण्ठ, वध्रुध्रू, श्येननास, द्विरद-पति हनु, दीप्त विशिलष्ट-केश, व्यूढोरा, वज्रमध्य, गज-वृषभ-गति, लम्ब-पीनास-बाहु, विपुल बल-युत राक्षसीज, लोकवीरस्य, [अयम्] पुन सुव्यक्तम् ॥ २६ ॥

पदार्थ—सिंहास्य =सिंह के समान मुख वाला, सिंह-दंष्ट्र =सिंह के समान दाढ़ी वाला; मधु-निभ नयन =मदिरा के समान [मादक] आँखों वाला; स्निग्ध-गम्भीर-कण्ठ =चिकने और उन्नत कण्ठ [अर्थात् गीवा] वाला, वध्रु-ध्रू =भूरी मोहो वाला, श्येन-नास =श्येन [=वाज] पक्षी के समान [लम्बी कुछ उठी हुई] नाक वाला, द्विरदपति-हनु =गजराज के समान ठोड़ी वाला, दीप्त विशिलष्ट-केश =चमकीले और बिखरे हुए बालों वाला, व्यूढ उरा =विस्तीर्ण वक्ष वाला, वज्रमध्य =वज्र के समान [कठोर] कटिप्रदेश, गजवृषभ गति =गजराज के समान [मदमत्त] चाल वाला;

बिखरे बालों वाला, विस्तीर्ण वक्ष वाला, वज्र के समान [कठोर] कटि-प्रदेश युक्त, गजराज के समान [मदमत्त] चाल वाला, लम्बी भुजाओं और विशाल कंधों वाला, विपुल शक्ति सम्पन्न [यह] अवश्य ही किसी राक्षसी से उत्पन्न जगत् प्रसिद्ध योद्धा का पुत्र है ॥ २६ ॥

घटोत्कच—ब्राह्मण-बालक तो देर कर रहा है । जोर से बुलाऊँ । हे मध्यम, हे मध्यम, शीघ्र आओ ।
भीम—ओ, मैं आ गया ।
घटोत्कच—यह तो ब्राह्मण बालक नहीं है । अहा, यह पुरुष तो दर्शन के योग्य है । जो, यह—

सिंहाकृतिः कनकतालसमानबाहुः

मध्ये तनुर्गण्डपक्षबिलिप्तपक्षः^१ ।

विष्णुभवेद् विकसिताम्बुजपत्रनेत्रो

नेत्रे ममाहरति बन्धुरिवागतोऽयम् ॥ २७ ॥

लम्ब-पीनास-बाहु = लम्बी मुजाओ और विशाल कन्धो वाला; विपुल-बल-युत = अत्यन्त बलशाली; राक्षसीजः = राक्षसी से उत्पन्न; लोकवीरस्य = जगत् प्रसिद्ध योद्धा का, [अयम् = यह] पुत्र = पुत्र है; इति मुख्यतम् = यह स्पष्ट ही है ॥ २६ ॥

मीम दृष्ट्वा घटोत्कच स्वमनोमावं प्रकटयति—सिंहादिना । अयं पुरुषः सिंहाकृतिः=भृगेन्द्राकृति, सिंहस्य आकृतिरिव आकारो यस्य स; कनकताल-समानबाहु = स्वर्णतालवृक्षसदृशबाहु, कनकस्य मुवर्णस्य ताल तालवृक्ष-तस्मान्नो बाहु भुजे यस्य स; मध्ये = मध्यभागे, तनुः = कृशः; गण्डपक्षविलिप्त-पक्षः = गण्डपक्षाविव मन्त्री पाद्वर्भागी यस्य स इत्यर्थं । विकसिताम्बुजपत्र-नेत्रः = प्रफुल्लितपद्मदलसदृशलोचन, विकसितस्य अम्बुजस्य पत्रे दले इव नेत्रे यस्य स, किमयम्?, विष्णुः भवेत् अच्युत स्यात्?; मम = घटोत्कचस्य; नेत्रे = चक्षुषी, आगत = आगतमनोऽयम्, न तु सम्भाषणादिना परोक्षात्; बन्धु-रिव = ज्ञातिजन इव; आहरति = आकर्षयति, मनुनाव जनयतीत्यर्थं । यथा किराते—अमितस्त पृथासूनु स्नहेन परितस्तर ।

अविज्ञातेऽपि बन्धो हि बलात् प्रह्लादते मन ॥ (११.८)

उपमानद्वार । वमन्ततिलका वृत्तम् ॥ २७ ॥

[घटोत्कच मीम के रूप का वर्णन इस प्रकार करता है—]

अन्वय—सिंहाकृति, कनक-ताल समान बाहु, मध्ये, तनु, गण्ड-पक्ष-विलिप्त-पक्ष, विकसित-अम्बुज-पत्र नेत्र, अयम्, विष्णु, भवेत् । आगत, बन्धु, इव, [अयम्] मम, नेत्रे, आहरति ॥ २७ ॥

सिंह के समान आकृति वाले, स्वर्ण के ताड़ वृक्ष के समान लम्बी मुजाओ वाले, मध्यभाग में कृश, गण्ड के पक्षी के समान स्निग्ध पाद्वर्-भाग वाले, और प्रफुल्लित कमल की पङ्क्तियों के समान आँखों वाले यह सम्भवतः भगवान् विष्णु हो सकते हैं जो पास आते हुए बन्धु के समान मेरी आँखों को आकृष्ट कर रहे हैं ॥ २७ ॥

१ 'विलिप्तपक्ष' इति वा पाठ ।

भो मध्यम ! त्वां खल्वहं शब्दापयामि ।

भीमः—अतः खल्वहं प्राप्तः ।

घटोत्कचः—किं भवानपि मध्यमः ?

भीमः—न तावदपरः ।

मध्यमोऽहमवध्यानामुत्सक्ताना च मध्यमः ।

मध्यमोऽहं क्षितौ भद्र ! भ्रातृणामपि मध्यमः ॥ २८ ॥

पदार्थ—सिहाकृति = सिंह के समान आकृति वाला कनकताल समान-
बाहु = सुवर्ण के ताड़ के पेड़ के समान [लम्बी] भुजाओं वाला, मध्ये =
मध्यभाग में, तनु = कृश, गरुड-पक्ष विलिप्त-पक्ष = गरुड के पंखों के समान
विकसित पार्श्वभाग वाला, विकसित अम्बुज पत्र-नेत्र = खिली हुई कमल की
पट्टखुदियों के समान आँखों वाला, अयम् = यह, विष्णु भवेत् = [सम्भवतः]
भगवान् विष्णु हो सकते हैं । आगतः बन्धु इव-पास आते हुए बन्धु के समान,
[अयम् = यह] मम नेत्रे-मेरी आँखों को, आहरति-आकर्षित कर रहा है ॥ २७ ॥

अहमेव सर्वथा मध्यमः नान्य कोऽपि इति प्रतिपादयति भीमसेन-मध्यम
इत्यादिना । अहम् = भीमसेन ; अवध्यानाम् = शत्रुभिर्हन्तुम् अशक्ताना पाण्डवाना
मध्ये मध्यमोऽस्मि इति शेष । पाण्डवाना चावधमत्व प्रसिद्धम् । उत्सक्ताना च-
शौर्योद्धताना (उव् + सिच् + क्त) च मध्ये । मध्यम = मध्यमपाण्डवोऽहम् ;
भद्र = हे सौम्य, क्षितौ = पृथिव्याम्, अहं मध्यमः = अहमेव मध्यमत्वेन लोकं
प्रथयात । भ्रातृणामपि = युधिष्ठिरादीना मध्येऽपि अहम्, मध्यमः = पञ्चसु
पाण्डवेषु मध्ये मध्यम पाण्डवो भीमसेन इत्यर्थः । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ २८ ॥

[भीम अपना परिचय इस प्रकार देते हैं]—

अन्वय—हे भद्र ! अवध्यानाम्, [पाण्डवानाम्, मध्ये] अहम्, मध्यम ।

च उत्सक्तानाम्, [अहम्] मध्यम । क्षितौ, अहम्, मध्यम । भ्रातृणाम्,
अपि, [अहम् एव] मध्यम ॥ २८ ॥

हे मध्यम, मैं तो तुम्हें ही बुला रहा हूँ ।

भीम—इसीलिए तो मैं आ गया ।

घटोत्कच—क्या आप भी 'मध्यम' हैं ।

भीम—फिर दूसरा तो नहीं ही है, क्योंकि—

१ 'क्षितौ' इति पाठ ।

घटोत्कच — भवितव्यम् ।

भीम. — अपि च,

मध्यम पञ्चभूतानां पार्थिवानां च मध्यम ।

भवे^१ च मध्यमो लोके सर्वकार्येषु मध्यम ॥ २९ ॥

पदार्थ—हे मद्र = हे सीम्य । अवध्यानाम् = शत्रुओं से न मारे जान वाले, [पाण्डवानाम्, मध्ये = पाण्डवों के बीच में] अहम् = मैं, मध्यम = मध्यम [पाण्डव] हूँ । च = और; उत्सिस्तानाम् = निष्कासितों के अथवा शौर्य में गर्व करने वाले के बीच म [अहम् = मैं] मध्यम हूँ । क्षिती = मध्यमलोक रूप इस पृथ्वी पर; अहम् = मैं; मध्यम = मध्यम [लोक का मनुष्य] हूँ । भ्रातृणाम् = भाइयों के बीच, अपि = भी, [अहम् एव = मैं ही] मध्यम = मझला हूँ ॥ २८ ॥

आमनो मध्यमत्व पुन समर्थयति भीममेव — मध्यम इत्यादिना । अहम्, पञ्चभूतानाम् = पृथिव्यप्तेजोवायुवाकाशानां मध्ये, मध्यम. = पञ्चभूतेषु वायो-मध्यमम्यानीयत्वेन तत्पुत्रोऽहमपि मध्यम । पार्थिवानां च = तथा पृथ्वीश्वराणां मम भ्रातृणाम् अहं मध्यम । अहम् लोके = अस्मिन् मृत्युलोके, भवे = भवो नाम मातृकुक्षेर्निर्गम तत्र मध्यम जन्मनाऽपि मध्यमोऽहमिति भाव । तथा, सर्वकार्येषु मध्यम = सर्वेषां जनानां कार्येषु, अहं मध्यम = मध्यस्थः । एवमत्र 'भीममेवस्य मध्यमत्वम् अष्टमि प्रकारं प्रतिपादितम् । अनुष्टुप वृत्तम् ॥ २९ ॥

[अपनी उक्ति का स्पष्टीकरण करते हुए भीम कहते हैं]—

अन्वय—पञ्चभूतानां [मध्ये अहम्] मध्यम ; च पार्थिवानां [मध्ये अहम्] मध्यम , च लोके भव [अहम्] मध्यम , सर्वकार्येषु [अहम्] मध्यम ॥ २९ ॥

हे सीम्य, शत्रुओं से अवध्य [पाण्डवों में] मैं मध्यम [पाण्डव] हूँ, और शौर्य में गर्व करने वाले [पाण्डवों] के बीच मैं मध्यम [पाण्डव] हूँ । [मध्यमलोक रूप] इस पृथ्वी पर मैं मध्यम [लोक का मनुष्य] हूँ, [और अपने] भाइयों, के बीच भी मैं मध्यम [मझला भाई] हूँ ॥ २८ ॥

घटोत्कच—हीने ।

भीम—और भी—

[पृथ्वी, अप, तेज, वायु व आकाश इन] पञ्चभूतों में मध्यम [पृथ्वी व आकाश के मध्यगत वायु का पुत्र] हूँ, और भाई राजाओं के मध्य में मध्यम हूँ और ससार में उत्पन्न होने वाले [अपने भाइयों] के बीच मैं [जन्मना] मध्यम हूँ, और सभी मानवों के कार्यों में मैं मध्यम [मध्यस्थ] रहने वाला हूँ ॥ २९ ॥

वृद्धः—

मध्यमस्त्विति सम्प्रोक्ते नूनं पाण्डवमध्यम ।

अस्मान् मोक्तुमिहायातो 'दर्पान्मृत्योरिवोत्थित ॥ ३० ॥

पदार्थ—पञ्चभूतानाम्=[पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश इन] पञ्चभूतों में [पृथ्वी और आकाश के मध्य रहने वाली वायु का पुत्र] [अहम्=मैं], मध्यम =मध्यम हूँ । च=और, पाण्डवानाम्=भाई राजाओं के [मध्य अहम्=मध्य मैं], मध्यम =मध्यम, च लोके मवे=और संसार में उतरने होने वाले [अपने भाइयों] के बीच [अहम्=मैं] मध्यम=मध्यम हूँ । सर्वकार्येषु=सभी [मनुष्यों] के कार्यों में, [अहम्=मैं], मध्यम =मध्यस्थ रहने वाला हूँ ॥२९॥

विमर्श—प्रस्तुत श्लोक और इसके पहले श्लोक में चार-चार बार 'मध्यम' शब्द का प्रयोग महाकवि भास ने मात्र उस पर बल देने के लिए किया है । विभिन्न स्थलों में इसका अर्थ भी विभिन्न प्रकार से किया जा सकता है । फिर भी सन्धि में मध्यम का अर्थ सभी के बीच 'प्रमुखता' का द्योतक है । एक ही शब्द की पुनरुक्ति कवि की अपनी एक कला है, जिसे उन्होंने अन्य स्थलों में भी किया है जैसे वाइसवें श्लोक में 'परिष्वज' का प्रयोग और अन्तिम श्लोक में 'प्रभव' शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में कई बार किया गया है ।

भीमेनात्मनो मध्यमत्वकथनस्याभिप्रायम् अभिज्ञाय वृद्ध. स्वगतमाह— मध्यम इत्यादिना । मध्यमस्तु इति सम्प्रोक्ते =सम्यगुच्चारिते सति, नूनम्=निश्चितम्, पाण्डवमध्यम.=पाण्डवेषु मध्यमत्वेन प्रसिद्ध भीमोऽयम् । राक्षस-भयाद् अस्मान्, मोक्तुम् =मोचयितुम्, इह =अस्मिन् स्थाने, मृत्योः =अन्तक-स्य, दर्पात् =गर्वात्; उत्थित =उद्युक्त इव, आयात् =आगत । उत्प्रेषालकार । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ३० ॥

[ब्राह्मण अपने मन में विचार करता है कि]—

अन्वय—[अहम्] मध्यम, इति, सम्प्रोक्ते, नूनम्, पाण्डवमध्यम । दर्पात्, मृत्यो, इव अस्मात् [राक्षसात्], मोक्तुम्, उत्थित, इह, आयात् ॥ ३० ॥

वृद्ध—

'मैं मध्यम हूँ'—ऐसा कहने से निश्चित रूप से [यह] पाण्डवों में मध्यम [भीम] होंगे । मृत्यु के गर्वस्वरूप इस राक्षस से बचाने के लिए मानो उद्यत हुए से यहाँ आये हैं ॥ ३० ॥

(प्रविश्य)

। मध्यमः—

अस्यामाचम्य पश्चिन्यां परलोकेषु दुर्लभम् ।

आत्मनैवात्मनो दत्तं पद्मपत्रोज्ज्वलं जलम् ॥ ३१ ॥

पदार्थ—[अहम्=मैं] मध्यमः=मध्यम हूँ, इति-ऐसा; सप्रोक्ते=कहते से, नूनम्=निश्चय रूप से, [अयम्=यह] पाण्डवमध्यम.=पाण्डवों में मध्यम [भीम] होंगे; दर्शद् मृत्योः=मृत्यु के गर्व रूरी, अस्मात् [राजतात्]-इम [राजस] से; मोक्षुम्=बचाने के लिए; उत्थिन., इव=मानो उद्युक्त होकर; इह=यहाँ, आगत=आये हैं ॥ ३० ॥

विषासाशास्त्रयं जलाशयं समुत्तमस्य मध्यमपुत्रस्य वचनम्—अस्या-मित्यादि । अस्याम्=पुरोऽवस्थितायाम्; पश्चिन्याम्=सरसि, पद्मानि अस्या सन्ति इति पश्चिनी तस्याम्; परलोकेषु=स्वर्गादिषु लोकेषु, दुर्लभम्=दु खेन लब्धं योग्यम्; अप्राप्तमित्यर्थः । पद्मपत्रोज्ज्वलम्=कमलदलमिव उज्ज्वलम् अर्थात् निर्मलम्, जलम्=पतिनम्, आचम्य=पीत्वा, आत्मनैव=स्वैर्नैव, आत्मनः=स्वस्य, दत्तम्=अपितम् । 'सन्तानविहीनः जीवन्नेवात्मनः श्राद्धं कुर्यात्' इति वीर्यायन । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ३१ ॥

अन्वय—परलोकेषु, दुर्लभम्, अस्याम्, पश्चिन्याम् पद्म-पत्र-उज्ज्वलम्, जलम्, आचम्य, आत्मनैव, आत्मनः दत्तम् ॥ ३१ ॥

पदार्थ—अस्याम्=इम, परलोकेषु दुर्लभम्=परलोक में अप्राप्य, पश्चिन्याम्=कमलो से युक्त सरोवर के, पद्म-पत्र-उज्ज्वलम्=कमल की पङ्खुडियों के समान अर्थात् स्वच्छ, जलम्=जल को, आचम्य=आचमन करके, आत्मनैव=अपने से ही, आत्मनः=अपने को, दत्तम्=[जल] दे दिया है, क्योंकि पुत्र-विहीन होने से तर्पण कार्य की आशा नहीं है ॥ ३१ ॥

(प्रवेश करके)

मध्यम—

परलोक में अप्राप्य इस कमलों से युक्त सरोवर के कमल की पङ्खुडियों के समान अर्थात् स्वच्छ जल का आचमन करके अपने से ही अपने को (जल) दे दिया है [क्योंकि पुत्रविहीन होने से तर्पण की आशा नहीं है] ॥ ३१ ॥

(उपगम्य) भोः पुरुष ! प्राप्तोऽस्मि ।

घटोत्कच—भवानिदानीं खल्वसि मध्यमः । मध्यम ! इत इतः ।

वृद्धः—(भीममुपगम्य) भो मध्यम ! परित्रायस्व ब्राह्मणकुलम् ।

भीमः—न भेतव्य, न भेतव्यम् । मध्यमोऽहमभिवाद्ये ।

वृद्धः—वायुरिव दीर्घायुर्भव ।

भीमः—अनुगृहीतोऽस्मि । कुतो भयमार्यस्य ।

वृद्धः—श्रूयताम् । अहं खलु कुरुराजेन युधिष्ठिरेणाधिष्ठितपूर्वं कुरुजाङ्गले यूपग्रामवास्तव्यो माठरसगोत्रश्च कल्पशाखाध्वर्युः केशवदासो नाम ब्राह्मणः । तस्य ममोत्तरस्या दिश्युद्यामकग्रामवासी मातुल कौशिकसगोत्रो यज्ञबन्धुर्नामास्ति । तस्य पुत्रोप-

वायुरिव दीर्घायुर्भव = कल्पान्तकालजीवी भव, वायुर्हि प्राणाधिष्ठान-देवता । कुरुजाङ्गले = कुरुक्षेत्रे । माठरसगोत्र = माठरेण ऋषिविशेषेण समान गोत्र यस्य स । कल्पशाखाध्वर्यु = कल्पो यज्ञविद्यानम्, तत्प्रतिपादिका शाखा कल्पशाखा, तस्या अध्वर्यु तदनुसरणपरो तदुक्तप्रयोगानुष्ठाननिपुण श्रौतकर्ममु ऋत्विग्विशेष इत्यर्थः ।

(पाम जाकर) हे पुरुष, मैं आ गया ।

घटोत्कच—वस्तुतः यहाँ तुम्ही मध्यम हो । हे मध्यम, इधर आओ, इधर आओ ।

वृद्ध—(भीमसेन के पास जाकर) हे मध्यम, इस ब्राह्मणकुल का परित्राण करो ।

भीम—डरना नहीं चाहिए, डरना नहीं चाहिए । मैं मध्यम आपको प्रणाम करता हूँ ।

वृद्ध—वायु के समान दीर्घायु होवे ।

भीम—मैं अनुगृहीत हूँ । आपके भय का क्या कारण है ?

वृद्ध—सुनिए, मैं कुरुराज युधिष्ठिर से पहले शासित कुरुजाङ्गल [= कुरुक्षेत्र] में यूपग्राम का रहने वाला माठरगोत्रीय कल्पशाखीय अध्वर्यु केशवदास नामक ब्राह्मण हूँ । उस ग्राम के उत्तर दिशा में उद्यामक ग्राम वासी

१ 'प्राप्तवान् इदानीं खल्वसि' इति वा पाठः ।

२. तु० 'रैभ्यसगोत्र' स्वप्न० ६ पृ० २०७ । द्र० पा० महाभाष्य ।

सीता—ह विपरीओ खु धम्मो, ज जीवदि खु अअ पापरक्खसो ।
[ह, विपरीत खलु धर्म, यद् जीवति खत्वय पापराक्षस ।]

रावणः—ननु देवि !

सीता—सत्तो सि । [शप्तोऽसि]

रावण—हहह, अहो पतिव्रतायास्तेज !

देवा सेन्द्रादयो भग्ना दानवाश्च मया रणे ।

सोऽह मोह गतोऽस्म्यद्य सीतायास्त्रिभिरक्षरै ॥ १८ ॥

(नेपथ्ये)

हृमिति—ह=खेदे । विपरीत = विरुद्ध, पापराक्षस = पाप पाप-
युक्त चासी राक्षस निश्चर, रावण इत्यर्थ ।

अन्वय—सेन्द्रादय देवा दानवा च मया रणे भग्ना । स अहम् अद्य
सीताया त्रिभि अक्षरै मोह गत अस्मि ।

देवा इति—सेन्द्रादय = इन्द्रादिभि सह, देवा = सुरा, दानवा =
दैत्याश्च, मया = रावणेन, रणे = युद्धे, भग्ना = पराजिता, स = प्रसिद्ध,
अह = रावण, अद्य = अस्मिन्दिवसे, सीताया = जानक्या, त्रिभि =
निसङ्ख्यकै, अक्षरै = वर्णै, 'शप्तोसि' इत्यात्मकै, मोह = मुग्धताम्, गत =
प्राप्त, अस्मि । अनुष्टुप्छन्द ।

सीता—ओह ! धर्म भी बडा उल्टा है, जो पापी राक्षस (अभी) जी
रहा है ।

रावण—हे देवि !

सीता—(मेरे द्वारा) शाप दे दिये जाओगे ।

रावण—ओह ! पतिव्रता का तेज (आश्चर्यजनक) है ।

सम्पूर्ण इन्द्र इत्यादि देवता तथा राक्षस मेरे द्वारा युद्ध में पराजित कर
दिये गये, वही मैं आज सीता के (शप्तोऽसि—इन) तीन अक्षरों के द्वारा मुग्ध
हो रहा हूँ ।

[नेपथ्य में]

अथ द्वे । अथ लङ् द्वे । अथ स्वामी । अथ महीराज
अथ नाडिका पूर्णा । अतिक्रमति स्नानवेला । इव इती महिराज ।

(निकावा सपरिवारं रावण)

इवमार्त्त—इव निर्गता रावण, सुन्दरं राक्षसस्त्रिय । अथ
काले देवीर्मुपसर्पितम् । (कोटरदरकर) अथवर्षाववा ।

प्रपिताइ नरेन्द्रेण रामेण विदितमना ।

॥ ११ ॥ चन्द्रगतस्नेहसन्निपादिष्वलक्षणीकृतवत्समा

अथविपति—लङ् द्वे रावण नाडिका=पटिका, पूर्णा =

समाना, स्नानवेला=स्नानसमय, अतिक्रमति=अतीति ।

हेतीति—इव=इव । निपत=निपतित सुभा=प्रिया, राक्षस-

स्त्रिय=राक्षसनामस्त्रिया । स्त्रिय नाम, अथम=पुत्र, काल-समय,

देवी=सीताम्, अथमर्पितम्=अथमर्पित अथवा=सीतामवती ।

अथय—विदितमना चन्द्रगतस्नेहसन्निपादिष्वलक्षणीकृतवत्समा नरेन्द्रेण

रामेण अथ प्रपत ।

प्रपति इति—विदितमना=ज्ञातवती, चन्द्रगतस्नेहसन्निपादिष्वलक्षणी-

कृतवत्समा=वस्त्रि सीताया नाम स्त्रिय य स्नेहे प्रपत वत्समा य सन्नाय,

इव इव विष्वलक्षणीकृतवत्समा अथ मय वेत्त, नरेन्द्रेण=रामा

रामेण=रामेण प्रपत अस्मि=प्रतिव अस्मि । अत्युत्कृष्टम् ।

अथ विपती इव, लङ् द्वे रावण विपती इवे, स्वामी विपती इवे, महिराज-

विपती इवे । एव इव यथा । स्नान का समय कीव इवे । महिराज

इव इव से (वस्त्रिम्) ।

(सपरिवारं रावण निकल जाता है)

हेतीति—अरे । रावण निकल गया और राक्षसी की स्त्रियां भी

गयीं । देवी (सीता) के समीप चलने का यह है (वर्षा) समय है । (कोटर से

उपर कर) सुदृशिता (गण) की यम है ।

अथ (सीता) के स्नेहे के समय से चन्द्र लक्षणीकृत इव चन्द्र आसना राज

राम के इतर से भेजा गया है ।

घटोत्कचः—अथ किम् । राहुरेव ।

भीम.—आ —

निवृत्तव्यवहारोऽय सदारस्तनयं. सह ।

सर्वापराधोऽवध्यत्वान्मुच्यतां द्विजसत्तमः ॥ ३४ ॥

कीर्णस्य व्याप्तस्य, पत्नीकान्तप्रभस्य च=पत्नी कान्तप्रभेव मनोहरा ज्योत्स्नेव यस्य तस्य; वृद्धस्य=स्थविरस्य, विप्रचन्द्रस्य=विप्रञ्चन्द्र इव विप्रचन्द्र तस्य ब्राह्मणेन्दो, राहुरिव^१=चन्द्रप्रसन्नशीला ग्रह इव, 'तमस्तु राहु स्वर्मानु-संहिकेयो विधुन्तु' इत्यमर । उतियतः=आगतः । सावयवोपमालङ्कारः ।

अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ३३ ॥

[भीम वृद्ध ब्राह्मण की स्थिति इस प्रकार प्रकट करते हैं]—

अन्वय—पुत्र-नक्षत्र-कीर्णस्य, च, पत्नीकान्त प्रभस्य, वृद्धस्य, विप्र-चन्द्रस्य,

मवान्, राहु, इव, उतियतः ॥ ३३ ॥

पदायी—पुत्र-नक्षत्र कीर्णस्य=नक्षत्र के समान पुत्रों से, च=और;

पत्नी-कान्त-प्रभस्य=मनोहर ज्योत्स्ना के समान पत्नी से परिवृत, वृद्धस्य=

वृद्ध रूपी इस, विप्र-चन्द्रस्य=ब्राह्मण चन्द्र के लिए; मवान्=आप, राहु-

इव=राहु के समान; [कि] उतियत = [प्रसने को क्यों] उद्यत हैं ॥ ३३ ॥

भीम घटोत्कच वारयति-निवृत्तेत्यादिना । निवृत्तव्यवहारः=व्यवहारात्

निवृत्त (५० तत्पु०), राजदन्तादित्वात् साधु, कार्यकारित्वशक्तिभयात्

अपगतः व्यवहार ऐहिकव्यापारो यस्य सः, सर्वापराधे अवध्यत्वात्=

सर्वविधापराधयोगेऽपि वधानहंत्वाद्, यथाह मनु —

नक्षत्र के समान पुत्रों से घिरे हुए और मनोहर ज्योत्स्ना के समान पत्नी

से परिवृत वृद्धरूपी इस विप्र-चन्द्र के लिए आप राहु के समान [प्रसने को

क्यों] उद्यत हैं ? ॥ ३३ ॥

घटोत्कच—और क्या ? [मैं राहु के समान नहीं किन्तु] राहु ही हूँ ।

भीम—आह,

१. (i) तु० 'राहुवचनान्तरगता चन्द्रलेखेव शोभते'—दूत० ७ ।

(ii) 'किं द्रष्टव्यं शशाङ्कोऽयं राहोर्वदनमण्डले' बालचरित १.११ ।

(iii) 'आपूर्णंश्च कलामिरिन्दुरमलो यातश्च राहोर्मुखम्' मालती ९.३९७

घटोत्कच.—न मुच्यते ।

भीम—(आत्मगतम्) भोः ! कस्य पुत्रेणानेन भवितव्यम् ।

भ्रातॄणां मम सर्वेषां कोऽयं भो ! गुणतस्करः ।

दृष्ट्वैतद् बालशौण्डीयं सौभद्रस्य स्मराम्यहम् ॥ ३५ ॥

'न जातु ब्राह्मण हन्यात् सर्वपापेष्वपि स्थितम् ।' (८. ३८०) सदार = सपत्नीक, तनयैः = पुत्रैः सह, अयम् = पुरोक्ष्यमानः, द्विजसत्तमः = द्विजेषु विप्रेषु सत्तमः अतिप्रशस्तः ब्राह्मणश्रेष्ठः, मुच्यताम् = परित्यज्यताम् । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ३४ ॥

[घटोत्कच के यह कहने पर कि 'हां' मैं राहु ही हूँ... भीम उसे इस प्रकार ममज्ञाते हैं]—

अन्वय—निवृत्त-व्यवहारः, सर्वापराधे, अवध्यत्वात्, सदार, तनयै, सह, अयम्, द्विजसत्तमः, मुच्यताम् ॥ ३४ ॥

पदार्थ—निवृत्तव्यवहार = [बृद्ध होने के कारण] सामारिक कार्यों से जो निवृत्त हो चुका है, सर्वापराधे = दीपो का समुदाय भी विद्यमान होने पर; अवध्यत्वात् = ब्राह्मण अवध्य होने से, सदार = स्त्री के सहित; तनयै = पुत्रों के साथ, अयम् = इस; द्विजसत्तमः = ब्राह्मणश्रेष्ठ को; मुच्यताम् = छोड़ दो ॥ ३४ ॥

विमर्श—मनु के अनुसार बहुत पापी भी होने पर ब्राह्मण अवध्य है । उनके मत से उमे दूररे देश में छोड़ देना चाहिए । (मनु० ८ ३८०) ।

मया वारितोऽपि अयमेव दृढमकल्प इति कस्यचित् पाण्डवस्यैव पुत्र इत्या-
शङ्क्य भीमस्य स्वगतोक्तिः—भ्रातॄणामित्यादिना । भोः इति विस्मये । मम = भीमस्य; सर्वेषां भ्रातॄणाम् = युधिष्ठिरादीनां सर्वेषां बान्धवानाम्, गुण-
तस्करः = गुणवीर, गुणानुकारीत्यर्थं, अयम् = पुरोवर्ती पुरुष, कः = कोऽसा-
वित्यर्थं । अहम्, एतद्बालशौण्डीयम् = एतस्य सन्निहितस्य बालस्य
शौण्डीयम् आदृत्य दृष्ट्वा, सौभद्रस्य = कृष्णभगिन्या सुमद्राया अपत्यं पुमात्
दीपो का सकुल विद्यमान रहने पर भी ब्राह्मण के अवध्य होने से, स्त्री व पुत्रों
के सहित इस ब्राह्मणश्रेष्ठ को छोड़ दो ॥ ३४ ॥

घटोत्कच—मैं नहीं छोड़ता ।

भीम—(मन ही मन) ओह, यह कितना पुत्र हो सकता है ?

(प्रकाशम्) भोः पुरुष ! मुच्यताम् ।

घटोत्कचः—न मुच्यते ।

मुच्यतामिति विस्रब्धं ब्रवीति यदि मे पिता ।

न मुच्यते तथा ह्येष गृहीतो मातुराज्ञया ॥ ३६ ॥

सौमद्रस्तस्य अर्जुनपुत्रस्य अमिमन्यो, स्मरामि = स्मरण करोमि । 'अधीर्गर्भ-
दयेशा कर्मणि' (पा० सू० २३५२) इत्यनेन शेषत्व-विवक्षया कर्मणि षष्ठी ।
अस्य गत्रोक्ति अमिमन्युस्य इति भाव । स्मरणालङ्कार । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥

[घटोत्कच का औढत्य देखकर भीम अपनी मन्मावना इस प्रकार प्रकट
करते हैं—]

अन्वय—भो !, मम, सर्वेषां, भ्रातृणाम्, गुण-तस्कर, अयम्, क ? एतत्
बाल-शोण्डीर्यम्, इष्ट्वा, अहम्, सौमद्रस्तस्य, स्मरामि ॥ ३५ ॥

पदार्थ—भो !, मम = मेरे । मेरे, सर्वेषाम् = सभी, भ्रातृणाम् = भाइयों
के; गुण तस्कर = गुणों को चुराने वाला अयम् = यह, क = कौन है ? एतत् =
इसके, बालशोण्डीर्यम् = बालकोचित औढत्य को, इष्ट्वा = देखकर, अहम् =
मुझे, सौमद्रस्तस्य = सुमद्रा के पुत्र अमिमन्यु का; स्मरामि = स्मरण आ रहा है ॥ ३५ ॥

घटोत्कच धारमन औढत्य प्रदर्शयन्नाह—मुच्यतामित्यादिना । मे = मम
घटोत्कचस्य, पिता = जनक, अपि, यदि = चेत्, विस्रब्धम् = विश्रामयुक्त तथा
भवति तथा, मुच्यताम् = परित्यज्यताम्, इति ब्रवीति = इत्य वदति, तथापि,
न मुच्यते = मया न परित्यज्यते । तथा हि = यत्, एष = ब्राह्मणपुत्र. मातु-
आज्ञया = जनन्या निदेशात्; गृहीत = मया परिग्रहीत । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ३६ ॥

अन्वय—यदि मे पिता 'विस्रब्ध मुच्यताम्' इति ब्रवीति, तथा न मुच्यते ।
हि, एष, मातु, आज्ञया, गृहीत ॥ ३६ ॥

अर मेरे सभी भाइयों के गुणों को चुराने वाला यह कौन है ? इसके बालोचित
औढत्य को देखकर मुझे सुमद्रा के पुत्र अमिमन्यु का स्मरण आ रहा है ॥ ३५ ॥

(प्रकट) हे पुरुष, छोड़ दो ।

घटोत्कच—मैं नहीं छोड़ता ।

यदि मेरे पिता भी विश्रस्त रूप से 'छोड़ दो'—ऐसा कहें, फिर भी मैं नहीं
छोड़ूँगा, क्योंकि यह [मध्यम पुत्र मेरी] माता की आज्ञा से गृहीत है ॥ ३६ ॥

भीम — (महर्षमात्मगतम्) एवम्, हिडिम्बाया. पुत्रोज्यम् । सदृशो ह्यस्य गर्वं !

रूपं सत्त्वं बलं चैव पितृभि सदृशं बहु ।

प्रजासु वीतकारुण्यं मनश्चैवास्य कीदृशम् ॥ ३९ ॥

(प्रकाशम्) भो पुरुष ! मुच्यताम् ।

घटोत्कच — न मुच्यते ।

भीम — भो ब्राह्मण ! गृह्यतां तव पुत्रः । वयमेनमनुगमिष्यामः ।

द्वितीय — मा मा भवानैवम् ।

पाण्डवकुलोत्पत्तोऽपि घटोत्कच कथमेव निर्दय इत्याह भीमसेन — रूपमि-
त्यादिना । अस्य = घटोत्कचस्य, रूपम् = आकृति ; सत्त्वम् = पराक्रम ; बलम् =
सामर्थ्यम्, पितृभि = युधिष्ठिरादिभि जनकै ; बहु = अत्यर्थम् ; सदृशम् =
तुल्यम्, किन्तु, प्रजासु = प्रजाजनेषु, वीतकारुण्यम् = निर्दयम्, वीत विगत
कारुण्य यस्मात् (बहु०) तत्, मनः = चित्तम्, कीदृशम् = कथम् ? अस्य मन
कुत्सित न तु पितृसदृशमित्यर्थं । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ३९ ॥

[घटोत्कच के विषय मे भीम मन मे यह सोचता है कि] —

अन्वय — अस्य, रूपम्, सत्त्वम्, च, बलम्, बहु, पितृभि, एव, नदृशम्,

[किन्तु] प्रजासु, वीतकारुण्यम्, मन कीदृशम् ॥ ३९ ॥

पदार्थ — अस्य = इस [लडके] का, रूपम्, सत्त्वम् = रूप, पराक्रम, च
बलम् = और शक्ति, बहु = सभी कुछ; पितृभि, एव = माता पिता के ही;
सदृशम् = तुल्य है [किन्तु], प्रजासु = प्राणियों के प्रति; वीत-कारुण्यम् =
दयाविहीन, मन = हृदय वाला, कीदृशम् [जातम्] कैसे हो गया ॥ ३९ ॥

भीम — (प्रसन्नता के साथ मन ही मन) तो यह हिडिम्बा का पुत्र है ।
तब तो इसका गर्वं अनुरूप ही है । वयोकि —

इसका रूप, पराक्रम और शक्ति सभी कुछ माता-पिता के ही सदृश है
(किन्तु) प्राणियों के प्रति दयाविहीन हृदय वाला यह कैसे हो गया ? ॥ ३९ ॥

(प्रकट) हे पुरुष, छोड़ दो ।

घटोत्कच — मैं नहीं छोड़ता ।

भीम — हे ब्राह्मण, अपने पुत्र को ग्रहण करो । मैं ही इसका अनुगमन करूँगा ।

द्वितीय (पुत्र) — नहीं, नहीं, आप ऐसा न करें ।

त्यक्ता प्रागेव मे प्राणा गुरुप्राणेऽपेक्षया ।

युवा रूपगुणोपेतो भवास्तिष्ठतु भूतले ॥ ४० ॥

भीम—आर्य ! मा मैवम् । क्षत्रियकुलोत्पन्नोऽहम् । पूज्यतम खलु
ब्राह्मण । तस्मान्मच्छरीरेण ब्राह्मणशरीरं विनिमातुमिच्छामि ।

घटोत्कच—[आत्मगतम्] एवम्, क्षत्रियोऽयम् । तेन गर्वं ।
भवतु, इममेव हत्वा नेष्यामि । [प्रकाशम्] अथ केनाय वारितः ?

भीमः—मया ।

द्विजस्य मध्यम पुत्र भीम वारयन्नाह—त्यक्ता इत्यादिना । गुरुप्राणेपु-
पूज्याना जीवनेपु, अपेक्षया, मे=मम, प्राणाः=असव, प्रागेव=पूर्वमेव,
त्यक्ताः=विमुक्ता, [अत] युवा=तरुण, भवान्=भीम, रूपगुणोपेत-
रूपेण सौन्दर्येण तथा दयादिना गुणेन उपेत युक्त, भूतले=पृथिव्याम्, तिष्ठतु=
दीर्घकाल यावत् प्राणैर्युक्तोऽस्तिष्ठतु । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ४० ॥

अन्वय—गुरु प्राणेपु, अपेक्षया, मे, प्राणा, प्राक्, एव त्यक्ता । [अत]
युवा, भवान्, रूप गुणोपेत, भूतले, तिष्ठतु ॥ ४० ॥

पदार्थ—गुरु प्राणेपु=गुरुओ के प्राणो की, अपेक्षया=अपक्षा से, मे,
प्राणा =अपने प्राणो का; प्राक् एव=पहले ही से, त्यक्ता.=मैंने त्याग किया
है । [अत] युवा भवान्=युवक आप, रूप-गुणोपेत =रूप और गुण से
युक्त होकर, भूतले =पृथ्वी पर, तिष्ठतु=रहे ॥ ४० ॥

गुरु जनो के प्राणो के बदले म अपने प्राणो का पहले से ही मैंने त्याग
किया है । अत रूप एव गुणो से सम्पन्न युवा आप पृथ्वी पर रहे ॥ ४० ॥

भीम—आर्य, ऐसा न कह । मैं क्षत्रिय कुल मे उत्पन्न हूँ और ब्राह्मण
तो सबसे पूज्य होते हैं । अत मैं अपने ही शरीर से ब्राह्मण शरीर को बदलने
का इच्छुक हूँ ।

घटोत्कच—(मन ही मन) तो यह क्षत्रिय है । इसीलिए इसे इतना
दम्भ है । ठीक है, मैं इसी को मारकर ले जाऊँगा । (प्रकट) तो यह किसके
द्वारा रोका गया है ?

भीम—मेरे द्वारा ।

घटोत्कचः—किं त्वया ?

भीमः—अथ किम् ।

घटोत्कच —तेन हि भवानेवागच्छतु ।

भीम —एवम्, अतिवीर्यबलं नानुगच्छामि । यदि ते शक्तिरस्ति,

बलात्कारेण मां नय ।

घटोत्कचः—किं मां प्रत्यभिजानीते भवान् ?

भीमः—मत्पुत्र इति जाने ।

घटोत्कच —कथं कथं तव पुत्रोऽहम् ?

भीमः—कथं रूष्यति, मर्षयन्तु, मर्षयन्तु भवान् । सर्वा प्रजा-
क्षत्रियाणां पुत्रशब्देनाभिधीयन्ते । अत एव मयाभिहितम् ।

घटोत्कचः—भीतानामायुधं गृहीतम् ।

भीमः—

भीतानाम् आयुधम् = मपणायाजुरोधोऽयं भातमव सूचयति । अत एव
मयातानां पन्था ।

भीमं सगर्वं मयस्य स्वरूपं पृच्छति—शपामीत्यादिना । हे भद्रं = हे
सौम्य, अहं भीम, सत्येन, शपामि = शपथं करोमि, भयम् = मयनामक

घटोत्कच—क्या, तुम्हारे द्वारा ?

भीम—और क्या ?

घटोत्कच—तो आप ही चलिए ।

भीम—ऐसा, बलिष्ठ और पराक्रमी मैं इस प्रकार अनुगमन नहीं करूँगा ।
यदि तुम्हारे पास शक्ति हो तो मुझे बलपूर्वक ले चलो ।

घटोत्कच—आप नहीं जानते कि मैं कौन हूँ ?

भीम—हाँ, मैं जानता हूँ कि 'तुम मेरे बेटे हो ।'

घटोत्कच—कैसे, मैं आपका पुत्र कैसे ?

भीम—क्यों रूष्य होते हैं ? हम क्षमा कर, क्षमा करें, क्योंकि सारी प्रजा
क्षत्रियो द्वारा 'पुत्र' शब्द से ही अभिहित होती है । इसीलिए मेरे द्वारा ऐसा
कहा गया ।

घटोत्कच—आपने तो डरपोक लोगों का आयुध ग्रहण कर लिया ।

१. तु० 'किमेतद् भो मयं नाम भवतोऽद्य मया श्रुतम्'—बाल० ३ ८ ।

शपामि सत्येन भयं न जाने
ज्ञातुं तदिच्छामि भवत्समीपे ।

किरूपमेतद् वद भद्र ! तस्य

गुणागुणज्ञः सदृशं प्रपत्स्ये ॥ ४१ ॥

घटोत्कचः—एष ते भयमुपदिशामि, गृह्यतामायुधम् ।

भीम.—आयुधमिति । गृहीतमेतत् ।

घटोत्कचः—कथमिव ।

पदार्थ, न जाने=कीदृश तदिति न जानामि । तद्=भयम्, भवत्समीपे=स्वदन्तिने, ज्ञातुम्=अवगन्तुम्, इच्छामि=गच्छामि, एतद्=नयस्य, किरूपम्—किमारार च, वद=इहि, हि, तस्य=नयस्य, गुणागुणज्ञः=गुण-शेषामिज्ञ, भूत्वा, सदृशम्=तदनु रूपम्, प्रपत्स्ये=वरिष्यामि । उपनाति वृत्तम् ॥ ४१ ॥

[घटोत्कच के व्यवसाय को जानने की इच्छा ने भीम इस प्रचार पूछने हैं]—
अन्वय—हे भद्र !, [अहम्], सत्येन, शपामि, [यत्], भयम् न जाने, तत्, ज्ञानुम्, भवत्, समीपे, इच्छामि । एतत् रूपम्, किम् ? वद । तस्य, गुणागुणज्ञ, सदृशम्, प्रपत्स्ये ॥ ४१ ॥

पदार्थ—हे भद्र=हे भीम्य । [अहम्=मैं] सत्येन=मचमुच, शपामि=शपय गाता हूँ । [यत्=कि], भयम्=भय को न जाने=मैं नहीं जानता हूँ । तत्=उमीको, ज्ञानुम्=जानने के लिए, भवत् समीपे=आप के समीप; इच्छामि=इच्छा कर रहा हूँ । एतत्=इसका; रूपम्=रूप, किम्=क्या है ? वद=बहो, तस्य=उसके, गुणागुणज्ञ=गुणों और अवगुणों को जानने के बाद; सदृशम्, प्रपत्स्ये=जैसा होगा वैसा करेगे ॥ ४१ ॥

भीम—हे भीम्य, मैं मचमुच शपय खाता हूँ कि भय को मैं नहीं जानता । अब आपके समीप उमी को जानने के लिए इच्छुक हूँ । इसका रूप क्या है ? कहो । उसके गुणों और अवगुणों को जानने के बाद जैसा होगा वैसा करेगे ॥ ४१ ॥

घटोत्कच—ठीक है, मैं बताता हूँ कि 'डर क्या है ।' अपना आयुध ले लो ।

भीम—आयुध ? सो यह ले लिया ।

१. घटोत्कच—किस तरह ?

भीमः—

काञ्चनस्तम्भसदृशो रिपूणां निग्रहे रतः ।

अयं तु दक्षिणो बाहुरायुध सदृशं मम ॥ ४२ ॥

घटोत्कचः—इदमुपपन्नं पितुर्मं भीमसेनस्य ।

भीम.—अथ कोऽयं भीमो नाम ?

कथमहं सायुध इति भीमसेन कथयति—काञ्चनेत्यादिना । रिपूणाम् = शत्रूणाम्, निग्रहे = दमने, रत = सलग्न, काञ्चन-स्तम्भसदृश = स्वर्णस्तम्भ-तुल्य, काञ्चनस्य सुवर्णस्य स्तम्भ तेन सदृश, अयम् = शरीरवर्ती, दक्षिण = वामेतर, बाहु = भुज, मम = भीमसेनस्य, सहजम् = सहजात स्वामाविकम्; आयुधम् = शस्त्रम् । अतः आयुधस्वान्वयस्य न आवश्यकता—इति भावः । उपमा-लङ्कारः । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ४२ ॥

[अन्य अस्त्री को अनावश्यक ममज्ञते हुए भीम अपने हाथ को ही शस्त्र रूप में बताते हैं]—

अन्वय—काञ्चनस्तम्भ सदृश, रिपूणा, निग्रह, रत, अयम्, दक्षिण बाहु, मम, सहजम्, आयुधम् [अस्ति] ॥ ४२ ॥

पदार्थ—काञ्चन स्तम्भ सदृश = सुवर्ण के खम्भे के समान, रिपूणाम् = शत्रुओं का, निग्रहे = दमन करने में, रत = सलग्न, अयम् = यह, दक्षिण बाहु = दाहिना हाथ, मम = मेरा, सहजम् = स्वामाविक, आयुधम् = शस्त्र, [अस्ति = है] ॥ ४२ ॥

भीम—स्वर्ण स्तम्भ के समान शत्रुओं का दमन करने में सलग्न यह दाहिना हाथ ही मेरा स्वामाविक शस्त्र है ॥ ४२ ॥

घटोत्कच—यह तो मेरे पिता भीमसेन के लिए सम्भव है ।

भीम—तो, तो यह 'भीम' कौन है ?

१ तु० (I) 'सहजो मे प्रहरण भुजो पीनासकोमलो—पञ्चरात्र २ २५ ।

(II) 'गिरितटकठिनासो एव बाहू ममैतो प्रहरणमपरं तु त्वाशा
[दुर्वलानाम्]—शात० ३ ११ ।

(III) 'आयं क भीमस्यानुकरिष्यामि शस्त्रं बाहुर्भविष्यति'—मृच्छं० २ १७ ।

विश्वकर्ता शिव कृष्णः शक्रः शक्तिधरो यमः ।

एतेषु कथ्यतां भद्र । केन ते सदृशः पिता ॥ ४३ ॥

घटोत्कचः—सर्वेः ।

भीम —धिगनूतमेतत् ।

घटोत्कचः—कथम् ? कथम् अनुत्मित्याह । क्षिपसि मे गुरुम् ।

कोश—रिपूणाम्—'रिपो वैरिसपत्नारि द्विपदद्वेषणदुर्हृद' अमरकोष ।

'कोऽप्य भीमो नाम' इति पृच्छति भीमसेन—विश्वेत्यादिना । विश्व-
कर्ता=ब्रह्मा, विश्वस्य जगत कर्ता निमित्ति भाव । शिव =महेश्वर, कृष्ण =
विष्णु, कर्षति जनेभ्य दुःखान् य म कृष्ण, 'विष्णुर्नारायण कृष्णो वैकुण्ठो
त्रिष्टरश्चना' इत्यमर । शक्र =इन्द्र, 'जिष्णुर्लोकपंभ शक्र शतमन्युर्दिवस्पति'
इत्यमर । शक्तिधर =स्वन्द 'धरतीति' धर शयते, धर कुमार, पाण्मातुर
शक्तिधर कुमार त्रैश्वदारण' इत्यमर । यम =कृतान्त, 'कृतान्तो यमुना
भाता यमनो यमराट् यम' इत्यमर । एतेषु=देवविशेषेषु मध्ये, ते=तत्र,
पिता=जनक, केन=देवेन, सदृश=तुल्य, अस्ति इति शेष, भद्र=हे सौम्य,
कथ्यताम्=उच्यताम् एष्वन्यतमेन सदृशप्रभावशाली यदि य कोऽपि स्यात्
तमवाह वीर गणयेयम्, न तु ततो हीनगुणमिति भाव । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥४३॥
अन्वय—विश्वकर्ता, शिव, कृष्ण, शक्र, शक्तिधर, यम—हे भद्र ।

कथ्यताम् एतेषु ते पिता केन सदृश ? ॥ ४३ ॥

पदार्थ—विश्वकर्ता=जगत् के रचयिता (ब्रह्मा), शिव =भगवान् शङ्कर,
कृष्ण =विष्णु, शक्र =इन्द्र, शक्तिधर =कुमार कार्तिकेय, यम =यमराज, एतेषु=
इन (देवताओं) के बीच, हे भद्र ।=हे सौम्य, कथ्यताम्=कहो, ते पिता=तुम्हारे
पिता वन सदृश =किसके सदृश, वर्तते=हैं ॥ ४३ ॥

सर्वे =पूर्वोक्त पङ्क्ति । क्षिपसि =निन्दसि । प्रहरामि =ताडयामि,
गिरिकूटम् =पर्वतशृंगम् ॥

जगत् के कर्ता ब्रह्मा, भगवान् शङ्कर, विष्णु, इन्द्र, कुमार कार्तिकेय व
यमराज—इन देवों के मध्य, हे सौम्य, कहो तुम्हारे पिता किसके सदृश हैं ?

घटोत्कच—सभी के समान हैं ।

भीम—ओह, शूठ, यह बिलकुल शूठ है ।

घटोत्कच—कैसे, यह कथन शूठ कैसे है ?

भवतु, इमं स्थूलं वृक्षमुत्पाट्य प्रहरामि । (उत्पाटय - प्रहरति)
कथमनेनापि न शक्यते हन्तुम् । किन्तु खलु करिष्ये । भवतु,
दृष्टम् । एतद् गिरिकूटमुत्पाट्य प्रहरामि ।

शैलकूटं मयाक्षिप्तं प्राणानादाय यास्यति ।

भीमः—

रुष्टोऽपि कुञ्जरो वन्यो न व्याघ्रं घर्षयेत् वने ॥ ४४ ॥

घटोत्कच—(प्रहृत्य) कथमनेनापि न शक्यते हन्तुम् । किन्तु
खलु करिष्ये । भवतु, दृष्टम् ।

मया=घटोत्कचेन, आक्षिप्तम्=प्रक्षिप्तम्, शैलकूटम्=गिरिशिखरम्; अस्य,
प्राणान्=अमृतम्, आदाय=गृहीत्वा; यास्यति=गमिष्यति । वने=शरण्ये; वन्य-
वने मत्र वन्य, रुष्ट अपि=क्रुपितोऽपि, कुञ्जरः=गज, व्याघ्रम्=शार्ङ्गम्;
न घर्षयेत्^१=न परिभवेत् । लोकोक्त्यनङ्कार । तल्लक्षण तु—'लोकाप्रवादा-
नुकृतिर्लोकोक्तिरिति भण्यते ।' अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ४४ ॥

अन्वय—मया, आक्षिप्तम्, [इदम्] शैलकूटम्, [तव] प्राणान्, आदाय,
[एव] यास्यति । रुष्ट, अपि, वन्य, कुञ्जर, वने, व्याघ्रम्, न घर्षयेत् ॥४४॥

पदार्थ—मया=मेरे द्वारा; आक्षिप्तम्=फेंका गया, [इदम्] शैलकूटम्=
यह पर्वत-शिखर, [तव] प्राणान्=तुम्हारे प्राण, आदाय [एव]=लेकर (ही),
यास्यति=जायगा । रुष्ट अपि=क्रुद्ध होकर भी, वन्य=जङ्गली, कुञ्जर=हाथी,
वने=जङ्गल में; व्याघ्रम्=सिंह को, न घर्षयेत्=भर्त्सना नहीं करता है ॥४४॥

तो तुम हमारे पूज्य की निन्दा करते हो । अच्छा तो इस विशाल वृक्ष को
उखाड़ कर प्रहार करूँ । (उखाड़ कर प्रहार करता है) कैसे ? मैं तो इससे
भी इसे नहीं मार सकता । तो क्या किया जाय । अच्छा, समझा । इस पहाड़
की शिखर को ही उखाड़ कर प्रहार करूँ ।

मेरे द्वारा फेंका गया यह पर्वत-शिखर [अब] तुम्हारे प्राण लेकर ही जायगा ।

भीम—किन्तु,

क्रुद्ध होकर भी जङ्गली हाथी जङ्गल में सिंह का घर्षण नहीं करता ॥४४॥

घटोत्कच—(प्रहार करके) कैसे ? मैं तो इससे भी इसे मारने में समर्थ
नहीं हूँ । क्या करूँ ? अच्छा, समझा ।

गज इव दृढपाशं पीडितो मद्भुजाभ्याम् ।

भीम—(आत्मगतम्) कथं गृहीतोऽस्म्यनेन । भो सुयोधन !
वर्धते खलु शत्रुपक्षः । कृतरक्षो भव । (प्रकाशम्) भो पुरुष !
अवहितो भव ।

घटोत्कच—अवहितोऽस्मि ।

भीमः—(नियुद्धबन्धमवधूय)

व्यपनय बलदर्पं दृष्टसारोऽसि वीर !

उल्लङ्घ्य=अतिक्रम्य, मद्भुजाभ्याम्=मम बाहुभ्याम्, पीडित=दृढ बद्ध ;
दृढपाशः=दृढरज्जुभि बद्ध, गज इव=हस्तीव, कथम्=केन प्रकारेण,
व्रजनि=गच्छसि, मम भुजापाशमुल्लङ्घ्य कथमपि गन्तुं न शक्नोपीत्यर्थं । 'गज
इव दृढपाशं' इत्युपमालङ्कारः ॥

वर्धते खलु=शत्रुपक्ष वृद्धिं प्राप्नोति खलु, मत्सूनो शक्त्या सहायभूतया
त्वत्पश्चादभ्यधिकबलो भवतीत्यर्थं । अवधूय=तिरस्कृत्य ॥

भीम स्वपरिश्रमलाघव प्रकाशयन्नाह—व्यपनयेत्यादिना । हे वीर=हे
पराक्रमशालिन्, दृष्टसार=प्रत्यक्षीकृतबल, दृष्ट सारो यस्य स, 'सारो बले
स्थिराशे च' इत्यमर । एवभूतस्त्वम्, असि । अत, बलदर्पम्=बलस्य
विक्रमस्य दर्पं गर्वम् व्यपनय=परित्यज । हि=यत, बाहुयुद्धे=मल्लयुद्धे मुष्टि-
युद्धे वा, बाह्वो युद्ध तस्मिन्, मम=भीमसेनस्य, परिखेद=परिश्रम, न
विद्यते=न वर्तते । मालिनी वृत्तम् ॥ ४६ ॥

अन्वय—दृढपाशं, गज, इव, मद्भुजाभ्याम्, पीडितः, बाह्वो. वीर्यम्,
उल्लङ्घ्य, त्वम्, इह, कथम् व्रजनि ।

पदार्थ—दृढपाशं.=सुदृढ बन्धन मे बंधे हुए, गज इव=हाथी के समान;
मद्भुजाभ्याम्=मेरी भुजाओं से, पीडित=बंधे हुए, बाह्वो =मेरी भुजाओं की,
वीर्यम्=शक्ति का, उल्लङ्घ्य=उल्लङ्घन करके, त्वम् इह=तुम इस वन में,

भीम—(मन ही मन) इससे मैं कैसे पकड़ लिया गया ? ओ दुर्योधन
तुम्हारा शत्रुपक्ष बढ रहा है । अब अपनी रक्षा के लिए सतर्क हो जाओ ।
(प्रकट) हे पुरुष, अपनी रक्षा मे तैयार हो जाओ ।

घटोत्कच—हाँ, मैं चौकस हूँ ।

भीम—(बाहुपाश को छुटाकर)—

ने हि मम परिवेदो विद्यते बाहुयुद्धे ॥ ४६ ॥

घटोत्कचः—कथमनेनापि न शक्यते हन्तुम् । किन्तु खलु करिष्ये । भवतु, दृष्टम् । अस्ति मातृप्रसादलब्धो मायापाशः । तेन बद्ध्वनं नेष्यामि । कुतः खल्वापः । भो गिरे । आपस्तावत् । हन्तं श्रवति । (आचम्य मन्त्रं जपति) भोः पुरुष !

मायापाशेन बद्धस्त्वं विवशो न गमिष्यसि ।

वयम् = किम प्रकार; व्रजसि = जा सकते हो ?

अन्वय—हे वीर ! बल-दपंम्, व्यपनय । दृष्ट-सार, अमि; हि, बाहुयुद्धे मम, परिवेद, न, विद्यते ॥ ४६ ॥

पदार्थ—हे वीर !—हे पराक्रमी, बलदपंम्=अपने बल का घमण्ड, व्यपनय=छोड़ दो, दृष्टसार असि=तुम्हारी शक्ति देख ली गई । हि=क्योंकि, बाहु-युद्धे=मल्लयुद्ध में, मम=मुझे, परिवेद =परिश्रम, न विद्यते=नहीं हुआ ॥ ४६ ॥

कुतः खल्वाप ? आपस्तावत् 'वदन्तु' इति शेष । श्रवति अर्थात् गिरि-पाय प्रदत्ता ।

मायापाशस्य प्रभाव वर्णयति घटोत्कच —मायेत्यादिना । मायापाशेन=मायामय पाश मायापाश. तेन मायाया पाशेन जर्षात् ऐन्द्रजालिक-प्रयोगानुष्ठानेन बद्ध सन् त्वम् इदानीं, विवशः=परतन्त्र ; विवश वश स्वातन्त्र्य यस्य स ; न गमिष्यसि =अंग-चलनशक्ति-विरहात् यत्र सन्न गन्तुं न सक्षमो भविष्यसि; अत अधुना, उत्सवे=वर्षारम्भे अनुष्ठेयोत्सवे, शक्रध्वज इव=इन्द्र-

हे वीर, अपने बल का दम्भ छोड़ दा । तुम्हारी शक्ति देख ली गई है क्योंकि मल्लयुद्ध में मुझे परिश्रम नहीं करना पडा ॥ ४६ ॥

घटोत्कच—क्या मैं इससे भी इने नहीं मार सकता । फिर क्या कहूँ ? अच्छा, समझ गया । मेरे पास तो माता के प्रसाद से प्राप्त एक माया-पाश भी है । उससे ही बाँधकर इसे ले जाऊँगा । किन्तु जल कहाँ से प्राप्त करें ? हे गिरि, मुझे जल दो । अहा, यह बहने लगा । (आचमन करके मन्त्र जपता है) हे पुरुष,—

माया पाश से बँधे हुए परतन्त्र तुम अब कहीं न जा सकोगे और

१- तु० पञ्चरात्र, दूतवाक्य, प्रतिज्ञा, अभिषेक, प्रतिमा ।

राजसे रज्जुभिर्बद्धः शक्रध्वज इवोत्सवे ॥ ४७ ॥

(इति माया वदनाति)

भीमः—कथं मायापाशेन बद्धोऽस्मि । किमिदानीं करिष्ये । अस्ति महेश्वरप्रसादलब्धो मायापाशमोक्षो मन्त्र । तं जपामि । कुतः खल्वापः ? भवतु, भो ब्राह्मणकुमार ! आनय कमण्डलुगता अपः ।

वृद्धः—इमा आपः ।

ध्वज इव, शक्रमय इन्द्रस्य ध्वज केतु इव, रज्जुभि बद्ध राजसे=शोभसे । परिस्पन्दशक्तिविरहात् त्व यष्टिरिव शोभसे इत्यर्थे इन्द्रध्वजो नाम वृष्ट्यर्थं राजा पूज्य इन्द्रमन्त्रयो कोऽपि ध्वजो वेणुयष्टिमय । तदुक्तं यथा भविष्योत्तरपुराणे—
एव य कुरुते यात्रामिन्द्रकेनोर्ध्विष्ठिर ।

पर्जन्य कामवर्षी स्यात् तस्मिन् राष्ट्रेण मशय ।

शक्रध्वज इवेत्युपमालङ्कार । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ४७ ॥

अन्वय—मायापाशेन, बद्ध, विवश, त्वम्, अनुगमिष्यसि । उत्सवे, रज्जुभि, बद्ध, शक्रध्वज, इव, राजसे ॥ ४७ ॥

पदार्थ—मायापाशेन=इन्द्रजालिक बन्धन के द्वारा, बद्ध=बंधे हुए, विवश=परतन्त्र होकर, त्वम्=तुम, अनुगमिष्यसि=मेरा अनुगमन करोगे । उत्सवे=मावत्सरिक उत्सव मे, रज्जुभि=रस्तियों से, बद्ध=बंधे हुए, शक्रध्वज इव=इन्द्र की ध्वजा के समान, राजसे=शोभित होंगे ॥ ४७ ॥

मावत्सरिक उत्सव मे रस्तियों से बंधे हुए इन्द्र की ध्वजा के समान शोभित होंगे ॥ ४७ ॥

(इस प्रकार माया से बांधता है)

भीम—अरे, क्या मैं मायापाश से बंध गया ? अब क्या करूँ ? अच्छा, समझ गया । मेरे पास तो भगवान् शङ्कर के प्रसाद से प्राप्त मायापाश से छुटकारे का मन्त्र है । उसको ही जपता हूँ । किन्तु जल कहाँ है ? ठीक है, हे ब्राह्मण कुमार, कमण्डलु का जल लाओ ।

वृद्ध—यह जल लीजिए ।

(भीम जल लेकर बीर आवमन करके मन्त्र जपकर माया को हटाते हैं)

(भीम आचम्य मन्त्रं जप्त्वा माया मोचयति)

घटोत्कचः—अये पतितः पाशः । किमिवानो करिष्ये । भवतु, दृष्टम् । भो पुरुष ! पूर्वसमयं स्मर ।

भीमः—समय इति । एष स्मरामि । गच्छाग्रतः ।

(उभो परिश्रामा)

वृद्धः—पुत्रका ! किं कुर्म । अयं गच्छति वृकोदर ।

आक्रम्य राक्षसमिमं ज्वलदुग्ररूप-

मुग्धेण बाहुबलवीर्यगुणेन युक्तम् ।

समयानुरोधात् अनुगच्छतो भीमसनम्य पराक्रम वृद्धा वणयति—आक्रम्य-
त्यादिना । ज्वलदुग्ररूपम्=प्रज्वलितमयङ्करस्वरूपम्; ज्वलत् उग्र मयङ्कर रूप
स्वरूप यस्य तम्, उग्रेण=घोरेण, बाहुबलवीर्यगुणेन युक्तम्=भुजबल-
पराक्रमगुणेन सहितम्, इमम्=पुरो दृश्यमानम्, राक्षसम्=घटोत्कचम्;
आक्रम्य=अभिभूय, एष.=भीमनेन, शनकैः=मन्द मन्दम्, सलीलम्=
शीलया सहितम्, शीघ्रम्=वेगपाति, आमारवर्षम्=धारासपातवृष्टिम्, 'धारा-
सपान आमार' इत्यमर । अवधूय=तिरस्कृत्य, गोवृषभ इव=गोपु वृषभ
महोद इव, वृषध्रेष्ठो वा, प्रयाति=गच्छति । यथा गोवृषभ धारासपातवृष्टि
तिरस्कृत्य स्वेच्छया सलील गच्छति, तथाय भीमनेनोऽपि राक्षसवाधाम् अवधूय
विसृज्यम् अनुसरतीत्ययं । गोवृषभ इवेत्युपमालङ्कार । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥

[भीम के जाने पर येद युक्त वृद्ध अपनी व्यथा इग प्रकार प्रकट करता है—]

अन्वय—ज्वलदुग्ररूपम्, उग्रेण, बाहु-बल-वीर्य गुणेन, युक्तम्, इमम्,
राक्षसम्, आक्रम्य, एष, शनकै, आमार वर्षम्, शीघ्रम्, अवधूय, गोवृषभ,

इव, सलीलम्, प्रयाति ॥ ४८ ॥

पदायं—ज्वलद् उग्र-रूपम्=प्रदीप्त और उग्र रूप वाले, उग्रेण=अत्यन्त

घटोत्कच—अरे, यह पाश तो छूट गया । अब क्या करूँ ? अच्छा,
समझ गया । हे पुरुष, पहले की हुई बात का स्मरण करो ।

भीम—शपथ ? अच्छा, मैं स्मरण करता हूँ । ठीक है, आगे चलो ।

(दोनों जाते हैं)

वृद्ध—हे पुत्रो ! हम लोग क्या करें ? यह भीमसेन तो जा रहे हैं ।

प्रदीप्त और उग्र रूप वाले, अत्यन्त प्रचण्ड, भुजाओं के बल एव शीर्यं से

एष प्रयाति शनकैरवधूय शीघ्र-

मासारवर्षमिव गोवृषभः सलीलः ॥ ४८ ॥

घटोत्कच—इह तिष्ठ । त्वदागमनमम्बायै निवेदयामि ।

भीमः—वाडम् । गच्छ ।

घटोत्कचः—(उपसृत्य) अम्ब, अभिवादेये घटोत्कचोऽहम् ।

चिराभिलषितो भवत्या आहारार्थमानीतो मानुष ।

(प्रविश्य)

हिडिम्बा—जाद ! चिर जीव । कीदृशो मानुसो आणीदो ।

[जात चिरं जीव । कीदृशो मानुष आनीतः] :

घटोत्कचः—भवति ! वाड मात्रेण मानुषो, न वीर्येण ।

प्रचण्ड, बाहु बल-वीर्य गुणेन=भुजाओ के बल एव शौर्य से, युक्तम्=युक्त, इमम्= इस; राक्षसम्=राक्षस को, आक्रम्य-हराकर, एष =यह [भीम], शनकै =धीरे-धीरे; सलीलम्=लीला के सहित, शीघ्रम्=वेग से गिरने वाली, आसारवर्षम्= मूसलाधार वृष्टि की, अवधूय=तिरस्कृत करके, गोवृषभ इव=वृषभ के समान प्रयाति=जा रहे हैं ॥ ४८ ॥

घटोत्कचोऽहम्=घटोह (घट + ऊहम्) घटवद् वितनयम् आस्य—तदुप लक्षित शिर यस्य स घटोहास्य ; स चासी उत्कचश्च । रूपमात्रेण मानुष - आकृत्या एव मानव , न वीर्येण =न पराक्रमेण । अत्र काकूत्या घटोत्कच भीम-सेनस्य निन्दा करोति । 'वाडमात्रेण' इति पाठान्तरे जात्यभिलापकशब्दमात्रेणेत्यर्थं इति गणपतिशास्त्रिणा व्याख्यातम् ।

युक्त इस राक्षस को अभिभूत करके यह [भीम] धीरे-धीरे उसी प्रकार लीला-सहित जा रहे हैं जैसे वेग से गिरने वाली मूसलाधार वृष्टि की परवाह न करके श्रेष्ठ वृषभ जाता है ॥ ४८ ॥

घटोत्कच—यही रुको । मैं तुम्हारे आगमन की सूचना माता को दे दूँ ।

भीम—ठीक है, जाओ ।

घटोत्कच—(समीप जाकर) माँ, यह मैं घटोत्कच प्रणाम करता हूँ ।

बहुत दिनों से आप द्वारा अभिषिक्त मनुष्य आपके आहार के लिये लाया हूँ ।

(हिडिम्बा का प्रवेश)

हिडिम्बा—पुत्र, चिरञ्जीवी होओ । किस प्रकार का मनुष्य लाये हो ?

घटोत्कच—वह कहने का ही मनुष्य है, बल से नहीं ।

हिडिम्बा—कि ब्राह्मणो । [कि ब्राह्मणः] ।

घटोत्कच —न ब्राह्मण ।

हिडिम्बा—आदु धेरो । [अथवा स्वधिरः] ।

घटोत्कच.—न वृद्ध ।

हिडिम्बा—कि बालो । [कि बालः] ।

घटोत्कच ^१—न बाल ।

हिडिम्बा—जइ एव्व पेक्खामि दाव णं । [यद्येव पश्यामि तावदेनम्] ।

(उभो परिक्रामत)

हिडिम्बा—कि एसो माणुसो आणीदो । [किमेव मानुष आनीत] ।

घटोत्कच —भवति ! कोऽप्यम् ।

हिडिम्बा—उम्मत्तअ ! दव्वद खु अअ । [उन्मत्तक ! देवत पल्वयम्] ।

घटोत्कच --आ० कस्य देवतम् ?

उन्मत्तक —ह घ्रातन्वित ।

हिडिम्बा--क्या ब्राह्मण है ?

घटोत्कच --ब्राह्मण नहीं है ।

हिडिम्बा--तो क्या वृद्ध है ?

घटोत्कच--वृद्ध भी नहीं है ।

हिडिम्बा--तो क्या बालक है ।

घटोत्कच--बालक भी नहीं है ।

हिडिम्बा--यदि ऐसा है तो इसे मैं देखूंगी ।

(बोना जाते हैं)

हिडिम्बा--क्या यही मनुष्य लाये हो ?

घटोत्कच--हाँ, यह कौन है ?

हिडिम्बा--अर जइमति, यह हम लोगों के देवता हैं ।

घटोत्कच--आह, किसके देवता हैं ?

हिडिम्बा--तव अ मम अ । [तव च मम च] ।

घटोत्कच--क प्रत्यय ?

हिडिम्बा--एसो पच्चओ । जेदु अय्यउत्त । [एप प्रत्ययः । जयत्वार्थपुत्र] ।

भीम. (विलोक्य) का पुनरियम् । अये, देवो हिडिम्बा ।

अस्माकं भ्रष्टराज्यानां भ्रमतां गहने वने ।

जातकारुण्यया देवि ! सन्तापो नाशितस्त्वया ॥ ४९ ॥

हिडिम्बे ! किमिदम् ।

हिडिम्बा--(कर्णे) अय्यउत्त ईदिसं बिअ । [आर्यपुत्र ! ईदृशभिव] ।

जतुगृहदाहानन्तरम् अरण्यवासकाले हिडिम्बया उपकृतमात्मान स्मरतो भीम-
सेनस्य कृतज्ञतासूचक वचनम्—अस्माकमिति । हे देवि=हे हिडिम्बे; भ्रष्ट-
राज्यानाम्=भ्रष्ट व्युत् राज्य येभ्य तेषा विनष्टराज्यानाम्; गहने=दुर्गं,
वने=अरण्ये, भ्रमताम्=इतस्तत् सञ्चरताम्, अस्माकम्=सुधिष्ठिरादीनां
भ्रातृणाम्, जातकारुण्यया=उद्भूतदयया वा, त्वया=भवत्या हिडिम्बया;
सन्तापः=क्लेश ; नाशित =शमित । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ४९ ॥

अन्वय—हे देवि !, भ्रष्टराज्यानाम् भ्रमताम्, गहने, वने, अस्माकम्,
जातकारुण्यया, सताप, त्वया, नाशित ॥ ४९ ॥

पदार्थ—हे देवि ! = हे देवि, भ्रष्टराज्यानाम् = विनष्ट राज्य वाले;
अस्माकम् = हम लोगो के, गहने वने = गहनवन मे, भ्रमताम् = घूमते हुए,
जातकारुण्यया = उत्पन्न दयालुता के कारण, त्वया = तुम्हारे द्वारा; सताप = हमारे
क्लेश, नाशित = नष्ट कर दिये गये ॥ ४९ ॥

हिडिम्बा—तुम्हारे ओर मेरे ।

घटोत्कच—क्या प्रमाण है ?

हिडिम्बा—वही प्रमाण है कि 'आर्यपुत्र की जय हो ।'

भीम—(देखकर) यह कौन है ? अरे, देवी हिडिम्बा ।

हे देवि, विनष्ट राज्य वाले हम लोगो के गहन वन मे घूमते हुए उत्पन्न
दयालुता के कारण तुम्हारे द्वारा हमारे क्लेश नष्ट कर दिये गये ॥ ४९ ॥

हिडिम्बे, यह क्या है ?

हिडिम्बा—(कान मे) आर्यपुत्र, यह ऐसा ही है ।

भीमः—जात्या राक्षसी, न समुदाचारेण ।

हिडिम्बा—उम्मत्तञ्ज ! अभिवादेहि पितरं [उन्मत्तक ! अभि-
वादेय पितरम्] ।

घटोत्कच — भोस्तात !

अज्ञानात्तु मया पूर्वं यद्भवान्नाभिवादितः ।

अस्य पुत्रापराधस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ ५० ॥

अहं स घातराष्ट्रवनदवाग्निघंटोत्कचोऽभिवादये । पुत्रचापलं
क्षन्तुमर्हसि ।

घटोत्कच भीमम् अभिवादयन् स्नापराधस्य मार्जनं प्रार्थयति—^१अज्ञाना-
दित्यादिना । मया=घटोत्कचैन, भवान्=पूज्य भीमतात ; यत् अज्ञानात्=
तातोऽयमिति परिचयविरहात्, पूर्वम्=प्राक्, न अभिवादित =प्रणामादिना
समुदाचारणं न सत्कृत ; अस्य पुत्रापराधस्य=अनभिवादनरूपस्य पुत्रघृतस्या-
गस ; प्रसादम्=अनुग्रहम्, कर्तुम्=विप्रानुम् ; अर्हसि=योग्योऽसि । अनुष्टुप्
वृत्तम् ॥ ५० ॥

अन्वय—मया, अज्ञानात्, पूर्वं यत् भवान् न अभिवादित, अस्य,
पुत्रापराधस्य, प्रसादम्, कर्तुम्, अर्हसि ॥ ५० ॥

पदार्थ—मया=मेरे द्वारा, अज्ञानात्=अज्ञान के कारण, पूर्वम्=पहले, यत्=
जो, भवान्=आपका, न अभिवादित =अभिवादन नहीं किया गया,
अस्य=इस, पुत्रापराधस्य=पुत्र के द्वारा किये गये अपराध को, प्रसादम्=
क्षमा, कर्तुम्=करने के लिए, अर्हसि=योग्य होइए ^१अर्थात् मेरा अपराध क्षमा
कीजिए और मेरा प्रणाम स्वीकार कीजिए ॥ ५० ॥

भीम—तुम जन्म से राक्षसी हो, न कि आचरण से ।

हिडिम्बा—ओ जडमति, अपने पिता का अभिवादन करो ।

घटोत्कच—ओ तात—

अज्ञान के कारण मेरे द्वारा पहले जो आपका अभिवादन नहीं किया गया

पुत्र द्वारा किये गये इस अपराध को क्षमा कीजिए ॥ ५० ॥

घृतराष्ट्रवशुकी वन के लिए बनाग्नि के समान मैं घटोत्कच—आपको

१. तु० पञ्चरात्र २६८ ।

५ म० श्या०

भीमः—एह्येहि पुत्र ! व्यतिक्रमकृतं क्षान्तमेव । (इति परिष्वज्य)
अयं सः धार्तराष्ट्रवनदवाग्निः । पुत्रापेक्षीणि खलु पितृहृदयानि ।
पुत्र ! अतिबलपराक्रमो भव ।

घटोत्कचः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

वृद्धः—एवम्, भीमसेनपुत्रोऽयं घटोत्कचः ।

भीमः—पुत्र ! अभिवादयात्र भवन्तं केशवदासम् ।

घटोत्कचः—भगवन् ! अभिवादये ।

वृद्धः—पितृसदृशगुणकीर्तिर्भव ।

घटोत्कचः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

वृद्धः—भो वृकोदर ! रक्षितमस्मत्कुलं स्वकुलमुद्धृतं च ।
गच्छामस्तावत् ।

धार्तराष्ट्रवनदवाग्निः=दुर्योधनादय धृतराष्ट्रस्य पुत्रा, ते धार्तराष्ट्रा
एव वनम्, तस्य दवाग्नि वनाग्नि ।

प्रणाम करता हूँ । पुत्र-कृत चपलता को क्षमा करें ।

भीम—आओ, आओ पुत्र, तुम्हारे द्वारा किये गये अपराध को तो पहले
ही क्षमा कर दिया गया । (आलिङ्गन करके) यही वह धृतराष्ट्रवंशरूपी
वन की दवाग्नि है । पिता का हृदय तो सर्वदा पुत्रापेक्षी ही होता है । पुत्र,
अत्यन्त बलवान् और पराक्रमी होओ ।

घटोत्कच—मैं अनुगृहीत हूँ ।

वृद्ध—इस प्रकार यह भीमसेन का पुत्र घटोत्कच है ।

भीम—पुत्र, इन पूजनीय केशवदास का अभिवादन करो ।

घटोत्कच—भगवन्, मैं आपको प्रणाम करता हूँ ।

वृद्ध—पिता के समान गुण एवं कीर्ति वाले होओ ।

घटोत्कच—मैं अनुगृहीत हूँ ।

वृद्ध—हे भीम, आपने हमारे कुल की रक्षा की, और अपने कुल का भी
उद्धार किया । अब हम लोग चलें ।

मीमः—

अनुग्रहात् तु भवतः सर्वमासीद्विद शुभम् ।

आश्रमोऽदूरतोऽस्माक तत्र विश्रम्य गम्यताम् ॥ ५१ ॥

वृद्ध—कृतमातिथ्यमनेन जीवितप्रदानेन । तस्माद् गच्छाम-
स्तावत् ।

मीम.—गच्छतु भवान् सकुटुम्बः पुनर्दशनाय ।

वृद्ध.—वाडम् । प्रथमः कल्प ।

मीम ब्राह्मणस्य मत्कार कुर्वन्नाह—अनुग्रहादित्यादि । इद सर्वम्—
पाण्डवकृतोद्धारण त्व बुत्तरक्षणञ्चेद ममग्रम्, भवतः—तव ब्राह्मणस्य, अनु-
ग्रहात्—अनुकम्पात, शुभम्—मङ्गलम्, आसीत्—अनवत्, भवत्परिनापार्थ-
मापनस्य मम मीमस्य दारपुत्रममागमसिद्धया मागलिकमभवदित्यर्थे । अस्मा-
कम्—पाण्डवानाम्, आश्रम—आश्रम, अदूरत—सन्निकट एव वर्तते ।
तत्र—आश्रम, विश्रम्य—मदीयातिथ्यम्बीकारादिना मार्गमन्त्ररूपपरिश्रमम्
अनयो, गम्यताम्—मुखपूर्वक गन्तव्यदेश प्रति प्रस्थायिताम् । अनुष्टुप्
वृत्तम् ॥ ५१ ॥

अन्वय—भवत, अनुग्रहात्, इदम्, सर्वम्, शुभम्, आसीत् । आत्मकम्,
आश्रम, अदूरत [वर्तते, अन] तत्र, विश्रम्य, गम्यताम् ॥ ५१ ॥

पदार्थ—भवत = आपकी, अनुग्रहात्—अनुकम्पा से, इदम्—यह, सर्वम्—सब
कुछ, शुभम्—शुभ ही, आसीत्—हुआ । अस्माकम्—हम लोगों का, आश्रम—
निवामस्थान, अदूरत [वर्तते]—दूर नहीं [है] । [अतः] तत्र—वहाँ,
विश्रम्य—विश्राम करके, गम्यताम्—यात्रा कीजिए ॥ ५१ ॥

मीम—आपकी अनुकम्पा से यह सब कुछ शुभ ही हुआ । हम लोगों का
आश्रम यहाँ से दूर नहीं है । अतः वहाँ विश्राम करके फिर आने यात्रा
करें ॥ ५१ ॥

वृद्ध—इम जीवन-दान के द्वारा तो आपने सम्पूर्ण आतिथ्य कर ही दिया ।
अतः हम लोग चलें ।

मीम—कुटुम्बसहित पुनः दर्शन देने के लिए आप जायें ।

वृद्ध—अच्छा, बहुत अच्छा विचार है ।

(सपुत्रत्रयकलत्रो निष्कान्त. केशवदास)

भीमः—हिडिम्बे ! इतस्तावत् । वत्स ! घटोत्कच ! इतस्ता-
वत् । तत्रभवन्त केशवदासमाश्रमपदद्वारमात्रमपि सम्भावयिष्यामः ।

[भरतवाक्यम्]

यथा नदीनां प्रभवः समुद्रो

यथाहुतीनां प्रभवो हुताश ।

आश्रमपदद्वारमात्रम् = आश्रमद्वारावधिकम् । सम्भावयिष्यामः =
अनुगमिष्याम, अर्थात् अनुगमनेन सत्करिष्यामः ।

'प्रशस्ति शुभशमनम्'—इत्युक्तरूप शुभशमन प्रयोगान्ते प्रयुञ्जान आह—
भरतवाक्यम् = भरतस्य नटस्य वाक्य वचनम् । नाटकाभिनयसमाप्ती सामा-
जिकेभ्यो नटेनाशीर्दीयते इत्यर्थः ।

नट शुभाशसन करोति—यथेत्यादिना । यथा समुद्र = येन प्रकारेण
सरित्पति, 'समुद्रोऽन्ध्रकूपार पारावार सरित्पति' इत्यमरः । नदीनाम् =
सरिताम्, प्रभव = स्वामी उत्पत्तिलयहेतुत्वात्, यथा हुताशः = येन प्रकारेण,
हुतम् अश्नातीति हुताश अग्नि, आहुतीनाम् = होमानाम्, प्रभव = स्वामी
भोक्तृत्वात् । यथा मनः = येन प्रकारेण चित्तम् इन्द्रियाणाम् = चक्षुरादीनाम्,
प्रमदम् = स्वामी प्रेरकत्वात्, तथा = तेनैव प्रकारेण, भगवान् = भग ऐश्वर्यादि षट्क
तद्वान्,

'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशस श्रिय ।

ज्ञानवैराग्ययोश्चैव घण्टा भग इतीरणा ॥" विष्णुपुराणे इत्युक्तत्वात् ।

उपेन्द्रः = इन्द्रावरज, भगवान् विष्णुरित्यर्थः । 'उपेन्द्रइन्द्रावरजश्चक्रपाणिश्चतु-
र्भुज' इत्यमरः, न = अस्माकम्, प्रमु = ईश्वर भवेदिति शेष । मालारूपका-
लङ्कार । उपेन्द्रवज्रावृत्तम् । तल्लक्षण तु— उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ॥५२॥

(अपने तीनों पुत्रों और पत्नी के सहित केशवदाम का निष्क्रमण)

भीम—ओ हिडिम्बे, इधर आओ । वत्स, घटोत्कच, इधर आओ । इन
आदरणीय केशवदास को हम लोग आश्रम के द्वार तक तो पहुँचा दें ।

[उत्पत्ति और लय के कारण] जैसे नदियों का स्वामी समुद्र है,
भोक्ता होने के कारण] जैसे आहुतियों का स्वामी अग्नि है और [प्रेरक

यथेन्द्रियाणां प्रभवं मनोऽपि -

तथा प्रभुर्नो भगवानुपेन्द्रः ॥ ५२ ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ मध्यमध्यायोगं नाम नाटकं समाप्तम् ॥

— ० —

अन्वय—यथा, नदीनाम्, समुद्र, प्रभव, यथा आहुतीनाम्, हुताशः, प्रभव., अपि, यथा, इन्द्रियाणाम्, मन, प्रभवम्; तथा भगवान्, उपेन्द्रः, न, प्रभुः ॥ ५२ ॥

पदार्थ—यथा=जैसे; नदीनाम्=नदियों का, समुद्र प्रभवः=स्वामी समुद्र है, यथा=जैसे, आहुतीनाम्=आहुतियों का; हुताश प्रभवम्=स्वामी अग्नि है, अपि=और; यथा=जैसे, इन्द्रियाणाम्=ममस्त इन्द्रियों का; मन. प्रभव =स्वामी मन है, तथा=वैसे ही, भगवान्=ऐश्वर्यों वाले, उपेन्द्र =भगवान् विष्णु, न =हम [सामाजिक लोगो के] प्रभु =ईश्वर हैं ॥ ५२ ॥

विमर्श—महाकवि भास ने प्रभु शब्द का प्रयोग इस श्लोक में तीन बार किया है। यह उनकी विशेषता है, जो पहले भी की गयी है।

नटराज नमस्कृत्य देवी च भरत तथा । २५

मागीरध्यास्तटे काश्या लकाक्षेत्रे सुशोभने ॥ १ ॥

श्रीमदरामकुबेरस्य मालवीयस्य सूनुना ।

सुधाकरेण रचिता व्याख्या व्यायोगसगता ॥ २ ॥

— ० —

होने से चक्षु आदि] इन्द्रियों का स्वामी जैसे मनु ही है उसी प्रकार पद्-
ऐश्वर्यं यत्तु भगवान् विष्णु हम सामाजिकों के ईश्वर हैं ॥ ५२ ॥

(सभी का निष्क्रमण)

॥ 'मध्यमध्यायोग' नामक नाटक समाप्त ॥

इस प्रकार प० रामकुबेर मालवीय (भूतपूर्व साहित्यविभागाध्यक्ष,

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय और सम्पूर्णानन्दसंस्कृत विश्व-

विद्यालय) के आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय

कृत 'सरला' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥

— ० —

मध्यमध्यायोग के श्लोकों की छन्द-योजना

| छन्द का नाम | अक्षर संख्या | श्लोकार्क | योग | लक्षण |
|------------------------|--------------|---|-----|---|
| बनुष्टुप् [श्लोक] | ८ | २, ७; १२-२३; २८-३१; ३३-४०; ४२-४५; ४७, ४९-५१ | ३४ | श्लोके षष्ठ गुरु श्रेय संवन्न लपु पञ्चमम् । द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्व सप्तम दीर्घमन्ययो ॥ |
| उपेन्द्रवज्रा | ११ | ५२ | १ | उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गो । |
| उपजाति | ११ | ९, ४१ | २ | स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ ग । } इत्यनयो- उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गो । } षपजाति. |
| पुञ्जिताग्रा | १२/१३ | ४, २४, २५ | ३ | अयुजि नयुगरेफतो यकारो युवि च नजो जरगाश्च पुञ्जिताग्रा । |
| वशस्प | १२ | १० | १ | जतो तु वशस्थमुदीरितं जरौ । |
| वसन्ततिलका | १४ | १, ३; ८, ११; २७, ४८ | ६ | ज्ञेया वसन्ततिलकात्मजा जयौ ग । |
| मालिनी | १५ | ५; ६, ३२; ४६ | ४ | ननमययुतेयं मालिनी भोगलोकः । |
| क्षग्धरा | २१ | २६ | १ | अर्म्मैर्यानान्त्रयेण त्रियुनि यति युता क्षग्धरा कीर्तितेयम् । |
| | | | ५२ | |

मध्यमव्यायोगं के सुभाषित

| | पृष्ठाङ्क |
|--|-----------|
| १ आग्न हि पिता प्रामो ज्येष्ठपुत्रेण तार्यत | २६ |
| २ जानामि सर्वं व मदा न नाग द्वित्रोत्तमा वृग्यतमा वृषिभ्याम् | १३ |
| ३ ज्येष्ठो भ्राता वितृणम | २५ |
| ४ ज्येष्ठ श्रेष्ठ कुमे लोके वितृणां न शुर्नत्रिम. । | २४ |
| ५ निर्वेदप्रार्थयिषी समु प्रायेता । | १९ |
| ६ अदिपसपस्विणी अदिपसपस्वि लस्य । | |
| [पतिमात्रधर्मिणी पतिप्रतेति माम] | २३ |
| ७ अगुस्नेहादि मह्य कायतोहरतु दुर्लभ । | २० |
| ८ माता किम मृष्याणां दीयतां न संवतम् । | ४८ |
| ९ शय्योर्जा कुञ्जरो वयो न ध्यात्र सर्ववद वने । | ५६ |
| १० कां निषागामिना मास्विताम् | १९ |
| ११. सर्वा प्रजा क्षत्रियाणां पुत्रशरदारिद्र्यायने । | ५२ |

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकाङ्काः पृष्ठाङ्काः

श्लोकाङ्काः पृष्ठाङ्काः

| | | |
|------------------------|----|----|
| अनुग्रहात् | ५१ | ६७ |
| अरमाकं भ्रष्ट | ४९ | ३४ |
| अस्वामागम्य | ३१ | १२ |
| अज्ञानात् | ५० | ६५ |
| आत्म्य राक्षस | ४८ | ६१ |
| आपदं हि पिता | १९ | २६ |
| हृदं हि धून्यं | १० | १५ |
| कलभदशन | ६ | १० |
| काश्चनस्तम्भ | ४२ | ५४ |
| किं याति मद | ८ | १२ |
| कृतकृत्यं शरीरं | १५ | २२ |
| कौरभ्यकुल | ३८ | ४९ |
| कामशतपिबते | २५ | ३३ |
| प्रहयुगल | ५ | ८ |
| जानामि तयंत्र | ९ | १३ |
| ज्येष्ठः श्रेष्ठः कुले | १७ | २४ |
| ज्येष्ठो भ्राता | १८ | २५ |
| सदृश सदृशता | २४ | ३१ |
| सदृश रविकर | ४ | ७ |
| स्यस्ता. प्रागेव | ४० | ५१ |
| धनोऽस्मि मद | २० | २७ |
| मन्वह भीम | ४५ | ५७ |
| नियुक्त भ्यवहारो | ३४ | ४५ |
| परम्या चारिष | १२ | २० |
| परिष्वजस्य गाढं | २२ | २९ |
| पामात् स षोऽगुर | १ | २ |

| | | |
|---------------------|----|----|
| मुद्रनक्षत्र | ३३ | ४४ |
| प्राज्ञः श्रुत | १३ | २१ |
| भोशशब्दोच्चा | २ | ४ |
| भ्रातृणां मम | ३५ | ४६ |
| मध्यम पश्य | २९ | ३१ |
| मध्यमस्त्विति | ३० | ४० |
| मध्यमोऽहं | २८ | ३८ |
| मम प्राणैर्गुह | १६ | २३ |
| माता किल मनुष्याणां | ३७ | ४८ |
| मायापाशेन | ४७ | ५९ |
| मुच्यतामिति | ३६ | ४७ |
| यथा नदीनां | ५२ | ६८ |
| यद्यपितो द्विज | १४ | २१ |
| यस्मिंश्च ज्ञो | २३ | ३० |
| युद्धप्रियाभ | ११ | १७ |
| रूप सत्त्व | ३९ | ५० |
| पश्य तातो | ७ | ११ |
| यिनिमाय गुरु | २१ | २८ |
| विश्वकर्ता शिव | ४३ | ५५ |
| प्रजति कथमिह | ४६ | ५७ |
| शपामि तस्येन | ४१ | ५३ |
| शैलकूट | ४४ | ५६ |
| श्रान्तैः सुतै | ३ | ६ |
| सजलजलद | ३२ | ४३ |
| सिंहावृत्तिः कनक | २७ | ३६ |
| सिंहास्य. सिंह | २६ | ३५ |

कृष्णदास संस्कृत सीरीज

६५

महाकविथोभासप्रणोतम्

दूतवाक्यम्

‘उद्योतना’-‘सरला’-संस्कृत-हिन्दी-व्याख्यासहित-
विस्तृत-भूमिका-परिशिष्टादि-विमूषितम्

सम्पादको व्याख्याकारस्व

डॉ० सुधाकर नाथजीयः

एम० ए०, पी० एच्० डी०, साहित्याचार्य

[संस्कृत विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी]



कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

१९८७

प्रकाशक : कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, वि० स० २०४४

मूल्य : रु० ६-००

© कृष्णदास अकादमी

पो० बा० नं० १११८

चीक, (चित्रा सिनेमा बिल्डिंग), वाराणसी-२२१००६

[भारत]

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन

पो० बा० १००८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)

फोन : ६३१४५

KRISHNADAS SANSKRIT SERIES

95

+++

DŪTAVĀKYA

OF

BHASA

*Edited With Sanskrit & Hindi Commentaries;
Critical Introduction, Explanatory
Notes and Appendices*

By

Dr. Sudhakar Malaviya

M. A., Ph. D., Sahityācarya

Department of Sanskrit, Banaras Hindu University



KRISHNADAS Academy

VARANASI-221001

© KRISHNADAS ACADEMY.

Oriental Publishers and Distributors

Post Box No. 1118

Chowk, (Chitra Cinema Building), Varanasi-221001.

(INDIA)

First Edition

1987

Price Rs. 6-00

Also can be had from

Chowkhamba Sanskrit Series Office

K. 37/99, Gopal Mandir Lane

Post Box 1008, Varanasi-221001 (India)

Phone : 63145

आशीर्वाद

प्रन्याध्ययननिर्गमो मालवीयः सुधाकरः ।
प्रसिद्धिं प्राप्नुयादित्यं प्रन्यसंस्कारकर्मणि ॥

—विश्वनाथ भट्टाचार्यः

कर्तव्यो भ्रातृषु स्नेहो विस्मर्तव्या गुणेतराः ।
सम्बन्धो बन्धुभिः श्रेयान् लोकयोरुभयोरपि ॥

—द्वुतवाक्य २९

दोषो को भूल जाना चाहिए और भाइयो से भ्रातृस्नेह करना चाहिए,
क्योंकि भाइयो के साथ सम्बन्ध रखना लोक एवं परलोक दोनों ही में
श्रेयस्कर है ॥ २९ ॥

दो शब्द

महाकवि भासकृत दूतवाचय नामक एकाङ्की नाटक का प्रस्तुत संस्करण विश्वविद्यालय एवं सामान्य विद्यार्थियों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए ही मुख्य रूप से तैयार किया गया है। इस संस्करण में पाठभेद सहित मूलपाठ, उसकी संस्कृत व्याख्या, श्लोको के अन्वय, हिन्दी अनुवाद तथा उपयोगी विस्तृत भूमिका और उसकी समीक्षा भी दी गई है। टिप्पणी में व्याकरण सम्बन्धी प्रकृति-प्रत्यय आदि का स्पष्टीकरण, समासादि का निर्देश, कोश, विसर्गियों का समाधान एवं अलङ्कार तथा छन्दो का उल्लेख किया गया है।

इस एकाङ्की में पाण्डव पक्ष से दुर्योधन के पास कृष्ण के दूत बनकर जाने और वहाँ उनके द्वारा पाण्डवों के भाग (हिस्ता) माँगने पर दुर्योधन द्वारा कृष्ण को पकड़ने की आज्ञा देने पर भगवान् कृष्ण के विराट् रूप ग्रहण करने की कथा वर्णित है। एकाङ्की बहुत छोटा है। मात्र छप्पन श्लोक ही हैं और कुछ ही घण्टों में मञ्चनीय है।

यद्यपि इस ग्रन्थ के अनेक संस्करण प्राप्त हैं। फिर भी मुझे ५० गणपति शास्त्री एवं प्रो० देवधर के संस्करणों से विशेष सहायता प्राप्त हुई है। इसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

पूज्य पिता श्री स्व० ५० रामकुवेर मालवीय (साहित्य-विभागाध्यक्ष, का० हि० वि० वि० और वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय) के पुनीत चरणों में बैठकर मास के नाटको का जो आस्वाद मैं ले पाया था उसे आज साहित्य पथ में देखते हुए मुझ अत्यन्त हर्ष हो रहा है। वस्तुतः इसका श्रेय कृष्णदास अकादमी के निदेशक वग्धुदय श्री विठ्ठलदास गुप्त एवं श्री ब्रजमोहनदास गुप्त को ही है। उनके आदर्य का मैं अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने इस कार्य के लिए मुझे प्रोत्साहित किया।

रमयात्रा, १९८७
संस्कृत विभाग
का. हि. वि. वि., वाराणसी

विदुषां वशवद
सुधाकर मालवीय

विषय-सूची

| | |
|--|-------|
| दो शब्द | ५ |
| भूमिका | १-२६ |
| भास के नाटको की खोज और उनका एककर्तृत्व | ३ |
| भास का काल | ८ |
| भास की कृतियाँ और उनके कथा-स्रोत के आधार | ११ |
| भास के नाटको का संक्षिप्त परिचय | १२ |
| दूतवाक्य-समीक्षा | १५ |
| कथानक की पृष्ठभूमि | १५ |
| दूतवाक्य की कथावस्तु | १५ |
| कथानक-समालोचन और उसका महामारतीय परिवेश | १९ |
| दूतवाक्य नाम का कारण | २१ |
| नाटक में रस, नाटक का प्रकार | २१ |
| दूतवाक्य की नाट्यकला | २२ |
| चरित्रचित्रण | |
| १. वासुदेव | २४ |
| २. दुर्योधन | २६ |
| दूतवाक्य (मूल और व्याख्या) | १-८० |
| परिशिष्ट १ : | |
| श्लोकानुक्रमणिका | ८१-८२ |
| परिशिष्ट २ : | |
| दूतवाक्य के श्लोको की छन्दःयोजना | ८३ |
| परिशिष्ट ३ : | |
| सुभाषितसंग्रह. | ८४ |

में भास के तीन उद्धरण दिए हैं। राजशेखर [१०वीं शती] ने 'स्वप्न-वासवदत्तम्' नाटक को 'काव्यमीमांसा' में उत्तम कोटि का स्वीकार किया है।

अभिनवगुप्त [१० वी शती] ने 'अभिनवभारती' में 'स्वप्नवासवदत्तम्' का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त 'ध्वन्यालोकलोचन' में इस नाटक से एक श्लोक भी उद्धृत किया है। किन्तु यह सम्प्रति मुद्रित ग्रन्थ में प्राप्त नहीं है। महाराज भोज [११ वी शती] ने 'शृङ्गारप्रकाश' में 'स्वप्नवासव-दत्तम्' का उल्लेख किया है। रामचन्द्र गुणचन्द्र [१२वीं शती] ने 'नाट्यदर्पण' में 'स्वप्नवासवदत्तम्' से एक श्लोक उद्धृत किया है। आलङ्कारिक जयदेव

१. (क) शरच्छशाकगौरेण वातावद्धेन भामिनी । काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति. ५.३
काशपुष्पलवेनेद साश्रुपातं मुख मम ॥ स्वप्नवासवदत्तम्, अंक ४

(ख) यो भर्तृपिण्डम्य कृते न युष्येत् । प्रतिज्ञायोग्धरायण ४.२

(ग) यासा बलिभंवति मदगृहदेहलीना,
हर्मद्वे सारसगणैश्च विलुप्तपूर्वः । काव्यालंकार १५

तास्वेव पूर्वबलिरुद्धचवाङ्कुरामु
बीजाञ्जलिः, पतति कीटमुखावलीढः ॥ चारु १२

२. भामनाट्यक्रेऽपि छेकं क्षिप्ते परीक्षितुम् ।

स्वप्नवासवदत्तस्य दहकोऽभून्न पादकः ॥

३. क्वचित् क्रीडा यथा स्वप्नवासवदत्तायाम् । अभिनवभारती १ ७४
(स्वप्न० अंक २)

४. सञ्चितपक्षकवाट नयनद्वार स्वरूपतडनेन ।
उद्घाटय सा प्रविष्टा हृदयगृहं मे नृपतनूजा ॥

५. स्वप्नवासवदत्ते पद्यावतीमस्वस्था द्रष्टुं राजा समुद्रगृहं गतः । पद्या-
वतीरहितं च तदवलोक्य तस्या एव शयनीये सुप्त्वाप । वासवदत्ता च
स्वप्नवदस्वप्ने ददर्श । स्वप्नायमानश्च वासवदत्तामावभाषे ।

शृङ्गारप्रकाश, स्वप्नवासवदत्तम्, पंचम अंक का संक्षेप ।

६. यथा भास कृते स्वप्नवासवदत्ते—

शेफालिकाशिलातलमवलोक्य यस्मराजः—

[१२ वीं शती] ने 'प्रसन्नराघव' की प्रस्तावना में उन्हें काविता-कामिनी का हास कहा है।^१ इस प्रकार प्राचीन समय में भास का संस्कृत साहित्य में बड़ा गौरवपूर्ण स्थान था।

भास के नाटकों की खोज और उनका एककृतत्व

संस्कृत साहित्य के इतने प्रसिद्ध रत्न होने पर भी बहुत दिनों तक विद्वानों को इनका केवल नाम ही मालूम था। इनके काल, जीवन वृत्त और ग्रन्थों के विषय में कुछ भी ज्ञान न था। सीमाशयवशात् १९१२ में महामहोपाध्याय श्री टी० गणपति शास्त्री ने 'स्वप्नवासवदत्तम्' आदि तेरह नाटक त्रिवेन्द्रम् से अनन्तशयनं ग्रन्थमाला में प्रकाशित कराए और उन्हें भास की रचना बतलाया।

ये नाटक मध्य संस्कृत नाटकों में कुछ विन्मक्षण थे। संस्कृत नाटकों के आरम्भ में ग्रन्थकार अपना परिचय देते हैं। कालिदास, ध्वभूति आदि नाटककार इस शैली का अनुसरण करते हैं। परन्तु इन नाटकों में ग्रन्थकार का नाम नहीं स्मरण किया गया है। जल्हणकृत सूक्तिमुक्तावली में राजशेखर का एक श्लोक उद्धृत है, जिसमें 'स्वप्नवासवदत्तम्' को उत्कृष्ट नाटक बताया गया है। प्रस्तुत तेरह नाटकों में एक 'स्वप्ननाटक' भी है जिसमें वत्सराज उदयन और वासवदत्ता की कथा है। प० टी० गणपति शास्त्री ने अनुमान किया कि राजशेखर निर्दिष्ट स्वप्न वासवदत्ता यही है, और क्योंकि स्वप्नवासवदत्ता के कर्त्ता राजशेखर द्वारा भास माने गये हैं अतः प्रस्तुत स्वप्न नाटक के कर्त्ता भी भास ही हैं उन्होंने आगे लिखा कि—१. क्योंकि रचना शैली आदि में ये सब नाटक एक ही प्रकार के हैं, अतः इनके कर्त्ता भास ही होंगे। एतद्देशीय और विदेशीय अनेक विद्वानों ने प० टी० गणपति शास्त्री द्वारा निकाला गया परिणाम स्वीकार कर लिया। २. परन्तु अनेक ऐसे भी विद्वान् हैं जो ऐसा नहीं मानते। उनके

पदाङ्गान्तानि पुष्पाणि सोष्म चेदं शिलातलम् ।

नूनं काचिदिहासीना मां दृष्ट्वा सहसा गता ॥ (नाट्यदपेण)

१ भासो हाम कविकुलगुरु कालिदासो विलासः । (प्रसन्नराघव)

अनुसार ये नाटक भास के नहीं हैं ।

३. इन दोनों मतों के अतिरिक्त एक तीसरा मत है । उसके मानने वालों का कथन है कि भारत के केरल आदि दक्षिण प्रान्तों में प्राचीन कवियों के अनेक नाटकों का संक्षेप और परिवर्तन जो किया गया उसका यही प्रयोजन था कि ये नाटक रंगमंच पर आसानी से अभिनीत हो सकें । इसी कारण शकुन्तला आदि नाटकों का भी संक्षिप्त एव परिवर्तित रूप वहाँ मिलता है । इसी प्रकार त्रिवेन्द्रम् से प्रकाशित होने वाले ये स्वप्न-नाटक आदि तेरह ग्रन्थ भी प्राचीन नाटकों का संक्षेप एव रूपान्तर ही हैं ।

यह तीसरा मत कुछ विद्वानों को मान्य है । इसका कारण यह है कि अनेक प्राचीन ग्रन्थकारों ने भास कृत 'स्वप्नवासवदत्तम्' के नाम से कई श्लोक अपने अपने ग्रन्थों में उद्धृत किए हैं । सम्प्रति मुद्रित 'स्वप्न-नाटक' में वे सब श्लोक नहीं प्राप्त होते । अतः विद्वानों का अनुमान है कि प्रस्तुत 'स्वप्न नाटक' में अनेक श्लोक सम्भवतः संक्षेप के कारण लुप्त हो गए । अस्तु इस विवाद के रहते हुए भी इतना तो सुनिश्चित ही है कि भास ने कोई 'स्वप्न वासवदत्तम्' आदि तेरह नाटक रचा था और प्रस्तुत 'स्वप्ननाटक' उसी का रूपान्तर है । इस रूपान्तर का मूल से कितना अन्तर है यह कुछ कहा नहीं जा सकता ।

पं० टी० गणपति शास्त्री द्वारा प्रकाशित अन्य द्वाह नाटकों के अन्त में भी ग्रन्थकार का नाम निर्देश नहीं प्राप्त होता । यही नहीं प्रारम्भ में भी कवि अपने नाम का स्मरण भी नहीं करता । किन्तु रचनाशैली की समानता के कारण पं० टी० गणपति शास्त्री ने यही परिणाम निकाला कि यह तेरह नाटक एक ही कवि की कृति हैं और वह कवि भास ही हैं । फिर भी जिन तर्कों के आधार पर विद्वान् भास के कर्तृत्व का विरोध प्रस्तुत करते हैं वे इस प्रकार हैं—

१ इन रूपकों में कवि का नाम दिया गया, अतः यह भास की रचनाओं पर आधृत किसी अन्य कवि की कृतियाँ हैं ।

२. इनमें सूत्रधार नान्दी के वाद प्रवेश करता है । यह विशेषता इन

तेरह रूपको की ही नहीं, अपितु सामान्यतः समस्त दक्षिण भारतीय रूपको की है।

२. इनमें उपलब्ध नाट्यकला भास की ही अपनी नहीं, अपितु वैसे नाट्यकला तो दक्षिण भारत के सभी रूपको में मिलती है।

४ इन रूपको में भरतमुनि के नाट्यशास्त्रीय नियमों का पूर्णतया पालन न होना भी इनकी प्राचीनता का द्योतक नहीं है, क्योंकि निपिद्ध दृश्य तो पञ्चकालीन रूपको में सामान्यतः अधिक प्रमादोत्पादकता की दृष्टि से अपना लिये गये हैं।

५ जहाँ तक भाषा का प्रश्न है उसे भी ठोस आधार नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अपाणिनीय प्रयोग तो आर्य काव्य, पुराण साहित्य और अत्यन्त पश्चवर्ती अनेक ग्रन्थों में बिखरे मिलते हैं। दूसरे, प्राकृत के प्राचीन प्रयोग मलयालम हस्तलेखों की विरोधता है।

इसके अतिरिक्त रूपको की प्राकृत, हस्तलेखों के लेखन स्थल एवं काल पर निर्भर है, न कि नाट्यकार के काल पर।

६ बाद के लेखकों ने जो पद्य उद्धृत किए हैं, उन्हें उन्होंने भास से सबद्ध नहीं बताया है।

७ सुभावित ग्रन्थों में उपलब्ध कुछ पद्य त्रिवेन्द्रम् में मिले रूपको में नहीं मिलते।

८ महामहोपाध्याय को० शास्त्री प्रभृति विद्वानों ने इन्हें 'आश्चर्यचूडा मणि' 'प्रतिमा' तथा 'अभिषेक' की एकत्र प्राप्ति के आधार पर शक्तिभद्र की रचनाएं माना है।

९ कुछ विद्वानों ने सूद्रक को भास से अभिन्न सिद्ध करते हुए मृच्छकटिक, वाचचरित, अविमारक तथा वत्तराजचरित की सूद्रक की कृतियाँ माना है। कुछ ने 'वाचरित' को मृच्छकटिक का अभिनयोचित सश्लेष संस्करण माना है।

१० डा० वॉर्नेट इन रूपको को भास का न मान कर पाण्डव राजाओं के सभा कवियों द्वारा लिखित मानते हैं, जब कि अन्य विद्वान् इनके कर्तृत्व का श्रेय पल्लव नरेशों के सभा कवियों को देते हैं।

११. रामावतार शर्मा के अनुसार कुछ रूपक भास प्रणीत अवश्य हैं किन्तु सब रूपको को रचना भास ने नहीं की थी ।

१२. केरल प्रदेश में ही इनकी उपलब्धि होने से कुछ विद्वान् इन्हे किसी केरल देशीय नाटककार की कृतियाँ मानते हैं । डाक्टर कुन्हन राजा ने इन पर केरल का प्रभाव दर्शाया है तथा 'चारुदत्त' में केरलीय उत्पत्ति के चार शब्दों को प्रस्तुत किया है । डॉ० टामस ने इस मत का विरोध किया है । कुप्पुस्वामी शास्त्री ने 'सवन्ध' शब्द के आधार पर इन रूपको में मलाबार के 'सवन्ध विवाहो' की ओर संकेत माना है, किन्तु आर० कवि ने इसका विरोध किया है । उक्त ये रूपक केरल के परम्परानुयायी अभिनेता चाक्यारो के भण्डार का एक अंग हैं । पिशरोत्ति का कथन है कि इन रूपको के प्रस्तावना भाग बाद में जोड़ दिए गए थे, जब कि मुख्य दृश्यो में मौलिक रूपको को स्थानीय रङ्गमञ्च की आवश्यकता के अनुकूल ढालकर अथवा सक्षिप्त करके सुरक्षित रखा गया है ।

नाटकों का एक-कर्तृत्व—

किन्तु सभी नाटको का सूक्ष्म विश्लेषण करने पर इनमें कुछ ऐसी समानताएँ प्राप्त होती हैं जिनके साक्ष्य पर विद्वानों की निश्चित रूप से मानना पड़ता है कि ये सभी नाटक किसी एक ही कवि की कृति हैं । अस्तु, विद्वानों के द्वारा जिन तर्कों और समानताओं के आधार पर भास का कृतित्व स्वीकार किया गया है । वे दो प्रकार के हैं—(क) आकृति साम्य और (ख) विषय साम्य ।

(क) आकृति साम्य--

१. इन नाटको में वर्णभार को छोड़कर प्रारम्भिक पूर्वरंग को 'प्रस्तावना' न कहकर स्थापना कहा गया है ।

२. इन नाटको में आदि अन्त प्रायः एक प्रकार का है; जैसे—

(अ) अनेक नाटको के प्रारम्भ में मुद्रालकार द्वारा पात्रों की सूचना दे दी गयी है ।

(ब) प्रायः सभी नाटक 'नान्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधार.' इन्ही शब्दों से प्रारम्भ होते हैं ।

(स) इनमें में अधिकतर नाटकों में 'भरतवाक्य' एक जैसा ही है, जैसे—'इमामपि मही कृत्स्ना राजसिंहः प्रशास्तु नः ।' जहाँ यह नहीं मिलता वहाँ इसी प्रकार का कोई अन्य श्लोक रहता है । इस प्रकार लगभग नाटकों में 'राजसिंह प्रशास्तु नः' यह अवश्य प्रयुक्त हुआ है ।

३ इन नाटकों में भरतप्रतिपादित नाट्यशास्त्र के नियम का पूर्णतया पालन न किया जाना भी यही सूचित करता है कि इनका कर्ता कोई एक ही व्यक्ति है । जैसे मुद्रा व मृग्यु आदि रंगमंच पर ही प्रदर्शित किए गये हैं, तथा अभिषेक, पूजा, शपथ या अथ प्रक्षालनार्थ जल रङ्गमंच पर ही लिया गया है । इसी प्रकार शयन, क्रीडा एवं दूराल्लान की योजना भी रंगमंच पर कर दी गयी है ।

४. इन नाटकों में भूमिका बहुत छोटी प्राप्त होती है और प्रारम्भिक संवाद के वाक्य भी प्रायः समान ही हैं, जैसे—'एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि अये—अङ्ग पश्यामि ।'

५ सभी नाटकों के नामों का उल्लेख उन नाटकों के अन्त में ही किया गया है, अन्यत्र नहीं ।

(ख) विषय साम्य—

१. इन सभी नाटकों में एक मुख्य समानता यह है कि इनकी भाषा और शैली समान है । कितने ही शब्दों, वाक्यों श्लोकों और पदों को विभिन्न नाटकों में दुहराया गया है । वही उपमा और उत्प्रेक्षा जो नाटक में आ गई है दूसरों में भी मिलती है । सूचकर ने ऐसे समान वाक्यों आदि की पूरी सूची दी है । जिनकी संख्या १२७ है ।

२ इन रूपकों में अनेक अपाणिनीय प्रयोग में मिलते हैं । जैसे—आप्रच्छ प्रयोग परस्मैपद में है ।

३ अनेक नाटकों में नाटकीय व्यङ्ग्य (पताका-स्थानक) का प्रयोग मिलता है ।

४. कतिपय अप्रचलित छन्दो का प्रयोग इनमें प्राप्त होता है। जैसे— सुवदना, दण्डक आदि। अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग बहुत अधिक किया गया है।

५. कुछ नाटक एक दूसरे से सम्बद्ध से जान पड़ते हैं। जैसे—स्वप्न-वासवदत्तम्, 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' का ही उत्तरार्द्ध लगता है। इसी प्रकार प्रतिमा नाटक भी अभिषेक से सम्बद्ध है।

६. इनमें से बनेक नाटको में छोटे पात्रों के नामों में भी समानता है जैसे—'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' व 'दूतवाक्य' में कञ्चुकी का नाम 'वादरायण' है। इसी प्रकार 'स्वप्नवासवदत्तम्' 'प्रतिमा' 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' और अभिषेक चारों नाटको में प्रतिहारी का नाम 'विजया' है।

७. प्रायः सभी नाटकों में नाट्यनिर्देशों की न्यूनता समान रूप से मिलती है। जो नाट्यनिर्देश हैं उनमें दो तीन निर्देश साथ साथ दिये गये हैं, जैसे—'निष्क्रम्य पुन प्रविश्य' या 'सविस्मर्य परिक्रम्यावलोक्य च' आदि।

इस प्रकार सभी नाटको में समान दृश्यों की अवतारणा, समान भाव और समान शब्दों एवं समान वाक्यों की उपलब्धि से और अन्ततः समान वर्णन पद्धति के आधार पर यही सिद्ध होता है कि इन नाटको का प्रणेता निश्चित ही कोई एक व्यक्ति है जो राजशेखर और अभिनवगुप्त के साथ से भास ही हैं।

भास का काल

महाकवि कालिदास द्वारा 'मालविकाग्निमित्र' में स्मरण किए जाने से यह निश्चित ही है कि भास कालिदास के पहले प्रथित-परा वाले ही चुके थे। किन्तु कालिदास का काल ही निश्चित नहीं है। कुछ विद्वान् कालिदास का काल ४०० ई० मानते हैं। अतः उनके अनुसार भास ४०० ई० से प्राचीन थे। अन्य विद्वान् कालिदास को प्रथम शती का मानते हैं। अतः उनके अनुसार भास ई० की प्रथम शती के पहले विद्यमान थे। इसी आधार पर ५० टी० गणपति शास्त्री भास को तृतीय ई० ५० मानते हैं। चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में 'अपोह श्लोकी भवतः' कहकर जो दो श्लोक उद्धृत किए हैं इनमें दूसरा श्लोक 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' में मिलता है। चाणक्य चन्द्रगुप्त के

मन्त्री दे । उन्होंने निश्चित ही यह श्लोक भास से लिया होगा क्योंकि यदि स्मृति से लेते तो अक्षर ही 'इति स्मृती' लिखते । अंसा कि इतिहासकारों के अनुसार चन्द्रमुन ३२१ ई० पू० रावणही पर आनीन हुए थे, अतः भास का समय उनके समय ५० वर्ष पूर्व मानना ठीक होगा । भास के 'प्रतिमा-नाटक' में बृहस्पतिह्न अर्षशास्त्र में रावण की दशता का उल्लेख हुआ है ।^१ बाह्यस्पत्य अर्षशास्त्र आगस्त्य से बहुत पहले का है । यदि भास आगस्त्य के बाद होते तो उनके अर्षशास्त्र का उल्लेख अक्षर करते । अतः भास के काल की निम्नतम सीमा ४०० ई० पू० ही सिद्ध होती है ।

लोकमान्य तिलक के अनुसार भास कालिदास के पूर्ववर्ती थे, और उनका स्थितिकाल दूसरे या तीसरे शतक के बाद का कशरि नहीं है ।^२ वस्तुतः 'भगवद्गीता' के आदि में 'गीता-ध्यान' नाम से नौ श्लोकों की प्रार्थना करते हुए लोकायान्य का यह भी कथन है कि इन नौ श्लोकों में जो 'भीष्म द्रोणतटां जयद्रथजलाम्' आदि श्लोक उद्धृत हैं, यह महाकवि भास के 'ऊरुमङ्गल' का आदि श्लोक है ।^३ कुछ विद्वान् भास को नारायण काव्य का नामकालीन सिद्ध करते हैं ।^४ नारायण काव्य का समय ५३-४१ ई० पू० माना गया है । वेलवल्कर के मत से सुदक का मृच्छकटिक भास के बादत में बहुत प्रभावित है अतः भास का समय तीसरी शती ई० पू०

१. नवं शरावं सलिलैः सुसुगं सुसंस्कृतं दमंशुतोत्तरीयम् ।

ततस्तस्य मा भूमरकं म दच्छेद् यो षट्पिण्डस्य कृते न मुञ्चेत् ।

(कीटि० अर्थ० १० ३, प्रतिभा० ४.२) ।

२. श्री. काश्यपयोगीश्वरिणः, नाङ्गवेदमधीये, मानवीयं धर्मशास्त्रं महेश्वरं योगशास्त्रं, बाह्यस्पत्यमर्षशास्त्रं प्रावेतसं आदिकल्पश्च ।

(प्रतिभा० अंक ५)

३. लोकमान्यतिलककृत गीता रहस्य, पृ० ५६० ।

४. गीता रहस्य, पृ० ५६१ ।

५. जे० बी० ए० एस्० डी०, बंगाल, जयसवाल, पृ० २५९, १९१३ ।

होना चाहिए ।^१

भास की निम्नतम-सीमा पर विचार के बाद उनकी उपरिमत सीमा का विचार आवश्यक है। भास के नाटको में कुछ का सम्बन्ध वत्सराज उदयन से है। भास ने प्रद्योत, दर्शक और उदयन को समकालीन चित्रित किया है। इतिहासकार स्मिथ के अनुसार दर्शक और उनके उत्तराधिकारी का राज्यकाल ४७५ ई० पू० से ४५ ई० पू० के मध्य था।^१ इस प्रकार भास के काल की आदिम सीमा ४५० ई० पूर्व से पहले भी नहीं मानी जा सकती। अतः भास का काल ३०० ई० पू० होना चाहिए।

भास के नाटको में प्राप्त अनेक आभ्यन्तर प्रमाण भी इसी काल की ओर संकेत करते हैं। इन नाटको में पाए जाने वाले अपाणिनीय प्रयोगों से यह स्पष्ट है कि पाणिनि के पूर्व भास के नाटको की रचना हो चुकी थी। भास के प्राकृत कालिदास के प्राकृतों की अपेक्षा प्राचीन मालूम पड़ते हैं। भास के नाटको से व्यक्त सामाजिक अवस्था मौर्यकाल की सामाजिक अवस्था के समान है। भासकृत नाटको की रचना घंटी भरत के 'नाट्यशास्त्र' में वर्णित शैली से प्राचीन है। 'मानवीय धर्मशास्त्र' उपलब्ध 'मनुस्मृति' का परामर्श नहीं करता। वह शब्द धर्मसूत्रकार गौतम द्वारा उल्लिखित मानवीय धर्मशास्त्र का बोधक है। शौतम का काल ई० पू० ६०० माना जाता है। महेश्वरकृत 'योगशास्त्र' के समय का ठीक पता नहीं चलता। इसी प्रकार 'प्राचेतस श्राद्धकल्प' का भी पता नहीं चलता। भास के भरतवाक्यों में आए 'राजसिंह' शब्द से ऐसा मालूम पड़ता है कि भास उपर्युक्त तीनों राजाओं में से किसी एक के राजकवि थे। 'स्वप्नवासवदत्तम्' और 'प्रतिज्ञायोग्वरारयण' से ऐसा प्रतीत होता है कि भास वत्सराज उदयन को अमर बनाना चाहते हैं। इस प्रकार नाटको के आभ्यन्तर माक्ष्यों के आधार पर भी वह ई० पू० ३०० शती के ही सिद्ध होते हैं।

१ वेलवत्कर, एस० के०, ओरि० कॉन्फे०, १९१९, भाग २, पृ०

१८९-२०४।

२. अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृ० ३८-३९।

भास की कृतियाँ और उनके कथा-स्रोत के आधार

कथा स्रोतों के आधार पर भास की कृतियों का विभाजन हम पाँच प्रकार में कर सकते हैं—

कथा स्रोत का आधार

| | | |
|-------------------------|--|-----------------------|
| १. प्रतिमानाटक | | रामायण |
| २. अभिषेक | | |
| ३. मध्यमव्यायोग | | महाभारत |
| ४. दूतवाक्य | | |
| ५. दूनघटोत्कच | | |
| ६. कर्णभार | | |
| ७. ऊरुमञ्जु | | |
| ८. पञ्चरात्र | | हरिवंश |
| ९. बालचरित | | |
| १०. स्वप्नवासवदत्तम् | | |
| ११. प्रतिज्ञायौगन्धरायण | | वृहत्कथा |
| १२. अविमारक | | |
| १३. चारुदत्त | | लोकप्रचलित व काल्पनिक |

(घ) यज्ञफल—

इन उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त कुछ विद्वान् 'यज्ञफल' को भी भासकृत मानते हैं। इसे गोण्डल निवासी राजवंद्य जीवगम कालिदास शास्त्री ने १९४१ में प्रकाशित किया। यह रामायण पर आधारित है। इस सम्बन्ध में प्रोफेसर झाला का कथन है कि 'यज्ञफल' भास के अन्य नाटकों की तरह ही प्रारम्भ और समाप्त होता है। किन्तु इसमें बहुत भी नवीन बातें हैं जो भास के समय में नहीं थीं। राम धनुर्भङ्ग से पूर्व प्रेम की दृढता के लिए सीता से उद्यान में मिलते हैं। राम को भी दुष्यन्त के ही समान शंका होती है कि यह कहीं ब्रह्मर्षि की पुत्री तो नहीं है। विश्वामित्र नगर एवं ग्राम्यजीवन की तुलना कर ग्राम्य जीवन को श्रेष्ठ बताते हैं, आदि। अतः सम्भव है कि 'यज्ञफल' भास के नाटकों के अनुकरण पर किसी अन्य परवर्ती नाटककार की रचना हो।

भास के नाटको का संक्षिप्त परिचय

(क) रामायण पर आधृत नाटक—

१. प्रतिमानाटक—इसमें रामवनगमन, सीताहरण आदि से लेकर रावणवधपर्यन्त सम्पूर्ण राम-कथा संक्षेप में वर्णित है। यह सात अंक का है। दशरथ की प्रतिमा को देखकर उनके दिवंगत हो जाने का अनुमान भरत द्वारा नगर के बाहर ही कर लिए जाने से इसका नाम 'प्रतिमानाटक' है।

२ अभिषेक—इसमें किष्किन्धाकाण्ड से राम के राज्याभिषेक तक की कथा संक्षेप में है। यह छ अंक का नाटक है। राज्याभिषेक के कारण ही इसका नाम 'अभिषेक' है।

(ब) महाभारत पर आधृत नाटक—

३. मध्यमव्यायोग—इस एकाकी में मध्यम पाण्डव भीम द्वारा घटोत्कच से ब्राह्मण के मध्यम पुत्र के मुक्ति की कथा है। 'मध्यम' शब्द भीम और उस बालक दोनों का बोधक होने से इसका नाम 'मध्यमव्यायोग' है।

४ दूतवाक्य—इस एकाकी में पाण्डव पक्ष से दुर्योधन के पास कृष्ण के दूत बनकर जाने और वहाँ उनके द्वारा पाण्डवों के भाग (हिस्सा) माँगने पर दुर्योधन द्वारा कृष्ण को पकड़ने की आज्ञा देने पर कृष्ण के विराट रूप ग्रहण करने की कथा वर्णित है।

५ दूतघटोत्कच—इस एकाकी में अभिमन्यु की मृत्यु के बाद घटोत्कच दूत बनकर कृष्ण का संदेश कौरवों के पास ले जाता है। दुर्योधन और घटोत्कच के बीच गरमा-गरमी हो जाती है जिसे धृतराष्ट्र शान्त करते हैं। घटोत्कच अभिमन्यु के वध का बदला अर्जुन द्वारा लिए जाने की धमकी देकर चला जाता है। इस एकाकी में 'भरतवाक्य' नहीं है।

६ कर्णभार—इस एकाकी में द्रोणाचार्य के निधन पर कौरवों की ओर से कर्ण के सेनापति हो जाने पर युद्ध का सारा भार कर्ण पर आ पड़ता है। यह उनके लिए भारस्वरूप हो जाता है जबकि ब्राह्मणवेषधारी इन्द्र को वे कवच और कुण्डल दान में दे देते हैं।

७. ऊरुभङ्ग—इस एकाकी में द्रौपदी के अपमान के प्रतीकार स्वरूप भीम द्वारा दुर्योधन की जंघा (=ऊरु) को भङ्ग करके उसका वध करने की

कथा वर्णित है। संस्कृत साहित्य में मात्र यही एक दुःखान्त नाटक है।

८. पञ्चरात्र—इसमें दुर्योधन के द्वारा यज्ञ करने और यज्ञ पूर्ण होने पर द्रोण को मुँहमागी दक्षिणा देने के लिए कहता है। द्रोण ने दुर्योधन से दक्षिणा रूप में पाण्डवों को आधा राज्य देने की माँग की। दुर्योधन इस शर्त पर तैयार होता कि पाँच रात्रि के अन्दर यदि पाण्डव मिल जाएँगे तभी ऐसा हो सकेगा। कौरवों ने विराट् की राजधानी पर गायों के लिए आक्रमण किया। राजकुमार उत्तर कौरवों से लड़ते हैं। अज्ञातवास में पाण्डवों की महायत्ना से उसकी विजय होती है, और पाण्डवों के प्रकाश में आ जाने पर द्रोण द्वारा प्रतिज्ञा की याद दिलायी जाती है। इस पर दुर्योधन आधा राज्य दे देने के लिए मान जाता है।

(ग) हरिचंश पर आधृत नाटक—

९. बालचरित—इसमें भगवान् श्रीकृष्ण की बाल-लीला का वर्णन है। पाँच अङ्कों में श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर कम वय पर्यन्त की कथा वर्णित है।

(घ) बृहत्कथा पर आधृत नाटक—

१०. स्वप्नवासवदत्तम्—इसमें वत्सराज उदयन के वासवदत्ता के साथ स्वप्न में मिलन की कथा है। इसीलिए इसका नाम 'स्वप्नवासवदत्तम्' है। उज्जयिनी के राजा प्रद्योत के महल से वामवदत्ता के हरण के बाद उदयन बिलासी हो जाते हैं। इससे शत्रु आरुणि को आक्रमण करने का अवसर प्राप्त हो जाता है। किन्तु उदयन के मन्त्री धीगन्धरायण आरुणि को परास्त करने के लिए मगधराज दर्शक से सहायता लेने के लिए वासवदत्ता को मिलाकर लावाणक में उनके अग्नि में जल मरने की समाचार उदा देते हैं और वासवदत्ता को मगधराज की कुमारी पद्मावती के पास धरोहर रूप में रख देते हैं। बाद में उदयन का विवाह पद्मावती से होता है। एक बार उदयन स्वप्न में वासवदत्ता को देखता है। उसकी स्मृति ताज़ी हो जाती है। वासवदत्ता प्रकट होती है और उदयन का उनसे मिलन होता है। उधर उदयन का सेनापति रुमणवान् आरुणि को युद्ध में पराजित कर देता है। इस प्रकार छ' अंकों का यह सुखान्त नाटक है।

११. प्रतिज्ञायोगन्धरायण—इसमें वत्सराज उदयन द्वारा उज्जयिनी

के राजा प्रद्योत की कन्या वासवदत्ता के हरण और प्रेम विवाह का घृत्तान्त है। प्रद्योत द्वारा उदयन के कैद कर लिए जाने पर उदयन के मन्त्री यौगन्धरायण द्वारा उदयन को छुड़ाने और वासवदत्ता के साथ उसका विवाह कराने की प्रतिज्ञा करता है। इसीलिये इसका नाम 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' है। चार अंक के इस 'ईहामृग' नामक नाटकभेद में यौगन्धरायण को पूर्ण सफल दर्शाया गया है।

१२ अविमारक—इसमें राजा कृन्तिभोज की कुमारी कुरङ्गी और सौवीर राजा के पुत्र विष्णुसेन के प्रेम विवाह की कथा है। विष्णुसेन का ही दूसरा नाम अविमारक है। विष्णुसेन ने किसी समय 'अवि' नामक भेड-रूपधारी राक्षस को मारा था। इसीलिए इस नाटक का नाम 'अविमारक' है।

(ड) काल्पनिक—

१३. चारुदत्तम्—इसमें निर्घन किन्तु उदारमना ब्राह्मण चारुदत्त एव गणिका वसन्तसेना के प्रेम सम्बन्ध का वर्णन है। नायक के नाम पर ही नाटक का नाम 'चारुदत्त' रक्खा गया है। यह चार अंक का 'प्रकरण' है।

भास की नाटककला और दूतवाक्य

इस प्रकार महाकवि भास ने अपने प्रायः सभी नाटकों की कथावस्तु रामायण एव महाभारत से ली हैं। कुछ बृहत्कथा पर आधृत हैं और एक काल्पनिक इतिवृत्त है। भास ने जो भी कथाश्रोत तत्तद् ग्रन्थों से ग्रहण किया उसे उन्होंने अपने रुचि के अनुसार बदल दिया है। इसी कारण प्रायः सभी कथानक बड़े ही रोचक हो गए हैं और मञ्चन के योग्य हो गए हैं। इनमें नाट्यनिर्देश बहुत कम हैं जिसे अभिनेता को स्वयं ही करना है। दूतवाक्य में भी इसी प्रकार 'नाट्यनिर्देश' बहुत कम हैं और महाभारत के ही पात्रों को लेकर घटना क्रम वर्णित है। नाटक बहुत बड़ा नहीं है। मात्र कुछ घण्टों का ही दृश्य है जिसमें नाटक पूर्ण हो जाता है। अतः इसका सफलतापूर्वक मञ्चन किया जा सकता है।

दूतवाक्य-समीक्षा

कथानक की पृष्ठभूमि—

जब बारह वर्ष के वनवाम एव विराट के यहाँ रहकर एक वर्ष के अज्ञातवास की प्रतिज्ञा पूर्ण करके पाण्डव इन्द्रप्रस्थ लौट आए और प्रतिज्ञा के अनुसार उन्हीं कौरवों से राज्य का आधा भाग माँगा, तब दुर्योधन ने आधा राज्य देने से इन्कार कर दिया। फलतः पाण्डवों ने समझौते के लिए दुर्योधन के पास श्योक्लृष्ण को दूत बनाकर भेजा।

दूतवाक्य की कथावस्तु—

दूतवाक्य की कथावस्तु का प्रारम्भ हस्तिनापुर के राजप्रासाद से होता है। सूत्रधार के नान्दीपाठ के अनन्तर बञ्चुकी घोषणा करता है कि महाराज दुर्योधन समागत राजाओं के साथ मन्त्रणा करेंगे। सभी राजमन्त्र पर दुर्योधन वा आपमन होता है। सभी बड़े लीगों और राजाओं के पहुँचने पर और उनके स्थान प्रदृष्ट कर लेने के बाद दुर्योधन उनसे मन्त्रणा करता है कि कौन कौरवों का सेनापति होगा? शकुनी की मन्त्रणा पर उन सभी समाजनों ने यह निर्णय लिया कि भीष्म ही सेनापति होंगे। इसी के बाद वाञ्चुकीय आता है और कहता है कि पुरुषोत्तम नारायण पाण्डवों के दूत बनकर पधारे हैं। कृष्ण को 'पुरुषोत्तम' मुनकर दुर्योधन खीझ उठता है और कहता है कि मात्र गोसालक को क्या पुरुषोत्तम कहा जाना चाहिए? सभी समाजनों को वह आज्ञा देता है कि कोई भी केशव के आने पर खड़ा न होवे। केशव का सम्मान मुझे पसन्द नहीं है। मैं तो उन्हे बन्दी बनाने में ही अपना हित समझता हूँ। क्योंकि कृष्ण के बन्दी हो जाने पर पाण्डव स्वयं ही निम्नेन और श्योहीन हो जायेंगे। वे नेत्रहीन हो जायेंगे और उनके मतिहीन हो जाने पर मेरे लिए समस्त पृथ्वी शत्रुविहीन हो जायगी।

अतः जो केशव के सम्मान में खड़ा होगा वह बारह स्वर्ण मुद्रा के दण्ड के योग्य होगा। ऐसा कहकर दुर्योधन द्रौपदी के चौरहरण के समय का चित्र भँगाता है। वह उसे देखने में तल्लीन हो जाता है। वह चित्र में

अङ्कित भाव भङ्गिमाओ पर विचार करते हुए भीम एवं अर्जुनादि पर व्यङ्ग्य कसता जाता है। जब कृष्ण उस मन्त्रशाला में प्रवेश करते हैं तो वहाँ का दृश्य देखकर सोचते हैं कि धर्मराज युधिष्ठिर के कहने पर और अर्जुन की सच्ची मित्रता के कारण मैं आज इस समराभिमानी और दूसरों की बात न मानने वाले सुयोधन के पास अनुचित दूत कार्य के लिए आया हूँ। अर्जुन के बाणरूपी वायु से प्रदीप्त भीम की क्रोधाग्नि से ये कौरव तो मरे हुए ही हैं। फिर सुयोधन तो कटुभाषी, शठ, गुणद्वेषी और अपने स्वजनों के प्रति निर्दय भी हैं। अतः वह किसी भी प्रकार सन्धि न करेगा। जब कृष्ण सभा भवन में प्रविष्ट होते हैं। सभी राजा उठ खड़े होते हैं, किन्तु बड़े ही हडबडाहट में रहने हैं। उस सम्भ्रम की स्थिति देखकर दुर्योधन बारह स्वर्णमुद्रा के दण्ड की याद भी दिलाता है किन्तु वह स्वयं कृष्ण के तेज से सम्भ्रमात् अपने आमन से गिर पड़ता है और सोचता है कि बड़े ही उत्साह के साथ सकल्प करके मैं सावधान होकर बैठा था। परन्तु केशव के प्रभाव से मैं विचलित हो ही गया। वह केशव को बैठने के लिए कहता है। वासुदेव भी सबको बैठाकर स्वयं भी बैठ जाते हैं और चित्रपट की दर्शनीयता व्यक्त करते हुए द्रौपदी के केश एवं वस्त्राकर्षण की भर्त्सना करते हैं। सुयोधन मूर्खता के कारण अपने बन्धुओं के अपमान को पराक्रम समझता है। नहीं तो इस सप्तर में कौन ऐसा निर्लज्ज है कि जो अपने दोषों को इस प्रकार सभा के बीच उद्घाटित करेगा ?

कृष्ण के कहने पर चित्रपट हटा दिया जाता है और दुर्योधन युधिष्ठिर आदि पाण्डवों का कुशल पूछता है। कृष्ण कहते हैं कि वे कुशल से हैं और आपके शरीर एवं राज्य की बाहरी तथा भीतरी कुशलता और आरोग्य पूँछकर युधिष्ठिरादि पाण्डवों ने निवेदन किया है—

‘हम लोगो ने बहुत कष्ट झेले हैं। अब उस अज्ञातवास की प्रतिज्ञा की अवधि भी पूर्ण हो चुकी है। अतः हमारा न्यायोचित पेटृक राज्य बाँट दिया जाय।’

दुर्योधन इस पर कहता है कि कैसा पेटृक राज्य ? मेरे चाचा पाण्डु तो भृगुया के समय मुनि के शाप से ग्रस्त हो गए थे। तभी से वे तो स्त्रियों

के प्रति विरक्त हो गए थे। अतः मैं उन अन्य देवों के सम्बन्ध में उत्पन्न सन्तानों के साथ पितृ सम्बन्ध कैसे बना सकता हूँ ?'

इस बात पर कृष्ण उनके पूवजों का इतिहास बताते हुए पूँछते हैं कि 'जब विलासी राजा विविश्ववीर्य राजसूयसे प्राप्त हो मृत्यु को प्राप्त हो गए तब ध्यास के सयोग में नियोग द्वारा उत्पन्न तुम्हारे पिता घृतराष्ट्र कैसे राज्य प्राप्त कर सकते हैं ?' अब इस विवाद से क्या लाभ ? आपको क्रोध त्यागकर वही करना चाहिए जो युधिष्ठिर आदि कहते हैं।

दुर्योधन कहता है कि 'हे दूत ! तुम तो राज्य व्यवहार भी नहीं जानते। राज्य का उपभोग तो बल से होता है। यह माँगने की वस्तु नहीं है। यदि उन्हें राज्याकाङ्क्षा है तो वे पौरुष दिखलावें और यदि उन्हें शान्ति चाहिए तो मुनियों के आश्रम में चले जायें।'

पाण्डवों के प्रति इन कठोर वचना को न कहने के लिए कृष्ण उसे मना करते हुए कहते हैं कि पुण्य कर्मों के सचय से प्राप्त होने वाली राज्यलक्ष्मी को पाकर जो सहृदय बन्धुजनो एवं मित्रों को घोसा देता है वह निश्चय ही व्यर्थ परिश्रम वाला होता है।' दुर्योधन को बाघवों के प्रति स्नेहालु होने के कृष्ण के इस मन्तव्य पर दुर्योधन कहता है कि आपने अपने पिता के श्यालक कस पर क्यों नहीं स्नेह दिखाया। इसका उत्तर कृष्ण देते हैं कि कस तो मेरी माता को कितनी ही बार पुत्र विरह से पीडित करके और अपने वृद्ध पिता को बन्दी बनाकर स्वयं ही मृत्यु द्वारा मारा गया। अतः नीतिज्ञों की वीरता तो निःसन्देह देश और काल के अनुसार होती है। अब हमारा परिहास आप यही तक रहने दें और भाइयों से भ्रातृ स्नेह करें। इसी से लोक और परलोक दोनों ही में आपका कल्याण है।

अन्ततः दुर्योधन कह देता है कि देवात्मजों और मनुष्यों में बन्धुत्व स्थापित नहीं हो सकता।

दुर्योधन के इस उत्तर पर कृष्ण उस पक्षपातियों से समुच्च करते हुए भयभीत करते हैं। वे कहते हैं कि तुम अर्जुन के बल एवं पराक्रम को क्या नहीं जानते ? अर्जुन वही है जिसने किरात वेशधारी भगवान् शङ्कर को र भू०

युद्ध से प्रसन्न किया था। खाण्डव वन को नष्ट करती हुई अग्नि की महावृष्टि को बाणों के जाल से रोक दिया था। इन्द्र को पीड़ित करने वाले निवातकवचो का वध किया और अकेले ही विराट नगर में भीष्म आदि महारथियों को परास्त कर दिया था। इतना ही नहीं जब चित्रसेन ने तुम्हें बांध लिया था तो अर्जुन ने तुम्हें भी उसके चगुल से बचाया था। इस प्रकार यदि तुम पाण्डवों को उनका दाय भाग नहीं दोगे तो वे जबर-दस्ती छीन लेंगे।

कृष्ण के वचनों से आहत होकर दुर्योधन कहता है कि मैं किसी भी प्रकार से राज्य क्या उसका तृण भी नहीं दे सकता। कृष्ण ने उसे 'अमशो लुब्ध' 'अपयश के लोभ वाला' कहकर सम्बोधित किया और कहा कि तुम वृण बीच में रखकर ही मुझसे बात करने योग्य हो। इस पर दुर्योधन ने कृष्ण को भला बुरा कहा। कृष्ण ने कहा कि क्या तुम हमारा अपमान करते हो। उसने कहा—हां! पहले तो कृष्ण जाने को उद्यत होते हैं। किन्तु बाद में बिना सन्देश कहे नहीं जाना चाहते। सुबोधन बात ही नहीं करना चाहता। अतः कृष्ण कुरुवंश के शाप की बात कहते हैं और जाने को उद्यत होते हैं। तभी केशव को बांध लेने के लिए दुर्योधन आज्ञा करता है किन्तु कोई भी उद्यत नहीं होता है। जब कोई भी तैयार नहीं होता है तो वह स्वयं बांधने के लिए उठ खड़ा होता है। जब कृष्ण को यह ज्ञान हो जाता है कि यह तो सचमुच हाँ पाश लेकर मुझे बांधने दौड़ बड़ा है तब भगवान् कृष्ण विराट् रूप धारण करते हैं। इतने पर भी जब दुर्योधन शान्त नहीं होता है तो वह कहते हैं कि अच्छा! तो मैं ही पाण्डवों का कार्य करूँगा। भगवान् सभी को जूझित कर देते हैं। कृष्ण क्रुद्ध हो जाते हैं और सुदर्शन चक्र का आवाहन करते हैं। सुदर्शन कहते हैं कि आप पृथ्वी का भार उतारने आए हैं। अतः इसे आप आज यदि मार देंगे तो सभी युद्ध से विरत हो जायेंगे और आपका मुत्प कार्य सिद्ध न हो सकेगा। इस मन्त्रणा पर भगवान् कृष्ण शान्त हो जाते हैं। बाद में मञ्च पर अन्य आयुध कौमोदकी मदा, शार्ङ्ग धनुष, पाञ्चनग्य शङ्ख और नन्दन नामक शङ्ख भी आते हैं किन्तु सुदर्शन सभी को लौटा देते हैं।

गद्य के जाने पर तो समस्त चराचर जगत् हिल उठता है। कदपप पुत्र गद्य को भी वे आदरपूर्वक लीटने के लिए कहते हैं। बाद में स्वयं भी मेरुगुहा की ओर वे प्रस्थान कर जाते हैं।

भगवान् कृष्ण भी जब पाण्डव गिरिवर की ओर जाने को उद्यत होने हैं तभी धृतराष्ट्र वहाँ आ जाते हैं और अपने पुत्र के अपराध के लिए क्षमा माँगने हैं। भाँति-भाँति से अनुनय विनय करके वह उनके चरणों पर गिर पड़ते हैं। भगवान् उन्हें उठाते हैं और भगवद्वाक्य के अनन्तर नाटक समाप्त हो जाता है।

कथानक समालोचन और उसका महामारतीय परिवेश

दूतवाक्य की कथा उद्योग पर्व के अन्तर्गत मण्ड भगवद्वाक्य पर्व से ली गई है। दीर्घ कर्म की प्रधान कथा को मात्र एव ही अङ्क में यहाँ प्रदर्शित किया गया है। यहाँ दुर्योधन की निवृष्टता पर और भगवान् कृष्ण के दिव्य स्वस्व पर अग्रिम प्रभाव डाला गया है। (१) महाभारत में कृष्ण को पकड़ने के लिए कोई भी प्रयत्न नहीं किया गया है यद्यपि दुर्योधन शकुनि, कर्ण एव अन्य लोगों के साथ कृष्ण को पकड़ने के लिए मन्त्रणा करता है। (२) दिव्य अस्त्रों के प्राकट्य का दृश्य कवि द्वारा कल्पित है जो मात्र मन्थन की प्रभावी बनाने में लिए किया है (३) सम्पूर्ण दूतवाक्य में कृष्ण ने सदैव दुर्योधन के लिए 'सुयोधन' (सुख से मुक्त करने योग्य) सम्बोधन का ही प्रयोग किया गया है। कवि कृष्ण के सामने दुर्योधन को दुःख से मुक्त करने योग्य विलुक्त नहीं मानता। महाभारत में इस सम्बोधन पर इतना ध्यान नहीं रक्खा गया है। (४) दुर्योधन के विरता धृतराष्ट्र के लिए अथम से उनका उत्पत्ति का व्यष्टम्य कवि की अपनी प्रतिभा है। (५) युधिष्ठिरादि पाण्डु पुत्रों पर अन्य देवों की सन्तान होना का आक्षेप महाभारत में यत्र तत्र सर्वत्र विसरा हुआ है। किन्तु दुर्योधन पर भी यह आक्षेप हो सकता है। इस प्रकार आक्षेप प्रस्तुत करके कवि न

चमत्कार प्रस्तुत किया है ।

विराट् रूप के प्रदर्शन को महाभारत में मात्र चार ही लोग देख पाए थे—भीष्मपितामह, धृतराष्ट्र, विदुर और सञ्जय । यहाँ पर 'कथं न दृष्टः केशवः' केशव नहीं दीखते, कहाँ गए 'अथ केशवः' यह केशव है—आदि के द्वारा अपने ढङ्ग से इतिवृत्त को रखकर कवि द्वारा दुर्योधन पक्ष के लोगो में सम्भ्रम पैदा कर दिया गया है । इस प्रकार महाभारत के दूतकर्म की ही घटना को कवि ने यहाँ अपने ढाँचे में ढालकर नवीन रूप में प्रस्तुत किया है । इस नाटक के रस आदि के विषय में प० गणपति शास्त्री का मत इस प्रकार है—

दूतवाक्यस्य रस.—

अस्य 'दूतवाक्यम्' इति संज्ञाया आनुगुण्यं पाण्डवदूतस्य श्रीकृष्णस्य वाक्यमत्र प्रधानमिति कृत्वा परिस्फुटमेव । अत्र रसस्तु वीरः, साम्नी-पच्छन्दने परुषभाषणेन संक्षोभणे वा भगवता कृतेऽपि युद्धोत्साहस्य सुयोधन-गतस्य अविचात्यस्य प्रतीतेः । अथवा—

अत्र रसो धर्मवीरः; अष्टादशाक्षोहिणीबलसमुदमस्य तदधिष्ठातृणा पीण्डवकौरवाणा च क्षेमस्य परमधर्मभूतस्यार्थे भगवतात्मपरिभवमनादृत्य प्रयत्नस्य करणाद् भगवद्गतस्य धर्मोत्साहस्य स्थायिन सर्वत परिस्फूर्तेः ।

एतच्च रूपकं ख्यातेतिवृत्ततया सुयोधनरूपख्यातोद्धतनायकाश्रयतया वीराख्यदीप्तरसवत्तया एकाङ्गतया च धनञ्जयोक्तव्यायोगलक्षणबह्वंशयोगाद व्यायोगव्यपदेशमर्हति—

ख्यातेतिवृत्तो व्यायोग ख्यातोद्धतनराश्रय ।

हीनो गर्भविमर्शाभ्यां दीप्ता. स्युडिमवद् रसाः ॥

अस्त्रीनिमित्तसङ्ग्रामो जामदग्न्यजये यथा ।

एकाहचरित्तंकाङ्क्षो व्यायोगो बहुभिर्नरैः ॥ (दश० ३)

धर्मवीररसपक्षे नायकस्य श्रीकृष्णस्य धीरोदात्ततया सा भूदय व्यायोग, अपितु वीथीसज्जो रूपकभेदो वाच्यः । सा हि भरतेन लक्षिता—

‘सर्वरसलक्षणादद्या युक्ता ह्यङ्गैस्त्रयोदशभि ।
वीथीस्यादेकाङ्का तथैकहार्मा द्विहार्मा वा ॥

—इति (ना० शा०)

अत्र सर्वरसलक्षणादर्थेति रसविशेषनियमाभावो बोध्यते, न तु एकत्रैव सर्वरसयोगनियमः । द्विहार्थेति च प्रधानपात्रद्वयप्रयोज्यत्वर्थः । एवञ्च कश्चिद् बीथीलक्षणयोग स्पष्टः ।

वस्तुतस्तु भासरूपकाणां प्रचरन्नाट्यशास्त्रापेक्षया प्राचीनताया प्रतिमानाटकोपोद्घाते स्यापितरत्वात् तेष्वर्वाचीनलक्षणान्यनुगमयितुं नातीव सरम्भो भवति इति तत्त्वम् ॥

‘दूतवाक्य’ नाम का कारण

भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवों की ओर से दूत बनकर कौरवों के निजिर में जाते हैं और उन्हीं के वचनों की इस नाटक में प्रधानता होने से इस नाटक का नाम ‘दूतवाक्य’ है । भगवान् कृष्ण के नीतियुक्त वचन (=वाक्य) कभी तों साम् अर्थात् सान्त्वना भरे शब्दों से दुर्पोषण को शान्त करते हैं और कभी कठोर वचनों से उसे घृषित करते हैं । सम्पूर्ण नाटक दूतवेषधारी श्रीकृष्ण के वचनों से अनुस्यूत है । अतः नाटक का नाम ‘दूतवाक्य’ सायंक है ।

नाटक में रस

सम्पूर्ण नाटक वीररस से अनुप्राणित वचनों से व्याप्त है । श्रीकृष्ण द्वारा अपने अस्त्रों का एकाएक आवाहन करना और उनके विराट रूप प्रदर्शन में अद्भुत रस का पुट दिया गया है । ‘यह वेशव है’ ‘अरे केशव वहाँ है’ आदि द्वारा सम्भ्रम पैदा कर दिया गया है । कवि द्वारा यहाँ प्रधान रूप से आरभटी वृत्ति का प्रयोग है ।

नाटक का प्रकार

नाटकीय दृष्टि से ‘दूतवाक्य’ ‘ध्यायोग’ की श्रेणी का नाटक है । ध्यायोग एकाङ्की होना चाहिए । इसकी घटना ऐतिहासिक होती है । इसका नायक गर्बीला होता है । यह स्त्री से असम्बद्ध होता है और इसमें

मुद्द आदि होते हैं। ये सभी लक्षण 'दूतवाक्य' में घटते हैं। व्यायोग की व्युत्पत्ति है 'व्यायुज्यन्ते बहुपुरुषा भस्मिन्निति।' अर्थात् बहुत से पुरुषपात्र जिसमें होते हैं। इसका लक्षण साहित्यदर्पण में इस प्रकार है—

ख्यातेतिवृत्तो व्यायोगः स्वल्पस्त्रीजनसंबुतः ।
हीनो गर्भनिमशाभ्या नरैरभिराश्रितः ॥
एकङ्कश्च भवेदस्त्री निमित्तसमरोदयः ।
कैशिकीवृत्तिरहितः प्रस्नातस्तत्र नात्रकः ॥
राजषिरय दिव्यो वा भवेद्दीरोद्धतश्च सः ।
हास्यशृङ्गारशान्तेभ्य इतरेऽत्राङ्गिनी रसाः ॥

इस प्रकार व्यायोग का नात्रक राजपि, दिव्यपुरुष या धीरोद्धत होना चाहिए। यहाँ भगवान् कृष्ण दिव्य पुरुष हैं और इनका चरित्र भी इतिहास प्रसिद्ध है। अतः 'दूतवाक्य' नाटक के दस प्रकारों में से 'व्यायोग' की कोटि का नाटक है।

दूतवाक्य में नाट्यकला

भास के नाटक 'नाट्यकला' की दृष्टि से नितान्त सुन्दर हैं। अन्य नाटकों की भाँति यहाँ भी दूतवाक्य में भास ने नाटकीय घटनाओं का सन्निवेश अत्यन्त सुसङ्गत रूप से किया है। कथोपकथन में अस्वाभाविकता कहीं भी प्रतीत नहीं होती। छोटे-छोटे वानवों में विचित्र भाव भरे पड़े हैं।

'दूतवाक्य' एक 'घटना प्रधान' रूपक है। इसमें भगवान् श्रीकृष्ण के दूत बनकर दुर्योधन के पास जाने की बहुत छोटी सी घटना को भास ने अपनी प्रतिभा से अनूठा रूप दे दिया है। श्रीकृष्ण के प्रभाव का वर्णन तथा केनापकर्षण चित्र का प्रसङ्ग प्रस्तुत करके दुर्योधन के चरित्र पर अत्यन्त कुशलता से प्रकाश डाला गया है।

प्रवाहपूर्ण भाषा एवं चमत्कारपूर्ण तथा उपयुक्त शब्दावली वाले कथोपकथन का सहारा लेकर भास ने यहाँ श्रीकृष्ण एवं दुर्योधन के वात्तलाप में जान डाल दी है, जैसे दुर्योधन की उक्ति है—

कथं कथं दात्राणमिति ? भोः—

चने पितृव्यो मृगया प्रसङ्गतः कृतापराधो मुनिशापमाप्तवान् ।
तदा प्रभृत्वेव स दारनिस्पृहः परात्मजानां पितृतां कथं व्रजेत् ॥२१॥
'अर्थात् वन में शिकार सेहतें समय भेरे कृतापराधी चाचा पाण्डु को
जब शाप मिला तभी से वे स्त्री से विरक्त हो गए । फिर दूसरे के पुत्रों के
साथ दायित्व कैसा ?'

इसका इतना सटीक उत्तर श्रीकृष्ण देते हैं कि कथोपकथन में जान आ
जाती है—

पुराविद भवन्त पृच्छामि—

विचित्रवीर्यो विषवी विपत्ति क्षयेण प्राप्तः पुनरम्बिकायाम् ।
व्यासेन जातो घृतराष्ट्र एव लभेत राज्यं जनकः कथं ते ? ॥ २२ ॥

अर्थात् विचित्रवीर्य के क्षयरोग से घस्त हो जाने पर पुनः अम्बिका से
व्यास द्वारा क्या तुम्हारे पिता घृतराष्ट्र नहीं उत्पन्न हुए थे ?

भास राजनीतिक सिद्धान्त 'वीरभोग्यावमुग्ररा' को ही दुर्योधन की
ललकार द्वारा कथोपकथन में प्रस्तुत कर अत्यन्त चमत्कार पैदा कर देते
हैं, जैसे—

राज्यं नाम नृपात्मजैः सहृदयैर्जित्वा रिपून् भुज्यते
तल्लोके न तु याच्यते न तु पुनर्दीनाय वा दीयते ।
काङ्क्षा चेन्नृपतित्वमाप्नुमच्चिरात् कूर्वन्तु ते साहस
स्वीर वा प्रविशन्तु शान्तमतिभिर्जुष्ट शमायाश्रमम् ॥ २४ ॥

अर्थात् राज्य न ही मांगा जाता है और न ही उसे दीन दुखिया लोगों
को दान में ही दिया जाता है यदि राज्य की इच्छा हो तो पाण्डव लड़कर
ले लें । यदि शान्ति की इच्छा हो तो आश्रम में चले जायें ।

चरित्रचित्रण

प्रस्तुत नाटक दूतवाक्य में प्रधान रूप से दो ही पात्र यामुदेव और
दुर्योधन हैं । वृद्ध घृतराष्ट्र एवं काञ्चुकीय प्रसङ्गात् प्रस्तुत किए गए हैं ।

नाटक मे युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल सहदेव एव द्रौपदी तथा कौरव पक्ष वे शकुनि, द्रोण और गाङ्गेय भीष्म की चर्चा आयी है ।

वामुदेव

महाकवि भास द्वारा वामुदेव का चित्रण दिव्य पुरुष के रूप मे प्रस्तुत किया गया है । भाम सम्भवत वैष्णव थे । इसीलिए उन्होने वामुदेव को भगवान् नारायण के रूप मे प्रस्तुत किया है । सभा भवन मे बैठे हुए दुर्योधन के सामने उसका काञ्चुकीय श्रीकृष्ण को 'पुरुषोत्तम' कहता है । भगवान् कृष्ण के प्रताप का प्रभाव कौरवो मे बहुत अधिक है क्योंकि दुर्योधन के निषेध कर देने पर भी सभी राजसभासद वामुदेव के आते ही खडे हो जात हैं । दुर्योधन स्वय भी सशक्ति है कि वह भी कही वामुदेव के आगमन पर खडा न हो जाय । इसीलिए वह अपना ध्यान द्रौपदी के वस्त्राप कपण वाल चित्र की ओर लगाता है किन्तु भगवान् वामुदेव का इतना प्रभाव था कि दुर्योधन की अभिलाषा पूण नही होती और वह भी स्वय उठ खडा होता है । इतना ही नही अपितु श्रीकृष्ण की भक्तता पर चित्रपट को भी उनके प्रताप से आहत होकर वापस भेज देता है । भगवान् कृष्ण के चरित्र पर दुर्योधन द्वारा अत्यन्त सबल आक्षेप किये जात हैं , किन्तु वामुदेव के तत्क्युक्त वचनो से वे शिथिल हो गए ।

भगवान् की वाणी को सुनकर आए सुदशन के अनुसार वे इस प्रकार क हैं--

अव्यक्तादिरचिन्त्यात्मा लोकसरक्षणोद्यत ।

एकोऽनेकवपु श्रीमान् द्विषद्बलनिपूदन ॥ ४३ ॥

'वे अव्यक्त अर्थात् प्रकृति के आदिभूत हैं । वे चिन्तन की सीमा के परे है, ससार की रक्षा करने मे तत्पर है , और शत्रुसेना का सहार करने वाले हैं । शोभा सम्पन्न वह अनेक रूप धारण करने वाल है ।

धृतराष्ट्र तो उन्हें भगवान् नारायण, विप्रो के प्रिय, शाङ्गपाणि तथा त्रिदशाध्यक्ष कहकर सम्बाधित करते है ।

भगवान् वामुदेव का चरित्र यहाँ दिव्य मानव के रूप मे कवि ने प्रस्तुत किया है । वे एक कुशल एव नीति विशारद दूत है । दुर्योधन के ही शब्दो

में ये पाण्डवों के मूल शक्ति के रूप में हैं। उनके बिना पाण्डव मरे से हैं। इसीलिए दृतराष्ट्र भी 'पाण्डवश्रेयस्कर' (पृष्ठ ७६) (पाण्डवों का कल्याण करने वाले) शब्द से उन्हें सम्बोधित करते हैं।

वासुदेव मानव के ही समान आवेश में आ जाते हैं। वे दुर्योधन को क्रोध में 'शठ', 'बाधवनिस्नेह', 'काक', 'केकर', 'पिङ्गल' आदि कठोर शब्दों से सम्बोधित कर डालते हैं। अन्ततः रोष में समुदाचार को भी भूल जाते हैं—वे मुद्गन्ध से कहते हैं—'रोषात् समुदाचारो नावेक्षितः।' (३० ६४)। वे दुर्योधन का कभी भी दुर्योधन करके सम्बोधित नहीं करते हैं। सदैव उस मुयोधन कहते हैं। उनकी दृष्टि में वह सुख में युद्ध करने योग्य है। इस प्रकार भासकृत भगवान् वासुदेव का चरित्र स्वाभाविकता की पृष्ठभूमि पर विनित है।

दुर्योधन

दुर्योधन इस नाटक का धीरोद्धत पात्र है। यहाँ पर उस भाम ने यथावत् खलनाटक के रूप में प्रस्तुत किया है। उसका बाह्य व्यक्तित्व तीसरे दलोक में इस प्रकार है—

'वह श्याम वर्ण का युवक है। वह श्वेत रेशमी उत्तरीय वस्त्र धारण किये हुए है। उसके मस्तक पर मुन्दर छत्र और श्रेष्ठ चेंबर शोभायमान है। उसके शरीर पर अङ्गराग लगा है। उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग आभूषणों के मणियों की छटा से इस प्रकार जगमगा रहे हैं जैसे तारों के मध्य में पूणिमा का चन्द्र शोभा पा रहा हो ॥'

दुर्योधन अत्यन्त अहकारी है। वह गर्वाला, दुष्टवादी, गुणद्वेषी, हठी, उद्धत, युद्धप्रिय, बन्धुनिस्नेह एव अशिष्ट है। वह आत्मीयजनों का निरादर करने वाला है। वासुदेव कहते हैं कि—

दुष्टवादी गुणद्वेषी शठ स्वजननिर्दयः।

मुयोधनो हि मा दृष्ट्वा नैव कार्यं करिष्यति ॥ १६ ॥

उसके अहकार का उदाहरण 'राज्य नाम नृपात्मजैः सहृदयैर्जित्वा रिपून् भुज्यते' आदि में मिलता है जहाँ वह कहता है कि 'राज्य किसी से

मांगा नहीं जाता और न तो दीनो को दान में ही दिया जाता है यह तो युद्ध में जीता जाता है ।'

अन्ततः वह कह ही देता है कि चाहे कुछ भी हो जाय किन्तु मैं तृण मात्र भी नहीं दे सकता—

परुषवचनदक्ष ! त्वद्वचोभिर्न दास्ये

तृणमपि पितृभुक्ते वीर्यगुप्ते स्वराज्ये ॥ ३५ ॥

श्रीकृष्ण को पकड़ लेने का प्रयास उसके अहंकार की पराकाष्ठा है । इस प्रकार भास ने दुर्योधन का चरित्र अत्यन्त दुष्ट प्रकृति का चित्रित किया है ।

दिव्यास्त्र

भगवान् वासुदेव के दिव्यास्त्र भी पात्रो के रूप में यहाँ प्रस्तुत किए गए हैं । इसकी अत्यन्त आवश्यकता थी, क्योंकि सुदर्शन के ही कहने से तो वासुदेव को समुदाचार का ध्यान आता है । भास द्वारा दिव्यास्त्रो का इस प्रकार से प्रस्तुतीकरण नाटक के प्रभाव एवं चमत्कार को और भी बढ़ा देता है । वस्तुतः भगवान् कृष्ण के सभाभवन से बाहर आते ही नाटक का तो सहसा अवसान ही हो जाता है । अतः कार्य को प्रचलित रखने के लिये और भगवान् कृष्ण के रोष का परिचय देने के लिये इस प्रकार का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक था ।

—सुधाकर मालवीय

पात्राणि

| | | |
|-------------|---|---------------------------------|
| काञ्चुकीय. | — | दुर्योधनभृत्यः । |
| दुर्योधनः | — | धृतराष्ट्रस्य ज्येष्ठ पुत्र. । |
| वासुदेवः | — | श्रीकृष्ण । |
| सुदर्शनः | — | श्रीकृष्णचक्रापुष्पाभिमानिदेवः। |
| धृतराष्ट्रः | — | पाण्डोज्येष्ठभ्राता । |



पुण्यसञ्चयसम्प्राप्तामधिगम्य नृपश्चियम् ।

वञ्चयेद् यः सुहृद्बन्धून् स भवेद्विफलश्रमः ॥

—दूतवाक्य २५

पुण्य कर्मों के सञ्चय से प्राप्त होने वाली राज्यलक्ष्मी को पाकर जो सहृदय बन्धुजनों (अथवा मित्रों) को धोखा देता है उसका सारा परिश्रम व्यर्थ हो जाता है ॥ २५ ॥

भासनाटकचक्रे

दूतवाक्यम्

‘ज्योत्स्ना’-‘सरला’ संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति मूत्रघारः)

* ज्योत्स्ना *

मत्कृपात्त्रमात्रेण प्रपूयन्ते मनोरयाः ।
वाग्देवीं विष्णुराजं च तौ चन्देऽहं पुनः पुनः ॥ १ ॥
मित्रा गुरुवरां पद्मा नीमि ज्ञानप्रदायिनीम् ।
रम्याः सवित् सुधाम्मीधेः सीकरोऽरि रमार्णवः ॥ २ ॥
भासनाटकरत्नस्य रसमानसमन्विता ।
नाट्यस्य दूतवाक्यस्य व्याख्या नव्या विरच्यते ॥ ३ ॥
टीकाप्रभिनवा रम्या ‘ज्योत्स्ना’ च सरला तथा ।
करोति बालबोधाय बालबोधः सुधाकरः ॥ ४ ॥

अप कविकृतमूर्धन्यं तत्रभवान् श्रीभासः दूतवाक्याभिधाने रूपके
निविन्परिसमाप्तिमूचिकायाः पूर्वरङ्गप्रधानाङ्गायाः नान्द्याः समनन्तरं
मूत्रघारस्य प्रवेशं सूचयति—नान्द्यन्त इत्यादिना । नान्द्यन्ते=नन्दिरानन्दः,
तस्या इयं नान्दी नाम नाटक-प्रयोगारम्भे देवतापरिषदानन्दार्थमभिनयप्रारम्भ-

* सरला *

(नान्दीपाठ के अन्त में मूत्रघार का प्रवेश)

सूत्रधार —

पाद पायादुपेन्द्रस्य सर्वलोकोत्सव स व ।

व्याविद्धो नमुचिर्येन तनुताम्रनखेन खे ॥ १ ॥

सूचनार्थं च सम्पाद्यमाना वादित्र क्रियोच्यते ।^१ तस्या नान्द्या अन्ते अवसाने नान्दीसमापनानन्तरमित्यर्थः । तत = तदनन्तर, गीतादिक्रियापरिसमाप्त्य-व्यवहितोत्तरकाले इत्यर्थः । सूत्रधार = सूत्र प्रयोगानुष्ठान धारयति निर्वाहयतीति सूत्रधार । प्रविशति रङ्गम् ।

अन्वय — उपेन्द्रस्य सर्वलोकोत्सव. स पाद व पायात्, तनुताम्रनखेन येन खे नमुचि व्याविद्ध ॥ १ ॥

संस्कृत टीका—उपेन्द्रस्य = इन्द्रानुजस्य, वामनस्य, उपगत इन्द्रम् अनुब्रूवात् इति उपेन्द्र., सर्वलोकोत्सव. = सर्वेषा लोकानां जगताम् उत्सव. हर्षहेतु, स — प्रतिद्ध, पाद = चरण., व = सामाजिकान् पायात्, = रक्षतात् । तनुताम्रनखेन = अल्परक्तनखेन । तनव अल्पाकृतय, ताम्रा अरुणाश्च नखा यस्य, तेन तथाभूतेन । एतेन बाल भावानुत्तीर्णत्वमुक्तम् । येन = पादेन, खे = आकाशे, नमुचि = तन्नामा बलिवन्धु असुर, व्याविद्ध = प्रक्षिप्त. । नमुचिव्यावेधनकथा पुराणेष्वनुसन्धेया । इन्द्रेण तु नमुचिर्नामासुर समुद्रफेनेन निहत । अत्र नमुचिव्यावेधनलक्षणस्य चापदाना-दभूतस्य कथनेन परमाद्भुतविश्वरूपप्रदर्शननिमित्तो दुर्योधननिग्रहो भगवत्कृतो यथाप्रतिपाद्यो द्योतित । 'सर्वलोकोत्सव स व' इत्यत्र छकानुप्रास । अनुष्टुप्वृत्तम् ॥ १ ॥

मूनधार—भगवान् वामन (विष्णु) का वही सर्वलोकान्तर्दकारी, कुछ कुछ अरुण नख वाला चरण आप सामाजिको की रक्षा करे, जिसने नमुचि दैत्य को आकाश में फेंक दिया था ॥ १ ॥

१ नान्दी यथा—आशार्वचनसमुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।

देवद्विजन्तुशदीना तस्मानान्दीति सक्तिता ॥

(सा० द० ६२४)

एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि । अये किं नु खलु मयि विज्ञापन
व्यग्रे शब्द इव श्रूयते । । अङ्ग ! पयामि ।

(नेपथ्ये)

भो भो प्रतिहाराघिवृता ! महाराजो दुर्योधन समाज्ञापयति ।
सूत्रधार — भवतु विज्ञातम् ।

एवमार्यमिश्रान् = आर्या = कुलशीलधामाघमंसत्त्यादिसद्गुणसम्पन्ना
सभ्याः । ते च ते मिश्रा = पूज्या, तान् श्रेष्ठमामाजिकान्, एवम् = अनेन
वक्ष्यमाणेन प्रकारेण, विज्ञापयामि = सूचयामि । अये = इत्यथ्ययमाश्चर्ये
विषादे वा, अये इति विज्ञापनाभङ्गो नोत्पन्न विषादम् । अकस्माच्छब्दश्रवणेन
संजातमाश्चर्यं वा द्योतयति । किन्तु खलु = न इति वितर्कं, किं कारणम् ?
मयि = सूत्रधारे, विज्ञापनव्यग्रे = विज्ञापनव्याप्तकचित्ते विज्ञाप्यबोधनार्थ-
मुच्यते । शब्द इव = अनिश्चितरूप शब्द, श्रूयते = कर्णगोचरीभवति ।
अङ्ग = इति सम्बोधने सम्भ्रमे वा, पयामि = शब्दस्य विशेषाकार निमित्त
च परीक्ष्य ज्ञास्यामि ।

नेपथ्यम् = जवनिकान्तर्भागी नटप्रसाधनस्थल वा, वक्ष्यमाणाकार
शब्दो नेपथ्ये प्रवृत्त इत्यर्थः । शब्दस्याकारमाह - भो भो इत्यादि ।

भवत्विति । भवतु = शब्दस्य भवा प्राप्तावसरं, लोटः प्राप्तकालार्थ-
त्वात् । प्राप्तावसरत्वोक्त्या च शब्दस्य विज्ञाप्य वस्तुतस्त्वत्त्व प्रत्यावितम् ।
विज्ञातम् = अवगतम्, शब्दस्य निमित्तात् इति शेषः ।

इस प्रकार मैं आप महानुभावों को सूचित करता हूँ । अरे, सूचना
क्षेत्रे म रूपस्त मुझको भैता शब्द-ता गुनाई दे रहा है ? अच्छा, देखो तो ।

(नेपथ्य मे)

हे हे द्वारपालाधिकारियों ! महाराज दुर्योधन आज्ञा दे रहा है—

सूत्रधार—अच्छा, समझा—

उत्पन्ने धार्तराष्ट्राणां विरोधे पाण्डवैः सह ।
मन्त्रशाला रचयति भृत्यो दुर्योधनाज्ञया ॥ २ ॥

(निष्क्रान्तः)

॥ स्थापना ॥

(ततः प्रविशति काञ्चुकीय .)

अन्वयः—धार्तराष्ट्राणां पाण्डवैः सह विरोधे उत्पन्ने (सति) भृत्यः-
दुर्योधनाज्ञया मन्त्रशाला रचयति ॥ २ ॥

संस्कृत टीका—धृतराष्ट्रस्य अपत्यं पुमान् धार्तराष्ट्रं तेषाम्,
धार्तराष्ट्राणां = धृतराष्ट्राणां = धृतराष्ट्रपुत्राणां सुयोधनादीनाम्, पाण्डवैः
सह = पाण्डुपुत्रैर्गुं धिष्ठिरादिभिः सह, विरोधे = वैरे, उत्पन्ने सति = प्रादुर्भूते
सति, दुर्योधनाज्ञया = दुःखेन युद्धघत इति दुर्योधनः तस्य आज्ञा, तथा,
कौरवज्येष्ठदेशेन, भृत्यः = भरतीति भृत्यः दुर्योधनस्य सेवकः, मन्त्र-
शाला = मन्त्रस्य शाला ताम्, कार्यसम्मन्त्रणार्थं सभाम्, विचारगृहं सभा-
स्थानमिति यावत्, रचयति = योजयति, मन्त्रसभायोगानुकूलमाचरतीत्यर्थः ।
तच्च मन्त्रसभासमवायाहंवाधिवाहानाय प्रतिहाराधिकृतानां प्रेरणम् ।
एतन्निमित्तमेव शब्दस्योत्थानमिति तात्पर्यम् । अशाप्यनुष्टुप् छन्दः ॥ २ ॥

विज्ञाप्य विज्ञापन नेपथ्योत्थशब्दविवरणमङ्गुला निर्वृत्त मन्वानस्य सूत्र-
धारस्य निष्क्रमणमाह—निष्क्रान्त इति । स्थापनेति । एव कथावस्त्वशस्म
स्थापनात् स्थापना । क्वचित् प्रस्तावनेति पाठः । स्थापना प्रस्तावनेति
पर्यायी । स्थापनाया कविकाव्यनामानुत्कीर्तनं तदुत्कीर्तनसमुदाचारप्रवृत्ति-
कालादस्य रूपकस्य प्राचीनत्वं गमयति ।

सूचितस्य भृत्यस्य प्रवेशमाह—तत इत्यादि । भो भो इत्यादि ।

पाण्डवों के साथ धृतराष्ट्र के पुत्रों का विरोध उत्पन्न हो जाने के कारण
दुर्योधन की आज्ञा से उनके भृत्य सभागृह की योजना कर रहे हैं ॥ २ ॥

(चला जाता है)

॥ स्थापना ॥

(इसके बाद काञ्चुकी का प्रवेश)

काञ्चुकीय.—भो भो. प्रतिहाराधिकृताः ! महाराजो दुर्योधनः समाज्ञापयति—अद्य सर्वपायिवैः सह मन्त्रयिषुमिच्छामि । तदाहूयन्तां सर्वे राजान इति । (परिक्रम्याश्लोक्य) अये, अय महाराजो दुर्योधन इत एवाभिवर्तते । य एष.,

श्यामो युवा सितदुकूलकृतोत्तरीयः

सच्छत्रचामरवरो रचिताङ्गराग ।

श्रीमान् विभूषणमणिद्युतिरञ्जिताङ्गो

नक्षत्रमध्ये इव पर्वगतः शशाङ्कः ॥ ३ ॥

प्रतिहाराधिकृता.—प्रतिहारो द्वार तस्मिन्नधिकृताः तत्र स्थित्वा राज्ञः आज्ञां ये भृत्याः प्रतिपालयन्ति ते, द्वाररक्षाधिकारिणः सर्वपायिवैः सह—सर्वे पायिवैः पृथिव्या ईश्वरैः गाकम्; मन्त्रयिषुम्—आलोचयितुम्, आलोचनं चाकादशाक्षौहिणीबलसमुदयस्य पाण्डवयुद्धार्थं संगृहीतस्य सेनापतिनिर्धारण-विषयं स्पष्टीभवति । अभिवर्तते—अभिमुखमागच्छति ।

अन्वयः—श्यामो युवा सितदुकूलकृतोत्तरीयः सच्छत्रचामरवरो रचिताङ्गरागो विभूषणमणिद्युतिरञ्जिताङ्गः श्रीमान् नक्षत्रमध्ये पर्वगतः शशाङ्क इव (विभाति) ॥ ३ ॥

संस्कृत टीका—दूतः दुर्योधन विशिनष्टि—श्यामो युवा इति । श्यामः—वृष्णवर्णः, युवा—तरुणः, सितदुकूलकृतोत्तरीयः—मितेन धवलेन

काञ्चुकीय—हे प्रतिहारियो ! महाराज दुर्योधन आज्ञा दे रहे हैं कि 'आज मैं अखिल राजमण्डल के साथ मन्त्रणा करना चाहता हूँ । अतः सभी राजाओं को बुलाओ । [घूमकर और देलकर] अरे यह तो महाराज दुर्योधन इधर ही आ रहे हैं, यह जो है—

वह तो वही श्याम वर्ण युवक है—जो श्वेत रेशमी उत्तरीय धारण किए हैं, जिसके मस्तक पर सुन्दर छत्र और श्रेष्ठ चँवर क्षोभायमान है, तथा जिसके शरीर पर अङ्गराग लगा है एवं जिसके अङ्गप्रत्यङ्ग मणियों की छटा से ऐसे कान्तिमान् हो रहे हैं जैसे नक्षत्रों [तारों] मध्य पूर्णिमा का रहा हो ॥ ३ ॥

(तत प्रविशति यथानिदिष्टो दुर्योधन)

दुर्योधन.—

उद्धूतरोषमिव मे हृदय सहर्षं

प्राप्त रणोत्सवमिम सहसा विचित्य ।

इच्छामि पाण्डवबले वरवारणाना-

मुत्कृतदन्तमुसलानि मुखानि कर्तुम् ॥ ४ ॥

दुकूलेन क्षीमेण सूक्ष्मवस्त्रेण वा कृतम् = विहितम्, उत्तरीय = प्रावार येन स तथोक्त, सच्छत्रचामर = सत् समीचीन छत्र चामरवरञ्च यस्मिन् स शोभनच्छत्रव्यजनवर, रक्षिताङ्गराग = रचित अङ्गराग अङ्गानुलेपन येन स विहिताङ्गानुलेपन विभूषणमणिच्युतिरञ्जिताङ्ग = विभूषणमणि-
च्युतिभि आभरणरत्नकान्तिभि रञ्जितानि रूषितानि अङ्गाति यस्य स, आभरणोत्पलमणिकान्तिशोभितविग्रह, श्रीमान् श्री = अस्ति अस्य श्रीमान् शोभायुक्त, [य एष = दुर्योधन स] नक्षत्रमध्ये = नक्षत्राणा मध्य तस्मिन्, उदुगणपरिवृत्त, पवगत = पर्वणि गत, पूणिमः प्राप्त, शशाङ्क इव = शश मृग अङ्के = क्रीडे यस्य स, चन्द्र इव, प्रियदशनत्वाद् शोभते इति शेष । उपमालङ्कार । वस ततिलकावृत्तम् ॥ ३ ॥

टिप्पणी— दुकूल तु क्षीमेऽपि सूक्ष्मवाससि इति केशवस्वामी । द्वी प्रावारोत्तरासङ्गो समो बृहतिका तथा । सव्यानमुत्तरीय चेत्यमर ।

अन्वय — उद्धूतरोषमिव मे हृदय सहर्षम् इम रणोत्सव प्राप्तम् इति सहसा विचित्य पाण्डवबले वरवारणाना मुखानि उत्कृतदन्तमुसलानि कर्तुम् इच्छामि । ४ ॥

संस्कृत टीका— उद्धूतरोषमिव = उद्धूत निरस्त रोष-कोप

[इसके बाद उपर्युक्त प्रकार की छटा से सम्पन्न दुर्योधन का प्रवेश]

दुर्योधन— इस युद्धोत्सव के एकाएक उपस्थित हो जाने पर विचार करके मेरा हृदय प्रसन्न होकर मानो क्रोधरहित हो गया है । अब मैं पाण्डव-सेना के श्रेष्ठ गजराजो के मूसलाकार दन्तो को उखाड़ फेंकना चाहता हूँ ॥ ४ ॥

काञ्चुकीयः—जयतु महाराज । महाराजशासनात् समानीतं सर्वराजमण्डलम् ।

दुर्योधनः—सम्यक् कृतम् । प्रविश त्वमवरोधनम् ।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराज । (निष्क्रान्तः)

पाण्डवविषयो येन तत्, विनष्टक्रोधमिव, मे = मम, हृदय = चित्त, सहर्षं = हर्षयुक्तं भवति । इवेति सभाधनायाम् । तेन रोषस्य सतोऽप्युद्धृतयदयभासमानतोक्ता, सा च चित्तवृत्त्यन्तरेणाभिभवादित्याशयः । एवं च रोषव्यवकारेण हर्षं उदित इति तात्पर्यम् । कथं हर्षोदयस्तत्राह—इमं = वर्तमान, रणोत्सव = रणस्य उत्सवः तम्, युद्धमेवानन्दहेतुत्वाद् उत्सवम्, सप्राममहम्, प्राप्तम् = समागतम्, इति सहसा विचिन्त्य = इति द्वाक विमृश्य, अतः पाण्डवयले = पाण्डवानां बल तस्मिन्, पाण्डवानां सैन्ये, वरवारणानां = प्रशस्तगजानाम्, वराश्च ते वारणाः तेषाम्, मुग्यानि = आननानि, उत्कृतदन्तमुसलानि = उत्कृताः छिन्नाः दन्तमुसला, दन्ता मुमला इव येषु तानि तथाभूतानि, उत्पाटितरदानि, कर्तुंम् = विघातुम्, इच्छामि = ईहे । एवञ्च इच्छायां फलप्राप्तिकालं प्रत्यासन्नो युद्धस्यासन्नत्वादिति निश्चयो हर्षोदये कारणमित्युक्तं भवति । 'इच्छा हि' इति षवचित् पाठ । तथा हि शब्दो हेतो, यस्मात् कारणादित्यर्थः । इच्छा = काम, ममास्तीत्यर्थगम्यम् । अतः आस्मिन् रणे पाण्डवसैनिकगजानां विनाश करोमीति विवेकः । उपमालङ्कारः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ४ ॥

टिप्पणी—हृदयं—'चित्तं तु चेतो हृदयम्' इत्यमरः । उत्सवः—'महस्तूत्सवतेजसो'—इत्यमरः ।

सस्कृत टीका—जयत्विति । समानीतम् = बाहृतम् । सम्यगित्यादि ।

काञ्चुकीय—महाराज की जय हो । महाराज की आज्ञा से अखिल राजमण्डल को बुला लिया गया है ।

दुर्योधन—बहुत अच्छा किया । अब तुम अन्त पुर में जाओ ।

काञ्चुकीय—जैसी महाराज की आज्ञा । (चला जाता है)

दुर्योधन—आर्यो वैकर्णवपदेवो ! उच्यताम्—अस्ति ममैका-
दशाक्षीहिणीसमुदयः । अस्य क. सेनापतिर्भवितुमर्हति ? किं किमा-
हतुर्भवन्ती—महान् खल्वयमर्थः । मन्त्रयित्वा वक्तव्यमिति ।

सदृशमेतत् । तदागम्प्रतां मन्त्रशालामेव प्रविशामः । आचार्य !
अभिवादये । प्रविशतु भवान् मन्त्रशालाम् । पितामह ! अभिवादये ।
प्रविशतु भवान् मन्त्रशालाम् । मातुल ! अभिवादये । प्रविशतु

अवरोधनम् = अन्त पुरम् । आर्योवित्यादि । वैकर्णवपदेवो = राजविशेषी,
वैकर्णवपदेवोविति व्रविद् पाठः । एकादशाक्षीहिणीबलसमुदयः = एकादश
या अक्षीहिण्य, सेनापरिमाणविशेषः ता एव बलानि सैन्यानि तेषां
समुदयः सङ्घातः ।

टिप्पणी—'प्रिहमे पञ्चपादातं यदेकरयकुञ्जरम् ।

सैन्यं सा पत्तिरेतस्यास्त्रैगुण्यात् स्युर्यपाक्रमम् ॥

सेनामुखं गुल्मगणो बाहिनी पृथना चमू ।

अनीकनीत्यनीकिन्यः पुनरक्षीहिणी दश ॥'

—इति वैजयन्तीकोशः ।

संस्कृत टीका—किमाहतुरित्यादि । एतच्च पृष्टयो. रङ्गमपृष्टयो.
प्रतिवचनस्यानुवादभङ्ग्या प्रकाशनम् । इदमाकाशभाषितमित्युच्यते । यदाह
दशरूपके—

'किं ब्रवीष्येवमित्यादि विना पात्रं ब्रवीति यत् ।

ध्रुत्वेवानुक्तमध्येकस्तत् स्यादाकाशभाषितम् ॥'

सदृशं = युक्तम् । तदागम्यतमित्यादीनि = आहूतागतान् द्रोणभीष्मादीन्

दुर्योधन—हे आर्य वैकर्ण एवं वपदेव ! बतलाइए—जो मेरी
प्यारण अक्षीहिणी सेना है, कौन इसका सेनापति होने योग्य है ? क्या आप
लोग कहते हैं ? वस्तुतः यह विषय महत्वपूर्ण है । अतः मन्त्रणा करके ही इस
सम्बन्ध में वक्तव्य दें ।

यह उचित ही है । तो आइए, मन्त्रशाला [समाभवन] में ही प्रवेश
करें । आचार्य ! आपको मैं प्रणाम करता हूँ । आप मन्त्रशाला में प्रवेश

भवान् मन्त्रशालाम् । आर्यो वैकर्णवपदेवो ! प्रविगतां भवन्तो ।
भो भो. सर्वक्षत्रियाः ! स्वरं प्रविगन्तु भवन्तः । वयस्य ! कर्ण !
प्रविशामस्तावत् ।

(प्रविश्य)

। आचार्य ! एतत् कूर्मासनम्, आस्यताम् । पितामह ! एतत् सिंहा-
सनम्, आस्यताम् । मानुल ! एतच्चर्मासनम्, आस्यताम् । आर्यो
वैकर्णवपदेवो ! आमातां भवन्तो । भो भो. सर्वक्षत्रियाः ! स्वर-
मासता भवन्तः । किमिति किमिति महाराजो नास्त इति । अहो
सेवाधर्मः । नन्वयमहमासे । वयस्य कर्ण ! त्वमप्यास्स्व । (उपविश्य)

प्रति मत्कारवाक्यानि । कूर्मासनम् = कूर्माकाराद्धितम् आसनम्, स्वर =
निःशब्दम् ।

किमितीति । किमिति किमिति = कुतः कुतः, असितुं शङ्कमानानिव
सर्वंधारियान् पश्यन् पृच्छति । शङ्कन्त इति क्रियाव्याहारः । संशक्तं शङ्काहेतुम-
नुवादमङ्गधा प्रकाशयति—महाराज इत्यादि । अत्र इतिशब्दानन्तर 'कि
द्रूपे'ति शेषः । सेवाधर्मः = सेव्यानुरोधसमुदाचारः, अनुपविष्टे सेव्ये
अनुपवेगलक्षणः । ननु = इति अनुनये । वयस्य = हे सखे ! ।

करें । पितामह ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ । आप मन्त्रशाला में प्रवेश
करें । मामा ! आपका अभिवादन करता हूँ । आप मन्त्रशाला में प्रवेश
करें । आर्य वैकर्ण और वपदेव ! आप दोनों भी प्रवेश करें । हे हे समस्त
क्षत्रिय राजाओ ! आप सब भी स्वेच्छापूर्वक [सनै सनै] प्रवेश करें । हे
मित्र कर्ण ! तब तो हम भी प्रविष्ट होएँ ।

(प्रवेश करके)

आचार्य ! यह कूर्मासन है इस पर आप बैठें । पितामह ! यह सिंहासन
है इस पर आप बैठिए । मामा ! (यह चर्मासन है इस पर आप बैठिए)
आर्य वैकर्ण और वपदेव ! आप दोनों [यथेच्छ] बैठें । हे हे समस्त
क्षत्रियगण ! आप भी स्वेच्छापूर्वक बैठ जाएँ । यह क्या ? यह क्या ?
महाराज नहीं बैठेंगे अहो सेवाधर्म (धन्य है) । अच्छा मैं भी यहीं बैठ

आर्यो वैकर्णवर्षदेवो ! उच्यताम्—अस्ति ममैकादशाक्षौहिणीबलसमु-
दय । अस्य कः सेनापतिर्भवितुमर्हतीति । किमाहतुर्भवन्ती—
अत्रभवान् गान्धारराजो वक्ष्यतीति । भवतु. मातुलेनाभिधीर्यताम् ।
किमाह मातुलः—अत्रभवति गाङ्गेये स्थिते कोऽन्य. सेनापतिर्भवितु-
मर्हतीति । सम्यगाह मातुलः । भवतु भवतु, पितामह एव भवतु ।
वयमप्येतदभिलषामः ।

सेनानिनादपटहस्वनशङ्खनादं-

श्रण्डानिलाहतमहोदधिनादकल्पः ।

गाङ्गेयमूढिन पतितैरभिषेकतोयै

सार्धं पतन्तु हृदयानि नराधिपानाम् ॥ ५ ॥

अत्रेत्यादि । अत्रभवान् = पूज्य, गान्धारराज. = शकुनि, गान्धारराजा
राजा । 'राजाहस्सलिभ्यष्टव्' इति समासान्तः ।

अत्रभवतीत्यादि । गाङ्गेये = गङ्गाया अपत्यं पुमान् गाङ्गेयः भीष्मः ।
तस्मिन् । वयमपीत्यादि स्थाने 'अहमप्येतदभिलषामीति' क्वचित् पाठः ।

अन्वय. — श्रण्डानिलाहतमहोदधिनादकल्पं. सेनानिनादपटहस्वनशङ्खनादैः
(उल्लसितै) गाङ्गेयमूढिनपतितै. अभिषेकतोयैः सार्धं नराधिपाना
हृदयानि पतन्तु ॥ ५ ॥

जाता हैं । मित्र कर्ण ! तुम भी यही बैठ जाओ ।

[बैठकर]

आर्य वैकर्ण और वर्षदेव ! बतलाइए—हमारी ग्यारह अक्षौहिणी सेना है,
कौन इसका सेनापति होने योग्य है ? क्या कहा आप लोग ने—माननीय
गान्धार देश के राजा बतलाएंगे ? तो अच्छा मामा ही कहें । क्या कहा
मामा ?—श्रीमान् गङ्गा तनय (= भीष्म) के होते हुए और कौन सेनापति
होने के योग्य हो सकता है ?

मामा ने ठीक ही कहा । अच्छा, अच्छा, पितामह ही [सेनापति]
होंगे । हम भी यही चाहते हैं कि—

• प्रचण्ड प्रभञ्जन [शंशावात] से विशुद्ध महासागर के समान सेना के

दरस्तव पुरुषोत्तम । स गोपालकस्तव पुरुषोत्तम । बार्हद्रथापहृत-
विषयककीर्तिभोगस्तव पुरुषोत्तम । अहो पार्थिवासन्नमाश्रितस्य
भृत्यजनस्य समुदाचार । सर्गं खल्वस्य वचनम् । आ अपध्वस ।

काञ्चुकीय — प्रसीदतु महाराज । सम्भ्रमेण समुदाचारो
विस्मृत । (पादयो पतति) ।

श्रीकृष्णस्य पुरुषोत्तमत्वविशेषण निसर्गद्वेषित्वादमहमान आह —
मेत्यादि । मा तावदिति प्रतिषेधोऽनिष्टवचनविषय । कित्त्व आक्षेपे,
कोपाद् द्विरुक्ति । आक्षेप्य तु पुरुषोत्तमत्वम् । तच्च विरुद्धवर्माद्भावनाया
त्रि खण्डयति—१ कसभृत्य = कसस्य सेवक । २ दामोदर = दाम रज्जु
उदरे यस्य निबद्ध बौर्यनिवारणाय जनन्या स, तथाभूत — आभ्या
विशेषणाम्ब्या नीचवृत्तित्वम् आबालदुःशीलत्व चोक्तम् । तव पुरुषोत्तम =
त्वत्पक्षे पुरुषोत्तम । नीचवृत्ति दुःशील च जन त्व पुरुषोत्तम मन्यसे, धिक्
त्वमित्यभिप्राय । ३ गोपालक = आभीर । अनेन कुलहीनता सूचिता ।
बार्हद्रथापहृतविषयकीर्तिभोग = बार्हद्रथेन जरामन्त्रेण अपहृत विषयो देश
कीर्तिभोगश्च यस्य स तथा । एनेन शौर्यहीनतोक्ता । पार्थिवासन्नम्
आश्रितस्य = रात्रान्तिक सेवमानस्य, समुदाचार = व्यवहारक्रम, आ = इति
कोपे । अपध्वस = नष्टो भव मदन्तिकान् महमापसरेत्पर्य । अनुदात्तत्व
लक्षणस्यात्मनेपदस्थानित्यत्वात् परस्मैपदम् ।

प्रसीदत्वित्यादि । सम्भ्रमेण = त्वरया ।

[रस्ती से बाधा गया] दामोदर ही तुम्हारा पुरुषोत्तम है ? वह गोत्रो का
पालक ही तुम्हारा पुरुषोत्तम है ? बृहद्रथ के पुत्र जरामन्त्र ने जिनका राज्य
कीर्ति और ऐश्वर्य छीन लिया था क्या वही तुम्हारा पुरुषोत्तम है ? आश्चर्य
है कि राजाश्री के सन्निकट रहने वाले [तुम्हारे] सेवकों का भी ऐसा
[अनुचित] आचरण हो सकता है । यह वाणी तो बड़ी गर्विली है ।
यहाँ से दूर हटो ।

काञ्चुकीय—महाराज प्रसन्न हो, महाराज प्रसन्न हो । हडबडाहट
के कारण मैं अपने आचरण को भूल गया था । [चरणों पर गिरता है]

दुर्योधन —सध्रम इति । आ. मनुष्याणामस्त्येव सध्रमः । उत्ति-
ष्ठोत्तिष्ठ ।

काञ्चुकीय.—अनुगृहीतोऽस्मि ।

दुर्योधनः—इदानीं प्रसन्नोऽस्मि । क एष दूत प्राप्त ।

काञ्चुकीय.—दूत. प्राप्त. केशव. ।

दुर्योधन —केशव इति । एवमेष्टव्यम् । अयमेव समुदाचार ।
भो भो राजान ! दौत्येनागतस्य केशवस्य किं युक्तम् । किमाहु-
र्भवन्त । अर्घ्यप्रदानेन पूजयितव्य. केशव इति । न मे रोचते ।
ग्रहणमस्यान हित पश्यामि ।

सध्रमेति । आ=इति स्मरणे । अमनुष्याणामिति पाठे मनुष्यभासा-
नामित्यर्थः ।

इदानीमित्यादि । ऋ एष =इति प्रश्नो न्याय्य समुदाचार भाष-
यितुम् ।

केशव इति । एवम् एष्टव्य =निविशेषणनामधेयमात्रग्रहणलक्षण एष
प्रकार एषतुमर्ह इत्यर्थः । किं युक्तम् =कीदृश सम्भावनमनुरूपम् । अर्घ्य-
दानन=अर्घाय पूजायै हितम् अर्घ्यम् तस्य प्रदानेन न रोचते=अर्थात् पूजनम्;
ग्रहण = बन्दीकरणम् ।

दुर्योधन—सध्रम । आह मनुष्य के आने से इतनी हडबडाहट, उठो,
उठो ।

काञ्चुकीय—अनुगृहीतूँ हूँ ।

दुर्योधन—अब मैं प्रसन्न हूँ । कौन सा दूत आया है ?

काञ्चुकीय—केशव नामक दूत आया है ।

'दुर्योधन—'केशव' यह, हाँ ऐसे कहना चाहिए । यही आचरण ठीक
है । हे राजाओ ! दूत रूप में आए केशव के प्रति क्या [ध्ववहार] उचित
है ? आप लोगो ने क्या कहा कि अर्घ्यदान आदि से केशव का सम्मान
करना चाहिए । यह मुझे पसन्द नहीं है । मैं तो उसे बन्दी बनाने में ही
अपना हित समझता हूँ ।

ग्रहणमुपगते तु वासुभद्रे
 हृतनयना इव पाण्डवा भवेयु ।
 गतिमतिरहितेषु पाण्डवेषु
 क्षितिरखिलापि भवेन्ममासपत्ना ॥ ६ ॥

अपि च योऽत्र केशवस्य प्रत्युत्थास्यति, स मया द्वादशसुवर्णभारेण

टिप्पणी—एष्टव्य — इच्छार्थकस्य इपघातोः तव्यत् प्रत्ययः ।

अन्वयः—ग्रहणमुपगते च वासुभद्रे पाण्डवा हृतनयना इव भवेयु ।
 पाण्डवेषु गतिमति रहितेषु अखिलापि क्षितिः असपत्ना मम भवेत् ॥ ६ ॥

संस्कृत टीका—ग्रहणस्य हितत्वमुपपादयति—ग्रहणमिति । ग्रहण-
 मुपगते=ग्रहण बन्दीकरणम्, उपगते प्राप्ते सति वासुभद्रे=कृष्णे,
 पाण्डवा = युधिष्ठिरादयः, हृतनयना इव = नेत्रहीना इव, हृतानि नयनानि
 येषां ते, विनष्टचक्षुषः इव यथा स्यात् तथा, भवेयु = स्यु । पाण्डवेषु=
 पाण्डुपुत्रेषु सत्सु गतिमतिरहितेषु = गतिश्च मतिश्च तयोः रहिता, तेषु
 पथप्रदर्शकबुद्धिदातृरहितेषु, अथवा गत्या शरणेन कृष्णात्मना मत्या कृष्णदीय-
 मानया बुद्ध्या च रहितेषु सत्सु अखिलापि = समस्तापि, क्षिति = भूमि,
 मम = दुर्पोषनस्य, असपत्ना = विपक्षरहिता, निश्शत्रु सती वा, भवेत् =
 स्यात् । भाग्यादिना शत्रूणामसहायतया युद्धेऽनुचोगात् प्राणपरित्यागाद् वेति
 भावः । अथवा, मम भवेत् = ममैव भवेत्, मदेकस्वामिका भवेत् । पुष्पिताग्रा-
 वृत्तम् ॥ ६ ॥

टिप्पणी—वासुभद्रे—वासुदेवनामैकदेशस्य वासुशब्दस्य सौम्यार्थकभद्र
 पदयुक्तस्वार्थ प्रयोगः, रामभद्रवत् । यद्वा, 'विनापि प्रत्ययं पूर्वोत्तरपदवक्तव्यं'
 इति शान्तिनिशासनात् वासुपद वासुदेवपदबोधकमिति विवेकः ।

संस्कृत टीका—प्रत्युत्थानमात्रेणापि कृष्ण सम्भावयितुर्दण्डमा-

वासुदेव के बन्दी बन जाने पर पाण्डव नेत्र-हीन से हो जायेंगे और
 उनके [शारीरिक] गति एव मति से हीन हो जाने पर यह समग्र पृथ्वी मेरे
 लिए शत्रुहीन हो जायगी ॥ ६ ॥

और भी जो यहाँ केशव के सम्पन्न में खड़ा होगा । वह बारह स्वर्ण-

दण्डयः । तदप्रमत्ता भवन्तु भवन्तः । को नु खलु ममाप्रत्युत्थानस्यो-
पायः । हन्त दृष्ट उपायः । बादरायण ! आनीयता स चित्रपटो ननु,
यत्र द्रौपदीकेशाम्बरावकपंगमालिलितम् । (अत्रवापं) तस्मिन् दृष्टि-
विन्यासं कुर्वन् नोत्पास्यामि केशवस्य ।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराज । (निष्क्रम्य प्रविश्य)
जयतु महाराज । अयं स चित्रपटः ।

दुर्षोधनः—ममाप्रतः प्रसारय ।

दिशति—अपि चेत्यादि । अत्र = सभामध्ये । प्रत्युत्थास्यति = प्रत्युत्थान-
समुदाचारमनुष्ठास्यति । द्वादशसुवर्णभारेण = सुवर्णं, कर्पः द्वादशकर्पात्मको
नाणकविशेषो द्वादशसुवर्णं इति व्यपदिष्टः, द्वादशसुवर्णानां भारः पलसत्सङ्घं
द्वादशसुवर्णभारः, तेन, दण्डयः = दण्डयितुं योग्यः, दण्डनीय इत्यर्थः ।
महतो दण्डम्य विधानं प्रत्युत्थानस्य महापराश्रत्वबोधनायम् । प्रत्युत्थातुः
परस्य विहितदण्डोऽपि कृष्णसम्भुतदर्शने अप्रत्युत्थानमात्मना कर्तुं मशयं
मन्यमानश्चिन्तयति—कोन्वित्यादि । चित्रपटः = आलेख्यपटः, ननु = इति
मन्त्रने, तस्मिन् = चित्रपटे, एवञ्च कृष्णदर्शनं छद्मना प्रत्युत्थानं परि-
हरिष्यामीत्यभिप्रायः ।

ममेत्यादि । प्रसारय = विस्तारय, अर्थात् चित्रपटम् । अहो इत्यादि ।
एय = बालिलित, दुस्सासनः, वैशहस्ते = कचकलापे ।

टिप्पणी—द्वादशसुवर्णं = 'सुवर्णो ना स्वर्णकर्पे' इति मेदिनी । 'भारः

मुद्रा के दण्ड के योग्य होगा । अतः आप लोग सावधान रहे । [स्वगत] मेरे
न उठने का कौन सा उपाय हो सकता है ? ठीक है, एक उपाय सूझा ।
[प्रकट में] अरे बादरायण ! वह चित्रपट तो ले आओ जिसमें द्रौपदी का
चौरहरण चित्रित किया गया है । [हटाकर] उसी पर दृष्टि जमाकर
केशव के आने पर भी नहीं उठूँगा ।

काञ्चुकीय—महाराज की जो आज्ञा । [निकलकर और फिर पुनः
प्रवेग करके] महाराज की जय हो । यह वह चित्रपट है ।

दुर्षोधन—इसे मेरे समझ फँसा दो । ॥

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः । (प्रसारयति)

दुर्योधन—अहो दर्शनीयोऽयं चित्रपट । एष दुःशासनो द्रौपदीं
केगहस्ते गृहीतवान् । एषा खलु द्रौपदी,—

दुःशासनपरामृष्टा सम्भ्रमोत्फुल्ललोचना ।

राहुवक्त्रान्तरगता चन्द्रलेखेव शोभते ॥ ७ ॥

एष दुरात्मा भीमः सर्वराजसमक्षमवमानिता द्रौपदी दृष्ट्वा
प्रवृद्धामर्षं सभास्तम्भं तुलयति । एष युधिष्ठिरः,

सहस्रद्वितयं पलानां च गरिम्प्यं च' इति यादवः ।

अन्वय—दुःशासनपरामृष्टा सम्भ्रमोत्फुल्ललोचना (द्रौपदी) राहुवक्त्रान्-
न्तरगता चन्द्रलेखा इव शोभते ॥ ७ ॥

संस्कृत टीका—(एषा द्रौपदी) दुःशासनपरामृष्टा=दुःशासनकरणता,
दुःशासनेन-दुर्योधनकनिष्ठभ्रात्रा, परामृष्टा=केशाकृष्टा सती, सम्भ्रमोत्फुल्ल-
लोचना=सम्भ्रमेण सवेगेन उत्फुल्ले अति विकसिते लोचने यस्यां सा,
सलुभितविकसितनेत्रा, राहुवक्त्रान्तरगता=राहोः वक्त्रं तस्य अन्तरगता=
राहुवदनमध्यप्रासा, चन्द्रलेखा=चन्द्रस्य, लेखा, इन्दुकला, इव=यथा,
शोभते=प्रतिभाति ॥ ७ ॥

संस्कृत टीका—एष इत्यादि । भीम=भीमसेन, सर्वराजसमक्षं=
सर्वराजानां सर्वेषां राज्ञां प्रत्यक्षं यथा भवति तथा । प्रवृद्धामर्षं=सवृद्धकोपः,

काञ्चुकीय—जो महाराज की आज्ञा । [फैला देता है]

दुर्योधन—अहा ! यह चित्रपट वस्तुतः दर्शनीय है । यह दुःशासन है,
जिसने द्रौपदी के वेशों को हाथों में पकड़ रखा है । यह द्रौपदी है जो—

दुःशासन से अक्रान्त होने पर भय से नेत्र विस्फारित किए हुए इस
समय मानो राहु के जबड़ों में फंसी हुई चन्द्रकला के समान शोभा पा
रही है ॥ ७ ॥

यह दुरात्मा भीम है जो अखिल राजसमूह के सामने अपमानित होती
हुई द्रौपदी को देखकर प्रचण्ड क्रोध में भरकर मन्त्रशाला के स्तम्भ को
चलाड़ने की चेष्टा में है । यह युधिष्ठिर है जो,

सत्यधर्मघृणायुक्तो घृतविभ्रष्टचेतनः ।

करोत्यपाङ्गविक्षेपं शान्तामर्षं वृकोदरम् ॥ ८ ॥

एष इदानीमर्जुनः,

रोपाकुलाक्षः स्फुरिताधरोष्ठ-

स्तृणाय मत्वा रिपुमण्डलं तत् ।

उत्सादयिष्यन्निय सर्वराज.

शनैः ममाकर्षन्ति गाण्डिवज्याम् ॥ ९ ॥

तुल्यपति = चलपति । यद्वा, उन्मिमीते = उन्मानमिह तारतम्यपरीक्षणं, किमनेन स्तम्भेन शत्रून् प्रहरेयं किममुना स्तम्भेनेति तस्मारफल्गुता दृष्ट्या पर्यालोचयतीत्यर्थं, मृधिष्ठिरः = धर्ममूनु' ।

अन्वयः—सत्यधर्मघृणायुक्तो घृतविभ्रष्टचेतन (मृधिष्ठिरः) अपाङ्ग-विक्षेपं वृकोदर शान्तामर्षं करोति ॥ ८ ॥

सस्कृत टीका — सत्यधर्मघृणायुक्त = घृणा अकार्यविषया जुगुप्सा, मत्पञ्च धर्मश्च घृणा च तामि युक्तः, सत्यधर्मदयासहितः, घृतविभ्रष्ट-चेतन = घृतेन अक्षक्रीडया तन्निमित्तपराजयेनेत्यर्थः, विभ्रष्टा = नष्टा, चेतना सविद् यस्य स, एवभूत एषः चित्रपटागतः, मृधिष्ठिरः, अपाङ्गविक्षेपं = सेङ्गितं. कटाक्षावलोकनं, अपाङ्गाना—कटाक्षाणा विक्षेपाः—प्रक्षेपाः तैः, वृकोदरं = भीमं, वृकः—वृकनामग्निः, उदरे जठरे, यस्य तम्, शान्तामर्षं = शान्त-उपनिमित्त, अमर्षं द्वेष यस्य तम्, शंमितकोप, करोति = विदधाति ॥ ८ ॥

टिप्पणी—घृणा—'घृणा जुगुप्साकृपयो.' इति मेदिनी ॥ ८ ॥—

अन्वय — रोपाकुलाक्षः स्फुरिताधरोष्ठः अर्जुन तत् रिपुमण्डलं तृणाय मत्वा सर्वराजः उत्सादयिष्यन्निय शनैः गाण्डिवज्या ममाकर्षन्ति ॥ ९ ॥

सत्य, धर्म और दया से युक्त होकर भी जूए के खेलने से मतिभ्रष्ट हो, आँसु के इसारे से ही भीम के क्रोध को शान्त कर रहा है ॥ ८ ॥

और, अब यह अर्जुन है, जिसके—

नेत्र क्रोध से व्याकुल हो रहे हैं, अधरोष्ठ (क्रोध के कारण) फड़क रहे २ दू०

एष युधिष्ठिरोऽर्जुनं निवारयति । एतौ नकुलसहदेवौ,
कृतपरिकरबन्धौ चर्मनिस्त्रिशहस्तौ
परुषितमुखरागौ स्पष्टदण्डाधरोष्ठौ ।

संस्कृत टीका—क्रमशः अर्जुनमपि विशिनष्टि—रोषाकुलेत्यादिना ।
रोषाकुलाक्ष. = रोषेण क्रोधेन आकुले व्याप्ते, अक्षिणी—नेत्रे यस्य सः,
स्फुरिताधरोष्ठ = अधरोष्ठः-अधरदन्तच्छद येन स, एषः अर्जुनः, तत् =
तत्कालीनं, रिपुमण्डलं = रिपूणा मण्डलं, शत्रुराजकं, तृणाय मत्वा =
अकिञ्चित्कर ज्ञात्वा, तृणमिवानादृत्येत्यर्थः., सर्वराज्ञः. = सर्वे च ते राजान.
सर्वराजानः, तान्, सर्वान् द्रौपदीपरिभवस्य कर्तृन् अनुमन्तृन् द्रष्टृश्च नृपान्,
उत्सादयन्निव = ध्वंसयिष्यन्निव, शनैः = मन्द यथा स्यात् तथा, गाण्डि-
बज्यां = गाण्डिवारूपस्य चापस्य मौर्वीम्, समाकर्षन्ति = सम्यक् प्रकारेण
आकर्षणं करोति ॥ ९ ॥

टिप्पणी—तृणाय—‘मन्यकर्मण्यनादरे’ इति चतुर्थी । सर्वराज्ञः—
‘राजाहस्तस्त्रिभ्यः’ इति समासान्तस्याकरणमनित्यत्वात् । ‘सर्वराजान्’ इत्येव
वचिवत् पाठः । उत्सादयन्निव—उत् + सत् + णिच् + लृट् (शतृ प्रत्ययः),
‘लृटः सदा’ इति लृटः शात्रादेशः प्रकृत्यर्थस्य समाकर्षणक्रियां प्रति फलत्व-
विवक्षया । (क) अत्र उत्प्रेक्षालङ्कारः । (ख) उपजातिवृत्तम् ॥ ९ ॥

संस्कृत टीका—एष इत्यादि । निवारयति = अर्थात् युद्धोद्यमात् ।

अन्वयः—कृतपरिकरबन्धौ चर्मनिस्त्रिशहस्तौ परुषितमुखरागौ स्पष्ट-

हैं, और जो समस्त राजमण्डल को तृणवत् समझ रहा है, उन सब राजाओं
को नष्ट भ्रष्ट कर देने की इच्छा से धीरे-धीरे गाण्डीव की डोरी को खींच
रहा है ॥ ९ ॥

यह युधिष्ठिर अर्जुन को रोक रहा है । यह दोनों नकुल और सहदेव
हैं—

जिन दोनों ने कमर कस ली है और जिन दोनों ने ढाल और तलवार
संभाल ली है, जिन दोनों के मुँह कठोर वर्ण अर्थात् रक्त वर्ण के हो रहे हैं

विगतमरणशङ्को सत्वर भ्रातर मे

हरिमिव मृगपोती तेजसाभिप्रयाती ॥ १० ॥

एष युधिष्ठिर कुमारद्युपेत्य निवारयति—

दृष्टाधरोष्ठी विगतमरणशङ्को सत्वर मे भ्रातर मृगपोती हरिमिव तेजसा
अभिप्रयाती ॥ १० ॥

संस्कृत टीका—वृत्तपरिकरबन्धो=वृत्त परिकरबन्ध प्रगाढगामबन्ध
याम्या तो, चर्मनिस्त्रिशहस्तो=चर्मनिस्त्रिशो फलकखड्गो हस्तयोर्द्वयोस्तो—
फलकखड्गो पाणो, पक्षितमुखरागो=पक्षित पक्षो रक्ष वृत्त मुखरागो
मुखप्रकाशो ययोस्तौ—साम्राननो, स्पष्टदंष्ट्राधरोष्ठी=स्पष्ट दन्तेन दंष्ट
अधरोष्ठ ययास्तौ—चविताधरोष्ठी, विगतमरणशङ्को=विगता विनष्टा
मरणस्य मृत्यो शङ्का मन्देह ययोस्तौ, सत्वर, मे=मम दुर्योधनस्य,
भ्रातर=दुःशासनम् मृगपोती=हरिणडिम्बो, मृगस्य पोत तो हरिमिव=
सिंहमिव, तेजसा=वीर्येण, अभिप्रयाती=प्रत्यवस्थितौ । अत्र मृग-
पोतोपमया नकुलसहदेवयोरभियानस्योपहास्यत्व घोषितम् । उपमालङ्कार ।
मालिनीवृत्तम् ॥ १० ॥

टिप्पणी—तु० 'न व्याघ्र मृगशिशव प्रघपयन्ति । (प्रतिमा०
५ १८), कथं लम्बसट सिंहो मृगेण विनिपात्यते (अभिपेक० ३ २०) ।
सत्वरम्—त्वरया सह वर्तते मत्वरम्—शीघ्रमेव । चर्म०—चर्म
च निस्त्रिश च चर्मनिस्त्रिशे (द्व० स०) चर्मनिस्त्रिशे हस्तयो ययो तो
(बहु०) । निस्त्रिश—निर्गन्त्रिशद्व्योऽङ्गुलिभ्य इति निस् + त्रिशद् +
डच् ॥ १० ॥

ओर जो अपने अधरोष्ठ को स्पष्ट रूप से दाँती से दबाए हुए उसी प्रकार
मरण भय की चिन्ता से रहित मे मृगशावक अपने तेज से मेरे भाई पर
शीघ्रता से आक्रमण कर रहे हैं जैसे हरिण के बच्चे सिंह पर ॥ १० ॥

यह युधिष्ठिर दोनों कुमारों के पास जाकर उन्हें रोब रहा है ।

नीचोऽहमेव विपरीतमति कथं वा
 रोषं परित्यजतमद्य नयानयज्ञी ।
 द्यूताधिकारमवमानममृष्यमाणा
 सत्त्वाधिकेषु वचनीयपराक्रमा स्यु ॥ ११ ॥

अन्वय — विपरीतमति, नीच कथम् अद्य नयानयज्ञी रोषं परित्यजतम्, द्यूताधिकारम् अवमानम् अमृष्यमाणा सत्त्वाधिकेषु वचनीयपराक्रमा स्यु. ॥ ११ ॥

संस्कृत टीका—नकुलसहृदेवी निवारयता धमजेन सभाया पुरा यदुक्तं वाक्य, तत् प्रकृतानुगुण्यात् स्मरति—नीच इति । विपरीतमति = विपरीता आत्मयोगक्षेमप्रतिकूला मति द्यूतगोचरा यस्य स तथाभूत, अहमेव = युधिष्ठिर एव, नीच = अधम. भवामीति शेषः । वा = अन्यथाशब्दार्थ, नीचत्वाभावे इत्यर्थ, कथ = केन हेतुना, अद्य = इदानी, द्यूतपराजितसमुदाचारानुष्ठानयोग्येऽस्मिन् समये इत्यर्थः । नयानयज्ञी = नयम् अनयञ्च जानीत, द्यूतनीत्यनीतिवेदिनी, युवा, रोष = क्रोध, परित्यजत = परिजहीतं, द्यूत विजितैर्नामेदृश परिभवः सोढव्य एव, न तु पराक्रमेण सद्य प्रतिकर्तुं योग्य इति भावः । पराक्रमेण को दोषस्तत्राह—द्यूताधिकारं = द्यूतस्य-कृतवस्य अधिकार—क्रीडासामर्थ्यम्, द्यूतेन अधिक्रियते प्रस्तूयत इति द्यूताधिकार, त द्यूतनिमित्तकमित्यर्थ, अवमानम् = अपमानम्, अमृष्यमाणा = असहमाना, अर्थाद् विक्रमेण प्रतिकर्तुं सद्यो व्यवस्यन्त पुरुषाः, सत्त्वाधिकेषु = सत्त्वं पराक्रम तेषाधिकेषु महापराक्रमशालिषु मध्ये, वचनीयपराक्रमाः = वचनीय अकालप्रयोगान्निच पराक्रम. विक्रमो येषां ते तथोक्ता; स्युः = (केन प्रकारेण) भवेयुः । वसन्ततिलका छन्द ॥ ११ ॥

मैं ही नीच हूँ नहीं तो मेरी मति विपरीत कैसे हो जाती । तुम दोनों नीति और अनिति को जानते हो अतः आज रोष को त्याग दो । अन्यथा द्यूतजन्य अपकार को न सहने के कारण हम लोग ही अधिक पराक्रमशील लोगों के द्वारा निन्दनीय पराक्रम वाले माने जायेंगे ॥ ११ ॥

इति । एष गान्धारराजः,

अक्षान् क्षिपन् स किनवः प्रहसन् सगर्वं
सङ्कोचयन्निव मुद द्विपता स्वकीर्त्या ।

स्वैरामनो द्रुपदराजसुता रुदन्ती

काक्षेण पश्यति लिखत्यपि गा नयजः ॥ १२ ॥

अन्वयः—कितवः स अक्षान् क्षिपन् सगर्वं प्रहसन् स्वकीर्त्या द्विपतां मुदं सङ्कोचयन्निव स्वैरामनः (सन्) रुदन्ती द्रुपदराजसुता काक्षेण पश्यति नयजः स गामपि लिखति ॥ १२ ॥

संस्कृत टीका—गान्धारराजं विदिमष्टि—अक्षानिति । कितवः=घृत, स=शकुनि, अक्षान्=पातकान्, क्षिपन्=प्रसारयन्, सगर्वं=गर्वेण सहित सदपं, प्रहसन्=हास्य कुर्वन्, स्वकीर्त्या=स्वस्य कीर्तिः तथा, आत्मयशसा अक्षदेवननैपुण्यजन्मना, द्विपतां=शत्रूणां, पाण्डवानां, मुदं=हर्षं, मोदनम् इति मुदं ताम्, सङ्कोचयन्निव=निवारयन्निव, स्वैरामनं=स्वैर स्वच्छन्दम् आसनम्—उपवेशनस्थानं यस्य स, यद्वा—स्वच्छन्दम् अगणितगुरुजनसान्निध्यम् आसनम् उपवेशनप्रकारो यस्य स, स्वच्छन्दोपविष्टः सन्, रुदन्ती=अश्रुमुञ्चन्तीम्, द्रुपदराजसुता=द्रुपदाना राज्ञा, तस्य सुता, ताम्—द्रुपराजकुमारी द्रौपदी, काक्षेण=अपाङ्गेन, अक्षिकोणेन, पश्यति=अवलोकयति, नयजः=नीतिज्ञः, सः=मम मातुलः, शकुनिरित्ययं, गामपि=(कुत्सितेन पशवेन) भूमिं, लिखति च=उट्टङ्कयति ॥ १२ ॥

टिप्पणी—काक्षेण—अक्षिकोणेन पश्यति । अत्रगणपतिशास्त्रिणः—

यह गान्धारराज है,

जो जुए में तथा कूटनीति में कुशल गर्व के साथ हँसते हुए, पाँसों को फेंकते हुए तथा अपनी कीर्ति से शत्रुओं के हर्ष को सकुचित करते हुए अपने आसन पर बैठे-बैठे रोती हुई द्रौपदी को तिरछी दृष्टि से देखता है और पृथ्वी पर (पाँसे से) रेखा भी खींच रहा है (अथवा अपनी कुत्सित दृष्टि से पृथ्वी पर रेखाएँ खींच रहा है) ॥ १२ ॥

एतावाचार्यपितामहौ ता दृष्ट्वा लज्जायमानौ पटान्तान्तहितमुखी
स्थितौ । अहो अस्य वर्णाढ्यता । अहो भावोपपन्नता । अहो युक्त
लेखता । सुव्यक्तमालिखितोऽयं चित्रपट । प्रीतोऽस्मि । कोऽयं ।

काञ्चुकीय — जयतु महाराज ।

दुर्योधन — बादरायण ! अनीयता स विहगवाहनमात्रविस्मिता
दूत ।

‘अक्षम् इन्द्रिय तन्व प्रकृतेऽक्षिरूपम् । ईयदक्ष काक्षम्, ‘ईयदर्थे’ पा० सू०
६३ १०५ इति को कादेश ।’ लिखत्यपि सा—अत्र ‘लिखत्यभिस्र’ इत्यव
पाठ । सम्मुखस्थमाकाशमित्यर्थ, आकाशे दृष्टि स्थाप्य स्वाभिप्राय
निश्चिनोतीवेति भाव । नयज्ञ — ‘नयो नीतिद्यूतविशेषयो’ इति
मेदिनी ॥ १२ ॥

संस्कृत टीका—ता = द्रौपदीमित्यर्थ, लज्जायमानौ = लज्जामनुभव
न्तौ । पटान्तान्तहितमुखी = वस्त्राप्रच्छन्नवदनौ, अहो = इति दलाघापाम,
अस्य = चित्रपटस्य, वर्णाढ्यता = वर्णसम्पन्नता, भावोपपन्नता = भावेन
स्वभावेन आलेखनीयवस्तुगतेन, चित्रकाराभिप्रायेण वा उपपन्नता सवादिता
युक्तलेखता = युक्त अनूनातिरिक्त लेखी लेखन यस्मिन् स युक्तलेख तन्म्य
भावस्तत्ता लेखीविन्यम् ।

बादरायणेत्यादि । विहगवाहनमात्रविस्मित = विहग पक्षी गहड-
तद्रूप वाहन तन्मात्रेण विस्मित गवित, दूत = सन्देशहर, कृष्ण इति

यह हैं आचार्य और पितामह जो द्रौपदी को देखकर लज्जित होत हुए
वस्त्रों में मुँह छुपाये हुए हैं । इस चित्र के रंगों की श्रेष्ठता प्रशंसनीय है,
अभिव्यञ्जना और समुचित चित्रकारी (कितनी प्रभावमयी है) कितनी
भावों की सुस्पष्टता है इस चित्रपट में । मैं प्रसन्न हो गया हूँ । कोई है यहाँ ?

काञ्चुकी—महाराज की जय हो ।

दुर्योधन—बादरायण ! उस दूत को ले आओ जिनका वाहन पक्षी
(गहड) है और जो आश्चर्यान्वित हो रहा है ।

काञ्चुकीय — यदाज्ञापयति महाराज । (निष्क्रान्त)

दुर्योधन — वयस्य कर्ण !

प्राप्त किलाद्य वचनादिह पाण्डवाना

दौत्येन भृत्य इव कृष्णमति स कृष्ण ।

श्रोतु सखे ! त्वमपि सज्जय कर्ण ! कर्णौ

नारीमृदूनि वचनानि युधिष्ठिरस्य ॥ १३ ॥

यावत् ।

टिप्पणी—पटान्तान्त०—पटस्य बस्त्रस्य अन्तेन अञ्चलेन अन्तहिते आच्छादिते मुखे याम्या तादृशी । वर्णाढ्यता—वर्णाना रञ्जकद्रव्याणाम् आढ्यता सम्पन्नता । वर्णस्य आढ्यता (प० त०) । आढ्यता—अ + ष्य + का = आढ्य, तस्य भाव आढ्यता, आढ्य + तल् । भावोपपन्नता—भावेन उपपन्नता (तृ० त०) । उपपन्न — उप + पद् + क्त, उपपन्न तस्य भावे तल् । विहग०—विहायसा गच्छतीति विहग (गम् + ङ) स एव वाहन यस्य विहगवाहनम् (कर्म०), तदेव विहगवाहनमात्र (निय०), तेन विस्मित (तृ० त०) ।

अन्वय — अद्य इह कृष्णमति स कृष्ण पाण्डवानां वचनात् दौत्येन भृत्य इव प्राप्त किल । हे सखे ! कर्ण त्वमपि नारीमृदूनि युधिष्ठिरस्य वचनानि श्रोतु कर्णौ सज्जय ॥ १३ ॥

संस्कृत टीका—अद्य = सम्प्रति, स कृष्णमति = मलिनबुद्धि, कृष्णा कलुषिता मति बुद्धि यस्य स स = प्रसिद्ध कृष्ण = धासुदेव, पाण्डवानां = पाण्डुपुत्राणां, वचनात् = वचसा, दौत्येन = दूतस्य भाव, तेन

काञ्चुकी—जैसी महाराज की आज्ञा । (प्रस्थान)

दुर्योधन—मित्र कर्ण !

पाण्डवों के कहने पर यह कृष्ण बुद्धि कृष्ण यहाँ दूत बनकर सेवक के समान आया है । अतः हे कर्ण, तुम भी नारियो के समान क्रोमल युधिष्ठिर की वाणी को सुनने के लिये अपने कानों को तैयार रखो ॥ १३ ॥

(ततः प्रविशति वासुदेवः काञ्चुकीयश्च ।)

वासुदेव — अद्य खलु धर्मराजवचनाद् धनञ्जयाकृत्रिममित्रतया
आहवदर्पमनुक्तग्राहिण मुयोधन प्रति मयाप्यनुचितदौत्यसमयो-
ऽनुष्ठितः । अद्य च,

दूतकार्येण, भृत्यः इव = दासः इव, प्राप्ताः, किल = सम्प्राप्त, अतः हे सखे ! =
मित्र ! कर्ण = राधेय, त्वमपि = भवानपि, युधिष्ठिरस्य = पाण्डवज्येष्ठस्य,
नारीमृदूनि = स्त्रीवचनविकलवानि, नारी इव मृदूनि, वचनानि = स्त्रीवत्
कोमलानि वचासि, श्रोतुं = आकर्णयितुं, कर्णौ = निजश्रोत्रे, सञ्जय =
प्रसञ्जय । अत्र उपमालङ्कारः । वसन्ततिलकावृतम् ॥ १३ ॥

टिप्पणी—कृष्णमतिः—कृष्णा मतिर्यस्य सः (बहु०) । भृत्यः—विभ्रति
इति भृत्यः—भृ + क्यप्—तुक् च । दौत्येन—दूतस्य भावः दौत्यम्—दूत +
प्यञ् । नारीमृदूनि—नार्या वचनानि इव मृदूनि (मध्यमपद०) ॥ १३ ॥

सस्कृत टीका—धर्मराजवचनात् = धर्मराजस्य युधिष्ठिरस्य वचनात्,
धनञ्जयाकृत्रिममित्रतया च = धनञ्जयस्य अर्जुनस्य अकृत्रिमं निरुपाधिकं
मित्रं सुहृत् तस्य भावस्तथा (स्वाभाविकी मित्रता), तथा च, आहवदर्पम् =
आहवे मुद्धे दर्पः अहङ्कारो यस्य तम्, अनुक्तग्राहिणम् = उक्तावधीरिणम्,
मयापि, अनुचितदौत्यसमयः अनुष्ठितः = अननुष्ठितपूर्वानुचितकर्मणापि कृतः,
समयशब्द आचारे सङ्केते वा ।

टिप्पणी — आहवदर्पम्—आहूयन्तेऽरयोऽत्र इति आहवः रणः,
आहवस्य दर्पः यस्य तम् (बहु०), आ + ह्वे + अप् (सम्प्रसारणे
शुण), दृप् + घञ् = अच्, वा । अनुक्तग्राहिणम्—उक्तं न गृह्णाति उक्तं
अवधीरयति इति अनुक्तग्राही तम् । मुयोधनम्—मुधेन मुधयतेऽसौ, सुयो-

(तव वासुदेव और काञ्चुकी प्रवेश करते हैं)

वासुदेव—धर्मराज युधिष्ठिर के कहने पर और धनजय (अर्जुन) की
सच्ची मित्रता के कारण मैं आज समराभिमानी और दूसरो की बात न
मानने वाले दुर्योधन के पास अनुचित दूतकार्य के लिए आया हूँ ।

कृष्णापराभवभुवा रिपुवाहिनीभ—

कुम्भस्थलीदलनतीक्ष्णगदाधरस्य ।

भीमस्य कोपान्निना युधि पार्यंपत्रि—

चण्डानिलैश्च कुस्वशवन विनष्टम् ॥ १४ ॥

धन—सु + युग + युक्. न् । अनुचितदोहसमयः—न उचित
अनुचित दोहस्य समय आचार, दोहसमय (प० त०) अनुचित ।
अनुष्ठित—अनु + स्था + क्त ।

अन्वय—कृष्णापराभवभुवा रिपुवाहिनीभकुम्भस्थलीदलनतीक्ष्णगदा-
धरस्य भीमस्य कोपान्निना पार्यंपत्रिचण्डानिलैश्च कुस्वशवन युधि
विनष्टम् ॥ १४ ॥

संस्कृत टीका—कृष्णापराभवभुवा = कृष्णायाः शीघ्राः पराभवः टिर-
स्कारः, तस्मात् भू उच्यति तेन, द्रुपदरत्नजातमानोत्पन्नेन रिपुवाहिनीभ-
कुम्भस्थलीदलनतीक्ष्णगदाधरस्य = रिपुवाहिनीमाना रिपुवाहिनी, रिपुसैन्य,
तत्रत्यानाम् इमाना शत्रुसेनाजाना कुम्भस्थल्या मस्तकम्पनस्य दलने पातने
तीक्ष्ण निर्देशा या यदा आमुप्रविशेत् तस्या धरस्य धारयितु भीमस्य =
वानुपुत्रस्य, कोपान्निना = कोपान्निना, कोप एव शिबी, तेन क्रोधवह्निना,
पार्यंपत्रिचण्डानिलैश्च = पार्यंस्य अतुंस्य पत्रिण वाणा एव चण्डानिला =
तीक्ष्णवायव, तैश्च, अतुंसवाणैश्चण्डमारुतैश्च, कुस्वशवन = कृष्णा वध
कुलमेव वगो बहुशास्त्राद् वपुः, तस्य वनम्, कौरवारण्यम्, युधि = सप्राने,
महामारुत, विनष्टम् = नाग प्राणम् पश्यामीति शेष । भाविन्वेनाभिमतस्य
विनाशस्य मृतत्ववचनम् अचिरावस्यम्भावघातनायम् । अत्र माङ्गल्यका-
लद्वारा । वसन्ततिलकावृणम् ॥ १४ ॥

शीघ्रों के अपमान से उत्पन्न होने वाली, शत्रु की सेना के मरणों के
गण्डस्थलों को विधोष करने वाली तीक्ष्ण गदा का धारण करने वाले भीम
की क्रोधवह्नि से तथा अतुंस के वाणों की प्रचण्ड वानु के शीकों से युद्ध में
कुस्वशकान्त नष्ट हो जाया ॥ १४ ॥

इदं सुयोधनशिविरम् । इह हि. —

आवासा पाथिवाना सुरपुरसदृशा स्वच्छन्दविहिता

विस्तीर्णा शस्त्रशाला बहुविधकरणैः शस्त्रैरुपचिता ।

हेपन्ते मन्दुरास्थास्तुरगवरघटा वृहन्ति करिण

ऐश्वर्यं स्फीतमेतत् स्वजनपरिभवादासन्नविलयम् ॥ १५ ॥

टिप्पणी—वाहिनी—वाह अस्ति अस्या इति, वाह + इनि + डीप । कोपशिखिना—शिखा अस्यास्तोति शिखी (शिखा + इनि), कोप एव शिखी अग्नि कोपशिखी, तेन । पार्थ —पृथाया अपत्य पुमान्, पार्थ —पृथा + अण् । पत्र पक्ष अस्यास्तोति पत्री (पत्र + इनि) । चण्डानिला —चण्डाश्च ते अनिला चण्डानिला ॥ १४ ॥

अन्वय —सुरपुरसदृशा स्वच्छन्दविहिता पाथिवाना आवासा बहुविधकरणैः शस्त्रैः उपचिता विस्तीर्णा शस्त्रशाला मन्दुरस्था. तुरगवरघटा हेपन्ते करिण वृहन्ति एतत् स्फीत ऐश्वर्यं स्वजनपरिभवात् आसन्नविलयम् दृश्यते ॥ १५ ॥

संस्कृत टीका—सुरपुरसदृशा = अमरपुरतुल्या, सुराणा देवाना पुराणि नगराणि तं सदृशा तुल्या, स्वच्छन्दविहिता = स्वतन्त्रनिर्मिता, स्वच्छन्देन स्वेच्छया विहिता निर्मिता, पाथिवाना = पृथिव्या ईश्वरा, तेषा वृषाणाम्, आवासा = निवासस्थानानि बहुविधकरणैः = बहुप्रकारसाधनैः, शस्त्रैः = आयुधैः, उपचिता = वृद्धिज्ञता, विस्तीर्णा = विशाला शस्त्रशाला = शस्त्राणाम् आयुधानां शाला गृहाणि, आयुधानाराणि, मन्दुरस्था = मन्दुराया वाजिशालाया अश्वशालास्था, तुरगवरघटा = अश्वश्रेष्ठ

यह सुयोधन की छावनी है। यहाँ पर राजाश्री के निवास स्थान अमरावती के समान स्वच्छन्द बने हैं। विशाल शस्त्रशाला अनेक प्रकार के शस्त्रों से सगृहीत है। अश्वशाला में श्रेष्ठ अश्व हिनहिना रहे हैं और गजशाला में गजराज चिगधाड रहे हैं। यह विशाल वैभव केवल आत्मीयजनों के अनादर करने के कारण ही नष्ट होने के कगार पर है ॥ १५ ॥

भो ।

दुष्टवादी गुणद्वेषी शठ स्वजननिर्दय ।

सुयोधनो हि मा दृष्ट्वा नैव कार्यं करिष्यति ॥ १६ ॥

समूहा, हेपन्ते = गन्दायन्ते, ह्लेषते, करिण = गजा, वृंहन्ति = गर्जन्ति, एतत् = पुरतो दृश्यमानम्, स्फीत = प्रवृद्धम् ऐश्वर्यम् = गृहपुरगादिवैभव-मित्यर्थं, स्वजनपरिमवात् = स्वजनानां स्वबन्धुना परिभवति रस्कार, तस्मात् कुटुम्बानादरात्, आसन्नविलय = आसन्नो विलयो यस्य तत्, विनाशोन्मुख, दृश्यते इति शेषः । अत्र उपमालङ्कारः । सुवदनावृत्तम् । तल्लक्षणम्—ज्ञेया सप्ताश्वपटभिमरभनययुता म्लौ ग सुवदना ॥ १५ ॥

टिप्पणी—मन्दुरस्या—‘वाजिशाला तु मन्दुरा’ इत्यमरः । तुरगवर-घटा—तुरेण वेगेन गच्छतीति तुरग, तुरगेषु वरा तुरगवरा. (स० त०), तेषां घटा समूहा । हेपन्ते—आश्वानां हेपा ह्लेषा तु निस्वन’ इत्यमरः । वृंहन्ति—वृहणं करिणजितमित्यमरः । स्फीतम्—स्फाय (वृद्धि करण) + क्त, स्फीभावः । इह तृतीयपादान्तलघोर्वैकल्पिकं गुह्यत्वं बोद्धव्यम् ॥ १५ ॥

अन्वयः—दुष्टवादी गुणद्वेषी शठ स्वजननिर्दय सुयोधन मा दृष्ट्वा हि कार्यं नैव करिष्यति ॥ १६ ॥

संस्कृत टीका—दुष्टवादी = अप्रियवक्ता, दुष्ट कर्णकटु वदति भाषते इति दुष्टवादी, गुणद्वेषी = गुणान् सद्भावान् द्वेषति इति गुणद्वेषी क्षमादि-गुणद्वेष्या शठ = धूर्त स्वजननिर्दय = स्वजनेषु स्वकीयेषु जनेषु निर्दय दयारहितः, निष्कृत, सुयोधन = दुर्योधन, माम् = केशव, दृष्ट्वा = अवलोक्य, हि = इति निश्चये, कार्यं = कौरवपाण्डवसन्धिरूप प्रयोजनम्, नैव करिष्यति = कथमपि न विद्यास्यति । अनुष्टुप्छन्दः ॥ १६ ॥

टिप्पणी—दुष्टवादी—दुष्ट वदितुं शील यस्य स (उप० स०) । गुण-

अरे ।

यह कटुभाषी, गुणद्वेषी, स्वजनो के प्रति क्रूर दुरात्मा दुर्योधन मुझे देखकर कभी भी कार्य (कर्तव्य) नहीं करेगा ॥ १६ ॥

भो बादरायण ! किं प्रवेष्टव्यम् ।।

काञ्चुकौयः—अथ किमथ किम् । प्रवेष्टुमर्हति पद्मनाभ ।

वासुदेव—(प्रविश्य) कथं कथं मा दृष्ट्वा सभ्रान्ता सर्व-
क्षत्रियाः । अलमल सभ्रमेण । स्वैरमासता भवन्तः ।

दुर्योधन—कथं कथं केशव दृष्ट्वा सभ्रान्ताः सर्वक्षत्रियाः ।
अलमल सभ्रमेण । स्मरणीय पूर्वमाश्रावितो दण्ड । नन्वहमाज्ञप्ता ।

वासुदेव—भोः सुयोधन ! किमास्से ।

दुर्योधन—(भासनात् पतित्वा आत्मगमनम्) सुव्यक्त प्राप्त एव

द्वेषी—गुणेषु द्वेषो यस्य सः (बहु०) गुणविरोधी । स्वजननिर्दयः—निर्गता
दया यस्मात् स ('निरादयाः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या' इति पञ्चमीसमास) ।

सस्कृत टीका—भोः—इति विषादसूचनार्थम् । किं मया प्रवेष्टव्यम्,
अथ किम् अथ किम्—अङ्गीकारे द्विहक्तिः सभ्रमे वा । पद्मनाभ = पद्म
कमलं नामो यस्य (बहु०); क्षीरसागरशयनसमये तस्य नाभेः सकमलात् ।
सभ्रान्ताः—प्रस्तुत्याने व्यथाः । अहम्—इति स्वाज्ञानुष्ठापननिवन्धित्व
द्योतयति । किमास्से—कुशली वर्तसे किमित्यर्थः । कुशलप्रश्नसमुदाचार
ईदृशो भासनाटकेषूपलभ्यते ।

हे बादरायण ! क्या प्रवेश करना चाहिए ?

काञ्चुकी—हाँ अवश्य ! पद्मनाभ प्रवेश करें (प्रवेश करने के
योग्य) हैं ।

वासुदेव—(प्रवेश करके) अरे यह क्या ! सभी क्षत्रिय मुझे देखकर
वयो सभ्रान्त हो गये हैं ! अरे आप सभ्रम न करें । आप लोग स्वच्छन्द
बैठिये ।

दुर्योधन—अरे ! केशव को देखकर क्यों सभ्रान्त हो गये ! सभ्रम
न करें । क्या तुम्हे पूर्वघोषित दण्डाज्ञा भूल गयी । निश्चय ही आज्ञा करने
वाला मैं हूँ ।

वासुदेव—(पास जाकर) हे दुर्योधन ! आप कैसे बंटे हैं ?

केशव ।

उत्साहेन मतिं कृत्वाप्यासीनोऽस्मि समाहितः ।

केशवस्य प्रभावेण चलितोऽस्म्यासनादहम् ॥ १७ ॥

अहो बहुमायोऽयं दूतः । (प्रकाशम्) भो दूत ! एतदासनास्यताम् ।

आसनात् पतित्वेति । पतित्वा—अत्र पतनं च ससम्भ्रमं चलनम्, सम्भ्रमे च केशवप्राप्तिज्ञानं निमित्तम् ।

अन्वयः—उत्साहेन मतिं कृत्वा अपि समाहितः (सन्) आसीनोऽस्मि । केशवस्य प्रभावेण अहम् आसनात् चालितोऽस्मि ॥ १६ ॥

संस्कृत टीका—अत्र आसनादचलने प्रयत्नमास्थितस्यापि मम कृष्ण-प्राप्तिज्ञानमात्रेण ससम्भ्रमं यच्चलन मञ्जात तत् कृष्णस्य माहात्म्या-दित्याह = उत्साहेनेति । उत्साहेन = उत्साहगुणयुक्तेन, अविशङ्कयेत्यर्थः, मतिम् = बुद्धि, अनुत्थाननिश्चयम्, कृत्वा = विधाय, अपि = च समाहित (सन्) = अविक्षिप्तचित्त, सावधान सन्, आसीनोऽस्मि = उपविष्टोऽस्मि । (तथापि अहम्) केशवस्य = नारायणस्य, प्रभावेण = माहात्म्येन, तेजोविशेषे णेऽप्यर्थ, अहम् = दुर्योधन, आसनात् = निजोपवेशनस्थानात्, सिंहासना-दित्यर्थः, चलितोऽस्मि = सम्भ्रमोत्थितोऽस्मि ॥ अनुष्टुप्छन्द ॥ १७ ॥

टिप्पणी—उत्साहेन—उत् = सह, + घञ् । मतिं—मन् + क्तिन् । समा-हित—सम् + आ + धा + क्त ।

संस्कृत टीका—अहो इत्यादि । बहुमायं = बह्वी बहुप्रकारा माया गाम्बरी यस्य सः ।

दुर्योधन—(आसन से गिरकर, स्वगत ही) स्पष्ट है कि केशव आ गये ।

बड़े उत्साह, के साथ संकल्प करके मैं सावधान होकर बैठा था, परन्तु केशव के प्रभाव से मैं आसन से विचलित हो गया ॥ १७ ॥

अरे ! यह दूत बहुत मायावी (जादूगर) है । (प्रकट में) भो दूत ! इस आसन पर बैठो ।

वासुदेव — आचार्यं । आस्यताम् । गाङ्गेयप्रमुखा राजान् ।
स्वैरमासता भवन्त । वयमप्युपविशाम । (उपविश्य) अहो दर्शनीयोज्ज
चित्रपट । मा तावत् । द्रौपदीकेशधर्पणमत्रालिखितम् ।

अहो नु खलु

सुयोधनोऽयं स्वजनावमान पराक्रम पश्यति बालिशत्वात् ।

की नाम लोके स्वयमात्मदोषमुद्घाटयेन्नष्टघृण सभासु ॥ १८ ॥

प्रत्युत्थानापचारेणात्मानं सम्भावय द्रोणभीष्मादीन् प्रतिवत्कुर्वन्नाह—
आचार्येत्यादि । गाङ्गेयप्रमुखा = भीष्ममुख्या मुख प्रगत मुख्य ।
आपातदशनप्रवृत्त द्रौपदीकेशाकपणलिखितचित्रपटप्रेक्षणसलग्नदुर्योधन केशव
आक्षिपति—मा तावदिति । अहो नु खलु = इति आश्चर्यम् ।

टिप्पणी—बहुमाय—बह्वी माया यस्य (बहु०) । गाङ्गेयप्रमुखा—
गाङ्गेय भीष्म प्रमुखो येषां ते ।

अन्वय—अयं सुयोधन बलिशत्वात् स्वजनावमान पराक्रम पश्यति ।
लोके की नाम नष्टघृण सभासु स्वयम् आत्मदोषम् उद्घाटयेत् ॥ १८ ॥

संस्कृत टीका—अयं = एष, दुष्टमति, सुयोधन = दुर्योधन, बालि
शत्वात् = बालिश मूर्खं तस्य भाव बालिशत्व मौर्ख्यम्, तस्मात् मूर्खत्वात्,
स्वजनावमानम् = स्वबन्धूनाम् अवमानम् अपमानम्, आत्मीयजनावमानम्,
पराक्रम पश्यति = शीर्षं (मन्यते), अवलोकयति, विचारयतीत्यर्थ, लोके =
भुवने, की नाम = बुद्धिमान् कोऽन्य, नष्टघृण = नष्टा अपगता घृणा दया
यस्य स, विगतकृप, निर्जुगुप्स, सभासु = राजपरिषत्सु, स्वयं = स्वेन-

वासुदेव—आचार्य । बैठिये । भीष्म प्रभृति राजाओ ।

आप सब स्वेच्छा से बैठ जाइये । हम भी बठ जाते हैं । (बैठकर)
अहो ! यह चित्रपट दर्शनीय है । परन्तु रहन दो, इसमें तो द्रौपदी के
केशवस्त्राकपण का चित्र अंकित है । अहो निस्सदेह !

दुर्योधन मूर्खता के कारण अपने बन्धुओं को अपमान को पराक्रम समझता
है । नहीं तो इस सप्ताह में कौन ऐसा निर्लज्ज व्यक्ति है, कि जो अपने
दोषों को इस प्रकार सभा के बीच उद्घाटित करेगा ? ॥ १८ ॥

वाः अपनीयतामेष चित्रपटः ।

दुर्योधनः—बादरायण ! अपनीयतां किल चित्रपटः ।

काञ्चुकीयः—यज्ञज्ञापयति महाराजः । (इयनञ्जि ।)

दुर्योधनः—भो दूत !

धर्मात्मजो वानुसुतश्च भीमो

भ्राताजुंनो मे त्रिदशेन्द्रसूनुः ।

यमो च तावद्विबुधो विनीतो

सर्वे समृत्त्याः कुशलोपपन्नाः ॥ १९ ॥

वेत्यर्थं, आत्मनोऽर्थं—आत्मनः स्वस्य दोष पापम्, उद्घाटयेद्—प्रकाशयेद् ।
दुर्योधनं विहाय कोऽन्यः जनः एवंविधं कार्यं कर्तुं शक्नोतीति
विवेकः ॥ १८ ॥

टिप्पणी—वाग्विशस्वात्—वाङ्+इत् वाङि (वृद्धि) स्वति इति
वाग्विशः, वाङि+शो+क—ङ—त । वाग्विशस्वम् ।
आत्मनोऽर्थं—आत्मना स्वस्य दोषम्, दुर्+घञ् । उद्घाटयेत्—उद्+
घट्+णिच्+विञ्जितिः ॥ १८ ॥

अन्वयः—धर्मात्मजः वानुसुतः भीमश्च त्रिदशेन्द्रसूनुः मे भ्राता अजुंनः च
विनीतो अस्मिन्नुतो तो यमो च समृत्त्याः सर्वे कुशलोपपन्नाः (सन्ति) ॥ १९ ॥

संस्कृत टीका—दुर्योधनः दूतं कुशलवार्तां पृच्छति—धर्मात्मज इत्यादि ।
भोः दूत ! धर्मात्मजः=धर्मस्य धर्मस्य आत्मजः सुतः धर्मपुत्रः, बुध्विन्दरः,
वानुसुतः=वागोः पवनस्य सुतः पुत्रः, भीमः च=दुर्कोदरः, त्रिदशेन्द्रसूनुः=

आह ! दूर करिटे इत विचरट को ।

दुर्योधन—बादरायण ! इत विचरट को हटो दो ।

काञ्चुकी—महाराज की ओ आजा ! (से आजा है) ।

दुर्योधन—हे दूत !

धर्मपुत्र बुध्विन्दर, वानुपुत्र भीम, मेरे भ्राता सुरेन्द्रसुत अजुंन और
अस्मिन्नुतार के दोनो विनयशील पुत्र नकुल और सहदेव, सब अपने सेवकों
सहित कुशल से तो हैं ? ॥ १९ ॥

वासुदेव.—सदृशमेतद् गान्धारीपुत्रस्य । अथ किमथ किम् । कुशलिन सर्वे । भवतो राज्ये शरीरे बाह्याभ्यन्तरे च कुशलमनामय च पृष्ट्वा विज्ञापयन्ति युधिष्ठिरादय पाण्डवा —

अनुभूत महद् दुःखं सपूर्णं समयः स च ।

अस्माकमपि धर्म्यं यद् दायार्थं तद् विभज्यताम् ॥ २० ॥

त्रिदशानामिन्द्र तस्य सूनुः, देवेन्द्रपुत्र, मे = मम, भ्राता = बन्धु; अजुंन च, विनीती = विनम्री, अश्विसुती = अश्विनोः सुती, अश्विनीकुमारपुत्री, ती च, यमो = सहजातो, नकुलसहदेवावित्यर्थं, सभृत्या = सपरिजना, सर्वे = अशेषा, कुशलोपपन्ना = कुशलं कल्याणं, उपपन्ना युक्ताः, सकुशला- सन्ति किमिति शेष, इह प्रश्नकाकु = उपजाति वृत्तम् ॥ १९ ॥

टिप्पणी—त्रिदशेन्द्रसूनु—तिस्रः दशा. अवस्था बाल्यकेशोरप्रौढावस्था. येषां ते त्रिदशा. देवा, तेषाम् इन्द्र अधिपति, तस्य सूनुः । अश्विसुती— अश्विनोः सुती (प० त०)

सस्कृत टीका—सदृशमित्यादि । अथ किम् = इत्यङ्गीकारे । बाह्याभ्यन्तरे = शरीरे च बहिर्भवे आभ्यन्तरभवे देहे च । तत्राभ्यन्तरं शरीरं मन । अनामयम् = आरोग्यम् ।

टिप्पणी—बाह्याभ्यन्तरे—बाह्यञ्च आभ्यन्तरं च तयोः समाहारः बाह्याभ्यन्तरम् । अनामयम्—न आमय (नञ् स०) ।

अन्वयः—महद् दुःखम् अनुभूतं स च समयः सम्पूर्णः । अस्माकमपि यद् धर्म्यं पद दायार्थं (अस्ति) तद् विभज्यताम् ॥ २० ॥

वासुदेव—गान्धारी पुत्र के लिए ऐसा (व्यवहार) उचित ही है । हाँ अवश्य । वे सब कुशल से हैं । आपके शरीर और राज्य की बाहरी तथा भीतरी कुशलता एवं आरोग्य को पूँछकर युधिष्ठिर प्रभृति पाण्डवों ने निवेदन किया है—

हम लोगो ने बहुत कष्ट उठाये हैं और उस (अज्ञातवास की) प्रतिज्ञा की अवधि समाप्त हो चुकी है, इसलिये अब हमारा न्यायोचित पैतृक राज्य बाँट दिया जावे ॥ २० ॥

इति ।

दुर्योधन — कथं कथं दायाद्यमिति ।

वने पितृव्यो मृगयाप्रसङ्गतः
कृतापराधो मुनिशापमाप्तवान् ।

तदाप्रभृत्येव स दारनिस्पृहः

परात्मजानां पितृतां कथं ब्रजेत् ॥ २१ ॥

संस्कृत टीका—दूतकार्यं कुर्वन् श्रीकृष्णः मुघ्रिष्ठिरादीनां वार्ताम् उद्देश्यं च दुर्योधनं प्रति प्रकाशयति—अनुभूतमित्यादि । महत् = अत्यन्तं, दुःसप्तम् = कष्टम्, अनुभूतम् = भुक्तम्, सः च समयः = त्रयोदशवर्ष-पर्यन्तं वनवासः, पूर्वनिर्धारितः कालः इत्यर्थः, सम्पूर्णः = पूर्णता गतः, घर्मातीतः । अस्माकमपि = पाण्डवानामपि, यत्, घर्म्यम् = घर्मादिनपेतम् घर्म्यं तदनुसारि, दायाद्यम् = दायः कुलघनं तद्रूपम् आद्यन् आदनीयं भोग्यं वस्तु, पितृविवयम्, विभज्यताम् = विभागं कृत्वा अस्मभ्यं देहीति विवेकः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ २० ॥

टिप्पणी—स च समयः—एकवर्षाज्ञातवासमङ्कुतसचिवो द्वादशवर्षवन-वाससङ्कृतः । घर्म्यम् = घर्मात् अनपेतम्, घर्मण प्राप्यम्, घर्म = शब् । दायाद्यम्—दायं विभजनीयं घनम्, दायाद्यम्, दाय + आ + दा + क, दायाद + ध्यच् । 'दायाद्यं = पितृविवयम्, दायः कुलघनं दायरूपम् अदनीयं भोग्यं वस्तु दायाद्यमिति व्युत्पत्तिः' इति गणपतिशास्त्रिणः ।

संस्कृत टीका—कथमित्यादि । इति शब्दानन्तरम् उच्यते इति शेषः । एवञ्च पार्यानां दायाद्यमेव नास्तीत्यर्थः ।

अन्वयः—पितृव्ये वने मृगया प्रसङ्गतः कृतापराधः (सन्) मुनिशापम् आप्तवान् तदा प्रभृत्येव दारनिस्पृहः सः परात्मजानां पितृतां कथं

दुर्योधन—कैसा ? पितृक-राज्य कैसा ?

मृगया में तत्पर हमारे चाचा पाण्डु को मुनि के प्रति (हत्या का) अपराध करने पर शाप लगा था । तभी मे वे स्त्रियों के प्रति विरक्त हो

व्रजेत् ॥ २१ ॥

संस्कृत टीका—अस्माभिर्भुज्यमानं पितृव्यस्य पाण्डोर्धनं पार्थान् प्रति तदा दायाध स्याद्, यदि पाण्डुस्तेषां पिता स्यात् । स तु तान् प्रति पितृव्यं न भवतीत्याह—वन इति । पितृव्य = पितृध्राता पाण्डु, वने = अरण्ये, मृगयाप्रसङ्गत = आखेटप्रसक्त्या, कृतापराध = कृत विहित अपराध, येन स मृगया सह, मृगरूपं धृत्वा क्रीडत किन्दमाख्यस्य मुनेर्वंघ्ररूप अपराध (सन्), मुनिशापम् = मुने किन्दमश्रुते शाप श्रापम् अर्थात् 'पत्नीससर्गे मरिष्यसी' त्येवमात्मक मुनेर्निग्रहवचनम्, आसवान् = प्राप्तवान् । तदा प्रभृत्येव = तत् समयादारभ्येव, स = मम पितृव्य पाण्डु, दारनिस्पृह = दारेभ्य निर्गता स्पृहा यस्य स, स्त्रीप्रसङ्ग रहित सजात इति शेष । अतः, परात्मजानां = परेषाम् अन्येषां धर्मं वायुशक्राश्विनाम् आत्मजा, पुत्रा परात्मजा, तेषाम्, परैर्जातानां पुत्राणाम्, पितृता = जनकभावम्, कथम् = केन प्रकारेण, व्रजेत् = प्राप्नुयात्, नैव व्रजेदित्यर्थः । वगस्थ वृत्तम् ॥ २१ ॥

टिप्पणी—दारनिस्पृह — न स्पृहा यस्य निस्पृह, दारेषु स्त्रीषु निस्पृह दारनिस्पृह पितृताम्—पितु भाव पितृता, पितृ + तल् + टाप । (क) कृतापराध—कस्मिंश्चित् समये किन्दमनामा महर्षि मृगरूपं धृत्वा क्रीडां चकार । तदा आखेटमन्विष्यमाण वृषति पाण्डु तौ दृष्ट्वा मृगञ्च मत्वा शरैर्जघान । स च महर्षि मृगरूपं विहाय तस्मै त्वमपि यदा स्त्रीप्रसङ्गं करिष्यसि तदा पञ्चत्व प्राप्स्यसीति' शापं ददौ (द्र० महाभा० आदि० १२३) ।

पितृता—पितृधनभावत्वं कथं व्रजेत् अर्थात् ये औरसा पुत्रा तेषामेव पितृव्यं धनं नान्यजातानामिति दुर्योधनस्याशयः । (ख) एक वार जगल मे मुनि किन्दम मृगरूपं मे अपनी प्रिया के साथ समोग मे सलग्न थे । राजा गये थे । अतः वह अन्य (देवादिको) के पुत्रो के साथ पितृत्व संबन्ध कैसे बना सकते हैं ? ॥ २१ ॥

वासुदेव —पुराविद भवन्त पृच्छामि ।

विचित्रवीर्यो विषयी विपत्ति क्षयेण यात पुनरम्बिकायाम् ।

व्यासेन जातो धृतराष्ट्र एष लभेत राज्य जनक कथ ते ॥ २२ ॥

पाण्डु ने मृगया करते हुए इस मृग का वध कर दिया । मरने से पहले ऋषि ने मृगरूप को त्यागकर उन्हें घाप दे दिया कि 'तुम ज्यो ही स्त्री का आलिङ्गन करोगे, तभी तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी।' अतः उन्होंने मृत्यु के भय से स्त्रीप्रसङ्ग का परित्याग कर दिया था । उनको पत्नी बुन्ती एव माद्री ने देवताओं से सन्तान प्राप्त की थी ।

अतः दुर्षोधन का आशय यह है कि तब पाण्डु उनके पिता कैसे बन सकते थे [द्र० महाभा० आदि० १२३] ।

संस्कृत टीका—पुरेत्यादि । पुराविद = पुरावृत्तम्,

टिप्पणी—पुराविद—पुराण वेत्ति इति पुराविद, यद्वा, पुरा वेत्तीति त प्रावेत्तारम् । पुरा + विद + क्विप् ।

अन्वय —विषयी विचित्रवीर्यं क्षयेण विपत्ति यात पुन व्यासेन अम्बिकाया जात एष धृतराष्ट्र ते जनक राज्य कथ लभेत ? ॥ २२ ॥

संस्कृत टीका—विषयी = विषयासक्त, विचित्रवीर्यं = तव पितामह, क्षयेण = क्षयरोगेण, विपत्ति = मृत्यु यात = प्राप्त, पुन = पश्चात् तत् मरणान्तर व्यासेन = महर्षिणा द्रुपदानेन, अम्बिकाया = विचित्रवीर्य-भार्यायाम्, जात = उत्पन्न, एष = अयम्, धृतराष्ट्र, ते = तव, जनक = पिता, राज्यम् = मण्डलाधिपत्यम्, अपितुर्विचित्रवीर्यस्य, कथ = केन न्यायेन, कथा नीत्येत्यर्थं, लभेत = प्राप्येत, सोऽप्यनधिकारीति भाव ॥ २२ ॥

वासुदेव—पूर्वजों के इतिहास को अच्छी तरह जानने वाले आप से मैं पूँछता हूँ—

बिलासी विचित्रवीर्य राजकुमार से (अस्त हो) मृत्यु को प्राप्त हुआ । तब व्यास के सयोग से उत्पन्न तुम्हारे पिता धृतराष्ट्र कैसे राज्य को प्राप्त कर सकते हैं ? ॥ २२ ॥

मा मा भवान्—

एव परस्परविरोधविवर्धनेन

शीघ्र भवेत् कुरुकुल नृप ! नामशेषम् ।

तत् कर्तुमर्हति भवानपकृष्य रोप

यत् त्वा युधिष्ठिरमुखा प्रणयाद् ब्रुवन्ति ॥ २३ ॥

टिप्पणी—विषयी—विषय अस्ति अस्य इति, विषय+इनि ।
विपत्ति—वि+पद+क्तिन् । कथ लभेत=यदि परात्मजो घृतराष्ट्रो
विचित्रवीर्यस्य क्षेत्रज पुत्र इति कृत्वा 'अपुत्रेण परक्षेत्रे निषोषोत्पादित
सुत । उभयोरप्यसौ रिक्थी विण्डदाता च घर्मत ॥' इति शास्त्रात्
क्षेत्रिरिक्थ लभेत, तर्हि पार्थ अपि क्षेत्रजा पाण्डो क्षेिभूतस्य रिक्थ
लभेरग्नेवेति भाव ॥ २२ ॥

संस्कृत टीका—मा मा भवान्=मा मा कथयत्वित्यर्थगम्यम् ।

अवन्य.—हे नृप ! एव परस्परविरोधविवर्धनेन शीघ्र कुरुकुल नामशेष
भवेत् । भवान् रोपम् अपकृष्य तत्कर्तुम् अर्हति, यत् त्वाम् युधिष्ठिरमुखाः
प्रणयात् ब्रुवन्ति ॥ २३ ॥

संस्कृत टीका—कथने दोषमाह—एव परस्परमिति । हे नृप=हे
राजन्, एवम्=इत्यम्, परस्परविरोधविवर्धनेन=परस्परस्य विरोध
वैरभात्, तस्य विवर्धन, तेन, मिय वैरभावेन (सर्वं) कुरुकुलम्=कुरूणा
कुल, कौरववश, शीघ्रम्=क्षिति, नामशेष=नष्टम्, नाम्ना सज्या
शेषम् अवशिष्टम्, भवेत्=स्यात्, सर्वस्य विनाशे नाम्न एवावशिष्ट-
त्वादिता भाव । तत्=तस्मात् कारणाद् भवान्=दुर्योधन, रोपम्=

नही, नहीं, ऐसा मत कहो ।

हे नृप ! इस प्रकार आपस में विरोध बढ़ाने से इस कुरुवश का शीघ्र ही
नामशेष रह जायगा । इसलिए क्रोध को छोड़कर आपको वही करना
उचित है जो युधिष्ठिर आदि पाण्डव प्रेम के कारण आपकी करने के लिए
कहते हैं ॥ २३ ॥

दुर्योधन — भो दूत ! न जानाति भवान् राज्यव्यवहारम् ।

राज्य नाम नृपात्मजै सहृदयैर्जित्वा रिपून् भुज्यते
तल्लोके न तु याच्यते न तु पुनर्दीनाय वा दीयते ।

काङ्क्षा चेन्नृपतित्वमाप्तुमचिरात् कुर्वन्तु ते साहस
स्वैर वा प्रविशन्तु शान्तमतिभिर्जुष्ट शमायाश्रमम् ॥ २४ ॥

अपमं अपकृष्य = विहाय नियम्य, तत्कर्तुं = विधातु, भवान् अहंति = योग्योऽस्ति । यत् = वाक्य, त्वा = भवन्तम्, युधिष्ठिरमुखा = युधिष्ठिर घमपुत्र, युधिष्ठिर मुखम् आदि येषां ते, प्रणयात् = स्नेहाद् प्रेमत्, श्रुवति = कथयति । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ २३ ॥

टिप्पणी — नृप — नृन् पातीति नृप भूपाल, तत्सम्बुद्धौ । नामशेष-
नाम एव शेषो यस्य तत् । अपकृष्य — अप + कृष + ल्यप् ।

संस्कृत टीका — भो दूतेत्यादि । भवानिति अराजकुलप्रसूतत्व
ज्ञातपति । अत एव राज्यव्यवहारानभिज्ञत्ववाचोयुक्तिरुपपन्नतरा । राजत्व
हि यदुकुत्रस्य स्रष्टित पूर्वपुरुषपयातिशापात् ।

अन्वय — सहृदयै नृपात्मजै रिपून् जित्वा राज्य नाम भुज्यते । लोके
तत् न तु याच्यते पुन न च वा दीनाय दीयते । नृपतित्वम् आप्तुं
काङ्क्षा चेत् ते अचिरात् साहस कुर्वन्तु वा शमाय शान्तमतिभिर् जुष्ट आश्रम
स्वैर प्रविशन्तु ॥ २४ ॥

संस्कृत टीका — सहृदयै = सवित्तै, समुन्नतचित्तैरित्यर्थ, नृपात्मजै =
नृपस्य औरसै पुत्रै, रिपून् = शत्रून् जित्वा = अभिभूय, राज्य नाम =

दुर्योधन — ऐ दूत ! तुम राज्य व्यवहार भी नहीं जानते ।

सहृदय राजपुत्र शत्रुओं को जीतकर राज्य का उपभोग करते हैं । राज्य
संसार में न तो मांगा ही जाता है (क्योंकि मांगने से नहीं मिलता) और न
ही दीन याचकों को दिया ही जाता है । यदि उन्हें राजत्व प्राप्त करने की
कामना है तो तुरन्त साहस से काम लें अथवा शम के सेवनार्थ वे शान्तबुद्धि
मुनियों से सेवित आश्रम में प्रवेश करें (अर्थात् तपस्वी हो जावें) ॥ २४ ॥

वासुदेव — भो मुयोधन ! अल वन्धुजने परुषमभिघातुम् ।

पुण्यसञ्चयसम्प्राप्तमधिगम्य नृपश्रियम् ।

वञ्चयेद् य सुहृद्वन्धून् स भवेद् विफलश्रम । २५ ॥

विययो नाम, नाम इति सम्भावनायाम्, भुज्यते = अनुभूयते, यथास्माभि-
स्तथेत्यर्थम् । लोके = भुवने तत् = राज्य, न तु याच्यते = नैव भिक्ष्यते ।
यथा पार्थैस्तथेत्यर्थम् वा = अन्यथा, दीनाय = दरिद्राय न तु पुन दीयते =
नैव प्रदीयते । एव राज्यव्यवहारस्य स्थितौ पार्थैर्यत् कर्तव्यं तद् बोधयति—
नृपतित्व = राज्यम्, आप्तु = लब्धु, काङ्क्षा = इच्छा, चेत् = अस्ति यदि,
ते = पार्था, अचिरात् = अविलम्बम्, साहस = युद्धम्, कुर्वन्तु = विदधतु
अर्थादस्माभि सह । वा = पक्षान्तरे, राज्येप्साभावे इत्यर्थम् । शमाय =
शान्त्यर्थम् शान्तमतिभि = निर्मत्सरबुद्धिभि अर्थाद् मुनिभि, जुष्ट =
सेवितम्, आश्रम = मुनिगृह, स्वैर = स्वच्छन्दम् प्रविशन्तु = गच्छन्तु । विना
युद्धं नाह किञ्चिदपि दातुमिच्छामीति भावः । शाद्वलविक्रीडित
छन्दः ॥ २४ ॥

टिप्पणी—सहृदयं—हृदयेन सह वर्तते इति सहृदया, तै (बहु०)
नृपतित्वम्—नृपते भावः नृपतित्वम् । नृपति + त्व । शान्तमतय — शान्ता
मति येषां ते (बहु०) शान्तमतय तै । जुष्टम्—जुष + क्त ।

संस्कृत टीका—अलमित्यादि । अलमलम् = न भुज्यते इत्यर्थेऽलशब्दः ।
द्विरुक्तिर्दाडिर्घायि । परुषम् = निष्ठुरम् ।

अन्वयः—यः पुण्यसञ्चयसम्प्राप्ता नृपश्रियम् अधिगम्य सुहृद्वन्धून्
वञ्चयेत् स विफलश्रमः भवेत् ॥ २५ ॥

वासुदेव—हे सुयोधन ! अपने बान्धवों के प्रति ऐसे कठोर वचन न
कहो ।

पुण्य कर्मों के सचय से प्राप्त होने वाली राज्यलक्ष्मी को पाकर जो सहृदय
बन्धुजनों (अथवा मित्रों) की धोखा देता है उसका सारा परिश्रम व्यर्थ
जाता है ॥ २५ ॥

दुर्योधनः—

स्यालं तव गुरोर्भूपकस प्रति न ते दया ।

कथमस्माकमेव स्यात् तेषु नित्यापकारिषु ॥ २६ ॥

संस्कृत टीका—यः=पुरुषः, पुण्यसञ्चयसम्प्राप्तम्=सञ्चितपुण्योप-
नताम्, पुण्यानाम्-सुकृतानां सञ्चयः तेन प्राप्ता अधिगता ताम्, वृषश्रियः=
वृषस्य राज्ञः श्री लक्ष्मीः ताम्, राज्यलक्ष्मीम्, अधिगम्य=सम्प्राप्य,
सुहृद्वन्धून्=मित्रजातीन्, वञ्चयेत्=प्रतारयेत्, नृपश्रीसविभागेन नानु-
श्ल्लीयात्, स, विफलश्रमः=व्यर्थपरिश्रमः, भवेत्=स्यात् । अर्थात्
स्वबन्धुभिः विरोधे कृते तथैव आयासः । विफलो भविष्यतीति भावः ।
अनुष्टुप् छन्दः ॥ २५ ॥

टिप्पणी—विफलश्रमः—विफलः इष्टासिद्ध्या निष्फलः अनिष्टप्राप्त्या
विपरीतफलो वा श्रमः वञ्चनविषय आयासो यस्य स तथा, भवेत्, सुहृद-
वन्धुविषया वञ्चनया इष्टासिद्धिरनिष्टप्राप्तिश्च भवतीत्यभिप्रायः । इति
गणपतिशास्त्रिण ॥ २५ ॥

अन्वयः—तव गुरोः श्यालं भूपं कसं प्रति ते दया न, एवं नित्याप-
कारिषु तेषु अस्माक (दया) कथं स्यात् ? ॥ २६ ॥

संस्कृत टीका—तव गुरोः=ते पितु वसुदेवस्य, श्यालं=पत्नीप्रातरम्
अर्थात् त्वन्मातुलम्, भूपम्=राजानम्, कसं प्रति एतन्नामान मथुराधिपतिम्,
प्रति, ते=तव, दया=अनुकम्पा न=नासीत् । स हि निहतस्त्वयेत्यर्थः,
एव—सुहृद्वन्धुमुख्ये स्वमातुलेऽपि तव दया नेत्येव स्थिते इत्यर्थः ।
नित्यापकारिषु=नित्यं सततम् अपकारः अपकरणम् अस्ति एषाम् ते,
प्रहितकारिषु, तेषु=पाण्डवेषु विषये, अस्माक=कौरवाणाम् (दया),

दुर्योधन—हे दूत !

अपने पिता के सारे कंसराज के प्रति तुम्हें दया न आयी, तो सदा
अपकार करने वाले उन लोगों (पाण्डवों) के प्रति हमें कैसे दया आ सकती
है ? ॥ २६ ॥

अपि च, तवापि प्रत्यक्षमपर कथयामि ।

ननु त्व चित्रसेनेन नीयमानो नभस्तलम् ।

विक्रोशन् घोषयात्राया फाल्गुनेनैव मोक्षित ॥ ३३ ॥

नामक वन था । यह वन इन्द्र के लिए पवित्र भूमि थी । अग्निदेव ने उस वन पर क्रोध कर उसे जलाना चाहा । अर्जुन ने तब इसकी रक्षा की थी । तदर्थ उनसे गाण्डीव धनुष और अनेक बाण पुरस्कार में प्राप्त किए । ३ पाण्डव जब छत्रवेश में थे तब दुर्योधन ने विराट्‌नगर की गायों का अपहरण कर लिया था । उसी समय विराट्‌नगर में आश्रय प्राप्त अर्जुन ने भीष्मादि कौरव महारथियों को जीतकर उन गायों की रक्षा की थी ॥ ३२ ॥

अन्वय --ननु चित्रसेनेन नभस्तल नीयमान विक्रोशन् त्व घोषयात्राया फाल्गुनेनैव मोक्षित ॥ ३३ ॥

संस्कृत टीका—ननु=इति किं न स्मर्यते? चित्रसेनेन=तन्नाम्ना गन्धर्वेण, नभस्तल=आकाशतलम्, स्वर्ग-धर्वपुरम्, नीयमान=बलात् आकृष्यमाण, विक्रोशन्=आर्त्तनाद कुर्वन्, त्व=दुर्योधन, घोषयात्राया=घोषाणा गोपाना यात्रायाम्, यद्वा, गोहरणमार्गं, घोषयात्रापर्वे वा (महा० भा० २४३ वन०) । फाल्गुनेनैव=अर्जुनेनैव, न तु त्वत्मुहूर्तमै कर्णादिभि, मोक्षित=मोक्षित । अनुष्टुप् छन्द ॥ ३३ ॥

टिप्पणी—नभस्तलम्=नभस तलम् (प० त०), विक्रोशन्—वि + कृश् + शतृ । (क) चित्रसेन नामक गन्धर्व ने दुर्योधन को पकड़ लिया और आकाशमार्ग से उसे अपने गन्धर्वनगर को ले चला । तभी आर्त्तनाद सुनकर अर्जुन ने उसे बचाया । यह कथा महाभारत के वनपर्व में २४३ अध्याय में है । इसी का अन्तर्विभाग घोषयात्रापर्व है ॥ ३३ ॥

फिर एक और तुम्हारी देखी हुई घटना कहता हूँ ।

जब तुम घोषयात्रा में चित्रसेन द्वारा आकाश में ले जाये जा रहे थे उस समय चित्लाते हुए तुमको अर्जुन ने ही छुड़ाया था ॥ ३३ ॥

किं बहुना,—

दातुमर्हसि मद्वाक्याद् राज्यार्घं धृतराष्ट्रज ! ।

अन्यथा सागरान्तां गा हरिष्यन्ति हि पाण्डवाः ॥ ३४ ॥

दुर्योधनः—कथम् ? कथं हरिष्यन्ति हि पाण्डवा ।

अन्वय — हे धृतराष्ट्रज, मद्वाक्यात् राज्यार्घं दातुमर्हसि अन्यथा पाण्डवाः सागरान्तां गा हरिष्यन्ति हि ॥ ३४ ॥

संस्कृत टीका—हे धृतराष्ट्रज ! = हे धृतराष्ट्रपुत्र ! मद्वाक्यात् = मम कथनात्, राज्यार्घम् = अर्घं राज्यं राज्यार्घं, दातुमर्हसि = (पाण्डवेभ्यः) अपैषितुम् योग्योऽसि, अन्यथा = यदि मद्दवचनात् न दास्यसि तर्हि, पाण्डवाः = युधिष्ठिरादयः, सागरान्तम् = समुद्रसीमाम्, गां = महीम्, हरिष्यन्ति हि = त्वा पराजित्य, बलाद् ग्रहीष्यन्त्येव । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ३४ ॥

टिप्पणी—धृतराष्ट्रज ! = धृतराष्ट्राज्जातः, तत्सम्बुद्धौ, धृतराष्ट्र + जन + इ । राज्यार्घम्—राज्यस्य अर्घः असमो यः, कश्चिदंशो राज्यार्घं तम् । समांशविवक्षायां तु अर्घशब्दस्य बलीबत्वाद्, 'अर्घं नपुंसकम्' इति समासे अर्घराज्यमिति स्यात् । असमांशदानोक्त्या च—

पञ्च नस्तात दीयन्तां ग्रामा वा नगराणि वा ।

यसेम सहिता येषु मा च नो भरता नशन् ॥ (महा०)

इति महाभारतोक्तः पञ्चग्रामप्रार्थनरूपः अवरोपणः सूचितः । सागरान्ताम्—सागरा. अन्ता यस्याः ताम् (बहु०) । गाम्—स्वर्गेषु पशु-वाग्जदिङ्नेत्रघृणिभूजले । लक्ष्यदृष्ट्या स्त्रिया पुंसि गो - इत्यमर. ॥ ३४ ॥

संस्कृत टीका—कथमित्यादि । कथंशब्दो गर्हायाम् । हरिष्यन्तीत्यत्र काकु. ।

अधिक क्या कहा जाय ?

हे धृतराष्ट्र-पुत्र ! मेरा कहना मानकर आप राज्य का आधा भाग दे दीजिये । नहीं तो पाण्डव सागर तक की सारी पृथ्वी को अवश्यमेव छीन लेंगे ॥ ३४ ॥

दुर्योधन—कैसे, पाण्डव कैसे छीन लेंगे ?

प्रहरति यदि युद्धे मारुतो भीमरूपी
 प्रहरति यदि साक्षात् पार्यरूपेण शक्रः ।
 परुषवचनदक्ष ! त्वद्वचोभिर्न दास्ये
 तृणमपि पितृभुक्ते वीर्यगुप्ते स्वराज्ये ॥ ३५ ॥

अन्वयः—यदि भीमरूपी मारुत युद्धे प्रहरति, यदि शक्रः साक्षात् पार्य-
 रूपेण प्रहरति, हे परुषवचनदक्ष ! त्वद्वचोभिः पितृभुक्ते वीर्यगुप्ते स्वराज्ये
 तृणमपि न दास्ये ॥ ३५ ॥

संस्कृत टीका—यदि = चेत्, भीमरूपी = वृकोदररूपधारी, मारुत =
 वायुदेव, युद्धे = संग्रामे, प्रहरति = प्रहार करोति यदि = चेत्, शक्र =
 इन्द्र, साक्षात् = प्रत्यक्षम्, पार्यरूपेण प्रहरति = अर्जुनरूप धृत्वा अचिर-
 भाविनि रणे प्रहारं करोति, तथापि, हे परुषवचनदक्ष ! = परुषवचने कठोर-
 वचनप्रयोगे दक्षः निपुण, तत्सम्बुद्धौ, हे निष्ठुरभाषणचतुर !, त्वद्वचोभिः =
 त्वद्वचनानुसारेण, पितृभुक्ते = पित्रा भुक्त तस्मिन्, मत्पित्रानुभूते, धृतराष्ट्रेण
 शासिते इत्यर्थः, वीर्यगुप्ते = वीर्येण पराक्रमेण गुप्ते रक्षिते, महीर्यंरक्षिते,
 स्वराज्ये = स्वाराष्ट्रे, तृणमपि = परमाल्पमशमपीत्यर्थं न दास्ये = न
 वितरिष्यामि । मालिनीवृत्तम् ॥ ३५ ॥

टिप्पणी—मारुत' प्रहरति यदि—वायुदेव' पुत्रपक्षपातात् प्रहरिष्यति
 चेदित्यर्थः, वर्तमानसामीप्ये लट् । प्रहरतिरिहाकमंक आयुधप्रयोगो
 वर्तते । प्रहरत्वित्यध्याहार, अनुज्ञायां च लोट्, काम प्रहरणमभ्यनुज्ञा-
 नामि न ह्यहं प्रहरणाद् विभेमीत्यभिप्रायः । पार्यरूपेण—पृथाथा. पुत्रः
 पार्यं, पार्यस्य रूपं (प० त०) तेन पार्यरूपेण ॥ ३५ ॥

चाहे युद्ध में पवनदेव भीम का रूप धारण कर प्रहार करें, अथवा
 साक्षात् इन्द्र भी पार्य (अर्जुन) के रूप में आक्रमण करें, पर हे कटु-भाषण
 में दक्ष ! तुम्हारे कहने पर मैं उस राज्य का तृण के बराबर भाग भी
 नहीं दूँगा जिसका उपभोग मेरे पिता ने किया है और जिसकी रक्षा मैंने
 मुझबल से की है ॥ ३५ ॥

वासुदेवः—भोः कुरुकुलकलङ्कभूत ! अयशोलुब्ध ! वयं किल
तृणान्तराभिभाषका ।

दुर्योधनः—भो गोपालक ! तृणान्तराभिभाष्यो भवान् ।

अवध्यां प्रमदां हत्वा ह्य गोवृषमेव च ।

मल्लानपि मुनिलंज्जो वक्तुमिच्छामि साधुभि ॥ ३६ ॥

संस्कृत टीका—भो इत्यादि । कुरुकुलकलङ्कभूत ? = कुरुना कुलस्य
कलङ्क भूतः (सुपुनुषा०), अयशोलुब्ध = न यशः अपयश तत्र लुब्ध = अप-
कीर्तिकोभिन्, तृणान्तराभिभाषकाः = तृणेन अन्तर व्यवधानं येषाम्
अभिभाष्येण सह ते तृणान्तराः, तृणान्तराः मन्तोऽभिभाषकाः तृणान्तराभि-
भाषका, तृणान्तराभिभाष्य. = तृणमन्तरत कृत्वा त्वमस्माकमभिभाष्यो न
नाशादित्यभिप्रायः ।

अन्वय — अवध्या प्रमदां (हत्वा) ह्य गोवृषं च (हत्वा) मल्लानपि
इत्या मुनिलंज्जः साधुभिः वक्तुम् इच्छामि ॥ ३६ ॥

संस्कृत टीका—अवध्यां = वधानहीं, प्रमदा = स्त्रिय, पूतना नाम
दानवीर्यं, हर्षं = अश्वरूपं केशिनामानममुरध, गोवृषम् = अरिष्टयंभ दानवम्,
मल्लान् अपि = मुष्टिकवाणुरानपि मल्लजातिभवान्, हत्वा = विनाश्य,
मुनिलंज्ज = सुतरा निर्गता लज्जा यस्मात्, सः = लज्जारहितः, साधुभिः =
मद्भिर्मद्विधैः, सह, वक्तुम् = आलपितुम्, इच्छामि = वाञ्छामि । अनुष्टुप्
छन्दः ॥ ३६ ॥

वासुदेव—हे कुरुकुल के कलक ! हे अपयश के लोभी ! तुम बीच में
तृण रखकर ही मुझसे बात करने योग्य हो ।

दुर्योधन—है ग्वाले ! अवश्य तुम बीच में तृण रखकर ही बातलाप
के योग्य हो ।

अवध्या स्त्री, अश्व और गौ (वृषम) की हत्या करके और मल्लों को
भी मारकर लज्जा का अनुभव न करने वाले तुम (हम जैसे) सज्जनों से
बात करना चाहते हो ?

वासुदेवः—भोः सुयोधन ! ननु क्षिपसि माम् ।

[दुर्योधनः—ननु सत्यमेवैतत् ।

वासुदेवः—गच्छामि तावत् ।

दुर्योधनः—गच्छ गच्छ पशुखुरोद्धतरेणुरूपिताङ्गो व्रजमेवम् ।
वेफलीकृतः काल ।

टिप्पणी—अवध्या—‘अहिंस्या प्रमदामाहुः सर्वधर्मेषु पाथिव’—इति
भारतोक्तिः । मल्लान्—घ्रात्यपूर्वाया क्षत्रियाया क्षत्रियाज्जाता मल्ला उच्यन्ते,
ते च मुष्टियुद्धाद्यभ्यासवृत्तयः । मुनिलंज्जः अबलामृगदुर्बलहननं शिष्टगहितं
कृतवतो हि लज्जोचिता । साधुभि—त्वया सह अस्माकं राजामालपनमपि
गहितमिति विवेकः । (क) १ कृष्ण ने बाल्यावस्था में पूतना नामक राक्षसी
का वध किया था । स्त्रियो का वध वर्जित होने से उसी का यहाँ संकेत है ।
२ केशी एवं अरिष्ट नामक राक्षसी ने क्रमशः घोड़े और बैल का रूप धारण
किया था । इनका भी वध कृष्ण ने किया था । घोड़े एवं बैल का वध भी
प्रशस्त नहीं है । ॥ ३६ ॥

अवध्या प्रमदा—‘अहिंस्यां प्रमदामाहु सर्वधर्मेषु पाथिव’-महाभा० सभा०
२३.१५ । तु ५२, ५३ अ० । ह्यम्, गोवृषम्—

‘अथारिष्ट इति ख्यात दैत्य वृषभविग्रहम् ।

जघान तरसा कृष्ण. पशूना हितकाम्यया ॥

केशिनामा ततो दैत्यः राजन् तुरगविग्रहः ।’

महाभा०, सभा० ५३ २८-२९ ।

संस्कृत टीका—भो इत्यादि । क्षिपसि=तिरस्करोपि, निन्दसि ।
गच्छेत्यादि । व्रजमेव=गोष्ठमेव, गोपालकस्य गोष्ठगमनं युक्तम् ।

वासुदेव—हे सुयोधन ! क्या तुम मेरा अपमान करते हो ?

दुर्योधन—यह सत्य है ।

वासुदेव—‘अच्छा तो मैं जाता हूँ ।’

दुर्योधन—जाओ, पशुओं के खुरों से उठी हुई धूलि से अपने अंगों को
कलुषित करने वाले तुम व्रज को ही जाओ । तुमने धर्म ही समझ नष्ट
किया है ।

वासुदेव—एवमेवास्तु । न वयमनुक्तसन्देशा गन्तुमिच्छाम ।
तदाकम्प्यंता युधिष्ठिरस्य सन्देश ।]'

दुर्योधन - आ, अभाष्यस्त्वम् ।

अहमवधृतपाण्डरातपत्रो द्विजवरहस्तघृताम्बुसिक्तमूर्धा ।

अवनतनूपमण्डलानुयात्रै सह कथयामि भवद्विधेनं भाये ॥ ३७ ॥

विफलीकृत = अनभिभाष्याभिभाषणे विनियुक्तत्वात् । अभाष्य = वाणी-
प्रयोगानर्ह ।

अन्वय - अवधृतपाण्डरातपत्रो द्विजवरहस्तघृताम्बुसिक्तमूर्धा अह
अवनतनूपमण्डलानुयात्रै भवद्विधेनं सह न भाये इति कथयामि ॥ ३७ ॥

संस्कृत टीका—अवधृतपाण्डरातपत्र = अवधृतम् गृहीत पाण्डर पुत्रम्
आतपत्र छत्र येन स, अवधारितश्चेत्छत्र, द्विजवरहस्तघृताम्बुसिक्तमूर्धा=
द्विजवराणां ब्राह्मणघेष्टानां हस्ताभ्यां कराभ्यां घृत धारित यदम्बुजल तेन
सिक्त अभिसिक्त मूर्धा शिर यस्य स सादृग, वैदिकद्विजकरघृतजलसेवित
मस्तक, अहम् = दुर्योधन, अवनतनूपमण्डलानुयात्रै = अवनतस्य मदघर-
णस्य नूपमण्डलस्य अनुयात्रै अनुपायिभिर्भृत्स्यैरित्यर्थं भवद्विधेनं = स्वत्स-
दृशं । कसभृत्य इतिवत् क्षेपोऽप्यम्, सह = साकम् न भाये = न ब्रवीमि (इति)
कथयामि = प्रतिजाने, कथयत कथयामीत्युक्तिर्हि विगिष्टे रूपने प्रतिज्ञान
रूपे पयस्यनि । प्रतिज्ञान विषयश्च भवाद्गुणं साकम् अभाषणम् ।
पुष्पितापावृत्तम् ॥ ३७ ॥

वासुदेव—ऐसा ही सही । परन्तु हम बिना सन्देश कहे नहीं जाना
चाहते । तो युधिष्ठिर के सन्देश को सुनो ।

दुर्योधन—अरे तुम तो बात करने क योग्य ही नहीं हो ।

मेरे सिर पर श्वेत राजच्छत्र रखा गया है । श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने अपने
हाथों से मेरे मस्तक पर अभियेक जल सिञ्चित किया है । मैं कहता हूँ कि
तुम जने व्यक्तियों से मैं बात भी नहीं करता जो मुझसे निम्न धेनी के
राजाओं क अनुयायी हैं ॥ ३७ ॥

१ देवघरसंस्करणे ब्राह्मणीविज्ञानिकृत पाठोऽयं न सम्मते ।

वासुदेवः—न व्याहरति किल मा सुयोधनः । भोः !

शठ ! बान्धवनि स्नेह ! काक ! केकर ! पिङ्गल ! ।

त्वदर्थात् कुर्वशोऽयमचिरान्नाशमेष्यति ॥ ३८ ॥

भो भो राजान ! गच्छामस्तावत् ।

टिप्पणी—अवधृत०—अवधृत पाण्डर आतपत्र येन स. (बहु०)
आतपत्र—आतपात् प्रापते इति आतपत्रम् । द्विजवर०—द्विजेषु वरा
द्विजवरा (स० त०), तेषां हस्ता (प० त०), तै धृतम् अम्बु (तृ० त०),
तेन सिक्तं मूर्धा यस्य सः (बहु०) । अवनत०—नृपाणां मण्डलं नृपमण्डलम्
(प० त०), अवनतं नृपमण्डलं (कर्म०) तद् अनुयाया तेषां तैः ॥ ३७ ॥

संस्कृत टीका—व्याहरति=वदति । किल=इति निश्चये ।

अन्वयः—शठ ! बान्धवनि स्नेह ! काक ! केकर ! पिङ्गल ! त्वदर्थात्
अयं कुर्वशः अचिरात् नाशम् एष्यति ॥ ३८ ॥

संस्कृत टीका—शठ=हे घृष्ट, वञ्चक, बान्धवनि.स्नेह=बान्धवेषु
निर्गतः स्नेहः यस्य सः तत् सम्बुद्धौ, हे भ्रातृनिष्कृप !, काक=कटु-
भाषित्वात् हे काक सदृश !, केकर=वलिर, वक्रलोचन, हे विकृताक्ष !,
पिङ्गल=हे मकंठ, चालत्वाद् हे वानरकल्प !, त्वदर्थात्=त्वन्निमित्तात्,
अयं=वर्तमानः, कुर्वश=कुरुणां वशः, अचिरात्=शीघ्रम् एव, नाशं=
अभावम्, एष्यति=प्राप्स्यति । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ३८ ॥

टिप्पणी—केकर—तारकामपाङ्ग आकृष्य वीक्षको हि केकरः ।
'काककेकर' इत्येकपदं वा उपमानसमासात् । 'वलिरः केकरे'
इत्यमर ॥ ३८ ॥

संस्कृत टीका—अथ जिगमिषु' भगवन्तं बद्धुं सुयोधनस्य सम्भ्रम् —

वासुदेव—सुयोधन तां मुक्षसे बान्धु भी नहीं करता ।

हे शठ ! बधु विरोधी ! काक (कुटिल स्वभाव), भैंगे, और पिगल
(शाखाभृग) तेरे ही कारण यह समग्र कुरुवंश शीघ्र ही नाश को प्राप्त हो
जायगा ॥ ३८ ॥

हे ! हे राजाशो, हम अब जाते हैं ।

दुर्घोषन.—कयं यास्यति किल केशव । दुःशासन ! दुर्मर्षण ।
दुर्मुख ! दुर्बुद्धे ! दुष्टेश्वर । दूतसमुदाचारमतिक्रान्तः केशवो
वग्धनाम् । कथमशक्ताः । दुःशासन ! न ममर्थः खल्वमि ।

करितुरगनिहन्ता कंसहन्ता स कृष्णः

पशुपकुलनिवासादानुजीव्यानभिज्ञ ।

हृत्तभुजबलवीर्यः पायिवाना ममक्ष

स्ववचनकृतदोषो वध्यतामेव शीघ्रम् ॥ ३९ ॥

कथं यास्यतीत्यादिना प्रकाशयते । दूतसमुदाचारम् अतिक्रान्तः=दूतमर्षादा-
मतिक्रम्य स्थित, अतोऽपराधी वग्धनाहं इत्यर्थः । न ममर्थः=अर्थात्
केशवं बधुम् ।

वाक्यः—करितुरगनिहन्ता कंसहन्ता पशुपकुलनिवासाद् आनुजी-
व्यानभिज्ञ हृत्तभुजबलवीर्यः एव स्ववचनकृतदोषः स कृष्णः पायिवानां समर्थं
शीघ्रं वध्यताम् ॥ ३९ ॥

संस्कृत टीका—करितुरगनिहन्ता=करिणः उत्पलापीडास्वस्य यजस्य
तुरगत्वं कस्वानुरस्य च निहन्ता, कंसहन्ता=कंसस्य हन्ता
वधकर्ता । पशुपकुलनिवासाद्=गोनालवृहनिवानाद्, नीचकुल-
निवासादिति भावः, आनुजीव्यानभिज्ञः=आनुजीव्यस्य अनुजीविकर्मणः

दुर्घोषन—केशव भन्ना जाने कैसे पायेगा ? दुःशासन ! दुर्मर्षण !
दुर्मुख ! दुर्बुद्धि ! दुष्टेश्वर । दूतचित्त आचरण का अतिक्रमण करने वाले
केशव को बधु तो ।

अरे, क्या तुम (इस कार्य के लिए) अवनय हो ? दुःशासन ! क्या तुम
भी अवनय हो ?

इस कथन पर (दुर्घोषनादीश्वर), अरव (घोटकानुर) और कंस को
को मारने-बाना है । पशु पाऊने वालों के साथ निवाह करने के कारण यह
दूत-कर्तव्यों के अनभिज्ञ है । यह भुजबल और शीघ्र से रहित है । राजाओं
के मारने इनके परम वचन कहने का अनुरोध किया है, अतः इसे शीघ्र
बधु किया जाय ॥ ३९ ॥

अयमशक्त । मातुल । ब्रह्म्यतामय केशव । कथ पराङ्मुख
पतति । भवतु अहमेव पाशैर्बन्धनामि । (उपसर्पति)

वासुदेव — कथ मवितुकामो मा किल सुयोधन । भवतु सुयो
धनस्य, सामर्थ्यं पश्यामि । (विश्वरूपमास्थित)

अनभिज्ञ अपरिचित, हृतभुजबलवीर्य = हृत भुजाना बलवीर्यं येन
नष्टबाहुबलपराक्रम, एष = कृष्ण, स्ववचनकृतदोष = स्ववचनेन कृत दोष
येन, ममावमाननारूपोऽपराध येन स, स = तादृश, कृष्ण = वासुदेव,
पायिवानाम् = राजाम् समक्षम् = अक्ष्ण समक्ष प्रत्यक्षम् दीर्घम्वटिति
ब्रह्म्यताम् = बद्ध क्रियताम् । मालिनीवृत्तम् ॥ ३९ ॥

टिप्पणी—करितुरग०—करी च हस्ती च तुरगश्च अश्वश्चेति करि
तुरगौ तयो निहन्ता विनाशक (प० त०), नि + हन् + तृच । पशुप०
पशून् पालयन्ति इति पशुपा आभीरा, तेषा कुल वश तस्मिन् निवास
तस्मेत् । आनुजी०या०—आनुजीवन्तीति अनुजीविन आनुजीविन भाव
आनुजीव्यम् तदनभिज्ञ । हृतबल०—बल च वीर्यं च बलवीर्यं, भुजयो
बलवीर्यं (प०त०) हृतभुजबलवीर्यं यस्य स (बहु०) ॥ ३९ ॥

सस्कृत टीका—बन्धु कृतप्रयत्न दुःशासनस्याशक्तिमुपालभ्याह—अयम
शक्त इति । शकुनि चोदयति मातुलेत्यादि कथमित्यादि । पतति = बद्ध
किमपि चेष्टित्वा परिभ्रान्तो भुवि पततीत्यर्थं, भवतु = इति निषेधऽव्ययम्,
दुःशासनादयो मा बध्नन्तु ॥

कथमित्यादि । मवितुकाम = मवितु बन्धु काम इच्छा यस्य स ।
विश्वरूपम् = विश्व कृत्स्न ऽगत्, तदात्मक रूपम् अपरिच्छिन्नम् आत्मन

यह तो असमर्थ है । हे मामा ! इस केशव को बांध लो । क्या यह तो
मुँह के बल गिर पड़े । अच्छा ! मैं ही इसे पाश से बाँधता हूँ ॥

(पाश को उठाकर समीप आता है)

वासुदेव—क्या सुयोधन सचमुच मुझे बाँधने की इच्छा करता है ?
अच्छा सुयोधन की शक्ति को भी देखता हूँ (परीक्षा करता हूँ) (विराट
रूप धारण करते हैं) ।

दुर्योधन — भो दूत !

सृजसि यदि समन्ताद् देवमाया. स्वमाया.

प्रहरसि यदि वा त्वं दुर्निवारैः सुरास्त्रैः ।

ह्यगजवृषभाणां पातनाज्जातदर्पो

नरपतिगणमध्ये वध्यसे त्वं मयाद्य ॥ ४० ॥

स्वरूपमित्यर्थं । आस्त्यतः—अङ्गीकृतवान् ।

टिप्पणी—मवितुकामः-मवितुं काम. यस्य (बहु०) । भव
रुक्मिणे भ्वादि. ।

अन्वयः—यदि देवमाया स्वमाया. समन्तात् सृजसि, यदि त्वं दुर्निवारैः
सुरास्त्रैः प्रहरसि, मया अद्य नरपतिगणमध्ये ह्यगजवृषभाणां पातनात्
जातदर्पः त्वं वध्यसे ॥ ४० ॥

संस्कृत टीका—भगवतो विश्वरूपप्रदर्शनं मोहादिन्द्रजालप्रयोगं मन्यमान
आह—सृजसीत्यादि । यदि=चेत्, देवमाया=देवानां माया, स्वमायाः=
आत्मदृष्टा माया, समन्तात्=चतसृषु दिक्षु, सृजसि=विदधासि, यदि,
वा=अथवा, त्वम्=कृष्णः, दुर्निवारैः अप्रतिहतैः, सुरास्त्रैः=दिग्भ्यास्त्रैः,
मयि देवास्त्रैः, प्रहरसि=प्रहारं करोषि । इह 'सृजसि यदि' इत्यत्र 'सृज'
इत्यध्याहारः । अर्थात् यथाकामं मायाः सृज, न मे त्वन्मायासर्गाद् भयमिति
भावः । तथा 'प्रहरसि यदि' इत्यत्र 'प्रहर' इत्यध्याहारः, अर्थात् यथाकाम
प्रहर; न मे सुरास्त्रप्रहाराद् भयमिति भावः । अद्य=अस्मिन्नहनि, नरपति-
गणमध्ये=नरपतीनां गणः तस्य मध्यं तस्मिन्, नृपमण्डलमध्ये=ह्यगज-
वृषभाणां=ह्याश्व गजाश्च वृषभाश्च ह्यगजवृषभाः, तेषाम्,
करितुरगवृषाणाम् पातनाद्=वधात्, जातदर्पं=जात उत्पन्नः

दुर्योधन—हे दूत !

चाहे तुम चारो ओर अपनी माया या देवमाया का सर्जन करो, चाहे
अमोघ दिग्भ्यासो से प्रहार करो, परन्तु अश्व, गज, वृषभ आदि को मारने
पर अहंकार करने वाले तुमको इस नृपमण्डल के बीच में अभी बांधता
है ॥ ४० ॥

आ. तिष्ठेदानीम् । कथं न दृष्टः केशव । अयं केशवः । अहो ह्रस्वत्वं केशवस्य । आ तिष्ठेदानीम् । कथं न दृष्टः केशवः । अयं केशवः । अहो दीर्घत्वं केशवस्य । कथं न दृष्टः केशवः । अयं केशवः । सर्वत्र मन्त्रशालाया केशवा भवन्ति । किमिदानीं करिष्ये । भवतु. दृष्टम् । भो भो राजान ! एकेनैकः केशवो वध्यताम् । कथं स्वयमेव पाशैर्बद्धा पतन्ति राजानः । साधु भो जम्भक ! साधु !

मत्कामुंकोदरविनि सृतवाणजालै-

विद्धक्षरत्क्षतजरञ्जितसर्वगात्रम् ।

दपं गर्वं यस्य नः, त्वम्=वामुदेव, मया=दुर्षोधनेन, बध्यस=बन्धन प्राप्स्यसे । मालिनीवृत्तम् ॥ ४० ॥

टिप्पणी—दुर्निवारैः—दुःखेन निवारयितुं शक्यानि, तैः । पातनात्—पत् + णिच् + ल्युट् । ह्यगज०—ह्यश्च अश्वश्च (केशिघोटकश्च) गजश्च हस्ती च (कुवल्यापीडगजश्च) वृषभश्च बलीबर्दश्च (वृषभासुरश्च) इति ह्यगजवृषभा, तेषाम् ॥ ४० ॥

सस्कृत टीका—अथात्यद्भुतभगवद्विश्वरूपदर्शनीदुष्प्रान्तम्य भ्रमविलसितवर्णनायोपक्रम.—आस्तिष्ठेत्यादिना । दृष्टस्य भगवतो झटिति तिरोभावादाह—कथमि-यादि । पुनराविर्भावादाह—अयं केशव इति । वृषान् केशवबन्धनार्थमुद्यम्य पाशैरात्मानमेव बद्ध्वा भूमौ पतितान् दृष्ट्वाह—कथं स्वयमेवेत्यादि । जम्भक ! = मायाविन् ! ।

अन्वयः—शाष्परुद्धनयना परिति श्वसन्त. पाण्डुतनया. मत्कामुंको-

अरे ! अब खड़े रहो ! केशव कैसे दिखाई नहीं पड़ता । यह है केशव । अहो आश्चर्यकारी है इसका वामनत्व ! अरे, अब ठहर जा । केशव क्यों दिखलाई नहीं पड़ता । यह है केशव । ओह, केशव की विशालता ! केशव क्यों दिखलाई नहीं पड़ता ? यह है केशव । सब ओर मन्त्रशाला में अनेक केशव हैं । अब मैं क्या करूँ ? अच्छा, समझ गया । हे हे राजाशो ! तुमसे एक एक अलग-अलग करके केशव को पकड़ लो क्या राजा लोग स्वयं पाशों में बँधकर गिर पड़े ? बहुत अच्छा, हे मायावी, बहुत अच्छा !

पश्यन्तु पाण्डुतनया शिविरोपनीत

त्वा वाष्परुद्धनयना परिनि श्वसन्त ॥ ४१ ॥

(निष्क्रान्त)

दरविनि सूतबाणजालं विद्धक्षरत्क्षतजरञ्जितसवगात्र शिविरोपनीत त्वा
पश्यतु ॥ ४१ ॥

संस्कृत टीका—दुर्योधन स्वनिश्चिता प्रतिवृत्तिं सूचयन् द्रुत स्वकृत
निकारपरिणतिं प्रदर्शयति मदिर्यादिना । वाष्परुद्धनयना = बाष्पे अश्रुभि
उपरुद्धानि आवृतानि नयनानि नेत्राणि येषां ते, तादृशा, परिनि श्वसन्त =
परितः सर्वतः निश्वासत (शोकजन्य) उच्छ्वासं गृह्णन्त, पाण्डुतनया =
शुधिष्ठिरादयः पाण्डो पुत्रा मत्कामुंकोदरविनि सूतबाणजालं = मम
सुर्योधनस्य, कामुंकम् घनु, तस्य उदरात्, विनि सूता प्रसिन्ना, बाणजालानि
शरसमूहा तैः, विद्धक्षरत्क्षतजरञ्जितसवंगात्रम्—विद्धात् वेद्ययुक्तात् क्षरति
प्रसवति क्षतजानि रुधिराणि तै रञ्जित लोहितीकृत सवंगात्र सर्वशरीर
यस्य स, तम्, स्रवद्रक्तारुणितसर्वावयवम् । रुधिराप्लावितशरीरमित्यर्थः,
शिविरोपनीत = शिविरे सैनिकावासस्थाने उपनीत प्राप्तम् त्वाम् = श्रीकृष्ण,
पश्यतु = अवलोकयतु । वसततिलकावृत्तम् ॥ ४१ ॥

टिप्पणी—परिनि श्वसन्त — परि + निश् + श्वस + शतृ—परिनि श्व-
सन्त । मत्कामुंक०—कर्मणे प्रभवतीति कामुंकम्, कम + उकञ्, मत्कामुंक
तस्य उदर मत्कामुंकोदर, तस्मात् विनि सूतानि बाणजालानि (कम०),
विद्धम्—व्यघ + क्त क्षतात् जायते इति क्षतज (कम०), (जन + ड),
रक्तम् क्षरत्—क्षर + शत्—क्षरत्क्षतज [कम०] तेन रञ्जितानि
(तृ० त०) सर्वाणि च तानि गात्राणि यस्य ॥ ४१ ॥

मेरु घनुष से निकली हुई बाणावली से विद्ध, धावो से प्रवाहित रुधिर
से रंगे हुए तुम्हारे शरीर को अपने शिविर के पास आहें भरते हुए और
अविरल अश्रु बहाते हुए पाण्डुपुत्र देखें ॥ ४१ ॥

(प्रस्थान)

(विलोक्य) अये अय भगवान् हस्तिनापुरद्वारै दूतसमुदाचारेणोपस्थित । कुत खल्वाप, कुत खल्वाप । भगवति आकाशगङ्गे । आपस्तावत् । हन्त स्रवति । (आचम्योपसृत्य) जयतु भगवान् नारायण (प्रणमति) ।

वासुदेव — सुदर्शन ! अप्रतिहतपराक्रमो भव ।

सुदर्शन — अनुगृहीतोऽस्मि ।

आस्ते' इति शेष । अनुष्टुप्छन्द ॥ ४३ ॥

टिप्पणी— अव्यक्तादि — न व्यक्त अव्यक्त (नञ् त०) अव्यक्तस्य आदि (प० त०), वि + अञ्ज + क्त + । अचित्पारमा— न चिन्त्य अचित्त्य (नञ् त०) अचित्पारमा यस्य स (बहु०) । तु०— 'अणोरणीयान् महतो महीयान् ।' लोकसरक्षणोद्यत — लोकानां सरक्षणं लोकसरक्षणम् (प० त०) तस्मिन् उद्यत — तु० 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् । धर्मसंस्थापनार्थाय स भवामि युगे युगे ।' (गीता) । अनेकवपु — अनेकानि वपुषि यस्य स (बहु०) तु० 'अनेकरूपरूपाय ।' एकोऽह बहुस्याम्' इति श्रुतिरपि तदेव प्रतिपादयति । श्रीमान्— श्री आस्ति अस्य स (बहु०), श्री + मतुप । द्विषद्बल०— द्विषता बल द्विषद्बल (प० त०) तस्य निषूदन, द्विष + शतृ, नि + सूद + ल्युट । (क) यहाँ व्याजोक्ति बलद्वार है ॥ ४३ ॥

संस्कृत टीका— अये इत्यादि । कुत खल्वाप = अभिप्रेक्षनाथम् आप जलम्, अत्र द्विरक्ति सप्रमात् । स्रवति = शौचाद्यप्रदित जल स्वगङ्गा

(देखकर) अर हस्तिनापुर के द्वार पर यह दूत के रूप में भगवान् उपस्थित है जल कहाँ से लूँ ? जल कहाँ से लूँ ? हे भगवती आकाशगङ्गे ! जल दीजिये । अहा यह जल बरस रहा है, (आचमन करके और समीप आकर) भगवान् नारायण की जय हो । (प्रणाम करता है) ।

वासुदेव— हे सुदर्शन ! तुम्हारा पराक्रम अजेय हो ।

सुदर्शन— मैं कृतज्ञ हुआ, आपने कृपा की ।

वासुदेव — दिष्ट्या भवान् कर्मकाले प्राप्तः । भगवानाज्ञापयतु ।
सुदर्शन.—कथं कथं कर्मकाल इति । आज्ञापयतु ।

किं मेरुमन्दरकुल परिवर्तयामि
संक्षोभयामि सकल मकरालय वा ।

नक्षत्रवशमखिल भुवि पातयामि

नाशक्यमस्ति मम देव ! तव प्रसादात् ॥ ४४ ॥

म्यन्दयतीत्यर्थः, अप्रतिहतपराक्रम = अप्रतिहत, दुर्निवारः पराक्रमो यस्य सः,
अप्रतिहतबलः, दिष्ट्या = इति ह्येऽव्ययम्, कर्मकाले = कर्मणः काल
कर्मकालः, (प० त०) तस्मिन्, क्रियाकाले ।

अन्वयः—हे देव ! किं मेरुमन्दरकुल परिवर्तयामि वा सकल मकरालयं
संक्षोभयामि वा अखिल नक्षत्रवशं भुवि पातयामि, तव प्रसादात् अशक्य
न अस्ति ॥ ४४ ॥

सस्कृत टीका—हे देव = हे भगवन्, किं = इति प्रश्ने विनिमये वा,
मेरुमन्दरकुल = मेरुश्च मन्दरश्च मेरुमन्दरो, एतन्नामकौ पर्वतविशेषौ,
मेरुमन्दरयोः पर्वतयोः कुलं राजिम्, परिवर्तयामि = परिवर्तितं करोमि ?
मेरुकुलस्थाने मन्दरकुल तदस्थाने मेरुकुल च स्थापयामि किमित्यर्थः ? वा =
अथवा, सकल = सम्पूर्णं, मकरालय = मकराणां ग्राहादीनाम् आलयं निवास-
स्थानम्, समुद्रमिति यावत् 'संक्षोभयामि = मघ्नयामि, वा = अथवा,
अखिल = समग्रम्, नक्षत्रवश = नक्षत्राणां वंशं नक्षत्रमण्डलम्, भुवि =
पृथिव्यां, पातयामि = पतितं करोमि । वस्तुतस्तु, तव = भवतः, प्रसादात् =

वासुदेव — मैं प्रसन्न हूँ कि आप कार्य करने के समय पर ही आये हो ।
सुदर्शन—कौन से कार्य का समय है ? भगवान् आज्ञा दें, आज्ञा
करें ।

क्या मेरु मन्दरादि पर्वत समूह को उलट दूँ ? क्या मकरो के निवास-
स्थान महासागर में हलचल मचा दूँ ? क्या समग्र नक्षत्र-मंडल को भू पर
गिरा दूँ ? हे देव, आपकी कृपा से मेरे लिए कुछ भी असम्भव
नहीं है ॥ ४४ ॥

भो भोः । शाङ्गं, प्रशान्तरोषो भगवान् नारायणः । गम्यतां
स्वनिलयमेव । हन्त निवृत्तः । यावद् गच्छामि । अये इय कौमोदकी
प्राप्ता ।

पाश्वे = सन्निधौ; नवसलिलदपाश्वे = नूतनमेधोपान्ते, चाह = मनोहरम्,
विद्युल्लता इव = विद्युत् तडित् लतेव वल्लीव दीर्घप्रसृतत्वाद् विद्युल्लता-
(उपमित०), सेव, भाति = कृष्णस्य देहोपान्ते प्रकाशते । मालिनी
वृत्तम् ॥ ४७ ॥

टिप्पणी—तनुमृदु०—तनूनि सूक्ष्माणि मृदूनि कोमलानि ललितानि
सुन्दराणि अङ्गानि अवयवा यस्य (तत्) तनु च तद् च तद् मृदु
(कर्म०) तनुमृदु च तत् ललित (कर्म०), तनुमृदुललितम्, अङ्गं
यस्य तत् (बहु०) । स्त्रीस्वभावोपपन्नं—स्त्रीणां स्वभावः स्त्रीस्वभाव
(प० त०), तेन उपपन्नम् । हरिकरघूनमध्य—हरे कर [प० त०], तेन
घृतं मध्यं यस्य तत् (बहु०) । कनक०—कनकेन खचितं कनकखचित
(तृ० त०) कनकखचितं पृष्ठं यस्य तत् (बहु०) । शत्रुसङ्घैककाल—शत्रूणां
सङ्घः, (प० त०) शत्रुसङ्घस्य एककालः [कर्म०] एकश्च असौ काल एककाल
[कर्म०] । नवसलिलदपाश्वे—नव नूतन सलिलद [सलिल ददातीति]
अलद, तस्य पाश्वेम् समीपम्, तस्मिन् ॥ ४७ ॥

संस्कृत टीका—भो भो, इत्यादि । निवृत्तः = कृष्णान्तिकगमनो-
द्यमानिवृत्त्यय स्थित इत्यर्थः । पुस्त्व शाङ्गाभिमानिदेवाभिप्रायम् । 'निवृत्तम्'
इति वा पाठः ।

टिप्पणी—कौमोदकी—को. पृथिव्या पालकत्वाद् मोदक कौमोदकः
विष्णुः तस्य इय कौमोदकी [अण्] ।

हे शाङ्ग ! भगवान् का क्रोध अब शान्त हो गया है । अतः तुम अपने
स्थान को चले जाओ । अहा ! चला गया । अच्छा मैं भी जाता हूँ ।
" " अरे यह कौमोदकी आ गयी ।

मणिकनकविचित्रा चित्रमालोत्तरीया
 सुररिपुगणगात्रध्वंसने जातवृष्णा
 गिरिवरतटरूपा दुनिवारातिवीर्या
 व्रजति नभसि शीघ्रं मेघवृन्दानुयात्रा ॥ ४८ ॥

अन्वय.—मणिकनकविचित्रा चित्रमालोत्तरीया सुररिपुगणगात्र-
 ध्वंसने जातवृष्णा गिरिवरतटरूपा दुनिवारातिवीर्या मेघवृन्दानुयात्रा
 [कौमोदकी] शीघ्रं नभसि व्रजति ॥ ४८ ॥

सस्कृत टीका—मणिकनकविचित्रा = मणिभिः रत्नैः कनकैः सुवर्णैश्च
 विचित्रा विभूषिता, रत्नैः स्वर्णैश्च अलङ्कारभूतैश्चित्रवर्णा, चित्रमालोत्त-
 रीया = चित्रा चित्रवर्णा माला पुष्पस्रग् उत्तरीयम् ऊर्ध्ववस्त्रं यस्याः सा,
 सुररिपुगणगात्रध्वंसने = सुररिपूणां दानवानां मणानां समूहानां गात्राणां
 शरीराणां ध्वंसने विनाशने, जातवृष्णा = जाता उत्पन्ना वृष्णा प्रबल
 अभिलाषो यस्या सा, गिरिवरतटरूपा = गिरीणां वर तस्य तटम् शृङ्ग इव
 रूपम् आकारः यस्या सा, तथा च गिरिवरतटस्य पर्वतराजोत्सेधस्यैव रूपम्
 आकृतिर्यस्याः सा, तादृशी, दुनिवारा = अनिवृत्तनीया, अतिवीर्या = अति
 महत् वीर्यं पराक्रमो यस्या सा, अतिपराक्रमशालिनी, मेघवृन्दानुयात्रा =
 मेघवृन्दं जलदसमूहः अनुयात्रम् अनुगं यस्या सा, जलदसमूहानुयात्रा, [इयम् =
 कौमोदकी गदा], शीघ्रम् = क्षटिति, नभसि = गगने, व्रजति = गच्छति ।
 मालिनी वृत्तम् ॥ ४८ ॥

टिप्पणी—मणिकनकविचित्रा—मणयश्च कनकं च मणिकनकानि
 [द्वन्द्व], तै विचित्रा [तृ०त०], (चित्रा इति विचित्रा-शादि०) । चित्र-

वह स्वर्ण और मणिमणिक्यादि से सज्जित है । सुन्दर मालाओं का
 इसका उत्तरीय है । देवताओं के शत्रुदल के शरीरों का नष्टप्रष्ट करने की
 वृष्णा इसे रहती है । यह गिरिवर तट के समान (दृढ़) है इसके अनन्त बल
 का सामना करना अति कठिन है । यह आकाश से तेजी के साथ आ रही
 है—मेघ-माला इसका अनुसरण कर रही है ॥ ४८ ॥

हे नन्दक ! प्रशान्तरूपो भगवान् । गम्यताम् । हन्त निवृत्तः ।
यावद् गच्छामि । अये एतानि भगवदायुधवराणि ।

सोऽय खड्ग खराशोरपहसिततनु. स्वै. करैर्नन्दकाख्य.

सेय कौमोदकी या सुररिपुकठिनोरःस्थलक्षोददक्षा ।

सैषा शार्ङ्गाभिधाना प्रलयघनरवज्यारवा चापयष्टिः

सोऽय गम्भीरघोष. शशिकरविशद. शङ्खराट् पाञ्चजन्य. ॥५१॥

प्रयाति==व्रजति, महोत्केव==महती उल्का प्रज्वलितान्नं काष्ठम्, तदिव
विभाति==शोभते । अनुष्टुप् छन्द ॥ ५० ॥

टिप्पणी—वनिताविग्रह—वनिताया विग्रह इव विग्रह यस्य
(उप० बहु०) । उल्का-उष् + क्; यस्य ल् ॥ ५० ॥

अन्वय—स्वै करै खराशो अपहसिततनु. नन्दकाख्यः सोऽयं खड्ग., या
सुररिपुकठिनोर स्थलक्षोददक्षा सा इयं कौमोदकी प्रलयघनरवज्यारवा सा
एषा शार्ङ्गाभिधाना चापयष्टि । गम्भीरघोष. शशिकरविशद. सोऽयं पाञ्च
जन्य. शङ्खराट् अस्ति ॥ ५१ ॥

संस्कृत टीका—एव निवर्तितानि स्वान्तिके सम्भूय स्थितानि सर्वाणि
भगवदायुधान्युद्दिश्याह—सोऽयमित्यादि । स्वै = स्वकीयैः, करैः =
रश्मिभिः, खराशो = सूर्यस्य, खरा तीक्ष्णा अंशवः किरणा यस्य,
तस्य, अपहसिततनु = अपहसिता उपहास प्रापिता तनुः यस्य स.,

हे नन्दक ! भगवान् का क्रोध शान्त हो गया है । अब आप अपने
स्थान पर पधारिये । अहा ! यह लीट गया । अब मैं भी जाता हूँ । अरे,
ये ही तो भगवान् के श्रेष्ठ आयुध हैं ।

नन्दक नाम का यही वह खड्ग है—जो अपनी किरणों से प्रचण्ड सूर्य
की भी विडम्बना करता है । यही कौमोदकी गदा है जो देवताओं के शत्रुओं
के कठोर उरस्थलों को विदीर्ण करने में दक्ष है । यही शार्ङ्ग नाम का धनु
है—जिसकी डोरी का निर्धोव प्रलय के मेघों की प्रचण्ड गर्जना के समान है
और यही शङ्खराज पाञ्चजन्य है जो चन्द्रकला के समान स्वच्छ है और
जिसका घोष गम्भीर है ॥ ५१ ॥

हे शाङ्ग ! कौमोदकि ! पाञ्चजन्य !
 देवयान्तकृन्नन्दक ! शत्रुबह्ने ! ।

तादृशः, तिरस्कृततीक्ष्णः, नन्दकास्थः = नन्दकनामा, स. = प्रसिद्धः, अयं =
 पुरोदश्यमान, खड्गः = असिः, या = गदा, सुररिपुकठिनोर स्थलक्षोददसा =
 सुराणां देवानां रिपवः शत्रवः, तेषां कठिनानां उरःस्थलानां वक्षःस्थलानां
 क्षोदने भेदने विदारणे वा दक्षा कुशला, दानवपक्षपक्ष स्थलभ्रञ्जनसमर्था,
 मा = पूर्वविज्ञाता एव, इयं = पुरोवर्तमाना, कौमोदकी = कौमोदकीनाम्नी
 गदा, प्रलयधनरवज्यारवा = प्रलये प्रलयकाले ये घनाः मेघाः तेषां रवः स्वतः
 इव ज्याया. मौञ्ज्याः रवः टङ्कृति यस्याः मा, सा = प्रमिद्धा, एषा =
 पुरोदश्यमाना, शाङ्गामिधाना = शाङ्गनाम्नी, चापयष्टिः = धनुर्दण्डः; 'चाप-
 रेखा' इति वा पाठः, चापेषु रेखा चापरेखा धनुःप्रधानं सा, गम्भीरघोषः =
 गम्भीरः गभीरः घोषः गर्जनं यस्य सः, शशिकरविशदः = शशिकः शशिकस्य
 करा किरणाः इव विशदः समुज्ज्वलः, सोऽयं = सर्वजनविदितः एषः,
 पाञ्चजन्यः = एतन्नामकः शङ्खः, शङ्खराट् = शंखराजः, अस्तीति शेषः ।
 उपमालङ्कारः । स्रग्धरा वृत्तम् ॥ ५१ ॥ १५३००

टिप्पणा—खरासोः—खराः अश्व यस्य स खरासु, तस्य (बहु०) ।
 अपहसिततनु—अपहसिता तनुः येन (बहु०) । सुररिपुः—उरसः स्थलं
 उर स्थलम्, कठिनम् उरस्थलं कठिनोरःस्थलम्, सुररिपूणां कठिनोरःस्थलम्,
 तस्य क्षोदे विनाशे दक्षा । प्रलयधनः—प्रलये घनाः प्रलयधनाः, तेषां, रवः
 इव ज्यायारवः यस्याः सा (बहु०) । शाङ्गामिधाना—शाङ्गम् अभिधानं नाम
 यस्याः सा (बहु०) । चापयष्टिः—चापस्य यष्टिः (य० त०) । गम्भीर-
 घोषः—गम्भीर घोषो यस्य स (बहु०) । शशिकरविशदः—शशिकः करः
 शशिकर, शशिकर इव विशदः (उप० त०) । शंखराट्—शङ्खाणां शंख-
 राजा इति (य० त०) ॥ ५१ ॥

अन्वयः—हे शाङ्ग ! कौमोदकि ! पाञ्चजन्य ! देवयान्तकृन्नन्दक !

हे शाङ्ग ! हे कौमोदकि ! हे पाञ्चजन्य ! हे देवो का तंहार करो गाली
 अग्नि के समान नन्दक ! भगवान् कृष्ण का क्रोध दूर हो गया है; अतः आप

प्रशान्तरोपो भगवान् मुरारि

स्वस्थानमेवात्र हि गच्छ तावत् ॥ ५२ ॥

हन्त निवृत्ताः । यावद् गच्छामि । अये अत्युद्धृतो वायुः । अति-
तपत्यादित्यः । पर्वताः चलिताः । क्षुब्धाः सागराः । पतिताः वृक्षाः ।
भ्रान्ता मेघा । प्रलीना वामुकिप्रभृतयो भुजङ्गेश्वरा । किन्तु
खल्विदम् । अये अयं भगवतो वाहनो गरुडः प्राप्त ।

शत्रुवह्ने ! अत्र हि भगवान् मुरारिः शान्तरोपः । स्वस्थानमेव तावद्
गच्छ ॥ ५२ ॥

संस्कृत टीका—हे शाङ्ग ! = हे धनु.श्रेष्ठ, कौमोदकि = विष्णोः गदे,
पाञ्चजन्य ! = विष्णोः शङ्ख !, दैत्यान्तकृत् = हे असुरनाशकर, नन्दक = नन्द-
काश्य खड्ग, शत्रुवह्ने = शत्रूणां तत्सम्बोधने, हे रिपुदाहक !, अत्र =
अस्मिन् समये, भगवान् = पईश्वर्यसम्पन्न, मुरारिः = कृष्ण, प्रशान्तरोप =
प्रशान्त दूरीभूतः रोपः क्रोध. यस्य तादृश., जातः इति रोपः । तावद् = अतः
स्वस्थानम् = स्वनिलयम्, एव = हि, गच्छ = व्रज । उपजाति वृत्तम् ॥ ५२ ॥

टिप्पणी—दैत्यान्तकृत्-दिते अपत्यं पुमान् दैत्यः; दिति + ष्य,
दैत्यानां दानवानां अन्त. दैत्यान्त. (प० त०) दैत्यान्त करोतीति [उप०]
कृत्-कृ + क्विप् ॥ ५२ ॥

संस्कृत टीका—हन्तेत्यादि । हन्त = इति हर्षे । अत्युद्धृत. = अतिशयेन
उद्धृत. अत्युत्कम्पित, अतितपति = अतिशयेन तपति, आदित्य = सूर्यः ।
क्षुब्धा. = मर्यादामतिक्रमितुं प्रवृत्ताः । प्रलीना = प्रकर्षण लीनाः, अदर्शन
गताः । इदं वातात्युत्कम्पनसूर्यानितपनादिकम्, किन्तु खल्विदम् = आज्ञातम्,

सब अपने-अपने स्थान को जाइये ॥ ५२ ॥

अहा ! ये सब लौट गये । अब मैं जाता हूँ । प्रभंजन (वायु) तीव्र वेग
से चलने लगा है । सूर्य अत्यन्त तप रहे हैं । पर्वत हिलने लग
गये हैं । सागर क्षुब्ध हो उठे हैं । वृक्ष गिर रहे हैं । मेघ अस्त-व्यस्त हो
रहे हैं । वासुकि आदि सर्पराज छिप गये हैं । यह भला क्या है ? अरे !

सुरासुराणां परिषेदलब्धं येनामृतं मातृविमोक्षणार्थम् ।
आच्छिन्नमासीद् द्विषतो मुरारेस्त्वामुद्वहामीति वरोऽपि दत्त ॥५३॥

केन निमित्तेन सम्भूतमिति न ज्ञायत इत्यर्थं, अज्ञातार्थे किञ्चिद् : । अये = इति स्मरणे, तच्च निमित्तविषयम्, गरुडः = भगवत् वाहनः, प्राप्तः = सम्निहितः । एवञ्च भगवत्कङ्कुर्याय सन्निधास्यतो गरुडस्य सकोपगतिवेगे वायवतिकम्पादेनिमित्तमिति फलितम् ।

टिप्पणी—उद्वहत्—उद् + धृ + क्त ।

अन्वयः—येन सुरासुराणां परिषेदलब्ध अमृतं मातृविमोक्षणार्थं द्विषतः आच्छिन्नम् आसीत् त्वां उद्वहामि इति मुरारे. वरोऽपि दत्त ॥ ५३ ॥

संस्कृत टीका—गरुडस्य प्रभावमाह—सुरेति । येन = गरुडेन, सुरा-सुराणां = देवदेत्यानाम्, परिषेदलब्धं = परितः सेदः, तेन लब्धम्, अतिपरिधमप्राप्तम्, परिषेदेन समुद्रमणनापासेन लब्धमिति भावः । अमृतं = सुधा, मातृविमोक्षणार्थं = मातु विनताया. विमोक्षणार्थं सपत्नीमातृकद्रुदा-स्यामोचनाय, द्विषतः = शत्रोरिन्द्रात्, आच्छिन्नम् = बलाद् गृहीतं, स्वायत्ती-कृतं तदस्तादित्यर्थं, आसीत् = अभूत्, त्वाम् = भवन्तम्, उद्वहामि = वहनं करोमि, इति = इत्यम्, मुरारेः = उपेन्द्रस्य, वरोऽपि = ईप्सितार्थोऽपि, दत्तः = प्रदत्तः, आसीत्, 'त्वा विष्णुम् उद्वहामि' इति एवंरूपः वरः दत्तः, स गरुड इति पूर्वोणान्वयः । उपजातिवृत्तम् । ५३ ॥

टिप्पणी—सुरासुराणां—सुराञ्च असुराञ्च, तेषाम् । मातृविमोक्षणार्थम्—मातुः विमोक्षणम्, तस्मै इति सुपर्णामुवत्यर्थम् । परिषेदलब्धम्—परिषेदेन लब्धम् (तृ०त्त०) । आच्छिन्नम्—आ + छिद् + क्त । (क) अमृत-हरणविष्णुवरदानकथा महाभारते आदिपर्वणि त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायेऽनुसन्धेया ।

यह भगवान् का वाहन श्रेष्ठ गरुड आ गया ।

जिस अमृत को देवासुरों ने बड़े धम से प्राप्त किया था उसे ही अपनी माता को छुटाने के लिए इन्होंने शत्रु [इन्द्र] से बरबस छीन लिया था । उस समय इन्होंने भगवान् को यह वर दिया था कि 'मैं आपको अपनी पीठ पर उठाया करूँगा' ॥ ५३ ॥

गृह्यताम् ।

वासुदेव -- सर्वं गृह्णामि । किं ते भूय प्रियमुपहरामि ।
 धृतराष्ट्र -- यदि मे भगवान् प्रसन्नः, किमतः परमिच्छामि ।
 वासुदेवः--गच्छतु भवान् पुनर्दर्शनाय ।
 धृतराष्ट्र -- यदाज्ञापयति भगवान् नारायण ।

(निष्क्रान्त.)

पादप्रक्षालनार्थं तोयम् ।

सर्वमित्यादि । भूयः प्रियम् = बहुतरं प्रियम्, उपहरामि = करोमि ।
 गच्छत्वित्यादि । पुनर्दर्शनरूपमीप्सित फलमुद्दिश्य सम्प्रति गमनमभ्यनु-
 जानामीत्यर्थः ।

यदित्यादि । यद् आज्ञापयति = यत् कर्तव्यत्वेनादिशति । तद् गमनमनु-
 तिष्ठामीत्याशयः ।

टिप्पणी—अर्घ्यम्—अर्घ + देयार्थे यत् । पादम्—पाद + यत् । प्रशस्तिः
 शुभशसनम्' इत्युक्तलक्षणा प्रशस्ति वक्ष्यन् तस्या अनुकार्यवाक्यत्वायोगादाह-
 भरतेति । भरतवाक्यम् = भरतस्य नटस्यानुकतुर्वैक्य भरतवाक्यम् । प्रशस्ति-
 माह—इमामिति ।

को स्वीकार करें ।

वासुदेव—मैं सब कुछ स्वीकार करता हूँ । कहिये, मैं आपका क्या
 हित कर सकता हूँ ।

धृतराष्ट्र—यदि भगवान् मुझ पर प्रसन्न हैं तो इससे बढ़कर मुझे और
 क्या चाहिये ।

वासुदेव—अब आप पधारिये, फिर दर्शन दीजियेगा ।

धृतराष्ट्र—भगवान् की जैसी आज्ञा ।

(प्रस्थान)

(भरतवानयम्)

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् ।

महीमेकातपत्राङ्गा राजसिंहः प्रशास्तु न ॥ ५६ ॥

अन्वयः—नः राजसिंह सागरपर्यन्ता हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् एकात-
पत्राङ्गाम् इमां मही प्रशास्तु ॥ ५६ ॥

संस्कृत टीका—न=अस्माक, राजसिंह. = राजा सिंह इव, शौर्यधैर्या-
नियोगाद् राजसिंहः, सिंहसदृशपराक्रमी राजा, सागरपर्यन्तां=सागराः
समुद्राः पर्यन्ताः अन्तिमाः सीमा. यस्याः सा ताम्, हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्=
हिमवान् हिमालयपर्वतः विन्ध्यः विन्ध्यावल्लव इति हिमवद्विन्ध्यौ तौ एव
कुण्डले कर्णकुण्डलस्यापन्नौ यस्याः सा ताम्, आर्यावर्तस्य उत्तरदक्षिणसीम-
भूतौ पर्वतत्रिशेषौ कुण्डले शोभाकरत्वाद् कुण्डलम्पानीयो यस्यास्ताम् ।
एकातपत्राङ्गाम्=एकम् अद्वितीयम् आतपत्रं छत्रम् अङ्कः चिह्नं यस्या सा
ताम्, एकः अधिपत्येकत्वाद् एक एव, न त्वनेकः आतपत्राङ्कः श्वेतच्छत्ररूप-
मधिपतिचिह्नं यस्यास्तां तथाभूताम्, इमाम्=दृश्यमानाम्, महीम्=
पृथिवीम्, प्रशास्तु=प्रशंसनं करोतु, अधिकारोतु एकाधिपतिविशिष्टत्वाकारेण
शासनविषयकरोतु । अस्माकं=राजा-समशाया भारतभूयोऽप्रतिमो भर्ता
स्यादिति भावः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ५६ ॥

भाषार्थ—इय पृथ्वी यस्याः पूर्वस्यां पश्चिमायां च दिशि समुद्रो
विराजते, तथा यस्याः उत्तरस्यां दिशि हिमालयः, दक्षिणस्या च दिशि
विन्ध्यावल्लवः कर्णकुण्डलरूपेण शोभते—राजाधिराजेन एकच्छत्राधिपेन
प्रशासिता भवतु । अस्माकं राजा भूमेरस्याः कृत्स्नाया सार्वभौमो भूयादिति
श्लोकपरमार्थः ॥ ५६ ॥

टिप्पणी—एकातपत्राङ्गाम्—आतपाद् त्रायते इति आतपत्रम् (५०

(भरत वाच्यम्)

हमारे राजसिंह इस सागर-मैललित पृथ्वी पर शासन करें जो एकच्छत्र
राज्य वाली है तथा हिमालय और विन्ध्यावल्लव जिसके कुण्डल हैं ॥ ५६ ॥

(निष्क्रान्ता भवे)

॥ दूतवाक्य समाप्तम् ॥

—०—

त०) एकम् आतपत्रम् (कम०) एकातपत्रम् अद्भु यस्या सा, ताम्
(बहु०) । राजसिंह — राजा सिंह इव (उप० समान) । सिंहशादूलनागाद्या
पु सि श्रेष्ठार्थं वाचका'—इत्यमर । प्रशास्तु—प्र + शास + लोट
(आशिपि) ॥ ५६ ॥

नटराज नमस्कृत्य देवीं च भरत तथा ।

भागीरथ्यास्तटे काश्या लकाक्षेत्रे सुशोभने ॥ १ ॥

श्रीमद्रामकुवेरस्य मालवीयस्य मनुना ।

सुधाकरेण रचिता व्याख्या ज्योत्स्ना समविता ॥ २ ॥

॥ इति डा० सुधाकरमालवीयकृताया दूतवाक्यस्य ज्योत्स्ना
व्याख्यायां प्रथमोऽङ्कः ॥

॥ समाप्तमिदं दूतवाक्य नाम नाटकम् ॥

—०—

(सभी का प्रस्थान)

॥ दूतवाक्य समाप्त ॥

॥ इस प्रकार महाकवि प० रामकुवेर मालवीय के आत्मज
डा० सुधाकर मालवीय कृत दूतवाक्य नाटक को 'सरला'
हिन्दी व्याख्या पूण हुई ॥

—०—

परिशिष्ट-१

श्लोकानुक्रमशिका

| प्रतीकानि | श्लोक संख्या | प्रतिकानि | श्लोक संख्या |
|---------------------------|--------------|-----------------------|--------------|
| अक्षान् क्षिपन् | १२ | अनुमृदुत् | ४७ |
| अनुभूतं महद् | २० | दातुमर्हसि | ३४ |
| अवस्था प्रमदा | ३६ | दुःशासनपरा | ७ |
| अव्यक्तादि | ४३ | दुष्टवादी गुण० | १६ |
| अहमवधूत | ३७ | देवात्मजैर्मनुःश्यासा | ३० |
| आवामा वायिवानाम् | १५ | धर्मात्मजो | १९ |
| इमा सागर० | ५६ | ननु हव चित्र० | ३३ |
| उत्पन्ने घातंराष्ट्राणाम् | २ | नीचोऽहमेव | ११ |
| उत्साहेन मतिम् | १७ | षाद. पापात् | १ |
| उद्धूतरोष | ४ | पुण्यसचय | १५ |
| एते स्थिता विपति | ५४ | पूर्णेन्दुकुन्द० | ४९ |
| एव परस्पर० | २३ | प्रतापमानः | ३१ |
| करितुरगनिहन्ता | ३९ | प्रहरति यदि | ३५ |
| कर्तव्यो भ्रातृषु | २९ | प्रातः किलाद्य | १३ |
| कि मेरुमन्दर० | ४४ | मणिकनक० | ४८ |
| कृतपरिकरबन्धो | १० | मत्कातमु'कोदर० | ४१ |
| कृत्वा पुत्रविभोगात्री | २७ | मम पुत्रापराधात् | ५५ |
| कृष्णापराभव | १४ | महीभारापनयनम् | ४६ |
| कैरातं क्षु | ३२ | यदि लवणजलम् | ४५ |
| ग्रहणमुपगते | ६ | राज्यं माम | २४ |
| जमातृनाश | २८ | रोपाकुलाक्ष. | ९ |

| प्रतीकानि | श्लोक सख्या | प्रतीकानि | श्लोक सख्या |
|---------------|-------------|------------------------|-------------|
| वनिताविग्रहो | ५० | सुयोधनोऽयं | १८ |
| वने पितृव्यो | २१ | सुरासुराणा | ५३ |
| विचित्रवीर्यो | २२ | सृजति यदि | ४० |
| शठ बान्धव | ३८ | सेनानिनाद | ५ |
| श्यामो युवाः | ३ | सोऽयं खड्गः | ५१ |
| श्रुत्वा गिरं | ४२ | स्यालं तव | २६ |
| सत्यधर्मघृणा | ८ | हे शाङ्ग ! क्रीमोदकि ! | ३२ |

—*—

परिशिष्ट—२ दूतवाक्य के श्लोको की छन्दयोजना

| छन्द का नाम | अक्षर सख्या | श्लोकाङ्क | योग | लक्षण |
|------------------|--------------|---|-----|---|
| अनुष्टुप (श्लोक) | ८ | १, २, ७, ८, १६, १७, २०, २१, २७, २९, ३१, ३३, ३४, ३६, ३८, ४३, ४६, ५०, ५५, ५६, | २२ | दशोके षष्ठ गुरु ज्ञेय सर्वत्र लघु पञ्चमम् । द्विषतुष्ट्यादयोह स्व सप्तम दोषमप्ययो ॥ |
| उपजाति | ११ | ९, १८, १९, २२, २८, ५२, ५३ | ७ | स्याद्विद्ववजा यदि तो जगो ग । इत्यनयोश्चजाति उपेन्द्रवजा अतजास्ततो गो । |
| पुष्पिताया | १२/१३, ६, ३७ | | २ | अयुजि नयुरेफ्तो यकारो यु च नजो जरगश्च पुष्पिताया । |
| वद्यस्य | १२ | २१ | १ | अतो तु वद्यस्यमुदीरित जरो । |
| वसन्ततिलका | १८ | ३५, ११, १८, २३, ४१, ४२, ४४, ८९, ५४ | १३ | ज्ञेया वसन्ततिलकातमजा जगो त । ननमप्युतेय मालिनी भोगिलोकं । |
| मालिनी | ११ | १०, ३५, ३९, ४०, ४५, ४७, ४८ | ७ | |
| शादूलविक्रीडितम् | १९ | २४, ३२ | २ | सर्पासर्वेदि म सज्यो सततगा शादूलविक्रीडितम् । ज्ञेया सप्ताश्वपडभिर्नरमनपयुता म्लो ग सुवदना । |
| सुवदना | २० | ११ | १ | अन्नैर्यान्नात्रयेण त्रिमुनि यति युता स्रगधरा कीर्तितयम् । |
| स्रगधरा | ५१ | ५१ | १ | |
| | | | ५६ | |

परिसिष्ट-३

सुभाषित-संग्रह

- १—आ । मनुष्याणामस्त्वय सध्रम । [पृ० १३]
- २—अलमल बन्धुजने परुषमभिघ्रातुम् । [पृ० ३०]
- ३—कर्तव्यो भ्रातृषु स्नेहो विष्मत्तमा गुणतरा ।
सम्बन्धो वन्धुभि श्रेयान् लोकबोद्धव्योरपि ॥ २९ ॥
- ४—को नाम लोक स्वयत्मात्मदोषमुदघाटयेन्नष्टघृण सभासु ॥ १८ ॥
- ५—देशकालावस्थापेक्षि खलु शीर्षं नयानुगामिनाम् [पृ० ३२]
- ६—दूताधिकारमवमानममृष्वमाणा ।
सत्त्वाधिकेषु वचनीयपराक्रमा स्तु ॥ ११ ॥
- ७—पुण्यसञ्चयसम्प्राप्तान्निगम्य नृपश्रियम् ।
वञ्चयेद् य सुहृद्वन्धून् स भवेद्विकलध्रम ॥ २५ ॥
- ८—राज्य नाम नृपात्मर्जे सहृदयैर्जित्वा रिपून् भुज्यते ।
तल्लोके न हि याच्यते न तु पुनर्दीनाश्च वा दीयते ॥ २४ ॥

चौखम्बा अमरभारती ग्रन्थमाला

३८

भासनाटकचक्रे

दूतघटोत्कचम्

'कल्याणी' संस्कृत-हिन्दी-व्याख्योपेतम्

व्याख्याकार -

पण्डित रामनाथत्रिपाठी शास्त्री



चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन.

वाराणसी

१९७९

प्रकाशक : चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी

मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०३६

मूल्य : ३-००

© चौ ख म्बा अ म र भा र ती प्र का श न

के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन

पो० बा० १३८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा संस्कृत सीरोज आफिस

के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन

पो० बा० ८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)

फोन : ६३१४५

CHAUKHAMBA AMARABHARATI GRANTHAMALA

38



DŪTĀGHĀTŌTCĀCH
OF

MAHĀKĀVI BHĀSA

Edited With

'Kalyani' Sanskrit-Hindi Commentaries

BY

Pt. RAMANATH TRIPATHI SHASTRI



Chaukhamba Amarabharati Prakashan

. NASI-221001

भूमिका

महाकवि भास

महाकवि भास संस्कृत साहित्य के प्रख्यात एवं लब्धप्रतिष्ठ कवियों में से हैं। कविकुलगुरु कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' नाटक में सूत्रधार के मुख से प्रश्न कराया है कि प्रथितयश वाले भास, सीमिल्ल, कविपुत्र आदि कवियों की कृतियों का अतिक्रमण कर, वर्तमान कवि कालिदास की कृति का इतना अधिक सम्मान क्यों किया जा रहा है? इस कथन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि कालिदास के समय में महाकवि भास अत्यन्त प्रसिद्ध थे और उनके नाटकों को अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त थी। हर्ष के समान-पण्डित वाणभट्ट ने 'हर्षचरित' में भाम के नाटकों की प्रशंसा करते हुए कहा है कि भास ने सूत्रधार से आरम्भ किये गये, बहुत भूमिका वाले तथा पताका (१—नाटकीय व्यंग्य 'पताका स्यात्' २—ध्वजा) से युक्त देवकुलो के तुल्य अपने नाटकों से अच्छा यश प्राप्त किया।^२ यहाँ यह अवश्य है कि संस्कृत के नाटक सामान्यतया नान्दी से प्रारम्भ होने हैं किन्तु भाम के नाटक सूत्रधार से प्रारम्भ होते हैं और उनमें नान्दी का सर्वथा अभाव रहता है। वाक्यपतिराज ने अपने 'गुणवहो' नामक प्राकृत महाकाव्य में भास को 'जलणमित्र'—ज्वलनमित्र (अग्नि का मित्र) कहा है।^३ भास ने वासुदेवता के अग्नि में जल जाने की झूठी खबर फैलाकर नाटकीय वस्तु-विकास का उपयुक्त अवसर निकाला है। अतः बहुत सम्भव है इसी से भास को 'ज्वलनमित्र' कहा गया है। राजशेखर ने अपनी 'काव्य-

१ 'प्रथितयशसा भाससीमिल्लकविपुत्रादीना प्रवन्द्यान्तिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवे कालिदासस्य कृतौ बहुमानः।'—मालविकाग्निमित्र

२. सूत्रधारकृतारम्भेर्नाटकेष्वहुभूमिकैः ।

सपताकैर्यशोनेभे भासे देवकुलैरिव ॥—हर्षचरित ।

३. भासमि जलणमित्रे वन्तीदेवे तहावि रद्भुआरे ।

सो बन्धवे अ वन्धमि हारि अन्दे अ आणन्दो ॥—गुणवहो ।

प्रकार का भरत वाक्य है। शेष नाटको के भरत वाक्य में भी प्रायः 'राज-सिंह प्रशास्तु न' इस वाक्य का प्रयोग अवश्य मिलता है।

५—इन सभी नाटको की भाषा तथा शैली में अद्भुत समानता पायी जाती है।

६—इन नाटको में भरत-प्रतिपादिन नाट्यनियमों का कठोरता से पालन नहीं किया गया है। मृत्यु, युद्ध आदि का रगमञ्च पर प्रदर्शन किया गया है तथा अभिषेक, पूजा, शपथ अथवा अश्रु-प्रक्षालन के लिये जल रङ्गमञ्च पर लाया है। इसी प्रकार घायन, क्रीडा तथा दुराह्वान की भी योजना रग-मञ्च पर ही की गयी है।

७—इन नाटको में कुछ शब्दों का प्रयोग उनके प्रचलित अर्थों से भिन्न अर्थ में किया गया है। जैसे—आर्यपुत्र शब्द का प्रयोग अनेकत्र ऐसे अर्थों में हुआ है जिसका विधान नाट्य शास्त्र में नहीं है।

८—इन सभी नाटको में 'आकाशभाषित' की योजना प्रायः मिलती है।

९—इनमें से कई नाटको में छोटे छोटे पात्रों के नामों में अभिन्नता पायी जाती है। जैसे—प्रतिज्ञा यौगन्धरायण और दूतवाक्य इन दोनों नाटको में कञ्चुकी का नाम वादरायण है। इसी प्रकार स्वप्नवासवदत्त, प्रतिमानाटक, प्रतिज्ञा यौगन्धरायण और अभिषेक इन चारों नाटको में प्रतिहारी का नाम विजया है।

१०—प्रायः सभी नाटको में नाट्यनिर्देश की न्यूनता समान रूप से मिलती है। जो नाट्यनिर्देश दिये भी गये हैं उनमें दो-दो, तीन-तीन निर्देश एक साथ हैं। जैसे—'निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य'।

११—इन सभी नाटको के नामों का उल्लेख तत्तन्नाटको के अन्त में ही किया गया है, अन्यत्र नहीं।

१२—अधिकांश नाटको में 'पनाका स्थान' और 'मुद्रालङ्कार' का एक समान प्रयोग किया गया है।

१३—इन नाटको में पाणिनीय व्याकरण के नियमों का कड़ाई से पालन नहीं किया गया है, बल्कि अनेकत्र अपाणिनीय प्रयोग मिलते हैं।

१४—इन सभी नाटकों में समान भावना, समान दृश्यों की अवतारण,

समान शब्दों और समान वाक्यों की उपलब्धि एवं समान वर्णन-पद्धति द्रष्टव्य है !

उपयुक्त समानताओं के आधार पर यह स्पष्ट सिद्ध है कि इन नाटकों का प्रणेता कोई एक ही व्यक्ति था । इन नाटकों में से स्वप्नवासवदत्त की रचना भास द्वारा हुई, इसमें राजशेखर का पूर्वोक्त साक्ष्य उपलब्ध है । इसके अतिरिक्त आचार्य अभिनव गुप्त ने भी 'अभिनव भारती' में स्वप्नवासवदत्त का उल्लेख किया है ।^१ फलन-वन् अन्य नाटकों को भी भासकृत माना गया है जो पूर्वोक्त समानताओं के आधार पर नितान्त युक्त है ।

भास का समय

कालिदास ने अपने नाटक 'मालविकाग्नि मित्र' में भास को आदर पूर्वक स्मरण किया है, अतः स्पष्ट सिद्ध है कि भास कालिदास से प्राचीन थे । कुछ लोग कालिदास का समय ४०० ई० बताते हैं तदनुसार भास ४०० ई० से पूर्व के सिद्ध होते हैं । कुछ विद्वान् कालिदास का समय ईसा की प्रथम शताब्दी निश्चिन करते हैं, उस आधार पर भास ईसा की प्रथम शताब्दी से प्राचीन ठहरते हैं । चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र नामक ग्रन्थ में 'अपीह श्लोको भवत' कह कर दो श्लोक उद्धृत किये हैं, इनमें दूसरा श्लोक 'प्रतिज्ञा योग्यधरायण' में मिलता है । जो इस प्रकार है—

नयं शरायं सलिलैः सुपूर्णं मुसस्कृत दर्भकृतोत्तरीयम् ।

तत्तस्य मा भून्नरकं स गच्छेद् यो भर्तृपिरुडस्य कृते न युध्येत् ॥

चाणक्य ने उक्त श्लोक को अवश्य ही भास से लिया होगा । यदि किसी स्मृति का होता तो अवश्य ही 'इति स्मृती' लिखते । इतिहासकार चाणक्य का समय ई० पू० ४०० मानते हैं अतः भास इससे प्राचीन ठहरते हैं ।

भास के प्रतिमानाटक में बृहस्पति कृत अर्थशास्त्र में रावण की दक्षता का उल्लेख हुआ है ।^२ बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र चाणक्य से बहुत पहले का है । यदि भास चाणक्य के बाद होते तो उसके अर्थशास्त्र का उल्लेख

१. षवषिक्कीड.—यथा वासवदत्तायाम् ।

२. भो' कश्यप गोत्रोऽस्मि, साङ्गवेदमधीदे... बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रं ।

भास के नाटको की प्रमुख विशेषता उनकी अभिनेयता है। ये सभी नाटक थोड़े हेर फेर के साथ बड़ी सरलता से रगमच पर अभिनीत होने योग्य बने हैं। इनमें न तो वर्णन की प्रचुरता है और न अनावश्यक कथावस्तु का विस्तार ही है अतः इनके अभिनय में किसी तरह के प्रतिरोध की गुञ्जाइश नहीं है।

भास का नैपुण्य चरित्रचित्रण में अद्वितीय है। वे अपने पौराणिक पात्रों को इतनी वास्तविकता मनोवैज्ञानिकता और मार्मिकता से चित्रित करते हैं कि वे पाठको अथवा दर्शकों को सर्वथा नवीन लगते हैं। भास ने पद्यों के माध्यम से अपने पात्रों में सवाद कराने का जो ढंग अपनाया है वह भी उनकी नाटककला के वैलक्षण्य का द्योतक है। किसी पद्य को कई भागों में विभक्त कर उन्हें वे अपने विभिन्न पात्रों के मुख से कथोपकथन के रूप में प्रस्तुत करवाते हैं जिससे सवादों में भावोत्तकता और चुटीलापन पैदा हो जाने से विशेष नाटकीयता आ जाती है। भास के प्रायः सभी पात्र अन्तर्द्वन्द्व युक्त होने के कारण काल्पनिक नहीं लगते अतएव उनके प्रति दर्शकों के हृदय में पूर्ण सहानुभूति उत्पन्न होती है। अपने नाटको में भास ने इसी उद्देश्य से सघनपूर्ण घटनाक्रम की मृष्टि की है।

नाटको को प्रभावोपादक बनाने में भास की कवित्वशक्ति का भी बड़ा हाथ है। इनकी कविता में प्रवाह और प्रसाद है। भास न प्रसङ्ग वश अपने नाटका में सन्ध्या, रात्रि, तपोवन, भव्याह्न इत्यादि का जो वर्णन किया है वह बड़ा ही सजीव तथा पूरे दृश्य का विम्ब ग्रहण कराने में पूर्ण सफल हुआ है। मानवीय तथा बाह्य प्रकृति के चित्रण में भास बेजोड़ है। रात के सघन अन्धकार का प्रभावशाली वर्णन देखिए—

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीराञ्जन नभः ।

असत्पुरुपसेवेव दृष्टिर्निष्फलता गता ॥ —बालचरित १।१५

भास के इस पद्य का पूर्वार्द्ध अपने वैशिष्ट्य के कारण अलंकारशास्त्र में उत्प्रेक्षा का प्रसिद्ध उदाहरण माना जाता है।

भास के नाटको में सुन्दर से सुन्दर उपमाएँ मिलती हैं—

सूर्य इव गतो राम, सूर्य दिवस इव लक्ष्मणोऽनुगतः ।

सूर्य दिवसायसाने छायेन न दृश्यते सीता ॥प्रतिमा २।७

श्रयोध्यामट्रीभूता पित्रा भ्रात्रा च वर्जिताम् ।

पिपासार्ताऽनुधावामि क्षीणतोया नदीमित्र ॥ प्रतिमा ३१०

भास न अनेकत्र पात्रा के मुह से जा नीतिष्ठाक बहलवाये हैं वे भी भृहृहरि के नीतिशोरा के समान ही हृदयावर्जक है। इस प्रकार भास के नाटका म नाटकीय विधान ने साथ कवि व का स्तु य सहयोग मिलता है।

भास की शैली

भास के नाटकों की शैली अपनी विशिष्ट महत्ता रखती है। प्रसाद माधुर्य और ओज इनकी शैली के विशेष गुण हैं। भास को विषट बन्ध विषट बन्धना और लम्बे लम्बे समस्त पदों से घृणा है क्योंकि नाटक के लिये य मय सर्वथा अनुपयुक्त हैं। छोटे छोटे सरल वाक्यों में गम्भीर तथा रसपेशल भावों की व्यञ्जना भास की शैली की प्रमुख विशेषता है। इनके द्वारा प्रयुक्त लौकोक्तियों एवं सूक्तियों से अलङ्कृत छोटे छोटे वाक्यों की व्यञ्जना एवं प्रभा यों पादवत्ता को देखकर सट्टज अनुमान होता है कि इनका समय म संस्कृत लोकोपदेश की भाषा रही होगी। यद्यपि इनकी शैली प्रायः प्रसाद एवं माधुर्यगुण से ही अधिक सम्पन्न है तथापि प्रमगानुबूज वीर रस की अभिव्यक्ति म ओज का भी आश्रय लिया है और वीर रस की व्यञ्जना में भी इन्हें पूरी सफलता मिली है।

भास के नाटकों में उपमा रूपक और उपदेशा जैसे गरल भावों रपक एवं प्रचलित अलंकारों का ही अधिकतर प्रयोग हुआ है। सीमित शब्दों तथा सरल भाषा में हृदयगत भावों को अभिव्यक्त करना भास की अपना विशेषता है। राम के वन वन जाने पर दशरथ की वरुण दगा का चित्र सीधे साद शब्दों में दक्षिण—

पतत्युत्थाय चोत्थाय हा हेत्युन्चैर्लपन गुट् ।

दिशं पत्यति तामेत्र यया यातो रधूद्वह ॥

हा वत्स ! राम ! उगता नयनाभिराम !

हा वत्स ! लक्ष्मण ! सलक्षणसर्वगात्र !

हा साध्वि ! मैथिलि ! पतिस्थितचित्तशृत्ते !

हा हा गता किल वन प्रत मे तनूना ॥—प्रतिमा २३१४

भास ने दर्शक या पाठक का धीरज्ञान बढ़ाने के लिए नहीं बही ऐसे

नाटकीय-व्यंग्यो की अवतारणा की है कि वे दशक या पाठक के हृदय को सहसा भूकम्पों देते हैं। जैसे—‘प्रतिज्ञा योगन्वरायण’ में जब महासेन और अङ्गारवती परस्पर विचार-विमर्श कर रहे हैं कि त्रासवदता के लिए कौन राजा उपयुक्त है, उसी समय कञ्चुकी आकर सहसा कहता है—‘वत्सराज’। इस प्रकार उनके प्रश्न का आकस्मिक उत्तर मिल जाता है, यद्यपि कञ्चुकी कहने आया था कि वत्सराज बन्दी बना लिया गया, जैसा कि आगे वह स्वयं स्पष्ट करता है। इसी प्रकार ‘अभिषेक’ नाटक में जब रावण सीता से कहता है कि इन्द्रजित् ने राम और लक्ष्मण को मार डाला। अब तुम्हें कौन मुक्त करेगा? उसी समय एक राक्षस सहसा आकर कहता है ‘राम’। यद्यपि वह कहना यह चाहता है कि राम ने इन्द्रजित् को मार डाला। भास की यह पद्धति अत्यन्त प्रभावोत्पादक है।

भास अल्प शब्दों के द्वारा भाव-व्यंजना के अतिरिक्त कहीं-कहीं शब्द-प्रयोग के बिना ही, या यों कहिए कि मौन का आश्रय लेकर हृदगत समस्त भावों की मार्मिक व्यंजना कर देते हैं। जैसे—‘अनुब वव वन गता-।’—प्रतिमा २।१७। इससे बढ़कर शैली की सक्षिप्तता और क्या हो सकती है? राम-लक्ष्मण-सीता के अकथनीय हृदगत भावों के मर्मस्पर्शी चित्र भी उपस्थित कर दिये और अपनी ओर से उसके लिए एक भी शब्द का प्रयोग नहीं करना पड़ा। अतः भास की शैली नाटककारों के लिए आदर्श शैली कही जानी चाहिए।

भास के दोष

भास के नाटकों में कुछ त्रुटियाँ भी मिलती हैं। जैसे—(१) ‘निष्क्रम्य प्रविशति आदि द्रुतगतिवाले नाटकीय निर्देशों का आधिक्य इनकी वास्तविकता में सन्देह उत्पन्न कर देता है। (२) इनके नाटकों में कालान्विति का भी अभाव है जिसे स्वप्नवासवदत्त, चारुदत्त, बालचरित, अभिषेक आदि नाटकों में स्पष्ट देखा जा सकता है। (३) कृष्ण के निर्जीव शस्त्रास्त्रों का (‘बालचरित’ में) मानवरूप में रंगमंच पर उपस्थित होना अस्वाभाविकता उत्पन्न कर देता है। (४) नाट्यशास्त्र द्वारा वर्जित दृश्य (युद्ध, मरण आदि) को भी रंगमंच पर दिखाया गया है। (५) अपरिचित पात्रों का सहसा प्रवेश नाट्यशास्त्र-विरुद्ध है। इससे अस्वाभाविकता भी आ जाती है।

किन्तु ये दोष साधारण हैं। इनसे भास के महत्त्व में कोई कमी नहीं आती। ‘एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाद्भुः।’

दूतघटोत्कच : समीक्षा

कथावस्तु

इस नाटक का कथानक अभिमन्यु के मरण के बाद की घटनाओं से सम्बन्ध रखता है। कौरवों की चाल से अर्जुन को क्रुश्रोत्र छोड़कर सशक्त सज्जाओं से लड़ने के लिए दक्षिण प्रदेश में जाना पड़ा। अर्जुन के साथ ही श्रीकृष्ण के भी चने जाने से पाण्डवों को असहाय समझ कौरवों की तरफ से द्रोणाचार्य ने कौशलपूर्ण ढंग से पद्मव्यूह (चक्रव्यूह) बनाकर उनके भेदन में पाण्डवों को अशक्त जान ललकारा।

युधिष्ठिर ने अभिमन्यु का इस व्यूह भेदन के लिए भेजा और स्वयं चारों पाण्डव उसके पीछे जाने के लिए तैयार हुए। अकेले अभिमन्यु से ही पार न पा सकने से कौरवों ने वरप्राप्त जयद्रथ (दुःशलापति तथा दुर्योधन का बहनोई) के द्वारा पाण्डवों को अवरुद्ध कर भीतर प्रविष्ट नहीं होने दिया। सब कौरवों ने धूल कपट का आश्रय ल एकाकी बालक अभिमन्यु को निहत्था कर मार डाला।

नाटक के प्रारम्भ में नान्दीपाठ के अनन्तर सूत्रधार विष्णु की प्रार्थना कर ज्यों ही नाटक की सूचना देने को तत्पर होता है, उसे कोलाहल सुनाई देता है जिससे वह समझ जाता है कि सशक्तों से लड़ने के लिए अर्जुन के चने जाने पर, भीष्मवध से चिढ़े हुए धृतराष्ट्र के पुत्रों ने अभिमन्यु को घेर कर मार डाला और उसके बाणों से क्षत-विक्षत राजा लोग अर्जुन की प्रतिहिंसा से डरे हुए अपने अपने शिविर में प्रवेश कर रहे हैं। इसपर अभिमन्यु के मार जाने का वृत्तान्त सुनाने के लिए भट धृतराष्ट्र के पास जाता है और कहता है कि अपने पिता अर्जुन के समान पराक्रम दिखाने वाले बालक अभिमन्यु को कौरव-वीरो ने मार डाला। इस समाचार से स्तब्ध धृतराष्ट्र से गान्धारी कहती है कि इस बालक के वध से कुलनाश का समय उपस्थित हो गया। धृतराष्ट्र भी कहते हैं कि जब पुत्र शोक से सन्तत अर्जुन क्रुद्ध होकर

धनुष ग्रहण करेगा तो पूरे विश्व का विनाश हो जायगा। वही उनकी पुत्री दुःशला भी बैठी है। वह कहती है कि जिसने अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा को विधवा बनाया उसने अपनी स्त्री को भी वैधव्य दिया है। धृतराष्ट्र के पूछने पर भट (जयद्रथ) ने बताया कि अभिमन्यु को बहुत से राजाओं ने मिल कर मारा किन्तु इसके निमित्त थे जयद्रथ। यह सुनकर धृतराष्ट्र ने कहा— यदि जयद्रथ निमित्त थे तो वे मारे गये। दुःशला भी रोने लगती है। लोग दुःशला को समझते हैं किन्तु धृतराष्ट्र कहते हैं कि कृष्ण, बलराम और पाण्डवों के स्नेहभाजन अभिमन्यु को मार कर संसार में कौन है जो जीवित बचेगा ? भट के यह बताने पर कि संशतको के साथ युद्ध करने के लिए दूर गये हुए अर्जुन को दिखाने के लिए ही युधिष्ठिर आदि पाण्डव मृतक अभिमन्यु को रोक रहे हैं, धृतराष्ट्र को पक्का विश्वास हो जाता है कि अब कौरवों को विनष्ट होने से कोई बचा नहीं सकता। यहाँ तक तो कथा की पृष्ठभूमि अथवा पूर्वाह्न समझना चाहिए। अब आगे दुर्योधन, दुःशासन और शकुनि आदि के प्रवेश के साथ कथा के उत्तरार्द्ध का प्रारम्भ समझना चाहिए। दुर्योधन आदि अभिमन्यु के मारे जाने से बहुत प्रसन्न होते हैं और धृतराष्ट्र का अभिवादन करते हैं किन्तु वे आशीर्वाद देने के स्थान पर मीन धारण किये रहते हैं। कारण पूछने पर धृतराष्ट्र कहते हैं—‘कृष्ण और अर्जुन के प्रिय अभिमन्यु को मार कर तुम लोग जीवन से पराङ्मुख हो गये हो अत आशीर्वाद देना व्यर्थ है। सौ पुत्रों के बीच हुई एक प्रियपुत्री दुःशला भी तुम लोगों की कृपा से वैधव्य को प्राप्त हो गयी।’ इस पर दुर्योधन ने कहा कि अकेले जयद्रथ ने नहीं, अभिमन्यु को बहुत से वीरों ने रोक कर मारा। यह सुनकर धृतराष्ट्र ने भर्त्सना करते हुए कहा कि अकेले बालक को मिल कर मारते हुए तुम लोगों की भुजाएँ गिर क्यों नहीं गयीं। दुर्योधन ने इसका सटीक उत्तर यह कह कर दिया कि छलपूर्वक भीष्मपितामह को मारने वाले पाण्डवों की भुजाएँ नहीं गिरी तो आप हमारी ही भर्त्सना क्यों कर रहे हैं। धृतराष्ट्र ने चेतावनी देते हुए कहा कि जब अकेले बालक अभिमन्यु ने इतना पराक्रम दिखाया तो पुत्र-मरण से शोकातं अर्जुन कितना पराक्रम दिखायेंगे ? अवज्ञापूर्वक दुर्योधन के पूछने पर कि अर्जुन का कैसा पराक्रम है,

धृतराष्ट्र ने कहा—अर्जुन के पराक्रम के विषय में तुम निवात-कवच दानवों के जीवनरूप उपहार से अर्चन इन्द्र से पूछो, किरात वेष में अर्जुन के अस्त्रों से परितुष्ट हुए शङ्कर से पूछो, खाण्डव वन में सर्पों की आहुति से तृप्त हुए अग्नि से पूछो और पूछो उस विश्वाङ्गद नामक गन्धर्व से जो तुम्हें बांधकर आनाश में ले जा रहा था और उस समय अर्जुन ने ही तुम्हें बचाया था ।

धृतराष्ट्र की बात सुनकर दुर्योधन ने कहा—‘भैरो सेना में महारथी कर्ण अर्जुन से प्रभाव और पराक्रम में कम नहीं है ।’ धृतराष्ट्र ने उत्तर दिया—‘कर्ण बेचारा तो हास्यास्पद है । इन्द्र ने उमका कवच ले लिया है । वह अधरथी और प्रमादी है । कपट द्वाग सीखे गये उसके अस्त्र भी विफल हो गये हैं अब वह अर्जुन की क्या तुलना कर सकता है ?’

इतने में शकुनि कहने लगा—‘आप हम लोगों की भत्सना करने में समर्थ हैं ।’

धृतराष्ट्र ने कहा—अरे शकुनि ! द्रुपदीडा में दक्ष तू ने जो कर्म किया है, उसी का यह परिणाम है कि कौरव कुल की यह द्वैपायनि शिशु की आहुति के पश्चात् भी नहीं जात हो रही है ।

उसी समय शंभु, पटह और मिहनाद मिश्रित घोर शब्द सुनाई पडा और दुर्योधन ने उसके कारण का पता लगाने के लिए भट (जयन्नात) को पाण्डवों के शिविर में भेजा । भट ने जाकर और लौट कर बताया कि कृष्ण में वारम्बार प्रेरित होकर अर्जुन ने भृतपुत्र को गोद में लेकर प्रतिज्ञा की है कि जिस कौरव पत्नीय ने मेरे पुत्र का वध किया है और जो राजागण उससे सन्तुष्ट हुए हैं उन सबको मैं कल सूर्यास्त के पूर्व ही मार डालूंगा और यदि ऐसा न कर सका तो चित्तारोहण कर प्राण दे दूंगा ।

यह सुन कर दुर्योधन आदि प्रमत्त हो कहते हैं कि द्रोणाचार्य की मन्त्रणा से ऐसा ब्यूह रचा जायेगा कि अर्जुन जयद्रथ का पता न पा सकेंगे और चित्तारोह हो जायेंगे । उनकी बात सुनकर धृतराष्ट्र कहते हैं कि चाहे तुम लोग पृथ्वी में समा जाओ, चाहे आकाश मण्डल में उड जाओ किन्तु कृष्ण द्वारा निर्दिष्ट अर्जुन के बाण तुम लोगों का पीछा सर्वत्र करेंगे ।

‘उत्सृष्टिकाङ्क एकाङ्को नेतारः प्राकृता नराः ॥
 रसोऽत्र करुणः स्थायी बहुस्त्रीपरिदेधितम् ।
 प्ररयातमितिवृत्त च कविर्वुद्ध्यया प्रपञ्चयेत् ॥
 भाणवत्सन्धिवृत्त्यङ्गान्यस्मिञ्जयपराजयौ ।
 युद्धं च वाचा कर्त्तव्यं निर्वेदवचनं बहु ॥’

इस नाटक में बुद्धिप्रपञ्चित प्रख्यातवृत्त, करुणारस, वाग्‌युद्ध तथा जयपराजय और बहुस्त्री परिदेवन आदि बातें पायी जाती हैं। अतः इसे ‘उत्सृष्टिकाङ्क’ के अधिक निकट पाकर अधिक विद्वान् ‘उत्सृष्टिकाङ्क’ मानते हैं। वास्तव में निश्चित रूप से इसे किसी एक कोटि में नहीं रक्खा जा सकता है।

सामान्य विशेषताएँ—डा० गणपति शास्त्री के अनुसार यह नाटक न सुखान्त है न दुःखान्त। इस नाटक में वीर तथा करुण रस का अद्भुत सम्मिलन है। घटोत्कच तथा दुर्योधनादि के कथोपकथन में वीर रस की झलक मिलती है और धृतराष्ट्र, गान्धारी और दुःशला की उक्तियों से करुण-रस की धारा प्रवाहित होती है। प्रभाव की दृष्टि से करुण रस का प्रकर्ष अधिक है क्योंकि यहाँ वीररस करुण मूलक ही है। दुःख एवं विपाद की घनी छाया पूरे नाटक में बराबर बनी हुई है।

यह नाटक भरत वाक्य के बिना ही सहसा समाप्त हो जाता है अतः कुछ लोग इसे अपूर्ण मानते हैं। संभव है इसमें आगे भी कुछ अंश रहा हो किन्तु जहाँ तक नाटक के उद्देश्य की बात है वह पूर्ण सफल है।

डा० विन्तर नित्स और डा० पुसालकर ने इस नाटक के अन्तिम श्लोक के विषय में जो श्रीकृष्ण के सन्देश के रूप में हैं आज्ञाका व्यक्त की है कि यह श्लोक संदर्भ से बाहर प्रतीत होता है। जो भी हो, श्लोक अपने स्थान पर नितान्त उचित है। यह ज्ञातव्य है कि घटोत्कच श्रीकृष्ण के तीन सन्देश लेकर वहाँ आया हैं—पहला धृतराष्ट्र के लिए, दूसरा दुर्योधन के लिए और तीसरा सब कौरवों के लिए।

भास ने अपने अन्य नाटकों की भाँति इसमें भी नाटकीय व्यङ्ग्य की उपस्थापना की है जो अत्यन्त कारुणिक है। अभिमन्यु के मारे जाने का समाचार सुनकर धृतराष्ट्र और गान्धारी दोनों शोर्कनिमग्न करुण विलाप

कर रहे थे। वहीं पास में बैठी दुग्गला के मुख से सहसा अनजान में उमी के पल में भयानक अमाङ्गलिक सत्य बचन निकल पड़ा—'जिसने इस समय वृद्ध उत्तरा को बंधव्य दिया है उसने अपनी युवनिषो को भी बंधव्य दिया है।' इसके बाद ही भट सूचित करता है कि अभिमन्यु को अनेक राजाओं ने मिल कर मारा है किन्तु उसका निमित्त जयद्रथ था। यह सुन कर घृतराष्ट्र शोकसन्त होकर कहते हैं—'हन्त जयद्रथो निहन्।' उधर दुग्गला भी बंधव्य प्राति की अनिवार्य संभावना से रो पड़ती है।

इस नाटक में घृतराष्ट्र के विषाद और दुर्घोषनादि के हर्ष इन दो विरोधी भावों की सफल अभिव्यंजना हुई है। संवादों का घोटोलापन बटते-बटते उग्र रूप धारण कर लेता है, उसी समय भास कथानक में मोड़ लाकर उम प्रसंग को वहीं आगे बढ़ने से रोक देते हैं। घृतराष्ट्र और दुर्घोषन के परस्पर वार्तालाप से परिस्थिति गम्भीर होते ही घटोत्कच के सहसा प्रवेश ने उसे संभाल लिया, अन्यथा भट के अनुसार आगे की घटना बड़ी ही मर्यंकर होती—

‘क्रूरमेव नरपतिं नित्यमुद्यतरासनम् ।

यः कश्चिदपरो ब्रूयान्न तु जीयेत्स तत्क्षणम् ॥ ३२ ॥

इसी प्रकार घृतराष्ट्र द्वारा शकुनि की मर्त्यता की जाने पर नेपथ्य में मूकम्प के साथ भारी ध्वनि होती है और सब का ध्यान उसी ओर आकृष्ट हो जाता है जिससे शकुनि को घृतराष्ट्र की वद्वक्तियों का उत्तर देने का अवसर नहीं मिलता है और परिस्थिति की गम्भीरता वहीं शान्त हो जाती है।

अन्य में भी घटोत्कच और दुर्घोषन आदि के बीच वार्तालाप बटते-बढ़ने युद्ध तक की नौबत आ जाती है। क्रुद्ध घटोत्कच युद्ध के लिये चुनौती देने लगता है—

दश्रोशो मुष्टिमुद्यम्य तिष्ठत्येष घटोत्कचः ।

उत्तिष्ठतु पुमान् कश्चिद् गन्तुमिच्छेद् यमालयम् ॥५०॥

वात विगडती देख कर घृतराष्ट्र 'पौत्र घटोत्कच ! मर्यंयतु मर्यंयतु भवान् । मद्वचनावगन्ता भव ।'—अपनी अनुनयात्मक बातों से वात बना लेते हैं। भास की बला की भंगिमाएँ अत्यन्त उत्कृष्ट एवम् अनुपम हैं।

पात्र-परिचय

पुरुष पात्र

- १ धृतराष्ट्र दुर्योधन का पिता ।
- २ भट्ट जयद्रथ नामक समाचार बाहक ।
- ३ दुर्योधन धृतराष्ट्र का ज्येष्ठ पुत्र, कुरुराज ।
- ४ दुःशासन दुर्योधन का छोटा भाई ।
- ५ द्रुपदि दुर्योधन का मामा ।
- ६ घटोत्कच हिडिम्बा (राक्षस-कन्या) से भीम से उत्पन्न पुत्र, जो दूत बन कर उपस्थित हुआ है ।

स्त्री पात्र

- १ गान्धारी दुर्योधन की माता ।
२. दुःसला दुर्योधन की बहिन, जयद्रथ की पत्नी ।
३. प्रतिहारी द्वारपालिका ।



भासनाटकचक्रं

दूतघटोत्कचम्

'कल्याणी' संस्कृत-हिन्दोव्याख्योपेतम्



प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः ।)

ॐ कल्याणी ॐ

नीलाम्बुदाभाय मनोहराय परात्मने गो-द्विजपालकाय ।

ब्रह्मादिसेव्याय दयापराय नमोऽस्तु कृष्णाय जनार्दनाय ॥

अथ तत्रभवान् कविताकामिनीहासो महाकविर्भासो नटैः स्वानुष्ठितवाद्य-
वादनादिरूपया नान्द्या रङ्गसामाजिकवृन्दे ह्युन्मुखीकृते सति, निदिष्टा
विकीर्णितग्रन्थसमाप्तये, तस्य सानन्दाभिनयसम्पत्तये, सामाजिकानामानुपङ्क्ति-
मङ्गलसिद्धये च शिष्टाचारजापितस्मृतितर्कित-श्रुतिबोधितकर्तव्यताकमाशीर्वाश-
रमक स्वरचितं नान्द्यात्मकं मङ्गलं सूत्रधारमुखेन पाठयितुं ततो नाटकीयकपा-
वस्तुपक्षेर्णं कारयितुं च रङ्गमन्त्रे सूत्रधारं प्रवेशयन्निदिशति—नान्द्यन्त इति ।
नान्द्यन्ते—नान्दी = आनकः ('दुग्दुभिस्त्वानको भैरी भम्भा नासूश्च नान्द्यपि'
इति वंजयन्ती), नान्द्या., उपलभ्यत्वाद् वाद्यान्तराणामपि सन्ते = अवसाने
(भावे सप्तमी) । ततः = तदनन्तरम्, वाद्यनादनादिरूपनान्दीसमापनानन्तर-
मेवेत्यर्थः, क्रियान्तरेण कालभेदमवृत्तेति भावः । 'ततः' इति पदेन नान्दी-
समापनसूत्रधारप्रवेशक्रिययोर्मध्ये क्रियान्तराभावो द्योत्यते, अन्यथा 'नान्द्यन्ते'
इति भावे सप्तम्यैव सूत्रधारप्रवेशक्रियाभावावगमात् 'ततः' इति पदस्य वैयर्थ्यं
प्रसज्येत । 'नान्दी' इति पदेनात्र वाद्यवादनरूपैव नान्दी धात्वा, न तु कपि-
रचिता 'आशीर्वचनसयुक्ता स्तुतिर्व्यंशमात्रसुज्यते । देवद्विजनृपादीनां तस्मान्ना-

(वाद्यवादानात्मक . नन्दी के समाप्त होने पर उसके

बाद ही सूत्रधार प्रवेश करता है ।)

सूत्रधार —

नारायणस्त्रिभुवनैकपरायणो व

पायादुपायशतयुक्तिकर. सुराणाम् ।

न्दीति सजिता ॥’—इति लक्षणलक्षिता मङ्गलश्लोकपाठात्मिका नाम्दी तस्या सत्काव्यरूपतया रङ्गप्रयोज्यत्वेन सूत्रधारारो कस्यचित्प्रवेश विना प्रयोक्तुम शक्यत्वात् । प्रविशति रङ्गमञ्चे समागच्छति । सूत्रधार—सूत्र धारयतीति सूत्रधारः (कर्मण्यण्) प्रधानः । “वर्णनीय कथासूत्र प्रथम येन सूच्यते । रङ्गभूमि समाक्रम्य सूत्रधारः स उच्यते ॥” इति तल्लक्षणम् । भरतस्त्वाह— “नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते । सूत्र धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते ॥” इति ॥

नाटकग्रन्थप्रारम्भे कविनिबद्धा मङ्गलपद्यह्वयामाशीर्वादात्मिका ना-दी सूत्रधार पठति--नारायण इति । त्रिभुवनैकपरायण - त्रयाणा भुवनाना समाहार त्रिभुवनम् [समाहारद्विगु, ‘पात्रायन्तस्य न’ इति वार्तिकेन ‘अकारान्तोत्तरपदोद्विगु स्त्रियामिष्ट’ इति प्राप्तस्य स्त्रोत्वस्य निषेधे ‘स नपुसकम्’ इति नपुसकत्वम् ।] त्रिभुवने = त्रैलोक्ये, लक्षणया त्रैलोक्यप्राणिरक्षणे इत्यर्थे एक = प्रधान, परायण = तत्पर । एतेन नारायणस्य विष्णुत्वेन जगत्पालन- हेतुत्व सूचितम् । सुराणाम् = देवाना, विजयायेति भाव । उपायशतयुक्तिकर उपायानाम् - कूटोद्योगानाम्, शतानि = शतसङ्घघकानि, तेषाम् युक्ति = योजना, ता करोतीति तथोक्त, विविधकूटनीतिप्रयोगेणासुरान् सहृत्स्य देवाना विजयप्रद इत्यर्थ । एतेन नारायणस्य सुरहितकारित्व सूचितम् । लोकात्रया- अविरत०—त्रयोऽवयवा यस्य तत् त्रयम् [‘सख्याया अवयवे तथप्’ इति तथप् तद्धितप्रत्यय । ‘द्वित्रिभ्या तयस्यायज्वा’ इति तयस्यायजादेश ।] लोकाना त्रयमिति लोकात्रयम् (पृष्ठीसमास) । त्रयाणा लोकाना समुदाय इति यावत् । लोकात्रयस्य = त्रिभुवनस्य (‘लोकस्तु भुवने जने, इत्यमर ।) अविरतम् = सततम्, अभिनीयमानमिति भावः, यन्नाटकम् तस्य तन्त्रम् = कला, तस्य यद् वस्तु =

सूत्रधार—तीनों लोको (प्राणियों की रक्षा) में मुख्यतया तत्पर, देवों के (विजयार्थ) सैकड़ों उपायों की योजना करने वाले तथा तीनों लोकों के

लोकप्रयाविरतनाटकतन्त्रवस्तु-

प्रस्तावनाप्रतिसमापनसूत्रधारः ॥ १ ॥

(परिक्रम्य) एवमार्यमिश्रान्विज्ञापयामि । अये किं नु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रं शब्द इव श्रूयते । अङ्गं पश्यामि ।

कथावस्तु, तस्य प्रस्तावना = स्थापना, समापनम् = उपसंहारश्च, तस्य सूत्रधार = प्रधाननाटक . जगत्सामुत्पादक संहारकश्चेति भावः । एतेन नारायणस्य ब्रह्मरूपत्वेन जगद्विधातृत्वं, रुद्रत्वेन च जगत्संहारकत्वं च सूचितम् । नारायण — नारा = आप, अयनं यस्य स तपोक्तं, विष्णुरित्यर्थः । [“आपा नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः । ता यदस्यापन पूर्वं तेन नारायण स्मृतः ॥” इति मनुस्मृति (१।१०)] क्षीरसागरवासीत्यर्थः । व = युष्मान् (सामाजिकान्) । पायात् = रक्ष्यात् (पा रणे धातोराशिषि लिङ्) । यो नारायणो विष्णुरूपेण त्रैलोक्यं पालयति, ब्रह्मरूपेण जगन्ति सृजति, रुद्ररूपेण च संहारति, यश्च विविधकूटनीतिप्रयोगेण देवैरसुरान् सहार्यं तान् विजयिनः कुवन्ति, स नारायणो युष्माकं (सामाजिकानान्) सर्वतो रक्षा क्रियात् इति सरलार्थः । वसन्ततिलकं घृताम् ‘उक्तं वसन्ततिलकं तमजा जगौ ग’ इति तल्लक्षणात् ॥ १ ॥

परिक्रम्येति । परिक्रम्य = अभिनयविशेषं कृत्वा, कानिचित् पदानि सचयेत्यर्थः । एवम् = ईदृशम् । आर्यमिश्रान्-आर्याश्च ते मिश्रा इति आर्य-मिश्रा = महानुभावा, तान् । मिश्रा - आदरणीया । आर्यलक्षणं च-“कर्त्तव्य-माचरन् कार्यमकर्तव्यमनाचरन् । तिष्ठति प्रकृताचारे स वा आर्य इति स्मृतः ॥” इति । विज्ञापयामि = सूचयामि । अये = दिस्मयद्योतकमव्ययपदम् । मयि = सूत्रधारे इत्यर्थः । विज्ञापनव्यग्रं-विज्ञापनम् = सूचनम्, तत्र व्यग्रं = साभिप्रायं व्यस्त, तस्मिन् (भावे सप्तमी) । अङ्गं=भो (“सम्बोधनार्थकाः

सतत (अभिनयमान) नाटक की कला-सम्बन्धी कथा वस्तु की प्रस्तावना एवम् उपसंहार के सूत्रधार नारायण आप लोगों की रक्षा करें ॥ १ ॥

(धूमकर) आप महानुभावों को ऐसा सूचित करता हूँ । अरे ! क्या बात है । मेरे सूचना देने में व्यस्त होते ही शब्द-सा मुनाई दे रहा है । अच्छा देखा है (क्या बात है) ।

(नेपथ्ये ।)

भो भो निवेद्यता निवेद्यता तावत् ।

सूत्रधार—भवतु । विशातम् । एष खलु सशप्तकानोकनिवाहिते जनार्दनसहाये धनञ्जये तदनन्तरमुपगतभीष्मवधामर्षितेर्घर्तिराष्ट्रे परिवार्य निपातित कुमारोऽभिमन्यु । तथाहि—

यान्त्यर्जुनप्रत्यभियानभीता यतोऽर्जुनस्ता दिशमीक्षमाणा ।

स्यु प्पाट्पाडङ्ग हे है भो " इत्यमर) । नेपथ्ये = कुशीलवकुटुम्बस्य स्थान नेपथ्य तत्रे ।

सूत्रधार इति । सशप्तकानोकनिवाहिते—सशप्तका = सम्यक् दशमङ्गीकारो येषां ते (समासान्त कप्) । त्रिगर्तराजपुत्रा सुशर्मादय इत्यर्थ । तेषामनीकं = सैन्यं, निवाहिते = सूदूरमपनीते । जनार्दनसहाये = सवृष्णे इत्यर्थ । धनञ्जये = अर्जुने (भावे सप्तमी) । उपगतभीष्मवधामर्षिते - उपगत = घटित यो भीष्मस्य = भीष्मपितामहस्य वध, तेन अमर्षितं = सजातक्रोधं । धार्तराष्ट्रं — धृतराष्ट्रस्य अपत्यानि पुमास धार्तराष्ट्रा दुर्योधनादय ('तस्यापत्यम्' इति अपत्यार्थे अण् तद्धितप्रत्यय ।) तं परिवार्य = सर्वत आच्छाद्य । निपातित = हत । कुमार = राजकुमार । अभिमन्यु = तन्नामा अर्जुनपुत्र ।

यान्तीति । सूत्रधार कोलाहलहेतु निरूपयति—यान्तीति । अर्जुनप्रत्यभियानभीता — अर्जुनस्य प्रत्यभियानम् = वैरशोधनार्थमाक्रमणम्, तस्माद् भीता = भयाकुला । यत = यथा दिशा अर्जुन (गत इति शेष) ता दिशम् ईक्षमाणा = पश्यन्त, परावर्तत अर्जुनो न वेति विलोकयन्त इति भाव । सौभद्रबाणाङ्कित-

(नेपथ्य मे)

अजी अजी, निवेदन किया जाय निवेदन किया जाय ।

सूत्रधार—अच्छा, समझ गया । निश्चय यह सशप्तको की सेनाओं द्वारा कृष्ण समेत अर्जुन को दूर ले जाये जाने पर, उसके बाद, भीष्मपितामह के झुए वध के कारण कुपित धृतराष्ट्र के पुत्रों के द्वारा अभिमन्यु चारों तरफ से घेरकर मार डाला गया । इसी लिए—

सुभद्रा के पुत्र (अभिमन्यु) के बाणों से धन-विशत भतएव हतचेतन

नराधिपाः स्वानि निवेशनानि सौभद्रबाणाद्धितनष्टसज्ञाः ॥ २ ॥

(निष्क्रान्तः)

स्थापना ।

(ततः प्रविशति भटः ।)

भटः - भो भो । निवेद्यता तावत्पुत्रशतश्लाघ्यवान्धवाय विज्ञान-

नष्टसज्ञाः—सौभद्रः—सुभद्राया अपत्यंपुमान् सौभद्र (अपत्यार्थे अण्, ढक्प्रत्य-
योऽपि भवति नदा 'सौभद्रेय' इत्यपि) अभिमन्युः, तस्य चाग्रे अद्धिता =
क्षणविशता इत्यर्थं, अत एव नष्टा सज्ञा = चेतना येषा तथाभूताः अभिमन्युना
बाणैर्दुरवस्था प्रापिता इति भावः । नराधिपा—अधिक पान्ति इति अधिपा-
(आतश्चोपसर्गे' इति क, 'आतोलोप इटि च' इति आकारलोपः) नराणाम्
अधिपाः इति नराधिपा = राजानः । स्वानि = स्वकीयानि । निवेशनानि =
शिविराणि (निविशन्तेऽस्मिन्निति निवेशनम्, नि + √विश् + ल्युट्, कृत्य-
ल्युटोबहुलम्) पान्ति = गच्छन्ति । इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोर्मिश्रणादुपजातिवृत्तम् ॥२॥
इति स्थापना (प्रस्तावना)

भट इति । भटः = सैनिक । पुत्रशतश्लाघ्यवान्धवाय—पुत्राणां शतम् इति
पुत्रशतम् । पुत्रशतं च श्लाघ्याः = सुयोग्या वान्धवाश्च = सम्बन्धिनो मित्राणि
च यस्य तस्मै, शतपुत्रश्लाघ्यवान्धवयुक्तायेत्यर्थः । विज्ञानविस्तारितं—
विज्ञानेन = प्रज्ञया विस्तारितौ विस्तार गमिती विनयाचारी - विनयः सदा-
चारश्च, तावेव दीर्घे = विशाले, चक्षुषी = नेत्रे यस्य तस्मै । प्रज्ञार्थाविनया-
चाररूपविशालनेत्रसम्पन्नायेत्यर्थः ।

राजा लोग, अर्जुन के पुत्रः आक्रमण से डरे हुए, जिधर अर्जुन गये हैं, उधी
दिशा की ओर देखते हुए, अपने शिविरो को जा रहे हैं ॥ २ ॥

(चला गया)

इस प्रकार स्थापना (प्रस्तावना) समाप्त हुई ।

(तदनन्तर भट प्रवेश करता है ।)

भट—यजी अर्जी ! सी पुत्रों तथा प्रशस्य वान्धवों से युक्त, प्रज्ञा से

विस्तारितविनयाचारदोषंचक्षुषे महाराजाय धृतराष्ट्राय । एष खलु
 योघस्यन्दनवाजिवारणवर्धेविक्षोभ्य राज्ञा बल
 बालेनाजुंनकर्म येन समरे लीलायता दशितम् ।
 सौभद्र स रणे नराधिपशतैर्वेगागत सर्वश
 खे शक्रस्य पितामहस्य सहसैवोत्सङ्गमारोपितः ॥ ३ ॥

भटो धनञ्जयपुत्रस्य शीर्यं वर्णयन् तन्मरणं निवेदयति—योधस्यन्दनेति ।
 योधानाम् = सैनिकानाम्, स्थन्दनवाजिनाम् = रथाश्वानाम्, वारणानां च =
 गजानां च, वर्ध = हननं । राज्ञाम् = नृपाणाम्, बलम् = सैन्यम्, विक्षोभ्य =
 विक्षुब्ध कृत्वा, येन बालेन = बाल्यावस्थायुक्तेन अभिमन्युना । लीलायता =
 क्रीडा कुर्वता । समरे = युद्धे । अजुंनकर्म—अजुनस्य कर्मं दर्शितम् - प्रकटीकृतम्,
 अजुनेनेव तेन शत्रुविनाशं कृत इति भावः । रणे = सप्रामे । स. = तादृशो वीरः ।
 सौभद्र = अभिमन्युः । नराधिपशतैः = असह्यनृपतिभिः । वेगागतं—
 वेगेन = त्वरया, आगतं = सप्राप्तं । सर्वश = सर्वतः । खे = स्वर्गं । पिताम-
 हस्य = पितुः = अजुनस्य पिता = पितामह इन्द्र तस्य । उत्सङ्गम् = अङ्कम् ।
 सहसैव = झटित्येव । आरोपितः स्थापितः । सहसा सर्वतो विनिपत्यासह्यनृ-
 पेरभिमन्युहंत इति भावः ।

अजुंनकर्मं दर्शितमित्यत्राजुंनकर्मं सहस कर्मेति बोधनादसम्भवद्वस्तुसम्बन्ध-
 निदर्शनाऽलङ्कारः । 'नराधिपशतैरभिमन्युहंत' इति गम्यार्थस्वैवोक्तिर्वचि-
 त्प्रवृत्तमनिधानात् पर्यायोक्तालङ्कारश्च । द्वयोर्नैरपेक्षेण सस्थिते समृष्टिः ।
 शाङ्गलविक्रीडितवृतम्, तत्तत्क्षणं च यथा—'सूर्याश्विनदि म सजो सततगा
 शाङ्गलविक्रीडितम्' । इति ॥ ३ ॥

विस्तार को प्राप्त विनय सदाचार रूप विशाल नेत्रो वाले महाराज धृतराष्ट्र
 से निवेदन किया जाय । यह—

सैनिकों के रथों के घोड़ों तथा हाथियों के विनाश से जिस बालक ने
 क्रीडा करते हुए (अनायास) युद्ध में अजुंन का सा कर्म प्रदर्शित किया, वह
 सुभद्रा का पुत्र (अभिमन्यु) युद्ध में चारों ओर से वेगपूर्वक आये हुए सैकड़ों
 नृपों के द्वारा सहसा ही स्वर्ग में (अपने) पितामह (इन्द्र) की गोद में बँठा
 दिया गया ॥ ३ ॥

(तत प्रविशति धृतराष्ट्रो गान्धारी दुःशला प्रतिहारी च ।)

धृतराष्ट्र --कथं नु भो ।

कनैतच्छ्रुतिपथदूषणं कृतं मे

कोऽयं मे प्रियमातं विप्रियं ब्रवीति ।

कः उस्माकं शिशुवधपातकाङ्घ्रितानाम्

वशस्य क्षयमवधोपपत्त्यर्थात् ॥ ४ ॥

तत इति । गान्धारी=तन्नाम्नी धृतराष्ट्रभार्या दुर्योधनजननी च । दुःशला= धृतराष्ट्रपुत्री, दुर्योधनभगिनी जयद्रथपत्नी च । प्रतिहारी = द्वारपालिका ।

अभिमन्युवधं श्रुत्वा धृतराष्ट्रः सशोककोपमाह—केनैतदिति ।

केन = केन जनेनेत्यर्थं । एतत् = सोमद्रो हत इत्येतद्रूपो विभ्राब्धेतिभावः ।
 मे = मम, धृतराष्ट्रस्येत्यर्थं । श्रुतिपथदूषणम् = श्रुत्यो = कर्णयोः पन्था इति श्रुतिपथ कमविवरमित्यर्थं (श्रुत्पूर्वभू पथामानक्षे' इति अप्रत्यय समासान्त) तस्य दूषणम् = आघातः । कृतम् = विहितम् । सोमद्रो हत इति वृत्तान्तविधायकं कन मम कर्णवाहताविति भावः । कोऽयम् = अयं को जनः ? यो मे = मम, प्रियम् = अभोष्टम् इति (मत्वा) विप्रियम् = अनिष्टम् । ब्रवीति = वदति । क - को जन इत्यर्थं, शिशुवधपातकाङ्घ्रितानाम्—शिशु = बाल, अभिमन्युरित्यर्थं, तस्य वध एव पातकं तेन अङ्घ्रिता = लाञ्छिता, तेषाम्, अस्माकम् = कौरवाणामित्यर्थं, वशस्य क्षयम् = विनाशम् । अभीत = निर्भोकं सन । अवधोपपत्तिः = ऊर्चैवदति, सर्वत्र प्रसारयतीत्यर्थः । अभिमन्युवधवृत्तान्तं श्रुत्वा मे कणकुहरे नितरा पीडिते एतादृशवृत्तान्तश्रवणेन मम कर्णो ह्यपवित्रा-कभूताम्, एतच्छ्रवणमपि पापं मन्ये । ममेदं प्रियं भवेदिति मत्वेवार्थं जन इमं वृत्तान्तम् श्रावयत्, स तु न जानाति यन्नितरामप्रियमेतन्मे । एतद्वृत्तान्तश्रावणेनायं निर्भोको जनोऽस्मान् शिशुवधपातलाञ्छितान्, अस्माकं वशोच्छेदं चावधोपपत्तिः । यद्यभिमन्युहतस्नहिं कौरवानां नाशो विनिश्चित इति धृतराष्ट्रोक्ते

(तदन्तरं धृतराष्ट्रः, गान्धारी, दुःशला तथा प्रतिहारी का प्रवेशः)

धृतराष्ट्र—अजी, (यह) कैसे ।

किसने मेरे कर्णपथ को यह दूषित किया ? यह कौन मेरा प्रिय समझ कर

गान्धारी—महाराज ! अस्थि उण जाणोअदि केवलं पुत्तमंखअकारओ कुलविग्रहो भविस्मदि त्ति । [महाराज ! अस्ति पुनर्जायते केवलं पुत्रसंक्षयकारकः कुलविग्रहो भविष्यति ।]

धृतराष्ट्र—गान्धारि । ज्ञायते ।

गान्धारी—महाराज कदा णु खु । [महाराज कदा नू खलु ।]

धृतराष्ट्र—गान्धारि ! शृणु—

अद्याभिमन्युनिधनाज्जनितप्रकोपः

सामर्पकृष्णधृतरदिमगुगप्रतोद ।

राजय. । प्रहर्षिणी वृत्तम्, तल्लक्षणं यथा— श्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम् ।' इति ॥ ४ ॥

गान्धारीति । केवलम् = फलान्तरशून्यमित्यर्थं । कुलविग्रह. = कौरवपाण्डव-युद्धम् । धृतराष्ट्र इति । ज्ञायते (मयापीति शेष.) अयं कुलविग्रहः पुत्रसंक्षयकारक एव भविष्यति इत्यहमपि जाने इति धृतराष्ट्रोक्तेराशयः ।

गान्धारीति । कदा - कस्मिन् समये । तादृशस्य युद्धस्य सम्भावना कदा ? इति गान्धारीप्रश्नस्याशयः ।

धृतराष्ट्रः । कुलविग्रहस्य स्वरूपं प्रतिपादयति—अद्याभिमन्युनिधनादिति । अद्य = अस्मिन् दिने, अभिमन्युनिधनात् = स्वपुत्रस्याभिमन्योर्विनाशात् । जनितप्रकोप.— जनितः = उत्पादित, कोप = क्रोध इत्यस्य स तथोक्त, प्रकुपित इत्यर्थः । सामर्पकृष्ण०—सामर्पम् = सकोप यथा स्यात्तथा, कृष्णेन धृतौ =

अप्रिय कथन कर रहा है ? कौन निर्भय होकर शिशु (अभिमन्यु) के वधरूप पाप से लाञ्छित हमारे वंश के विनाश की घोषणा कर रहा है ? ॥ ४ ॥

गान्धारी—महाराज, तथ्य यह है कि (कौरव और पाण्डव दो कुलो का विग्रह केवल पुत्रों के विनाश का हेतु होगा, ऐसा मालूम हो रहा है ।

धृतराष्ट्र—गान्धारी ! (मैं भी) समझता हूँ ।

गान्धारी—महाराज कब (ऐसी सम्भावना है) ?

धृतराष्ट्र—गान्धारी ! सुनो,

अब अभिमन्यु के वध से अत्यन्त कुपित, और क्रुद्ध कृष्ण के द्वारा मृहीत रश्मिरज्जु (लगाम) तथा चाबुक वाला अर्जुन अपने उग्र धनुष (गाण्डीव)

पार्थ. करिष्यति तदुग्रधनु सहायः

शान्तिं गमिष्यति विनाशमवाप्य लोकः ॥ ५ ॥

गान्धारी—हा वच्छ अभिमन्त्रो ! ईसिसे यि णाम पुरुसखत्रकारए कुलविग्रहे वत्तमारो बालभावणिमज्जण अम्हाणं भगकमेण नरअतो कहिं दाणि पोत्तअ ! गदोमि । [हा वत्त अभिमन्त्रो ! ईदृशेऽपि नाम पुरुषणयकारवे कुलविग्रहे वर्तमाने बालभावनिमज्जनमस्माक भाग्यक्रमेण कुर्वन् कुत्रेदानीं पौत्रक ! गतोऽसि ।]

गृहीनो, रश्मिगुणः = बल्गा, प्रतोद = कशा च यस्य स । उग्रधनु सहाय -
उग्रम् = कठोरम्, धनु = गाण्डीवम्, सहाय यस्य स । पार्थ. = पृथा कुन्ती
तस्या पुत्र, अजुंन इत्यर्थं । तत् तद् कर्म, करिष्यति (येन) लोक =
समस्तलोक । विनाशमवाप्य = विनष्टो भूत्वा । शान्तिं गमिष्यति = प्रकृतिस्थो
भविष्यति । सर्वान्छत्रन् विनाश्य लोके शान्तिं स्यापयिष्यतीत्यर्थं । वसन्त-
विनक वृत्तम् । तल्लक्षणं तु प्रागेवोक्तम् ॥ ५ ॥

गान्धारीति । ईदृशेऽपि = अनर्थकारिणि इत्यर्थं । नामेति निन्दायाम् ।
पुरुषणयकारके—पुरुषाणाम् = वीरजनानामित्यर्थं क्षमम् = विनाश करोतीति
तस्मिन् वर्तमाने = प्रवर्तमाने इत्यर्थं, कुलविग्रहे = कौरवपाण्डवयुद्धे । बाल
भावनिमज्जनं कुर्वन्—बालभावात् = बाल्याद्धेतो निमज्जनम्—सम्यक् प्रवेश-
मित्यर्थं, कुर्वन् । अस्माकं भाग्यक्रमेण = भाग्यदोषेणेत्यर्थं । पौत्रक—पुत्रस्यापत्य
पुमान् पौत्र (अपत्यायंऽण्) अनुकम्पित पौत्र इति पौत्रक, तत्सम्बुद्धौ हे
पौत्रक । ('अनुकम्पायाम्' ५।३।७६ इति सूत्रेण अनुकम्पायुक्तायाभिधायिन
पौत्रशब्दात् स्वार्थे क तद्धितप्रत्यय ।)

को सहायता से वह (शीघ्र) करेगा (जिधसे) समस्त लोक विनष्ट होकर
शान्ति को प्राप्त होगा ॥ ५ ॥

गान्धारी—हाय वत्स अभिमन्त्रु ! हमारे भाग्य दोष के कारण, हो रहे
मरसंहारक कुल-विग्रह मे तुम बाल भाव के कारण प्रवेश कर, हे प्रिय पौत्र !
अब कहाँ चले गए ?

दुशला - जेण दाणिं वहूए उन्नराए वेधव्वं दाइद, तेण अत्तणो जुवदिजणस्स वेधव्वमादिट्ठं । [येनेदानी वध्वं उत्तरायं वेधव्वं दत्तं, तेनात्मनो युवतिजनाय वैधव्यमादिष्टम् ।]

धृतराष्ट्रः—अथ केनैप व्यसनार्णवस्य सेतुबन्धः कृत ।

भटः—महाराज ! मया ।

धृतराष्ट्रः—को भवान् ।

भटः—महाराज ! ननु जयत्रातोऽस्मि ।

धृतराष्ट्रः—जयत्रात !

केनाभिमन्युनिहतः कस्य जीवितमप्रियम् ।

येन = पुरुषेण । इदानीम् = सप्रति । वध्वं उत्तरायं = अभिमन्युभार्यायं उत्तरायं (सप्रदाने चतुर्थी) । वैधव्यम् = विगतो धव. = पतिर्यस्याः सा विधवा, तस्या भाव वैधव्यम्, विधवा शब्दात् 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्य कर्मणि च' पा० ५।१।१२४ इति सूत्रेण ष्यञ् तद्धितप्रत्यय । अभिमन्यु हत्वा तद्भार्यामुतरा यो विधवामकार्षीत्, सोऽप्यचिरेणैव हतो भूत्वा स्वपत्नीमवश्यमेव विधवा करिष्यतीति दु शलोक्तेरभिप्राय ।

धृतराष्ट्र इति—अथेति प्रश्नारम्भे । व्यसनार्णवस्य—व्यसनम् = विपद्, तदेव अर्णव = सिन्धु, तस्य ।

धृतराष्ट्रो जयत्रातनामान भटं पृच्छति—केनाभिमन्युरिति । जयत्रात ! केन = केन पुरुषेण, अभिमन्युः = तदभिधानोऽर्जुनपुत्र, निहत. = मारितः ।

दु शला—जिसने इस समय बहू उत्तरा को वैधव्य दिया है, उसने अपनी स्त्रियो को विधवा होने का आदेश दिया है ।

धृतराष्ट्र—अच्छा, विपत्ति-सिन्धु पर मह किसने पुल बाँधा है ? (अर्थात् यह समान्तर किसने सुनाया है ?) ।

भट—महाराज ! मैंने ।

धृतराष्ट्र—तुम कौन हो ?

भट—महाराज ! अरे मैं जयत्रात हूँ ।

धृतराष्ट्र—जयत्रात ! किसने अभिमन्यु को मारा ! किसे (अपना)

पञ्चाना पाण्डवाग्नीनामात्मा केनेन्धनीकृत ॥ ६ ॥

भट्ट—महाराज ! बहुभि किन पापिवैः समागतनिहतः कुमारोऽ-
भिमन्युः । स्यात् जयद्रथा निमित्तभूतः ।

धृतराष्ट्रः—हन्त जयद्रयो निमित्तभूतः ।

भट्ट—महाराज ! अय किम् ?

धृतराष्ट्रः—हन्त जयद्रयो निहतः ।

(तच्छ्रुत्वा दुःघना रोदिति ।)

धृतराष्ट्रः—कैषा रोदिति ।

कस्य = पुरुषस्य, जीविनम् = जीवनम्, अप्रियम् = अनभिन्नपितम्, को मृत्युं
वाञ्छति येनाभिमन्युहंत. ? अभिमन्युहननेन तस्य मरणं ध्रुवमिति भावः ।
केन = पुरुषेण, पञ्चानाम् = पञ्चसख्याकानाम्, पाण्डवाग्नीनाम्—पाण्डवा. =
युधिष्ठिरादय एवाग्नीयस्तेषाम्, आत्मा = स्वशरीरम्, इन्धनीकृतः = न इन्धनम्
अनिन्धनम्, अनिन्धम् इन्धनत्वेन प्रापित इन्धनीकृत (अभूतद्रावे च्चि) ।
रूपकालङ्कारः । अनुष्टुप्वृत्तम्—नल्लक्षणं यथा—'इलोके पष्ठ गुरु श्रेय सर्वत्र लघु
पञ्चमम् । द्विचतुष्पादयोहं स्व सप्तम दीर्घमन्यमा. ।' इति ॥ ६ ॥

भट्ट इति । किलेति वार्तायाम् । बहुभि = बहुसख्याकैः । पापिवै—
पृथिव्या ईश्वराः पापिवाः = राजान्, तै. (पृथिवीगन्दात् 'तस्येश्वरः' पा,
५।१।४२ इति सूत्रेण अण्) समागतं. = मितितैरित्यर्थः ।

जीवन अप्रिय हो गया ? पाण्डव रूप पञ्चाग्नि के लिए किसने अपने को इन्धन
बना लिया ? ॥ ६ ॥

भट्ट—महाराज ! सुना जाता है—बहुन से राजाजा ने मिल कर कुमार
अभिमन्यु को मारा, किन्तु सभवन उसका निमित्त जयद्रथ था ।

धृतराष्ट्र—खेद का विषय है, क्या जयद्रथ निमित्त हुआ ?

भट्ट—महाराज ! और क्या !

धृतराष्ट्र—घोर है (तब तो) जयद्रथ मारा गया ।

(यह सुन कर दुःघला रोती है ।)

धृतराष्ट्र—यह कौन रो रही है ?

विप्रिय कृत्वा को हि नाम जीविष्यति ।]

धृतराष्ट्र — सत्यमाह तपस्विनी दुश्शला । कुत —

कृष्णस्याष्टभुजोपधानरचिते योऽङ्के विबुद्धश्चिरं

यो मत्तस्य हलायुधस्य भवति प्रीत्या द्वितीयो मदः ।

पार्थानां सुरतुल्यविक्रमवता स्नेहस्य यो भाजन

त हत्वा क इहोपलप्स्यति चिरस्त्रैर्दुष्कृतैर्जीवितम् ॥८॥

अजुंनस्य । विप्रियम् = अप्रियम् ।

धृतराष्ट्र इति । तपस्विनी वराकी ।

धृतराष्ट्रो दुश्शलाया प्रागुक्तिं समर्थयन्नाह—कृष्णस्येति । य = अभिमन्यु, कृष्णस्य वासुदेवस्य, अष्टभुजोपधानरचिते—अष्टौ भुजा एव उपधानम् = उपबर्ह, तेन रचिते = विहिते, अङ्के = उत्सङ्गे, चिरम् = बहुकाल यावत्, अद्यावधीति भाव । विबुद्ध = वृद्धि गत । य अभिमन्यु, मत्तस्य = मदान्वितस्य, हलायुधस्य हल - लाङ्गलम्, आयुधम् = अस्त्र यस्य स हलायुध = बलराम, तस्य, प्रीत्या = स्नेहेन द्वितीय = पूर्वोदतिरिक्त, मद भवति—मदिरा पानजमदादव्यतिरिक्तो भागिनेय स्नेहजमदो भवतीत्याशय । य = अभिमन्यु सुरतुल्यविक्रमवताम्—सुरतुल्य = देवसमान विक्रम = पराक्रम अस्त्येषामिति सुरतुल्यविक्रमवन्त, तेषाम् (अत्र नित्ययोगेमतुप्, अन्यथा सुरतुल्यो विक्रमो येषा तेषा सुरतुल्यविक्रमाणामिति बहुव्रीहेस्तदर्थं प्रतिपत्तिकरत्वेन मतुपो वैयर्थ्य-प्रसक्तिः, 'न कर्मधारयान्मत्वर्थीयो बहुव्रीहिश्चेत्तदर्थप्रतिपत्तिकर' इति) पार्थानाम् = पृथापुत्राणां युधिष्ठिरादीनाम्, स्नेहस्य = वात्सल्यस्मिन्, भाजनम् = पात्रम्, तम् = तादृशम् अभिमन्यु हत्वा व्यापाद्य, स्त्रैः = स्वकीयैः, दुष्कृतं = पापं, इह = जगति, चिरम् = बहुकालम्, जीवितम् = जीवनम्' उपलप्स्यति =

ऐसे अजुंन का अप्रिय करके जीवित रहेगा ?

धृतराष्ट्र—बेचारी दुश्शला सब कह रही है । प्रयोक्ति—

जो (अभिमन्यु) कृष्ण की आठ भुजाओं की तकिया से युक्त उनकी गोदी में आज तक पल कर बड़ा हुआ, जो मत्त बलराम का, स्नेह के कारण दूसरा मद या और जो देवों के समान पराक्रमशाली पाण्डवों के स्नेह का भाजन

जयत्रात । अथ तदवस्थं पुत्रं दृष्ट्वा किं प्रतिपन्नं तेन गाण्डीव-
धन्वना ।

भटः—महाराज । किं वाजुंनसमीपे वृत्तमेतत् ।

धृतराष्ट्र—कथमर्जुनोऽपि नाश्रसीत् ।

भट—महाराज ! अथ किम् ?

धृतराष्ट्रः—कथमिदानीं वृत्तमेतत् ।

भटः—श्रूयतां संशप्तशानीकनिवाहिते जनार्दनसहाये धनञ्जये स

प्राप्यति, न कोऽपीति भावः । सम्भातो. परस्मैपदस्य चिन्त्यम् । दारूँलवि-
क्रीडित वृत्तम् ॥ ८ ॥

युधिष्ठिरः पुनः पृच्छति जयत्रातम्—अथेति । अथेति प्रश्नवाक्यारम्भे ।
तदवस्थम्—या अवस्था यस्य स तदवस्थ तम्' निहतमिति भावः. प्रतिपन्नम् =
अनुष्ठितम् । गाण्डीवधन्वना—गाण्डीव धनुर्ग्रहस्य स गाण्डीवधन्वा, तेन गाण्डीव
धन्वना अर्जुनेन । समाप्ते गाण्डीवधनुदशब्दे शकारस्य 'धनुयश्च' (५।४।१३२)
इत्यनङ् । टकार इत् । अकार उच्चारणार्थं । उकारस्य यण् ।

भट इति । अर्जुंनसमीपे = अर्जुनस्य विद्यमानतायामित्यर्थः । एतत् =
अभिमन्युनिधनम् । वृत्तम् = जातम् ।

कथमिदानीं वृत्तमेतदिति धृतराष्ट्रेण पृष्ठो भट आह—श्रूयतामिति ।
जनार्दनसहाये = सश्रूणे इत्यर्थः, धनञ्जये = अर्जुने, संशप्तशानीकनिवाहि-
तेशासना. = त्रिगर्तराजपुत्रा सुशर्मादयः, तेषामनीकं = सैन्यं. निवाहिते =

या, उद्यतो मार कर इय सत्तार मे कीन अपने पापो के कारण चिर जीवन
पायेगा ॥ ८ ॥

जयत्रात । अच्छा, इस अवस्था वाले पुत्र को देख कर उता गाण्डीवधारी
अर्जुन ने क्या किया ?

भट—महाराज । क्या यह (घटना) अर्जुन के रहते हुए हुआ है ?

धृतराष्ट्र—क्यों, अर्जुन भी यहाँ नहीं थे ।

भट—महाराज ! और क्या ?

धृतराष्ट्र—तो सम्प्रति यह कैसे हुआ ?

भट—महाराज, सुनें । संशप्तको की सेनाओं द्वारा बृष्ण एतेन अर्जुन के

बालभावादहृष्टदोष. संग्राममवतोणः कुमारोऽभिमन्युः ।

धृतराष्ट्रः—हन्त युक्तरूपोऽस्य वधः । को हि संनिहितशार्दूलं गुह्यं धर्षयितुं शक्त । अथ शेषा. पाण्डवाः किमनुतिष्ठन्ति ।

भट—महाराज ! श्रूयताम् ।

चिता न तावत्स्वयमस्य देहमारोपयन्त्यजुंनदर्शनार्थम् ।

तेषां च नामान्युपधारयन्ति यैस्तस्य गात्रे प्रहृत नरेन्द्रैः ॥ ९ ॥

सूदूरमपनीते (भावे सप्तमी) । बालभावात् = बाल्यात्, बालोचितचापत्यवशा-
दिति यावत् । अहृष्टदोषः—न हृष्टः दोषः = हानियेन सः, संग्राममवतोणः =
रणभूमिं प्रविष्टः ।

धृतराष्ट्र इति । हन्तेति खेदे । युक्तरूपोऽस्य वध —युक्तम् - सुव्यवस्थितम्,
वधम् = रीतिर्यस्य स तादृशः, अस्य अभिमन्यो, वध. = हननम् । तस्या स्थितौ
सर्वथाऽभिमन्युवधस्य सभावनाऽऽप्तोदेवेति धृतराष्ट्रोक्तराशयम् । संनिहितशार्दू-
लाम्—संनिहितः = विद्यमान, शार्दूल. = सिंह यस्यां ताम् । धर्षयितुम् =
प्रवेष्टुमित्यर्थः । शेषा. = अजुंनान् व्यतिरिक्ता. । अनुतिष्ठन्ति = कुर्वन्ति ।

धृतराष्ट्रेण पृष्ठो भटः पाण्डवानां क्रिया वर्णयति—चिता नेति ।
(युधिष्ठिरादयस्ते शेषाः पाण्डवा.) तावत् = प्रथमम् । अजुंनदर्शनार्थम्—
अजुंनस्य दर्शनायेदमित्यजुंनदर्शनार्थम्, आगत्याजुंन.पुत्रश्व पश्यतु इत्युद्दिश्येति
भावः । अस्य = अभिमन्यो, देहम् = शरीरम्, शवमिति यावत् । चिताम्—मृतं
दग्धुं सञ्चितकाष्ठराशिम्, स्वयम् = स्वकरैरिति भावः । न आरोपयन्ति =
न स्थापयन्ति । यैः नरेन्द्रैः = नृपैः, तस्य = अभिमन्यो, गात्रे = शरीरे,
प्रहृतम् = प्रहारः कृतः, तेषाम् = नृपाणाम्, नामानि = अभिधेयानि,

बहुत दूर से जाये जाने पर वह कुमार अभिमन्यु बालक होने के कारण कोई
हानि न देख कर संग्राम भूमि में उतर पडा ।

धृतराष्ट्र—शोक । इसके वध का डग सुव्यवस्थित था (अर्थात् वध की
सर्वथा सभावना थी) । कौन सिंह के रहते गुफा में प्रविष्ट हो सकता है ?
अच्छा, बाकी पाण्डव क्या कर रहे हैं ?

भट—महाराज ! सुना जाय—

अजुंन (भी) देख ले, इसलिए (शेष पाण्डव) इस (अभिमन्यु) के श्व

धृतराष्ट्रः—गान्धारि ! तदागम्यताम् । गङ्गाकूलमेव यास्यावः ।

गान्धारी—महाराज ! ॐ तर्हि गाहामो । [महाराज ननु तत्र गाहावहे ।]

धृतराष्ट्रः—गान्धारि ! शृणु ।

अद्यैव दास्यामि जल हतेभ्यः स्वेनापराधेन तवात्मजेभ्यः ।

न त्वस्मि शक्तः सलिलप्रदानैः कर्तुं नृपाणां शिबिरोपरोधम् ॥ १० ॥

(ततः प्रविशति दुर्योधनो दुःशासन. द्युनिश्च ।)

दुर्योधन—वत्स दुःशासन ।

तान् हन्तुमिति भाव । उपधारयन्ति = सञ्चिन्तयन्ति । उपजातिवृत्तम् ॥ ९ ॥

धृतराष्ट्रो गङ्गाकूलगमनहेतुं गान्धारी विज्ञापयति—अद्यैवेति । गान्धारि ! स्वेन = स्वकीयेन, अपराधेन = अभिमन्युवधात्मकेनेति भाव । हनेभ्य = हनिष्यमाणेभ्य इति भाव । तव = गान्धार्या, आत्मजेभ्य = पुत्रेभ्य (सप्रदाने षतुर्थी) । अद्यैव अस्मिन्नेव काले । जनम् = जलाञ्जलि दास्यामि । सलिल-प्रदानं = जलाञ्जलिदानं । तु = किन्तु, नृपाणाम् = राज्ञाम् शिबिरोपरोधम् = शिबिरे उपरोधः = अवरोध तम्, कर्तुं न शक्त अस्मि, एते स्वैर्दुष्कृत्यै-रवश्यमेव मरिष्यन्ति तदेतानवरोद्धुमसमर्थोऽह तेभ्यो जलाञ्जलि दास्यामीति भाव । इन्द्रवज्रावृत्तम् ॥ १० ॥

को शयं चिता पर नहीं रख रहे हैं तथा जिन राजाओं ने उसके शरीर पर प्रहार किया है उनके नामों का सञ्चिन्तन कर रहे हैं ॥ ९ ॥

धृतराष्ट्र—गान्धारी । तो आओ, हम (दोनों) गङ्गातट को ही चले ।

गान्धारी—महाराज । हम (दोनों) वहाँ स्नान करेंगे ।

धृतराष्ट्र—गान्धारी ! सुनो—

अपने ही अपराध से मारे जाने वाले तुम्हारे पुत्रों को आज ही मैं जला-ञ्जलि दूँगा किन्तु इस जलाञ्जलि-दान के द्वारा मैं राजाओं के शिबिर को (युद्ध से) रोक नहीं सकता ॥ १० ॥

(तदनन्तर दुर्योधन, दुःशासन और द्युनिश्च प्रवेश करते हैं ।)

दुर्योधन—वत्स दुःशासन ।

२ दु० ध०

यातोऽभिमन्युनिधनात् स्थिरता विरोध
 प्राप्तो जयः प्रचलिता रिपवो निरस्ता ।
 उन्मूलितोऽस्य च मदो मधुसूदनस्य
 लब्धो मयाऽद्य सममभ्युदयेन शब्द ॥ ११ ॥

दुःशासन — अहो नु खलु,

रुद्धा पाण्डुसुता जयद्रथबलेनाक्रम्य शत्रोर्बल
 सौभद्रे विनिपातिते शरशतक्षेपैर्द्वितीयेऽर्जुने ।

दुर्योधनोऽभिमन्युवधजनितप्रसन्नता दुःशासन प्रति वर्णयति—यात इति ।
 अभिमन्युनिधनात्—अभिमन्यो निधनम् = मरणम्, तस्मात् । विरोध द्वेष,
 स्थिरताम् = सुहृत्वम्, यात = गत । जय प्राप्त — लब्ध । निरस्ता =
 पराजित, रिपव = शत्रव, प्रचलिता = प्रकम्पिता । अस्य = गर्वितस्येत्यर्थं,
 मधुसूदनस्य—मधुम् = तन्नामान दैत्य सूदयति नाशयतीति मधुसूदन = श्री
 कृष्ण, तस्य । मद = दर्प, उन्मूलित = उत्पाटित विनाशित इत्यर्थः । मया=
 दुर्योधनेन, अभ्युदयेन समम् = उत्कर्षेण सह । शब्द = उपाधिः सम्राडित्येव-
 मिति भाव । अद्य = इदानीम् । लब्ध = प्राप्त । साम्प्रत सर्वाण्यभीष्टानि
 मे लब्धानि, न किञ्चिदवशिष्यत इति भाव । बसन्ततिलक वृत्तम् ॥ ११ ॥

दुःशासनोऽपि स्वपक्षोत्कर्षं व्यनक्ति—रुद्धा इति । जयद्रथबलेन—जयद्रथस्य
 बलेन = सैन्येन, शत्रो = विपक्षस्य, बलम् = सैन्यम् आक्रम्य = पराजित्य,
 पाण्डुसुता = अर्जुनादव्यतिरिक्ता युधिष्ठिरादयश्चत्वारोऽपि पाण्डवा, रुद्धा. =
 चक्रव्यूहप्रवेशान्निवारिता । द्वितीयेऽर्जुने = अर्जुनतुल्यपराक्रमशालिनि, सौभद्रे =

अभिमन्यु के निधन से (हमारा और पाण्डवों का) विरोध दृढ हो गया,
 (शत्रुओं पर) हमें विजय मिल गयी, पराजित शत्रु काँप उठे हैं (ध्वरा गये
 हैं), इस कृष्ण का दर्प विनष्ट हो गया तथा मैंने अभ्युदय के साथ-साथ
 (सम्राट् की) उपाधि (भी) प्राप्त कर ली ॥ ११ ॥

दुःशासन—अहो ! निश्चय ही ।

जयद्रथ की सेना ने शत्रु सेना को आक्रान्त कर पाण्डवों को (चक्रव्यूह में
 प्रवेश करने से) रोक दिया तथा (वीरता में) द्वितीय अर्जुन (उस) सुभद्र-

प्राप्तंश्च व्यसनानि भोष्मपतनादस्माभिरद्याहवे

तोत्राः शोकशराः कृताः खलु मनस्येषा सुतोत्सादनान् ॥१२॥

शकुनिः—

जयद्रथेनाथ महत्कृतं रणे नृपैरसमावितभात्मपौरुषम् ।

प्रसह्य तेषां यदनेन संयुगे सम सुतेनाप्रतिम हृत यशः ॥ १३ ॥

सुभद्रापुत्रेऽभिमन्यो, शरशयभेन—शराणां शतानि तेषां क्षेपं = आघातं
 सन्धानिगशरापार्तरित्यर्थः । विनिपातिते = विनाशिते (भावे सप्तमो) भोष्म-
 पतनात्—भोष्मस्य = पितामहस्य, पतनात् = विनाशात्, व्यसनानि = दुःखानि,
 प्राप्तः = गर्तः, अस्माभिः = कौरवैः, अद्य = अस्मिन् दिने, आहवे = संध्यामे,
 खलु = निश्चयेन, सुतोत्सादनात्—सुतस्य = अभिमन्योः, उत्सादनात् = हननात्,
 एषाम् = पाण्डवानाम्, मनसि = हृदये, तोत्राः, शोकशराः = शोका एव शराः =
 बाणाः, कृताः = गाढ निस्त्राता इत्यर्थः । यं पाण्डवं पूर्वं पितामहं हत्वा वयं
 शोकाकुचीकृताः, सम्प्रति संध्यामे तत्पुत्रवधात्तोषा हृदये ह्यस्माभिः शोकश्चान्यनि
 पाद निस्त्रातानीति कृतार्था वयं जाता इति भावः । 'शोकशराः' इत्यत्र
 रूपकान्द्वार । शाङ्खलविक्रीडित वृत्तम् ॥ १२ ॥

शकुनिरपि जयद्रथं प्रशंसन्नाह—जयद्रथेनेति । अद्य - अस्मिन् दिने, रणे=
 युद्धे, जयद्रथेन, नृपे - अन्यैर्नृपैर्निभिरित्यर्थं, असम्भावितम् = अचिन्तितम्,
 महत् = विपुलम्, आत्मपौरुषम् = स्वपराक्रम, कृतम् = प्रदर्शितम्, यत् = यस्मात्,
 अनेन = जयद्रथेन, संयुगे = रणे, प्रसह्य = बन्धात्, सुतेन समम् - पुत्रेणाभिमन्युना
 सह तेषाम् = पाण्डवानाम्, अप्रतिमम् = नास्ति प्रतिमा यस्य तद्, समन्ता-
 द्विस्तृप्तमित्यर्थः । यशः - कीर्ति, हृतम् = विनाशितम् । सहोक्तिरत्तकारः ।

पुत्र को संकष्टों शरी के आघातों से मार दिये जाने पर, (पहले) भीष्मपिता-
 मह के मरण से दुःख पाये हुए हम लोगों ने आज संध्या में इन (पाण्डवों) के
 पुत्र का वध कर देने से, इनके हृदय में तीखे शोकरूपी बाण धँसा दिये ॥१२॥

शकुनि—आज युद्ध में जयद्रथ ने अपना वह महान् पराक्रम प्रदर्शित
 किया, राजा लोग निश्चयी रूपना भी नहीं कर सके थे । क्योंकि इन (जयद्रथ)

दुर्योधनः—मातुल ! इतरतावत् । दुःशासन ! इतस्तावत् । तत्र-
भवन्तं तातमभिवादयिष्यामः ।

शकुनिः—वत्स दुर्योधन ! मा मैवम् ।

कामं न तस्य रुचितः कुलविग्रहोऽय-

मस्मांश्च गर्हयति स प्रियपाण्डवत्वात् ।

युद्धोत्थितेर्जयमवाप्य हि तुल्यरूप

एवं प्रहृष्टवदनैरभिगन्तुमेनम् ॥ १४ ॥

वशस्यवृत्तम् । तल्लक्षण यथा—‘जती तु वंशस्यमुदीरितं जरी ।’ इति ॥ १३ ॥

विजयलाभानन्तर पूज्य पितरं प्रणन्तुमुद्यतं दुर्योधनं निवारयति शकुनि —
काममिति । यस्य = धृतराष्ट्रस्य, अयम् = प्रवर्तमानः. कुलविग्रह = वशवैरम्,
कामम् = यथेष्टम्, न रुचितः = न रोचते इत्यर्थः । स = धृतराष्ट्रः, प्रियपाण्डव-
त्वात्—प्रिया पाण्डवा सुधृष्टिरादयो यस्य भावस्तत्त्व तस्मात् पाण्डवेषु
स्नेहाधिवयादति भावः । अस्मान् दुर्योधनादीन् च, गर्हयति = निन्दति ।
हि = निश्चयेन, जयम् अवाप्य = लब्ध्वा, एवम् = अनेन प्रकारेण, युद्धोत्थितः—
युद्धात् उत्थितः = निवृत्तः, प्रहृष्टवदनः = प्रसन्नमुखः, एनम् = धृतराष्ट्रम्,
अभिगन्तुम् = प्रणामार्थगमनम् । तुल्यरूपम् = युक्तम् । वसन्ततिलक वृत्तम् १४

ने युद्ध मे उन (पाण्डवो) के पुत्र के साथ ही उनके अनुपम यश को भी बल
पूर्वक छोड़ लिया ॥ १३ ॥

दुर्योधन—मामा ! इधर (आओ) । दुःशासन ! इधर (आओ) पूज्य
पिता जी को हम सब प्रणाम करेंगे ।

शकुनि—वत्स दुर्योधन ! नहीं, ऐसा नहीं ।

उन्हें यह आपस का झगड़ा बिल्कुल पसन्द नहीं है । उन्हें पाण्डव अधिक
प्रिय हैं, अतः वे हम लोगों की निन्दा किया करते हैं । इस लिए (युद्ध मे)
विजय प्राप्तकर, युद्ध से निवृत्त होकर प्रसन्न मुख हम लोगों का इनके पास
अभिवादनार्थ जाना युक्त होगा ॥ १४ ॥

दुर्योधनः—मातुल ! मा मेवम् । यया तथा भवतु । तत्रभवन्त तात-
मभिवादयिष्यामः ।

उभौ—वाढम् । (परिक्रामत. ।

दुर्योधनः—तात ! दुर्योधनोऽहमभिवादये ।

दुरशासनः—ज्ञान ! दुश्शामनोऽहमभिवादये ।

शकुनिः—शकु नरहमभिवादये ।

सर्वे—कथमाशीर्वचनं न प्रयुज्यते ।

धृतराष्ट्रः—पुत्र ! कथमाशीर्वचनमिति ।

सौभद्रे निहते बाले हृदये कृष्णपार्थयोः ।

जीविते निरपेक्षाणां कथमाशीर्वचनं प्रयुज्यते ॥ १५ ॥

अशीर्वचनमप्रयुज्जानो धृतराष्ट्रस्तत्र हेतु प्रतिपादयति—सौभद्र इति ।
कृष्णपार्थयो - कृष्णश्च पार्थश्च इति कृष्णपार्थो तयो = कृष्णाजुनयो, हृदये=
हृदयस्वरूपे, परमप्रिये इति भाव, बाले=बालके, सौभद्रे=सुभद्रापुत्रे अभिमन्यु,
निहते = मारिते (भावे सप्तमो) । जीविते = जीवने, निरपेक्षाणाम् = उदासी-
नानाम्, कथम् = केन प्रकारेण, आशीर्वचनं प्रयुज्यते = आशीर्वचनं प्रयोक्तुं शक्यते ।
अनुष्ठुभृतम् ॥ १५ ॥

दुर्योधन—मामा ! नहीं ऐसा नहीं । जो कुछ भी हो । पूज्य पिता जी को
हम सब प्रणाम करेंगे ।

दोनो (शकुनि और दुःशासन)—बहुन ठोक । (धूमते हैं) ।

दुर्योधन—पिता जी ! मैं दुर्योधन अभिवादन करता हूँ ।

दुःशासन—पिता जी ! मैं दुःशासन अभिवादन करता हूँ ।

शकुनि—मैं शकुनि अभिवादन करता हूँ ।

सब—बयो आशीर्वाद नहीं दिया जा रहा है ?

धृतराष्ट्र—पुत्र, आशीर्वाद कैसे दूँ ?

कृष्ण और अर्जुन के हृदयरूप, बालक अभिमन्यु के मारे जाने पर तुम सब
जीवन के प्रति उदासीन हो चुके हो, अतः तुम लोगों को कैसे आशीर्वाद दिया
जाय ॥ १५ ॥

दुर्योधन —अये,

भूमिकम्प सशब्दोऽय कुतो नु सहसोत्थितः ।

उल्काभिश्च पतन्तीभिः प्रज्वालितमिवाम्बरम् ॥ २५ ॥

धृतराष्ट्र —पुत्र ! एव मन्ये,

सुव्यक्त निहितं दृष्ट्वा पीत्रमायस्तचेतस ।

उल्कारूपाः पतन्त्येने महेन्द्रस्याश्रुविन्दवः ॥ २६ ॥

दुर्योधन सहसोत्थात पश्यन् सादृश्यं प्राह—भूमिकम्प इति । अयम् = दृश्यमान, सशब्द —शब्देन सहित, भूमिकम्पः = भूकम्प, सहसा = अकस्मात्, कुतो = वस्मात्, नु इति वितर्क, उत्थित = प्रादुर्भूतः । पतन्तीभिः = आकाशात् पतन्शीलाभिः, उल्काभिः = आकाशस्थैर्दाहकतत्त्वैः, अम्बरम् = आकाशम्, प्रज्वालितम् = प्रज्वलितमिव कृतमित्यर्थः । उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः । अनुष्टुप्वृत्तम् ॥ २५ ॥

धृतराष्ट्र उत्प्रेक्षते तदुल्काविषये—सुव्यक्तमिति । पीत्रम् = अभिमन्युम्, सुव्यक्तम् = सुस्पष्टं यथा तथा, निहितम् = मृतमित्यर्थः, दृष्ट्वा = विलोक्य, आयस्तचेतस — आयस्तम् = दुःखितम्, चेत = हृदय यस्य तथोक्तस्य, पीडितहृदयस्येत्यर्थः, महेन्द्रस्य = सुराधिपस्येन्द्रस्य, एते = दृश्यमाना, उल्कारूपा, अश्रुविन्दवः, पतन्ति = आकाशाद् भूमिम् आगच्छन्ति । अश्रुल्कापातस्य महेन्द्राश्रुविन्दुपातत्वेनोत्प्रेक्षणादुत्प्रेक्षाऽलङ्कारः । अनुष्टुप्वृत्तम् ॥ २६ ॥

दुर्योधन —अरे ।

यह सहसा (भयानक) शब्द के साथ भूकम्प कैसे हो रहा है ? (आकाश से टूट कर) गिरती हुई उल्काओं से आकाश प्रज्वलित-सा कर दिया गया है ॥ २५ ॥

धृतराष्ट्र—पुत्र । ऐसा समझता हूँ—

सुस्पष्ट (अपने) पीत्र (अभिमन्यु) को मारा गया देख कर दुःखित-हृदय इन्द्र के ये अश्रुविन्दु उल्कारूप में गिर रहे हैं ॥ २६ ॥

दुर्योधनः—जयत्रात ! गच्छ, पाण्डवगिविरे शङ्खपटहसिहनादरवा-
न्मिश्रं किञ्चित्तोऽप्य शब्द इति शयताम् ।

भटः—यदाज्ञापयति । (निश्क्रम्य प्रविश्य ।) जयतु महाराज । सशस्त्र-
कानोकनिवाहितप्रतिनिवृत्तेन धनञ्जयेन निहत पुनमङ्कस्थमश्रुभि
परिपिच्य जनार्दनावभर्त्सितेन प्रतिज्ञातं किलानेन ।

दुर्योधनः—किमिति किमिति !

भटः—

तस्यैव व्यवसायतुष्टहृदयैस्तद्विक्रमोत्माहिभि-

दुर्योधन इति ! शङ्खपटहसिहनादरकोन्मिश्र — शङ्खा, पटहा = भेर्य,
सिहनादाः = वीराणा गजितानि च, तेषा रथं = शब्दः, उन्मिश्र = सम्मिश्रित,
प्रवृद्धि गत इत्यर्थः ।

भट इति—सशस्त्रकानोकनिवाहितप्रतिनिवृत्तेन — सशस्त्रकानाम् अनीकं. =
सैन्यं (आदी) निवाहित = दूरापनीत (पश्चात्) प्रतिनिवृत्त, = प्रत्यागतं तेन ।
धनञ्जयेन = अर्जुनेन । निहतम् = घातितम् । अश्रुभि परिपिच्य = वाष्पराद्रित
कृत्वा । जनार्दनेन = श्रीकृष्णेन अवभर्त्सित = निन्दित तेन जनार्दनावभर्त्सितेन ।
प्रतिज्ञातम् = प्रतिज्ञा कृता । किलेति घातयाम् ।

भटो ज्ञात भूकम्पादिहेतु दुर्योधनाय निवेदयति—तस्यैवेति । तस्यैव =
अर्जुनस्यैव, व्यवसायतुष्टहृदयैः—व्यवसायेन = उद्योगेन, प्रतिज्ञयेत्यर्थः,

दुर्योधन—हे जयत्रात ! जाओ, पाण्डवों के शिविर में शङ्ख, भेरी और
सिंहनाद के शब्द से मिश्रित यह शब्द बयो हो रहा है, मालूम करो !

भट—जो आज्ञा । (जाकर, प्रवेश कर) महाराज की जय हो । संशस्त्रको
की सेनाओं द्वारा दूर ले जाये जाने के बाद लौट कर इस अर्जुन ने मारे गये
पुत्र को गोद में रख कर, आँसुओं से उसे आर्द्र कर कृष्ण के द्वारा निर्भर्त्सित
(प्रेरित) होकर प्रतिज्ञा की है ।

दुर्योधन—क्या ! क्या !

भट—उस (अर्जुन) की प्रतिज्ञा से सन्तुष्ट हृदय, उसके पराक्रम से
उरसाहमम्पन्न, प्रसन्नमुख राजाओं ने अपनी जीव निश्चित समझकर हर्षातिरेक

स्तुष्टास्यैजितमित्यवेक्ष्य सहसा नाद प्रहर्षात्कृतः ।

आक्रान्ता गुरुभिर्धराधरवरै संक्षोभितै पाथिवै-

भूमिश्चागतसम्भ्रमेव युवतिस्तस्मिन् क्षणे कम्पिता ॥ २७ ॥

धृतराष्ट्र —

प्रतिज्ञासारमात्रेण कम्पितेय वसुन्धरा ।

तुष्टानि = प्रसाद गतानि हृदयानि = चेतासि येषा तादृशी । तद्विक्रमोत्साहिभि
 तस्य = अर्जुनस्य, विक्रमेण = पराक्रमेण, उत्साहिभि = उत्साहसम्पन्नै (उत्सा-
 हशब्दात् 'अत इनिठनौ इति मतुवर्थ' इति) । तुष्टास्यै = तुष्टानि = प्रस-
 न्नानि आस्यानि = मुखानि येषा ते तुष्टास्यास्तै । जितम् = अस्माभि =
 पराजित कौरवकुलमिति अवेक्ष्य = दृष्ट्वा, निश्चित्येत्यर्थं, सहसा = झटिति,
 प्रहर्षात् = आनन्दतिरेकात् नाद कृत = गर्जित कृतम् । गुरुभि = महद्भि
 धराधरवरै = पर्वतश्रेष्ठै, संक्षोभितै = मरुद्भि, समुत्तेजितै, पाथिवै =
 नृपै, आक्रान्ता = अधिष्ठिता, पक्ष स्वायत्तीकृता, आगतसम्भ्रमा-आगत =
 प्राप्त, सम्भ्रम = आतङ्क यस्यास्तादृशी । युवतिरिव = अङ्गनेव । भूमि =
 पृथ्वी । तस्मिन् क्षणे = तस्मिन् काले, कम्पिता = सजातकम्पाऽभवत् । महद्भि
 पर्वतसदृशै सधुब्धैर्नृपतिभिरधिष्ठिता पृथ्वी स्वायत्तीकृता तरुणीवाकम्पितेत्यर्थः ।
 भूकम्पस्य नादस्यापि चेदमेव कारणमिति भावः । 'आगतसम्भ्रमेव युवतिरित्य-
 त्रोपमालङ्कारः । शाश्वलविक्रीडित घृत्तम् ॥ १७ ॥

धृतराष्ट्रोऽपि भर्तृक्तिं निश्चय्य भविष्यदनर्थं प्रतिपादयति—प्रतिज्ञासारेति ।
 प्रतिज्ञासारमात्रेण—प्रतिज्ञाया सार = दाढ्यम्, त-मात्रेण, इयम् वसुन्धरा =
 पृथिवी । कम्पिता = अकम्पत । धनुषि = गाण्डीवे, स्पृष्टे = गृहीते, त्रैलोक्यम्
 = त्रिलोकी । विचलिष्यति = कम्पिष्यते । यस्यार्जुनस्य प्रतिज्ञाबलेनैव धरा

से सहसा मिहनाद क्रिया । महान् पर्वतो के समान उन सधुब्ध राजाओ से
 अधिष्ठित (आक्रान्त) पृथिवी, गृहीत (आक्रान्त) अतएव घबड़ायी हुई
 युवती के समान काँप उठी ॥ २७ ॥

धृतराष्ट्र—प्रतिज्ञा के प्रताप से ही पृथ्वी काँप उठी । (गाण्डीव) धनुष

सुव्यक्त धनुषि स्पृष्टे त्रैलोक्य विचलिष्यति ॥ २८ ॥

दुर्बोधन - जयघ्रात ! किमनेन प्रतिज्ञातम् ।

मट -

येन मे निहत पुत्रस्तुष्टि ये च हते गताः ।

इव सूर्योऽन्तमसम्प्राप्ते निहनिष्यामि तानहम् ॥ २९ ॥ इति ।
दुर्बोधन - प्रतिज्ञाव्याधाते किं प्रायश्चित्तम् ।

मट - चित्तारोहण किल गाण्डीवेन सह ।

कम्पित्वा स यदा गाण्डीवमादाय युद्धाद्यतो भविष्यति तदा तु श्रीशिवमेव
कम्पिष्यति इति सुस्पष्ट प्रतीयत इति धृतराष्ट्राक्तोराशयः । अनुष्टुप्बृत्तम् ॥ २८ ॥

मटो दुर्बोधनेन पृष्टं सन्नजुनस्य प्रतिज्ञा त विज्ञापयति-येनेति । येन =
कीरेण, मे = मम, अजुनस्येत्यर्थं, पुत्र = सुत, अभिमन्युरित्यर्थं, निहत =
मारित, ये च = वीरा, (तस्मिन्) हते = मारिते (भावे सप्तमी), तुष्टिम् =
प्रमन्नताम्, गता = याता । तान् = सन्नून्, इव = आशामिति दिवसे, सूर्योऽ-
न्तमसम्प्राप्ते सूर्यस्यास्ताचक्षलगमनात्पूर्वमेवेत्यर्थं, अहम् = अजुनं निहनिष्यामि =
मारयिष्यामि । इयजुनेन कृत्वा प्रतिज्ञेति भावः । अनुष्टुप्बृत्तम् ॥ २९ ॥

दुर्बोधन इति । प्रतिज्ञाव्याधात-प्रतिज्ञायाम् व्याधात = विघ्नः, तस्मिन्
(भावे सप्तमी) अपूर्णामा प्रतिज्ञायां सत्यामित्यर्थं । प्रायश्चित्तम्-प्रायस्य =
पापस्य, चित्तम् = विगोधन यस्मात्तम् । (निपातनात् सुहागम) पापनिवृत्ति-
रित्यर्थं । ('प्राधानां तप प्रोक्तं चित्तं निश्चय उच्यते । तपोनिश्चयसयोगान्
प्रायश्चित्तमितीर्यते' इति हेमाद्रिः) ।

मट - गाण्डीवेन सह-करणेण गाण्डीवं धनुर्गृहीत्वेत्यर्थं । (सहयुक्तेऽग्रधाने'

रुठाने पर तीनों लोक ङगमगा जायेगा-यह सुस्पष्ट है ॥ २८ ॥

दुर्बोधन - हे जयघ्रात ! इस (अजुन) ने क्या प्रतिज्ञा की है ?

मट - जिसने मेरे पुत्र को मारा है और मारे जाने पर जो लोग प्रसन्न
हूए हैं उन सबको मैं बल सूर्यास्त के पूर्व ही मार डालूंगा-ऐसी
(प्रतिज्ञा की है) ॥ २९ ॥

दुर्बोधन - प्रतिज्ञा पूरी न होने पर कौन सा प्रायश्चित्त करेगा ?

मट - निश्चय गाण्डीव धनुष के साथ चिता पर चढ़ना ।

प्रयामि सौभद्रविनाशचोदितः दिदृक्षुरक्षारिमनायंचेतसम् ।

विचिन्तयंश्चकधरस्य शासनं यथा गजेन्द्रोऽङ्कुशशङ्कितो बलिम् ॥३३॥

(अधो विलोक्य) इदमस्योपस्थानगृहद्वारम् । यावदवतरामि ।

(अवतीर्य) आत्मनैवात्मानं निवेदयिष्ये । भोः ।

घटोत्कचः स्वाऽऽगमनप्रयोजनं कथयति—प्रयामि सौभद्रेति । सौभद्र-
विनाशचोदित—सुभद्राया अपत्य पुमान् सौभद्रः = अभिमन्युः, तस्य विनाशः
= निहनम्, तेन चोदितः = प्रेरित, अहम् = घटोत्कच इत्यर्थः । अद्य =
इदानीम्, अनायंचेतसम्—न आयंमिति अनायम् = निवृष्टम्, चेतः = हृदयं
यस्य तम्, दुराशयमित्यर्थः । अरिम् धत्रुम्, दिदृक्षुः = द्रष्टुमिच्छु
(सन्नन्ताद् दृश्धातो 'सनाशसभिश्च उ' इति कर्त्तरि उ प्रत्यय, 'न लोका-
व्ययनिष्ठा खलयंतृनाम्' इति षष्ठे निषेधे 'अरिमि'त्यत्र कर्मणि द्वितीयैव ।)
यथा = येन प्रकारेण गजेन्द्रः = हस्तिश्रेष्ठ, अङ्कुशशङ्कितः—अङ्कुशः = भल्ली,
तस्मात् शङ्कितः = सशङ्क, बलिम् = आहारम्, (तथा) चक्रधरस्य—
धरतीति धरः, चक्रस्य धरः इति चक्रधर = श्रीकृष्णः, तस्य शासनम् =
आज्ञाम्, विचिन्तयन् = विचारयन्, प्रयामि = गच्छामि । यथा कश्चिद्-
गजेन्द्रोऽङ्कुशात् सशंकः स्वाहारं प्रहीतुं प्रयाति तथैवाहमपि श्रीकृष्णाज्ञया
शत्रुं द्रष्टुं गच्छामीत्यर्थः । उपमाऽलंकारः । वंशस्यं वृत्तम् । तल्लक्षणं
यथा—'जतो तु वंशस्यमुदिरित जरो ।' इति ॥ ३. ॥

इदमस्येति । इदम् = पुरोवर्ति । अस्य शत्रोः, दुर्योधनस्य । उपस्थान-
गृहद्वारम्—उपस्थानगृहम् = सभाभवनम्, तस्य द्वारम् । आत्मनैव = स्वयम्,
आत्मानं निवेदयिष्ये=स्वपरिचयं दास्यामि ।

मैं सुभद्रा के पुत्र (अभिमन्यु) के सहार से प्रेरित होकर, चक्रधर कृष्ण
की आज्ञा को सोचता हुआ, दृष्टहृदय शत्रु को देखने की इच्छा से जा रहा हूँ,
जैसे अङ्कुश से सशङ्क गजराज अपना) दैनिक आहार लेने जाता है ॥ ३३ ॥

(नीचे देखकर) यह सभागृह का द्वार है । तो उतरता हूँ । (उतर कर)
स्वयं ही अपना परिचय दूँगा । अजी,

हैडिम्बोऽस्मि घटोत्कचो यदुपतेर्वाक्य गृहीत्वा गता
द्रष्टव्योऽन मया गुरुः स्वचरितैर्दोषैर्गतं शनुताम् ।

दुर्योधन —

एत्येहि प्रविशस्व शनुभवन कौतूहल मे महत् ।

धृष्ट श्रावय मां जनार्दनवचा दुर्योधनोऽह स्थित ॥३५॥

घटोत्कच — (प्रविश्य) अये अयमन्नभवान् धृतराष्ट्र । अनार्यंशत-

घटोत्कच स्वयमेव स्वपरिचय ददाति—हैडिम्बोऽस्मीनि । यदुपते = थोऋण्यस्य, वाक्यम् = वचनम्, सन्देशमित्यर्थ, गृहीत्वा, आगत = सम्प्राप्त, हैडिम्ब = हिडिम्बा तन्नाम्नी राक्षसकुलोत्पन्ना स्त्री, तस्या, अपत्य पुमान् हैडिम्ब (अपत्यार्थेऽण्) = हिडिम्बापुत्र, घटोत्कच = तन्नामा, अस्मि । स्वचरितं—स्वेन आत्मना चरितं = कृतं, दोष = अपराधं, शनुता गत = शनु भाव प्राप्त, गुरु = श्रेष्ठ, (गुरुस्तुगीप्पती श्रेष्ठे' इत्यमर) मया = घटोत्कचेन, अत्र, द्रष्टव्य = दर्शनीय ।

तच्छ्रुत्वा दुर्योधन प्राह—एहीति । एहि = आगच्छ । शनु भवनम् = रिपुगृहम्, प्रविशस्व - प्रवेश कुरु (आत्मनेपद-प्रयोगश्चित्त्य, पाणिनीय व्याकरणे सादृशविधानाभावात् ।) मे = मम, दुर्योधनस्येत्यर्थं । महत् = परमम्, कौतूहलम् = औत्सुक्यम् (वर्तते) । धृष्टम् = निर्भयं यथा स्मात्तया, जनार्दनवच — जनार्दनस्य = श्रीकृष्णस्य वच - वचनम्, सन्देशमिति यावत् । माम् = दुर्योधनम्, श्रावय = कण्ठगोचरीकुरु । अहं दुर्योधन, स्थित, श्रोतु-मिति भाव । शार्दूलविक्रीडित वृत्तम् ॥ ३४ ॥

घटोत्कचा धृतराष्ट्र पश्यन् साश्चर्यमाह—अय अयमिति । अये = आश्चर्य-सूचकमव्ययपदम् । अयम् = पुरतो दृश्यमान, अत्रभवान् = पूज्य । अनार्यं-

श्री कृष्ण के वाक्य (सन्देश) को ग्रहण करके आया हुआ मैं हिडिम्बा का पुत्र घटोत्कच हूँ । मुझे यहाँ अपने ही क्रिये अपराधो के कारण शत्रु बने हुए गुरुजनों से मिलना है ।

दुर्योधन—आओ, आओ । शत्रु के गृह में प्रवेश करो, मुझे बड़ी उत्सुकता है, निर्भयतापूर्वक श्रीकृष्ण का वचन (सन्देश) मुझे सुनाओ, मैं दुर्योधन (मुझे को) स्थित हूँ ॥ ३४ ॥

घटोत्कच—(प्रवेश कर) अहो ! यह पूज्य धृतराष्ट्र हैं, मैं अधम पुत्रो

स्योत्पादयिता । अयं ननु ललितगम्भीराकृतिविशेषः । आश्चर्यमाश्चर्यम् ।

वृद्धोऽप्यनातवलीगुरुसहतासः

श्रद्धेरूप इव पुत्रशतस्य घृत्या ।

मन्ये सुरैस्त्रिदिवरक्षणजातशङ्के-

स्त्रासाप्तिमीलितमुखोऽत्रभवान् हि सृष्ट ॥ ३५ ॥

घृतस्य—अनार्याणाम् = दुष्टानां घृतम्, घृतसङ्घपाकानां द्रव्योपनादिदुष्टानां मित्यर्थः । उत्पादयिता = जनक । नन्विति निश्चये । ललितगम्भीराकृति-विशेष — ललित = सुन्दर, गम्भीर = समत आकृतिविशेष यस्य स ।

घटोत्कचो धृतराष्ट्रं वर्णयति—वृद्ध इति । वृद्ध. = जरठ, अपि, अनात-वलीगुरुसहतासः—न जातता = विस्तारिता, अनुदभूतेत्यर्थं, वली (चिकुडन, झुरी इति भाषायाम्) तथा गुरु = मासलावित्यर्थं, संहती = मिलित्वा असी = स्कन्धी यस्य स तथाविधः । पुत्रशतस्य = शतसङ्ख्याकानां पुत्राणामित्यर्थं, घृत्या = धारणेन, श्रद्धेरूप इव—श्रद्धातु योग्य श्रद्धेय, तादृश रूप यस्य स तथोक्तः । त्रिदिवरक्षणजातशङ्के—त्रिदिवम् = स्वर्गं, ('स्वरव्ययं स्वर्गं नाक-त्रिदिव त्रिदशालया' इत्यमरः) तस्य रक्षणे पालने जाता = उत्पन्ना, शङ्का = मन्देहो येषां तं, धृतराष्ट्रं कदाचित्स्वर्गं स्वायत्तीकुर्वादिति जातसन्देहैरि-त्यर्थः, त्रासात् = भयात्, निमीलितमुखः—निमीलितम्—मुद्रितनेत्रयुक्तमित्यर्थं, मुखम् = आनन यस्य स तथाविधः अन्ध इत्यर्थः । हि=निश्चयेन, अत्रभवान् = पूज्य, धृतराष्ट्रं, सृष्ट = रचित इति मन्ये = सभावयामि । कदाचिदयं धृतराष्ट्रं स्वर्गं स्वायत्तीकुर्वादिति भीतेषु देवेषु ब्रह्मणा धृतराष्ट्रोऽन्धः सृष्ट इति भावः । उत्प्रेक्षालङ्कारः । वसन्ततिलकं घृतम् ॥ ३५ ॥

क जनक । निश्चय ही इनकी सुन्दर, गम्भीर आकृति बड़ी विशिष्ट है । बड़ा आश्चर्य है ।

बूढ़े हैं, फिर भी झुरियां नहीं पडी हैं अतएव इनके कन्धे पर मासन और मुपुष्ट हैं । सी पुत्रों के रखने से ये श्रद्धेय रूप हैं । मालूम होता है कि निश्चय ही स्वर्गलोक की रक्षा में देवताओं को शङ्का हो गयी थी, अतएव (ब्रह्मा ने) इन पूज्य (धृतराष्ट्र) को अन्ध ही बनाया ॥ ३५ ॥

(उपसृत्य) पितामह ! अभिवादये घटोत्क--(इत्यर्धोक्ते) न न अयमक्रमः । युधिष्ठिरादयश्च मे गुरवो भवन्तमभिवादयन्ति । पश्चाद्घटोत्कचोऽहमभिवादये ।

धृतराष्ट्र.—एहो हि पुत्र !

न ते प्रिय दुःखमिदं ममापि

यद् भ्रातृनाशाद् व्यथितस्तवात्मा ।

इत्थं च ते नानुगतोऽयमर्थो

मत्पुत्रदोपात् कृपणोऽस्मि ॥ ३६ ॥

धृतराष्ट्रो घटोत्कचं सान्त्वयन्नाह—न ते प्रियमिति । यत्, भ्रातृनाशात्—
भ्रातु = अभिमन्यो नाशात् = वधात् । तव = घटोत्कचस्य, आत्मा = हृदयम्,
व्यथितः = दुःखितः, ते = तव, इदम् = भ्रातृनाशजनितम्, दुःखम् = घनाप,
मम = धृतराष्ट्रस्यापि न प्रियम् = प्रीतिकरम्, त्वमिवाहमपि दुःखमनुभवामीति
भावः । इत्थम् = अनेन प्रकारेण च, अयम् = वक्ष्यमाण इत्यर्थः, अर्थः =
आशयः, ते = तव (कृशोधे कर्तरि पष्ठी) न अनुगतः = न ज्ञातः । मत्पुत्र-
दोपान्—मम = धृतराष्ट्रस्य य पुत्रः = दुर्योधन, तस्य दोपात् = तत्कृता-
पराधात्, कृपणोऽस्मि—अकृपण कृपणः कृत इति कृपणोऽस्मिः
(अभूवत्तद्भावे च्चिः) = कदर्याकृतोऽस्मि, दयनीया दशा प्रापितोऽस्मीति भावः ।
उपजातिवृत्तम् ॥ ३६ ॥

(ममीप जाकर) पितामह (बाबा जी) । 'अभिवादन करता हूँ मैं घटोत्क' (ऐसा आधा वाक्य कहने पर) नहीं नहीं, यह क्रम रहित है । युधिष्ठिर आदि मेरे गुरुजन आपको अभिवादन कर रहे हैं, तत्पश्चात् मैं घटोत्कच अभिवादन करता हूँ ।

धृतराष्ट्र—आओ आओ पुत्र !

जो माई (अभिमन्यु) के मारे जाने से तुम्हारी आत्मा व्यथित है, यह तुम्हारा दुःख मुझे भी प्रिय नहीं है । और इस प्रकार तुम इस बात की नहीं समझते, मैं अपने पुत्रों के अपराध से कदर्या (दयनीय दशा को प्राप्त) कर दिया गया हूँ ॥ ३६ ॥

घटोत्कच.—अहो कल्याण. खल्वत्रभवान् । कल्याणानां प्रसूतिं
पितामहमाह भगवांश्चक्रायुधः ।

धृतराष्ट्रः (आसनादुत्थाय ।) किमाज्ञापयति भगवांश्चक्रायुधः ।

घटोत्कचः—न न न । आसनस्थेनैव भवता श्रोतव्यो जनार्दनस्य
सन्देशः ।

धृतराष्ट्रः—यदाज्ञापयति भगवांश्चक्रायुध (उपविशति ।)

घटोत्कच.—पितामह ! श्रूयताम् । हा वत्स अभिमन्यो ! हा वत्स
कुल्कुलप्रदीप । हा वत्स यदुकुलप्रवाल ! तव जननीं मातुल च मामपि
परित्यज्य पितामहं द्रष्टुमाशया स्वर्गमागतोऽसि । पितामह ! एक-
पुत्रविनाशादजुंनस्य तावदादृशो खल्ववस्था, का पुनर्भवता भविष्यति ।

घटोत्कच इति । अहो विस्मयादिवीधकमव्ययपदम् । कल्याण =
सौभाग्यशाली । खलु = निश्चयेन । कल्याणानाम् = शुभानाम् । प्रसूतिम् =
जनकम्, उत्पादयितारम् । पितामहम् = पितु पितरम्, धृतराष्ट्रमित्यर्थं,
चक्रायुध = चक्रम् आयुध यस्य स, श्रीकृष्ण इत्यर्थं । आत्मबलाधानम् स्वसैन्य

घटोत्कच - अहा, निश्चय ही आप बड़े सौभाग्यशाली हैं । कल्याणों के
जनक आप पितामह से भगवान् चक्रपाणि (श्रीकृष्ण) ने कहा है ।

धृतराष्ट्र (आसन से उठकर) भगवान् चक्रपाणि की क्या आज्ञा है !

घटोत्कच—नहीं, नहीं, नहीं । आप आसन पर बैठे ही श्रीकृष्ण का
सन्देश सुने ।

धृतराष्ट्र { भगवान् चक्रपाणि की जो आज्ञा ।

घटोत्कच—पितामह ! सुनिए । हाय वत्स अभिमन्यु ! हाय कुल्कुल के
दीपक ! हाय वत्स यदुकुल के अङ्कुर ! तुम अपनी माता मामा और मुझ
(पिता) को भी छोड़कर पितामह (इन्द्र) के दर्शन की आशा से स्वर्गलोक
को चले गये । हे पितामह ! एक पुत्र के विनष्ट हो जाने से तो अजुंन की यह
अवस्था हुई है, फिर (सो पुत्रों के विनष्ट होने पर) आप की क्या अवस्था
होगी (सोचिए) । तो शीघ्र अब आप अपनी सेनाओं को लौटा ले, ताकि
पुत्रशोक से उठी आग तुम्हारे प्राण रूप हृदि को न जलाये ।

सतः क्षिप्रमिदानीमात्मबलाधानं कुरुष्व । यथा ते पुत्रशोकसमुत्थितोऽग्निर्न दहेत् प्राणमयं हविरिति ।

धृतराष्ट्रः—

सक्रोधव्यवसायेन कृष्णेनैतदुदाहृतम् ।

पश्यामीव हि गाण्डीवी सर्वक्षत्रवधे धृतः ॥३७॥

सर्वे—अहो हास्यमभिधानम् ।

घटोत्कच—किमेतद्धास्यते ।

दुर्योधनः—एतद्धास्यते—

प्रत्यावर्तनम् । पुत्रशोकसमुत्थितः—पुत्रमरणजन्यशोकसमुद्भूत । प्राणमयम् = प्राणारमकम् ।

श्रीकृष्णमन्देशं श्रुत्वा धृतराष्ट्रो घटोत्कचमाह—सक्रोधेति । सक्रोधव्यवसायेन—क्रोधेन सहित सक्रोधः, तादृशो व्यवसाय उद्योगो यस्य तेन । कृष्णेन = वासुदेवेन, एतत् = यचः, उदाहृतम् = कथितम् । हि = यत । गाण्डीवी—गाण्डीव धनुरस्यस्येति गाण्डीवी ('अत इनिठनी' इति इनिः) = अजुन । सर्वक्षत्रवधे—सर्वेषां क्षत्रियानाम् = क्षत्रियाणां वधे = विनाशे, धृतः = नियुक्तः श्रीकृष्णेनेति भावः । इति पश्यामि = अवगच्छामीवेत्यर्थः । उर्रेक्षालकारः । अनुष्टुप्वृत्तम् ॥ ३७ ॥

सर्वे इति । अभिधानम् = वचनम्, श्रीकृष्णस्येति भावः । हास्यम् = हसनीयम् ।

धृतराष्ट्रः—क्रोध के आवेश में सचेष्ट होकर ऐसा श्रीकृष्ण ने कहा है, मैं तो प्रत्यक्ष देख सा रहा हूँ कि (उनके द्वारा) गाण्डीवधारी अजुन समस्त क्षत्रियों के विनाश में नियुक्त कर दिया गया है ॥ ३७ ॥

सब लोग—अहा, कैसा हास्यास्पद सन्देश है ।

घटोत्कच—इसमें हंसने की क्या बात है ?

दुर्योधन—हंसने की यह बात है—

देवेमन्त्रयते सार्धं स कृष्णो जातमत्सरः ।
पार्थैकेन यो वेत्ति निहत राजमण्डलम् ॥ ३८ ॥

घटोत्कच —

हससि त्वमहं वक्ता प्रेषितचक्रपाणिना ।
श्रावित पार्थकर्मदमहो युक्त तवैव तु ॥ ३९ ॥

अपि च, भवतापि श्रोतव्यो जनार्दनसन्देशः ।

दुःशासन—मा तावत् भो । क्षत्रियावमानिन् ।

दुर्योधन श्रीकृष्णसन्देशस्य हास्यत्वमुपपादयति—देवैरिति । जातमत्सर—
जात = उत्पन्न मत्सर = ईर्ष्या यस्य स तथोक्त । स = प्रसिद्ध, कृष्ण =
वासुदेव, देव सार्धम् = सुरै सह, मन्त्रयते = मन्त्रणा करोति । य = कृष्ण,
एकेन अद्वितीयेन, पार्थेन—अर्जुनेन, राजमण्डलम् = नृपसभम्, निहतम् =
विनाशितम्, वेत्ति = जानाति । तद्वास्यमेव तत्कथनमिति भाव । अनुष्टुप्बृत्तम् ॥

घटोत्कचो दुर्योधनं निन्दति—हससोति । त्वम् = दुर्योधन, हससि—
हास्य करोषि, अहम्—घटोत्कच, वक्ता = सन्देशवाहक, चक्रपाणिना—चक्र
पाणी यस्य स चक्रपाणि श्रीकृष्ण तेन, प्रेषित = प्ररित, पार्थकर्म—पार्थस्य
= अर्जुनस्य कर्म = कृत्यम्, श्रावितम्—कर्णगोचरोक्तम्, अहो ! इदम् =
एतादृश कर्म, सन्देश श्रुत्वा हसनमित्यर्थ । तवैव = तव दुर्योधनस्यैव तु युक्तम्
= उचितम् । त्वदतिरिक्तो नान्य कश्चिदेव कर्तुं समर्थ, मूढस्त्व श्रीकृष्ण
सन्देश तिरस्करोषीति भाव । अनुष्टुप्बृत्तम् ॥ ३९ ॥

वह कृष्ण देवताओं के साथ मन्त्रणा किया करता है (अतः देवताओं की
सङ्गति से) वह ईर्ष्यालु हो गया है जो केवल एक अर्जुन के द्वारा समस्त
राज-समुदाय को मारा गया समझता है ॥ ३८ ॥

घटोत्कच—चक्रपाणि भगवान् कृष्ण के द्वारा भेजा हुआ मैं सन्देश कह
रहा हूँ और तुम मन्वील कर रहे हो । मैं पार्थ का कर्म सुना चुका । अहो, यह
(हँसी उठाना) तुम (मूढ) को उचित ही है ॥ ३९ ॥

और भी, आप भी श्रीकृष्ण का सन्देश सुन ले ।

दुःशासन—अजी, ऐसा नहीं । हे क्षत्रियों का अवमान करने वाले !

पृथिव्या शासन यस्य धायंते सर्वपार्थिवैः ।

सन्देश श्रोष्यतेऽप्यन्यो न राजस्तस्य सनिधौ ॥ ४ ॥

घटोत्कच — कथं दुःशामनो व्याहरति अरे दुःशासन । अराजा नाम भवता चक्रायुधः । ह भो !

मुक्ता येन यदा पुरा नृपतय प्रभ्रष्टमानोच्छ्रया

येनाभ्यर्ष्य नृपमण्डलस्य मियतो भीष्माप्रहस्ताद्धृतम् ।

दुःशासनो घटोत्कच निवारयति—पृथिव्यामिति । पृथिव्याम् भुवि, यस्य दुर्योधनस्य, सामनम् = आदेशम्, सर्वपार्थिवं — सर्वे च ते पार्थिवा तै, समस्तभूपतिभिः, धायते = शिरसा गृह्यते, पाल्यत इत्यर्थं । अपि = फलत इत्यर्थं । तस्य राज्ञ दुःशामनस्य, सनिधौ = उपस्थितौ, अन्य नृपसन्देशभिनत इत्यर्थं, सन्देश, न श्रोष्यते—न वर्णगोचरीकरिष्यत । अनुदुर्वृत्तम् ॥४०॥

घटोत्कच इति । व्याहरति = शकीति । चक्रायुध = श्रीकृष्ण । हमिति क्रोधचोतकमत्र ।

घटोत्कच स क्रोध श्रीकृष्णस्य राजध्वेष्टत्वमुपपादयति—मुक्ता येनेति । पुरा = पूर्वकाले, यदा = यस्मिन् समये, प्रभ्रष्टमानोच्छ्रया = प्रभ्रष्ट = विनष्ट, मानस्य = समानस्य उच्छ्रय - विकास इत्यर्थ, येषां तादृशा, नृपतय = राजान, जरासन्धकारागारे बद्धा आमन् इति शेष । (तदा) येन = श्रीकृष्णेन (तदवस्था राजान) मुक्ता = मुक्ति प्रापिता, नृपमण्डलस्य = राजसमुदायस्य, मियत = पश्यत ('पृष्ठी चानादरे' इति पृष्ठी) नृपमण्डलमनाहृत्यर्थं । येन = श्रीकृष्णेन, भीष्माप्रहस्तान्—भीष्मस्य अप्रहस्त =

जिस का आदेश पृथिवी पर राजा धारण करते हैं (स्वीकार कर पालन करते हैं) अतएव उस राजा के सम्मुख अन्य (जो राजा का नहीं है) सन्देश नहीं सुना जायगा ॥ ४० ॥

घटोत्कच—क्या दुःशासन बोल रहा है ? अरे दुःशासन । चक्रपाणि श्री कृष्ण तुम्हारे लिए राजा नहीं हैं क्या ? हुम, अजी—

पहले जब (जरासन्ध के कारागार में जो बन्द थे) उन राजाओं को जिनका सम्मान नष्ट किया जा चुका था, जिन श्रीकृष्ण ने मुक्त कराया,

श्रीर्यस्याभिरता नियोगसुमुखी श्रीवक्षशय्यागृहे

श्लाघ्यः पार्थिवपार्थिवस्तव कथं राजा न चक्रायुधः ॥४१॥

दुर्योधन — दुःशासन । अल विवादेन ।

राजा वा यदि वाऽराजा बली वा यदि वाऽबली ।

बहुनात्र किमुक्तेन किमाह भवती प्रभुः ॥ ४२ ॥

घटोत्कच — अथ किमथ किम् । प्रभुरेव त्रैलोक्यनाथो भगवाश्चक्रा-
युध । विशेषतोऽस्माक प्रभुः । अपि च—

हस्तस्य अग्रभाग तस्मात् । अर्घ्यम् = पूजोपहार , हृतम् = स्वीकृतम् ।
यस्य = श्रीकृष्णस्य, श्रीवक्षशय्यागृहे—श्रीवक्ष = सौन्दर्ययुक्त वक्ष , तदेव शय्या-
गृहम् तस्मिन् , नियोगसुमुखी—नियोगेन=आदेशेन सुमुखी = सुप्रसन्ना,
अभिरता = लब्धाभिरामा । श्लाघ्य = प्रशसनीय , पार्थिवपार्थिवः—पार्थि-
वाना पार्थिव , राजराज , चक्रायुध = श्रीकृष्ण , तव = दुःशासनस्य, कथम्
= केन प्रकारेण, न राजा = न नृप । शार्ङ्गलविक्रीडित वृत्तम् ॥ ४१ ॥

दुर्योधनो दुःशासन विवादान्निवारयन्नाह—राजा वेति । यदि (कृष्ण)
राजा वा = नृपो वा, अराजा वा = नृपभिन्नो वा, बली = बलवान् वा,
अबली = निर्बलो वा स्यात्, अत्र = अस्मिन् विषये, बहुना उक्तेन किम् =
बहुना कथनेन प्रयोजन नास्तीत्यर्थं । भवताम् = युष्माकम्, घटोत्कचस्ये-

जिन श्रीकृष्ण ने राज समूह के देखते देखते भीष्म के हाथ से अर्घ्यदान लिया,
जिन श्रीकृष्ण के आदेश पालन में लक्ष्मी को प्रसन्नता होती है और वह
उनके श्रीवक्षस्थल रूप शयनागार में आनन्द प्राप्त करती है, वे प्रशस्य, राजा-
धिराज श्रीकृष्ण बयो कर तुम्हारे लिए राजा नहीं हैं ॥ ४१ ॥

दुर्योधन—दुःशासन । अब विवाद बन्द करो ।

श्रीकृष्ण चाहे राजा हो या अराजा, चाहे बली हो या निर्बल, इस विषय
में अधिक कहने से बच । (प्रयोजन) ? तुम्हारे स्वामी ने क्या कहा है (वह
बताओ) ॥ ४२ ॥

घटोत्कच—और क्या और क्या ? भगवान् श्रीकृष्ण तीनों लोको के स्वामी
प्रभु ही हैं । विशेषत हमारे स्वामी हैं । और भी—

अवसितमवगच्छ दान्त्रियाणा विनाश

नृपशतविनिचित्या लाघवं चास्तु भूमे ।

न हि तनयविनाशादुद्यतोप्रास्त्रमुपतैः

समरशिरसि कश्चित्काल्गुनस्यातिभारः ॥ ४३ ॥

शकुनि —

यदि स्याद्राज्यमात्रेण निजितेय घमुन्धरा ।

त्यर्थं, प्रभु = स्वामी, कृष्ण इत्ययं, विम आह = वि पठति, तदुच्यता-
मिति भाव ॥ अनुष्टुप्वृत्तम् ॥ ४२ ॥

षटोत्पचोऽजुंनस्य कृत्यं श्रावयति—अवसितमिति । दान्त्रियाणाम् = नृपा-
णाम्, विनाशम् = निहननम्, अवसितम् = समाप्तम्, अजुंनेत कृतमिति भाव ।
अवगच्छ = जानीहि । नृपशतविनिचित्या—नृपाणाम् दुर्योधनादीनां शौर्या-
णामित्यर्थं, शतम् = शतसङ्ख्याकानां दुर्योधनादीनां नृपविशेषाणां हतानामिति
भाव । विनिचिति = एकत्रावस्थापनं तथा, भूमे = पृथिव्या, लाघवम् =
सधुता, पृथिव्या भारसाधनमिति भाव, अस्तु = भवतु । तनयविनाशात्—
तनयस्य = पुत्रस्य अभिमन्यो. विनाश = सहारः सस्मात्, उद्यतोप्रास्त्रमुक्तं =
उद्यतानि = गृहीतानित्यर्थं, उप्राणि = भीषणानि यानि अस्त्राणि = आयुधानि
तेषां मुक्तानि = प्रहारा इत्यर्थं, (भावे क्त) सै, समरशिरसि = रणाग्रे, रण-
प्राङ्गणे इत्यर्थं । काल्गुनस्य = अजुंनस्य, कश्चित् = कौडिपि, अतिभार = महत्त्वा-
यम्, न हि=नैवास्ति । तथावरणमजुंनस्य सुवरमेव, सीतयैव तया शकुं स
समर्थ इति भाव । मालिनि वृत्तम् । तद्वल्लग्नं यथा—ननमययुतेयं मालिनि
भोगिनोर्वे ।” इति ॥ ४३ ॥

शकुनिर्षटोत्पचोक्तिमभिधिपति—यदि स्यादिति । यदि = चेत्, वाक्य-
मात्रेण = कथनमात्रेणैव, इयम् = अतिविस्तारिणी, घमुन्धरा = पृथ्वी, निजिता =

क्षत्रियो वा विनाश हुआ समझो । शो (दुर्योधनादि) राजाओं के (दाय
का) डेर लग जान से पृथिवी का भार हलवा हो । पुत्र (अभिमन्यु) के वध
से लठे हुए भीषण अस्त्रों के प्रहारों से युद्ध में अजुंन के लिए (यह) कोई
बड़ा भारी काम नहीं होगा ॥ ४३ ॥

शकुनि—यदि कहने मान से यह पृथिवी जीत ली जाय, यदि धात-धात

वाक्ये वाक्ये यदि भवेत् सर्वक्षत्रवध. कृत ॥ ४४ ॥

घटोत्कच — शकुनिरेष व्याहरति । भो शकुने !

अक्षान्विमुञ्च शकुने ! कुरु बाणयोग्य-

मष्टापद समरकर्मणि युक्तरूपम् ।

न ह्ययं दारहरण न च राज्यतन्त्र

प्राणा पणोऽत्र रतिरुग्रबलेश्च बाणे ॥ ४५ ॥

स्वायत्तीकृता स्यात् भवत् यदि - चेत् वाक्ये वाक्ये = वचने वचने, कथन मात्रेणैवेत्यर्थं । सर्वक्षत्रवध = सर्वेषां क्षत्राणाम् = क्षत्रियारणाम् वध = विनाश कृत = विहितो भवेत् तर्हि नास्त्यतिभारोऽजुं नस्येति भाव । अनुष्टुप्वृत्तम् ॥ ४४ ॥

घटोत्कच शकुनिमधिनिपति-अक्षान्विमुञ्चेति । अक्षान् = द्यूतोपयोगिन पाशान् विमुञ्च = परित्यज । हे शकुने ! समरकर्मणि = युद्धव्यापारे, युक्त रूपम् = योग्यम् वाणयोग्यम् = शरानुरूपम्, अष्टापदम्, -फलकम् वन्न वा अष्टकोष्ठयुक्तं यद् द्यूतक्रीडाया प्रयुज्यते, अष्टाङ्गमित्यप्यभिधीयते । कुरु = विधेहि । अत्र = युद्धभूमावित्यर्थं दारहरणम् = दाराणां हरणम् द्रौपदीचीर-हरणम् इत्यर्थं । न हि = नैवास्ति । राज्यतन्त्रम् = राज्यापहरणमित्यर्थं, न च = नैव च वर्तते । अत्र = युद्धभूमी, प्राणा पण = ग्लह उग्रबलं = प्रचण्ड-शक्तिशालिभि, बाणं = शरंश्च, रति = आनन्दानुभूति, क्रीडा त्व तु नात्र समर्थ इति भाव । वसन्ततिलक वृत्तम् ॥ ४५ ॥

मे सब क्षत्रियो का वध कर दिया जाय (तो अवश्य अजुंन के लिए कोई बड़ा भार नहीं होगा) ॥ ४४ ॥

घटोत्कच—यह शकुनि बोल रहा है ? हे शकुनि ।

पाँसों को छोड़ दो । हे शकुनि अपने क्रीडाफलक को युद्धकर्म के योग्य और बाणों से अनुरूप बना लो । यहाँ स्त्री का चीरहरण नहीं करना है और न राज्यापहरण करना है, यहाँ तो प्राणों को दार पर लगाना है और प्रचण्ड-शक्तिशाली तीखे बाणों से क्रीडा करनी है (जो तुम्हारे बस की बात नहीं)। ४५।

दुर्योधनः—भो भोः । प्रकृति गतः ।

क्षिपसि वदसि क्लृप्तं सङ्घयित्वा प्रमाणं

न च गणयसि किञ्चिद्द्रघाहरन्दीर्घहस्तः ।

यदि खलु तव दर्पो मातृपक्षोरूपो

वयमपि खलु रौद्रा राक्षसोप्रस्थभावाः ॥ ४६ ॥

घटोरकपः—शान्तं शान्तं पापम् । राक्षसेभ्योऽपि भवन्त एव क्रूरतरा ।

दुर्योधन इति । प्रकृतिम् = स्वभावम् । गत = प्राप्तः, राक्षसभावमनुमृत्य व्याहरसि स्वमिरयाणय' ।

दुर्योधनो घटोरकचं भस्मयति—क्षिपसि वदसीति । प्रमाणम् = मर्यादाम्, सङ्घयित्वा अतिक्रम्य, क्षिपसि = निन्दा करोषि, क्लृप्तम् = पठोरम् वदसि = प्रयोषि । दीर्घहस्तः—दीर्घो = विशालो, हस्तो = बाहु यस्य स (स्व घटोरकपः) व्याहरन् = जल्पन्, न च किञ्चित् = न हि किमपि याच्यमयाच्य या गणयसि = विचारयसि । यदि = चेत् खलु = निश्चयेन, मातृपक्षोरूपः—माता = जननी राक्षसकुलोत्पन्ना हिडिम्बा, राक्षसाः पक्षेन = सम्बन्धेन, उग्रम् = प्रचण्डं रूपं यस्य स तादृशः, दर्पो = गर्वः, भवत = तव घटोरकपस्य (अस्ति) तर्हि वयमपि = कीरया अपि, राक्षसोप्रस्थभावाः राक्षसानामिव उग्र = उद्धतः स्वभाव' = प्रकृतिर्येषां ते तयाविधा, रौद्रा = भयङ्कराः खलु । तदस्मात्तु विद्येन वर्तस्वेति भावः । मातृपक्षो वृत्ताम् ॥ ४६ ॥

दुर्योधन—अजी, अजी तुम (अपने) स्वभाव (राक्षसपन) पर उतर आये ।

तुम मर्यादा का उल्लङ्घन कर (हम सब की) निन्दा करते हो, पठोर बचन धोतते हो, तुम विशाल बाहुओं वाले याद विवाद करते हुए (याच्य तथा अयाच्य का) कुछ विचार नहीं करते हो । यदि तुम्हें अपनी माता (हिडिम्बा) के पक्ष वाले (राक्षसों) का प्रचण्ड गर्व है तो हम भी राक्षसों की तरह उद्धत स्वभाववाले भयङ्कर हैं ॥ ४६ ॥

घटोरकपः—पाप शान्त हो । राक्षसों से भी बड़कर आप लोग ही क्रूर हैं ।

कुठ —

न तु जतुगृहे सुप्तान् भ्रातृन् दहन्नि निशाचरा
 शिरसि न तथा भ्रातु पत्नी स्पृशन्ति निशाचरा ।
 न च सुतवधं सख्ये कतु स्मरन्ति निशाचरा
 विकृतवपुषोऽप्यग्राचारा घृणा न तु वजिता ॥ ४७ ॥

दुर्योधन —

दूत खलु भवान् प्राप्तो न त्व युद्धार्थमागत ।

घटोत्कचो दुर्योधनस्य राक्षसेभ्योऽपि क्रूरतरस्त्वनुपपादयति न तु जतुगृहे इति । निशाचरा = राक्षसा , जतुगृहे = लाशागृहे, सुप्तान् = शयानानित्यर्थं , भ्रातृन् = बन्धून्, न तु दहन्नि = न भस्मसात्कुर्वन्ति । तथा = तेनैव प्रकारेण, निशाचरा = राक्षसा , भ्रातु = बन्धो , पत्नीम् = भार्याम् शिरसि = मस्तके न स्पृशन्ति = स्पर्शं न कुर्वन्ति । किं च निशाचरा , सख्ये = सङ्ग्रामे, सुतवधम् = पुत्रहाननं कर्तुं न स्मरन्ति = पुत्र हन्तुं मनस्यपि न कुर्वन्तीति भावः । विकृतवपुषः - विकृतम् = विरूपितम्, भीषणमिति यावत्, वपुः = शरीरं येषां ते तथाभूता , उग्राचारा - उग्र = कठोर , आचारः = व्यवहारो येषां ते तथाभूता अपि, तु = किन्तु (तं निशाचरं) घृणा = दया, न वजिता = न त्यक्ता । भवद्भिस्तु सर्वथा दयापरित्यक्ता तन्नाक्षसेभ्योऽपि भयन्त क्रूरतरा इति भावः । अत्र प्रागुक्तकौरवक्रूरतरस्त्वोपपत्तये पादचतुष्टयवाक्यार्थानां हेतुवेनोपन्यासात् वाच्यलिङ्गमलङ्कारः । हरिणी घृताम् । तल्लक्षणं यथा— ' न समरसलाग पद्मवर्द्धर्मं हरिणी मता । ' इति ॥ ४७ ॥

दुर्योधनो दौत्येन समागत घटोत्कचं निर्दिशति—दूत खलु भवानिति । भवान् = त्वं घटोत्कच खलु = निश्चयेन, दूत = सन्देशवाहक , प्राप्तः = आगत ,

क्योकि—राक्षस तो लाशागृह में सो रहे भाइयो को नहीं जलाते हैं । निशाचर तो भोजाई के सिर पर हाथ नहीं लगाते हैं । निशाचर तो युद्ध में पुत्र का वध करने की बात सोच भी नहीं पाते हैं । उनका शरीर भीषण और व्यवहार उग्र भव ही हो, किन्तु उन्होंने दया का परित्याग तो नहीं किया है ॥ ४७ ॥

दुर्योधन—(दिलो) तुम दूत बन कर आये हो, युद्ध के लिए नहीं आये हो,

गृहीत्वा गच्छ सन्देश न वय दूतघातका ॥ ४८ ॥

घटोत्कच — (सरोपम्) किं दूत इति मा प्रधर्षयसि । मा तावद् भो ।
न दूतोऽहम् ।

खलं वो व्यवसायेन प्रहरध्वं समाहृता ।

ज्याच्छेदाद् दुर्बलो नाहमभिमन्युरिह स्थितः ॥४९ ॥

महानेप कैशोरकोऽय मे मनोरथ ।

अपि च,

दष्टोष्ठो मुष्टिमुद्यम्य तिष्ठत्येप घटोत्कच ।

त्व युद्धार्थम् = युद्ध कर्तुं न आगत, सन्देशम्, गृहीत्वा = आदाय, गच्छ =
याहि, वय दूतघातका न (स्मः) विवादाद्विरतो भूत्वा सन्देशमादाय गच्छ
स्वस्थानम्, नो चेदनिष्यसे इति भाव । अनुष्टुब्धुत्ताम् ॥ ४८ ॥

घटोत्कच इति । प्रधर्षयसि = अवमान्यसे ।

अलमिति । व = युष्माकम्, व्यवसायेन = व्यापारेण । अलम् = निषेधार्थकम्-
व्ययपदम् । समाहृता = सम्मिलिता । प्रहरध्वम् = (मयि) कुक्षत प्रहारम् ।
ज्याच्छेदात् — ज्याया = मौर्व्या, छेदात् = कर्तनात्, दुर्बल = विवश, असहाम,
अभिमन्यु, अहम् - घटोत्कच, इह = अत्र तव सभागृहे, न स्थित = नास्मीति
भाव । अनुष्टुब्धुत्ताम् ॥ ४९ ॥

दष्टोष्ठ इति । दष्ट ओष्ठ = अधरोष्ठ इत्यथ, येन स ('ओरवोष्ठयो समासे वा'
इति वचनेन पररूपमेवादेश) मुष्टिम्, उद्यम्य = उत्थाप्य, एव = अयम्, घटोत्कच,
तिष्ठति = वर्तते । कश्चित् पुमान् = कोऽपि पुरुष, यमालयम् = यमपुरम्,

अत सन्देश लेकर (वापस) जाओ । हम दूतों का वध नहीं करते हैं ॥ ४ - ॥

घटोत्कच — (क्रोध के साथ) क्या दूत मानकर मुझे अवमानित कर रहे हो ?
अजी ऐसा नहीं मैं दूत नहीं हूँ ।

तुम लोग का व्यापार समाप्त हो । तुम सब एक जुट होकर मुझपर प्रहार
करो, मैं प्रत्यञ्चा कट जाने से विवश हुआ अभिमन्यु नहीं हूँ । यहाँ खड़ा हूँ ।
मेरा यह किशोरावस्था का बहुत बड़ा उद्दाम मनोरथ है ।

और भी—

यह घटोत्कच (क्रोध से) ओठ काट कर मुट्ठी तान कर खड़ा है । कोई
४ दू० प०

उत्तिष्ठतु पुमान् कश्चिद्गन्तुमिच्छेद्यमालयम् ॥ ५० ॥

(सर्वे उत्तिष्ठन्ति ।)

घृतराष्ट्र — पीत्र घटोत्कच । मर्पयतु मर्पयतु भवान् । मद्बचनावगन्ता भव ।

घटोत्कच — भवतु भवतु । पितामहस्य वचनाद् दूतोऽहमस्ति । तथापि हि न शक्नोमि रोप धारयितुम् । किमिति विज्ञाप्य ।

दुर्योधन — आ कस्य विज्ञाप्यम् । मद्बचनादेव स वक्तव्य ।

किं व्यर्थं बहु भापसे न खलु ते पारुष्यसाध्या वय

गन्तुम् यातुम्, इच्छेत्=अभिलषेत्, उत्तिष्ठतु = योद्धुमभिगच्छेत् ॥ अनुष्टु-
वृत्तम् ॥ ५० ॥

घृतराष्ट्र इति । मर्पयतु=क्षमताम् । मद्बचनावगन्ता—अवगच्छति इति अवगन्ता, ममवचनस्यावगन्ता इति तथोक्त भव—मम वचन श्रुत्वा च तदनुसरत्विति भाव ।

दुर्योधन कृष्ण सन्दिशति—किम = किमर्थम्, बहु=अत्यन्तम्, व्यर्थम्= निरर्थकम्, भापसे = जल्पसि । वयम् = कौरवा, खलु=निश्चयेन, ते = तव = कृष्णस्य, पारुष्यसाध्या — पारुष्येन = अपभाषनेन साध्या = वश्या, न

पुरुष यमपुरी जाना चाहता हो तो उठे ॥ ५० ॥

(सब उठते हैं)

घृतराष्ट्र—पीत्र घटोत्कच । तुम क्षमा करो, क्षमा करो । मेरी बात का ख्याल करो ।

घटोत्कच—अच्छा, अच्छा । पितामह के वचन से मैं दूत हूँ । तथापि मैं क्रोध को रोक नहीं सकता हूँ । (कहिए) क्या प्रायना है ?

दुर्योधन—भोह, किसकी प्रायना ? मेरे वचन से (कृष्ण से) ऐसा कहना -

कोपाग्राहसि किञ्चिदेव वचन युद्ध यदा दास्यसि ।

निर्याम्येप निरन्तर नृपशतच्छत्रावलीभिवृत्-

स्तिष्ठ त्व सह पाण्डवे प्रतिवचो दास्यामि ते सायकं ॥ ५१ ॥

घटोत्कच -- पितामह । एष गच्छामि ।

धृतराष्ट्रः -- पीत्र । गच्छ, गच्छ ।

घटोत्कच. -- भो भो राजानः श्रूयता जनार्दनस्य पश्चिम सन्देश ।

धर्म समाचर कुरु स्वजनव्यपेक्षा

यत्काक्षित मनसि सर्वमिहानुतिष्ठ ।

(भविष्याम) । कोपात्=क्रोधात् किञ्चिदेव = किमपि, वचनम्, नाहंसि=न योष्योऽसि, वक्तुमिति शेष । यदा = यस्मिन् समये, युद्ध दास्यसि=सग्राम करिष्यसि, निरन्तरम्=सततम् नृपशतच्छत्रावलीभि -- नृपाणा दतानि श्रेष्ठा छत्रावलीभि वृत्, एष = अह दुर्योधन, निर्यामि=निर्गच्छामि (वर्तमानसामीप्ये लट्) । त्वम्=तृष्ण, पाण्डवै. सह तिष्ठ -- पाण्डवाना साहाय्य कुर्वित्यर्थः । ते=त्व वृष्णस्य, प्रतिवच = प्रत्युत्तरम्, सायकं = वाणं, दास्यामि । शार्ङ्गलविक्रीडित वृत्तम् ॥ ५१ ॥

घटोत्कच इति । पश्चिम = अन्तिम ।

सन्देश श्रावयति -- धर्म समाचरेति । धर्म समाचर = धर्माचरण कुरु ।

स्वजन-व्यपेक्षां कुरु -- स्वजनाना व्यपेक्षा = विशिष्टा अपेक्षा ताम्, अनुरोधम्,

समादरमिति यावत् कुरु = विधेहि । इह = अत्र सवारे, मनसि = हृदये, यद्

काक्षितम् = अभिलषितम्, तत् सर्वम्, अनुतिष्ठ = सम्पादय । जात्योपदेश --

क्यो व्यर्थ बड़ बड़कर बोले हो ? हम तुम्हारी धमकियों से हार मानने

वाले नहीं । क्रोधवश कुछ भी कहना तुम्ह उचित नहीं है । जब युद्ध छेड़ोगे मैं

संकटो राजाओं के छत्रों से निरन्तर परिवृत्त निकलूंगा । तुम पाण्डवों के साथ

रहो, तुम्हारे वचन का उत्तर वाणों से दूंगा ॥ ५१ ॥

१ घटोत्कच -- पितामह । यह मैं जा रहा हूँ ।

धृतराष्ट्र -- पीत्र । जाओ, जाओ ।

घटोत्कच -- अजो, अजी राजाओ । श्रीकृष्ण का अन्तिम सन्देश सुन लो --

धर्म का आचरण करो, स्वजनो का सम्मान करो, जो कुछ अभीष्ट हो सब

जात्योपदेश इव पाण्डवरूपधारी

सूर्याशुभि सममुपैष्यति व कृतान्त ॥ ५२ ॥ इति ।

(निष्कान्ता सर्वे ।)

दूतघटोत्कच नामो सृष्टिकाङ्क समाप्तम् ॥

—०×०—

जाती भव जात्य = सजाति हित इति यावत्, तस्य उपदेश इव, पाण्डवरूप धारी—पाण्डव = अर्जुन, तस्य रूप धरतीति, अर्जुनस्वरूप धृत्वा कृतान्त = यम, सूर्याशुभि समम् = सूर्यकिरण सह, सूर्ये समुदिते सत्येवेत्यर्थं । व = युष्मान् उपैष्यति = आगमिष्यन्ति, स युष्मान् विनाशयिष्यतीति भाव । वसन्त तिलक वृत्तम् । उपमालकार । उपमेये पाण्डवे उपमानस्य कृतान्तस्थानेशते- पाद्रूपकम् 'सूर्याशुभि समम् उपैष्यति' इत्यत्र सहोक्ति लङ्कारश्च ॥ ५२ ॥

इति कल्याणीत्याख्याया सस्कृतव्याख्याया प्रथमोऽङ्क

समाप्त चदूतघटोत्कच नामोत्सृष्टिकाङ्कम् ॥

—०×०—

इस जगत् मे कर लो, पाण्डव (अर्जुन) के रूप मे हितोपदेश के समान यमराज सूर्य की किरणों के साथ तुम्हारे पास पहुँचेगा ॥ ५२ ॥

(सब चल जाते हैं)

दूतघटोत्कच उत्सृष्टिकाङ्क समाप्त



परिशिष्ट

टिप्पणी : नोट्स

प्रथम अङ्क

पृष्ठ १—नान्द्यन्ते—नान्दी समाप्त होने पर । नान्दी शब्द के दो अर्थ होते हैं :—

(१) नन्दन्ति देवा अस्याम् अथवा नन्दयति देवद्विजन्तृपादीन् इति नान्दी । भरतमुनि ने नान्दी की परिभाषा की है—

“देवद्विजन्तृपादीनामाशीर्वादपरायणा ।

नन्दन्ति देवता यस्मात्तस्मान्नान्दीति कीर्तिता ॥”

विश्वनाथ कविराज के अनुसार—

“आशीर्वचनसयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।

देवद्विजन्तृपादीना तस्मान्नान्दीति सञ्ज्ञिता ॥”

अर्थात् मङ्गलाचरणरूप पद्य जो रूपकग्रन्थ के आरम्भ में कवि द्वारा निबद्ध किया जाता है उसे ‘नान्दी’ कहते हैं । स्पष्ट है कि ऐसी ‘नान्दी’ सत्काव्यरूप होती है जिसका प्रयोग सूत्रधार अथवा उसका सहायक रगमच पर उपस्थित हुए बिना नहीं कर सकता है । यहाँ अभी कोई ऐसा व्यक्ति तो प्रविष्ट नहीं हुआ है, अतः ‘नान्द्यन्ते’ में प्रयुक्त नान्दी शब्द आशीर्वचनसंयुक्त देवतादिस्तुतिरूप मङ्गलश्लोकपरक नहीं हो सकता है ।

(२) नान्दी शब्द का दूसरा अर्थ है—भेरी या आनक (देवी भाषा में ‘नगाड़ा’) । यह शब्द अन्य वाद्यों का भी उपलक्षण है । इस नान्दी शब्द का सामान्यरूप से अर्थ होता है—नाट्य प्रयोग के पहले, नटों के द्वारा किया गया माङ्गल्य गायनवादनवादि । यहाँ नान्दी शब्द का प्रयोग इसी दूसरे अर्थ में हुआ है । मास के सभी नाटकों में प्रारम्भ में ‘नान्द्यन्ते’ ततः प्रविष्टति

सूत्रधार' वाक्य पाया जाता है। वहाँ सर्वत्र नान्दी शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त समझना चाहिए। इसी नान्दी के समाप्त होने पर सूत्रधार रगमच पर आता है और तब कवि रचित मङ्गलाचरणरूप पद्य (नान्दी) का पाठ करता है।

तत — 'तत' शब्द से यह सूचित होता है कि गायनवादनादिरूप नान्दी के समाप्त होने पर तुरन्त अबिलम्ब (उसके बाद ही) सूत्रधार प्रविष्ट होता है।

सूत्रधार — सूत्रमभिनेयसूचन धारयतीति सूत्रधार । वह प्रधान नट जो सर्वप्रथम रगमच पर आकर अभिनेय नाटक की सूचना तथा उसका सक्षिप्त परिचय सामाजिकों को देता है, सूत्रधार कहलाता है—

‘वर्णनीय कथासूत्र प्रथम येन सूच्यते ।

रङ्गभूमिं समाक्रम्य सूत्रधार स उच्यते ॥’

भरतमुनि के अनुसार—

‘नाटथोपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते ।

सूत्र धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते ॥’

अर्थात् नाट्य के उपकरणों को सूत्र कहते हैं, उसे जो संभालता है वह सूत्रधार कहा जाता है (आधुनिक शब्दावली में 'स्टेज डाइरेक्टर')।

श्लोक १—इस रूपक ग्रन्थ के आरम्भ में कवि द्वारा निबद्ध मङ्गलाचरणरूप पद्य 'नान्दी' है। इसमें देव नारायण की स्तुति की गयी है और उनसे यह प्रार्थना की गयी है कि वे सामाजिकों का कल्याण करें।

‘आशीर्वाचनसयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।

देवद्विजनृपादीना तस्मान्नान्दीति सञ्ज्ञिता ॥’ (साहित्यदर्पण)

इस कविरचित नान्दी का पाठ सूत्रधार करता है। 'सूत्रधार पठेन्नान्दीम्' (भरतमुनि)।

भास के नाटकों को छोड़कर अन्य रूपक ग्रन्थों में कविकृत नान्दी के बाद 'नान्द्यन्ते सूत्रधार' का उल्लेख पाया जाता है। इसके अनुसार कुछ विद्वानों का कहना है कि कवि निबद्ध नान्दी का पाठ किसी अन्य नट का कर्तव्य है। ऐसा ही मानने से वहाँ 'नान्द्यन्ते सूत्रधार' वाक्य की सङ्गति बैठ सकती

है। वास्तव में वहाँ भी भरतमुनि के अनुसार सूत्रधार ही नान्दी पाठ करता है। अमङ्गल से बचने के लिए ही नान्दी के पूर्व उसका उल्लेख नहीं किया जाता है। ग्रन्थ का आरम्भ मङ्गलश्लोक से होना चाहिए।

पृष्ठ ३—आर्यमिश्रान्-आर्य और मिश्र ये दोनों शब्द विशेषण हैं। इनका कर्मधारय समास होने पर 'आर्यमिश्र' समस्त पद बनता है। इसका अर्थ होता है—आदरणीय, योग्य, पूज्य सज्जन पुरुष। यहाँ इसका प्रयोग रङ्ग साभाजिकों के लिए हुआ है जिससे उनके प्रति आदर भाव प्रकट किया गया है।

अङ्ग—यह संबोधक अव्यय है जिसका अर्थ है—“अच्छा”, “अच्छा, श्रीमान्।”

सशतक—सभ्यक् शतमङ्गीकारो यस्य स सशतकः। वह योद्धा जिसने युद्ध से न भागने की शपथ खायी हो। सुशर्मा आदि त्रिगर्तुराजपुत्र 'सशतक' कहे जाते थे। 'त्रिगर्त' भारत के उत्तर पश्चिम में स्थित एक देश का नाम है जिसे आज 'जालन्धर' कहते हैं।

श्लोक ३—पितामहरय—पितृ. पिता = पितामह, (पितृ + डामहच्)।
 आरोपिनः—आ + √रह् + णिच् + क्त (कर्मणि) 'रहः पोऽन्यतरस्याम्'
 रुह्घातो. पकारान्तादेशः।

श्लोक ४—श्रुतिपथ—श्रुत्यो. पन्था इति श्रुतिपथः। पृष्ठी समास होने पर 'श्रुत्पूरन्धूः पथामानधे' इति समासान्त 'श्र' प्रत्यय। 'नस्तद्धिते' सूत्र से टि (इन्) का लोर। दूरणम्—√दृप् + ल्युट् (यु = अन), नकार को णत्व। विप्रियम्—वि + √प्री + क्त ('इगुपथ ज्ञाप्तीकर. क.') यहाँ 'वि' विलोम अर्थ प्रकट करता है अतः 'विप्रिय' का अर्थ है अप्रिय, अरुचिकर। क्षयम्—√क्षि + अच् = क्षय. (एरच्) द्वितीयान्त क्षयम्। जमीत.— न भौत, √मी + क्त (अकर्मकत्वारकर्तरि)।

श्लोक ५—निघन = मरण। जनित—√जन् + णिच् + क्त (कर्मणि)।
 रश्मि—गुण = लगाम, रस। प्रतोद = (प्र + √वृद् + भञ्) लम्बा

पाण्डवों को रोका। विदग्ध (निपुण) होकर भी उसने अविदाग्ध (मूर्ख) का-सा आचरण किया।

श्लोक १७—इस अंक में श्लोक १७ से २४ तक धृतराष्ट्र और दुर्योधन आदि के बीच नोक-झोंक पूर्ण जो बातें हुई हैं, वे पठनीय और मननीय हैं। इनसे महाकवि भास की संवाद-योजना तथा तर्कपूर्ण विवेचन शक्ति पर प्रकाश पड़ता है। धृतराष्ट्र के निष्कल उज्ज्वल हृदय को दर्शकों एवं पाठकों के समक्ष भास ने खोल कर रख दिया है। इसी प्रकार दुर्योधन, दुःशासन और शकुनि के कल्पित हृदय की भी झलक दिखाने में वे सफल हुए हैं। धृतराष्ट्र पाण्डवों के पक्ष का समर्थन करते हैं और दुर्योधन आदि उनका खण्डन करते हुए अपने पक्ष का समर्थन करते हैं।

श्लोक १६—स्वच्छन्दमृत्युः—भीष्म पितामह को अपने पिता से इच्छा मृत्यु का वरदान प्राप्त था। अतः उनकी मृत्यु उनकी इच्छा पर निर्भर थी अतः शरशय्या पर पड़े वे उत्तरायण सूर्य की प्रतीक्षा करते रहे। जब सूर्य ने बसन्त विषुव को पार किया तब कहीं उन्होंने अपने प्राण त्यागे।

स्वेनोपदेशेन कृतात्मतुष्टिः—भीष्म ने पाण्डवों से स्वयम् अपनी मृत्यु का उपाय बताया था। ऐसा करने पर भी उन्हें दुःख नहीं बल्कि प्रसन्नता हुई थी। उन्हीं के उपदेशानुसार ही अर्जुन ने शिखण्डी की सहायता से युद्ध में उन्हें घायल किया था।

श्लोक २०—सवपा न. पश्यताम्—यहाँ अनादर अर्थ प्रकट हो रहा है (सर्वानस्माननादृत्येत्पर्य.) अतः 'पछी चानादरे' सूत्र के अनुसार पछी हुई है। सूत्रस्थ चकार के बल से सप्तमी भी होती है।

सुध्मताम्—अहं शतृप्रत्ययान्त है। किन्तु 'सुध्' घातु आरम्भने पदी है अतः इसे शानन्त होना चाहिए। दीशित जी के अनुसार 'अनुदात्तोच्चलक्षण-मात्मनेपदमनित्यम्' इस परिभाषा के बल से आत्मनेपद की अनित्यता होने से परस्मैपद हुआ और सट् को 'शतृ' आदेश। अथवा सुध्मिच्छन्ति इति

युध्यन्ति-भावाङ्कवन्त युष् शब्द से 'सुप आत्मनः क्वच' सूत्र से क्वजन्त होने से परस्मैपद हुआ ।

शब्द—√ग्रह् + (क्त्वा) ल्यप् । वस्तुतः यहाँ क्त्वा को ल्यप् नहीं हो सकता है क्योंकि ग्रह् धातु के पूर्व उभयर्ग का प्रयोग नहीं है अतः 'ग्रहीत्वा' होना चाहिए । 'ग्रह्य' यह प्रयोग अपाणिनीय है । भास के नाटकों में इस प्रकार के अपाणिनीय प्रयोग बहुधा मिलते हैं ।

श्लोक २२—निघातकवच—निवृत्तः वात. यस्मिन् तत् निघातम् = सुहृ-
दम्, अमेघमित्यर्थः) निघातं कवचं येषां ते निघातकवचाः । निघातकवचं
नामकं दैत्यं ये । सम्भवतः अमेघ कवच धारण करने के ही कारण व निघात-
कवच नाम से प्रसिद्ध ये । वे इन्द्र को अत्यन्त पीड़ित किया करते थे । इन्द्र के
कहने से अर्जुन ने उनका विनाश किया था ।

खाण्डव—कुवक्षेत्र प्रदेश में खाण्डव नामक वन था । वह इन्द्र को बहुत
प्रिय था । उसे अग्नि ने कृष्ण और अर्जुन की सहायता से जलाया था ।
अर्जुन के उद्यो । से उसमें रहने वाले सर्प भागने नहीं पाये थे, सब जलकर
भस्म हो गये थे ।

कैरातरूपम् हरन्—अर्जुनों की प्राप्ति के लिए अर्जुन इन्द्रकील पर्वत पर
तप कर रहे थे । वहाँ कैरातवेषधारी शिव से अर्जुन का युद्ध हुआ था ।
अर्जुन के पराक्रम से शङ्कर जी ने प्रसन्न होकर उन्हें 'पाशुपत' अस्त्र प्रदान
किया था । चित्राङ्गदम्—एक बार चित्राङ्गद (अथवा चित्रसेन) गन्धर्व ने
दुर्योधन को बाध लिया था । अर्जुन ने ही उसे चित्राङ्गद से छुड़ाया था ।

श्लोक २३—शक्रापनीतकवच.—कर्ण के जन्म के साथ ही अमेघ कवच
से उसका शरीर आच्छादित था । देवता और दानव भी हजारों अर्जुनों से
उसका भेदन नहीं कर सकते थे । उस कवच के रहते कर्ण पराजित नहीं
किया जा सकता था । पाण्डवों का काम बनाने के लिए इन्द्र विप्रवेप में
आकर कर्ण से उसका कवच दान में माँग ले गया था ।

अर्धरथ—अर्धः रथ इत्यसः । रथ पर बैठ कर युद्ध करने वाले योद्धा

को रयी कहते हैं। कतिपय दोषों के कारण कर्ण को महाभारत में आधारपी (अर्धरथ) कहा गया है—

‘रणे रणेऽभिमानी च विमुखश्चापि दृश्यते ।

धृणी कर्णः प्रमादी च तेन मेऽर्धरथो मतः ॥’ इति ।

व्याजोपलब्धविफलास्त्रबलः—परशुराम का नियम या कि वे ब्राह्मणों को ही अस्त्रोपदेश करने थे, क्षत्रियों को नहीं। कर्ण ने अपने को ब्राह्मण बता कर उनसे अस्त्र विद्या प्राप्त की। कर्ण के साथ एक दिन परशुराम समिधा और कुश लाने के लिए वन में गये। यक कर वे कर्ण की जाँघ पर सिर रख कर सो गये। दुर्दैव वश बज्रमुख नामक कीड़ा (महाभारत में अलकं नामक कीड़ा) कर्ण की जाँघों में काटने लगा। गुरु की निद्रा भङ्ग न हो अतः कर्ण ने उस कीड़ा को सह लिया। रुधिर के स्पर्श से परशुराम जगे और उस सहन-शक्ति से कर्ण को क्षत्रिय समझने में उन्हें देर नहीं लगी। क्रुद्ध परशुराम ने कर्ण को शाप दिया—समय पड़ने पर तेरे अस्त्र काम न आवेंगे।

पृष्ठ ३३—प्रायश्चित्तम्—प्रायस्य पापस्य चित्तं विशोधनं यस्मात् । बहु-द्रीहि समास निपातन से सुडागम । पाप से निस्तार पाने के लिए धार्मिक साधना को प्रायश्चित्त कहते हैं ।

श्लोक ३०—यथा तथा = जैसे-तैसे । खिन्नाशयाः—आशय का अर्थ हृदय लेने पर अर्थ होगा—खिन्न हृदय वाले । आशय का अर्थ इच्छा भी है, तब अर्थ होगा भग्न इच्छा वाले । ज्वलन = अग्नि ।

श्लोक ३१—कृष्णचक्षुषु —कृष्णश्चक्षुषोऽपि ते, कृष्ण हैं नेत्र जिनके अर्थात् कृष्ण के द्वारा निर्दिष्ट । नभस्थलम्—‘खपरै शरि वा विसर्गलोभे वचव्य.’ इति विसर्ग लोप ।

श्लोक ३२—नित्यमुच्यतशासनम्—उच्यतम् = तत्पर शासनम् = आदेशः । यस्य तम् । भाव यह है कि जो अपराध के अनुसार सदा तुरन्त दण्ड का विधान करता है । क्रूरम् = कठोर (वचन) ।

श्लोक ३३—दिदक्षुः - द्रष्टुमिच्छतीति दिदक्षति, दिदक्षतीति दिदक्षुः, √दृश् + सन् + उ (सनाशंसभिश्च उः) । बलिम्—बलि शब्द के अनेक अर्थ हैं यहाँ दैनिक आहार से तात्पर्य है ।

पृष्ठ ३६—उत्स्थानग्रहम्—समाभवन ।

श्लोक ३४—स्वचरिते.—स्वेन = आत्मना चरितानि = कृतानि तै, अपने ही द्वारा किये गये । दृष्टम्.—√दृश् + तब्ध । गुहः = भ्रष्ट, गुरुजन । प्रविशस्व-प्रपूर्वक विधाघातु के आत्मने पद में लोट् मध्यम पुरुष एकवचन का रूप है । पार्श्वनीय व्याकरण के अनुसार प्र + √विश् के लिए आत्मने पद का विधान नहीं है अतः 'प्रविश' प्रयोग समीचीन है ।

श्लोक ३५—वनी - ('वलि' नी लिखा जाता है) [√वल् + इन् + पक्षे ङीप्] चमडे पर चिकन या झुरों । गुरु = महान्, विपुल । संहत = मुहद । अत = बन्वा, बाहुमूल ।

धृत्वा-√धृद् अवस्थाने + क्तिन् । विद्यमान होना, रहना, जीवित रहना । पुत्रशतस्य धृत्या = सौ पुत्रों की विद्यमानता से, सौ पुत्रों के रहने से । त्रिदिव = स्वर्ग । निमीनितमुख = बन्वा । सृष्टः = √सृज् + क् = रचा गया ।

श्लोक ३६—कृदग्नौकृत—कृपण + च्वि + √कृ + क्त, कदयित किया गया, दमनीय दशा को प्राप्त कराया गया । अनुगतः—अनु + गम् + √क्त, शत, समक्षा हुआ ।

पृष्ठ ४०—कल्याणः = सौभाग्यशाली, आनन्दप्रद । प्रसूति = उत्पन्न करने वाला । पितामह—पिता का रिता, धृतराष्ट्र भीम का चचा या अतएव भीम के पुत्र घटोत्कच ने उसे पितामह कहा है । प्रवाह = बहुर । मातुल = मामा, मातृभ्राता मातुलः, मातृ + डुलच् । पितामह द्रष्टुमाशया- पितामह (इन्द्र) के दर्शन की आशा में । इन्द्र वस्तुतः अपुन के जनक थे, अतः इन्द्र को अभिमन्यु का पितामह कहा गया है ।

हासते-√हस् + णिच् + कर्मणि लट् । शिञ्जन्त हस् घातु का भी 'उपहास करना' अर्थ होता है ।

श्लोक ४१—श्रीवस्यश्याग्रहे—'वस' शब्द साधु नहीं है । शुद्ध शब्द 'वसच्' है अतएव विशर्ग के अयमाण होने से 'श्रीवसः श्याग्रहे' पाठ होगा

दूतघटोत्कचगत-प्रयुक्तछन्दःसूची

अनुष्टुप् (श्लोक)—

श्लोके षष्ठ गुरु त्रेय सर्वत्र लघुपञ्चमम् ।

द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्व सप्तम दीर्घमन्ययोः ॥

पद्य संख्या—६, ७, १५, १७, १८, २१, २४, २५, २६, २८, २९,
३१, ३२, ३७, ३८, ३९, ४०, ४२, ४४, ४८, ४९, ५० ।

इन्द्रवज्रा—स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ ग । १०, १६, ३० ।

उपजाति—स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ ग । उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ
(इत्यनयोरुपजातिः) २, ९, १९, ३६ ।

शालिनी—मात्तो गी चेच्छालिनी वेदलोकेः । २० ।

वंशस्थ—जतौ तु चत्वारथमुदीरितं जरी । १३, ३३ ।

प्रहर्षिणी—व्याशाभिर्मनजरगा प्रहर्षिणीयम् । ४ ।

वसन्ततिलका—उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ ग । १, ५, ११,
१४, २३, ३५, ४५, ५२ ।

मालिनी—न न मयययुतेय मालिनी भोगिलोके । ४३, ४६ ।

हरिणी—न स म र स ला ग षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता । ४७ ।

शार्दूलविक्रीडित—सूर्याश्वैर्यदि मः सजौसततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ।
३, ८, १२, २२, २७, ३४, ४१, ५१ ।



दूतघटोत्कचगत-प्रयुक्तालङ्कारसूची

उपमा—साम्यं वाच्यमवैषम्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः । पद्य सत्या २०,
२७, ३३, ५२ ।

रूपक—रूपकं रूपितारोपाद्विषये निरपह्वये । ६, १२, २२, ५२ ।

सत्प्रेक्षा—भवेत् समावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना । २५, २६, ३५, ३७ ।

काव्यलिङ्ग—हेतोर्वाक्यपदायंत्वे काव्यलिङ्गं निगद्यते । ४७ ।

सहोक्ति—सहार्थस्य बलादेक यत्र स्याद्वाचक द्वयोः ।

सा सहोक्तिर्मूलभूतातिशयोक्तियंदा भवेत् ॥ १३, ५२ ।

निदर्शना—सम्भवनं वस्तुसम्बन्धोऽसम्भवनं वाऽपि कुत्रचित् ।

यत्र विम्बानुविम्बत्व बोधयेत् सा निदर्शना ॥ ३ ॥

पर्यायोक्त—पर्यायोक्तं यदा भङ्ग्या गम्यमेवाभिधीयते । ३ ।

दूतघटोत्कचगत श्यापाणिनीय प्रयोग सूची—

(१) तं हत्वा क इहोरलप्स्यति चिर स्वैर्दूष्कृतं जीवितम् । (श्लोक ८)

उप + √लम् + लृट् = उपलप्स्यते प्रयोग शुद्ध है । भास ने आत्मनेपद के स्थान पर परस्मैपद का प्रयोग किया है ।

(२) व्यायामोष्णं शृणु चापं करेण (श्लोक २०)

√ग्रह् से क्त्वा प्रत्यय के स्थान पर 'ल्यम्' श्रादेश व्याकरणशास्त्र-विषय है ।

दूतघटोत्कचगत-शुभापित

को हि सन्निहितशार्दूलां गुहां धर्ययितुं समर्थः ॥



श्लोकानुक्रमणिका

| श्लोकाङ्काः | | श्लोकाङ्काः | |
|------------------|----|--------------------|----|
| अद्यान्विमुञ्च | ४५ | पृथिव्या शासनं | ४० |
| बद्याभिमन्यु | ५ | प्रविज्ञासार | २८ |
| अराव दास्यामि | १० | प्रयामि सौभद्र | ३३ |
| अपि प्रविष्टं | ३१ | बहूना समुपेताना | १७ |
| अतं वो वृष | ४९ | वालेनैकेन | २१ |
| अचसितमवगच्छ | ४३ | भर्तुस्ते नून | ७ |
| एका कुलेऽस्मिन् | १६ | भूमिकप | २५ |
| कामं न तस्य | १४ | मुक्ता येन यदा | ४१ |
| किं व्यर्थं बह | ५१ | यदि स्यात् वाक्य | ४४ |
| कृष्णस्याष्टभुजो | ८ | यतोऽभिमन्यु | ११ |
| केनाभिमन्यु | ६ | यान्त्यर्तुन | २ |
| केनैतत् | ४ | येन मे निहितं | २९ |
| क्रूरमेव नरपतिम् | ३२ | यौधमन्दन | ३ |
| स्त्रियसि वदसि | ४६ | राजा वा यदि | ४२ |
| चिता न तावत् | ९ | कदा पाण्डु | १२ |
| जमदग्नेनाय | १३ | वृद्धं भोग्मम् | १८ |
| तस्यैव व्यवसाय | २७ | वृद्धोऽप्यनातत | ३५ |
| त्वया हि यत् | २४ | शक्र पृच्छ पुरा | २२ |
| दष्टोऽगो | १० | शक्राभनीत | २३ |
| दूतः खलु भवान् | ४८ | सक्रोधव्यव | ३७ |
| देवैर्मन्त्रयते | ३८ | सर्वेषा न पश्यताम् | २० |
| द्रोणोपवेशेन | ३० | सुन्पक्त निहतम् | २९ |
| धर्मं समाचर | ५२ | सौभद्रे निहिते | १५ |
| न तु जतुष्टवे | ४७ | स्वच्छन्दमृत्यु | १९ |
| न ते मिय | ३६ | हृष्टति त्वमहं | ३९ |
| नारायणसिंभुवने | १ | हेडिबोऽस्मि | ३४ |



चौरवम्बा अमरभारती ग्रन्थमाला.

१६

भासनाटकचक्रे

कर्णभारम्

'इन्दुकला' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकार

श्री वैद्यनाथ झा



चौरवम्बा अमरभारती प्रकाशन

वाराणसी - ५

१९७७

प्रकाशक : चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी

मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी- 1.

संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०३४

मूल्य : २-००

© चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन

के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
पो० बा० १३८, वाराणसी-२२१००१
(भारत)

अपर च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

के० ३७/९६, गोपाल मन्दिर लेन
पो० बा० ८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)
फोन । ६३१४५

KARṆABHĀRAM

OF
BHĀSA

Edited with the
"Indukala" Sanskrit-Hindi Commentaries

By
Pt. VAIDYANATH JHA



Chaukhamba Amarabharati Prakashan

VARANASI-221001

1977

से स्वीकार करता है तो कोई नीति पूर्ण एवं प्रेम पूर्ण कथाओं में ही अपनी उत्कट अभिरुचि प्रदर्शित करते हैं। नाटक में एक साथ ही सभी वस्तुओं का समावेश हो जाता है। नाटक में कहीं तो अतिशय आनन्द दायक कथोपकथन का विन्यास रहता है तो कहीं पर पत्थर की तरह कठोर वस्तु को भी पिघलाने वाला गीत-संलाप। यही नहीं, कहीं-कहीं दर्शकों को हास्य में डुबा देने वाले शारीरिक वाचनिक और मानसिक चेष्टाओं के प्रदर्शन का अवसर भी मिल जाता है। परिणाम-स्वरूप नाटक में एक साथ ही विभिन्नरुचि वाले दर्शकों का मनोरञ्जन हो जाता है। नाटक क अतिरिक्त अन्य किसी काव्याङ्ग में यह विशेषता देखने को नहीं मिल सकती है जो कि एक ही स्थान पर मानव-मात्र को अलौकिक आनन्द प्रदान कर सके।

नाटक के स्वरूप के विषय में भरत मुनि ने जो कहा है उससे भी नाटक का सर्वाधिक महत्त्व और रमणीयता परिलक्षित होती है। जैसे—

नाना-भावोपसम्पन्न नानावस्थान्तरात्मकम् ।

लोकवृत्तानुकरण नाट्यमेतन्मया कृतम् ॥

भावार्थ यह है कि विभिन्न अवस्थाओं में विभिन्न भाव मुद्रायुक्त लोक वृत्त का अनुकरण ही नाटक है। नाटक में आयी हुई घटना प्रत्यक्ष और वास्तविक की तरह मालूम पड़ती है। इस लिये नाटक रस में निमग्न मानव कुछ क्षणों के लिये अपने सभी मनोविकारों से उस समय अलग हो जाता है।

यद्यपि काव्य के अनेक लक्ष्य स्वीकृत किये गये हैं, तथापि उनमें प्रधान लक्ष्य जन-रञ्जन के साथ ही जन-शिक्षण भी है। मनो-रञ्जन के साथ ही जैसा उपदेश दर्शक नाटक से प्राप्त करता है, वैसा किसी अन्य काव्याङ्ग से नहीं प्राप्त कर सकता है।

दुःखार्तानां धर्मात्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम् ।

विश्रान्तिजननं काले नाट्यमेतत् भविष्यति ॥

धर्म्यं यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धि — विवर्धनम् ।

लोकोपदेश — जननं नाट्यमेतद् भविष्यति ॥

काव्य का चरम लक्ष्य "ब्रह्मास्वाद सहोदर रसास्वाद" है। केवल धर्म्यात्मक काव्य से काव्यभाषना के द्वारा परिपक्व बुद्धि वाले सहृदय सामाजिक ही रसास्वाद प्राप्त कर सकते हैं; क्योंकि उसकी विशद अनुभूति के लिये जिस कवितामय वातावरण की आवश्यकता होती है उसका निर्धारण सर्वसाधारण नहीं कर सकता। परन्तु नाटक दृश्य काव्य है, इसमें अभिनय का प्राधान्य होता है, इस लिये अभिनय दर्शन के द्वारा सर्वसाधारण मनुष्य भी रसास्वाद करता है, क्योंकि मानव जिस शक्ति के द्वारा रस निभन्न कर दिया जाता है नाटक में उस शक्ति की अधिकता होती है। यह सर्वसिद्धान्त सिद्ध है कि सुनो हुई वस्तु को अपेक्षा देखो गयी वस्तु में अधिक प्रभावोत्पादकता और आकर्षण होता है। अधिक आकर्षक होने के कारण दृश्य काव्य की रमणीयता निर्विवाद है। इन लिये कहा भी है

“वाच्येषु नाटक रम्यम्”।

महाकवि भासः—

यद्यपि मैंने पहले वाच्यों में नाटक का स्थान क्या है इसका विवेचन किया है, तदनन्तर मुझे प्रस्तुत नाटक के सम्बन्ध में कुछ लिखना चाहिए, परन्तु किसी कृति के विवेचन के पहले उस कृति के कलाकार के सम्बन्ध में जान लेना अपेक्षित ही नहीं आवश्यक भी होता है तो “कर्णभार” के विवेचन के पहले यदि उक्त नाटक के कलाकार महाकवि “भास” के विषय में कुछ विचार करें तो असंगत न होगा।

कविता वाचिनी के हास महाकवि भास संस्कृत नाटकों के विकास परम्परा में देदीप्यमान ब्रह्म मणि है जिनकी कीर्ति-कीमुदी का अजस्र प्रकाश काल के दुर्दम्य प्रभाव से अस्पष्ट रहा और सुदूर दक्षिण से लेकर अनन्त उत्तर तक तथा पूरव से लेकर पश्चिम तक चमकता रहा। नाटक की पञ्चमवेद कहलाने का जो सम्मान प्राप्त हुआ और कालिदास ने जो “नाट्यं मिश्रस्वैर्जनस्य बहुषाप्येकं समाराधनम्” कहा इसकी सम्यक् परिपुष्टि भासकृत नाटकों से होती है। नाटक में तीनों लोकों के भावों का अनुवर्तन होता है। अब हम इस दृष्टि से देखते हैं जो भास का महत्त्व और भी बढ़ जाता है।

बीसवीं सदी के आरम्भ तक भास के नाटकों के स्वरूप से लोग बिल्कुल अज्ञात थे, केवल यत्र-तत्र भास के कुछ प्रशस्ति वाक्य ही सुनने को मिलते थे। सर्वप्रथम महामहोपाध्याय श्री टी० गणपति शास्त्री जी ने १९१२ ई० में भास के १३ नाटकों का अत्यन्त प्रामाणिक संस्करण प्रकाशन कराया। हमने पहले लिखा है कि भास के नाटक पहले अज्ञात थे किन्तु उनके प्रशस्ति वाक्य सुने जाते थे। उनमें बाणी के वरदपुत्र कालिदास ने अपने नाटक "मालविकाग्निमित्र" में सूत्रधार से प्रश्न करवाया है—

(१) प्रथित-यशसा भास-सौमिल्ल-कविपुत्रादीना प्रबन्धानतिक्रम्य कथ वर्तमानस्य कवे कालिदासस्य कृतो बहुमानः । इति ॥

(२) हर्ष के समा पण्डित "बाण" ने भास के नाटकों की प्रशंसा करते हुए कहा है—

सूत्रधारकृतारम्भः नाटकेष्वहुभूमिकं ।

सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥ (हर्षचरित)

अब यहाँ प्रश्न यह उठाया जा सकता है कि भास कृत नाटक पहले इतने लोकाभिमत थे कि कालिदास, बाण जैसे उत्कृष्ट कवि से उनका उल्लेख किये बिना नहीं रहा गया तो वे कृति फिर लुप्त कैसे हो गये जो 'टी० गणपति शास्त्री' ने उसे पुनः प्रकाशित करवाया। सुमिल्ल आदि के नाटक आज भी अलभ्य हैं। अतः इसका समुचित उत्तर नहीं दिया जा सकता। तथापि विद्वानों ने इसका उत्तर देने का प्रयास किया है—

(१) देश में मुसलिम शासन के प्रसार के साथ ही साथ संस्कृत ग्रन्थों पर भी विपत्तियाँ आने लगीं। चूँकि उस समय मुसलमान का बोल-बाला था और भास ने अपने नाटकों में, "राजसिंह" का, पृथ्वीपालन का आदेश देते थे वर्गन किया अतः वैदिक धर्म के प्रचारक भास के नाटकों पर मुसलमानों की कुदृष्टि पडना कोई असम्भव नहीं और सम्भवतः इसी कारण इनके नाटक लुप्त हो गये होंगे। कुछ प्रतिष्ठा बच इसलिये यहीं क्योंकि वे प्रतिष्ठा मलयालम लिपि में लिखित हैं और वह लिपि मुसलमानों के लिये अबोध्‍य थी अतः वे इसे विनष्ट नहीं कर पाये होंगे।

(२) बाह्य आक्रमण के पुनः पुनः होने से भारत बामी अपने जीवन से निराश हो चुके थे । अतः शौरता पूर्ण नाटकों को देखने की अपेक्षा अब वे घमं एवं दर्शन भी ओर आकृष्ट हो गये थे । अतः भास के ये नाटक प्रचलन से उठ गये ।

कुछ भी हो अपने लालित्यपूर्ण नाटकों से संस्कृत वाङ्मय के भण्डार को परिपूर्ण कर भास ने जो स्थान प्राप्त किया है वह सर्वथा महत्वास्तव ही है ।

भास का समय:—

संस्कृत के अन्य प्राचीन महाकवियों की तरह "भास" ने अपनी रचनाओं में न तो अपने समय की चर्चा की या न अपने स्थिति की । पारश्चात्य और पूर्वोक्त विद्वानों का मत इनके विषय में वैसे ही परस्पर विरुद्ध है जैसे कवि कुल मुह काण्डाश के विषय में । उन मत मतान्तरों को तीन भाग में विभक्त कर उनको यथार्थता पर विचार यदि किया जाय तो सुविधा रहेगी ।

प्रथम मत :—

महामहोपाध्याय टी० गणपति शास्त्री, दीक्षितार आदि के मतानुसार महा कवि भाम पाणिनि और कौटिल्य स भी प्रचीन हैं । कौटिल्य ने युद्ध भूमि में सेनाओं के उत्साहवर्द्धन के लिये जिन जिन श्लोकों को प्रस्तुत किया है उनमें—

“नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरोयम् ।
सप्तस्य माभून्नरकं च गच्छेद् यो भर्तृविण्डस्य हृत्तेन युष्येत् ।”

यह श्लोक भास रचित 'प्रतिज्ञा योगन्धरामण' में भी मिलता है । भास विरचित "प्रतिमा-नाटक" में भी पण्डितमूर्धन्य रावण ने "बाहस्पत्यमर्षस्यम्" अर्षीमे" बहकर अपनेको बाहस्पत्य अर्षशास्त्र का ज्ञाता कहा है । भास का कौटिल्यसे पूर्ववर्तित्व इससे भी सिद्ध होता है क्योंकि भास के समय में कौटिल्य का अर्ष-शास्त्र न बना हो ।

भास की रचनाओं में पाणिनि प्रोक्त व्याकरण नियम की अव्यवस्था बहुशः पायी जाती है । यदि भास के समय पाणिनि होते या उनसे पूर्व हो चुके होते तो भाम जैसे महाकवि क्या उक्त व्याकरण के नियम का उल्लंघन कर सकते थे । अतः भास का समय पाणिनि से पूर्व मानना कोई अनुचित नहीं होगा ।

शूद्रक कृत "मृच्छकटिक" नाटक पर भास रचित "दरिद्र-चारुदत्त" का स्पष्ट प्रभाव दिखलाई पड़ता है, एवं विन्सेन्ट स्मिथ के कथनानुसार शूद्रक का शासन १२० से १९७ ई० पू० तक था। अतः भास ने "दरिद्र-चारुदत्त" की रचना यथा संभव ई० पू० चौथी या पाँचवीं शताब्दी में की होगी।

यद्यपि डा० टी० गणपति शास्त्री ने भास को बुद्धके पूर्ववर्ती माना है, परन्तु भास के नाटकों में जिन नागवन, वेणुवन, राजगृह और पाटलिपुत्र का वर्णन मिलता है वे सब सम्भव है बुद्ध के समय ही प्रसिद्धि प्राप्त किये होंगे। अतः बुद्ध के पश्चात् ही भास का समय माना जा सकता है।

द्वितीय मत (२-३ ई० पू०) मैंने पढ़े हो इस बात की चर्चा की है कि कालिदास ने अपने नाटक में भास की प्रशंसा की है। चूँकि कालिदास का समय डा० क्रीय के अनुसार चौथी शताब्दी माना गया है, अतः भास का समय ३५० ई० तक माना जा सकता है। अथवा, अश्वघोष के नाटकों में भास की चर्चा बिल्कुल नहीं है अपितु "बुद्ध चरित" के एक श्लोक का स्पष्ट प्रभाव इनके प्रतिज्ञा योग्यधरायण" में मिलता है। अतः भास को अश्वघोष (द्वितीय शताब्दी) के बाद एवं कालिदास (चतुर्थ या पंचम शताब्दी) के बाद मानना चाहिए।

कुछ लोगोंने स्वप्न-वासुदेवतादि १३ नाटकों के कर्ता भास को न मानकर किसी केरल प्रदेशीय कवि को माना है और उनके मतानुसार उस कवि का समय सातवीं शताब्दी है।

इस प्रकार पाश्चात्य ऐतिहासिक गवेषकों के मतों के अध्ययन कर लेने के पश्चात् हम जिस-किसी भी प्रकार इसी निश्चय पर पहुँच पायेगे कि "भास" मौर्य काल के पूर्व इस लिये विद्यमान थे कि इन्होंने भी ठात्कालिक कवि की तरह अपने नाटकों में अपना नामोल्लेख नहीं किया है। एवञ्च इन्हें कोटिल्य (४ थी शताब्दी ई० पू०) के पश्चात् नहीं माना जा सकता।

भास के नाटकों का संक्षिप्त परिचय

(१) प्रतिमा

इस नाटक में सात अंक हैं। इसमें राम-वनवास से लेकर रावण-वध पर्यन्त कथा वर्णित है। भरत कृत नाट्यशास्त्र नियम के विरुद्ध दशरथ की

मृत्यु प्रस्तुत नाटक में रंग भंग पर ही अभिनय की गयी है। व्योम्या के मृत राजाओं की प्रतिमाएँ देवकुल में स्थापित की जाती थी अतः उक्त नाटक का नाम “प्रतिमा” रखा गया।

(२) अभिषेक

छ' बहूँ के इस नाटक में किष्किन्धा सुन्दर तथा युद्ध काण्ड की रामायण-कथा वर्णित है।

(३) अविमारक

इस नाटक में अविमारक तथा राजा कुन्तिभोज की पुत्री कुरङ्गी के प्रेम की कहानी है। अविमारक का संकेत कामभूत में मिलता है। इस नाटक में प्रेम का सुन्दर एवं सरस चित्रण है।

(४) बालचरित

इसमें श्री कृष्ण जन्म से लेकर कंसवध तक की कथाएँ वर्णित हैं। इसमें पाँच बहूँ हैं। कृष्णके बाल चरित का बहुत ही सजीव वर्णन प्रस्तुत नाटक में है।

(५) पञ्चरात्र

इस नाटक में कवि ने महाभारत की एक कथा का चित्रण विस्तुल मनो कल्पना शक्ति के आधार पर नवोन ढंग से किया है। दुर्योधन यज्ञ के समय आचार्य द्रोण को दान देने की प्रतिज्ञा करता है। उस दान में द्रोण पाण्डवों को आधा राज्य दे दो य दान माँग लेते हैं। शकुनि को सलाह से दुर्योधन स्वीकृति ही देता है परन्तु उसमें एक रात लगा देता है कि यदि पाँच रातों में इस बात की जानकारी पाण्डवों को लग जाए तब हम उन्हें आधा राज्य दे देंगे। जब कि पाण्डव लोग विराट नगर में थे। द्रोणाचार्य के प्रयास से पाण्डवों को इस बात का पता चल जाता है और दुर्योधन उन्हें आधा राज्य दे देता है। यही कथानक इस नाटक में बड़े ही मनोरम ढंग से वर्णित किया गया है।

(६) मध्यमन्यायोग

इस नाटक में मध्यम पाण्डव (भीम) का मध्यम ब्राह्मण पुत्र की रत्ना करना और हिडिम्बा से मिलन यह अन्त में वर्णित है। इसमें पुत्र का पिता

को न पहचानते हुए घृष्टता पूर्वक माँ के सम्मुख लाकर उपस्थित करने का वर्णन बड़े ही सरस एवं कौतूहलपूर्ण ढंग से वर्णित है ।

(७) दूतवाक्य

इस में मरामारत के युद्ध के पहले श्रीकृष्ण पाण्डवों के दूत बनकर कौरवों के पास जाते हैं यह कथा वर्णित है । कृष्ण और दुर्योधन के कथोपकथन में नाटकीयता का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण दिग्दर्शन प्रस्तुत नाटक में किया गया है ।

(८) दूतघटोत्कच

इस नाटक में अभिमन्यु से दुःख सतप्त, एवं क्रुद्ध अर्जुन की प्रतिज्ञा कर लेने के बाद घटोत्कच पाण्डवों के पक्ष में दूत बनकर दुर्योधन के पास उसके विनाश की सूचना देने जाता है । उद्धत घटोत्कच एवं दुर्योधन के वार्तालाप का चित्रण इसमें बहुत ही कौतूहल पूर्ण है ।

(९) कर्णभार

इस एकाकी नाटक में खिन्न मना कर्ण प्रवेश करता हुआ शल्य से अपने अध्ययन काल की बातों को बताता है कि परशुराम से मैंने किस प्रकार छल से शस्त्र विद्या सीखी, एवं 'यह क्षत्रिय है' ऐसा जानकर उन्होंने कैसे भीषण शाप मुझे दे डाला इत्यादि । अन्त में ब्राह्मण वेप में इन्द्र कर्ण से कवच-कुण्डल की याचना करते हैं, शल्य के मना करने पर भी यश को स्थायी बताते हुए कर्ण उन्हें कवच-कुण्डल दे देता है । इसी कथा का अपने ढंग से कवि वर्णन करता है ।

(१०) स्वप्नवासवदत्तम्

यह कौशाबी के राजा उदयन की कथा पर आधारित है । इस नाटक में प्रिया में आप्त राजा उदयन के राज-काज से बिल्कुल विमुख हो जानेपर शत्रुओं द्वारा अधिकृत राज्य भाग के अपहरण हो जाने पर उसका मन्त्री योगन्धरायण (वासवदत्ता की अनुमति से) वासवदत्ता के लावाणक वन में जल जाने की झूठी खबर प्रसारित करवा कर, वासवदत्ता को गुप्त वेश में मगधराज की लड़की पद्मावती के पास रख देता है । वासवदत्ता को पद्मावती के पाम रखने का कारण था कि ज्योतिषियों ने बताया था कि उदयन का दूसरा विवाह

पद्मावती से होगा । इस प्रकार योगन्धरायण की चाल से मगध नरेश दशक की बहन पद्मावती से उदयन का विवाह हो जाता है । पद्मावती के समुद्र गृह में सोया हुआ उदयन स्वप्न में वासवदत्ता को देखता है उसी समय वहाँ पर वासवदत्ता भी उपस्थित रहती है । वह स्वप्न जागे चलकर यथार्थ हो जाता है । अन्त में योगन्धरायण सभी खोया हुआ राज्य मिल जाने पर भेद खोल देता है । इस नाटक में शुद्ध प्रेम का बहुत ही मनोरम चित्रण किया गया है ।

(११) प्रतिज्ञायोगन्धरायण

इसमें भी उदयन की ही कथा बर्णित है । इसको हम स्वप्नवासवदत्ताम् के पहले का नाटक कह सकते हैं । इसमें उदयन बनावटी लोहे के हाथों के छल से महासेन अवन्तिराज के द्वारा बन्दी बना लिया जाता है । वहाँ पर इसी अवस्था में वह अवन्तिराज की पुत्री वासवदत्ता को वीणा की शिक्षा देने लगता है एव उसी क्रम में उदयन एवं वासवदत्ता का प्रेम हो जाता है, और वह प्रेम इस स्तर तक बढ़ जाता है कि उदयन, योगन्धरायण की सहायता से वासवदत्ता को लेकर उज्जयिनी से भाग निकलता है ।

(१२) ऊरु भंग

इसमें भीम और दुर्योधन के गदायुद्ध तथा दुर्योधन के ऊरुभंग की कथा बर्णित है ।

(१३) चारुदत्त

इसमें उज्जयिनी के सार्यवाह चारुदत्त और गणिका वसन्त सेना के प्रेम की कथा निबन्धित है । चारुदत्त की कथा का आधार लोक कथा ही जान पड़ती है ।

ऐसा जान पड़ता है कवि अपनी प्रतिभा से उन सभी क्षेत्रों की कथाओं को नाटकीय रूप देना चाहता था जो उस समय लोक कथाके रूपमें हो कि वा ऐतिहासिक । जैसे स्वप्नवासवदत्ताम् कर्णभारकी कथा जहाँ एक तरफ से ऐतिहासिक आधार पर आधारित है वही चारुदत्त और अविमारक की कथा बूढ़े दादो-नानियों के द्वारा बच्चोंके मनोविनोद के लिये वही कथा की तरह प्रतीत होती है । यह कवि की अनुपम प्रतिभा का खोतक ही तो है ।

भास का वैशिष्ट्य

संस्कृतके नाटकोंमें काव्यत्व खास गुण है; और हासोन्मुख काल में तो यह काव्यत्व इतना बढ़ गया कि नाटक अपने स्वत्व को भी खो बैठे। संस्कृत नाटकों का मुख्य लक्ष्य रसानुभूति उत्पन्न करना रहा है न कि चरित्र का अन्तर्द्वन्द्व बनाना। और यही कारण है कि संस्कृत नाटकों में काव्यत्व अधिक पाया जाता है।

आधुनिक जिन नाटककारों पर "इंसत" अथवा "गाल्सबर्दो" का प्रभाव पड़ा है वे यथार्थ चित्रण के इतने पक्षपाती दिखाई पड़ते हैं कि उनकी पद्धति ही प्राचीन नाटकों की पद्धति से अलग हो गयी है। नाटककार अपनी कृति के माध्यम से सफल तमो माना जायगा जब कि वह "नाटक में काव्यत्व का समावेश करता हुआ भी नाटक के स्वाभाविक गुण, जैसे—निबन्ध घटना चक्र की प्रवाहमयता, नाटकीय कौतूहल, दृश्यों का प्राकृतिक विनियोग और दशकगत प्रभाव की अक्षुण्ण बनाये रखे। इस माने में कालिदास जैसे खरे उतरते हैं संस्कृत के अन्य कवि नहीं उतरते दिख पड़ते हैं। भवभूति केवल कविता के प्रवाह में बह जाते हैं।

भास का कवित्व सदा नाटकीयता का सहायक बनकर आता है। भास की कविता में ऐसा नहीं जान पड़ता है कि कविने इसे बहुत खींच-तान कर जोड़ा हो। वह ऊपर से जुड़ी नहीं प्रतीत होती। भास के कवित्व पूर्ण पद्य घटनाचक्र को प्रवाहित करते जान पड़ते हैं। भास के नाटकों की प्रभावोद्गादकता उसके सरल भाषा से पूर्ण एवं असमाश्रित या अल्प समाश्रित पात्रों का संवाद और प्रसंगानुकूल भावों से पूर्ण पद्य से स्वभावतः ही अनूठी है।

भास का खास लक्ष्य नाटकीय योजना था। भास की शैली प्रसाद गुण युक्त है, किन्तु वीर रस के वर्णनोंमें वह ओज का मो प्रदर्शन करती है। इस प्रकार कवि की दृष्टि से अश्वघोष की अपेक्षा भास हल्के हैं। इनके नाटकों के अध्ययन के पश्चात् यह समझ में आता है कि रामचरित्र से सम्बद्ध नाटकों में (प्रतिमा) में न वह रसवत्ता ही पायी जाती है या न तो पात्रों का उतना प्रभाव पूर्ण चरित्र चित्रण ही हो पाता है जो एक नाटककार के लिए अपेक्षित है।

महाभारत से सम्बद्ध गाँवों को भी सम्बन्ध श्रेणी का हक मिल गया था है क्योंकि उनमें बसिष्ठ कथाको भी रचयिता की भावनाएँ उजागिरियाई पड़ती हैं एव बहुराज-विषय भी रसायुक्त नियोजित किया गया है। उदयन कथा से सम्बद्ध गाँवों को हन कवि को सर्वोत्कृष्ट रचनाएँ कहूँ सकते हैं क्योंकि इन गाँवों में बसिष्ठ कथाओं में उदयन गाँवकोय विषय के द्वारा कवि पूर्ण रूपेण सफल दिखाई देता है। प्रथम जीने विस्तृत विषय का अवलम्ब लेकर कवि ने इन गाँवों में मानव मग का बहुत ही सजीव चरित्र एव सत्य चित्रण किया है। भास ने इन गाँवों में सामाजिक एवं पारिवारिक आर्यों का निर्वह बड़े मनोरम ढंग से किया है।

गाँवकथा, जिस समय बाय अवस्था में पालने में शल रही थी, भास ने अपनी रचना के माध्यम से उस निगु को दुबरी पर बलाने का बहुत ही साहस एवं सफल पूर्ण प्रयास किया। इस कारण ही उनके गाँवों में 'दून यनि व के गाँवकोय विरोध' (निष्कम्प प्रविशति) कथाक दुबरी में यन-युव कविर्नि का व्यास न देने जैसे दोष दिखाई पड़ते हैं।

हा बहुत-बुद्धियों के रहने पर भी भास को कला महीना है। उसमें अर्थोक्ति प्रयोग के न रहने पर भी भाव-नाभिमर्द और रमणोपजा है।

भास की शैली—

अपनी सम्पूर्ण विरोधनाओं से पूर्ण शैली के कारण भास को अविश्वस्त बहुराज ही प्रभावोपादक है। इनके गाँवों में एसास और ओज के साथ ही माधुर्य की संयोजना होने सुन्दर ढंग से की गयी है जो सद्दमों को आभासा हो सुगंध कर देती है। इनकी शैली अलंकारों पर ही नहीं अपितु भावनाओं के स्पष्ट कर अपने को कृप कृप मानती है। परिणाम स्वरूप कृत्रिमता का स्थान स्वाभाविकता ने ले लिया है। भास ने उक्त अलंकारों का प्रयोग किया है जो बहुत ही सरलता से समझ में आ जाते हैं, अतः ये स्वाभाविक से लगते हैं और उनसे वस्तु चित्र और भी स्पष्ट हो गये हैं। भास को भाव बोधन को एक अचूक सफलता मिली है। इसका कारण उनकी सरल शैली और अनुपुन मनोवेत्तात्मिक दृष्टि ही है। इनके गाँवों में द्राक्ष कथा का अभाव,

समासात्पठा एवं प्रवाहमयता को देखकर कुछ विद्वानों ने उन पर रामायण का प्रभाव माना है जो उचित भी प्रतीत होता है ।

भास ने लोकोक्तियों के माध्यम से गागर में सागर भर दिया है । जैसे—

“आपदं हि पिता प्राप्नो ज्येष्ठपुत्रेण तार्यते (मध्यम व्यायोग)

रष्टोऽपि कुञ्जरो वन्यो न व्याघ्रं द्रपयेद्वने (मध्यम व्यायोग)

चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्य—पङ्क्तिः (स्वप्नवास०)

इत्यादि ॥

कर्णभार का एक समालोचनात्मक अध्ययन

कोई भी कलाकार अपनी रचना के प्रसार के लिए एक छोटा सा आधार पहले ग्रहण करता है; पश्चात् अपनी प्रतिभा; तर्क, और कल्पना के द्वारा उसीका विस्तार करता है । प्रस्तुत नाटक में भी भासने महाभारत की एक छोटी सी कथा का आधार लिया और उसी को अपनी अद्भुत सर्वतोमुखी प्रतिभा के द्वारा नाटक का रूप दिया है ।

इस नाटक में अनद्वय कथावस्तु महाभारत में अनेक जगह बिखरी है; नाटककार ने उसे अपनी कल्पना के माध्यम से एक जगह निबन्धित किया जो सहृदयों को सहज ही आनन्दप्रद सिद्ध हुई ।

कपट वेश में ब्रह्मण का रूप ग्रहण कर इन्द्र अपने पुत्र अर्जुन के विजय के लिये कर्ण से उसका अन्मजात कवच और कुण्डल मांग लेते हैं । अपने पिता सूर्य के द्वारा स्वप्न में कवच कुण्डल न देने की चेतावनी देने के बाद भी कर्ण अपनी दान देने की सहज प्रवृत्ति या दृढ़ प्रतिज्ञा के कारण इन्द्र को कवच-कुण्डल दे देता है । दान लेकर लज्जित इन्द्र पुनः कर्ण को “बिमला” नाम की शक्ति देते हैं परन्तु दानशोर कर्ण कान के बदले कुछ भी नहीं लेने का अपना निश्चय उस देवदूत को सुनाता है, परन्तु पश्चात्ताप से संतप्त इन्द्र अपने मनः संतोष के लिये उसे “ब्राह्मण की आज्ञा है” शक्ति लेने को बाध्य कर देते हैं । महाभारत में यह कथा उस समय वर्णित है जिस समय पाण्डव लोग वन में निवास कर रहे थे परन्तु महाकवि भास ने नाटक

में उसे युद्ध क्षेत्र में अभिनीत कर अपनी अद्भुत कल्पना शक्ति का परिचय देते हुए दर्शकों को कर्ण के प्रति संवेदना प्रकट करने को बाध्य कर दिया है। जो कर्ण युद्ध क्षेत्र में कुपित यमराज सा लगता था वही आज अपनेको अनुत्साहित पा रहा है, परशुराम के अभिशाप से उसके शास्त्र मूर्छित से लग रहे हैं और ऐसी दशा में सहज कवच-कुण्डल का भी चला जाना दर्शकों के लिए जरूर कष्ट सिद्ध होगा।

महा कवि भास अपने नाटक के नायक को उस उच्च भूमिका पर उतारना चाहते हैं जो एक वीर के लिये होनी चाहिए। कर्ण यद्यपि विरहीत परिस्थिति; अभिशाप और कवच-कुण्डल के चले जाने से अपने को नि सहाय पाता है; फिर भी शत्रु के यह कहने पर कि आप ठगे गये, अर्थात् आप को दान नहीं देना चाहिए या वह उसे फटकारता है। कर्ण कहता है कि सभार में सभी मावात्मक पदार्थ नष्ट हो जाते हैं यहाँ तक कि विद्या भी समय आने पर विस्मृत हो जाती है परन्तु यश नहीं बिनष्ट होता, दूसरी बात यदि मैं युद्ध में विजयी हुआ तो राज भोग करूँगा और यदि मारा गया तो स्वर्ग प्राप्त करूँगा एक सच्चा मनस्वी वीर ही कह सकता है। इस तरह नाटको का जो लक्ष्य विद्वानों को अभिमत है उसमें यह नाटक सहज ही खरा सिद्ध हुआ है।

महाभारत और कर्याभार की कथावस्तु में भेद

(क) महाभारत में ब्राह्मणयाचकके रूप में इंद्रका कर्ण से कवच-कुण्डल माँगने की कथा उस समय आती है जिस समय पाण्डव वनवास कर रहे थे। परन्तु प्रस्तुत नाटकमें कवि ने इस कथाका संयोजन एक ऐसे समय किया है जो प्रसक्तों के लिए प्रभावोत्पादक, आश्चर्यजनक और कीर्तुहलपूर्ण है, साथ ही युद्धके ऐन-मीके पर सहज कवच-कुण्डल का चला जाना कर्ण-पूर्ण भी है।

(ख) महाभारत में “कल इंद्र तुम से कवच कुण्डल मिथा माँगना तुम मत देना” इस बातकी सूचना सूर्य स्वप्न में आकर कर्ण को पहले ही दे देते हैं, परन्तु भास ने इस बात का संकेत अपने नाटक में कहीं नहीं किया। परिणाम स्वरूप नाटक प्रभावशाली एवं कीर्तुहल-पूर्ण रहा। अन्यथा उस घटना के

संघटन से हो सकता है दर्शकों को युद्ध के समय अचानक कवच कुण्डल माँग लेने से कर्ण के प्रति जो सहानुभूति उत्पन्न हुई थी समाप्त हो जाती ।

(ग) महाभारत में कर्ण कवच-कुण्डल देकर स्वयं इन्द्र से शक्ति की माचना करता है परन्तु इस नाटक में कर्ण निःस्पृह होकर स्वयं तक दोनों का दान करता है । देवदूत के द्वारा शक्ति के देने पर भी उसे स्वीकार नहीं करता, फिर ब्राह्मण की आज्ञा है ऐसा कहने पर विवश होकर ग्रहण करता है । प्रस्तुत कल्पना के द्वारा कवि ने कर्ण को जो महत्तास्पद स्थान दिया मन्मथः मूल कथा के आधार पर वह कुछ हीन सा प्रतीत होता ।

(घ) महाभारत में शल्य, बार-बार कर्ण की अपनी कटूक्तियों से घृणित एवं अनुत्साहित करता रहता है, परन्तु प्रस्तुत नाटक का शल्य एक सच्चे चारुपी की तरह समयोचित परामर्श कर्ण को देता है एवं संवेदना प्रकट करता है ।

(ङ) प्रायः संस्कृत के अन्य सभी नाटकोंमें यह देखनेको मिलता है कि जो पात्र गूढ़, स्त्री, या बहिष्कृत हों वही प्राकृत-भाषा में बोलते अभिनीत किये जाते हैं, परन्तु इस नाटक में ब्राह्मण रूपमें इन्द्र प्राकृत भाषा में बोलते दिखाई देते हैं । इत्यादि ॥

नाटक का नामकरण

प्रायः जो शब्द कथानक के पूरे अन्तर्हित अर्थ का प्रकाशन अपने लघु शब्दावलियों से कर दे वही नाटकों का शीर्षक या नाम कहा जाता है । कभी-कभी कथानकों के बीच में घटित घटनाओं के आधार पर भी नाटकों का नामकरण दिया जाता है । प्रस्तुत नाटक में ऐसी कोई घटना नहीं दिखाई पड़ती जो "कर्णभार" शब्द की स्पष्ट व्याख्या कर सके । परन्तु इस विषय में विद्वानों ने जो कुछ व्याख्याएँ की हैं उनका उल्लेख कर पश्चात् यथार्थ में भी कुछ विचार करने का प्रयत्न करेंगे ।

प्रो० ए० डी० मुसलकर जी का कहना है कि चूँकि दार्शनिक रूप दान में पहले से ही दे दिये गये कवच और कुण्डल भार स्वरूप हो गये थे और उन्हीं के

दान को केन्द्र बिन्दु मानकर प्रस्तुत नाटक की रचना की गयी है अतः इसका नाम कर्णभार रखा गया। डा० विष्टर मिस्त ने कर्णभार की व्याख्या कर्ण के दुर्घर्षकार्य को केन्द्र बिन्दु मानकर किया है। डा० भट्ट कर्णभार की व्याख्या इस प्रकार करते हैं कि कर्ण के ऊपर कौरव सेना का सञ्चालन और उनकी रक्षा का भार सौंपा गया था जो उनके लिये चिन्ता का विषय बन गया था और उसीको चरितार्थ करने का प्रयास इस नाटक में किया गया है और चिन्ता कर एक अर्थ भार भी माना जा सकता है अतः इस नाटक का नाम कर्णभार रखा गया।

यथार्थ रूप में यदि विचार किया जाय तो इस नाटक का कर्णभार नाम कर्ण के मानसिक दुःख, अचानक उसके मन का निरुत्साहिता को ध्यान में रखकर रखा गया है। कर्ण महाभारत का बहुत ही उच्चस्तर का सेनानी है। वह अपने जीवन में बराबर इस बात का स्पष्टीकरण संसार के सामने करने का प्रयास करता रहा है कि कर्ण और अर्जुन में कौन बड़ा योद्धा है वह अर्जुन से सर्वदा द्वन्द्व युद्ध का इच्छुक रहा है और आज जब वह युद्ध क्षेत्र में अर्जुन के साथ युद्ध करने का अवसर पाता है अचानक उसका मन भारी सा होने लगता है वह अपने को निरुत्साह पाता है, उसके घोड़े उसे युद्ध से लौट चलने का संकेत सा कर रहे हैं, उसके अस्त्र-शस्त्र वीर्य हीन से उस प्रतीत होते हैं, यही सब उसके भारस्वरूप हो गये और इसलिए इसका नाम कर्णभार रखा गया।

दो बातें

महा कवि भाम की यह वृत्ति कर्णभार जो अपने छोटे कलेवर के द्वारा भी सहृदयों को "ब्रह्मानन्द स्वाद सहोदर" की अनुभूति करान में समर्थ है," विद्वानों के समस्त छात्रों के उपकार की दृष्टि से प्रकाशित होने जा रहा है। आशा है यह नवीन संस्करण अपने लक्ष्य पूर्ति में सफल होगा। यद्यपि इस पुस्तक की अन्य कई टोकाएँ बाजार में उपलब्ध हैं फिर भी इस संस्करण का प्रकाशित होने का कारण यह है कि जहाँ-जहाँ महाकविभास पौर्णिक कथाओं का सक्त अपने छोटे से वाक्य के द्वारा करके अप्रपन्न हो गये, उन स्थलों

का स्पष्टीकरण करते हुए कथानक को सरल ढंग से समझाने का प्रयास इस संस्करणमें किया गया है। अब यह अपने लक्ष्य में कहीं तक ठीक है इसका उत्तर विद्वान्; सहृदय आलोचक या उपकृत छात्र ही दे सकते हैं लेखक नहीं। इसकी भूमिका प्रस्तुत करने में कतिपय इतिहास ग्रन्थों को देखना पडा है और उनकी सहायता ली गयी है अतः मैं उनका हार्दिक आभारी हूँ।

कर्णभार की प्रस्तुत व्याख्या मैं क्या कर सकता था जो कुछ भी किया वह पूज्य गुरु चरण श्री प० कीर्त्यानिन्द झा जो का शुभाशोर्वाद एवं मित्रवर श्री राघारमण ठाकुरजी का सहयोग ही है। अतः इन दोनों व्यक्तियों को कृतज्ञता का अनुभव कर मैं अपने को कृतकृत्य मानता हूँ। एषञ्च सबसे बडा कृतज्ञ तो अग्रजस्वरूप पं० श्री हरेकान्त जी मिश्र का है जिन्होंने अपनी अंगुली का सहारा देकर इसपथ पर चलना सिखाया। प्रकाशक महोदय ने जो मुझे इस संस्कृत सेवा का अवसर प्रदान किया अतः उन्हें हार्दिक धन्यवाद है।

मेरे परिधम की सफलता विद्यार्थियों के लाभ से ही है, अतः यदि छात्र गण इससे कुछ भी लाभान्वित हुए तो मैं अपने को कृतकृत्य समझूंगा।

वाराणसी
वि० सं० २०३४

वैद्यनाथ

॥ श्री. ॥

कर्णभारम्



‘इन्दुकला’ संस्कृत-हिन्दी-व्याख्योपेतम्



प्रथमोऽङ्कः

राधा-पूजित-पाद-पद्म - युगलं कृष्णं प्रणम्याधुना ।
कीर्त्यानिन्द-गुहं प्रणम्य शिरसा छात्रस्तदीयो मुदा ।
टोका “मिन्दुकला” करोमि सरला छात्रोपकाराय वै ।
भासाविष्कृत-कर्णभा सुकृतेः काश्यां गुरोः सन्निधौ ॥

(नान्द्यन्ते सप्तः प्रविशति सूत्रधारः)

सूत्रधार—

नरमृगपतिवर्ष्मालोकन-भ्रान्तनारी-

नरदनुजसुपर्वदातपाताललोक ।

करजकुलिश-पाली-भिन्नदैत्येन्द्रवक्षा

सुररिपुबलहन्ता श्रीधरोऽस्तु श्रिये वः ॥ १ ॥

तत्रभवान् सकलकविकुलचूडामणिः, कालिदासादिभिः संकोटितगुणगण,
प्रतिष्ठापयोगन्धरायणाद्यनेक-नाटक-निर्माता, कविताकामिन्याः हासः महाकविर्मासः

कोशः—व्यग्रो व्यासक्त आकुले ।

भावार्थः—सूत्रधारः दर्शकान् किञ्चिद् विवक्षति तदैव नेपथ्ये कोलाहल इव शृणोति तदेव कथयति कथमयं कोलाहल इति पश्यामि ।

हिन्दीः—इस प्रकार आप महानुभावो को मैं सूचित करता हूँ कि (घूम कर और नेपथ्य की ओर कान लगाकर) अरे ! जिस समय मैं सूचना देने में संलग्न हूँ कुछ कोलाहल सा सुन रहा हूँ । अच्छा देखूँ तो, क्या है ?

(पर्दे के पीछे)

विशेष—नाटक में “नेपथ्य” उस स्थान को कहते हैं जहाँ पर नाटक के सभी पात्र वस्त्राभूषण धारण करते हैं, वेशभूषा से सुसज्जित होते हैं । रङ्गमञ्च और प्रेक्षागृह जहाँ सब पात्र सुसज्जित हाते हैं उसके बीच में लगे हुए पर्दे को भी सुविधा के लिये ‘नेपथ्य’ कहा जाता है ।

ओ भो ! निवेद्यता निवेद्यता महाराजामाङ्गेश्वराय । भवतु विज्ञातम् ।

सूत्रधारः—

संप्रामे तुमुले जाते कर्णाय कलिताञ्जलिः ।

निवेदयति संभ्रान्तो भृत्यो दुर्योधनाज्ञया ॥ २ ॥

(निष्क्रान्तः)

॥ प्रस्तावना ॥

(ततः प्रविशति भटः)

अन्वयः—जाते, तुमुले, संप्रामे, कलिताञ्जलिः, संभ्रान्तः, भृत्यः, दुर्योधनाज्ञया कर्णाय, निवेदयति ॥ २ ॥

व्याख्याः—जाते = संप्रामे; तुमुले = भयङ्करे संप्रामे = रणे, कलिताञ्जलि = कलितः = विहितः अञ्जलिः = हस्तसम्पुटो येनाशौ, अञ्जलि वचना इत्यर्थः । संभ्रान्तः = व्यग्रः; भृत्यः = परिचारकः; दुर्योधनाज्ञया = कौरवाग्रादेशेन, कर्णाय = अङ्गेश्वराय, निवेदयति = सूचयति । “श्लोके षष्ठं गुरुश्रेयं सर्वत्र लघु

पञ्चमम । द्विचतुष्टयादयो ह्यस्वम् सप्तमं दीर्घमन्ययोः" ॥ इति लक्षणानुसारमत्र
"अनुष्टुप् छन्दः ॥ २ ॥

समामः—कलितः अञ्जलियेन न. कलितञ्जलिः (तू० तत्०) ।
दुर्योधनस्य आज्ञया दुर्योधनाज्ञया (थ० तन्पुरुष) ।

कोशः—संग्रहाराभिसंज्ञातकलिसक्रीट-संयुगाः ।

अभ्यामर्दसमाधानसप्रामाभ्यागमाहवाः ॥

तुमुलं रण संकटे हत्यमरः । अत्रवादन्तु निर्देशो निर्देशः नाशनां च सः ।
निष्ठिश्चञ्जा च हत्यमरः । मृत्योदानेरदाप्तेय दासगोप्यकचेटकाः । नियोज्य-
किङ्करप्रेष्य भुक्तिव्यपरिचारका हत्यमरः ॥

भाष्यार्थः—सूत्रधारः नेत्रे किञ्चिद्वृत्त्वा दर्शनान् कथयति यन्
कथमय कोलाहलो जातः इति ज्ञात मया घोरे रणसंकटे समागते व्याकुलः
दुर्योधनानुचरः तदाज्ञया कर्णाय निवेदयति यन् इदानीं संग्रामोऽभूदिति ॥

हिन्त्रीः—हे ! हे ! (लोगों) महाराज बङ्गवरेण कर्ण को सूचित करें !

सूत्रधारः—बच्चा जान लिया ।

भयङ्कर युद्ध उपस्थित हो जाने पर घबराया हुआ दुर्योधन का दूत सबको
आज्ञा से हाथ जोड़कर बङ्गदेशाधिपति महाराज कर्ण को युद्ध की सूचना
दे रहा है ॥ २ ॥ [सूत्रधार चला जाता]

॥ प्रस्तावना समाप्त ॥

विशेषः—'यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते । तेन पात्र-
प्रवेशश्चेत् प्रयोगानिगमस्तदा" ॥ "साहित्यदर्पण" के इस लक्षण के अनुसार
यहाँ पर प्रयोगातिशय नामक तृतीय प्रस्तावना है ।

कथा की भाँति बर्ताने के लिये "नाटक के आरम्भ में सूत्रधार द्वारा जो भूमिका
प्रस्तुत की जाती है उसे प्रस्तावना कहते हैं ।

(ततः प्रविशति भटः)

भटः—ओ भा ! निवेशता निवेशता महाराजायाङ्गेश्वराय युद्धकाण्ड
उपस्थित इति ।

करितुरगरथस्थैः पार्थकेतोः पुरस्ताद्
 मुदितनृपतिर्सिंहैः सिंहनादः कृतोऽत्र ।
 त्वरितमरि-निनादैर्दुस्सहालोकवीरः
 समरमधिगतार्थः प्रस्थितो नागकेतुः ॥ ३ ॥

अन्वय — पार्थकेतो, पुरस्ताद्; करितुरगरथस्थैः मुदितनृपतिर्सिंहैः;
 अत्र सिंहनादः कृतः । अरिनिनादैः; दुस्सहालोकवीरः अधिगतार्थः; नागकेतुः;
 त्वरितम्, समरम्, प्रस्थितः ॥ ३ ॥

व्याख्याः—पार्थस्य = अर्जुनस्य केतो = ध्वजस्य पुरस्ताद् = अप्रतः करिणः =
 नागाः = वाजिन, रथाः = स्यन्दनानि तेषु तिष्ठन्ति, तरिति = करितुरगरथस्थैः
 नागाश्वस्यन्दनस्थितैः, मुदिता = प्रसन्ना नृपतय = अर्जुनपक्षपातिने भूपतय एव
 सिंहाः = भृगपतय तैः मुदितनृपतिर्सिंहैः = प्रसन्न-राजपञ्चाननैरितियावत्,
 अत्र = युद्धे; सिंहनाद = सिंहगर्जन कृतमिति । अतः अरिनिनादैः = शत्रुजनैः;
 दुस्सहः = बौद्धमशक्य परैरिति यावत्; आलोक. = तेजोविशेष; यस्य स चासौ
 वीरश्च = शूरश्चेति दुस्सहालोकवीरः = अपरिमितप्रभाशालीयोद्धा इत्यर्थः;
 अधिगतार्थः = ज्ञातप्रयोजनः; नागकेतु. = नाग. = हस्ती केतो = ध्वजे यस्य सः
 नागकेतु. = हस्तिध्वजः; त्वरितम् = शीघ्रम् समरम् = युद्धस्थल “प्रतीति
 शेष.” प्रस्थित = प्रचलित ॥ “ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकं” इति
 लक्षणानुसारमत्र “मालिनी” छन्दः ॥ ३ ॥

समासः = करिणश्च तुरगाश्च रथाश्चेति करितुरगरथम् (द्वन्द्व०) तेषु
 तिष्ठन्ति ये ते करितुरगरथस्थास्तै पूर्वोक्तं ॥ पृथाया अपत्यं पुमान् पार्थ; पार्थस्य
 केतुः पार्थकेतुस्तस्य (प० तत्पुरुष) । मुदिताश्चेतेनृपतय. मुदितनृपतय
 तएव सिंहाः तै पूर्वोक्तं । दुस्सहः आलोको यस्य स दुस्सहालोक. (बहु०) स
 चासौ वीरश्च दुस्सहालोकवीर. (द्वन्द्वः) । अधिगतः अर्थो येन स अधिगतार्थ
 (बहुव्रीहि.) । नाग केतुर्यस्य स नागकेतु. (बहुव्रीहि.) ।

कोशः—दन्तो दन्तावलो हस्ती द्विरदोऽनेकपो द्विपः ।

मत्तङ्गजो गजो नागः कुञ्जरो धारणः करोत्यमरः ॥

घोटके वीतितुरग-तुरङ्गाश्वतुरङ्गमाः । वाजिबाहार्वागन्धर्वहयसैन्यव ससय ।
इत्यमरः । याने चक्रिणि यु३अर्थे गताङ्ग. स्यन्दनो रथः इत्यमरः । ग्रहभेदे
ध्वजे वेतुः इत्यमरः । राजा राट् पाथिवदमामनुपमूपमहीक्षितः । रिपो वैरि
सपत्नारिद्विपद् द्वेषणदुर्हृदः । इत्यमरः ॥

भावार्थः—अर्जुनस्य पताका समक्षं हस्त्यश्वरथस्थैः प्रसन्नैः सिंह-
सदृशबलशालिभिः नृपैः रणाङ्गणे सिंहनादो विहितः, अथ एव शत्रुगर्जनैरमित्त-
तेजोवान् दुर्योधनः शीघ्रमेव युद्धस्थलं प्रति प्रयात इति ।

हिन्दीः—(भट प्रवेश करता है)

भटः—ऐ लोगों ! महाराज अर्जुनरथ (कर्ण) को निवेदन कर दें कि
युद्ध का समय उपस्थित हो गया है ।

अर्जुन की ध्वजा के सामने हाथी, घोड़े और रथ पर बैठे हुए, प्रसन्न,
सिंह के समान वीर राजाओं ने यहाँ रणभूमि में सिंह गर्जना की, शत्रुगजना
के कारण जिसके तेजो विरोध को दूसरा सहन नहीं कर सकता एवं जिसके
ध्वज में मणिमय हाथी का चिह्न है वे दुर्योधन शीघ्रतः से रणभूमि के लिये
प्रस्थान कर चुके हैं ॥ ३ ॥

(परिक्रम्य विलोक्य) अथे अथमङ्गराजः समरपरिच्छदपरिवृत्त. शत्रुराजेन
सह स्वमथनाग्निष्कम्य इत् एवाभिवर्तते । भोः किं न खलु युद्धोत्सव-प्रमुखस्य
दृष्टपराक्रमस्या-भूतपूर्वो हृदयपरितापः ।

एव हि—

अत्युपदीप्तिविशदः समरेऽप्रगण्य

शीर्ये च संप्रति सशोकमुपैति धीमान् ।

प्राप्ते निदाघसमये घनराशिरुद्धः

सूर्यः स्वभावरुचिमानिय भाति कर्णं ॥ ४ ॥

शल्यः—धाढम् । (चोदयति)

कर्णः—अहो नु खलु ।

अन्वयः—तावत्, मम, शरमार्ग-लक्ष्यभूताः; क्षितिपतयः; सजीवशेषाः; मा संप्राप्ताः । रणशिरसि; कुरूणा; प्रियं कर्तव्यं (वर्तते) यदि स घनञ्जयो मे द्रष्टव्यो भवेत् ॥ ५ ॥

व्याख्याः—तावत् = अद्यावधि पूर्वेषु युद्धेष्वित्यर्थः; मम = कर्णस्य शर । णाम् = बाणानाम्, मार्गं = पथि, लक्ष्यभूताः = लक्ष्यत्वं गताः; क्षितिपतयः = राजानः; सजीवशेषाः - प्राणवन्तः; मा संप्राप्ताः = नाऽभूवन् । सर्वे हता इत्यर्थः (अद्यतने) रणशिरसि = युद्धमध्ये; कुरूणाम् = घातंराष्ट्राणाम्; प्रियम् = अभीष्टम्; कर्तव्यम् = कार्यम् (वर्तते) यदि = चेत्; सः = अस्मद्प्रतिभट ; घनञ्जयः = अर्जुन मे = मम द्रष्टव्य = दृष्टिगोचरः; भवेत् = स्यात् । कौरवाभीप्सितमर्जुनवधं विधाय तेषामभिलाषं पूरयिष्यामि ॥ अत्र प्रहृषिणी छन्दः । तल्लक्षञ्च “व्याशा-भिर्मनजरगा प्रहर्षणीयम्” ॥ ५ ॥

समासः—शराणाम् मार्गः = शरमार्गं (प० तत्०) तस्य लक्ष्यभूताः शरमार्गलक्ष्यभूताः (प० तत्पु०) । जीवेन सहिता इति सजीवा त एव शेषाः सजीवशेषाः । रणस्य शिरः रणशिरः तस्मिन् रणशिरसि (प० तत्पु०)

कोशः—पृषत्कबाणा विशिखा अजिह्वागखगाशुगाः ।

कलम्बमार्गणशश पन्नीरोप हपुर्द्वयोः । इत्यमरः ।

अयनं वर्त्म मार्गाभ्यवन्धानः पदवी सृतिरित्यमरः ॥

अभीष्टे अभीप्सितं हृत्य दगितं बल्लभ प्रियमित्यमरः ॥

भावार्थः—कर्ण स्वमनोगतं भावः, अयनक्ति यद्; अद्यावधि पूर्वेषु युद्धेषु मम बाणलक्ष्यभूताः केऽपि राजानः जीवन्तः सन्त नागच्छन् । अद्य यदि युद्धे अर्जुने दृष्टिगोचरो भवेत् तर्हि तं निहत्य कौरवाभिलाष पूरयामीति ।

हिन्दी —(भट के चले जाने के बाद पूर्वनिर्दिष्ट कर्ण और शल्य प्रवेश करते हैं ।)

कर्णः—आज तक ऐसा पहले कभी नहीं हुआ कि कोई भी राजा मेरे बाणों के रास्ते में आकर जीवित चला गया हो । आज इस युद्ध में, मैं कोरवों का अभिलाषा पूर्ण कर दूँ यदि अर्जुन को देख जाऊँ तो ॥ ५ ॥

सत्यराज ! जहाँ पर वह है मेरे रथ को वहीं ले चलो ।

शल्यः—अच्छा । (रथ ले जाता है)

कर्णः—ओहो, यह कैसे—

अन्योन्यशस्त्र-विनिपात-निकृत्तगात्र—

योधाऽववारणरथेषु महाहवेषु ।

क्रुद्धान्तकप्रतिमविक्रमिणो ममापि

वैधुर्यमापतति चेतसि युद्धकाले ॥ ६ ॥

मो कष्टम् ।

पूर्वं कुन्त्यां समुत्पन्नो राधेय इति विश्रुतः ।

युधिष्ठिरादयस्ते मे यधीयांसस्तु पाण्डवाः ॥ ७ ॥

अन्वयः—अन्योन्येति । अन्योन्यशस्त्रविनिपातनिकृत्तगात्रयोधाऽववारण-रथेषु; महाहवेषु, क्रुद्धान्तकप्रतिमविक्रमिणः; ममापि, चेतसि; युद्धकाले, वैधुर्य-मापतति ॥ ६ ॥

व्याख्याः—अन्योन्यम् = मिथः; शस्त्राणाम् = बाणादीनाम् विनिपातैः = प्रहारैः । निकृत्तगात्राः = विशतविग्रहाः; योधाः = सैनिकाः; अश्वाः = हयाः; वारणाः = हस्तिनः रथाः = स्पन्दना येषु; तेषु महाहवेषु = महारथेषु, क्रुद्धः = क्रुपितः अन्तकः = यमराजः तरतिमम् = त्वादृशः; विक्रमः = पराक्रमो यम्यः (तस्य) ममापि = कर्णस्यापि चेतसि = हृदये; युद्धकाले = रणसमये; वैधुर्यम् = दैग्यम्, आपतति = आगच्छति ॥ ६ ॥ अत्र वसन्त तिलका वृत्तं लक्षणन्तु पूर्वोक्तमेव ॥

समासः—अन्योन्य शस्त्राणां विनिपातः = अन्योन्यशस्त्रविनिपातः (प० तत्पु०) निकृत्तानि गात्राणि येषां ते निकृत्तगात्राः (बहुव्रीहिः) अन्योन्यशस्त्र-

अन्वयः—अयमेति । अयं सः क्रमलब्धशोभनः, काल आगतः अय
गुणप्रकर्षः, दिवसः, आगतः, मया हि, निरर्थम् अस्त्रम्, शिक्षितम्, पुनश्च,
मातुर्वचनेन वारितः, अस्मीति शेषः ॥ ८ ॥

व्याख्याः—अयम् = उपस्थितः, 'सः' = बहुसमय-प्रतीकितः, क्रमेण = दिवस-
क्रमेण लब्धः = प्राप्तः, शोभनः = रमणीयः कालः = समयः आगतः = सम्प्राप्तः,
अयम् = एव गुणप्रकर्षः = सद्गुणप्रकृष्टः दिवसः = वासरः आगतः = प्राप्तः, हि =
परन्तु मया = कर्णेन, निरर्थम् = निष्प्रयोजनम्, अस्त्रम् = आयुधम् शिक्षितम् =
अभ्यासम् पुनश्च = भूयोऽपि मातुर्वचनेन = कुन्निवचसा वारितः = निषिद्धोऽ-
"स्मी"ति शेषः । पद्येऽस्मिन् 'वंशस्य' नामक छन्दः । तल्लक्षणञ्च "जतो तु
वंशस्यमुदीरितं जरी" इति ॥ ८ ॥

समासः—क्रमेण लब्धः = क्रमलब्धः (तृ० तत्पु०) क्रमलब्धश्चासौ
शोभनः क्रमलब्धशोभनः (कर्मधारय) गुणानां प्रकर्षोऽयस्मिन्निति, गुणप्रकर्षः
(बहुव्री०) ।

कोशः—कालो दिष्टोऽप्यनेहापि समयः । इत्यमरः । सुन्दरं रुचिरं चारु
सुपमं साधु शोभनम् । इत्यमरः । घस्ते दिनाह्नो वा तु क्लीबे दिवसवासरो ।
इत्यमरः । व्याहार उक्तिलपितं भाषित वचनं वचः । इत्यमरः ।

भावाथ—चिरकालात् प्रतीकितोऽयं समयोऽप्यागतः । सद्गुणः युक्तोऽयं
वासरोऽप्यागतः 'युद्धस्य' । किन्तु मया परशुरामेण व्यर्थमेवास्त्रं शिक्षितम्,
एवञ्च मात्रा कुन्त्या "युधिष्ठिरादिके अस्त्रप्रहारो मा कृष्या." इति बहुवारं
निषिद्धोऽस्मि ॥ ८ ॥

हिन्दीः—मैं जिसको प्रतीक्षा बहुत समय से कर रहा था वह युद्ध का
समय भी आ गया और आज का दिन भी अनेक सद्गुण से युक्त है (अत एव
उपयुक्त है) । परन्तु मैंने शस्त्रों का अभ्यास व्यर्थ ही किया, और मैं कुन्ती
ने "युधिष्ठिरादि पर शस्त्रप्रहार न करना" ऐसा कहकर बहुत बार मना भी
किया है ॥ ८ ॥

ओ ! शल्यराज, मेरे शस्त्रों की कहानी सुन लीजिये ।

शल्य—मुझे भी इस कहानी को सुनने का कौतूहल है । (सुनाइये)

कर्ण—पहले एक बार मैं परशुराम के समीप गया था ।

शल्य—उसके बाद क्या हुआ ?

विद्युत्लता—कपिलतुङ्ग—जटा—कलाप—

मुद्यत्प्रभावलयिनं परशुं दधानम् ।

क्षत्रान्तकं मुनिवरं भृगुवंशकेतुं

गत्वा प्रणम्य निकटे निभूतः स्थितोऽस्मि ॥ ९ ॥

अन्वयः—विद्युत्लताकपिलतुङ्गजटाकलापम्, उद्यत्प्रभावलयिनम्, परशुं दधानम्, क्षत्रान्तकम्, मुनिवरम्, भृगुवंशकेतुम्, निकटे, गत्वा, प्रणम्य, निभूतः, स्थितः, अस्मि ॥ ९ ॥

व्याख्याः—विद्युत्लता = सौदामिनोलता, 'इव' कपिलाः = विशङ्गाः, विङ्गलवर्णा इत्यर्थः, तुङ्गाः = महान्तः जटाः = सटा. 'तासा' कलापः = निबयो यस्य तम्, उद्यन्ती = उर्ध्वं गच्छन्ती, या प्रभा = ज्योति तस्या. वलयम् = प्रकोष्ठ यस्य तम्, स्फुरत्कान्तिपरिधिमन्तमित्यर्थः; परशुम् = कुशोरम् 'एतन्नामकास्त्र-विशेषम्', दधानम् = धारयन्तम्, क्षत्रान्तकम् = क्षत्रियाणाम् कालम् मुनि-वरम् = ऋषिप्रेष्ठम्, भृगुवंशकेतुम् = भार्गवकुलकेतुम्, निकटे = समीपे गत्वा = उपसृत्य, प्रणम्य = प्रणामं कृत्वा, निभूतः = शरदरहित स्थितः = अव-स्थितः, अस्मि = सवृत्त । अत्र दसन्ततिलका छन्दः ॥ ९ ॥

समासः—विद्युदेव लता = विद्युत्लता; तद्वत्कपिलाः विद्युत्लताकपिला, जटायाः कलापः जटाकलापः, (प० तत्पु०) तुङ्गाश्च ते जटा कलापाः तुङ्ग-जटाकलापाः; विद्युत्लताकपिलाश्च ते जटाकलापाः; विद्युत्लता—कपिलजटाकलापा यस्य तम्, उद्यन्तीर्चैवा प्रभा च उद्यत्प्रभा (कर्मधारयः) उद्यत्प्रभैव वलय यस्य तम्, उद्यत्प्रभावलयिनम् ।

कोशः—तस्मिन्सौदामिनी विद्युच्चञ्चला चपला अपि । इत्यमरः । कडारः कपिलः विङ्गविशङ्गी कद्रुपिङ्गलो इत्यमरः । स्युः प्रभाहप्रचिस्त्विद् भाभा-दृष्टविद्युति दीप्तयः रोचिचोचि । अतित्तु जटा सटा इत्यमरः । निभूतविनीत-प्रथिताः समा । इत्यमरः समीपे निकटासन्नसन्निकृष्टसनीऽशत् इत्यमरः ।

भावार्थः—विद्युत्प्रभेवकान्तिमन्तं जटाकलापं धारयन्तं क्षत्रियकुलागतं कुठारनामकस्त्रविशेषप्रारिणं परशुराम-नामकं भार्गव-कुलकैरवं समीपं गत्वा तूष्णीं स्थितः आसमिति, कर्णः स्वशस्त्राम्बास-प्रसंगं कथयति शल्यम् ॥

हिन्दी — बिजली के समान पीली एव बड़ी जटा समूह को धारण करने वाले; प्रमामण्डल से परिवेष्टित; "परशु"-नामक अस्त्रविशेष धारण करनेवाले; क्षत्रियकुल के लिये काल समान, मुनिश्रेष्ठ, मृगुकुलकेतु (परशुराम) के समीप जाकर प्रणाम करके मैं चुपचाप बैठ गया ॥ ९ ॥

शल्यः—ततस्ततः ।

कर्णः—ततो जामदेग्न्येन मेमाशोर्वचनं दत्त्वा पृष्टोऽस्मि । को मवान् किमर्पमिहागत इति ।

शल्यः—ततस्ततः ।

कर्णः—ततः भगवन् अखिलान्यस्त्राण्युपशिक्षितुमिच्छामीत्युनवानस्मि ।

शल्यः—ततस्ततः ।

कर्णः—ततः उक्तोऽहं भगवता ब्राह्मणेपूपदेशं करिष्यामि न क्षत्रियाणामिति ।

शल्यः—अस्ति खलु भगवतः क्षत्रियवंशैः पूर्ववैरम् । ततस्ततः ।

कर्णः—ततो नाहं क्षत्रिय इत्यस्त्रोपदेशं ग्रहीतुमारब्धं मया ।

शल्यः—ततस्ततः ।

कर्णः—तत कतिपय कालातिक्रमे कदाचित् फलमूलसमित्कुशकुसुमाहरणाय गतवता गुरुणा सहानुगतोऽस्मि ।

शल्यः—ततस्ततः ।

कर्णः—तत स गुरुर्वचन-भ्रमणपरिश्रमान्मदङ्घ्रु निद्रावशमुपागतः ।

शल्यः—ततस्ततः ।

हिन्दी—शल्यः—उसके बाद ?

कर्णः—उब फिर परशुराम ने आशीर्वाद देकर मुझे पूछा कि; आप कोन है और यहाँ किस लिये आये हैं ?

शल्यः—उसके बाद ?

कर्ण—तब भगवन् ! "सम्पूर्ण अस्त्र विद्या सीखना चाहता हूँ" ऐसा मैंने कहा ।

शल्य—तब फिर ?

कर्ण—उसके बाद भगवान (परशुराम) ने मुझसे कहा कि; मैं केवल ब्राह्मणों को ही अस्त्र विद्या सिखलाना है, क्षत्रियों को नहीं ।

शल्य—परशुराम की क्षत्रियों से पुरानो दुश्मनो है । तब फिर ?

कर्ण—"मैं क्षत्रिय नहीं हूँ" ऐः मैंने बड़बुर अस्त्र सीखना प्रारम्भ कर दिया ।

शल्य—तब क्या हुआ ?

कर्ण—तब कुछ दिनों के बाद एक बार फलमूल लकड़ी कुशा और फूल इत्यादि लाने के लिये जंगल को जाते हुए गुद के साथ मैं भी जंगल चला गया ।

शल्य—उसके बाद ?

कर्ण—तब फिर जंगल में भ्रमण करने के कारण थक कर गुरुजी मेरी गोद में सो गये ।

शल्य—उसके बाद क्या हुआ ?

कर्णः—उतः

कृत्ते वज्रमुत्तेन नाम कृमिणा देवान्ममोद्दये

निद्राच्छेदभयादसह्यतगुरोर्घोषात्तदावेदना ।

उत्थाय क्षतजाप्लुतः स सहसा रोपानलोद्दीपितो

बुद्ध्वा मां च शशाप काल-विफलान्यस्त्राणि ते सन्त्विति ॥१०॥

धन्वय—देवान्, वज्रमुखेन, नामकृमिणा, ममोद्दये, कृत्ते, तदा, गुरोः, निद्राच्छेदभयान्, वेदना, घोषान्, असह्यत । सहसा; क्षतजाप्लुतः, स; उत्थाय; मा च बुद्ध्वा, रोपानलोद्दीपितः; कालविफलानि, ते, अस्त्राणि, सन्तु इति (मा) शशाप ।

व्याख्याः—देवान् = दुर्भाग्यान्, वज्रेव = कुलिशेव; मुखम् = काम्यं मम्य तेन; पत्रग्रामकेन कृमिणा = कीटेन मम = कर्णस्य दृष्टये = जह्वापुमे, कृत्ते = र कर्णभा०

क्षत्ते, तदा = तस्मिन् ममये, गुरो = जामदग्नस्य निद्राच्छेद-भयात् = निद्राभङ्ग-भयात्; वेदना = दहोपगमकष्टम्, धैर्यात् = साहसात् असह्यत = सोडा । सहसा = अकस्मात्; क्षतजाप्लुन = रक्तासञ्चित, स = गुरुपरशुराम; उत्थाय = निद्रा-विहाय, मा = कर्णं च बुद्ध्वा = एव विष साहस क्षत्रियातिरिक्तेषु न भवनात् क्षत्रिय एवेति ज्ञात्वा; रोप = मन्यु एव अनल = वह्नि, तेन उद्दोषित = प्रज्वलित "सन्" कालविफलानि = समयामहायकानि, ते = ममोपदिष्टस्य कर्णस्य अस्त्राणि = आयुधानि सन्तु = भवन्तु इति = एव प्रकारेण (मा) शशाप = शाप दत्तवान् ॥ अत्र शार्दूलवीकिडित नामक छन्द ॥ १० ॥

समास—वज्रवदमुखं यस्य स वज्रमुखस्तेन । निद्रायाश्छेद = निद्राच्छेद, (प० तत्०) तस्य भय निद्राच्छेदभय (प० तत्०) तस्मात् । क्षतात् जात = क्षतज (पञ्चमो तत्०) तेन आप्लुत = क्षतजाप्लुत. (तू० तत्०) । रोप एव अनलः तेनाद्दोषित रोपानलोद्दोषित (तू० तत्०) । काल विफलानि = कालविफलानि (स० तत्पु०) ।

कोश—दैव दिष्ट भागधेयम् । इत्यमर । सक्थिबलोवे पुमानुह । स्यात्निद्रा क्षयनं स्वाप स्वप्न सवेश इत्यपि । इत्यमर । कोपत्रोधामर्षरोपप्रतिघाहटक्रोधो स्त्रियो ॥ इत्यमर ।

भावार्थ—ममाङ्ग सुप्ते गुरो मम दोर्भाग्यात् वज्रमुख-नामक कश्चन कीट-विशेष मदुरुयुगले दृष्टवान्, अहं च गुरानिद्राभङ्गा मा भूदिति निश्चय्य सेवा-श्रुतिर्नस्यादिति भयेन च ता वेदनामहम महित, क्षतजेन शोणितेनार्द्रं गुरु सहसोत्थाय एतादृश साहसे क्षत्रियातिरिक्तेषु वर्णेषु नैव भवितुमर्हति क्षत्रिय एवैष इति मा बुद्ध्वा ममोपदिष्टानि तवायुधानि प्रयोजन-समये विफलानि सन्तिवति मा शप्तवान् ॥ १० ॥

हिन्दी—मेरी गोद में जब मैं गवान् परशुराम (गुरुजी) को गये तब मेरे दुर्भाग्य वश वज्रमुखनामक एक कीड़े ने मेरे दोनो जाधों में काट लिया, 'गुरुजी की निद्रा भङ्ग न हो जाए' इस भय से मैंने उस वेदना को उस समय सह लिया, परन्तु खून के स्पर्श से गुरुजी अचानक जाग पड़े और यह क्षत्रिय हाँ है (क्योंकि ऐसा साहस अन्य जाति के लोगों में नहीं हो सकता) ऐसा मुझ

जानकर ' तमय आने पर मेरे सिंगलाये तुम्हारे अत्र विकल हो जाएँ" ऐसा दाप दे टाला ।

श्लोकः—अहो वष्टमभिहित तत्र भवता ।

वर्ण — परीक्षामहे तावदस्त्रस्य वृत्तान्तम् । (तथा वृत्त्वा) एतान्यस्त्राणि निर्वाणायै लक्ष्यन्ते । अपि च

इमे हि दीन्येन निमोलितेक्षणा
मुहुः स्वल्पन्तो विवशास्तुरङ्गमाः ।

गजाश्च सप्तच्छदानगन्धिनो
नियेदयन्तीय रणे निवर्तनम् ॥ ११ ॥

सहस्रसुभ्रुवस्य विवशाः

अन्वय — इमेति । हि, दीन्येन, निमोलितेक्षणा, इमे, मुहुः, स्वल्पन्तः, विवशाः; तुरङ्गमाः; सप्तच्छदानगन्धिनः, गजाश्च रणे, निवर्तनम्, इव; निवेदयन्ति ।

व्यख्या — हि = यत, दीन्येन = दीनताया, निमोलितानि = मुदितानि ईक्षणानि = अक्षीणि येषां ते इमे • पुरोवर्तिन, मुहुः = पारम्भारम्, स्वल्पन् = भ्रमन् विवशा = स्वातन्त्र्यहीना; तुरङ्गमा = घोटका, सप्तच्छदान्य = सप्तपर्णस्य 'एतन्नामवपुष्यविशेषस्यैश्वर्य; दानस्य दानवारै इव गन्ध = सुगन्धो येषां ते गजाश्च - हस्तिनस्य, रणे = युद्धे; निवर्तनम् = परावर्तनम्; इव = यथा निवेदयन्ति = प्रार्थयन्ति इति । अत्र यथास्य वृत्ति । सरुलक्षणस्य पूर्वोक्तमेव ॥

समाप्तः—निमोलितानि ईक्षणानि येषां ते = निमोलितेक्षणा सप्त संख्याकारदण्डा. यस्य स सप्तच्छदः (षट्) तस्य गन्ध इव दानगन्धो येषां ते सप्तच्छदानगन्धिनः ।

फोडा — युद्धमायोधन जन्यं प्रघनं प्रविदारणम् इत्यमर ।

भावार्थ — इमे मदीया अवका जातयेण सम्पुटिताक्षणा, सप्तः भूयोभूय. स्वल्पन्ति, सप्तपर्णस्य गन्धश्च येषां दानवारैः गन्धोऽस्ति ते गजाश्च युद्धे परावर्तन मभ्ये निवेदयन्ति ॥

हिन्दी—शल्य—ओहो ! मुनि ने बहुत ही दुःख की बात कह डाली ।

कर्ण—अच्छा, तब तक मैं अपनी अस्त्र-कथा को परीक्षा करता हूँ ।
(बैसा बरब) ये अस्त्र भी निःसत्त्व से लग रहे हैं ।

और भी । ये दोन बने, परवश घोड़े आँख बन्द किये हुए बार-बार ठोकर खाकर स्खलित हो रहे हैं, और सप्तपर्ण नामक पुष्प के गन्ध के समान जिनके मद का गन्ध है वे हाथी भी युद्ध में पीछे लौट जान का मानो निवदन सा कर रहे हैं ।

शङ्ख, दुन्दुभियाँ भी नहीं बज रही हैं ।

शल्य—भो कष्टं किं नु खल्विदम् ।

कर्ण—शल्यराज ! अलमल विपादेन ।

हतोऽपि लभते स्वर्गं जित्वा तु लभते यशः ।

उभे बहुमते लोके नास्ति निष्फलता रणे ॥ १२ ॥

अन्वय—हत, अपि, स्वर्गम्, लभते, जित्वा, तु, यशः लभत, लोके, बहुमते, रणे, निष्फला, नास्ति ॥

व्याख्या—शोक—सतप्त शल्यमवलोक्य कर्णस्त संतोषयति हतोऽपीत्यादिना ।
हतः = मृत अपि = “युद्धे” स्वर्गम् = देवलोकम्, लभते याति; जित्वा = विजयं प्राप्य, यशः = कीर्ति लभते = प्राप्नोति, लोके = ससारे, उभे = स्वर्गकीर्ति, बहुमते = श्लाघ्य अतः, रणे = युद्धे, निष्फलता = फलराहित्य “कदापि” नास्ति = न भवति अत्र अनुष्टुप् छन्द ॥ १२ ॥

कोश—स्वरव्यय स्वगताः त्रिदिवत्रिदशालया । इत्यमरः । यशः कीर्ति समज्ञा च । इत्यमरः ॥

भावार्थ—शल्य सन्तोषयति कर्णं यत्, हृष्ट यश्चाना यद्यपि स्थितिरनुकूला नास्ति तथापि न भेतव्यं यतो हि युद्धे मारितं स्याम तर्हि स्वर्गं प्राप्स्यामि, यदि च विजेष्यामि तर्हि यशः प्राप्स्यामि ससारे द्वावपि श्लाघ्यावेन, अतः युद्धे निष्फल नैव भवति ॥

हिन्दी—शल्य—ओह ! बहुत ही दुःख की बात है । ये सब क्या हो रहे हैं ?

कृपाः—एतत् ! अतिक्रम विपाद करना अर्थ है ।

मुदग्मल में दोहा के मारे जाने पर वह स्वर्ग पाता है और यदि विवश होता है तो वह मग प्राप्त करता है और संसार में स्वर्ग और मग ये दोनों अनिमित्त ही हैं । अत एव युद्ध में निष्कलता नहीं रहती ।

अथ च—

इमे हि मुद्वेष्वनिवर्तिताशा

ह्या सुपणैः समानवेगाः ।

श्रीमत्सु काम्बोजकुलेषु जाता

रक्षन्तु मां यद्यपि रक्षितव्यम् ॥ १३ ॥

अस्योऽस्तु गोविशानाम् ; अस्योऽस्तु पतिव्रतानाम् । अस्योऽस्तु रणेभ्य-
पराङ्मुखाता येषुदुःखाणाम् । अस्योऽस्तु मम प्रातःकालस्य । एत नोः
प्रमत्तोऽस्मि ।

अन्वयः—हि; मुद्वेष्वनिवर्तिताशा सुपणैः समानवेगा, श्रीमत्सु काम्बोज-
कुलेषु जाता, इमे, ह्याः, यद्यपि, रक्षितव्यम्; "तथापि" मा, रक्षन्तु ॥ १३ ॥

व्याख्या—हि = निश्चयम्; मुद्वेषु = रणेषु, अनिवर्तिताशा = प्रभुरिता-
मिलापाः; सुपणैः = वीरनेपेन सहजेनेत्यर्थः, समानवेगाः = सदृशगतयः; श्रीमत्सु =
श्रीभाष्येणोऽस्तु काम्बोजकुलेषु = काम्बोजानिवेषवरीषु, जाता = प्रातःकालतः ;
इमे = मदीयः; पुरोवर्तमानाः, ह्या = अथा; यद्यपि रक्षितव्यम् = मुद्वेषु मया
रक्षणीयम्; "तथापि मां परतमनतुकूलममयात् मा = वर्णम् (रक्षकम्)
रक्षन्तु = पालन्तु ॥ अत्रोपेन्द्रेन्द्रवृद्धयोः संगमनादुपजातिरुच्यते ॥

गोत्रं ह्यननाम् = गोविशानाम्, अस्योऽस्तु = कत्यामस्तु, पतिव्रतानाम् =
पातिव्रतवर्माचारिणीनाम्, स्त्रीणां अस्योऽस्तु = कत्याम् भवन्तु । रणेभ्यः = मुद्वेषु;
अपराङ्मुखाणाम् = अनिवर्तितवदनानाम्; येषु—दुःखाणाम् = संनिधानाम्,
अस्योऽस्तु = कत्यामस्तु; प्रातःकालस्य = प्रातःकालस्य, मम = वर्णस्य
अस्योऽस्तु = कत्यामस्तु ।

समाप्तः—निवर्तिता प्राणा येषान्ते निवर्तिताशा; न निवर्तिताशाः अनि-
वर्तिताशाः, (नद् समाप्त) ॥

भावार्थः—यद्यपि इमे सकलितमनोरथा गरुडममानवैगवन्त. काम्बोजाः घोटका युद्धे मग रक्षितव्या सन्ति तथापि अपशकुन-दर्शनादसमर्थं मामेव ते रक्षन्तु ॥ १३ ॥

हिन्दी—जिन्होने युद्ध में कभी भी आशामन्न नहीं किया, जो गरुड के समान श्रेय वाले हैं, सोभासम्पन्न काम्बोजकुलोत्पन्न वे घोड़े यद्यपि मेरे रक्षणीय हैं (मुझे उनकी रक्षा करनी चाहिए) फिर भी इस समय वे मेरी रक्षा करें ॥ १३ ॥

गौश्री और ब्रह्मणो का कल्याण, पातिव्रत्यधर्मावलम्बन करने वाली स्त्रियों का कल्याण हो, युद्धस्थल में जो कभी भी विमुख नहीं हुए हो उन योधागण का कल्याण हो; अवसर पाये हुए मेरा भी कल्याण ही । अच्छा, तो अब मैं प्रसन्न हो गया हूँ ॥

समर—मुखमसह्यं पाण्डवानां प्रविश्य

प्रथितगुणगणाद्यं धर्मराजं च बद्ध्वा ।

ममशरवरवेगै—र्जुनं पातयित्वा

वनमिवहर्तासिंहं सुप्रवेशं करोमि ॥ १४ ॥

अन्वय — पाण्डवानाम्, असह्यम्; समरमुखम्, प्रविश्य, प्रथितगुणगणाद्यं धर्मराजं च बद्ध्वा । मम; शरवरवेगै, अर्जुनम्; पातयित्वा, हतसिंहम्, वनम्; इव; सुप्रवेशं करोमि ॥ १४ ॥

व्याख्या—पाण्डवानाम् = पाण्डुसुतानाम्, असह्यम् = दुर्घमम्; समर-मुखम् = युद्धस्थलम्; प्रविश्य = अन्तर्गत्वा, प्रथितगुणगणेन = प्रसिद्ध-गुण-समू-हेन आद्य = दलाध्यस्तम्, धर्मराजम् = युधिष्ठिरम्, च = तथा बद्ध्वा = निगडैर्निगृह्य । मम = कर्णस्य, शरवरवेगै = श्रेष्ठबाणप्रहारै, अर्जुनम् = धनञ्ज-यम् “अस्मद् प्रसिद्धप्रतिभटम्”; पातयित्वा = निहत्य, हतसिंहम् = मृतवन-पतिम्, वनम् = अरण्यम्, इव = यथा, सुप्रवेशम् = सरलतया प्रवेशाहम्, करोमि = विदधामि ॥ मालिनीनामक छन्दोऽत्र ॥ १४ ॥

समास—समरस्यमुखं = समरमुखम् । गुणानां गण = गुणगण. (प० तत्०) प्रथितश्चासौ गुण-गण = प्रथितगुण (कर्म०) तेन आद्यस्तम् =

प्रसिद्धगुणगणाढ्यम् = (तू० तत्०) शरेषु वरः = शरधरा (सप्त० तत्०)
 तेषां वेगैः = शरधरावेगैः (ष० तत्०) । हतः सिंहो यत्र तम् = ह-सिंहम्
 (बह०) ।

कोशः—प्रतीते प्रयितरूपात्-विकृत-विज्ञात विश्रुताः । इत्यमरः । समूह
 निवहन्-यूह-मेदोह विसरप्रजाः—समुदायः समुदयः समनायश्चयो गणः रण्यमरः ।
 निहो भृगेभ्य षञ्जास्यो ह्यर्ष केशरी हरिः ॥ इत्यमरः । अटव्यप्य वि-पत्नं
 गहन काननं वनमित्यमरः ॥

भावार्थः—पाण्डवानां दुर्घर्षं सेनाभ्यूहे प्राविश्य धर्मराजं बद्ध्वा प्रमुखयो-
 दारमर्जुनं मारयित्वा, एतेषां व्यूहं सरलतया प्रवेशयोग्यं यथा स्थानया
 करोमि ॥ १४ ॥

हिन्दी—पाण्डवों के दुर्घर्ष सेनाओं के बीच प्रवेश करके; प्रसिद्धगुण
 समूह से बलाढ्य धर्मराज को बांधकर; अपने तीक्ष्ण शार्णों के वेग से अर्जुन
 को गिराकर जिस वन का सिंह मार दिया गया हो और वह वन जैसा
 सरल तरीके से प्रवेश करने योग्य होता है उसी प्रकार पाण्डव व्यूहको
 भी बना देता हूँ ॥ १४ ॥

शल्यराज ! यावद्रथमारोहाव ।

शल्यः—वाढम् ।

(उभो रथारोहणं नाटयत.)

कर्णः—शल्यराज ! यथासावर्जुनस्तत्रैव चोद्यता रथ ।

हिन्दी—शल्यराज ! अच्छा तो अब हम लोग रथपर चढ़ें ।

शल्य—अच्छा

(दोनों रथ पर चढ़ने का अभिनय करते हैं)

कर्णः—शल्यराज ! जहाँ वह प्रतिद्ध अर्जुन है वही मेरे रथ को ले
 लिए ।

(नेदश्ये)

भोः कृष्ण महत्तरं भिषक्तं याचेमि [भो कर्ण ! महत्तरां मिता याचे]

कर्णः [आकर्ष्यं] अये वीरवान् दाम्भः ।

शक्र—हे मेघ गण ! तुम लोग भी सूर्य के साथ ही चले जाओ । (कर्ण के समीप जाकर) हे कर्ण ! मैं बहुत बड़ी भिक्षा मांग रहा हूँ ।

कर्णः—दृढ प्रीतोऽस्मि भगवन् ।

यातः कृतार्थगणनामहमद्य लोके

राजेन्द्र मौलिमणिरञ्जितपादपदमः ।

विप्रेन्द्रपादरजसा तु पवित्रमौलिः

कर्णा भवन्तमहमेव नमस्करोमि ॥ १६ ॥

अन्वयः—एव; अहम्; राजेन्द्रमौलिमणिरञ्जितपादपदम, अद्य, लोके, कृतार्थ—गणनाम्, यातः, तु विप्रेन्द्रपादरजसा, पवित्रमौलिः, कर्ण. भवन्तम् नमस्करोमि ॥ १६ ॥

व्याख्याः—एव = एणे उपस्थित, अहम् = राधेय; राजेन्द्रमौलिमणिरञ्जितपादपदम—राजेन्द्राणाम् = नृपश्रेष्ठानाम्; मौलिषु मस्तकेषु. “रञ्जिता.” मणय = हीरकादय, तं रञ्जितम् = रक्तोद्भूतम् पादपदम = चरणकमलम् यस्य स, अद्य = अस्मिन् दिवसे; लोके = सप्तारे; कृतार्थ—गणनाम्—सम्पादित प्रयोजनमङ्ख्याम्, यात = प्राप्त; तु = किन्तु, विप्रेन्द्रस्य = ब्राह्मणश्रेष्ठस्य भवतः पादरजसा = चरणधूलिना, पवित्रमौलि = पूतमस्तकः; कर्ण = एतन्नामक., भवन्तम् = याचकरवैनापस्थित विप्रम्; नमस्करोमि = प्रणमामि ॥ वसन्ततिलका नामकम् = छन्दः ।

समासः—कृता अर्था यैस्ते कृतार्था (बहु०) तेषां गणनाम् - कृतार्थ-गणनाम् (प० त०), राज्ञामिन्द्र राजेन्द्र (प० तत्०) तेषां मौलि = राजेन्द्र-मौलि (प० तत्०) तेषु ये मणय = राजेन्द्रमौलिमणय (बहु०) ते रञ्जितं पादपदम यस्य स राजेन्द्रमौलिमणिरञ्जितपादपदम (बहु० व्री०) ; विप्रेषु इन्द्र विप्रेन्द्र (स० तत्०); तस्य पाद. विप्रेन्द्रपाद (प० तत्) तस्य रज विप्रेन्द्रपादरज. तेन विप्रेन्द्रपादरजसा (प० तत्०)

कोश—लोहस्तु भुवने जने; इत्यमर । चूडा किरोटं केशश्च सयता मौल्यस्त्रय; इत्यमर । रैणुद्वयो स्त्रियाधूलि पाशुर्ना न द्वयो रज; इत्यमर. । पवित्र प्रयत्न पून; इत्यमर. ॥

भावाय — "सर्वेषामन्यागती गुरु" इति वाक्यानुसारेण आतिथेय कर्ण-
विभ्रं नमस्कृत्यैव कृतकृत्यमात्मानं मन्वते इति व्यक्तं "यस्य मम कर्णं च पादपद्म
नृपश्रेष्ठानां मस्तकस्थितै मणिभि रज्यते सोऽहं नवत्पादधूलिनृप—मस्तकं भवन्त
प्रणमामि ॥ १६ ॥

हिन्दी—मैं अत्यन्त खुश हूँ भगवान् । जिसके चरणों को श्रेष्ठ राजागण
अपने मस्तकमणि से सुशोभित करते रहते हैं, वह कर्ण आपकी चरणधूलि से
पवित्र मस्तक वाला अपने को कृत-कृत्य मानता हुआ आपको प्रणाम करता है ।

शत्रुः—(आत्मगतम्) किं नु खलु मया वक्तव्यं यदि दोषायुर्भवेति वक्ष्ये
दोषायुर्भवेत्यति । यदि न वक्ष्ये मूढ इति मा पराभवति । तस्मादुभय परिहृत्य
किं नु खलु वक्ष्यामि । भवतु दृष्टम् । (प्रकाशम्) (भो कर्ण ! मृत्ये विभ्रं
चन्द्रे विभ्रं हिमवन्ते विभ्रं, सागर विभ्रं, चिट्टुवे दे जसो) । भो कर्ण ! सूर्य
इव, चन्द्र इव, हिमवानिव, सागर इव तिष्ठतु ते यश ।

हिन्दी—(अपने मन में ही) इस समय मुझे क्या कहना चाहिए, यदि
'दोषायु' हो यह ऊँचा है तो दोषायु हो जायगा । यदि कोई आगोर्वाह
न हो तो मुझे मूल्य नमसेगा । इसलिए इन दोनों को छोड़कर क्या कहूँ ?
अच्छा ! सोच लिया (स्पष्ट रूप में) हे कर्ण सूर्य के समान, चन्द्रमा के समान,
हिमालय के समान और समुद्र के समान आपका यश स्थिर रह ।

कर्ण — भगवन् किं न वक्तव्यं दोषायुर्भवेति । अपवा एतदेव शोभनम् !
कुत -

धर्मो हि यत्नैः पुरुषेण साध्यो भुजङ्गजिह्वाचपलानृपश्रियः ।
तस्मात्प्रजापालनमात्रबुद्ध्या हतेषु देहेषु गुणा धरन्ते ॥ १७ ॥

अन्वय — धर्मोति । धर्म, पुरुषेण, यत्नै, साध्य । हि नृपश्रिय, भुजङ्गजिह्वाचपला, तस्मात्, प्रजापालनमात्रबुद्ध्या; हतेषु, देहेषु, गुणा, धरन्ते ।

व्याख्याः—धर्म = शास्त्रविहितं धर्म, पुरुषेण = मानवेन, यत्नै =
प्रयासै, साध्य = विघातव्य । हि = यतः, नृपश्रिय = राजश्रिया, भुजङ्गानां = भुजंगानाम्, जिह्वा इव = रसना इव चपला = अचंचला 'अस्थिरा'

इति यावत्, तस्मात् = राजलक्ष्म्या अस्थिरत्वात्, प्रजानाम् = जनानाम्, पालनम् = रक्षणम्; मात्रम् = स्वबुद्ध्या = विचारेण 'राज्यं करणीयं न तु विलास विचारेण' इति शेषः; "यतो हि" हृतेषु = मृतेषु, देहेषु = शरीरेषु गुणा = यथासि 'एव' धरन्ते = प्राणयन्ति । अत्रोपजाति वृत्ति ॥ १७ ॥

समास - भुजङ्गानां जिह्वा = भुजङ्गजिह्वा (प० तत्०) नृपानां धिय - नृपधिय (प० तत्०) भुजङ्गजिह्वावच्चपला नृपधिय = भुजङ्गजिह्वा-चपलानृपधिय (मध्यमपदलोपी) प्रजानां पालन = प्रजापालन (प० तत्०) तस्मात्प्रावद्ध्या प्रजापालनमात्रबुद्ध्या ।

कोश - स्याद्धर्मस्त्रिया पुण्य श्रेयसो सुकृत वृष । इत्यमर । सर्प-पृदाकुर्भुजगो भुजङ्गोऽहिर्भुजङ्गम ॥ इत्यमर । रसज्ञा रसना जिह्वा । प्रजा म्यात सन्ततो जने । इत्यमर ।

भावार्थ - पुरुषेण धर्मं बहुप्रयासः कर्तव्यः, यतोहि राजश्रव्यादिक भुजङ्गरसनावच्चञ्चला भवति । अतः प्रजापालनमात्रविचारेण राज्यद्वर्तव्यं न भोग-विलासादि-दृष्ट्या यतो हि स्वर्गते मनुष्ये अस्मिन् ससारे तरकोतिरेव त जीवयति ॥ १७ ॥

हिन्दी—

कर्ण—भगवन् ! आपने 'दोषायु हो' ऐसा आशोवादि क्या नहीं दिया ? अथवा आपने जो कहा वही अच्छा ।

क्योकि—

मनुष्य को प्रयास पूर्वक धर्म का ही पालन करना चाहिए । राज-लक्ष्मी तो सर्प की जीभ की तरह चञ्चल है । अतः प्रजापालन करने की बुद्धि मात्र से (विचार से) राज्य करना चाहिए, क्योकि मनुष्य के मर जाने पर (इस समार मे) उसका यश (धर्म) ही उसे जीवित रखता है ।

भगवन् ! किमिच्छसि किमहं ददामि ।

शक्र—महत्तरा भिक्षा याचेमि । [महत्तरा भिक्षा याचे ।]

कर्ण—महत्तरा भिक्षा भवते प्रदास्ये । श्रूयन्ता मद्भिभवा ।

हिन्दी—भगवन् ! आप क्या चाहते हैं । आपको मैं क्या दूँ ?

शक—मैं बहुत बड़ी मिथा मांग रहा हूँ ।

कर्ण—मैं बहुत बड़ी मिथा दूँगा (मेरा बैमव सुनिए ।)

गुणवदमृत—कल्पक्षीरधाराभिर्वपि

द्विजवर ! रुचि तं ते तृप्तवत्सानुयात्रम् ।

तरुणमाधिक-मर्थिप्रार्थनीयं पवित्रं

विहितकनक-शृङ्गं गोसहस्रं ददामि ॥ १८ ॥

अन्वय — हे द्विजवर ! गुणवदमृतकल्पक्षीरधाराभिर्वपि, तृप्तवत्सानुयात्रम्; तरुणम्, अधिकम्, अविप्रार्थनीयम्, पवित्रम्, विहितकनक-शृङ्गम्-गोसहस्रं, रुचितं, ते तृप्त्यम्, ददामि ॥ १८ ॥

व्याख्या — हे द्विजवर ! = हे ब्राह्मण-प्रेष्ठ !, गुणवताम् = गुणयुताम्; अमृतकल्पानाम् = सुधापमयानाम्, क्षीराणाम् = दुग्धानाम्, धाराभिर्वपणम् = अधिकप्रसवणं शीलमस्येति तथाभूतम्; तृप्तै = सन्तुष्टै, वरसै = अर्भकै, अनुयात्रम् = अनुगच्छन्तम्, तरुणम् = युवानम्, अधिकम् = बहुलम्, अविमि = याचकै, प्रार्थनीयम् ~ याचनीयम्; पवित्रम् = पूज्यम्, विहित-कनकशृङ्गम् = रुचित-स्वर्ण-विषाणम्, गवा = घेनूनाम् सहस्रम् = दशशत-सहस्राकम्; रुचितम् = मनोहारि ते - तृप्त्यम्, ददामि = प्रयच्छामि ॥ १८ ॥

समास — गुणमस्याप्तोनि - गुणवान् तेषाम्, अमृतकल्पानाम्, क्षीराणाम् (या) धारा (तस्याः) अभिर्वपणं शीलमस्येति गुणवदमृतकल्पक्षीरधाराभिर्वपि; तृप्तवत्सानुयात्रम्, अविमि प्रार्थनीयम् अविप्रार्थनीयम् (तृ० तत्०) कनकस्य शृङ्गम् = कनकशृङ्गम् (प० तन०) विहितं च तन कनकशृङ्गम् विहितकनकशृङ्गम् (कर्म-ारम्) । गवा सहस्रम् = गोसहस्रम् (प० तत्०) ।

कोश — हृष्टे मतस्तृप्तं प्रह्वं प्रमुदितः प्रीतः । इत्यमरः । वयस्यनरुणो युवा । इत्यमरः । वनोपवो याचनको मार्गणो याचकार्थिनो । इत्यमरः । स्वर्णं कनकं हेम हाटकम् । इत्यमरः ।

भावार्थः—हे विप्रवर ! यदि भवते रोचते तर्हि गुणवता सुधातुल्यानां क्षीराणां या अभिर्वपणं कुर्वते, संतुष्टा वरसतरा यासामनुगच्छन्ति, तरुणम् ;

विशेषा याचकैश्च या प्रार्थनीया सन्ति, पवित्राणि सन्ति, यासां श्रृंग्याणि स्वर्ण
खचितानि सन्ति तथा भूता. दशशत-सख्याकाः गा तुभ्यं ददामि ॥ १८ ॥

हिन्दी—हे ब्राह्मण श्रेष्ठ यदि आप चाहें तो, अमृत तुल्यदुग्ध देने वाली,
सतुष्ट बछड़े जिनके पीछे चलते हो, तरुणियाँ हैं, अधिक हैं; जो याचको द्वारा
माँगन योग्य हैं, जिनकी सींगे सोने से मढ़ दी गयी है ऐसी पवित्र हजारो गायें
मैं आपको दूँ ॥ १८ ॥

शक्र —गो सहस्र ति । मुहुर्त्तञ्च खिर पिबामि । नेच्छामि कर्ण ।
नेच्छामि । (गोसहस्रमिति । मुहुर्त्तकं खोर पिबामि । नेच्छामि कर्णं । नेच्छामि ।)

कर्णं —किं नेच्छति भवान् । इदमपि श्रूयताम् ।

रवितुरग-समानं साधनं राजलक्ष्म्याः

सकलनृपतिमान्यं मान्यकाम्बोजजातम् ।

सुगुणमनिलवेगं युद्धदृष्टापदानं

सपदि बहुसहस्रं वाजिना तेददामि ॥ १९ ॥

अन्वयः—रवितुरगेति । रवितुरगसामानम्, राजलक्ष्म्या ; साधनम्, सकल-
नृपतिमान्यम्, मान्यकाम्बोज-जातम्, सुगुणम्; अनिलवेगम्; युद्धदृष्टापदानम्,
बहुसहस्रम्, ते सपदि, ददामि ॥ १९ ॥

व्याख्याः—खे = दिनकरस्य, तुरगा = घोटका, तत्समानम् = तत्सुख्यम्,
राजलक्ष्म्या = नृपश्रेष्ठ, साधनम् = हेतुभूतम्, सल्लानाम् = सम्पूर्णानाम्;
नृपतीनाम् नृपाणाम्, मान्यम् आदरणीयम्, मान्यानाम् = आदरणीयानाम्,
काम्बोजानाम् = कम्बोजदेशोद्भूतानाम्; “कुले” जातम् = उत्पन्नम्, सुगुणम्
= सुन्दरगुणयुक्तम्, अनिलवेगम् = वायुजवम्, युद्धे = रणे दृष्टम् = प्रदर्शितम्;
अपदानम् = अवदानम्, “वीरतापूर्णकार्यमित्यर्थ” येन तथाभूतम्, वाजिनाम्
= अश्वानाम्, बहुसहस्रम् = अपारमित दशशतसख्याकम्, ते = तुभ्यम्,
सपदि = मद्य ददानि = प्रयच्छामि ।

समासः—रवे तुरग = रवि तुरग (प० तत्०) तत् समानम्, रवितुरग-
समानम् । सकलानां नृपतीनां मान्यम्, सकलनृपतिमान्यम्, (बहु०) । मान्या-

दत्ते काम्बोजाः मान्यकाम्बोजाः (कर्मधारय०) तेषु जातः=मान्यकाम्बोजजात (स० तत्०) । मुद्देदृष्टानि अपदानि येन तत् मुद्देदृष्टापदानम् (बहु०) ।

कोशः—सूरसूर्यार्पिमादित्य द्वादशार्य दिवाकरा इरशमरः स्वसनः स्वर्गतो वायुर्मात्रिदवा सदागतिः । पुषदस्वो गन्धर्वहो गन्धवाहानिलासुगाः । इत्यमरः ।

भावार्थः—यदि तुम्यं मोसहस्रं न रोचते तर्हि चेदिच्छसि, दिनकरास्व-
ममानवेगतुन्यान्, नृपथियः हेतुमूतान्, निमिन्नूपति-प्रशम्यान्, सम्मान्यकम्बोज-
देशं तत्र कुञ्चोपतान्; मद्गुणान्वितान्, वायुसदृशवेगवतः; मुद्दे प्रदर्शितपराक्रमान्
असंख्यसहस्रान् घोटकान् तुम्यं ददामि ॥ १९ ॥

हिन्दी—

शक्रः—क्या ? हजार गोएं । घोडे समय तक दूध पोऊंगा ! मुझे यह नहीं चाहिए, कर्ण । मुझे नहीं चाहिए ।

कर्णः—क्या आप गाय नहीं चाहते ? तो यह भी सुनिए । सूर्य के घोड़ों की तरह, राजलक्ष्मी के उपायभूत, सम्पूर्ण राजाओं से प्रससनीय कम्बोज देश से होनेवाली कावुची जाति में उत्पन्न, हवा की तरह वेग वाले; जिन्होंने अपना पराक्रम मुद्देभूमि में दिखा दिया है, ऐसे हजारों घोड़ों में आपको तुरत दे रहा हूँ ॥ १७ ॥

शक्रः—अस्सति । मूहूतं अं आलुहामि । नेच्छामि कर्ण । नेच्छामि । [अद्व इति । मूहूतं क्रमारोहामि । नेच्छामि कर्ण । नेच्छामि ।]

कर्णः—किं नेच्छति मद्गवन् । अन्यदेशि श्रूयताम् ।

मदसरित्कपोलं पट्पदैः सेव्यमानं

गिरिवर-निचयाभं मेघ-गम्भीरघोषम् ।

सितनरवदशनानां वारणानामनेकं

रिपुसमर-विमर्दं वृन्दमेतद्ददामि ॥ २० ॥

अन्वय —मदसरित्-कपोलम्, पट्पदैः सेव्यमानम्; गिरिवर-निचयामम्; मेघगम्भीरघोषम्; रिपुसमर-विमर्दम्; एतत् वारणानामनेकम्; वृन्दम्; ददामि ॥ २० ॥

व्याख्याः—मदैः = दानवारिभिः, सरिता = आप्लाविता; कपोला = गण्डस्थलानि येषां तत्, पट्पदं = भ्रमरैः, सेव्यानम् = युक्तम्; गिरिवराणाम् = पर्वतश्रृङ्गानाम् निचयः = समूहः; तस्य आभा इव आभा = कान्तियस्य तदा भूतम्; मेघानां = जलदानाम्, यः गम्भीरः = ओज-सम्पन्नः, घोषः = शब्दः तेन युक्तम्, सिताः = श्वेता, नरवा = करजा, दशनानि = दन्ताः येषां तथाभूतानाम्. रिपुसमर-विमर्दम् = शत्रुरणध्वंसकम्, वारणानाम् = हस्तीनाम्, अनेकम् = अधिकम्; वृन्दम् = समूहम् ददामि = प्रयच्छामि । मालनी नामकमत्र छन्दः ॥२०॥

समासः—मदं सरितौ कपोलौ यस्य तत् मदसरित् कपोलम् (बहु०) गिरिपु वरा = गिरिवराः (स० तत०) तथा निचय = गिरिवरनिचय (प० तन०) तस्य आभा इव आभा यस्य तत् गिरिवरनिचयानम् । गम्भीरश्चासौ घोषः गम्भीरघोष (कर्मधारय) मेघस्य गम्भीर-घोष = मेघ-गम्भीरघोषः (प० तत्०) तद्वत् गम्भीरघोषो यस्य तत् मेघगम्भीर नम् इव दशनानि चेति = (द्वन्द्व) नखदशनम्, सितानि नखदशनानि येषां तथाभूतानामिति = सितनखदशनानाम् (बहुव्रीहिः) ।

कोशः—मदो दानम् । अथ नदो सरित् । इत्यमरः । मधुव्रता मधुकोरो मधुलिन्मधुपालिनः । द्विरेफ पुष्पलिङ्भृङ्गपट्पदभ्रमरालयः । इत्यमरः । अत्रि गात्र गिरि ग्रावाल शैल शिलोच्चयाः ॥ इत्यमरः ।

भाषायाः—यदि भवते अश्व न रोचते तर्हि मद वारिभिः सिक्कपोलान्, भ्रमरैरुपेतान् मेघानां गम्भीरघोषेव गम्भीरशब्दशालिनः; श्वेत नखदशन-शालिनः, अनेक, शत्रुसमर विनाशकन् हस्तीन् तुभ्य ददामि ॥ २० ॥

हिन्दी—

शक्र—क्या घोड़े ? मूर्तमर चढ़ेगा । नहीं मुझे नहीं चाहिए । नहीं चाहिए ।

कर्ण—क्या नहीं चाहते भगवन् । अच्छा और भी सुनें । मदजल से जिनके गण्डस्थल भोग गये हैं, जो भ्रमरो से सुसोभित हो रहे हैं, जो ऊँचे पर्वत के समूह के समान द्योमा वाले हैं, मेघ की तरह आजस्वी शब्द वाले हैं शत्रुओं के रण को नष्ट करने वाले हैं, उजले नख और दाँत वाले हैं उन हाथियों के समूह को आपको देता हूँ ॥ २० ॥

शक्रः—गमति । मुहूर्त्तं आलुहामि । नेच्छामि कण्ण ! नेच्छामि [गज
दति । मुहूर्त्तं कमारोहामि । नेच्छामि । कर्ण ! नेच्छामि ।

कर्णः—किं नेच्छति भवान् । अन्यदपि श्रूयताम् । अपर्याप्तं कनकं ददामि ।

शक्रः—गच्छिन्नं गच्छामि । (किञ्चिद्गत्वा) नेच्छामि कण्ण । नेच्छामि ।
(गृह्यत्वा गच्छामि । (किञ्चिद् गत्वा) नेच्छामि कर्ण ! नेच्छामि ।)

कर्णः—तेन हि जित्वा पृथिवी ददामि ।

शक्रः—पृथ्वीए किं करिस्सम् । [पृथिव्याः किं करिष्यामि]

कर्णः—तेन ह्यग्निष्टोमफलं ददामि ।

शक्रः—अग्निष्टोम फलेण किं कस्यम् [अग्निष्टोम-फलेन किं कार्याम् ।

कर्णः—तेन हि मच्छिरो ददामि ।

शक्रः—अविहा अविहा [अविहा अविहा]

हिन्दीः—क्या हापो ? कुछ समय तक चढ़ूंगा । मैं नहीं चाहता कर्ण !
नहीं चाहता ।

कर्णः—क्या आप इसे भी नहीं चाहते ! और भी सुनिए । अपरिमित
सोना दे दूँ ।

शक्रः—लेकर खला जाऊँगा (थोड़ी दूर जाकर) मुझे नहीं चाहिये कर्ण !
नहीं चाहिये ।

कर्णः—तब जोतकर पृथिवी दे दूँ आपको ।

शक्रः—पृथिवी लेकर क्या करूँगा ?

कर्णः—तब "अग्निष्टोम" नामक यज्ञ का फल आपको दूँगा ।

शक्रः—अग्निष्टोम का फल लेकर क्या करूँगा ।

कर्णः—सो अपना मस्तक आपको दूँगा ।

शक्रः—भगवान् रक्षा करे ! रक्षा करे ।

कर्णः—न भेतव्यं न भेतव्यम् । प्रसीदतु भवान् । अन्यदपि श्रूयताम् ।

३ कर्णभा०

अङ्गैः सहैव जनितं मम देहरक्षा

देवासुरैरपि न भेद्यमिदं सहस्रैः ।

देयं तथापि कवचं सह कुण्डलाम्बां

प्रीत्या मया भगवते रुचितं यदि स्यात् ॥ २१ ॥

अन्वयः—अङ्गैः सहैव; जनितम्; सहस्रैः, अपि, देवासुरैः न भेद्यम्; इदं मम देहरक्षा, कुण्डलाम्बां सह कवचम्, तथापि, यदि, रुचितं स्यात्; भगवते, मया, प्रीत्या देयम् ॥ २१ ॥

व्याख्याः—अङ्गैः = अवयवैः, सहैव = साकमेव, जनितम्; = उत्पन्नम्; सहस्रैः = असंख्यैः; “अपि” न भेद्यम् = अच्छिद्यम्; इदम् = देहसंसक्तम्, मम = मामकीनम्; देहरक्षा (भूतम्) = शरीर-संरक्षकी-भूतम्; कुण्डलाम्बाम् = कर्णमण्डलाम्बाम् सह = साधम् कवचम् = वर्म; तथापि = अथापि (भवदिभर्तव्याभ्यमस्मद्देहरक्षाभूतत्वात् तथापीति भावः) यदि = चेत् रुचितम् = इच्छितम् स्यात् = भवेत् (तर्हि) भगवते = भवते; मया = कर्णेन, प्रीत्या = प्रसन्नतया, देयम् = दातुं योग्यमस्ति । अत्र वसन्तविलका वृत्तिः ॥ २११ ॥

समासः—देहस्य रक्षा = देहरक्षा (प० तत्०) देवाश्च असुराश्चेति = देवासुरा (द्वन्द्व) तैः देवासुरैः ॥

कोशः—अङ्ग प्रतीको ऽवयवो ऽपघन. इत्यमर । साधं तु साक मत्रा सम्भं सह । इत्यमर. । अथ तनुत्रं वर्म रक्षणम् । उच्छद. कङ्कटको जगरः कवचो ऽस्त्रियाम् इत्यमर. ।

भावार्थः—यदि भवद्भ्यो मया प्रदत्तमेतानि वस्तूनि न रोचन्ते तर्हि, मम शरीरेण साकमेवोत्पन्नं देवराक्षसैरपि न खण्डनीय कुण्डलाम्बा सहितं कवचं यदि भवद्भ्यो रोचते, तर्हि तमपि (यद्यपि तेन मम देहरक्षा भवति)- अस्मद् देह-रक्षाभूतं सप्रसन्नोऽहं तुभ्यं दद्यामि ॥ २१ ॥

हिन्दी—इसे न । इसे न । आप प्रसन्न हो । और भी सुनें ।

मेरे अङ्गों के साथ ही उत्पन्न, हजारों देवदानवों से भी न भेदन करने

योग्य, मेरे शरीर के रक्षक भूत यह पुण्डलों के साथ बचप है, फिर भी यदि आप इसे चाहें तो मैं खुशी से आपको दे दूँ ॥ २१ ॥

शक्रः—(सहर्षम्) देदु, देदु (ददातु, ददातु)

कर्णः—(आत्मगतम्) एष एवास्य कामः । किं नु सस्वनेकवपट-बुद्धेः
 कृष्णस्योपायः । सोऽपि भवतु । धिगयुक्तम् नुशोचितुम् । नास्ति सशयः ।
 (प्रकाशम्) गृह्यताम् ।

शल्यः—अङ्गराज ! न दातव्यं न दातव्यम् ।

हिन्दी—शक्र—(हर्ष के साथ) दोजिए । दोजिए ।

कर्णः—(मन में ही) यही इसको इच्छा थी । अवश्य ही अनेक वपट व्यवहार में जिसकी बुद्धि हमेशा लगी रहती है उस कृष्ण का ही उपाय है । अच्छा वह भी ही । अनुचित सोचना बेकार है (धिक्कार) । कोई शक नहीं । (स्वयं रूप में) लोजिए ।

शल्यः—अङ्गराज ! नहीं देना चाहिए । नहीं देना चाहिए ।

कर्णः—शल्यराज ! अलमल वारयितुम् । पश्य

शिक्षा क्षयं गच्छति कालपर्ययात्

सुबद्धमूला निपतन्ति पादपाः ।

जलं जलस्थानगतं च शुष्यति

हुत च दत्तं च तथैव तिष्ठति ॥ २२ ॥

तस्माद् गृह्यताम् (निकृत्य ददाति)

अन्वयः—कालपर्ययात्, शिक्षा, गच्छति, सुबद्धमूला, पादपा.निपतन्ति ।
 जलस्थानगतं च जलं शुष्यति, हुतं च, दत्तं च तथैव, तिष्ठति ॥ २२ ॥

व्याख्या —कालपर्ययात् = समयपरिवर्तनात्, शिक्षा = विद्या क्षयं =
 विस्मृति गच्छति = याति, सुबद्धमूला = सुदुर्बुद्ध्या; पादपा. = बुद्ध्या,
 निपतन्ति = पराधायिताः भवन्ति, जलस्थान-गतम् = सहागप्राप्तम्, च = तथा;
 जलम् = उदकम्, शुष्यति = शुष्कतां प्राप्नोति, (परन्तु) हुतञ्च = वैदिकमन्त्रेण

यज्ञेषु हवन-कुण्डेषु प्रक्षिप्तम्; दत्तञ्च = सुपात्रेभ्यो प्रतिपादितम्; तथैव = यथा स्थितमेव तिष्ठति = सुरक्षितं भवति ॥ २२ ॥

समासः—कालस्य पर्यय—कालपर्ययः (प० तत्०) तस्मात् । सुष्ठु वद्धानि मूलानि येषान्ते सुबद्धमूला (बहुव्रीहि०) । जलस्य स्थानम् = जलस्थानम् (.प० तत्०) तस्मिन् गतम् = जलस्थानगतम् (सप्त० तत०)

कोश—कालो दिष्टोऽप्यनेहापि समय इत्यमरः । वृक्षोमहोरुहः शारवी विटपी पादपस्तस्यः इत्यमरः । आप स्त्री भूमिवावार्ति सलिलं कमल जलम् । इत्यमरः ।

भावार्थः—सासारिकानि सर्वाण्यपि वस्तूनि क्षयशीलानिति ध्वनात् कर्णे । यत् समय-परिवर्तनादभ्यस्ताऽपि विद्या विस्मृता भवति, सुदृढमूला अपि वृक्षाः प्राचीनेषु ससु पतन्ति, तडागस्था आपोऽपि शुष्यन्ति परन्तु वैदिक-मन्त्रेण याज्ञिक हवनकुण्डेषु प्रक्षिप्तं सत्पात्रेभ्यो दत्तं च वस्तु यथाप्रवृत्तमेव तिष्ठति ॥२२॥

हिन्दी—शल्यराज ! मत रोकिए ! देखिए । समय परिवर्तन होनेपर अभ्यास की गई विद्या भी विस्मृत हो जाती है, मजबूत जडवाले (पुराने) वृक्ष भी धराशायी हो जाते हैं, तालाब का पानी भी (गर्मीमें) सूख जाता है, किन्तु हवनमें आहुत किया हुआ और अच्छे पात्र को दिया गया वस्तु उसी तरह सुरक्षित रहता है ॥२२॥

इसलिए ग्रहण कीजिए । (काटकर देता है)

शक्रः—(गृहीत्वा आत्मगतम् ।) हन्त गृहीते एते । पूर्वमेवाजुंनविजयार्थं सर्वदेवैर्यत् समर्पितं तदिदानी मयानुष्ठितम् । तस्मादहमप्यैरावत्तमारुह्याजुंन-कर्णयोर्द्वन्द्व-पुद्गं पश्यामि । (निष्क्रान्तः)

शल्यः—भो अङ्ग राज ! यञ्चित्त. खलु भवान् ।

कर्णः—केन ?

शल्यः—शक्रेण ।

हिन्दी—

शक्र — (लेकर मनही मन) ओह ये ले लिये गये । पहले ही अर्जुन को विजय के लिये देवताओंने जिसका समर्पन किया था, इस समय उस कार्य को मैंने कर डाला इसलिए ऐरावत पर चढ़कर मैं भी अर्जुन और कर्ण का मल्ल युद्ध देखूंगा । (निकल जाता है ।)

शल्य—हे अंगराज ! आपको ठग लिया ।

कर्ण—किसने ?

शल्य—इन्द्र ने ।

शक्रः—न खलु । शक्रं खलु मया वञ्चितं । कुत

अनेक - यज्ञाहुति - तपितो द्विजैः

किरीटवान् दानवसंघमर्दनः ।

सुरद्विपास्फालन — कर्कशाङ्गुलि-

मया कृतार्थं खलु पाकशासन ॥ २३ ॥

अन्वयः—द्विजैः, अनेक-यज्ञाहुति-तपित, किरीटवान्, दानवसंघमर्दन, सुरद्विपास्फालन-कर्कशाङ्गुलि पाकशासन खलु मया कृतार्थं ॥ २३ ॥

व्याख्या — द्विजैः = ब्राह्मणशत्रियवैश्यैः, अनेकेषु = बहुषु = यज्ञेषु = मत्स्येषु; आहुतिभिः = शाक्त्यादिभिः; तपित = संतुष्ट, किरीटवान् = मुकुटमण्डित; दानवानाम् = दैत्यानाम्; संघ = समूह, तस्य मर्दन = ध्वंसक, दैत्य-समूह दिनाशक इत्यर्थः । सुरद्विपस्य = ऐरावतस्य, स्फालनं = सचालनं कर्कशा = परुषा “रूक्षा इति यावत्; अंगुलय = करशाखा. यस्य स, पाकशासन = इन्द्र खलु = निश्चयेन, मया = कर्णेन कृतार्थं = सतोषित इति । अत्र “वशस्य” नामक छन्दः ॥ २३ ॥

समास — न एकै = अनेके च ते यज्ञा = अनेकयज्ञाः । (कर्मधारय) तेषां आहुतयः = अनेकयज्ञाहुतयः ; (प० तत्०) ताभिः तपित. या सः = अनेक यज्ञाहुतितपित (बहुव्रीहिः) ।

दानवानां संघ = दानवसंघं { प० इत्० } दानवसंघस्य मर्दनं = दानवसंघमर्दन (प० तत्०) । सुराणां द्विप = सुरद्विपः । (प० तत्०) तस्य

स्फालनम् = सुरद्विपास्फालनम् (प० तत्०) तेन कर्कशाः अंगुलयो यस्य सः = सुरद्विपास्फालन-कर्कशांगुलिः;

कोशः—यज्ञ. सवोऽश्वरो भागः सप्ततन्तुर्मखः क्रतुः । इत्यमरः । दन्ती दन्तावलो हस्ती द्विरदोऽनेकपो द्विप । इत्यमरः । इन्द्रो भस्त्वान् मघषा विद्वीजा पाकशासनः । इत्यमरः ।

भावार्थः—द्विजातिभिः बहुषु आहुतिभिसंतुष्टः, मुकुटमण्डितः, असुरकुल-विमर्दकः, ऐरावत-संचालनेन यदीयाः अंगुलयो रूक्षा. सञ्जाताः सः, इन्द्रः मया कृत-कृत्य कृत. अतः इन्द्र एव मया वञ्चित न खलु तेनाहम् । इति भाव ॥ २३ ॥

हिन्दीः—नही । मैंने ही इन्द्र को ठग लिया क्योंकि—ब्राह्मणसत्रिय, और वैश्यो के द्वारा अनेकयज्ञोमें दी गयी आहुतियों से संतुष्ट; मुकुटमण्डित; दैत्य-समूह को विनष्ट करनेवाले; ऐरावत हाथीको चलाने के कारण जिनकी अंगुलियाँ कठोर हो गयी उन इन्द्रको मैंने कृतकृत्य कर दिया ॥ २३ ॥

(प्रविश्य ब्राह्मणरूपेण)

देवदूतः—भोः कर्ण ! कवचकुण्डलग्रहणाञ्जनितपद्मासपेन पुरन्दरेणानु-गृहीतोऽसि । पाण्डवेष्वेकपुरुषवधार्थममोघमस्त्रं विमला-नाम शक्तिरियं प्रति-गृह्यताम् ।

कर्णः—धिग्; दत्तस्य न प्रतिगृह्णामि ।

देवदूतः—ननु ब्राह्मणवचनाद् गृह्यताम् ।

कर्णः—ब्राह्मणवचनमिति । न मयातिक्रान्तपूर्वम् । कदा लभेय ।

देवदूतः—यदा स्मरसि तदा लभस्व ।

कर्णः—बाढम् । अनुगृहीतोऽस्मि । प्रतिनिवर्तता भवान् ।

देवदूतः—बाढम् । (निष्क्रान्तः)

कर्णः—शल्यराज ! यावद्द्रवमारोहावः ।

शल्यः—बाढम् । (रथारोहणं नाटयत.)

हिन्दी—

(ब्राह्मण वेद में प्रवेश करके)

देवदूत—हे कर्ण ! कवच और कुण्डल ले लेने के कारण परधात्ताप करते हुए इन्द्र के द्वारा तुम अनुगृहीत हो । पाण्डवों में से किसी एक को मारने के लिये यह अमोघ अस्त्र “विमला” नामकी पाक्ति स्वीकार करो ।

कर्ण—धिक् ! मैं दान का बदला नहीं लेता ।

देवदूत—प्रादाण के कहने से ले लो ।

कर्ण—ब्राह्मण का कथन ! पहले मैंने कमी नहीं टाला है । (अच्छा) मुझे कब मिलेगी (पाक्ति) ।

देवदूत—जमी उसका स्मरण करोगे तमी मिल जायगी ।

कर्ण—अच्छा अनुगृहीत हूँ । आप लौट जाएँ ।

देवदूत—बहुत अच्छा । (निकल जाता है ।)

कर्ण—शस्यराज ! तब (तक) हम दोनों रथ पर चढ़ें ।

शल्य—अच्छा (दोनों रथ पर चढ़ने का अभिनय करते हैं ।)

कर्णः—अये शब्द इय श्रूयते । किं नु खल्विदम् ।

शङ्खध्वनि. प्रलय-सागर-घोषतुल्य.

कृष्णस्य वा न तु भवेत् स तु फाल्गुनस्य ।

नूनं मुधिष्ठिरपराजय-कोपितात्मा

पार्थः करिष्यति यथावत्तमद्य युद्धम् ॥ २४ ॥

शल्यराज ! यथासावर्जुनस्तत्रैव घोघतां मम रथः ।

शल्यः—वाढम् ।

अन्वयः—शङ्खध्वनीति । प्रलयसागरघोषतुल्यः; शङ्खध्वनिः; कृष्णस्य, वा तु फाल्गुनस्य भवेत्, मुधिष्ठिर-पराजयकोपितारमा, पार्थः नूनम्, अद्य, यथावत्तमम्; युद्धम् करिष्यति ॥ २४ ॥

व्याख्या—शङ्खध्वनीति । प्रलयसागरस्य = प्रालेय-समुद्रस्य; घोषः = ध्वनिः, तेन तुल्यः = समानः, शङ्खध्वनिः = कम्बुदाब्दः, कृष्णस्य = वामुदेवस्य, वा = अपवा, तु फाल्गुनस्य = अर्जुंस्य, भवेत् = स्यात्; मुधिष्ठिरस्य = धर्मराजस्य

पराजयेन = पराभवेन, कोपितः = क्रुद्धः, आत्मा = हृदयं यस्य सः; पार्थः = अर्जुनः, नूनम् = निश्चयेन, अद्य = अस्मिन् दिवसे, यथाबलम् = स्वशक्त्यनुरूपम्; युद्धम् = रणम्; करिष्यति = विधास्यति ॥ अत्र वसन्ततिलका वृत्तिः ॥ २४ ॥

समासः—शङ्खस्य ध्वनिः = शङ्खध्वनिः (प० तत्०) । प्रलयस्य सागर = (प० तत्०) तस्य घोषः = प्रलयसागरघोष (प० तत्०) तेन तुल्यः = प्रलयसागरघोषतुल्यः (तत् पुरुष) । युधिष्ठिरस्य पराजयः = युधिष्ठिरपराजयः (प० तत्०), कोपितश्चासौ आत्मा = कोपितात्मा (कर्मधा य) युधिष्ठिर-पराजयेन कोपितात्मा यस्य स युधिष्ठिर-पराजय-कोपितात्मा (बहुव्रीहि०) ॥

कोशः—शङ्खः स्यात् कम्बुरस्त्रियो । सर्वतः प्रलयकल्पक्षय कल्पान्त इत्यापि । इत्यमरः । समुद्रोऽम्भिर-कूपार पारावारी सरित्पतिः । उदन्वान्नुदधिः सिन्धु सरस्वान् सागरोऽर्णः । इत्यमरः ॥

भावार्थः—प्रलयसामयिक-सागरशब्द-तुल्यः कस्यचिच्छङ्खध्वनिः श्रूयते; सध्वनिः कृष्णस्य अथवा अर्जुनस्य भवेत् । स्वाग्रज-पराभवेन क्रुद्धात्मा यावच्छक्तिः निश्चयमेव युद्ध करिष्यति ॥ २४ ॥

हिन्दी—

कर्ण—अरे ! शब्द सा सुनाई दे रहा है । यह क्या है ? यह प्रलयकालीन समुद्र की तरह गम्भीर ध्वनि वाला या तो कृष्ण का शंख है, या अर्जुन का । युधिष्ठिर के पराजय से क्रुद्ध होकर अर्जुन आज अवश्य यथाशक्ति युद्ध मुझसे करेगा ॥ २४ ॥

शल्यराज ! जहाँ अर्जुन है मेरे रथ को वही ले चलिये ।

शल्य—बहुत अच्छा ।

(भरत वाक्यम्)

सर्वत्र सम्पद सन्तु नश्यन्तु विपद सदा ।

राजा राजगुणोपेतो भूमिमेक प्रशास्तु नः ॥ २५ ॥

अन्वयः—सर्वत्र, सम्पद, सन्तु सदा, विपद, नश्यन्तु ।

राजगुणोपेतः, एकः राजा, नः, भूमिम्, प्रशास्तु ॥

व्याख्याः—सर्वत्र = सम्पूर्ण संसारे, सम्पदः = वंशवाः, सन्तु = भवन्तु, सदा = सर्वकाले, विपदः = विपत्तयः; नश्यन्तु = नष्टाः भवन्तु; राजगुणोपेत = नृपगुण-संयुक्तः “दयादादिग्यादिभिर्मुक्त इत्यर्थः” एकः = अद्वितीयः; राजा = नृपतिः, नः = अस्माकम्; भूमिम् = वसुन्धराम्; प्रशास्तु = पालयतु ॥

समासः—राजा गुणः = राजगुणः (प० तत्) सेनोपेतः राजगुणोपेतः (तु० तत्) ।

कोशः—अप सम्पदि संपत्तिः श्रोत्र च लक्ष्मोश्च । इत्यमरः । विपत्तो विपदापदौ । इत्यमरः ।

राजा राट् पाण्डित्यमाभून्नृपभूषणहोदितः इत्यमरः ॥

भावार्थः—तत्र सखु भगवान् भासः स्वनाटकावसाने भरत-वाक्यमर्थात् मङ्गलवाक्य-प्रयुक्ते सर्वत्रेति । तस्यायं भावः अखिले जगति सम्पत्तयोः भवन्तु; विपत्तयो नश्यन्तु सर्वदा; दयादादिग्यादिमुक्तः एकाकी सम्राट् एनामस्मद् सम्बन्धिनी पृथ्वी रक्षतु ॥ इति शम् ॥ २५ ॥

“अलपुरा” ग्राम-निवासिना शोपाह्वेन “वैद्यनाथ” ।

शर्मणा रचिता “इन्दुकला” नाम्नी टीका सम्पूर्णा ॥

हिन्दी—सम्पूर्ण जगत् में सम्पत्तियाँ हों, हमेशा विपत्तियाँ बिनष्ट होती रहें; राजा के समस्त गुणों से युक्त कोई एक राजा हमलोगों की इस पृथ्वी का शासन करे ॥ २५ ॥



कृष्णदास संस्कृत सीरीज

८५

महाकविभासविरचितम्

ऊरुभङ्गम्

'प्रभा' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः

डॉ० रामप्रभा आभा

साहित्यविभागाध्यक्ष

श्रीभागवत-महाविद्यालय, रुर्मा, वाराणसी-५



कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

१९८६

© KRISHNADAS ACADEMY

Oriental Publishers and Distributors

Post Box No. 1118

Chowk, (Chitra Cinema Building), Varanasi-221001
(INDIA)

First Edition

1986

Price Rs. 5-00

Also can be had from

Chowkhamba Sanskrit Series Office

K. 37/99, Gopal Mandir Lane

Post Box 1008, Varanasi-221001 (India)

Phone : 63145

प्राक्कथन

संस्कृत नाटकों के महान् लेखक महाकवि मास ने अपनी कल्पना से महाभारत के प्रसङ्ग-विधेय (भीम द्वारा दुर्योधन का ऊरुमञ्ज) को अपने एकांकी नाटक 'ऊरुमञ्ज' में अत्यन्त आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया है। वस्तुतः इस नाटक ग्रन्थ का अध्ययन अध्यापन मात्र साहित्य के छात्र तथा अध्यापकों तक ही सीमित नहीं है, अपितु महाभारत की कथा में अनिश्चित रखने वाले सामान्य जन भी इसे पढ़ने की आकांक्षा रखते हैं। इसका हिन्दी अनुवाद अत्यन्त अपेक्षित था तथा छात्रों के हित में इस ग्रन्थ की सरलतम संस्कृत व्याख्या भी आवश्यक थी, जिसे दृष्टि में रखते हुए मैंने ऊरुमञ्ज का सरल हिन्दी अनुवाद तथा 'प्रमा' नाम्नी संस्कृत टीका की रचना कर आपके समक्ष प्रस्तुत किया है। यद्यपि इसकी अन्य टीकायें भी उपलब्ध हैं, तथापि इस टीका को अत्यन्त सरल एवं स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। इस ग्रन्थ के विभिन्न संस्करणों में उपलब्ध पाठ भेद को फुटनोट द्वारा नीचे दर्शाया गया है तथा आवश्यकतानुसार तत्सव पाठों की व्याख्या कर प्रसङ्ग के अनुरूप उसकी सङ्गति दिखलाई गई है।

इस कार्य में आदरणीय डॉ० सुधाकर माखवीय जी से निरन्तर प्रोत्साहन उचित निर्देश के साथ-साथ ग्रन्थ की अनुपलब्ध प्रति प्राप्त कराने में विधेय योगदान रहा है। पूज्य गुरुजनो प्रो० देवाप्रसाद द्विवेदी, प्रो० कैलासपति त्रिपाठी एवं डॉ० धीनारायण मिथ जी द्वारा समय-समय पर महत्वपूर्ण निर्देश प्राप्त होता रहा है। अतः इन सभी विद्वानों का मैं हृदय से आभारी हूँ।

इस लघु नाटक की हिन्दी-संस्कृत टीका की रचना मेरा प्रथम प्रयास है, अतः इसमें कुछ त्रुटि हो तो सुधीजन उसे सुधार कर पढ़ें तथा हमें सूचित करें ताकि अग्रिम संस्करणों में उसे सशोधित किया जा सके ।

विद्वानो का स्नेही

डॉ० रामप्रभा ओझा

भूमिका

महाकवि भास

संस्कृत साहित्य के नाटककारों में सर्वप्रथम भास का नाम आता है, क्योंकि अन्य नाटककारों के पूर्ववर्ती महाकवि कालिदास ने ससम्मान भास का उल्लेख किया है, जिसे यह स्पष्ट है कि कालिदास की काव्य रचना के समय भास के नाटक अत्यन्त प्रचलित हो चुके थे। महाकवि कालिदास के बाद भी कवियों तथा आलङ्कारिकों ने भास के नाटकों का अत्यन्त सम्मान करते हुए आवश्यकतानुसार अपने ग्रन्थों में उनके दलोक उद्धृत किये हैं। भास के सम्बन्ध में महाकवि बाणभट्ट ने हर्ष चरित में कहा है "सूत्रधार से आरम्भ किये गये, बहूत भूमिका वाले तथा पताका से सुशोभित मन्दिरों की तरह, अपने नाटकों से भास ने बहूत यश प्राप्त किया"। काव्यमीमांसा के रचयिता राजशेखर ने भास के नाटकचक्र का उल्लेख करते हुए उनके नाटकों की अग्निपरीक्षा तथा "स्वप्नवासवदत्तम्" की उत्कृष्टता बतलायी है। आचार्य बलदेव उपाध्याय जी के अनुसार दशम शती के आरम्भ में राजेश्वर द्वारा भास के एक नाटक के नाम का प्रथमतः उल्लेख किया गया है जो बहूत महत्त्वपूर्ण है।

१. प्रथितयशसा भाससोमिल्लककविपुत्रादीना प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवे कालिदासस्य कृती बहूमान. (मालविकाग्निमित्रम्)
२. सूत्रधारकृतारम्भर्नाटकवैभूभूमिकै. ।
सपातकैर्यशो लेभे भामो देवकुलैरिव ॥ (हर्षचरितम्)
३. भाननाटकचक्रेऽविच्छेकं क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥
४. संस्कृत साहित्य का इतिहास ।

भास के नाटक चक्र का उल्लेख बाद में काल क्रम के अनुसार लुप्त प्रायः हो रहा था, किन्तु १९१२ में महामहोपाध्याय टी० गणपति शास्त्री ने अन्वेषण कर इनके १३ नाटकों को "अनन्तशयन ग्रन्थ माला" में प्रकाशित कर संस्कृत के विद्वानों के समक्ष उपस्थित किया।

भास के नाटकचक्र के सम्बन्ध में अनुसन्धानशील भारतीय तथा विदेशीय मस्कृत के विभिन्न विद्वान् दो विरुद्ध पक्ष उपस्थित करते हैं। एक पक्ष के अनुसार 'स्वप्नवासवदत्तम्' आदि १३ नाटक भास रचित हैं। किन्तु दूसरा पक्ष इसे स्वीकार नहीं करता। दूसरे पक्ष के अनुसार इन रूपकों के कुछ ही अंश भासकृत हैं, शेष केरलवासी किसी कवि ने पूर्ण किया है। विदेशी विद्वान् डा० थार्नेट, डा० सिल्वन लेवी, डा० वुल्नर तथा भारतीय विद्वान् डा० कुप्पु शास्त्री आदि इस पक्ष के समर्थक हैं। महामहोपाध्याय टी० गणपति शास्त्री के द्वारा प्रकाश में लाये गये भास के 'स्वप्नवासवदत्तम्' आदि १३ नाटकों को उनके नाटकचक्र के रूप में मानने वाले देशी विदेशीय विद्वानों में डा० कीय, डा० टामस, डा० स्वरूप आदि प्रमुख हैं। इन विद्वानों ने अत्यन्त गवेषणापूर्वक भास के नाटकचक्र के विरोधी युक्तियों के विरुद्ध "स्वप्नवासवदत्तम्" आदि १३ नाटकों के रचयिता भास को ही माना है।

समय निर्धारण

संस्कृत साहित्य के कवियों का समय निर्धारण विद्वानों के बीच बहुत दिनों से एक समस्या बनी हुई है। अतः भास का कोई निश्चित समय निर्धारित करना कोई सामान्य बात नहीं है। तथापि अनुसन्धानशील विद्वानों ने भास की कृतियों का अन्तः परीक्षण तथा अन्य विद्वानों द्वारा उद्धृत उनके पद्यों या ग्रन्थों के नामों के आधार पर भिन्न भिन्न समय का अनुमान किया है। अभी तक विद्वानों ने ई० पू० ६०० से १० वीं शताब्दी के बीच भास के होने का अनुमान लगाया है।

महामहोपाध्याय टी० गणपति शास्त्री एवं म०म० हरप्रसाद शास्त्री कुछ विद्वानों ने भास का समय पाणिनि एवं चाणक्य से प्राचीन ई० पू०

४०० से ६०० होने की सम्भावना की है। पं० रामावतार शर्मा एवं श्री काणे आदि विद्वानों की दृष्टि में भास का स्थितिकाल ईसा की नवी १०वीं शताब्दी होना चाहिए। डाक्टर काशी प्रसाद ज्ञानसवाल तथा प्रसिद्ध ध्रुव आदि के अनुसार भास २ री- १ली शताब्दी के पूर्व में है। डाक्टर वार्नेट एवं प्रो० देवधर आदि विद्वानों ने भास का काल ईसा की ६ठी ७वीं शताब्दी माना है। इस प्रकार भास के स्थितिकाल के सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं।

महाकवि भास के समय निर्धारण में उपर्युक्त ईसा की नवीं दसवीं शताब्दी का होना तो कथमपि सम्भव नहीं है क्योंकि ७वीं शताब्दी के प्रसिद्ध महाकवि बाणभट्ट ने भास के नाटककार का उल्लेख करते हुए उनकी विशेषता बतलाई है। ई की छठी ७वीं शताब्दी में भास का होना कहा जाय तो भी कुछ उचित नहीं जान पड़ता, क्योंकि ७वीं शताब्दी के पहले ही भास के नाटकों को अधिक र्थाति मिल चुकी होगी तभी महाकवि बाण ने अपने ग्रन्थ में आदर पूर्वक उसका उल्लेख किया। यदि यह मत माना जाय तो समसामयिक होने वाले महाकवि बाण भास के नाटकों से इतने भलिभांति परिचित न होते कि उनकी प्रशंसा किये बिना न रहते।

भास का समय निश्चितरूप से विग्रमकालीन महाकवि कालिदास से प्राचीन होना चाहिए। महाकवि कालिदास ने अपने ग्रन्थ 'मालविकाग्नि मित्रम्' में भास का नाम बहुत आदर पूर्वक उल्लेख किया है। ऐसे भी नाट्य रचना की दृष्टि से भास का समय कालिदास से बहुत प्राचीन होना चाहिए। भास के नाटकों पर भरतमुनि विरचित नाट्यशास्त्र का प्रभाव प्रायः नहीं देखा जाता जबकि महाकवि कालिदास के नाटक नाट्यशास्त्रीय परम्परा का पूर्णतया अनुसरण करते हैं।

पं० टी० गणपतिशास्त्री ने सबल प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध किया है कि महाकवि भास का स्थिति काल ई. पू. ४ थी है। इसके अनुसार भास की नाटक रचना पर भगवान् पाणिनि द्वारा निदिष्ट "नटसूत्र" के सम्प्रदाय के प्रभाव का अनुमान किया जा सकता है। भास, पाणिनि के पहले ही व्यास के किन्तु पाणिनि द्वारा 'अष्टाध्यायी' का प्रभाव भास की कृतियों में

नही देखा जाता है। यदि भास को नाट्यशास्त्र की रचना के बाद माना जाय तो इनके नाटको में नाट्यशास्त्रीय परम्परा की छाप अवश्य पडती।

भास के कृतियों का अन्तःपरीक्षण किया जाय तो भी भास का समय ईसा के पूर्व ही मानना उचित होगा। भास ने अपने नाटको में जिस प्रकार की सामाजिक परिस्थिति का चित्रण किया है वह कालिदास द्वारा चित्रित सामाजिक परिस्थितियों से प्राचीन जान पडती है। पं० हरप्रसाद शास्त्री का अनुमान है कि भास के 'प्रतिमा नाटक' में प्रतिमागृह की प्राङ्गणभूमि में बालुका (बालू) का छीटना जो वर्णित है उसके अनुसार भास ई. पू. ५वीं शताब्दी पूर्व के होंगे। उनका तर्क है कि ६०० ई० पूर्व आपस्तम्ब में बालुका-स्तरण का उल्लेख है, अतः उसका तत्कालीन प्रभाव प्रतिमा के उक्त प्रसङ्ग में पडा है। भास के 'अविमारक' में जिस प्रकार के वैवाहिक सम्बन्ध का निर्देश है वह मनुस्मृति काल में अवैध माना गया है। विद्वानों ने मनुस्मृति का काल ई० पू० २री शताब्दी माना है। इसके बाद यदि भास के नाटको की रचना होती तो मनुस्मृति के वैवाहिक विधान को अवश्य ध्यान में रखा गया होता। अतः भास का काल मनुस्मृति के पूर्व ही मानना पडेगा। आचार्य बलदेव उपध्याय जी ने भी भास के कृतियों का अन्तः एवं बाह्य परीक्षण द्वारा महाकवि भास का समय पञ्चम शती या चतुर्थ शती वि० पू० स्वीकार किया है। उपर्युक्त विद्वानों के मत ही भास के समयनिर्धारण में अब तक प्रबल प्रमाण हैं। अतः इन विद्वानों का मत स्वीकारते हुए भास का समय ई० पू० ४थी शती मानना ही उचित है।

भास के ग्रन्थ

महाकवि भास के पं० गणपतिशास्त्री द्वारा उल्लिखित "स्वप्नवासवदत्तम्" आदि १३ नाटक ही ग्रन्थ के रूप में उपलब्ध हैं। भास ने अपने नाटको के लिए द्विविध श्रेणी से कथावस्तु को संगृहीत किया है। इनके नाटक विषयानुसार पाँच श्रेणी में आते हैं।

(क) महाभारताधित—पञ्चरात्र, मध्यमग्यायोग, दूतघटोत्कच, कर्ण-
'९, दूतवाक्य तथा ऊरुभङ्ग।

- (ख) भागवताश्रित—बालचरित ।
 (ग) रामकथाश्रित—प्रतिमानाटक तथा अभिषेक ।
 (घ) लोकरूपाश्रित—दृष्टिचारदत्त और अविमारक ।
 (ङ) उदयनकथाश्रित—प्रतिज्ञायौगन्धरायण एवं स्वप्नवासवदत्ता ।

पञ्चगम्य—महाकवि भास ने महाभारत के विराट पर्व की कथा को अपनी कवित्वकल्पना से नवीनरूप में परिवर्तित किया है। द्रोण की आज्ञा से दुर्योधन के द्वारा पाण्डवों को आधा राज्य देना, कौरवों के साथ अभिमन्यु का लड़ाई के लिए आना, अभिमन्यु की बन्दी बनाना आदि कवि द्वारा वर्णित घटनाएँ महाभारत की कथा से संगत नहीं होने से इसे कविकल्पना प्रसूत कहना उचित जान पड़ता है।

मध्यमव्यायोग—इसमें प्रयुक्त “व्यायोग” शब्द दशरूपकी में आता है। ‘मध्यम’ शब्द भीम एवं एक ब्राह्मण बालक का वाचक है। भीम के पुत्र घटोत्कच द्वारा ब्राह्मण बालक के वध हेतु उद्यत होने पर भीम उसकी रक्षा के लिए आ जाता है। अनभिज्ञता में पिता पुत्र में युद्ध होता है, घटोत्कच के पराक्रम से प्रभावित होकर भीम उससे परिचय पूछता है। तदनन्तर दोनों हिडिम्बा के पास जाते हैं। कवि अपनी कल्पना से इन तीनों का अद्भुत सम्मिलन कर कर पाठकों के मन में अत्यन्त कौतुहल उत्पन्न कर देता है।

दूतघटोत्कच—इसमें दुर्योधन जीर घटोत्कच का वीरतापूर्ण सम्वाद नाटकीय दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

कर्णभार—महाकवि भास ने इसमें कर्ण की दानशीलता को अत्यन्त ललित रूप में वर्णित किया है।

दूतवाक्य—इसमें दुर्योधन के मानमर्दनयुक्त भगवान् कृष्ण की वीरतापूर्ण वाणी नाटकीय संवाद की दृष्टि से अत्यन्त हृदयहारिणी है।

ऊरुभङ्ग—ऊरुभङ्ग में दुर्योधन को भीम के द्वारा गदायुद्ध में परास्त कर उसकी जङ्घा चूर्ण करने का विषाद वर्णन है।

बालचरित—इसमें भगवान् कृष्ण के बाललीला का ललित वर्णन

अत्यन्त मनोहर है। भागवत के उक्त प्रसङ्ग को कवि ने अपने भाव एवं भाषा से पाठको के लिए बहुत हृदयस्पर्शी बना दिया है।

प्रतिमानाटक—रामायण के अयोध्याकाण्ड के रामवनवास से लंकाकाण्ड के रावणवध तक की घटनाओं का वर्णन इस नाटक में किया गया है। राम के वन चले जाने पर दशरथ की मृत्यु के अनन्तर अपने ननिहाल से लौटते हुए भरत ने अयोध्या के समीप अपने पिता दशरथ की प्रस्तर प्रतिमा को देखकर उनकी मृत्यु का अनुमान करते हैं, अतः इस प्रसङ्ग के अनुसार इस नाटक का नाम 'प्रतिमानाटक' है।

अभिषेक—इसमें रामायण के क्रिष्किन्धाकाण्ड से लंकाकाण्ड तक के प्रमुख प्रसङ्गों का रोचक वर्णन है। इस नाटक में राम के राज्याभिषेक का वर्णन होने से इसका नाम 'अभिषेक' पडा है।

दरिद्र चारुदत्त—धनहीन किन्तु चरित्रवान् ब्राह्मण चारुदत्त एवं वारवनिता वसन्तसेना के आदर्श प्रणय का वर्णन इस नाटक में किया गया है।

अविमारक—इसमें कवि की कल्पना प्रसूत अविमारक एवं राजा कुन्तीभोज की पुत्री के प्रणय का वर्णन बहुत ही सुन्दर तथा सरस ढंग से किया गया है।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण—इसमें यौगन्धरायण द्वारा महासेन के यहाँ बन्दी बनाये गये उदयन को छुड़ाने के लिए उदयन के साथ वासवदत्ता का परिणय कराने हेतु जो नीति अपनायी गयी है वह अत्यन्त विस्मयावह है। इस नाटक में मुख्य मन्त्री यौगन्धरायण की दृढ़ प्रतिज्ञा का उचित निर्वाह होने से इसका नाम 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' है।

स्वप्नवासवदत्ता—राजा उदयन को अपने विरोधी राजाओं पर विजय प्राप्त करने के लिए दशक राजा की सहायता अपेक्षित है, अतः मन्त्री यौगन्धरायण द्वारा वासवदत्ता के जलने की झूठी खबर फैलाकर उसे दशक के पास रखना तथा दशक की भगिनी का विवाह उदयन से कराना आदि का उपस्थापन इसमें अत्यन्त मनमोहक ढंग से किया गया है। महाकवि भाम ने इस नाटक की रचना में अत्यधिक सफलता अजित की है।

स्वप्नवासवदत्ता की न केवल भासद्वारा नाटकों में ही उत्तम रचान है, अपितु सत्सुत के श्रेष्ठ नाटकों में यह अन्यतम ही है।

उपर्युक्त नाटकग्रन्थों में प्रतिमा नाटक, स्वप्नवासवदत्ता एवं प्रतियोगन्द्य-रायण पूर्ण विकसित हैं, तथा मध्यमव्यायोग दूतघटोत्कच आदि एकांकी है। भास के सभी नाटकों की रङ्गमञ्च पर मरलता से दिनाया जा सकता है। इनके नाटकों में पात्रों के सम्वाद का विस्तार नहीं देना जाता, जिससे दर्शकों के मन अरवि पैदा हो।

नाट्यकला

महाकवि भास के नाटकों में रङ्गमञ्च पर दिखाये जाने वाले भाव की भाँति ही भाषा का प्रयोग किया गया है। यह नाटकीय घटना की गतिशील बनाते हैं। नाटकों में जिन प्रकार पात्रों के सम्वाद अवलित होते हैं तदनु रूप ही कवि ने सयोजित की है। यस्तुत महाकवि भास का नाट्यरचना की शुश्रूषा लोकोत्तर ही है।

काव्यशैली

महाकवि भास के नाटकों में अत्यन्त मरल प्रमादगुण युक्त नाट्यसौन्दर्य के परिपोषक शब्दों का प्रयोग बहूत सफरतापूर्वक किया गया है। इनके पद्यों के श्रवणमात्र में अर्थबोध हो जाता है। वस्तुतः दर्शक या श्रोता काव्य के अर्थबोध में होने वाली कठिनाई का सहन नहीं करते। दुदयकाव्य की यही उत्तमता है कि पात्रों द्वारा प्रयुक्त भाषा का संक्षेप अर्थबोध हो जाय। भास के नाटकों में इसी प्रकार के गद्य पद्य देगे जाते हैं।

भास ने अपने नाटकों में पात्रों के चरित के अनुरूप ही भाषा का प्रयोग किया है। भास के नाटक काव्यगत सौन्दर्य से सुनोमित नाटकीयता से परिपूर्ण हैं। नाट्यशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादिता भारतीयता की अपने नाटकों में भास ने पूर्णतया अपनाया है। भास का भारतीयता एव पात्रों की सवावरचना का अद्वितीय मलानार कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। भास का शब्दार्थमयोजन अमिथ्यञ्जना से ओतप्रोत है। इस प्रकार रस भास के अनुकूल एव देस बाल के अनुसार भास की भाषा को देखते हुए—

प्रसिद्ध आलङ्कारिक जयदेव ने भास को कविताकामिनी का हास (भासो हासः) कहा है ।

भास का वैशिष्ट्य

महाकवि भास नाट्यकला में सिद्धहस्त हैं । इनके नाटको में न केवल मनुष्य ही अपितु देव भी उपस्थित होते हैं । इन्होंने बड़ी कुशलता से मनुष्यो एवं देवो का चरित्रचित्रण किया है । चरित्रचित्रण नाटको का महत्त्वपूर्ण अङ्ग है जिसका निर्वाह भास ने इतनी कुशलता से की है कि सहृदय सामाजिक इसे सहजरूप में अपना सकें ।

सूक्तियो से परिपूर्ण भास की वाणी सहृदयो के चित्त को आकृष्ट करती है । इनके नाटको में दुरुह भावो को भी अति सरल एवं प्रभावपूर्ण रीति से प्रकट किया गया है । भास के गद्य में भी विचित्र वैलक्षण्य देखा जाता है । छोटे छोटे वाक्य भी मनोगत भावो को अभिव्यक्त करने में सर्वथा सक्षम हैं ।

यद्यपि नाटको में सरस सुबोध एवं असमस्त पदावली सर्वथा समादरणीय है तथापि प्रसङ्गानुसार दीर्घ समासयुक्त पदावली का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है । भास ने अपने नाटको में प्रसङ्गानुरूप समास बहुल पदावली को अपनाया है, पर उनके शब्द इतने सरल और ललित हैं कि अर्थावधारण में पाठको एवं दर्शको को किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती है—

चलविलुलितमौलि क्रोधताम्रायताक्षो

भ्रमरमुखविदष्टा किञ्चिदुत्कृष्यमालाम् ।

असिततनुविलम्बिसस्तवस्त्रानुकर्षा

क्षितितलमवतीर्णा पारिवेपीव चन्द्रः ॥

महाकवि भास पात्रो के मनोगत भाव परखने में प्ररम प्रवीण हैं । भास का प्रकृति वर्णन भी अत्यन्त मनोहारी है । अलङ्कारो में उपमा एवं स्वभावोक्ति की छटा अतीव सुन्दर है । इनके नाटको में निश्छल एवं शुद्ध प्रणय का वर्णन है । स्वप्नवासवदत्ता के नाटकीय घटना की मनोरम सङ्गति अद्वितीय है । इस प्रकार भास के नाटको में काव्यापेक्षित समस्त वैशिष्ट्य मानो अहमहमिकया भरे पड़े हैं ।

ऊरुमङ्ग का साहित्यिक पर्यालोचन

महाकवि भाम रचित ऊरुमङ्ग का उपजीव्य महाभारत के एक घटना-विशेष का ससिमाया है, भले ही कवि ने पाठको एवं दर्शको में उत्कृष्ठा जागृत करने के लिए अपनी कल्पना से इसके कथानक को कुछ अन्य ढंग से प्रस्तुत किया हो। यह मात्र एक अङ्क का रूपक है। प्रसङ्गानुसार इसके गद्य पद्य अत्यन्त ओजस्वितापूर्ण समासबहुल हैं तथापि इसकी ललित पदावली में सरल शब्दों का प्रयोग अत्यन्त मनमोहक है।

भाम के नाटको में प्रस्तावना, कवि का नाम आदि नाट्यशास्त्रीय विधान के अनुसार होना चाहिये, जो नहीं देखा जाता। यद्यपि ऊरुमङ्ग में युद्ध का प्रसङ्ग होने से वीर रस का प्राधान्य अपेक्षित है तथापि कवि ने अपनी कल्पना से इसके कथानक को काव्यपूर्ण बना दिया है। 'शृङ्गारवीर-शान्तानामेकोऽङ्गी रसमिष्यते' इस नाट्यशास्त्रीय विधान के अनुसार यह नाटक वीररस प्रधान होना उचित था। कवि ने इस नाटक में रङ्गमञ्च पर ही दुर्पोषण की मृत्यु दिखलाया है जो नाट्यशास्त्र के सिद्धान्त के प्रतिबल है।

कथा-सारांश

नान्दी पाठ के अनन्तर सर्वप्रथम सूत्रधार का रङ्गमञ्च पर प्रवेश होता है। वह सिष्ट परम्परा के अनुसार भीष्म, द्रोण आदि अजेय महायोद्धाओं में परिपूर्ण दशरूपी महानदी को अर्जुनरूपी नौका का सञ्चालन करने वाले श्रीकृष्ण आप (सहृदय दर्शको) को इस सत्सर सागर से पार करें, ऐसी मङ्गल कामना कर मान्य समासदो से कुछ कहना चाहता है, तब तक कुछ शब्द सा सुनाई पडा। सूत्रधार आश्चर्यान्वित हो नेपथ्य की तरफ ज्यो ही देवता है, कि सब कुछ समझ जाता है। तदनन्तर पारिपाश्विक का प्रवेश होता है। वह सूत्रधार से पूछता है कि विभिन्न प्रकार के दृष्टो से सुसज्जित ये वीर युद्धरूपी यज्ञ में अपनी देह की आहुति देने के लिए अपने प्रतियोद्धाओं का बलपौरुष निरेक्षते हुए इधर उधर क्यों घूम रहे हैं? इसका उत्तर देते हुए सूत्रधार कहता है—कीरवो के पक्ष में एकमात्र दुर्पोषण ही

बचा है, पाण्डवों के पक्ष में पाँच पाण्डव तथा कृष्ण शेष रह गये हैं, अतः मृत राजाओं से परिपूर्ण समन्त पञ्चक में भीम और दुर्योधन के गदायुद्ध प्रारम्भ होने पर राजाओं की मृत्यु के एकमात्र गृहस्वरूप इस रणक्षेत्र में सैनिक प्रवेश कर रहे हैं।

स्थापना के अनन्तर तीन योद्धाओं का प्रवेश होता है। ये अपनी कल्पना के अनुसार भीम और दुर्योधन के बीच प्रवृत्त युद्ध एवं युद्धस्थल का वर्णन विभिन्न प्रकार से कर रहे हैं। पहला कहता है—हम ऐसे सग्राम नामक आश्रमस्थल में आये हैं जहाँ प्राणों की आहुति करने के लिए अग्नि-होत्र नामक यज्ञ और मृत राजाओं के लिए सूर्यलोक प्राप्ति का साधन है। दूसरा योद्धा युद्धस्थल में मरे पड़े बड़े बड़े हाथियों की उपमा पर्वत से दे रहा है। तीसरा साङ्गरूपक में युद्धस्थल पर यज्ञस्थल का आरोप करता हुआ हस्तियों के शुण्ड दण्ड को यूप, वाणों को कुशा आदि इस प्रकार युद्धस्थल में पड़े हुए वस्तुओं का याज्ञीय पदार्थों के रूप में उल्लेख कर रहा है। इस प्रकार रणभूमि का वर्णन करते हुए योद्धाओं का युद्ध वर्णन करता है।

कुरुकुल एवं यादव वंश के पूजनीय देवों—व्यास, बलराम, कृष्ण तथा विदुर आदि देवताओं के समक्ष भीम और दुर्योधन में परस्पर गदायुद्ध आरम्भ होता है। दुर्योधन की गदाप्रहार से भीम घायल होकर गिर पड़ता है, जिसे देखकर व्यास विस्मित होते हैं। युधिष्ठिर और विदुर दुःखी होते हैं, अर्जुन गाण्डीव को उठाता है और भगवान् श्रीकृष्ण आकाश की ओर देखते हैं। शिष्य दुर्योधन के पराक्रम से प्रसन्न होकर रणदर्शी बलदेवजी हल को घुमा रहे हैं। गिरे हुए भीम को ताना देते हुए दुर्योधन कहता है कि वीर गिरे हुए दीन योद्धा पर प्रहार नहीं करते। इस प्रकार भीम का अपमान देखकर भगवान् श्रीकृष्ण अपने जंघे पर ताडन करते हुए भीम को कुछ संकेत कर रहे हैं। भीम सम्भलते हुए उठकर अपनी गदा से दुर्योधन की जंघे पर प्रहार करता है, जिससे घायल होकर दुर्योधन गिर पड़ता है। खून से लथपथ दुर्योधन को देखकर व्यास जी आकाश की ओर चले जाते हैं। अपने शिष्य दुर्योधन को कपटपूर्वक मारे जाने से बलदेव जी काफी क्रोधित होते हैं, जिनसे पाण्डवों को भयभीत देख कर श्रीकृष्ण ने अपने हाथ से अव-

गान्धारी को धैर्य दिलाता है। दूसरे जन्म में भी तुम ही हमारी जननी होवो, यह मुत्तकर गान्धारी कहती है मेरे मनोनुकूल ही तुमने कहा है। देवियों को आश्वस्त करते हुए दुर्योधन कहता है—क्षत्रिये ! युद्धस्थल में वीर योद्धा से लड़ते हुए मैं मारा गया। इस प्रकार युद्धस्थल में मारे गये वीरों की पत्नियाँ नहीं रोती। पाण्डवी और कुन्ती की सेवा का निर्देश करते हुए दुर्योधन से दुर्योधन कहता है—तुम शोक को छोड़कर पाण्डवों के साथ मुझे तिलाञ्जलि देना। नेपथ्य से पुनः वीरतापूर्ण वाणी सुनाई पड़ती है।

गर्जना करते हुए क्रुद्ध अश्वत्थामा रङ्गमञ्च पर प्रविष्ट हो कर कहते हैं, कि मुझे पिता की तिलाञ्जलि देने में व्यस्त होने के कारण दुर्योधन को छल से मारा गया, अतः मैं कृष्णसहित पाण्डव कुल का विनाश कर डालूँगा। दुर्योधन के मना करने पर भी रात्रियुद्ध में पाण्डवों को मारने की प्रतिज्ञा करते हैं, दुर्योधन के पुत्र दुर्योधन को बिना अभिप्रेक ही विप्रवचनो द्वारा राजा बनाते हैं। इसके बाद दुर्योधन स्वर्गलोक चला जाता है। पुत्र विनाश से शोकाकुल घृतराष्ट्र राज्य को धिक्कारते हुए तपोवन जाने का सङ्कल्प करते हैं। अश्वत्थामा सौप्तिक वध के लिये उद्यत होते हैं। बलराम के द्वारा भरतवाक्य का पाठ किया जाता है, जिसमें पृथ्वी की रक्षा हेतु मङ्गल कामना की गई है।

पात्रों का चरितचित्रण

महाकवि भास ने ऊरुभङ्ग में कथानक के अनुसार ही पात्रों का चरित चित्रित किया है। भट्टनारायण द्वारा वेषीसंहार में दुर्योधन को मार, न्याय तथा शास्त्रविरुद्ध कार्य करने वाला चित्रित किया गया है, कन्तु ऊरुभङ्ग में उसे अन्यन्त विनम्र, धीर वीर योद्धा के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

दुर्योधन—ऊरुभङ्ग में दुर्योधन प्रमुख पात्र है। इसे "नेता विनीतो धुरस्वामी दल प्रियवद" इस शास्त्रीय सिद्धान्त के अनुरूप इस रूपक में चित्रित किया गया है। भीम के साथ गदा युद्ध करते समय दुर्योधन अपनी युद्ध ला का परिचय देता है, जिसके अनुसार कवि को कहना पड़ता है, कि

भीम बलवान् अवश्य है, किन्तु दुर्योधन युद्ध कला में निपुण है। गदा प्रहार से घायल होकर गिरा हुआ वह भीम से कहता है उठी भीम गिरे हुए दीन योद्धा पर वीर प्रहार नहीं करते इस प्रसंग में दुर्योधन अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक न्यायोचित कार्य करता है।

श्रीकृष्ण के संकेत से भीम द्वारा बचनापूर्वक किए गए गदा प्रहार से दुर्योधन के जाहूँ टूट जाती है अतः वह पृथ्वी पर गिर जाता है। इस अन्याय पूर्ण प्रहार से बलराम जी क्रुद्ध होकर पाण्डवों के विनाश की प्रतिज्ञा करते हैं, किन्तु दुर्योधन उन्हें ऐसा करने से मना करता है। वह बलराम जी से कहता है, कि जब आप भीम द्वारा मुझे छलपूर्वक मारा जाना स्वीकार करते हैं तो वस्तुतः मैं पराजित नहीं हुआ हूँ, अतः कुरुकुल को तिलाञ्जलि देने के लिए पाण्डवों को जीवित रहने दीजिए। दुर्योधन को यह उदारता अद्भूत है।

धराशापी दुर्योधन के पास उसका शोकाकुल परिवार जब पहुँचना है तो वह अत्यन्त धैर्यपूर्वक माता पिता और परिवार को समझाने हुए अभिमान भरे शब्दों में कहता है, कि मैं युद्ध में लड़ते हुए वीर योद्धा द्वारा सबके समक्ष मारा गया हूँ। अपनी पत्नियों को क्षात्रधर्म का स्मरण दिलाते हुए दुर्योधन कहता है, कि वीरा की स्त्रियाँ युद्ध में लड़ने हुए पति के मारे जान पर रोती नहीं हैं। दुर्योधन मानृमत्त पुत्र है, वह अगले जन्म में भी गान्धारी का ही पुत्र होने की कामना करता है। अपने पुत्र दुर्जय का समझाते हुए दुर्योधन का कहना है, कि हमारी तरह ही पाण्डवों की भी सेवा करना तथा अम्बा कुन्ती की आज्ञा का पालन करना, इससे दुर्योधन के अदम्य साहस, धैर्य तथा विशाल हृदय का परिचय मिलता है।

छल से दुर्योधन के मारे जाने के कारण क्रुद्ध अश्वत्थामा के द्वारा पाण्डवों के निशासमर द्वारा मारने की प्रतिज्ञा करने पर दुर्योधन कहता है कि राजाका का मान ही शरीर होता है, मैंने प्रतिष्ठा के लिए ही युद्ध ठाना था। वस्तुतः द्रौपदी का वेशकथन, बालक अभिमन्यु का वध तथा पाण्डवों को अश्वत्थामा से वन भोजना आदि जो मैंने पाण्डवों के साथ किया है उसकी

अपेक्षा पाण्डवो ने हमारे प्रति जो भी किया वह अत्यन्त अल्प है, इससे दुर्योधन के स्वाभिमान को कवि ने चित्रित किया है।

इस प्रकार ऊरुभङ्ग में दुर्योधन अपने उज्ज्वल चरित्र से धीरोदत्त नायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। रूपक के अन्त में अपने मान के लिए पाण्डवों के साथ किए गए अन्यायपूर्ण कार्यों का उसे स्मरण होता है, अतः अश्वत्थामा द्वारा पूछे जाने पर वह कहता है "कर्मपरितोपस्य" इस प्रकार पश्चात्ताप का भाव भी उसमें छोटित होता है। वस्तुतः दुर्योधन का चरित्र सर्वथा अनुकरणीय है।

बलदेव—महाकवि भास ने ऊरुभङ्ग में बलदेव को भीम और दुर्योधन में प्रवृत्त गदायुद्ध के दंशक के रूप रङ्गमञ्च पर प्रस्तुत किया है। भगवान् कृष्ण के सकेत से भीम द्वारा किये गये गदाप्रहार की चोट से दुर्योधन की जाह्नू टूट जाने पर न्याय विरुद्ध कार्य करने वाले भीम पर अत्यन्त क्रुद्ध हो कर बलदेव जी कहने हैं इस भीम ने अपने कुल के विनयमृद्धि को भी गत में डाल दिया। दुर्योधन को धैर्याविलम्बन कराते हुए शिष्य के प्रति अत्यन्त स्नेह के कारण भीम को मारने के लिए उद्यत होते हैं, किन्तु दुर्योधन के यह कहने पर कि भीम की गदा में प्रविष्ट होकर स्वयं श्रीकृष्ण ने मुझे मारा है भीम का कोई अस्वराध नहीं है तब बलदेवजी शान्त हो जाते हैं। इस प्रकार बलदेव जी के न्यायप्रियता, धर्मयुद्ध के अधिष्ठाता, तटस्थ किन्तु भगवान् के प्रति आस्था तथा शिष्य के प्रति प्रेम का परिचय मिलता है।

दुर्योधन के शोकाकुल परिवार को देख कर बलदेव जी अत्यन्त दुःखी होते हैं, यहाँ तक कि नित्यस्तमित नेत्रों वाले धृतराष्ट्र को धैर्याविलम्बन कराने में समक्ष नहीं होते हैं।

अश्वत्थामा—भीम द्वारा किये गये गदा प्रहार से दुर्योधन की जाह्नू टूट जाने पर क्रुद्धावस्था में अश्वत्थामा का रङ्गमञ्च पर प्रवेश होता है। अश्वत्थामा युद्धप्रिय राजाओं को सम्बोधित करते हुए कहता है छत्र बल से मारे जाने वाला मैं दुर्योधन नहीं हूँ, न तो कुण्ठित अस्त्रों वाला कर्ण, अग्नितु महारथी द्रोण का पुत्र हूँ। अपने पिता के तपण कृत में व्यस्त रहने के कारण ही दुर्योधन को इस अवस्था में पड़ा देख रहा हूँ। वञ्चना पूर्वक

दुर्योधन के मारे जाने से वह काफी दग्ध है अतः छत्र प्रयोग का संकेत करने वाले श्रीकृष्ण सहित समस्त पाण्डवों को मार डालने की प्रतिज्ञा करता है। दुर्योधन के मना करने पर अश्वत्थामा का कहना है कि भीम ने तुम्हारी जङ्घों के साथ तुम्हारे अभिमान को भी नष्ट कर डाला। किन्तु मैं सर्वथा वृत्तप्रतिज्ञा हूँ। इस प्रकार वह निशासमर में पाण्डवों को ध्वस्त करने का हठ कर ही लेता है। वह दुर्योधन के पुत्र दुर्जय को अपने वचनों द्वारा राजा के उत्तराधिकारी के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

दुर्योधन के समय स्वयं को यहाँ उपस्थित न रहने में पितृवृषण को कारण बतलाने से अश्वत्थामा का कीटिल्य चोत्तित हो रहा है। दुर्योधन के मना करने पर भी पाण्डवों के विनाश करने की हठ को नहीं छोड़ता है। सौमिक वध के लिए उद्यत होने के कारण निर्दयी है। वह दुर्योधन के गोरुक्कुल परिवार को सहानुभूतिपूर्ण शब्दों द्वारा सान्त्वना नहीं दिलाता है। इस प्रकार उरुभङ्ग में कवि ने अश्वत्थामा को बुटिल निर्दयी हठी तथा आत्मश्लाघी के रूप में चित्रित किया है।

उपरोक्त पर्यालोचन से भास के उरुभङ्ग के पात्रों का चरित्र कथानक के अनुरूप ही देखा जाता है।

—रामप्रभा ओझा

रथयात्रा, वि० सं० २०४३

नगवा, वाराणसी

पात्र-परिचय

पुरुष-पात्र—

| | | |
|-------------|---|-----------------------------------|
| सूत्रधार | — | प्रधान नट |
| पारिपाश्विक | — | प्रधान नट का सहायक |
| राजा | — | दुर्योधन |
| बलदेव | — | गुह्यद्रष्टा तथा दुर्योधन के गुरु |
| अश्वत्थामा | — | द्रोणाचार्य का पुत्र |
| धृतराष्ट्र | — | दुर्योधन के पिता |
| दुर्जय | — | दुर्योधन का पुत्र |
| तीनों भट | — | सैनिक |

स्त्री-पात्र—

| | | |
|----------|---|-------------------|
| गान्धारी | — | दुर्योधन की माता |
| पौरवी | — | दुर्योधन की पत्नी |
| मालवी | — | दुर्योधन की पत्नी |

॥ श्री ॥

भासनाटकचक्रे

ऊरुभङ्गम्

'प्रभा' संस्कृत-हिन्दी-व्याख्योपेतम्

—*—

प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते तत प्रविशति सूत्रधार)

सूत्रधार—

भीष्मद्रोणतटा जयद्रथजला गन्धारराजहृदा

कर्णद्रौणिकृपोमिनक्रमकरा दुर्योधनस्रोतसम् ।

* प्रभा *

प्रपद्य परम देव प्रपन्नातिहर प्रभुम् ।

ऊरुभङ्गाभिध काव्य टीकया तनुते मया ॥

अथ तत्रभवान् महाकविर्भास ऊरुभङ्गाभिधान रूपककाव्य चिकीर्षुरादौ भारतीयनाट्यशास्त्रपरम्परानुसार प्रयुज्यमाना नान्दी सूचयन् प्रारभते— नान्द्यन्ते तत प्रविशति सूत्रधार" इति ।

नान्दी—रङ्गविघ्नोपशान्तये गीतवाद्यवादनादिरूपा सम्पादिता क्रिया 'नान्दीति' कथ्यते, "दुन्दुभिस्त्वानको भेरी भम्भा नासूश्च नान्द्यपि", इति कौसवचनविचारात् । अथवा नन्दयति=हर्षयति देवादीनिति 'नान्दी' "आशीर्वाचनस्युक्ता, स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते । देवद्विजन्मपादीना, तस्मान्नादीति सजिता" इति शास्त्रसमर्थनात् । अत्र गीतवाद्यादिप्रयुक्ता क्रियैव 'नान्दी'ति सूचितवान् महाकविर्भास । तस्या नान्द्या अन्ते=समाप्तौ, तत=नान्दी-

(नान्दी पाठ के अनन्तर सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्रधार—भीष्म तथा द्राण रूपी तट से युक्त जयद्रथरूपी जल वाले गन्धारराज (शकुनि) रूप गडढा है जिसमे तथा कर्ण, अश्वत्थामा, और

तीर्थः शत्रुनदी शरासिसिकता येन प्लवेनार्जुनः

शत्रूणा तरणेषु वः स भगवानस्तु प्लव. केशव ॥ १॥

समाप्त्यनन्तर, प्रविशति = प्रवेश करोति, सूत्रधार = नाटकस्य व्यवस्थापक प्रधाननट, सूत्र धारयतीति 'सूत्रधार' इति व्युत्पत्त्याधायकत्वात् ।

तल्लक्षणञ्च—' नाटयोपकरणादीनि 'सूत्रमित्यभिधीयते ।

सूत्र धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते ॥”

अन्वय — अर्जुन येन प्लवेन भीष्मद्रोणतटा जयद्रथजला गान्धारराजहृदा कर्णद्रोणिकृपोमिनक्रमकरा दुर्योधनस्रोतस शरासिसिकता शत्रुनदी तीर्थं, स प्लव भगवान् केशव शत्रूणा तरणेषु व (प्लव) अस्तु ॥१॥

व्याख्या—अर्जुन = मध्यमपाण्डव, येन प्लवेन = तरणसाधनविशेषेण नौकया, भीष्मद्रोणतटाम्—भीष्म = शान्तनुतनयश्च, द्रोण = द्रोणाचार्यश्चेति भीष्मद्रोणो, तावेव तटे = तीरे, यस्या ता जयद्रथजलाम्—जयद्रथ = सिन्धु-राज एव जलम् = आप, यस्यास्ता गान्धारराजहृदाम्—गान्धारराज = शकुनि 'दुर्योधनमातुल' एव हृद = सरोवर यत्र ताम् कर्णद्रोणिकृपोमिन-क्रमकराम् कर्ण = राधेय, द्रोणि = अश्वत्यामा, कृप = कृपाचाय, एते त्रयो यथाक्रमम् उर्मि = सरङ्ग, नक्र = ग्राहस्योपजातिविशेष, मकर = जल-जन्तुविशेष, यत्र तादृशी कर्णद्रोणिकृपोमिनक्रमकराम्, दुर्योधनस्रोतसम्—दुर्योधन = कुरुराज एव स्रोत = प्रवाह यस्या ताम्, शरासिसिकताम्—शरा. = बाण, असय = खड्ग एव सिकता = बालुका यस्या ताम्, शत्रु नदी—शत्रव = कौरवा एव नद्य यत्र ता शत्रुनदीम्, तीर्थं = पारमभूत् स प्लव = तरणिविशेष भगवान् = पद्भिर्घृश्वर्यसम्पन्न केशव = श्रीकृष्ण, शत्रू णाम् = अरीणाम्, तरणेषु = सन्तरणेषु व = युस्माकम्, प्लवोऽस्तु = भवतु,

कृपाचार्य ही क्रमश बडी बडी लहरें, नक्र तथा मगर हैं दुर्योधन ही महान् स्रोत है, बाण, खड्ग ही बालूकामय राशि हैं, इस प्रकार के शत्रु (कौरव) रूपी नदी को मध्यमपाण्डव अर्जुन ने जिस तरणिरूप भगवान् श्रीकृष्ण के आधार पर पार किया वही भगवान् श्रीकृष्ण शत्रुओ से विजय प्राप्त करने के लिए आपके भी नौका बनें ॥ १ ॥

एवमार्यमिश्रान्विज्ञापयामि । अये ! किन्तु खलु मयि विज्ञापनव्यग्र शब्द इव श्रूयते ? अङ्ग ! पश्यामि ।

(नेपथ्ये)

एते स्मो भो ! एते स्म ।

सूत्रधार — भवतु, विज्ञातम् ।

(प्रविश्य)

पारिपाश्विक — भाव कुतो नु खल्वेते,

“साङ्गमङ्गिनो रूपणात् समस्तवस्तुविषयात्मक रूपकालङ्कार ” । शार्ङ्गल-
विक्रीडित वृत्त ‘सूर्यार्ध्वमसजस्तता सगुरव ” इति लक्षणसमन्वयात् ।

एवमिति । एवम् = अनेन प्रकारेण, आर्यमिश्रान् = मान्यसहृदयान्,
विज्ञापयामि = निवेदयामि । अयं = आश्चर्यसूचक पदमिदम् किन्तु खलु =
कस्तावद् हेतु, मयि = सूत्रधारे, विज्ञापनव्यग्रे = निवेदनायोत्सुके सति, शब्द
इव अस्पष्टो ध्वनिविशेष, श्रूयत = श्रुतिगोचरा भवति । अङ्ग = हन्त,
पश्यामि = कीदृशोऽयं ध्वनिविशेष इति जानामि ।

(नेपथ्ये) नटानां वेशविन्यासस्थानं नेपथ्यमित्युच्यते । तत्र

एते इति । एते = पुरुषा वयम् स्म = स्थिता स्म ।

प्रविश्य रङ्गभूमिमागत्य । पारिपाश्विकं = प्रधानपात्रविशेष ।

भाव इति । भाव = आदरसूचक सम्वादनपदम्, तच्च पारिपाश्विकेन
सूत्रधाराय प्रयुज्यते “सूत्रधार वदेद्भाव इति वै पारिपाश्विकं ” इति
निर्देशात् ।

कुतो न इति । कुतो न = कस्माद्धेतो एते = पुरुषविशेष । इत्यग्रिम-

में पूज्य सहृदयो से निवेदन करता हूँ । अरे ! निवेदन के लिए व्यग्र
होते हुए मुझे नब्ब मुनाई दे रहा है, अच्छा, देख रहा हूँ ।

[नेपथ्य में]

अरे ! हम हैं, हम हैं ।

सूत्रधार—अच्छा, मैंने जान लिया ।

[प्रवेश कर]

पारिपाश्विक—श्रीमान् ! ऐसे क्यों ?

स्वर्गार्थमाहवमुखोद्यतगात्रहोमा

नाराचतोमरशतैर्विपमीकृताङ्ग ।

मत्तद्विपेन्द्रदशनोल्लिखितै शरीरै-

रन्योन्यवीर्यनिकषा पुरुषा भ्रमन्ति ॥ २ ॥

सूत्रधार—भार्षे ! किं नावगच्छसि । तनयशतनयशून्ये^१ दुर्योधना-

सम्बन्धोऽपेक्ष्यते ।

अन्वय—स्वर्गार्थम् आहवमुखोद्यतगात्रहोमा, नाराचतोमरशतै विपमी कृताङ्गा, मत्तद्विपेन्द्रदशनोल्लिखितै शरीरै अन्योन्यवीर्यनिकषा पुरुषा भ्रमन्ति ॥ २ ॥

व्याख्या—स्वर्गार्थम् = स्वर्लोकप्राप्तिकामनाया, आहवमुखोद्यतगात्र-होमा—आहवस्य = युद्धस्य, मुखे = मध्ये, उद्यत = प्रयुक्त, गात्राणाम् होम = आहुतिर्येस्ते वीरा नाराचतोमरशतै -नाराचानाम् = अयोमय शस्त्र-विशेषाणा, तोमराणाम् = तन्नामकशस्त्राणा, शतै = शतसख्याभि, विपमी-कृताङ्गा—विपमीकृतानि—विभिन्नव्रणै नतोन्नतानि अङ्गानि = शरीराणि येषा ते, किं वा मत्तद्विपेन्द्रदशनोल्लिखितै मत्तानाम् = मदमस्तानाम् द्विपेन्द्रा-णाम् = गजेन्द्राणाम् यानि दशनानि = दन्तास्तै उल्लिखितै = आहतव-शाञ्चिह्नितै, शरीरै = देहै परिलक्षिता सन्त, अन्योन्यवीर्यनिकषा—अन्योन्यस्य = परस्परस्य वीर्यम् = पराक्रम एव निकषा = परीक्षणपाषाणो येषा ते पुरुषा = पराक्रमशालिन राजपुरुषा भ्रमन्ति = इतस्तत गुदस्यले ध्रमण कुर्वन्ति ॥ २ ॥

सूत्रधार—भार्षे इति—सूत्रधारप्रयुक्त पारिपाश्विकाय सम्बोधनम् ।

स्वर्गप्राप्ति की कामना से सङ्ग्राम रूपी अग्नि के बीच अपने देह की आहुति करने वाले नाराच, तोमर आदि सैकड़ों शस्त्रों से जिनके शरीर क्षत विक्षत हो गये हैं, तथा मदमस्त हस्तियों के दातों से कटे हुए शरीर वाले आपस में एक दूसरे की बलपरीक्षा में सलग्न होकर इधर उधर घूम रहे हैं ॥ २ ॥

सूत्रधार—भार्षे ! क्या तुम नहीं जानते कि धृतराष्ट्र के पक्ष में

वशेषे धृतराष्ट्रपक्षे, पाण्डवजनार्दनावशेषे युधिष्ठिरपक्षे, राज्ञां शरीर-
समाकीर्णं समन्तपञ्चके,

एतद्रण हतगजाश्वनरेन्द्रयोधं

सङ्कीर्णलेख्यमिव चित्रपट प्रविद्धम् ।

युद्धे वृकोदरसुयोधनयोः प्रवृत्ते

योधा नरेन्द्रनिघनैकगृह प्रविष्टा ॥ ३ ॥

किन्नेति—किं नावगच्छति = कथं न जानाति । तनयानां = आत्मजानां
शतमिति तनयशतं तेन प्रयुक्तो यो नय = सामादिनीति तच्छून्ये =
निष्कलिते, दुयोधन एव अवशिष्टं यस्मिन् धृतराष्ट्रस्य पक्षे । धृतराष्ट्रपुत्रं
प्रयुक्ता अपि सामादामादयो नीतयः दानुशमनेऽप्यफला जाता, अतो मृतेषु
शतभ्रातृषु दुयोधन एव कौरवपक्षे जीवितोऽस्ति इति भावः । "तनयशतनयन-
शून्ये" इति पाठभेदे तु — तनयानाम् = आत्मजनानाम् शतम् = शतसंख्याकं तदेव
नयने = आशिषी, ताभ्यां शून्ये = अभावे धृतराष्ट्रपक्षे इत्येव योजनीयम् ।
पाण्डवजनार्दनावशेषे—पाण्डवाः = युधिष्ठिरादयः पञ्च पाण्डुपुत्राः, जनार्दन =
श्रीकृष्ण इमे अवशिष्टाः = अवशेषाः, यत्र तस्मिन् युधिष्ठिरपक्षे = पाण्डवानां
पक्षे, राज्ञाम् = तुपतीनाः "मृतानामिति शेषः तेषां शरीरं = देहैः, समा-
कीर्णं = व्याप्ते सति सामन्तपञ्चके = वृकोदरारययुद्धस्थले इत्यग्निमद्भोकेन
सम्बद्धघते—

अन्वयः—वृकोदरसुयोधनयोः युद्धे प्रवृत्ते योधा हतगजाश्वनरेन्द्रयोध
नरेन्द्रनिघनैकगृहं प्रविद्धम् सङ्कीर्णलेख्यं चित्रपटम् इव एतत् रणं
प्रविष्टा ॥ ३ ॥

व्याख्या—वृकोदरः = वृकनामाग्निरस्त्युदरे यस्य स भीमसेन,
सुयोधन = कुहराज तयोः युद्धे = सङ्ग्रामे किं वा गदायुद्धे, प्रवृत्ते =

उनके सौ पुत्र मारे गये और एक मात्र दुयोधन ही जीवित बचा है तथा
युधिष्ठिर के पक्ष में पाँचों पाण्डव गृहित श्रीकृष्ण के अवशिष्ट रहने पर मृत
राजाओं के शरीरों से आच्छादित वृद्धक्षेत्र में भीम एवं दुयोधन में परस्पर
गदा युद्ध प्रारम्भ होने पर यह युद्धक्षेत्र जो राजाओं की मृत्यु का एकमात्र

(निष्क्रान्ती)

स्थापना

—*—

(तत्र प्रविशन्ति भटास्त्रय)

सर्वे—एते स्मो भो । एते स्म ।

प्रथमः—

प्रस्तुते, हता = शस्त्रैः प्राप्तप्रहारा, गजा = हस्तिन, अश्वा — वाजिन, नरेन्द्रा = राजान, योद्धा = भटा यत्र तत् नरेन्द्रनिघनैकगृहम्—नरेन्द्राणा = वृषतीना निघनस्य, = बिलयस्य, एकमात्र गृहम् = स्थानम् अत्र तत् प्रविद्धम् = प्रकर्षेण विद्ध प्रस्फोटित वा, सङ्कीर्णलेख्यम् — परस्पर सलभानि लेख्यानि = चित्रितानि यत्तत् चित्रपटम् = आलेख्यस्थानम् इव = सदृशम् एतत् = कुरुक्षेत्रामिधरणम् = रणक्षेत्रम्, प्रविष्टा = प्रवेशमकुर्वन् विविध-शलाकाभिश्चित्रित सन्चित्र यथा प्रविद्धमवलोचयते तथा विभिन्नास्त्रैः प्रहृतानि शरीराणि इतस्ततो व्याप्तानि यत्र तत्रणस्थलमपि प्रविद्धमवभासते इत्युपमा । वृत्तम् वसन्तलिका ॥ ३ ॥

स्थापना—वर्णनीयविषयस्य सक्षितप्रस्तुति स्थापना कथ्यते, इत्यस्यापर-पर्यायी प्रस्तावनामुखाद्यपि स्त ।

स्थापनातन्तर त्रयो योद्धार रङ्गस्थल प्रविशन्ति ।

सर्वे = त्रयो योद्धार, —एते = भटा । तत्र प्रथमो योद्धा—

गृह स्वरूप है जहाँ मरे हुए हाथी, घोड़े, राजा तथा सैनिक समूह से आक्रान्त होने के कारण रेखाङ्कित चित्रपट के समान प्रतीत हो रहा है, उस समरभूमि में सैनिकगण प्रवेश कर रहे हैं ॥ ३ ॥

(दोनो चले जाते हैं)

स्थापना

(इसके बाद तीन योद्धा प्रवेश करते हैं)

सभी—अये ! हमलोग यहाँ हैं, यहाँ हैं ।

वैरस्यायतनं बलस्य निकप मानप्रतिष्ठागृह
 युद्धेष्वप्सरसां स्वयंवरसभां शौर्यप्रतिष्ठा नृणाम् ।
 राज्ञा पश्चिमकालवीरशयनं प्राणाग्निहोमक्रतु
 सम्प्राप्ता रणसज्जमाश्रमपदं राज्ञा नभःसङ्क्रमम् ॥४॥

अन्वय.—(वयम्) वैरस्य आश्रयनम्, बलस्य निकप, मानप्रतिष्ठा, युद्धेषु अप्सरसां स्वयंवरसभां नृणाम् शौर्यप्रतिष्ठा, राज्ञा पश्चिमकालवीरशयनं, प्राणाग्निहोमक्रतु नम सङ्क्रम रणसज्जम्, आश्रमपद सम्प्राप्ता ॥ ४ ॥

व्याख्या—वैरस्य = शत्रुताया, आयतनम् = गृहम्, पाठान्तरे आश्रयनम् = दर्पोचित बलस्य = पराक्रमस्य, निकपम् = परीक्षणप्रस्तर, मान = स्वाभिमान प्रतिष्ठा = अन्येन यत् प्राप्तसम्मानम् तयो मानप्रतिष्ठयो, गृहम् = म्येयस्यलम्, युद्धेषु = सङ्ग्रामाङ्गणेषु, अप्सरसां = देवाङ्गनानाम्, स्वयंवरसभा = स्वयं वरयतीनि स्वयंवरस्तदर्थमाहुता या सभा तद्रूपमाश्रमपदमित्यग्रेण सम्बन्धः । नृणाम् = मानवानाम्, शौर्यम् = शूरता च प्रतिष्ठा = सम्मानं च इति शौर्यप्रतिष्ठाम् राज्ञाम् = भूपतीनाम्, पश्चिमकाले = अन्तकाले, वीरशयनम् = वीरतामूचिकाशय्या, प्राणानाम् अग्निहोमाभिर्घ्नतु = यज्ञम्, नम सङ्क्रमम् = अत्र नभः इति पदेन सूर्यलोकं सङ्कृतयति तेन सङ्क्रमित रणसज्जम् = युद्धनामकम्, आश्रमपदम् = आश्रमस्थलम्, सम्प्राप्ता = आगता वयमिति आक्षिप्यते । अश्रैकस्मिन्नेव रणनामनि आश्रमपदे आयतनदीनामनेकधर्माणामारोपदशंनान्मालारूपकालङ्कार । सार्द्धविक्रीडितञ्च वृत्तम् ॥ ४ ॥

पहला—हमलोग ऐमे सङ्ग्राम सज्जक आश्रम स्थल मे पहुँच आये हैं, जो शत्रुता के कारण योद्धाजो वा परस्पर होने वाले आक्षेप कटाक्ष आदि का स्थान है, शूरता की बसौटी है, मान और प्रतिष्ठा का निवेदन है, समर मे अपराङ्मुख योद्धाओं का वरण करने के लिए स्वर्गस्त्रियों की स्वयंवर सभा है, पुरुषों के वीरता का प्रतिष्ठास्थल है, राजाजो की अन्तकालीन वीरशय्या है, प्राणाहुति के लिए अग्निहोत्र नामक यज्ञ तथा मृत भूपतियों को सूर्यलोक पहुँचाने का माना साधन है ॥ ४ ॥

द्वितीय.—सम्यग्भवानाह ।

उपलविपमा नागेन्द्राणा शरीरधराधरा

दिशि दिशि कृता गृध्रावासा हतातिरथा रथा ।

अवनिपतय स्वर्गं प्राप्ता क्रियामरणे रणे

प्रतिमुखमिमे तत्तत्कृत्वा चिर निहताहता ॥ ५ ॥

अन्वय — क्रियामरणे रणे नागेन्द्राणा शरीरधराधरा उपलविपमा दिशि दिशि गृध्रावासा कृता रथा हतातिरथा अवनिपतय स्वर्गं प्राप्ता, इमे प्रतिमुखम् निहता चिरम् तत् तत् कृत्वा हता ॥ ५ ॥

व्याख्या—क्रियामरणे=परस्पर शस्त्रप्रहारादिक्रियया मरणम्=मृत्यु यस्मिन् तस्मिन् रणे=सङ्ग्रामे, नागेन्द्राणाम्=करिवराणाम्, शरीर-धराधरा—शरीराणि=देहा एव धराधरा=धरा=पृथ्वी तदाघृता धरा=पर्वता, उपलविपमा-उपलै=पापाणखण्डे विपमा=उच्चावचा, अपि च दिशि दिशि=प्रतिदिशम्, गृध्रावासा—गृध्रा=पक्षिविशेषास्तै कृता आवासा=निवासस्थलानि, रथा=अश्ववाहनानि, हतातिरथा—हता=मरण प्राप्ता अतिरथा=महारथिनो योद्धार, अवनिपतय=भूपतय, स्वर्गं=देवलोक, प्राप्ता=गता, इमे=योद्धार, प्रतिमुखम्=मुख मुख प्रति वर्तत इति प्रतिमुख आमने सामने इति लोकभाषायाम्, निहता=परस्पर वृत्तप्रहारा चिर=बहुकाल यावत्=नानासप्रयोगरूप व्यापार कृत्वा हता=मृता इत्यर्थ । अत्र “धरा-रथा रणे हतादीना पदानामावृत्तित्वेऽपि भिन्नार्थ-कत्वाद् घमकालङ्कार । “रसधुगहयैस्तौ औ स्तौ गो यदा हरिणी तदा” इति लक्षणसम्बन्धाद् ‘हरिणी’ वृत्तम् ॥ ५ ॥

दूसरा—आपने ठीक कहा है ।

इस समरभूमि में मृत गजेन्द्रों के शरीर, पर्वत की भाँति प्रतीत होते हैं, शव भास का अंश करने वाले गिद्धों ने प्रत्येक दिशाओं में अपना आवास बना लिया है । महारथी योद्धाओं के मारे जाने के कारण रथ रिक्त पड़े हुए हैं । मरे राजा स्वर्ग सिंघार गये हैं तथा योद्धागण एक दूसरे पर परस्पर शस्त्राघात करते हुए गिर कर मरे पड़े हैं ॥ ५ ॥

तृतीय — एवमेतत् ।

करिवरकरूपो वाणविन्यस्तदर्भो

हतगजचयनोच्चो वैरवह्निप्रदीप्त ।

ध्वजविततवितान सिंहनादोच्चमन्त्र

पतितपशुमनुष्य सस्थितो युद्धयज्ञ ॥ ६ ॥

अन्वय.—करिवरकरूप वाणविन्यस्तदर्भे. हतगजचयनोच्च वैरवह्नि-
प्रदीप्त ध्वजविततवितान सिंहनादोच्चमन्त्र पतितपशुमनुष्य युद्धयज्ञ
सस्थित ॥ ६ ॥

व्याख्या—करिवराणाम् = गजेन्द्राणाम्, करा = गुण्डदण्डा एव यूप =
यज्ञप्रयुक्ता स्तम्भा एव यत्र म करिवरकरूप, वाणा = शरा एव विन्य-
स्ता. = प्रकीर्णा, दर्भा = कुशा यत्र स वाणविन्यस्तदर्भं, हता = उपरता
गजा = हस्तिन एव चयनानि = पुष्पसमूहस्त्रं उच्च = उत्थित, वैरस्य =
शत्रुताया, वह्नि = अग्नि यत्र, प्रदीप्त = प्रज्वलित, ध्वजा = पताका
एव वितता = विस्तृता विस्तृता विताना पाठान्तरे तु विमाना = स्वर्ग-
गमनमाघनानि यत्र, यत्रेति युज्यते, सिंहनादा = वीराणा सिंहवदगर्जना एव
उच्चमन्त्र = उच्चैरुदात्तो मन्त्रो यत्र स पतितपशुमनुष्य — पतिता = मृत्वा
भूमौ पतिता पशव = बलिकर्माणि पशुरूपण प्रयुक्ता मनुष्या = परिमानवा
यत्र स युद्धयज्ञ = सङ्ग्रामाध्वर, सस्थित = इदानीमवरुद्ध । अत्रापि रूपका
लङ्कार । "ननमयययुतेय मालिनी भोगिलीकै" रिति लक्षणानुसरणाग्निलिनी
वृत्तम् ॥ ६ ॥

तीसरा—यह ऐसा ही है ।

जिस युद्धरूपी यज्ञ म बड़े बड़े हाथियों के गुण्डदण्ड ही पूषस्थानीय हैं,
इधर उधर विखरे हुए वाण ही कुशा हैं, मृत हस्तिसमूह ही मानो पुष्पोकी
ढेर है शत्रुता ही दहकती हुई अग्नि है, ध्वजा ही फैला चदोवा है, सैनिक
की सिंहनाद के समान गर्जना ही पवित्र मन्त्रोच्चारण है तथा मरे हुए
मनुष्य ही पशु रूप बलि है, वह अथ समाप्त ही होत वाला है ॥ ६ ॥

१ 'विमान' इति पाठांतरम् ।

प्रथमः—इदमपर पश्येतां भवन्ती ।

एते परस्परशरैर्हृतजीवितानां

देहै रणाजिरमही समुपाश्रितानाम् ।

कुर्वन्ति चात्र पिशिताद्रंमुखा विहङ्गा

राज्ञा शरीरशिथिलानि विभूषणानि ॥ ७ ॥

द्वितीय —

प्रसक्तनाराचनिपातपातितः समग्रयुद्धोद्यतकल्पितो गजः ।

विशीर्णवर्मा सशर सकामुंको नृपायुधगारमिवावसीदति ॥ ८ ॥

अन्वयः—अत्र एते पिशिताद्रंमुखा विहङ्गा परस्परशरै हृतजीवितानां देहैः रणाजिरमही समुपाश्रितानाम् राज्ञा विभूषणानि शरीरशिथिलानि कुर्वन्ति ॥ ७ ॥

व्याख्या—अत्र = युद्धभूमौ, एते = अग्रे विद्यमाना पक्षिण, पिशिताद्रंमुखा — पिशितेन = अभिनवमासखण्डेन, आद्रंम् = सरमम् मुखम् = चञ्चुपुटा येषां ते विहङ्गा. = पक्षिणः परस्परशरैः — परस्परस्य = अन्योऽन्यस्य, शरैः = सायकैः, हृतजीवितानाम् — हृतानि = विनष्टानि, जीवितानि = अमवो येषां तेषाम्, देहैः = मृतशरीरैः रणाजिरम् = सङ्ग्रामाङ्गणस्थानम्, समुपाश्रितानाम् = समागतानां, राज्ञाम् = नृपतीनां, विभूषणानि = मुकुटकेयूरादीन्याभरणानि, आकृष्य शरीरशिथिलानि — शरीराद् = देहाद्, शिथिलानि कुर्वन्ति = प्रतिपादयन्ति ॥ वसन्ततिलका वृत्तम् ।

अन्वय — प्रसक्तनाराचनिपातपातित समग्रयुद्धोद्यतकल्पित., विशीर्णवर्मा सशरैः सकामुंको गज नृपायुधगारम् इव अवसीदति ॥ ८ ॥

व्याख्या—प्रसक्तनाराचनिपातपातित — प्रसक्तानाम् = प्रतियोद्धारं

पहला—और आप दोनों यह भी देखिये ।

मास से आद्रं मुख वाले ये पक्षी परस्पर शस्त्रप्रहार से मृत्यु को प्राप्त सङ्ग्रामाङ्गण में पड़े हुए राजाओं के शरीर से आभूषणों को खींच रहे हैं ॥ ७ ॥

दूसरा—युद्ध के लिए सर्वविध मजाये गये उत्तमक हाथी के शरीर पर

तृतीय.—इदमपर पश्येता भवन्ती ।

माल्यैर्ध्वंजाग्रपतितै वृत्तमुण्डमाल

लान्कैकसायकवर रथिन विपन्नम् ।

जामातर प्रवहणादिव बन्धुनार्यो

हृष्टा शिवा रथमुखादवतारयन्ति ॥ ९ ॥

निहन्तु प्रथिमानाम्, । नाराचानाम् = धनुर्विशेषाणाम्, निपातेन = प्रक्षेपण, पातित = भूमी पातित, समग्रयुद्धोद्यतकल्पित — समप्राणा = समस्तानां, युद्धाना वृत्ते उद्यत = उत्साहान्वित सन् आत्मना कल्पित = सज्जीकृत, विशीर्णवर्मा—विशीर्णम् = क्षत्रुणां प्रहारै प्रभ्रुकुटित वर्मं = कवच तस्य स, सशरं = बाणसहितोऽस्ति इति सशर, सकार्मुक, गज = हस्ती, नृपायुधामारम्—नृपाणाम् = राज्ञाम् अयुधामारम्—शस्त्रालयग्रहम् इव = सदृशम्, अवसीदति = विपन्नो भवति । अत्र वशस्यवृत्तम्— जतो तु वशस्यमूदीरितो जरी” इति लक्षणात् ॥ ८ ॥

अन्वय — हृष्टा शिवा ध्वजाग्रपतितै माल्यै वृत्तमुण्डमाल रत्नैकसाय-
ब्रधर विपन्नम् रथिन बन्धुनार्यं प्रवहणात् जामातरम् इव रथमुखात्
अवतारयति ॥ ९ ॥

व्याख्या— हृष्टा = प्रफुल्लिता, शिवा = शृङ्गालस्त्रिय, ध्वजाग्र-
पतितै—ध्वजानाम्=केतूनाम् अग्रत, पतितै = स्थलितै माल्यै = पुष्प-

निशाना साध कर निरन्तर बाण बी वर्षा की गयी है, जिसके फलस्वरूप उसका कवच टूट गया है, उस पर बाण लगे हुए हैं तथा धनुष पटे है, जिससे यह हाथी मानो राजाओं के शस्त्रागार के समान नष्ट भ्रष्ट हो रहा है ॥ ८ ॥

तीमरा—और आप दोनों इमे भी देखें ।

आनन्दगन होकर शृङ्गालवधुयें पताका के अग्रभाग से गिरी हुई मालाओं से अपने शिर को सजोती तीक्ष्ण बाणा स क्षत शरीर वाले रथी को रथ से गाँचती हुई ऐसी प्रतीत हो रही है, मानो सम्बन्धियों की स्त्रियाँ जमाता को पालकी से नीचे उतार रही हैं ॥ ९ ॥

सर्वे—अहो नु खलु निहतपतितगजतुरगनररुधिरकलिलभूमि-
प्रदेशस्य विक्षिप्तवर्मचर्मातिपत्रचामरतोमरशरकुन्तकवचकबन्धादिपर्या-
कुलस्य शक्तिप्रासपरशुभिण्डपालशूलमुसलमुद्गरवराहकर्णकणपर्पण-
शङ्कुत्रासिगदादिभिरायुधैर्वकीर्णस्य समन्तपञ्चकस्य प्रतिभयता ।

सर्जैः, कृतमुण्डमालम् येन, तम्, रत्नैकसायकधरम्—रत्नैः = विभिन्नमणिभि
युक्तः एकः सायकेषु = शरेषु तस्य वर = उत्तम यः तम्, पाठान्तरे तु-
सायकस्य = शरस्य, धर = धारक इति सायकधर एकश्चासौ सायकवरश्चेति
एकसायकवरः, लग्न = आविद्ध यस्मिन् स तम्, विपन्नम् = विपण्ण प्राण-
रहितं वा, रथिनम् = रथारूढं जनं योद्धार वा, बन्धुनार्यं = मम्बन्धिस्त्रिय,
प्रवहणात् = शिविकात्, जामातरम् = पुत्रीपतिम् इव = सदृश, रथमुखात् =
रथस्य अप्रत, अवतारयन्ति = अध भूमौ आनयन्तीत्यर्थं । अत्रोपमालङ्कारः
वसन्ततिलका वृत्तञ्च ॥ ९ ॥

सर्वे इति । 'अहो' इति विस्मयजनक विशेषणम् । निहतपतितगजतुरग-
नररुधिरकलिलभूमिप्रदेशस्य—निहता = शस्त्रास्त्रं प्रहृता अतएव मृता सन्त
पृथिव्या पतिता गजा = करिण, तुरगा = वाजिन, नरा मनुष्याश्च ये
तेषा रुधरेण = शोणितेन, कलिल = पङ्किल, भूमिप्रदेश = भुभाग यत्र
तस्य, विक्षिप्तवर्मचर्मातिपत्रचामरतोमरशरकुन्तकवचकबन्धादिपर्याकुलस्य-
विक्षिप्तानि = यत्र तत्रावकीणानि, वर्माणि = कवचनानि, चर्माणि अस्त्रविशेष
'ढाल' इति हिन्दी भाषाया कथ्यते, आतपत्राणि = छत्राणि, चामराणि =
ग्राहिणी, तोमराणि = लीहनिर्मिता दण्डा, "शबरी" इति लोके कथ्यते,
शराः = बाणा, कुन्ता = भल्लका कवचा = उराच्छादका, कबन्धा = छिन्न
शिरासि शरीराणि, आदिपदादन्यानि क्षत विक्षतान्यङ्गानि यानि तै

सभी योद्धा—अरे यह कुरुक्षेत्र अत्यधिक भयानक लग रहा है, क्योंकि
यहाँ का भूप्रदेश मृत हाथी, घोर मनुष्यों के रक्त से व्याप्त है तथा इधर उधर
विखरे पड़े कवच, ढाल, तोमर, बाण, भाला कवच आदि अस्त्रों से भरा
पडा है एव वरछी, प्रास, परशु, भिण्डपाल, शूल, मुसल, मुद्गर, वराहकर्ण,
शङ्कु, और भयकर गदा आदि अनेक आयुध यहाँ विखरे हुए हैं ।

प्रथम — इह हि,

रुधिरसरितो निरसीर्षेते हस्तद्विपसद्भ्रमा

गुणतिरहितं सरतं सूर्यैर्हृन्ति रथाद् हमा ।

पतितशिरस पूर्वाभ्यासाद् प्रवन्ति नमन्धवा

पुङ्गवरहिता मत्ता नागा भ्रमन्ति यतस्तत ॥ १० ॥

पर्माकुलस्य — भावतावितस्य, पतिपासहाटकभिषिञ्जालसूतगुणतगुणवरनराह-
 कर्णक नकणसद्भ्रुवादिगवाविगिरामुर्दानीर्षेस्य — पतिप्रभृति मदीं मापद्
 निभिसामुर्दानी — सरवारतै अधनीर्षेस्य व्याप्तस्य समन्वयश्चकस्य = गुणोत्तरस्य,
 प्रतिभयता = भयकारितस्य इति ।

अन्वय — हस्तद्विपसद्भ्रमा रुधिरसरितो निरसीर्षेते गुणरहितं सूर्य
 हमा रथाद् हृन्ति पतितशिरस नमन्धवा पूर्वाभ्यासाद् प्रवन्ति, पुङ्ग-
 रहिता मत्ता नागा यत तत भ्रमन्ति ॥ १० ॥

व्याख्या — हमा = उपरसा द्विपा = मजा एव सद्भ्रमा = स्रोतः ।
 रुधिरसरित = गोभिलनद्य निरसीर्षेते पारं मम्यते सूर्यैरिति रोष, गुण-
 रहितं = गुणनिभि रहितं = सूर्ये अति च सरतं = गुणस्वावधोगच्छद्भि
 सूर्ये = सारनिभि अधिलक्षिता हमा = शब्दा, रथाद् = रथवमान्,
 चहति = कर्षति ममयित वा पतितशिरस = तत्प्राणां प्रहारेण क्षिप्ताः वि-
 वा अधोगत्यानि शिरांसि रोषां से नमन्धवा शिरसूत्या देहा, पूर्वाभ्या-
 साद् = शिरोभ्यासाद् प्राण सञ्चरणादित्रियासूयो योऽभ्यास तद्भाद्
 प्रवन्ति = इतरतः प्रवन्ति पुङ्गवरहिता = वाहकपुङ्गवै विहीना मत्ता =
 मयोमत्ता, नागा = पतितय यतस्तत = मय तव, भ्रमन्ति = शिरसूत्या

पहुला — इत रणभूमि मे —

मरे हुए हाथियो के शरीर से निकले रक्त प्रवाह वाली मद्यियां बहुत
 रहीं हैं थोड़े, राजाओं से युद्ध एवं सारनियों रहित रणो को लीज रहे हैं ।
 कुछ कर गिरे हुए शिर वाले अत विषय शरीर, पूर्वाभ्यास के कारण इतर
 उधर भाग छोड़ कर रहे हैं । उनारो के अभाव में मयोमत्त हाथी मय तव
 भ्रमण कर रहे हैं ॥ १० ॥

द्वितीयः—इदमपर पश्येतां भवन्तौ । एते,

गृध्रा मधूकमुकुलोन्नतपिङ्गलाक्षा

दैत्येन्द्रकुञ्जरनताङ्कुशतीक्ष्णतुण्डा ।

भान्त्यम्बरे विततलम्बविकीर्णपक्षा

मांसैः प्रवालरचिता इव तालवृन्ताः ॥ ११ ॥

भूत्वा गच्छन्तीति । हरिणीछन्द ॥ १० ॥

अन्वयः—मधूकमुकुलोन्नतपिङ्गलाक्षा दैत्येन्द्रकुञ्जरनताङ्कुशतीक्ष्ण-
तुण्डाः विततलम्बविकीर्णपक्षा गृध्रा अम्बरे मांसैः प्रवालरचिताः तालवृन्ता
इव भान्ति ॥ ११ ॥

व्याख्या—मधूकमुकुलोन्नतपिङ्गलाक्षा —मधूकस्य = मधुवृक्षस्य 'महुआ'
इति लोकप्रसिद्धस्य मुकुलवत् = कुड्मलसदृश, उन्नतानि = किञ्चिदुच्चत्वमा-
सानि पिङ्गलानि = पीतवर्णानि, अक्षीणि = चक्षूपि येषां ते, दैत्येन्द्रकुञ्जर-
नताङ्कुशतीक्ष्णतुण्डा दैत्येन्द्रस्य = अनुराधिपस्य बलेर्यं कुञ्जर = गज त
शासितुं यो नताङ्कुश नतोऽग्रभागो यस्य तादृशोऽङ्कुशस्तद्वत् तीक्ष्णानि
तुण्डानि = मुखानि येषां ते, विततलम्बविकीर्णपक्षा —वितताः = अतिदीर्घा,
अतएव लम्बा = लम्बायमाना, विकीर्णा = प्रसारिता पक्षा = ह्या येषां
ते, गृध्रा = गृध्रा, अम्बरे = आकाशे, मांसैः = मासखण्डैर्युक्ता प्रवाल-
रचिता = प्रवालैर्विद्रुमणिभिः निष्पादिता, तालवृन्ता = तालनाम्नो वृक्षस्य
विरचितं वृन्त = व्यजनम्, इव = सदृशं, भान्ति = शोभन्ते । अत्र 'वसन्त-
तिलका' वृत्तं वर्तते ॥ ११ ॥

दूसरा—आप दोनो यह भी देखें

ये महुए की कालिका की भाँति बड़े बड़े एव पीली आँखो वाले दैत्यराज
बलि के हाथी को वश में करने के लिए प्रयुक्त अंकुश के समान तीक्ष्ण चोच
वाले तथा फँसे हुए लम्बे पखो वाले गिद्ध अपने मुख में मांस के टुकड़े को
लेकर उड़ते हुए प्रवाल मणि से शने ताड़ के पख के समान प्रतीत हो
रहे हैं ॥ ११ ॥

तृतीयः—

एषा निरस्तहयनागनरेन्द्रयोधा

व्यक्तीकृता दिनकरोप्रकरैः समन्तात् ।

नाराचकुन्तगरतोमरखड्गकीर्णा

तारागण पतितमुद्ग्रहतीव भूमिः ॥ १२ ॥

प्रथमः—अहो ईदृश्यामप्यवस्थायामविमुक्तशोभा विराजन्ते क्षत्रियाः । इह हि,

अन्वय.—निरस्तहयनागनरेन्द्रयोधाः, दिनकरोप्रकरैः समन्तात् व्यक्तीकृता, नाराचकुन्तगरतोमरखड्गकीर्णा एषा भूमिः पतितं तारागणम् उद्ग्रहति इव ॥ १२ ॥

व्याख्या—निरस्तहयनागनरेन्द्रयोधाः—निरस्ता = उपरताः हया = अश्वा, नागा = गजा, नरेन्द्राः = नृपतयः, योधा = सैनिका यत्र मा, दिनकरोप्रकरैः—दिनकरस्य = सूर्यस्य- उप्रकरैः = प्रचण्डानुमि, समन्तात् = परितः, व्यक्तीकृता = प्रकाशिता, नाराचकुन्तगरतोमरखड्गं विविधार्धः कीर्णा = आच्छादिता व्याप्ता वा, एषा भूमिः = पुरोदृश्यमाना युद्धभूमि, पतितम् = गगनात् स्वलित, तारागणम् = तारखण्डम् उद्ग्रहति = दधाति इव । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कार, वसन्तानलकावृत्तम् ॥ १२ ॥

प्रथम इति । “अहो” इत्याश्चर्यसूचक पदम् । ईदृश्यामपि = पञ्चत्व-मवाप्तायामपि, अवस्थायाम् = दशायाम्, अविमुक्तशोभा = अत्यक्तप्रभाः क्षत्रिया = राजन्य, विराजन्ते = शोभन्ते । इह हि = यत —

तीसरा—मारे गये घोड़े, हाथी, राजाओ तथा सैनिकों से व्याप्त सूर्य की तीक्ष्ण किरणों से प्रकाशित चारों तरफ़ ज़िखरे हुए नाराच, शर, कुन्त तोमर आदि दस्त्रों वाली यह समरभूमि, मानो आकाश से टूट कर गिरे हुए तारासमूह की शोभा धारण करती हुई दीख रही हैं ॥ १२ ॥

पहला—वाह ! इस अवस्था (मृतावस्था) में भी क्षत्रियों के शरीर में काँति विद्यमान है । क्योंकि—

स्रस्ते'द्वतितनेत्रपट्पदगणा ताम्रोष्ठपत्रोत्करा
 भ्रूभेदाश्रितकेसरा स्वमुकुटव्याविद्धसवतिका ।
 वीर्यादित्यविवोधिता रणभुखे नाराचनालोन्नता
 निष्कम्पा स्थलपद्मिनीव रचिता राज्ञामभीतैर्मुखै ॥१३॥

अन्वय — रणभुखे राज्ञाम् अभीतैर्मुखै एषा सत्रो (त्वो) द्वतितनेत्रपट्पदगणा, ताम्रोष्ठपत्रोत्करा भ्रूभेदाश्रितकेसरा स्वमुकुटव्याविद्धसवतिका वीर्यादित्यविवोधिता रणभुखे नाराचनालोन्नता निष्कम्पा स्थलपद्मिनी इव रचिता ॥ १३ ॥

व्याख्या—रणभुखे = युद्धमध्ये, राज्ञाम् = नृपतीनाम्, अभीतै = अभयै मुखै = वदनै, एषा = कुरुक्षेत्राभिघ्ना भूमि, सत्रोद्वतितनेत्रपट्पदगणा—सत्रे = रणक्रांती पाठान्तरे सत्त्वेन = बलेन, सत्र सत्त्वयो उद्वतितानि = प्रस्फुटितानि, नेत्राणि = अक्षीणि एव पट्पदानाम् = मधुकराणाम्, गण = समूह यस्या सा, “स्रस्ते” इति पाठे तु स्रस्तानि = शिथिलीभूतानि, उद्वतितानि = विपरीत गतानि “उल्टा” लोकभाषायाम्, नेत्राणि = चक्षुषि एव पट्पदानाम् = भ्रमराणाम् गण = सङ्घ यत्र सा, ताम्रोष्ठपत्रोत्करा—ताम्रा रक्तवर्णा ओष्ठा एव पत्रोत्करा = पल्लवचया यत्र सा, भ्रूभेदाश्रितकेसरा = भ्रूभेदा एव अश्रिता = प्रकीर्णा केसरा = परागा यत्र सा, स्वमुकुटव्याविद्धसवतिका — स्वमुकुटानि = राज्ञा शिरोभूषणानि एव व्याविद्धा = न्यूनविकासिता सवतिका = अभिनवदलानि यस्या सा, वीर्यादित्यविवोधिता — वीर्यमेव = शौर्यमेव, आदित्य = सूर्य, तेन अववोधिता = प्रबुद्धा विकासमवाप्ता वा, नाराचनालोन्नता = नाराच = सायका एव नामानि =

युद्ध के समय विस्फारित नेत्ररूप मधुकर से युक्त ताम्र के समान लाल र ओष्ठरूप पत्रो वाली, भौ रूप केसर वाली यह रणभूमि राजाओ के मुखो से स्पलकमालिनी सी दीख रही है जो राजाओ के मुकुट रूपी कोयलो से सजी हुई, क्षात्रवल रूप सूर्य से विकसित तथा वाणरूपी कमलनाल से उन्नत है ॥ १३ ॥

द्वितीय — ईदृशानामपि क्षत्रियाणा मृत्यु प्रभवतीति न शक्य खलु विषमस्यै पुरुषै'रात्मबलाघान कर्तुम् ।

तृतीय — 'मृत्युरेव प्रभवति क्षत्रियाणामिति ।

प्रथम — क सशय ।

द्वितीय — मा मा भवानेवम् ।

स्पृष्ट्वा खाण्डवधूमरञ्जितगुण सगप्तकोत्सादन

स्वर्गात्रन्दहर निवातरुवचप्राणोपहार धनु ।

कमलदण्डा , ती उन्नता = ऊर्ध्वगता सती निष्कम्पा = स्थिरा भूमिर्वा, स्थल-
कमलिनी = स्थलनलिनी इव, रचिता = कल्पिता । शार्दूलविशीडित
वृत्तम् ॥ १३ ॥

द्वितीय इति । द्वितीयो भट मारुचर्यमाह—ईदृशानामिति । ईदृ-
शानाम् = अतिवीर्यवताम्, क्षत्रियाणाम् = राजवश्यानाम् अपि मृत्यु = काल,
प्रभवति = समर्थो भवति । विषमस्यै = आपत्तियुक्तै राजपुरुषै राज्ञाम् =
क्षत्रियाणा बलस्य = पराक्रमस्य आदा (घा) न सर्वतो विनाश (साहाय्य वा)
कर्तुं न शक्यम् खलु इति निश्चय ।

अन्वय — पार्थेन खाण्डवधूमरञ्जितगुण सशसकोत्सादन स्वर्गा-

दूसरा—ऐसे वीर क्षत्रियो पर भी मृत्यु अपना प्रभाव दिखा ही देती है,
वस्तुतः प्रतिकूल परिस्थिति वाले पुरुष अपना पौरुष दिखान में सक्षम नहीं
हो पाते ।

तीसरा—क्या क्षत्रियो पर भी मृत्यु का प्रभाव पड़ता है ?

पहला—इसमें क्या सन्देह ?

दूसरा—नहीं, नहीं, आप ऐसा न कह—

राज बर्जुन ने खाण्डव वन में धूम से धूसरित प्रत्यञ्चा वाले, त्रिगर्त
देश के सशसको का विनाशक, स्वर्गस्थितो की व्यथा को दूर करने वाले,

१ पाठान्तरम्—राजबला (दा घा) न ।

२ किं प्रभवति क्षत्रियाणामिति । इति पाठभेद ।

पार्थेना'स्रबलान्महेश्वररणक्षेपावशिष्टै शरै-

दंपोत्सिक्तवशा नृपा रणमुखे मृत्यो प्रतिग्राहिता ॥ १४ ॥

सर्वे—अये शब्द ।

किं मेघा निनदन्ति वज्रपतनैश्चूर्णीकृता पर्वता

निघर्तैस्तुमुलस्वनप्रतिभयै किं दार्यते वा मही ।

क्रन्दहर निवातकवचप्राणोपहार धनु स्पृष्ट्वा महेश्वररणक्षेपावशिष्टै शरै
दपोत्सिक्तवशा नृपा रणमुखे अस्त्र बलात् मृत्यो प्रतिग्राहिता ॥ १४ ॥

व्याख्या — पार्थेन = अर्जुनेन खाण्डवधूमरञ्जितगुणम् - खाण्डवस्य =
खाण्डवनामारण्यस्य दाहावसरे उद्धतेन धूमेन रञ्जित = श्यामलीभूत गुण =
प्रत्यञ्चा यस्य तत्, सशतकोत्सादनम्—सशतकानाम् = त्रैगर्तानाम् उत्सा-
दनम्, स्वर्गाक्रन्दहरम्—स्वर्गस्य = नाकलोकस्य य आक्रन्द = उत्पीडनम् तद्-
हृत्तरिम्, निवातकवचप्राणोपहारम्—निवातकवचानाम् = कुवेरस्य यद्राजकोप
स्तस्य रक्षकाणा यक्षविशेषाणा प्राणा = असव एव उपहार = उपायन यस्य
तम्, धनु = गाण्डीवनामान कार्मुक स्पृष्ट्वा = गृहीत्वा, महेश्वररणक्षेपाव-
शिष्टै—महेश्वर = शङ्कर किरातवेषधरस्तेन साद्धं यो रण = सडग्रामस्तत्र
क्षेपात् = सञ्चालनाद् अवशिष्टै शरै = बाणै दपोत्सिक्तवशा—दपस्य =
अभिमानस्य यदुत्सिक्तम् = आधिष्य तद्वशा = तदायता नृपा = राजान
रणमुखे = युद्धस्थले अस्त्र बलात् = शस्त्रबलप्रयोगाद् मृत्यो = यमस्य प्रति
ग्राहिता = यमपुर प्रेषिता इत्यर्थं । अत्रातिशयोक्तिरलङ्कार शाद्वल
विक्रीडितञ्च वृत्तम् ॥ १४ ॥

अन्वय — मेघा निनदन्ति किम्, (किं वा) वज्रपतनैश्चूर्णीकृता

निवातकवच जातीय राक्षसो का सहारक गाण्डीव धनुष को धारण कर
बलपूर्वक किरातवेशधारी भगवान् शङ्कर के साथ किए गये सडग्राम मे बचे
हुए बाणो द्वारा मदोद्धत राजाओ को इस समराङ्गण मे मृत्युलोक पहुँचा
दिया है ॥ १४ ॥

सभी—अरे ! यह कैसा शब्द है ?

१ “पार्थेनाद्य” इत्यपि पाठ ।

किं मुञ्चत्यनिलावधूतचपलक्षुब्धोमिमालाकुल

शब्द मन्दरकन्दरोदरदरी सहत्य वा सागर ॥ १५ ॥

भवतु, पश्यामस्तावत् । (सर्वे परिक्रामन्ति)

प्रथम—अये एतत्खलु द्रौपदीकेशकर्षणावमपितस्य पाण्डवमध्य

पर्वता किं वा तुमुलस्वनप्रतिभयं मही दायंते (किं वा) सागर मन्दर-
कन्दरोदरदरी सहत्य अनिलावधूतचपलक्षुब्धोमिमालाकुल शब्द
मुञ्चति ॥ १५ ॥

व्याख्या—मेघा = घना निनदन्ति = गर्जन्ति किम् ? (किं वा) व्रज-
पतने = वज्रस्य = अशने पतने = पातं चूर्णीकृता = चूर्णतामवाप्ता पर्वता =
गिरय 'निनदन्ति' इति त्रिययान्वय । किं वा तुमुलस्वनप्रतिभयं = तुमुलस्य =
युद्धसङ्कुलस्य य स्वनः = कोलाहल तेन प्रतिभयं = भयमुत्पादके मही =
पृथ्वी दीयंते = विदायंते अथवा सागर = समुद्र मन्दरकन्दरोदरदरी -
मन्दरस्य = मन्दरगिरे या कदरा = गुहा तासामुदरस्य = मध्यस्थलस्य या
दरी = कन्दरा ता सहत्य = उद्दिष्ट अनिलावधूतचपलक्षुब्धोमिमालाकुलम् -
अनिलेन = मरुता, अवधूता = सञ्चालितास्ते चपला = चञ्चला क्षुब्धा =
क्षोभमवाप्ता या ऊर्मय = लह्यं तासा मालाभि = समूहै आकुलम् = व्याप्त
यथा स्यात्तथा शब्दम् = गर्जना मुञ्चति = त्यजति यद्वशादथ भयङ्कर
शब्द श्रूयत इति सन्देहमिथितत्वात् सशयालङ्कार शार्ङ्गलविक्रीडितञ्च
वृत्तम् ॥ १५ ॥

प्रथम—अये इति विस्मयसूचक विपादोत्पादक वा पदम् । एतत्

क्या मेघ गरज रहे हैं ? अथवा वज्र गिरने से पर्वत चूर चूर हो रहे
हैं, किं वा कठोर शब्दों की टकराहट से यह पृथ्वी फट रही है, या मन्दराचल
की गम्भीर गुफा से टकरा कर वायु द्वारा कम्पित होने के कारण चञ्चल
एव क्षुब्ध लहरियों से व्याकुल समुद्र ही गर्जना कर रहा है ॥ १५ ॥

अच्छा, तबतक देखा जाय ।

[सभी घूमते हैं]

पहला—अरे द्रौपदी के केश कर्षण से ब्रूढ पाण्डवों का मध्यम भाई

मस्य भीमसेनस्य भ्रातृशतवधक्रुद्धस्य महाराजदुर्योधनस्य च द्वैपाय-
नहलायुधकृष्णविदुरप्रमुखानां कुर्यदुकुलदैवतानां प्रत्यक्षं प्रवृत्त
गदायुद्धम् ।

द्वितीयः—

भीमस्योरसि चारुकाञ्चनशिलापीने प्रतिस्फालिते

भिन्ने वासवहस्तिहस्तकठिने दुर्योधनासस्थले ।

अन्योऽन्यस्य भुजद्वयान्तरतटेष्वासज्यमानायुधे

यस्मिंश्चण्डगदाभिघातजनित शब्द समुत्तिष्ठति ॥ १६ ॥

खल्विति । एतत् = पुरोदृश्यमानम्, खल्विति वाक्यसयोजनसौन्दर्ये । द्रौपद्या =
पाञ्चाल्या केशाना = वेणीना घर्षणेन = बलादाकर्षणेन अवमर्षितस्य =
कुपितस्य पाण्डवमध्यमस्य भीमसेनस्य = वृकोदरस्य भ्रातृशतवधक्रुद्धस्य—
भ्रातृणा = दुःशासनादीना शतसहस्रकानां भ्रातृणा वधेन = समरे हतेन क्रुद्धस्य =
अवमर्षितस्य महाराजदुर्योधनस्य = कौरवाधिपस्य द्वैपायन = व्यास हला-
युध = बलराम कृष्ण = माधव विदुरश्च एतेषां प्रमुखानां कुर्यदुकुलदैव-
तानाम्—कुर्यदुकुलयो = कुर्यदुवशयो दैवतानाम् = पूज्यानां प्रत्यक्षम् =
समक्षं प्रवृत्तम् = आरब्धं गदायुद्धम् । द्वितीय — भीमस्येति ।

अन्वयः—चारुकाञ्चनशिलापीने उरसि भीमस्य प्रतिस्फालिते वासव-
हस्तिहस्तकठिने दुर्योधनासस्थले भिन्ने अन्योऽन्यस्य भुजद्वयान्तरतटेषु आसज्या
मानायुधे यस्मिन् चण्डगदाभिघातजनित शब्द समुत्तिष्ठति ॥ १६ ॥

व्याख्या—चारुकाञ्चनशिलापीने—चारु = शोभना 'तप्त' इति पाठे सति
तप्ता = अग्नी शोधिता काञ्चनशिला = सुवर्णशिला इव पीने = पीवरै

भीमसेन तथा सी भाईयो के वध से अत्यन्त क्रुद्ध हुए महाराज दुर्योधन के
पूज्य जनो व्यास, बलराम, कृष्ण, विदुर, जो यदुकुल तथा कुरुकुल के दैवतरूप
हैं के समक्ष परस्पर गदायुद्ध हो रहा है ।

दूसरा—अग्नि में तपाये गये अत्यन्त उज्ज्वल सुवर्णशिला की भाँति
भीमसेन के विशाल वक्षस्थल पर हुए प्रहार तथा इन्द्र के ऐरावत हाथी के

तृतीयः—एष महाराज ,

शीर्षोत्कम्पनवल्ग्वमानमुकुट क्रोधाग्निकाक्षाननः

स्यानाक्रामणवामनीकृततनु प्रत्यग्रहस्तेच्छ्रय ।

यस्यैषा रिपुशोणितार्द्रकलिला भात्यग्रहस्ते गदा

कैलासस्य गिरेरिवाग्ररचिता सोल्का महेन्द्राशनि ॥१७॥

भीमस्य = मध्यमपाण्डवस्य प्रतिस्फालिते = प्रताडिते वामवहस्तिहस्तकठिने—
वासवस्य = इन्द्रस्य, हस्तिनः = गजस्यैरावतस्य य ह-त = शुण्डादण्ड तद-
त्कठिने दुर्योधनासस्यले दुर्योधनस्य असस्यले = स्कन्धदेशे भिन्ने = भीमगदया
प्रताडिते सति अग्नोऽज्यस्य = परस्परस्य भुजद्वयान्तरसटपे—भुजद्वयस्य =
बाहुपुगलस्य अन्तरसटपे = मध्यभागेषु आसज्यमानायुधे—जासज्यमानानि =
प्रहतानि आयुधानि = अस्त्राणि यत्र तस्मिन्, यस्मिन् = गदायुद्धे चण्डगदा-
भिघातजनित = प्रचण्डइचासी गदाभिघातजनित = समुद्रभूत शब्द =
घोरशब्द समुत्तिष्ठति = सर्वा दिश व्याप्नोतीत्यर्थं ॥ १६ ॥

अन्वय — यस्य रिपुशोणितार्द्रकलिला एषा गदा अग्रहस्ते कैलासस्य
गिरेः अग्ररचिता सोल्का महेन्द्राशनि इव भाति (सोऽज्यम्) शीर्षोत्कम्पनवल्ग्व-
मानमुकुट क्रोधाग्निकाक्षानन स्यानाक्रामणवामनीकृततनु प्रत्यग्रहस्तेच्छ्रय
(अस्तोति) ॥ १७ ॥

व्याख्या—यस्य = राज्ञो दुर्योधनस्य रिपुशोणितार्द्रकलिला—रिपु = शत्रुः
भीम, तस्य शोणितेन = रक्तेन, आर्द्रकलिला = तरलत्वव्याप्ता एषा = पुरो-
दूष्यमाना गदा अग्रहस्ते = हस्तस्याग्रभागे कैलासस्य = कैलासाद्यस्य गिरे =

सूड के समान अति कठोर दुर्योधन के कंधे पर हुए प्रहार के कारण इन
दोनों के परस्पर भुजाओं के मध्य प्रचण्ड गदा के आघात से होने वाला शब्द
दिशाओं में फैल रहा है ॥ १६ ॥

सीसरा—यह महाराज (दुर्योधन), जिसका मुकुट शिर के कम्पित होने
से चञ्चल है, क्रोध के कारण रक्त नेत्र धधकती अग्नि के समान है, युद्ध में
शत्रु के प्रहार से बचने के लिए इधर उधर चलते हुए अपने शरीर को
संबुचित करते हैं, तथा भीम के रक्त से रञ्जित गदा को दाहिने हाथ से

प्रथम — एष सप्रहाररुधिरसिक्ताङ्गस्तावद् दृश्यता पाण्डव ।

निभिन्नाप्रललाटवान्तरुधिरो भग्नासकूटद्वयः

सान्द्रैर्निर्गलितं प्रहाररुधिरैराद्रीकृतोर स्थल ।

भीमो भाति गदाभिघातरुधिरविलम्बावगाढव्रण

शैलो मेहरिवैष धातुसलिलासारोपदिग्धोपल ॥ १८ ॥

पर्वतस्य अप्ररचिता सोल्का = उत्कया सहिता महेन्द्राशनि — महेन्द्रस्य = इन्द्रस्य
अशनि. = वज्र इव भानि = मुशोभते (स) = (दुर्योधनः) शीर्षोत्कम्पनवल्ग-
मानमुकुट — शीर्षस्य = भूर्ध्नं कम्पनेन वल्गमानम् = प्रस्खलनमवाप्तम् मुकुटम् =
मूर्द्धंज क्रोधाग्निकाक्षानन — क्रोधाग्निना = कोपवह्निना काक्षानन =
विस्तृतवदन स्थानाक्रामणवामनीकृततनु — स्थानाय आक्रमणं तस्मै वामनी-
कृता = लघुकृता तनु सन् प्रत्यग्रहस्तोच्छ्रय प्रत्यग्रे = तत्क्षणे एव हस्त = बाहु
उच्छ्रय. = ऊर्ध्वीकृत (अस्तीति) शेष । शादूलविक्रीडितम् वृत्तम् ॥ १७ ॥

प्रथम एष इति । एष सम्प्रहाररुधिरसिक्ताङ्ग — सम्प्रहारेण = शस्त्र-
प्रहाणेण नि सृतरुधिरेण = रक्तेन सिक्ताङ्ग = सिक्तानि आद्रीणि अङ्गानि यस्य
स एतादृश पाण्डव = भीम दृश्यताम = अवलोक्यताम् ।

अन्वय — निभिन्नाप्रललाटवान्तरुधिर भग्नासकूटद्वय सान्द्रैर्निर्गलितं
प्रहाररुधिरैर् आद्रीकृतोर स्थल गदाभिघातरुधिरविलम्बावगाढव्रण एष भीम
धातुसलिलासारोपदिग्धोपल मेरु शैल इव भाति ॥ १८ ॥

बार बार ऊपर उटाता हुआ ऐसा प्रतीत हो रहा है, मानो कैलास पर्वत के
अग्रभाग से रचित इन्द्र का चमकता हुआ वज्र ही सुरोभित हो रहा
हो ॥ १७ ॥

पहला — गदाप्रहार के कारण खून से लयपय शरीर वाले मध्यमपाण्डव
भीमसेन को देखें —

गदाप्रहार के कारण जिसके फटे मस्तक से रक्त निकल रहा है तथा
दोनों स्कन्ध टूट गये हैं, भीषण शस्त्राघात से बहते हुए रुधिर से जिसका
वक्ष स्थल आर्द्र हो गया है एव गदा के प्रचण्ड प्रहार से चलते हुए रुधिर से

द्वितीय—भीमा गदां क्षिपति गर्जति बल्गमान.

शौघ्र भुज हरति तस्य कृत भिनत्ति ।

चारी गति प्रचरति प्रहरत्यभीक्ष्णं

शिखा'न्वितो नरपतिर्वलवास्तु भीम' ॥ १९ ॥

व्याख्या—निभिन्नाप्रल्लाटवान्तरुधिर —निभिन्नम् = विदीर्णम् अर्थात्
गदाप्रहारेण प्रस्फुटितम् अथम् = पुरोभागो यस्य तादृश यत्प्रल्लाटम् = मस्तक
तस्माद् वान्तम् = उद्गोर्णं रुधिर यस्य स, भग्नांसूटद्वय = भग्नी स्फुट्यावेव
कूटमद्वे रिव यस्य स, सान्द्रं = निविष्टे, निर्गलिते = निःसृते, प्रहाररुधिरं =
गदाप्रहारजनितरवते, आर्द्रावृत्तम् अथ च शान्मिधित वक्ष स्पल यस्य स
गदाभिघातरुधिरत्रिन्नावगाढवपण — गदाघातेन = गदाप्रहारेण निःसृतेन रुधि-
रेण = रवतेन विलम्बा = पार्श्व अवगाढा = व्याप्ता वगा यस्य स, एष =
युद्धामक्त पुरोद्गममान भीम = वृकोदर धातुसलिलासारोपदिग्धोपल --
घानुनाम् — पर्वतीयधातुगैरिकादीना, सलिलासारे = जलप्रवाहै उपदिग्धा =
समव्याप्ता उपला = प्रस्तरा यस्य स मेरु = मेरुनामा दौल = पवत इव
भाति = मुग्धोभत इति । अत्र पर्वतवृकोदरयोरुपमानोपमेयदर्शनादुपमालङ्कार ।
वृत्तञ्च शाङ्खलविक्रीडितम् ॥ १८ ॥

भीमेति । अन्वय — नरपति भीमा गदां क्षिपति बल्गमान (सन्)
गर्जति शौघ्र भुज हरति तस्य वृत्त भिनत्ति अभीक्ष्ण प्रहरति चारी गति
प्रचरति शिखान्वित भीम तु बलवान् ॥ १९ ॥

व्याख्या—नरपति = राजा दुर्योधन भीमाम् = भयमुत्पादिका गदाख्य
मस्त क्षिपति = भीमस्पोपरि चालयति बल्गमानः = उच्छलन् सन् गर्जति =

जिसका घाव भीमा हुआ है इस अवस्था मे भीमसेन गैरिक आदि धातुओ से
मिधित बहते हुए जलधारा युक्त मुमेरु गिरि के समान मुग्धोभित हो रहा
है ॥ १८ ॥

दूसरा—राजा दुर्योधन भयङ्कर गदा भीम पर चलाता है छलांग
लगाते हुए गरजता है, भीम के द्वारा किये गये गदा प्रहार को काटता हुआ

१. "सशिक्षितो" इति पाठान्तरम् ।

तृतीय — एष वृकोदरः,

शिरसि गुरुनिखातस्रस्तरक्ताद्रंगात्रो

धरणिधरनिकाशः सयुगेष्वप्रमेयः ।

प्रविशति गिरिराजो भेदिनी वज्रदग्ध

शिथिलविमृतधातुर्हेमकूटो यथाद्रि ॥ २० ॥

गर्जना करोति शीघ्रम् = झटिति भुजम् = बाहु हरति = आकर्षति, भीमस्य गदाप्रहारादात्मानं रक्षितुं स्वबाहुमाकर्षति । तस्य = प्रतियोद्धारस्य भीमसेनस्य कृतम् = प्रयासं भिनत्ति = निष्फलं करोति अभीक्षणम् = मुहुर्मुहुः प्रहरति = प्रहारं करोति एव गदायुद्धे कुशलोऽस्ति तथापि भीम = मध्यमपाण्डव तु बलवान् = दुर्योधनाद् बलिष्ठोऽस्ति इति ॥ १९ ॥

अन्वयः — शिरसि गुरुनिखातस्रस्तरक्ताद्रंगात्रो धरणिधरनिकाशः सयुगेषु अप्रमेयः शिथिलविमृतधातुः वज्रदग्धः हेमकूटः अद्रिः यथा भेदिनी प्रविशति ॥ २० ॥

व्याख्या — शिरसि = मस्तके गुरुनिखातस्रस्तरक्ताद्रंगात्रो = गुरुनिखातः = अत्यधिकाघातः स्रस्तेन = निर्गलितेन रक्तेन = शोणितेन, आद्राणि = क्लिन्नानि गात्राणि = शरीराणि, यस्य स, धरणिधरनिकाशः = धरणिधरः = पर्वततन्निकाशः = तुल्यः, सयुगेषु = सङ्ग्रामेषु अप्रमेयः = अनुपमपराक्रमयुक्तः भीम इति गदाशेन सम्बद्धते । शिथिलविमृतधातुः — शिथिला = छिन्नसन्ध्यः यद्वादाद् विमृता = प्रकीर्णा धातवः = गैरिकादयः स्याद्विधः, वज्रदग्धः —

उससे बचने के लिए अपनी भुजा को खींच लेता है । चारी गति से चलता हुआ बार-बार प्रहार कर रहा है, इस प्रकार महाराज दुर्योधन गदायुद्ध में निपुण तो है, किन्तु भीम अधिक बल वाला है ॥ १९ ॥

तीसरा — यह भीमसेन —

शिर में गम्भीर चोट लगने के कारण बहते हुए रक्त से जिसका शरीर आर्द्र हो गया है, अतुल बल वाला जो पर्वत की भाँति दीख रहा है गैरिकादि धातुशिला से युक्त फटे हुए सुमेरुपर्वत के समान (असह्य आघात) से पृथ्वी पर गिर रहा है ॥ २० ॥

प्रथम — एष गाढप्रहारशिथिलीकृताङ्ग निपतन्त भीमसेन दृष्ट्वा,
एकाप्राङ्गुलिधारितोन्नतमुखो व्यास स्थितो विस्मित

द्वितीय —

दैन्य याति युधिष्ठिरोऽथ विदुरो वाष्पाकुलाक्ष स्थित ।

तृतीय —

स्पृष्ट गाण्डिवमर्जुनेन गगन कृष्ण समुद्रीक्षते

वर्ज्येण = अशानिना दग्ध = प्रज्वलित हेमवूट. = सुमेरु अद्रि = पर्वत इव
मेदिनीम् = मही प्रविशति = निपतति गदाघातेन व्ययातिरेकात् पृथिव्या पतति
भीमसेन इति सभाव्यत इति भाव ॥ २० ॥

प्रथम इति । 'एष' इत्यस्य अग्रिमेन "व्यास" इति कर्त्रा सम्बन्ध ।
गाढप्रहारशिथिलीकृताङ्गम् — गाढप्रहारेण = गुरुणाघातेन शिथिली कृतानि
अङ्गानि यस्य त निपतन्त = भूमौ पतन्त भीमसेन दृष्ट्वा = वीक्ष्य —

अन्वय — एकाप्राङ्गुलिधारितान्तमुख व्यास विस्मित स्थित ।

व्याख्या — एकाप्राङ्गुलिधारितोन्नतमुख — एका अप्राङ्गुलि धारिता =
न्यस्ता यत्र तदेकाप्राङ्गुलिधारित तच्च तादृश मुखम् = आस्य यस्य स
व्यास = द्वैपायन विस्मित = आश्चर्यावित सन् स्थित = स्तब्ध ।

अन्वय — अत्र युधिष्ठिर दैन्य याति वाष्पाकुलाक्ष विदुर स्थित ।

अत्र = समराङ्गणे निपतन्त भीमसेन दृष्ट्वेति गदाघातेन सम्बन्ध,
युधिष्ठिर = धर्मपुत्र दैन्यम् = दीनता याति = अक्षिणच्छति, वाष्पाकुलाक्ष =
अशुपूरितनेत्र विदुर स्थित ॥

अन्वय. — अर्जुनेन गाण्डिव स्पृष्टम्, कृष्ण गगन समुद्रीक्षते ।

पहला — भीमसेन प्रहार की चोट से शिथिल शरीर वाले भीम को
गिरते हुए देखकर मुख पर अगुली रखे हुए भगवान् व्यास अपने सिर को
ऊपर उठाये आश्चर्यचकित होकर खड़े हो गये ।

दूसरा — युधिष्ठिर दीन हो रहे हैं तथा अशुपूरित नेत्रो वाले विदुर
खड़े हैं ।

तीसरा — अर्जुन अपन हाथो से गाण्डीव घाम लिए हैं और श्रीकृष्ण

सर्वे—

शिष्यप्रीतितया हल भ्रमयते रामो रणप्रेक्षक ॥ २१ ॥

प्रथम.—एष महाराज ,

वीर्यालयो विविधरत्नविचित्रमौलि-

युक्तोऽभिमानविनयद्युतिसाहसैश्च ।

वाक्य वदत्युपहसन्न तु भीम ! दीन

वीरो निहन्ति समरेषु भय त्यजेति ॥ २२ ॥

व्याख्या—अजुंतेन = गाण्डविना गाण्डिवम् = स्वोय घनु, स्पृष्टम् = किञ्चिदुन्नमितम्, कृष्ण = माधव गगनम् = आकाश समुद्रीक्षते = पश्यति ।

अन्वय —रणप्रेक्षक राम शिष्यप्रीतितया हल भ्रमयते ।

व्याख्या—रणप्रेक्षक = दुर्मोघनवृकोदरयो गदापुद्गस्य द्रष्टा राम = बलराम शिष्यप्रीतितया—शिष्यम् = दुर्घोषन प्रति प्रीतितया = स्नेहतया हलम् = स्वकीयमस्य भ्रमयते = घूर्णयत इति ॥ २१ ॥

अन्वय —वीर्यालय विविधरत्नविचित्रमौलि अभिमानविनयद्युतिसाहसै च युक्त (एष महाराज) उपहसन् वाक्य वदति, भीम ! वीर समरेषु दीन न तु निहन्ति (अत) भय त्यज ॥ २२ ॥

व्याख्या—वीर्यालय = महान् पराक्रमी विविधरत्नविचित्रमौलि — विविधरत्नै = नानाप्रकारैर्मणिभि विचित्र = अलङ्कृत मौलि = मुकुटो यस्य तादृश अभिमानविनयद्युतिसाहसै —अभिमान = गर्वं विनय = विनम्रता

आकाश की ओर देख रहे हैं ॥ २१ ॥

सभी—सङ्ग्रामदर्शक बलराम अपने शिष्य (दुर्घोषन) में अत्यधिक स्नेह होने के कारण हल को घुमा रहे हैं ।

पहला—यह महाराज (दुर्घोषन)—

महान् बलशाली विविध मणियों से मण्डित मुकुट वाला, स्वाभिमान, विनय, तेज और बल से परिपूर्ण हैसता हुआ भीम से कह रहा है—वीर, समरभूमि में दैन्यभाव प्राप्त योद्धा को नहीं मारते हैं अतः भय छोड़ो और (पुन लड़ने के लिए तैयार हो जाओ) ॥ २२ ॥

द्वितीय —एष इदानीमुपहास्यमान भीमसेन दृष्ट्वा स्वमूरुम-
भिहत्य कामपि सज्ञा प्रयच्छति जनादेन ।

तृतीय —एष सज्ञया समाश्वासितो मारुति ,
सहृत्य ध्रुकुटीलंलाटविवरे स्वेद करेणाक्षिपन्

वाहुभ्या परिगृह्य भीमवदनश्चित्राङ्गदा स्वा गदाम् ।

द्युति = भोज साहसम् = दृढत्वम् एतेषा समाहार अत एतैरभिमानादिभि
युक्त = भूषित (एष महाराज = दुर्योधन) उपहसन् = उपहास कुर्वन् वाक्य
वदति = वक्तव्य कथयति — हे भीम ! धीर = धूर समरेषु = रणस्थलेषु
दीनम् = आपद्ग्रस्त प्रतियोद्धार न तु = नैव निहति = मारयति (अत)
भयम् = मत्प्रयुक्त शस्त्रभीति त्यज = जहौहि । सर्वथा नि शङ्क सन् पुन
सङ्ग्रामाय मनश्चो भव इति भाव । कसन्ततिल्का ॥ २२ ॥

द्वितीय इति । इदानीम् = साम्प्रतम् उपहास्यमानम् = दुर्योधनेनोपहसित
भीमसेनम् = मध्यमपाण्डव दृष्ट्वा = अवलोक्य स्वमूरुम् = स्वकीया जङ्गाम्,
अभिहत्य = सताडप कामपि सज्ञाम् = किञ्चिद्गुह्य प्रयच्छति = सङ्केतयति
जनादेन = श्रीकृष्ण ।

तृतीय इति । एष मारुति = अय मदगुतो भीम सज्ञया = श्रीकृष्णस्य
गुह्यसङ्केतेन समाश्वासित = धैर्यमुत्पादित ।

अन्वय — ध्रुकुटी सहृत्य ललाटविवरे करेण स्वेदम् आक्षिपन् चित्रा-
ङ्गदा स्वा गदा वाहुभ्या परिगृह्य दीन पुत्रम् उदीक्ष्य सर्वगतिना दत्त बल
लब्ध्वा इव गर्जन् सिंहवृषेक्षण भीमवदन एष मारुति भूय क्षितितलात्

दूसरा — गदा के आघात से उपहास योग्य हुए भीमसेन को देखकर
भगवान् श्रीकृष्ण अपनी जाङ्घ को थपथपाते हुए (दुर्योधन का मारने के
लिए) सङ्केत कर रहे हैं ।

तीसरा — इस सङ्केत से भीम आश्चस्त हो गया है । अपनी भृकुटिया
को समेट कर ललाट पर स्थित पसीनो को पाल कर, अपनी चित्राङ्गदा
नामक गदा को बाहुओं में सभाले दीन पुत्र को देखने वाले मानो पवन

ध्रान्तं करपञ्जरान्तरगतो द्वैपायनज्ञापितो

भीम कृष्णभुजावलम्बितगतिनिर्वाह्यते पाण्डवै ॥ २५ ॥

प्रथम — अये अयमप्यमर्षोन्मीलितरभसलोचनो भीमसेनापक्रमण-
मुद्वीक्षमाण इत एवाभिवर्तते भगवान् हलायुध । य एष ,

चल'विलुलितमौलि क्रोधताम्रायताक्षो

भ्रमरमुखविदष्टा किञ्चिदुत्कृष्य मालाम् ।

गत कृष्णकरावलम्बितगति भीम निर्वाह्यते ॥ २५ ॥

व्याख्या—मालासदृशलोचनेन—मालया हेला' इति पाठे तु छलेन
दुर्योधनस्य हतनभूता या हेला=अवज्ञा तथा सवृते=आवृते लोचने=
नयने यस्य तेन हलिता=हलधरेण बलरामेण नेत्रोपरोध कृत =नेत्रसवरण
विहितम् । दुर्योधनापेक्षया—दुर्योधनस्य =कुरुराजस्य पक्षपातानुरोधेन क्रोध
निमित्तितम्—क्रोधेन=कोपेन निमित्तितम् =सङ्कुचितदेह हलधरम् =बलभद्र
दृष्टवा=वीक्ष्य, सम्भ्रान्तं =सम्भ्रमप्राप्तं पाण्डवै =पाण्डुपुत्रं द्वैपायन
ज्ञापित =द्वैपायनेन =भगवता व्यासेन, ज्ञापित =सङ्केतित करपञ्जर
गत =हस्तमध्यगत कृष्णकरावलम्बितगति =कृष्णस्य कराभ्याम् अव-
लम्बिता प्राप्ताश्रया गति =दशा यस्य स भीम निर्वाह्यते =सरक्ष्यते अर्थात्
रक्षितुम् इतस्ततो नीयते ॥ २५ ॥

प्रथम — अयमपीति । अमर्षेण =क्रोधेन उन्मीलिते =ऊर्ध्वं मौलिते
रभसलोचने =उद्विग्ननयने यस्य स भगवान् हलायुध =बलदेव भीमसेना
पक्रमणम् =भीमसेनस्य अपक्रमणम् =निगमनम् उद्वीक्षमाण =प्रतीक्षमाण
सन् इत एव अभिवर्तते =प्रत्यावर्तते ।

अन्वय — चलविलुलितमौलि क्रोधताम्रायताक्ष भ्रमरमुखविदष्टा

आश्रित स्थिति वाले भीम की अपनी भुजाओं में सुरक्षित रख लिया है ॥२५॥

पहला—अरे ! अत्यधिक क्रोध के कारण सङ्कुचित नेत्रों वाले भगवान्
हलायुध भीम के निकलने की प्रतीक्षा में इधर उधर देखते हुए इधर ही आ
रहे हैं । जो —

असिततनुविलम्बितस्तवमानुकर्षी

क्षितितलमवतीर्णं पारिवेषोव चन्द्र ॥ २६ ॥

द्वितीयः—तदागम्यता वयमपि तावन्महाराजस्य प्रत्यनन्तरी-
भयानः ।

उभौ—बाहुम् । प्रथम कल्पः ।

मात्रा किञ्चित् उत्कृष्य अमिततनुविलम्बितस्तवमानुकर्षी पारिवेषी क्षिति-
ताम् अवतीर्णः चन्द्र इव ॥ २६ ॥

व्याख्या—वर्गविलम्बितमौलि—वर्ग = वर्णवर्ण विवृलित = कम्पाय-
मातः मौलि = मुकुट प्रवृत्तजितमौलिरिति पाठे सति वर्णवर्णोऽय
व ललितः = सुन्दरो मौलि = मुकुटो यस्य सः कोपनाक्रान्तताज्ञ—कोपेन =
कोपेन ताम् = रक्तवर्णो अयं च आजने = विस्कारिते अक्षिणी = नेत्रे यस्य
स, अनरनुज्ञविद्वष्टान्—अमशानाम् = मथुराणां मुनी = आत्स्यैः विद्वष्टान् =
दशनैः सण्डिनाम् मात्राम् = त्वाम् उत्कृष्य = स्तोकमाकृष्य, अमिततनुवि-
लम्बितस्तवमानुकर्षी—अनितम् = नीचमयं च तनुविलम्बितं = शरीरे लम्बमानं
रक्तम् = स्वस्थानात् स्थितिं यद् वस्त्रम् = वान् तस्यानुकर्षी = आकु-
ञ्चनकः पारिवेषः = वृत्तपरिधिः स आस्पातीनि पारिवेषी = मण्डलसहितः,
क्षितितलम् = भूभागम् अवतीर्णः = प्राप्त चन्द्र इवावलोक्ष्यत इति शेषः ।
उत्पेक्षाद्वारः मालिनी च वृत्तम् ॥ २६ ॥

द्वितीयः—महाराजस्य = दुर्वाञ्जनस्य प्रत्यनन्तरीभयानः = समीपं गच्छाम
इति ।

वर्णवर्ण एवं सुन्दर मुकुट वागे, कोप से रत्नरञ्जित नेत्रों वाले अनरों
से आच्छादित माता को पहने हुए, नीच वर्ण एवं शिथिल वस्त्रों को संभालते
हुए मानों पृथिवी पर उतरे मण्डगकार चन्द्रना के समान प्रतीत हो रहा
है ॥ २६ ॥

द्वितीयः—तब आपो, हमणों भी महाराज (दुर्वाञ्जन) के पास चलो ।
दोनों—अच्छा ! यह तो उचित ही है ।

(नेपथ्ये)

प्रसीदतु प्रसीदतु भगवान् हलायुध ।

बलदेव—अये एवगतोऽप्यनुगच्छति मा तपस्वी दुर्योधन । य
एष ,

श्रीमान् सयुगचन्दनेन रुधिरेणार्द्रानुलिप्तच्छवि-

भूससर्पणरेणुपाटलभुजो बालव्रत ग्राहित ।

च्छिष्टम्=अवशिष्ट स्पृष्ट वा मुख येन तम्, महासुरपुरप्राकारकूटाडकुशम्—
 महासुर = शात्व तस्य पुरस्य = नगरस्य यत् प्राकारकूटम्=वप्रशृङ्खला
 तस्य अडकुशम्, कालिन्दीजलदेशिकम्—कालिन्द्या = यमुनाया जलस्य =
 जलप्रवाहस्य देशिकम् = पथप्रदर्शकम्, रिपुबलप्राणोपहाराचितम्—रिपूणाम्
 = अरीणा बलम् = सैन्यशक्तिस्तस्य प्राणा = असव एवोपहार = उपायनम्
 यस्य तेन अर्चितम् = समादृत हस्तोत्क्षिप्तहलम्—हस्तेन = करेण उत्क्षिप्तम्
 = उदघृतम् हलम् = सीर, भीमस्य = मध्यमपाण्डवस्य विपुले = विशाले
 उरसि = वक्ष स्थले, अद्य यावत् = साम्प्रत रुधिरस्वेदाद्रपङ्कोत्तरम्—रुधिरम्
 = रक्तम्, स्वेदश्च = स्वेदकण ताभ्यामार्द्रं = तरलं अतएव पङ्क = पङ्किल
 तेनोत्तर तादृश हल पाकोत्तरे इति पाठे रुधिरमेव स्वेद स एवाद्रपङ्क
 सद्यस्क कर्दम तेन उत्तरे तदयुक्ते केदारमार्याकुलम्—केदारमार्गं = क्षेत्र
 वत्मनि आकुलम् = व्याप्त करोमि = विदधे इति ॥ २८ ॥

बलदेव—‘अये’ इति विस्मयास्पद सम्बोधनम् । एवङ्गतोऽपि =
 ऊरुभङ्गे मन्यपि सभाजयितु माम् अनुगच्छति = अनुसरतीत्यर्थं ।

अन्वय — सयुगचन्दनेन रुधिरेण आर्द्रानुलिप्तच्छवि श्रीमान् भूससर्पणरेणु-
 पाटलभुज बालव्रत ग्राहित अमृतमन्थने निवृत्ते तानुरै क्षितिधरात् मुक्त

(नेपथ्य मे) भगवान् बलदेव प्रसन्न होवें, प्रसन्न हो ।

बलदेव—इस दशा मे भी तपस्वी दुर्योधन मेरा अनुसरण करता
 है । जो यह—

युद्ध मे रक्त चन्दन रूप रुधिर से अनुलिप्त आर्द्र अङ्गो वाला, समरभूमि

निर्वृत्तेऽमृतमन्यने अतिघरान्मुक्तः सुरैः सानुरै-
राकर्षणिव भोगमर्षवजले श्रान्तोज्जितो वासुकि ॥ २९ ॥
(तत्र प्रविशति भग्नोरुगणो दुर्षोधनः ।)

दुर्षोधन—एष भोः !

श्रान्तोज्जित आर्षवजले भोगम् आकर्षणं वासुकि इव ॥ २९ ॥

व्याख्या—सयुगचन्दनेन—समुरे—समरे, चन्दनेन—मलयज्वरसेन तद्-
पिपा रक्तेन—शोषितेन, आर्षानुलिप्तच्छविः—सद्यः प्रभृतेन शोषितेन
सरलेनानुलिप्ता—व्यासा छविः—शोभा यस्य सः शीमान्—शोभा-
सम्बन्धो दुर्षोधनः सान्द्रतम्, भूतमर्षवजरेणुनाटलमुज—भुवि—पृथिव्या ससर्प-
णेन—रिह्वणेन यो रेणुः—रजतेन पाटनी—धूमरिती भुवी—बाहू यस्य
सः भूतमर्षवजरेणुनाटलमुज मन् वाग्भवम्—बालानां—शिशुनां वनम्—वेष्टा
आहितः—सम्प्राप्तः, अनएव अमृतमन्यने—सुधाविशोदने निर्वृत्ते—परिवृत्ते
सानुरैः—दैवैः सह सुरैः—देवैः अतिघरात्—मन्दरागरे मुक्तः—विमुक्तः
श्रान्तोज्जित—श्रान्त—कान्तः, अयं च उज्जित—परित्यक्त अर्षवजरे—
समुद्रजले भोगम्—स्वशरीरम् आकर्षणम्—आलिखन् वासुकि—नागराज
इव—सद्गुण सुशोभित इति भावः ॥ २९ ॥

तत्र इति—प्रविशति—रहूभूमिभागच्छति, भग्नोरुगणः—भग्नः—
मशयतेन वृत्तिम् उरुयुगलम्—जह्वाद्य यस्य सः दुर्षोधन—कौरवेश्वरः ।

दुर्षोधन—‘एष भोः’ इति । एष—दुर्षोधनोऽहमित्यस्यादिमश्लोकेन
“मीमेन भित्त्वे”त्यादितान्त्वः ।

मैं गिरकर भी चरणों के कारण धूलधूमरित मुझाओ वाला पृथ्वी पर रखने
वाले शिशुओं को भाँति प्रतीत हो रहा है । तथा समुद्र मन्यन के अनन्तर
असुरों तथा देवताओं द्वारा मुक्त मन्दरावन से लीषकर जल में अपने
परिधान्त शरीर को सरकाते हुए सर्वराज वासुकि की तरह सुशोभित हो रहा
है ॥ २९ ॥

(इसके बाद भग्न जह्वाँ वाला दुर्षोधन प्रवेश करता है)

दुर्षोधन—अरे ! यह मैं—

भीमेन भित्त्वा समयव्यवस्थां गदाभिघातक्षतजर्जरोहः ।
भूमौ भुजाभ्यां परिकृष्यमाण स्व देहमधोपरतं वहामि ॥ ३० ॥
प्रसीदतु प्रसीदतु भगवान् हलायुध ।

त्वत्पादयोनिपतित पतितस्य भूमा—

वेतच्छिरं प्रथममद्य विमुञ्च रोपम् ।

जीवन्तु ते कुरुकुलस्य निवापमेघा

वैर च विग्रहकयाश्च वय च नष्टाः ॥ ३१ ॥

अन्वय.—भीमेन समयव्यवस्था भित्त्वा गदाभिघातक्षतजर्जरोहः भूमौ भुजाभ्यां परिकृष्यमाण स्वम् अधोपरतं देहं वहामि ॥ ३० ॥

व्याख्या—भीमेन = वृकोदरेण समयव्यवस्थाम् = साम्प्रतिकव्यवस्था—
रणनीतिमित्यर्थः भित्त्वा = समुपेक्ष्य गदाभिघातक्षतजर्जरोहः—गदाया
अभिघातेन = प्रहारेण निपातेनेति पाठे निपातेन = प्रक्षेपेणेति समान्येवार्थः
जर्जरोहः जर्जरितः = विनष्टः ऊरु यस्य सोऽहं दुर्योधनः भूमौ = क्षितौ
भुजाभ्याम् = बाहुभ्यां परिकृष्यमाणम् = समाकृष्यमाण स्वम् = आत्मानम्
अधोपरतं = अधोमृतम् देहम्—शरीरं वहामि = धारयामि अन्यत्र वा सञ्चालयामीति ॥ उपजातिवृत्ताम् ॥ ३० ॥

अन्वय.—भूमौ पतितस्य त्वत्पादयोः निपतितम् एतत् शिरः अद्य प्रथमं
रोपं विमुञ्च ते कुरुकुलस्य निवापमेघा जीवन्तु वैरं च विग्रहकयाः च
वयं च नष्टाः ॥ ३१ ॥

युद्ध सम्बन्धी नियमों की उपेक्षा कर भीमसेन के द्वारा किये गये गदा-
प्रहार से भग्न ऊरु वाला अपनी भुजाओं से भूमि पर घसीटता हुआ अपने
अधमरे शरीर को ढो रहा है ॥ ३० ॥

प्रसन्न होवें भगवान् हलायुध ।

समर भूमि में गिरा हुआ मेरा शिर तथा मेरी दोनों भुजायें आपके
चरणों पर पड़े हैं, प्रथमतः आप क्रोध का त्याग करें, जिससे कौरवकुल को
जलाञ्जलि देने वाले मेघ की भाँति पाण्डव अब जीवित रह सकें आज हम-

चलदेव — भो दुर्योधन ! मुहूर्तं तावदात्मा धार्यताम् ।

दुर्योधन — किं भवान्करिष्यति ।

चलदेव — भो श्रूयताम्

आक्षिप्तलाङ्गलमुखोल्लिखितं शरीरं-

निर्दारितासहृदयान्मुसलप्रहारं ।

दास्यामि सयुगहतान्सरयाश्वनागान्

श्वर्गानुयात्रपुरुषास्तव पाण्डुपुत्रान् ॥ ३२ ॥

व्याख्या—भूमौ = पृथिव्या पतितस्य = गदाप्रहारेण निपतितस्य मम दुर्योधनस्य त्वत्पादयो = पुर स्थितस्य त्वदीयाङ्घ्रयो निपतितम् = नमस्कृतुं पतितम् एतत् शिर — इदं मस्तक (अतएव) अद्य = इदानीं प्रथमम् = आदौ रोपम् = क्रोध विमुख = त्यज त्वमिति शेष । ते = पाण्डवा कुरुकुलस्य = कुरुवंशस्य निवापमघा = तर्पणाप प्रदानाय मघभूता जीवन्तु = प्राणान् धारयन्तु वस्तुतस्तु साम्प्रत कुरुपाण्डवयो वैर = शत्रुता च विप्रह्वया = युद्धवार्ता च किं वा वयम् = शतभ्रातारोऽप्य रणयोद्धार, च नष्टा = समाप्ता इति ॥ ३१ ॥

अन्वय — आक्षिप्तलाङ्गलमुखोल्लिखितं शरीरं मुसलप्रहारं निर्दारितासहृदयान् सरयाश्वनागान् सयुगहतान् पाण्डुपुत्रान् श्वर्गानुयात्रपुरुषान् तव दास्यामि ॥ ३२ ॥

व्याख्या—आक्षिप्तलाङ्गलमुखोल्लिखितं—आक्षिप्तस्य = प्रहर्तुं प्रक्षिप्तस्य दाना (कौरव पाण्डवो) की शत्रुता तथा युद्धकथा शान्त हो गयी, और हमलोगो (कौरवो) का नाश हो गया ॥ ३१ ॥

चलदेव—अरे दुर्योधन ! थोड़ी देर और प्राण धारण करो ।

दुर्योधन—तब आप क्या करेंगे ।

चलदेव—मुनो—

चलाये गये हल के अग्रभाग से क्षत विक्षत शरीर बाटे, मुसलप्रहार से चूर्णित स्कन्ध तथा वक्ष स्थल पाण्डवो को रथ, घोड़े हाथियो सहित मारकर स्वर्ग मे जाते हुए तुम्हारा अनुगामी बना दूंगा ॥ ३२ ॥

दुर्योधन — मा मा भवानेवम् ।

प्रतिज्ञावसिते भीमे गते भ्रातृशते दिवम् ।

मयि चैव गते राम ! विग्रह किं करिष्यति ॥ ३३ ॥

वलदेव — मत्प्रत्यक्ष' वञ्चितो भवानित्युत्पन्नो मे रोष ।

सञ्चालितस्य वा लाङ्गलस्य = हलस्य मुखेन = अग्रभागेन उल्लिखितं =
विदारितं शरीरं = देहं अथ च मुशलप्रहारं = मुसलाघातं निर्दारितास-
हृदयान्-निर्दारितम् = विदीर्णम् असम् = स्कन्धश्च हृदयञ्च येषां तान् सरथा-
श्वनागान् = रथाश्चहस्तिभिः सहितान् सयुगहतान्-सयुगे = सग्रामे हतान् =
उपरतान् पाण्डुपुत्रान् = पाण्डोस्सुतान् युधिष्ठिरार्जुनादीन् स्वर्गानुयात्र-
पुरुषान्-स्वर्गम् = द्युलोकम् अनुयाता = प्रस्थिता पुरुषा = सैनिका येषां
तान् तव = तुभ्य दास्यामि = अर्पयिष्यामि वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ३२ ॥

अन्वय — राम ! भीमे प्रतिज्ञावसिते भ्रातृशते दिव गते मयि च एक
गते विग्रह किं करिष्यति ॥ ३३ ॥

व्याख्या — हे राम ! भीमे = भीमसेने प्रतिज्ञावसिते = दुर्योधनोह गदया
सञ्चूर्णयामीति प्रतिज्ञा प्रपूरिते अथ च मम भ्रातृशते दिवम् = स्वर्लोक
गते = प्रस्थिते किं वा मयि च = दुर्योधने च एवङ्गते = भग्नोरी मति इदानीं
विग्रह = युद्ध किं करिष्यति = परिणमिष्यति ? युद्धेन नीचितं कश्चित्
परिणामो भविष्यतीति भावः ॥ ३३ ॥

वलदेव — मत्प्रत्यक्षम् — मम (वलदेवस्य) समक्ष प्रत्यक्षमिति पाठे तु
व्यासकृष्णादीनां सर्वेषां समक्ष वञ्चित = छलित एतस्मोद्धतो मे = मम

दुर्योधन — नहीं नहीं आप ऐसा न करें ।

मध्यम पाण्डव भीम की प्रतिज्ञा पूर्ण हो गयी मेरे ली भाई स्वर्ग सिंघार
गये तथा मैं इस दशा को प्राप्त कर लिया हूँ । राम ! अब आप क्यों युद्ध
करेंगे ॥ ३३ ॥

वलदेव — मेरे सामने ही तुमको धोखा दिया गया है, अतः मेरा क्रोध
उभड़ रहा है ।

दुर्योधनः—वञ्चित इति मां भवान् मन्यते ।

वलदेव —क सशयः ?

दुर्योधन —हन्त भो. ! दत्तमूल्या इव मे प्राणा । कुत —

आदीप्तानलदारुणाज्जतुगृहाद् बुद्धधात्मनिर्वाहिणा

युद्धे वैश्रवणालयेऽचलशिलावेगप्रतिस्फालिना^१ ।

भीमेनाद्य हिडिम्ब^२राक्षसपतिप्राणप्रतिग्राहिणा

यद्येव ममवैपि मा छलजितं भो राम ! नाह जित. ॥ ३४ ॥

रोप' = क्रोधः उत्पन्न = समुद्भूतः ।

दुर्योधन —'हन्त' इति हर्षसूचकमध्ययपदम् = छलेनाह भीमेन जित इति भवता = वलदेवेन स्वीकृते सति मे = मम प्राणा = जीवाः दत्तमूल्याः = सफला इति ।

अन्वय — आदीप्तानलदारुणात् जतुगृहाद् बुद्धधात्मनिर्वाहिणा वैश्रवणालये अचलशिलावेगप्रतिस्फालिना हिडिम्बराक्षसपतिप्राणप्रतिग्राहिणा भीमेन अद्य युद्धे यदि एव मा छलजित समवैपि (तदा) भो राम ! अह न जित. (इति मन्त्रे) ॥ ३४ ॥

व्याख्या—आदीप्तानलदारुणात्—आदीप्तेन = प्रज्वलितेन अनलेन =

दुर्योधन—मुझे धोखा दिया गया है, इसे आप स्वीकार करते हैं ?

वलदेव—इसमें क्या सन्देह है ।

दुर्योधन—अहो ! अच्छा तो, मानो प्राणधारण का मूल्य मुझे मिल गया । क्योंकि—

सभी ओर से घघकती अग्नि से युक्त लाथागृह से बुद्धिमत्ता में निकलने वाले, कुवेर के रहते हुए युद्ध में शिलाखण्डों की वर्षा करने वाले, तथा महाबली वैश्रवणालये हिडिम्ब का प्राणहरण करने वाले भीम ने यदि छल से मुझको जीत लिया है (आप स्वीकार करते हैं) तो वस्तुतः मैं पराजित नहीं हुआ हूँ ॥ ३४ ॥

१. “(प्रतीसारिणा)” प्रतीसारिणा इति पाठभेद ।

२. “हिडिम्ब” इति पाठान्तरम् ।

वलदेव — भीमसेन इदानीं तव युद्धवञ्चनामुत्पाद्य स्यास्यति ।

दुर्योधन — किं चाह भीमसेनेन वञ्चित ।

ब्रह्मदेव — अथ केन भवानेवविध कृत ।

दुर्योधन — श्रयताम्,

येनेन्द्रस्य स पारिजातकतरुमनिन तुल्य हृतो

दिव्य वर्षसहस्रमणवजले सुप्तश्च यो लीलया ।

वृद्धिना दारुणात् = भयङ्करात् जतुगृहात् = लाक्षागृहात् वृद्ध्या = धिया
 आत्मनिर्वाहिणा = स्वसरक्षकेण वैश्रवणालये = कुबेरालये अचलशिलावेग-
 प्रतिस्फालिना = अचलानाम् = पर्यताना या शिला तासा वेगेन = जवेन प्रति-
 स्फालिना = प्रतीसारिणा हिडिम्बराक्षसपतिप्राणप्रतिग्राहिणा = हिडिम्ब
 राक्षसपते = हिडिम्बाभिधस्य राक्षसाधिपस्य प्राणप्रतिग्रहिणा = प्रणापहारिणा
 भीमेन अद्य = इदानीं सैन्यबन्धूना च विनाशेपि युद्धे = सङ्ग्रामे यदि एव
 माम् = स्वबन्धुविनाशेन दु खित दुर्योधन छलजितम् = कपटेन जित समवैपि =
 जानामि (तदा) भो राम अहं न जित नैव संग्रामे पराजित ॥ ३४ ॥

वलदेव — इदानीम् = साम्प्रत युद्धे छलप्रयोगेन त्वा जित्वा जीविष्यति
 भीमसेन इत्याशय ।

दुर्योधन — भगवत कृष्णस्य महात्म्य वर्णयन् कथयति—

अन्वय — येन इन्द्रस्य स पारिजातकतरु मानेन तुल्य हृत य च दिव्य
 वर्षसहस्रम् अणवजले लीलया सुप्त तेन जगत प्रियेण हरिणा तीव्रा भीमगदा

वलदेव—युद्धस्थल मे तुम्हारे, साथ छल करने वाला भीम अब
 (जीवित) रह सकेगा ? ।

दुर्योधन—क्या भीम के द्वारा मेरी वञ्चना की गयी है ?

वलदेव—और क्या । किसके द्वारा आपकी दशा की गयी है ?

दुर्योधन—सुनिये जिन्होंने सम्मान के साथ ही इन्द्र का पारिजात नामक
 कल्पवृक्ष का हरण कर लिया था, अपनी लीला से जिन्होंने दिव्य हजारों
 वर्ष पर्यन्त क्षीरसागर में शयन किया था वही जगत् के अभीष्ट देव छलरहित

तीव्रा भीमगदा प्रविश्य सहसा निर्व्याजयुद्धप्रिय-

स्तेनाह जगत प्रियेण हरिणा मृत्यो प्रतिग्राहित ॥ ३५ ॥

(नेपथ्ये)

उस्सरह उस्सरह अय्या ! उस्सरह । उत्सरतोत्सरतार्या !
उत्सरत ।]

बलदेव — (विलोक्य) अये अयमत्रभवान् घृतराष्ट्र गान्धारी च
दुर्जयेनादेनितमार्गोऽन्न पुरानुबन्ध शोकाभिभूतहृदयश्चकितगतिरित
एवाभितनन्ते । य एष ,

सहसा प्रविश्य निर्व्याजयुद्धप्रिय अह मृत्यो प्रतिग्राहित ॥ ३५ ॥

व्याख्या—येन = भगवता इन्द्रस्य = सुराधीपते स = प्रसिद्ध पारिजातक-
तरु = कल्पवृक्ष मानेन = अभिमानेन तुल्यम् = साक हत = बलाद्गृहीत-
दिव्य वयंसहस्रम् = देवाना वयंसहस्र यावद् अण्वजले = समुद्रजले लीलया =
मायया मुप्त = योगनिद्रां गृहीत तेन = लोकवेदस्यातेन जगत प्रियेण =
मद्गुलकारिणा हरिणा = श्रीकृष्णेन तीव्रा = तीक्ष्णा भीमगदाम् = भयङ्करगदा
भीमसेनस्य गदा वा सहसा = अकस्मात् प्रविश्य = निविश्य निर्व्याजयुद्ध-
प्रिय = निष्कपटयुद्धप्रेमी धर्मयोद्धा अह = दुर्योधन मृत्यो = कालस्य यमस्य
वा प्रतिग्राहित = हस्ते समर्पित इति ॥ ३५ ॥

बलदेव — अये इत्याश्चर्यसूचकम् । घृतराष्ट्र = दुर्योधनस्य पिता
गान्धार्या = दुर्योधनस्य जनया दुर्जयेन = दुर्योधनपुत्रेण आदेनित = प्रदर्शित
मार्गं = पथ अत पुरानुबन्ध = अत पुरीयस्वजनसहित शोकाभिभूतहृदयः =

युद्धप्रिय भगवान् श्रीकृष्ण ने भीम की गदा में प्रविष्ट होकर मुझे मृत्यु के
हाथों समर्पित कर दिया है ।

(नेपथ्य में) हट्टे हट्टे आर्यो हट्टे ।

बलदेव— (देखकर) अरे यह शोक सतत होने से स्खलित गति वाले
आदरणीय महाराज घृतराष्ट्र तथा गान्धारी, दुर्जय (दुर्योधन पुत्र) द्वारा
निर्दिष्ट मार्ग पर अन्त पुर के परिजनो के साथ शहर ही आ रहे हैं ।
जो यह—

वीर्याकर. सुतशतप्रविभक्तचक्षु-
 दर्पोद्यत कनकयूपविलम्बबाहु ।
 सृष्टो ध्रुव त्रिदिवरक्षणजातशङ्क-
 देवै ररातितिमिराञ्जलिताडिताक्ष ॥ ३६ ॥
 (तत प्रविशति घृतराष्ट्रो गाघारी देव्यो दुर्जयश्च ।)

पुत्रविनाशेनाभिसतसहृदय इत एव = दुर्योधनाभिमुखमेव अभिवर्तते =
 आगच्छति ।

अन्वय — वीर्याकर सुतशतप्रविभक्तचक्षु दर्पोद्यत कनकयूपविलम्बबाहु
 त्रिदिवरक्षणजातशङ्क देवै ररातितिमिराञ्जलिताडिताक्ष ध्रुव
 सृष्ट ॥ ३६ ॥

व्याख्या—वीर्याकर = बलस्य आलय सुतशतप्रविभक्तचक्षु = सुतानाम् =
 पुत्राणां शतम् = शतशस्याक सुतशत प्रति प्रविभक्तम् = सलग्न चक्षु =
 नेत्रम् = यस्य स अर्थात् दुःशासनादीनां शतपुत्राणां विनाशेन शोकाभिभूत इति
 भाव, दर्पोद्यत — दर्पे = अभिमाने जद्यत अहङ्कारयुक्त कनकयूपविलम्ब-
 बाहु — कनकयूपवत् = स्वर्णमययज्ञस्तम्भवद् विलम्बी = लम्बायमानो बाहु =
 भुजो यस्य स त्रिदिवरक्षणजातशङ्कै — त्रिदिवस्य = स्वर्गलोकस्य रक्षण =
 सरक्षणे जाता = समूद्भूता शङ्का = स देहो यस्य तै देवै = सुरै ररातिति-
 मिराञ्जलिताडिताक्ष — अरातय = रात्रय एव तिमिराञ्जलि = घोराग्ध-
 कार तेन ताडिते = हते अक्षिणी = नयने यस्य स तद्रूप ध्रुव = निश्चिमेन
 सृष्ट = सरचित इति मये । अश्रोत्रेक्षालङ्कार ॥ ३६ ॥

अत्यन्त पराक्रमी है जिनकी दृष्टि (ज्ञानशक्ति) सी पुत्रा म बटी हुई
 है अर्थात् मरे हुए पुत्रा के शोक से अस्थिर चित्त है । दप से भरी हुई जिनकी
 लम्बी भुजायें स्वर्ण निर्मित यज्ञ-स्तम्भ की भाँति प्रतीत होते हैं । निश्चित
 ही स्वर्ग की रक्षा के लिए उत्पन्न शङ्का वाले देवताओं न शत्रुता रूपी
 अग्धकार से जिन्हें मानो नेत्रहीन कर दिया गया हो ॥ ३६ ॥

(इसके बाद घृतराष्ट्र, गाघारी, दो रानियाँ तथा दुर्जय प्रवेश
 करते हैं)

घृतराष्ट्रः—पुत्र ! क्वासि ?

गान्धारी—पुत्र ! कहिं सि ? [पुत्र ! क्वासि ?]

देव्यो—महाराज ! कहिं सि ? [महाराज ! क्वासि ?]

घृतराष्ट्रः—भो ! कण्टम् ।

वञ्चनानिहतं श्रुत्वा सुतमद्याहवे मम ।

मुखमन्तर्गतास्त्राक्षमन्धमन्धतरं कृतम् ॥ ३७ ॥

गान्धारि ! किं घरसे ?

गान्धारी—जीवाविदहिं मन्दभाया । [जीवित्वास्मि मन्दभाया ।]

देव्यो—महाराज ! महाराज ! [महाराज ! महाराज !]

अन्वय—अद्य आहवे वञ्चनानिहतं सुतं श्रुत्वा मम अन्धं मुखम्
अन्तर्गतास्त्राक्षम् अन्धतरं कृतम् ॥ ३७ ॥

व्याख्या—अद्य आहवे = रणक्षेत्रे वञ्चनानिहतम्—वञ्चनया = छलेन
वपटेन वा निहतम् = मारितं सुतम् = अत्मतं पुत्रं श्रुत्वा = सश्रुत्वा अन्धम् =
नेत्रहीनमपि मम = घृतराष्ट्रस्य मुखम् = आस्यम् अन्तर्गतास्त्राक्षम्—अन्त-
र्गतानि = अन्तर्विलीनानि अस्त्राणि = अश्रुणि अक्षिणी = चक्षुषो यस्य तद्
अन्धतरम् = अधिकतरमन्धं कृतम् = विहितम् ॥ ३७ ॥

घृतराष्ट्रः—पुत्र ! कहाँ हो ?

गान्धारी—पुत्र ! कहाँ हो ?

रानियाँ—महाराज ! कहाँ हैं ?

घृतराष्ट्रः—ओह ! बहुत कण्ट है ।

मद्रगुह्य में शत्रुओं द्वारा छलपूर्वक मारे गये पुत्र को सुनकर पहले से ही
अंधा मैं शोकातिरक्त के कारण अश्रुपूरित नेत्रों से अश्रिक अन्धा बना दिया
गया हूँ ॥ ३७ ॥

गान्धारी ! क्या लुम हो ?

गान्धारी—हाँ मन्दभागिनी मैं अभी तक जीवित हूँ !

दोनों रानियाँ—महाराज ! महाराज !

राजा—भो ! कष्टम् । यन्ममापि स्त्रियो रुदन्ति ।

पूर्वं न जानामि गदाभिघातहजामिदानी तु समर्थयामि ।
यन्मे प्रकाशकृतमूर्धजानि रण प्रविष्टान्यवरोधनानि ॥ ३८ ॥

धृतराष्ट्र — गान्धारि ! किं दृश्यते दुर्योधननामधेय कुलमानी ।

गान्धारी—महाराज ! ण दिस्सट्ठि । [महाराज ! न दृश्यते ।]

धृतराष्ट्र — कथं न दृश्यते । हतं भो ! अद्यास्म्यहमन्धो योऽहं
अन्वेष्टव्ये काले पुत्रं न पश्यामि । भो कृतान्तहतक !

अन्वय — पूर्व गदाभिघातहजां न जानामि तु इदानीं समर्थयामि यत्
प्रकाशकृतमूर्धजानि मे अवरोधनानि रणप्रविष्टानि ॥ ३८ ॥

व्याख्या—प्रथमम् = प्राक् गदाभिघातहजाम् = गदाप्रहारोद्भवा हजाम् =
पीडा न जानामि = नानुभूतवान् तु = परम् इदानीम् = साम्प्रतम् समर्थ-
यामि = गदाघातजनिता पीडाम् अनुभवामि यत् = यत् प्रकाशकृतमूर्ध-
जानि = प्रकाशकृतानि = वेणीरहितानि कृतानि मूर्धजानि = स्वात्मन केशा
यैस्तानि मे = मम अवरोधनानि = अतः पुराणि अतपुरीया स्त्रिय रणम् =
मङ्ग्रामभूमिं प्रविष्टानि = समागतानि ॥ ३८ ॥

राजा—ओह ! अत्यधिक खेद है कि आज मेरी भी पत्नियाँ रो
रही हैं ।

पहले मैं गदा के प्रहार से हुए पीडा का अनुभव नहीं किया था, किंतु
अपने अन्त पुर की मुक्तवेणी रानियों को रणस्थल पर देखकर अब मुझे
पीडा की अनुभूति हो रही है ॥ ३८ ॥

धृतराष्ट्र—कौरवकुल का मानी दुर्योधन दीख रहा है ।

गान्धारी—महाराज ! वह नहीं दिखाई पड़ रहा है ।

धृतराष्ट्र—क्या नहीं दीख रहा है ? ओह ! वस्तुतः आज मैं अन्धा
हूँ, जो कि इस खोजने के समय में पुत्र को नहीं देख रहा है । अये ! पापी
अमराज ! —

रिपुसमरविमर्दं मानवीर्यप्रदीप्त

१। सुतशतमतिधीर वीरमुत्पाद्य मानम् ।

घरणितलविकीर्णं किं स योग्यो न भोक्तु

सकृदपि घृतराष्ट्रं पुत्रदत्त निवापम् ॥ ३९ ॥

गान्धारी—जाद सुयोधन । देहि मे पडिवअण । पुत्तसदविणाम

दुत्थिद समस्सासेहि महाराज । [जात सुयोधन । दहि म प्रतियचनम् ।]

पुत्रशतविनाशदु स्थित ममाश्वामय महाराजम् ।]

वलदेव—अये । इयमत्रभवती गान्धारी ।

या पुत्रपौत्रवदनेष्वकुतूहलाक्षी

दुर्योधनास्तमितशोकनिपीतधैर्या ।

अन्वय — रिपुसमरविमर्दम् अतिधीर मानवीर्यप्रदीप्त घरणितलविकीर्ण

मान वीर सुतशतम् उत्पाद्य घृतराष्ट्रं पुत्रदत्त निवाप सकृत् अपि किं भोक्तु
न योग्य ॥ ३९ ॥

व्याख्या—रिपुसमरविमर्दम्—रिपुणाम् = अरीणां समरे = रणे विमर्दम् =
विध्वंस अतिधीरम् = धैर्यवत्तम् मानवीर्यप्रदीप्तम्—मानेन = प्रतिष्ठया अपि च
वीर्येण = शौर्येण प्रदीप्तम् = प्रतिद्विमवाप्तम् घरणितलविकीर्णम्—घरणितले =
भूमण्डले विकीर्णम् = परिरयवत् मान = मानयुक्त सुतशतम् = शतसरयाका
पुत्रान् उत्पाद्य = जनित्वा, घृतराष्ट्रं पुत्रदत्तम् = पुत्रं पुत्रण वा समर्पित
निवापम् = तपणार्थं तिलोदकम् सकृत् = एकवारम् अपि किं भोक्तुम् = ग्रहीतुं
न योग्य = न दत्त ? ॥ ३९ ॥

अन्वय — या पुत्रपौत्रवदनेषु अकुतूहलाक्षी दुर्योधनास्तमितशोकनिपीत

युद्ध मे शत्रुओ का मर्दन करने वाला सम्मान और पराक्रम से देदीप्यमान
अत्यन्त वीर अमीमानी सौ पुत्रो को उत्पन्न करने वाला घृतराष्ट्रं अपन
एक भी पुत्र द्वारा इस पृथ्वी पर दिये गये तपण जल का एक वक्त भी ग्रहण
करने क योग्य नहीं है ॥ ३९ ॥

गान्धारी—पुत्र सुयोधन । मुझे उत्तर दो । सौ पुत्रो की मृत्यु स दु खी
इस अभाग महाराजको धैर्यावलम्बन दो ।

वलदेव—अरे ! यह आदरणीया गान्धारी हैं ।

दुर्जय — अङ्के उपवेशं किण्णिमित्तं तुवं वारेसि । [अङ्क उपवेशं
किण्णिमित्तं त्वं वारयसि ।]

राजा—

त्यक्त्वा परिचितं पुत्र ! यत्र तत्र त्वयास्यताम् ।

अद्य प्रभृति नास्तीदं पूर्वभुक्तं तवासनम् ॥ ४४ ॥

दुर्जयः—कहिं णु हु महाराओ गमिस्सदि । [कुत्र नुखलु महाराओ
गमिष्यति ।]

राजा—भ्रातृशतमनुगच्छामि ।

दुर्जय.—म पि तहि णंहि । [मामपि तत्र नम ।]

राजा—गच्छ पुत्र ! एवं वृकोदरं ब्रूहि ।

दुर्जयः—एहि महाराज ! अण्णेसीअसि । [एहि महाराज !
अन्विष्यसे ।]

अन्वयः—पुत्र ! परिचितं त्यक्त्वा त्वया यत्र तत्र आस्यताम् अद्य
प्रभृति पूर्वभुक्तम् इदम् तव आसन नास्ति ॥ ४४ ॥

व्याख्या—पुत्र ! परिचितम् = प्रागनुभूतम् (मदङ्कम्) त्यक्त्वा =
परित्यज्य त्वया यत्र तत्र = यस्मिन् कश्मिश्चिदपि स्थाने आस्यताम् = समु-
पविश्यताम् अद्य प्रभृति = अद्य भावत् पूर्वभुक्तम् = पूर्वानुभूतम् इदम् = मत्क्रो-
डम् तव = भवतः आसनम् = स्यातुं योग्य नास्ति = न विद्यते ॥ ४४ ॥

दुर्जय—आप गोद मे बैठने से मुझे क्यों रोक रहे हैं ।

राजा—बेटा ! तुमने पहले जिस (मेरे गोद रूपी) आसन का उपयोग
किया, उस पूर्वपरिचित आसन को छोड़ कर अब जहाँ चाहो बैठो, आज से
यह तुम्हारे योग्य नहीं है ।

दुर्जय—तो अब महाराज कहाँ जायेंगे ?

राजा—अपने सौ भाइयों का अनुगमन करता हूँ ।

दुर्जय—मुझे भी वहाँ ले चलिए ।

राजा—बेटा ! जाओ भीम से कहो ।

दुर्जय—आइये, महाराज ! आप खोजे जा रहे हैं ।

राजा—पुत्र केन ।

दुर्जयः—अध्याए, अध्येण, सव्येण अतन्जरेण अ । [आप्याप्येण
मव्येणान्त.पुरेण च ।]

राजा—गच्छ पुत्र ! नाहमागन्तुं समर्थं ।

दुर्जयः—अहं तुम णइस्सं । [अह त्वा नेव्यामि]

राजा—वालस्तावदसि पुत्र !

दुर्जय—(परिक्रम्य) अथा ! अय महाराओ । [आर्था. ! अय
महाराजः ।]

देव्यो—हा हा ! महाराओ ! [हा हा ! महाराज. ।]

धृतराष्ट्र—क्यासी महाराजः ।

गान्धारी—कहिं मे पुत्तओ । (कुत्र मे पुत्रक ।)

दुर्जय—अअं महाराओ भूमीए उवविट्ठो । (अय महाराओ
मम्याणुपविष्टः ।)

धृतराष्ट्र—हन्त भो. ! किमयं महाराज. ।

राजा—किसके द्वारा ?

दुर्जय—पूज्य पितामही पूज्य पितामह, तथा अन्त पुर के सभी लोगो
द्वारा ।

राजा—पुत्र ! जाओ, मैं आने में असमर्थ हूँ ।

दुर्जय—मैं आपको ले चलूँगा ।

राजा—येटा ! तू अभी बालक ही ।

दुर्जय—माताओ ! यह महाराज हैं ।

देवियाँ—हाय ! हाय ! महाराज !

धृतराष्ट्र—महाराज कहाँ हैं ।

गान्धारी—मेरा पुत्र कहाँ है ।

दुर्जय—यह महाराज भूमि पर बैठे हुए हैं ।

धृतराष्ट्र—ओह ! यह महाराज हैं ।

यः काञ्चनस्तम्भसमप्रमाणो लोके किलैको वसुधाधिपेन्द्रः ।

कृतः स मे भूमिगतस्तपस्वी द्वारेन्द्रकीलार्धसमप्रमाणः ॥ ४५ ॥

गान्धारी—जाद सुयोधन ! परिस्सतोसि । [जात सुयोधन ! परि-
श्रान्तोऽसि ।]

राजा—भवत्याः खल्वहं पुत्रः ।

धृतराष्ट्रः—केय भो ।

गान्धारी—महाराज ! अहमभीदपुत्तप्पसविणी । [महाराज ! अहम-
भीतपुत्रप्रसविनी ।]

अन्वयः—य. लोके काञ्चनस्तम्भसमप्रमाण. एकः वसुधाधिपेन्द्रः स मे
तपस्वी भूमिगतः द्वारेन्द्रकीलार्धसमप्रमाणः कृतः ॥ ४५ ॥

व्याख्या—य = दुर्योधन. लोके = पृथिव्याम् काञ्चनस्तम्भसमप्रमाण.—
काञ्चनम् = स्वर्णम् तस्य स्तम्भसमम् = स्थूणसदृशम् प्रमाणम् यस्य सः
किल = वस्तुतः एकः = अद्वितीय. वसुधाधिपेन्द्र = वसुधायाम् = पृथिव्याम् ये
खलु अधिपाः = राजान् तेषां तेषु वा इन्द्र = श्रेष्ठः चक्रवर्ती (आसीत्) स-
मे = मम धृतराष्ट्रस्य पुत्रः, तपस्वी = वराकः भूमिगतः = यदाघातेन भूमौ
पतितः द्वारेन्द्रकीलार्धसमप्रमाणः—द्वारेन्द्रः = गृहस्य प्रमुख द्वारं तस्य
य. कीलः = अर्गला तस्य अर्धम् = अर्धभाग. तेन तुल्यम् प्रमाणम् = परिमाणं
यस्य स. तथा कृतः = जातः ॥ ४५ ॥

जो सोने के खम्भे की भाँति सुदृढ़ शरीर वाला इस पृथ्वी पर सभी
राजाओं में श्रेष्ठ था उस मेरे तपस्वी पुत्र को भूमि पर पड़े हुए दरवाजे के
टुकड़े की भाँति बना दिया गया है ॥ ४५ ॥

गान्धारी—बेटा सुयोधन ! क्या तुम थके हो ।

राजा—भै, आपका पुत्र हूँ । (अर्थात् वीर प्रसविनी जननी का पुत्र
कैसे थक सकता हूँ ?)

धृतराष्ट्र—यह कौन है ?

गान्धारी—मैं निर्भय पुत्र की जननी (गान्धारी) हूँ ।

राजा—अघोस्वन्नमिवात्मानमवगच्छामि । भोन्तात किमिदानीं
वैवल्येन ।

धृतराष्ट्र—पुत्र कथमविवलवो भविष्यामि ।

यस्य वीर्यं बलोत्सिक्तं संयुगाध्वरदीक्षितम् ।

पूर्वं भ्रातृशतं नष्टं त्वय्येकस्मिन्हृते हतम् ॥ ४६ ॥

[पतिनि]

राजा—हा धिक् ! पतितोऽग्रभवान् । तात ! समाश्वासयात्र-
भवतीम् ।

धृतराष्ट्र—पुत्र ! किमिति ममाश्वासयामि ।

राजा—अपराङ्मुखो युधि हत इति । भोन्तात शोकनिग्रहेण

अन्वय — यस्य वीर्यं बलोत्सिक्तम् संयुगाध्वरदीक्षितम् भ्रातृशतम् पूर्वम्
नष्टम् त्वयि एकस्मिन् हते हतम् ॥

व्याख्या—यस्य = तव दुर्योधनस्य, वीर्यं बलोत्सिक्तम् = उद्धतम् संयुगा-
ध्वरदीक्षितम् = गयुग = समर एवाध्वर = यः तस्मिन् दीक्षितम् = निपुणम्
भ्रातृशतम् पूर्वम् = प्रागेव युद्धे नष्टम् = दिवङ्गतम् (इदानीम्) त्वयि
एकस्मिन् = एकनाशत्रिशिष्टे मत्पुत्रे हने = मृते हतम् = सर्वं ममाप्त-
मिति ॥ ४६ ॥

राजा—मैं अपने को आज ही उत्पन्न हुआ समझ रहा हूँ । पिताजी !
अब पदनाशन करने में क्या होगा ।

धृतराष्ट्र—पुत्र ! कैसे शोकरहित हो सके ।

युद्ध रानी यज्ञ में दीक्षित बल तथा पराक्रम से परिपूर्ण जिसके सो भाई
धृत्यु के मुख में चले गये हैं इस प्रकार तुम्हारे एक की ही मृत्यु से मैं भी
मारा गया ॥ ४६ ॥ (गिर जाना है)

राजा—हाय ! बहुत कष्ट है । आप गिर गये । पिताजी ! माता
की को सान्त्वना दिलायें ।

धृतराष्ट्र—बेटा ! कैसे सान्त्वना दिलाऊँ ।

राजा—मैं युद्ध में शत्रु का सामना करते हुए मारा गया हूँ । हे.

क्रियता ममानुग्रह ।

त्वत्पादमात्रप्रणताग्रमौलिज्वलन्तमप्यग्निमचिन्तयित्वा ।

येनैव मानेन सम प्रसूतस्तेनैव मानेन दिव प्रयामि ॥ ४७ ॥

धृतराष्ट्र —

वृद्धस्य मे जीवितनि स्पृहस्य निसर्गसम्मीलितलोचनस्य ।

धृतिं निगृह्यात्मनिसम्प्रवृत्तस्तीव्रस्समाक्रामति पुत्रशोक ॥ ४८ ॥

अन्वय — त्वत्पादमात्रप्रणताग्रमौलि येन एव मानेन समम् प्रसूत तेन एव मानेन ज्वलन्तम् अग्निम् अपि अचिन्तयित्वा दिवम् प्रयामि ॥ ४७ ॥

व्याख्या — त्वत्पादमात्रप्रणताग्रमौलि — त्वत्पादमान = भवञ्चरणमात्रे प्रणत = नत अग्रमौलि = शिर यस्य स (अहम्) यनैव मानेन = प्रतिष्ठया समम् = सह प्रसूत = अजाये तेनैव मानेन = सम्मानेन (सह) ज्वलन्तम् = प्रज्वलितम् अग्निम् = वह्निम् अपि अचिन्तयित्वा = अविचार्य दिवम् = स्वर्गम् प्रयामि = गच्छामि ॥ ४७ ॥

अन्वय — जीवितनि स्पृहस्य निसर्गसम्मीलितलोचनस्य वृद्धस्य मे धृतिम् निगृह्य आत्मनि सम्प्रवृत्त तीव्र पुत्रशोक समाक्रामति ॥ ४८ ॥

व्याख्या — जीवितनि स्पृहस्य — जीविते = प्राणधारणे नि स्पृहस्य = अभिलापरहितस्य निसर्गसम्मीलितलोचनस्य निसर्गेण = ज मनैव सम्मीलिते = सङ्कुचिते लोचने = अक्षिणी यस्य वृद्धस्य = जरातुस्य मे = मम धृतराष्ट्रस्य धृतिम् = धैर्यम् निगृह्य = अपवृत्त्य आत्मानि = हृदि सम्प्रवृत्त = समुत्पन्न

पिताजी ! इसे जान कर नि शोक होकर मेरे ऊपर कृपा करें ।

आपक चरणों में नतमस्तक रहने वाला मैं जिस अभिमान के साथ उत्पन्न हुआ उसी सम्मान के सहित जलती हुई अग्नि की चिन्ता न करता हुआ स्वर्ग जा रहा हूँ ॥ ४७ ॥

धृतराष्ट्र — अपने जीवन के प्रति निराश मुझ ज मानव का पुत्रविनाश जनित शोक, धैर्य को रोक कर अति तीव्र गति से मुझे आक्रान्त कर रहा है ॥ ४८ ॥

वलदेव — भो ! कष्टम् ।

दुर्योधननिराशस्य नित्यास्तमितचक्षुषः ।

न शक्नोम्यत्र भवतः कर्तुमात्मनिवेदनम् ॥ ४९ ॥

राजा—विज्ञापयाम्यत्र भवतीम् ।

गान्धारी—भणाहि जाद ! [भण जात !]

राजा—नमस्कृत्य वदामि त्वा यदि पुण्य मया कृतम् ।

अन्यस्यामपि जात्या मे त्वमेव जननी भव ॥ ५० ॥

तीव्रः = असह्य पुत्रशोकः = पुत्रविनाशजनितशोक ममाक्रामति = समन्तत
आत्रमनि = आत्रमण करोतीत्यर्थः ॥ ४८ ॥

अन्वय — दुर्योधननिराशस्य नित्यास्तमितचक्षुष जत्र भवत आत्म-
निवेदनं कर्तुं न शक्नोमि ॥ ४९ ॥

व्याख्या—दुर्योधननिराशस्य = दुर्योधनस्य जीवन प्रति नैराश्यमवाप्तस्य
नित्यास्तमितचक्षुषः—नित्यम् = सर्वदैव अस्तमिते = सद्बुद्धिने चक्षुषी =
अक्षिपी यस्य स तस्य अत्र भवत = मान्यस्य (शोकाकुलस्य) समक्षम्
आत्मनिवेदनम् = धैर्यावलम्बनाय किञ्चिद्वक्तुं न शक्नोमि =
समर्थोऽस्मि ॥ ४९ ॥

अन्वय.—(हे मात !) त्वा नमस्कृत्य (अहम्) वदामि यदि मया
पुण्यं कृतम् (तदा) मे अन्यस्याम् अपि जात्या त्वम् एव जननी
भव ॥ ५० ॥

व्याख्या—मातरं गान्धारी प्रति दुर्योधनः कथयति त्वाम् = भवतीम्

वलदेव—ओह ! वेद है ।

दुर्योधन के जीवन के प्रति हताश नित्य निमोलिन नेत्रों वाले आप
(धृतराष्ट्र) के समक्ष मैं अपनी कुछ भी बातें कहने में असमर्थ हूँ ॥ ४९ ॥

राजा—माँ ! मैं आपसे कुछ निवेदन करना चाहता हूँ ।

गान्धारी—कहो देटा ।

राजा—मैं अभिवादन करके आपसे कहता हूँ कि यदि मैंने कुछ पुण्य
किया है तो दूसरे जन्म में भी आप ही मेरी माता हों ॥ ५० ॥

भीष्मो रामशरावलीढकवचस्तातश्च योद्धा रणे

व्यक्त निर्जित एव सोऽप्यतिरथ कालेन दुर्योधन ॥ ५८ ॥

तत् क्व नु खलु गतो गान्धारीपुत्र । (परिक्रम्यावलोच्य) अये
अयमभिहतगजतुरगनररथप्राकारामध्यगत समरपयोधिपारग कुरु
राज । य एष ,

भीष्म तातश्च रणे स योद्धा अपि अतिरथ दुर्योधन कालेन व्यक्तम् एव
निर्जित ॥ ५८ ॥

व्याख्या—रथद्विपगता = रथारूढाश्च चापद्वितीयै —चाप = धनुरेव
द्वितीय = सहायो येषां तादृशं करै = हस्तं उच्यते प्राञ्जलय — उद्यता =
उत्थापिता प्राञ्जलय = पाणिपुटा यै तादृशा एकादशबाहिनीनृपतय —
एकदशसख्यकाना बाहिनीनाम् = सेनाना नृपतय = अधीश्वरा यस्य = दुर्यो
धनस्य वाक्योन्मुखा = आज्ञापालका तिष्ठन्ति स्मे' ति शेष । किञ्च
रामशरावलीढकवच — रामस्य = परशुरामस्य शरै = सायकै अवलीढ =
विद्धो कवच यस्य स भीष्म = शातनुतनु तात = पिता च रणे = सहग्रामे
योद्धा = 'सेनापति' यस्य सोऽपि अतिरथ = रथिनमतिब्रह्म्य वतत इति
महारथी दुर्योधन कालेन = कालवैपरीत्येन व्यक्तमेव = निश्चितमेव
निर्जित पराजित इति ॥ ५८ ॥

तदिति । गान्धारीपुत्र = दुर्योधन , अये इत्याश्चर्यम् अयमभिहतगजतुर-
गनररथप्राकारामध्यगत — अयम् = कौरवाधिप , अभिहता = मृता ये गन्ता =

रथ और हाथियों पर सवार, विभिन्न शस्त्रों से सुसज्जित जिनकी
आज्ञा की शिरोधार्य करने के लिए ग्यारह अश्वोहिणी सेना वाले राजा भी
हाथ जोड़े खड़े रहते थे, परशुराम के बाणों से आच्छादित कवच वाले
भीष्म और मेरे पिता जी (द्रोणाचार्य) जैसे पराक्रमी जिस दुर्योधन के योद्धा
थे वह वीर (दुर्योधन) भी काल की प्रतिकूलता से पराजित हो गया ॥ ५८ ॥

तो गान्धारी का पुत्र (दुर्योधन) कहाँ चला गया । (घूम कर और देख
कर) अरे ! मरे हुए हाथी, घोड़े, मनुष्य और रथरूपी प्राचीर के मध्य
समरयुद्ध को पार करने वाला दुर्योधन पड़ा हुआ है । जो यह—

मौलीनिपातचलकेशमयूखजाले-

गार्त्रिगंदानिपतनक्षतशोणितार्द्रे ।

'मात्यस्तमस्तकशिलातलसन्निविष्ट

सन्ध्यावगाढ इव पश्चिमकालसूर्ये ॥ ५९ ॥

(उपसृत्य) भो कुरुराज ! किमिदम् ।

हस्तिन तुरगा = अश्वा नरा = मनुष्या रचाश्च तथा यत्प्राकार त मध्य
गत = तदत प्रविष्ट, समरपयोधिपारग = समर = यद्धस्यमेव पयोधि =
समुद्र तस्य पारग = पार गच्छतीत्यर्थं ।

अन्वय — मौलीनिपातचलकेशमयूखजाले गदानिपतनक्षतशोणितार्द्रे
गार्त्रे अस्तमस्तकशिलातलसन्निविष्ट सन्ध्यावगाढ पश्चिमकालसूर्ये इव
भाति ॥ ५९ ॥

व्याख्या—मौलीनिपातचलकेशमयूखजाले = मौल्या = मुकुटस्य निपानेन =
प्रपतनेन चला = चञ्चला केशा = गिरीवाला एव मयूखजात्राणि = विरण-
समूहा तै तथा गदानिपतनक्षतशोणितार्द्रे = गदाया निपतनेन = प्रहारेण
यानि क्षतानि = व्रणस्थानानि तेष्य निस्सूनेन शोणितेन = रक्तेन आर्द्रे =
विनने गार्त्रे = शरीरावयवै अस्तमस्तकशिलातलसन्निविष्ट = अस्तपस्त-
कस्य = अस्ताचलगिरस्य गिलातलेषु = प्रस्तरखण्डेषु सन्निविष्ट =
सल्मन सन्ध्यावगाढ = सन्ध्याकालीनरागण अवगाढ = ज्वलित पश्चिम-
कालसूर्ये = दिवावसानकारीनभास्कर इव = सद्ग भाति = मुगामत
इति ॥ ५९ ॥

मुकुट गिर जाने के कारण केग निमके सूर्य की विरणा की भाति हैं,
गदा के प्रहार से हुए व्रण से निकलने के कारण जिसका रत्तरञ्जित शरीर
आर्द्र होने से अस्ताचल के गिरने म डबते हुए सूर्य का तरह अस्त हाता
जान पडना है ॥ ५९ ॥

(मभीष जाकर) अहो कुरुराज ! यह क्या हुआ ?

१ "मात्यस्ते"त्यादि पाठान्तरम् ।

राजा—गुरुपुत्र ! फलमपरितोषस्य !

अश्वत्थामा—भो कुरुराज ! सत्कारमूलमावर्जयिष्यामि ।

राजा—किं भवान् करिष्यति ।

अश्वत्थामा—श्रूयताम् ।

युद्धोद्यतं गरुडपृष्ठनिविष्टदेह -

अष्टाद्वंभीमभुजमुद्यतशाङ्गचक्रम् ।

कृष्ण सपाण्डुतनय युधि शस्त्रजालैः

सङ्कीर्णलेख्यमिव चित्रपटं क्षिपामि ॥ ६० ॥

राजा—फलमपरितोषस्य —फलम्=परिणामः, अपरितोषस्य=सन्तोषरहितस्य ।

अश्वत्थामा—सत्कारमूलमावर्जयिष्यामि—सत्कारपूर्वकं यथा स्यात्तथा आवर्जयिष्यामि=तवाऽनुरूपं करिष्यामि ।

अन्वय —युद्धोद्यतं गरुडपृष्ठनिविष्टदेहम् अष्टाद्वंभीमभुजम् उद्यतशाङ्ग-चक्रं सपाण्डुतनयं कृष्ण युधि शस्त्रजालैः सङ्कीर्णलेख्यं चित्रपटम् इव क्षिपामि ॥ ६० ॥

व्याख्या—किं भवान् करिष्यतीति दुर्योधनेन पृष्ठे सत्यश्वत्थामा कथयति—युद्धोद्यतम्—युद्धाय=सग्रामाय उद्यतम्=उत्साहान्वितं तथा गरुड-पृष्ठनिविष्टदेहम् गरुडस्य=वनतैयस्य पृष्ठे=पृष्ठभागे निविष्ट.=सन्नि-विष्टो देह.=शरीर यस्य तम्, अष्टाद्वंभीमभुजम्—अष्टाद्वं=चत्वार.

राजा—गुरुपुत्र, मेरे अत्यधिक लोभ का फल है ।

अश्वत्थामा—हे कुरुराज ! आपका (अभीष्ट सिद्ध कर) सत्कार करना चाहता हूँ ।

राजा—आप क्या करेंगे । -

अश्वत्थामा—युद्ध के लिए उत्साहित गरुड की पीठ पर बैठे हुए भयंकर चार भुजाओं वाले शाङ्ग नामक धनुष और चक्र धारण किए हुए कृष्ण को पाण्डवों के सहित, युद्ध में शस्त्रसमूह के द्वारा चित्रित चित्रपट की भाँति नष्ट कर फेंक दूँगा ।

राजा—मा मा भवानेवम् ।

गत धात्र्युत्सगे सकलमभिपिक्त नृपकुल

गत कर्णं स्वर्गं निपतिततनु शान्तनुसुत ।

गत भ्रातृणा मे शतमभिमुख सयुगमुखे

वय चैवभूता गुरुसुत । धनुमुञ्चतु भवान् ॥ ६१ ॥

भीमा = मयोत्पादना भुजा = बाहवो यस्य तम् उद्यतशास्त्रं चक्रम्—उद्यते =
सुसज्जिते शास्त्रं च = धनुश्च चक्रम् च = मुद्गानश्च इति उद्यतशास्त्रं चक्रं
यस्य त, सपाण्डुतनय = पश्चपादवसहितं वृष्णम् = वासुदेव युधि = समर
शस्त्रजालं = शस्त्रसमूहं सङ्कीर्णलेख्यम् सङ्कीर्णा = परस्पर साङ्ख्यं प्राप्ता
लेख्या = मूक्तय यत्र तादृश यच्चित्रपटम् तमिव भिपामि = उत्स्रस्यामि
हनिष्यामीति भावः ॥ ६० ॥

अन्वय — अभिपिक्त सकल नृपकुल धात्र्युत्सङ्गे गतम्, कर्ण स्वर्गं
गत, शान्तनुसुत निपतिततनु मे भ्रातृणा शतमभिमुख सयुगमुख गतम्,
वय च एवभूता (अत) हे गुरुसुत भवान् धनु मुञ्चतु ॥ ६१ ॥

व्याख्या—अभिपिक्तम् = युवराजपदाधिष्ठितं मङ्गलम् = समग्रं नृप-
वृत्तम् = राजवश, धात्र्युत्सङ्गे—धात्र्या = पृथिव्या उत्सङ्गे = क्रौडे गतम् =
प्रविष्टम् कर्णं = राधेय. स्वर्गम् = नाकलोकं गतं शान्तनुसुत = भीष्म
निपतिततनु = पतितदेहोऽभवदिति शेषः । मे = मम भ्रातृणाम् = सोदराणां
शतम् = शतसंख्याकम् अभिमुखम् = समन्त्रमेव सयुगमुख = युद्धमध्ये गतम् =
विनष्टम् वयश्च एवभूता = एवविधा जाना (अत) हे गुरुसुत = गुरुपुत्र
भवान् धनु = शस्त्रं मुञ्चतु । शिखरिणी वृत्तम् ॥ ६१ ॥

राजा—नहीं, आप ऐसा न कहिय ।

समस्त अभिपिक्त राजवश पृथिवी की गोद में सो गया कर्ण स्वर्ग
चला गया, शान्तनु-पुत्र (भीष्म पितामह) भी मारे गए मरे सो भाई भी
रणक्षेत्र में स्वयं सिंघार गये और मैं उनलोगों का अनुगमन कर रहा हूँ,
इस लिए हे आचार्य पुत्र ! आप धनुष को त्याग दें ।

१ “शत भ्रातृणा मे हतमभिमुख सयुगमुखे” इत्येवमपि पाठो लभ्यते ।

अश्रुत्यामा—भो. कुरुराज !

संयुगे पाण्डुपुत्रेण गदापातकचग्रहे ।

सममूर्खद्वयेनाद्य दर्पोऽपि भवतो हृतः ॥ ६२ ॥

राजा—मा मैवम् । मानशरीरा राजानः । मानार्थमेव मया
निग्रहो गृहीतः । पश्य गुरुपुत्र !

यत्कृष्ठा करनिग्रहाञ्चितकचा द्यूते तदा द्रौपदी

यद्बालोऽपि हतस्तदा रणमुखे पुत्रोऽभिमन्युः पुनः ।

अक्षव्याजजिता वन वनमृगैर्यत्पाण्डवाः संश्रिता

नन्वल्प मयि तैः कृतं विमृश भो दर्पाहृतं दीक्षितैः ॥ ६३ ॥

अन्वयः—गदापातकचग्रहे संयुगे अद्य पाण्डुपुत्रेण ऋद्वयेन समम् एव
भवतः दर्पे. अपि हृतः ॥ ६२ ॥

व्याख्या—गदापातकचग्रहे—गदायाः पात. = जाघात' कचानाम् =
शिरोरूहाणां ग्रहः = आकर्षणं यत्र तादृशे संयुगे = संग्रामे अद्य पाण्डुपुत्रेण =
भीमेन ऋद्वयेन = जङ्घायुगलेन समम् = सहैव भवतः = तव दर्पे. = स्वाभि-
मानः अपि हृतः = नष्टः ॥ ६२ ॥

राजा—मानशरीराः—मानम् = प्रतिष्ठा एव शरीरा. = देहाः यस्य त
एव राजानः । निग्रहः = युद्धम् गृहीतः = सरचित' ।

अन्वयः—यत् करनिग्रहाञ्चितकचाः द्रौपदी द्यूते कृष्ठा पुनः पुत्रः
अभिमन्युः तदा रणमुखे बालः अपि यद् हृतः अक्षव्याजजिता पाण्डवाः वनमृगैः
यत् वन संश्रिताः भोः दीक्षितैः तैः मयि दर्पाहृतं कृतं ननु अल्पम् (इति)
विमृश ॥ ६३ ॥

अदश्रुत्यामा—हे कुरुराज ! पाण्डुपुत्र भीम के द्वारा युद्ध मे केश पकड़
कर गदा प्रहार किये जाने के कारण तुम्हारी दोनो जङ्घाओ के साथ ही
तुम्हारा अभिमान भी नष्ट कर दिया गया है ॥ ६२ ॥

राजा—नही, नही अभिमान ही राजाओ का शरीर है । मान के लिए
नी मैंने युद्ध किया है । आचार्यपुत्र देखे—

मैंने द्युतसभा मे हाथो से जो द्रौपदी का केश खीचा, सद्ग्रामाङ्गण मे

| | श्लो. सं. | | श्लो सं- |
|-----------------|-----------|-------------------|----------|
| वञ्चनानिहतं | ३७ | संयुगे पाण्डु | ६२ |
| वीर्याकरः सुत | ६६ | सहृत्प ध्रुकुटी | २३ |
| वीर्यालयो विविध | २२ | सन्नाहदुदुभि | ५४ |
| वृद्धस्य मे | ४८ | सीमोच्छिष्ट | २८ |
| वेदोवर्तविविधः | ५२ | स्पृष्ट्वा लाण्डव | १४ |
| वैरस्यायतनं | ४ | स्फुटितकमल | ५६ |
| शिरसि गुरु | २० | सस्तोद्धतित | १३ |
| शिष्टोर्त्कपन | १७ | स्वर्गयंमाहव | २ |
| श्रीमान् संयुग | २९ | हतं मे भीम | ४१ |
| बलाध्यश्रीः | ५३ | हृदयप्रीति | ४३ |

चौरवन्धा अमरभारती ग्रन्थमाला

३३
००००

भासनाटकचक्रे

पञ्चरात्रम्

सपरिशिष्ट 'विमला' संस्कृतहिन्दोव्याख्योपेतम्

व्याचारात्—

डॉ० जगदीशचन्द्र मिश्रः

साहित्याचार्य, व्या० ए०, बी० ए० (आनर्स), एम० ए० (द्वितीय),
पी० एच०डी०, डिप्लोमा-एड ।



चौरवन्धा अमरभारती प्रकाशन

वाराणसी

१९७९

प्रकाशक : चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०३६
मूल्य : ५-००

© चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन
के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
पो० बा० १३८, वाराणसी-२२१००१
(भारत)

अपर च प्राप्तिस्थानम्
चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
के० ३७/१९, गोपाल मन्दिर लेन
पो० बा० ८, वाराणसी-२२१००१
फोन : ६३१४५

CHAUKHAMBA AMARABHARATI GRANTHAMALA

33



PAÑCARĀTRAM

OF

MAHAKAVI BHASA

Edited with

The 'Vimāla' Sanskrit, Hindi Commentaries and Notes.

By

Dr. J C MISHRA

B A (•Hons), M A (Double), Ph-D. Dip-in-Ed.

Sahityacharya and Vyakaran Shastri.



Chaukhamba Amarabharati Prakashan

VARANASI-221001

1979

विषय-प्रवेशः

| | | |
|--|-----|-----|
| | | पृ० |
| विमला-विमर्श | ... | ७ |
| भूमिका— | | |
| पञ्चरात्र : एक परिचय | ... | १० |
| पञ्चरात्र की कथावस्तु— | | |
| प्रथम अङ्क | ... | १५ |
| द्वितीय ,, | ... | १६ |
| तृतीय ,, | ... | १७ |
| कथावस्तु पर एक दृष्टि | ... | १९ |
| पात्रपरिचय | ... | २४ |
| ग्रन्थारम्भ— | | |
| प्रथम अङ्क | ... | १ |
| द्वितीय ,, | ... | ५८ |
| तृतीय ,, | ... | १२८ |
| परिशिष्ट : टिप्पणी : नोट्स— | | |
| प्रथम अङ्क | ... | १४७ |
| द्वितीय ,, | .. | २६२ |
| तृतीय ,, | ... | १७२ |
| पञ्चरात्र में प्रयुक्त छन्दों का विवरण | ... | १७७ |
| पञ्चरात्र में प्रयुक्त मुभाषित | ... | १७९ |
| पञ्चरात्रगत नाटकीय विषय | ... | १८० |
| नाटकगत शब्दार्थ परिचय | ... | १८१ |
| श्लोकानुक्रमणिका | ... | १८६ |

विमला विमर्श

'विमला' पञ्चरात्र की व्याख्या है। अनुवाद एवं विचारविमर्श की दृष्टि से यह व्याख्या नहीं एक उपयुक्त है। यह मैं अपने इच्छा कुर्मी समीपों पर छोड़ता हूँ। किन्तु, इस सृष्टि-संरचना में विमल से मेरा सम्बन्ध हुआ है, उनके सम्बन्ध में कुछ अवश्य कहना चाहूँगा।

प्रत्येक देश और काल में देशान्तर या कालान्तर की भावनाओं एवं विचारों की अभिव्यक्ति के माध्यम में अन्तर रहा है। यह अन्तर तत्संबन्धी परिवेश एवं परिवर्तन के अन्तर के कारण ही रहा है। मुगलविरोध अपना देश-विरोध या कोई भी कति या विचारक जो कुछ सोचता विचारता है, उसे अपनी भाषा में लिखित कर देता है। अपने ही देश में कालान्तर में जब उस भाषा को जानने वालों की कमी हो जाती है तब वह विचारराशि जन सामान्य के लिए दुर्लभ एवं अज्ञात प्रतीत होने लगता है। उन्हें समझाकर उस भाषा के माध्यम से उन विचारों का बोध ही नहीं हो पाता है। यह अवबोधता की बीमार भाषा के कारण उत्पन्न होती है। भाषाव्यय इस व्यवधान को दूर करना ही विमला का मुख्य उद्देश्य है।

एक ही देश की दूर दूर भाषाओं में विमल भावव्यक्ति, एक दूसरे के भावों और विचारों को निकट लाने के लिए एक दूसरे की भाषा के भावों और विचारों को अपनी भाषा के भावों या विचारों में लाना चाहती है। एक ही क्षेत्र में कुर्मी से बड़ी भावव्यक्ति जो अपने पूर्वजों के भावों और विचारों को समझने या जानने के लिए स्पष्टतया इसे अपनी वर्तमान भाषा में लाने की इच्छुक रहती है। यह प्रक्रिया सफल होती है केवल एक ही माध्यम से जिसे हम अनुवाद या भाषान्तर की व्याख्या करते हैं। वस्तुतः अनुवाद भाषाभिन्न व्यक्ति को एक भाषा से दूसरी भाषा में स्थानांतरित करने की एक विशिष्ट कला है। पञ्चरात्र की परिनिष्ठित संस्कृत भाषा को सरल संस्कृत, हिन्दी में स्थानांतरित करने की विमला की क्षमता किन्तु हृद तक सफल हुई है, विचारणीय है।

'विमला' का कार्य भारत के पुरातन और वर्तमान के बीच सम्बन्ध स्थापित करने की एक बड़ी की तरह है। 'पञ्चरात्र' में निहित भाव के महाभारतीय भावों या विचारों के अतिरिक्त इसके वर्णमाला भारतीय सभ्यता के प्रसार तथा समृद्धि के लिए भी विमला की उपयोगिता स्पष्ट है।

किसी भी देश का रचनात्मक कृतित्व उस देश की सांस्कृतिक प्रक्रिया के सर्वाधिक सवेदनशील और सर्जनात्मक रूप को उजागर करता है। अतः यह स्वाभाविक है कि छात्रों के अतिरिक्त अन्य बौद्धिक वर्ग के लोग भी इस स्थिति को जानने के लिए उत्सुक हों। भारत जैसे देश के लिए जो अनेक प्रान्तों में बटा हुआ है और जहाँ प्रान्तविशेष की अपनी अपनी स्थानीय भाषाएँ हैं, वहाँ पञ्चरात्र को संस्कृत हिन्दी व्याख्या के साथ ही अंग्रेजी अनुवाद की भी बड़ी आवश्यकता है।

'विमला' व्याख्या की कुछ निजी समस्याएँ भी हैं। किन्हीं दो भाषाओं के वातावरण समान नहीं होते। एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करते समय अविकल पर्यायों का अभाव उन शब्दों को लेकर बहुत खटकता है जो संस्कृत, वेशभूषा, खानपान, धर्म दर्शन, फलफूल आदि के वाचक होते हैं। जैसे 'पञ्चरात्र' में प्रयुक्त यज्ञ, होम, प्राग्वश, तपस्या, पूजा-पाठ, दान-धर्म, धृद्धा-भक्ति, दर्म, कृष्णाजिन, राजर्षि, आचार्य, तपोनिष्ठ, पाटल, धी, सुवा, भाण्ड, भर्त्ता, सुश्रुपा, वनराजि प्रभृतिशब्द जिन अर्थों के वाचक होते हैं, उनके बोधक शब्द अंग्रेजी में तो नहीं ही हिन्दी में भी प्रयत्नसाध्य होते हैं। इसकी व्याख्या लिखते समय हिन्दी की प्रगति को ध्यान में रखकर विमला को कठिनाइयों का सामना करना पडा है।

इस नाटक की व्याख्या लिखते समय वाक्य-रचना को लेकर भी कई समस्याएँ सामने आई हैं। कई स्थानों पर मूल भाषा में परस्पर किसी भाव के लिए प्रयुक्त प्रतीकात्मक शब्दों के लिए हिन्दी, संस्कृत या अंग्रेजी भाषा में समानार्थी शब्दों की अनुपलब्धि के सम्बन्ध में जब कभी समस्या उठी है तब वहाँ विमला ने स्वेच्छाचारिता बरती है। प्रायः यह समस्या अधिकांशतः व्यावहारिक शब्दों के प्रयोग में ही आई है। इस समस्या या इस तरह की समस्याओं को दूर करने के लिए या तो मूल भाषा के अपरिचित शब्दों से व्याख्या भाषान्तर में ग्रहण कर लिए गये हैं, या फिर उसे ज्यों के त्यों ही ग्रहण कर लिया गया है।

'पञ्चरात्र' में प्रयुक्त संस्कृत मुहाबिरे या मुभाषितों को लेकर भी यह

भूमिका

पञ्चरात्र · एक परिचय

नाटक का नामकरण उन पाँच रातों की घटना से संबद्ध है, जिनमें द्रोण को दुर्योधन की शर्त के अनुसार गुप्तवासी पाण्डवों का पता पाँच रातों के भीतर ही लगा लेना है। तभी पाण्डव शर्त के अनुसार राज्यार्ध के अधिकारी हो सकते हैं। 'पञ्चरात्र' की कथावस्तु महाभारत के चतुर्थ खण्ड अर्थात् 'विराट् पर्व' पर आधारित है। इस कथावस्तु का सारांश पर्वसंग्रह पर्व के निम्नलिखित श्लोको में मिलता है—

अत पर निबोधेद वीराट् पर्वविस्तरम् ।
विराटनगरे गत्वा श्मशाने विपुला शमीम् ॥ २०६ ॥
दृष्ट्वा सन्निदधुस्तत्र पाण्डवा ह्यायुधान्युत ।
यत्र प्रविश्य नगरं छद्मना न्यवसस्तु ते ॥ २०७ ॥
पाञ्चाली प्रार्थयानस्य कामोपहतचेतसः ।
दुष्टात्मनो वधो यत्र कीचकस्य भृकोदरात् ॥ २०८ ॥
पाण्डवान्वेषणार्थं च राज्ञो दुर्योधनस्य च ।
चारा प्रस्थापिताश्चान्न निपुणा सर्वतो दिशम् ॥ २०९ ॥
न च प्रवृत्तिस्तैर्लब्धा पाण्डवाना महात्मनाम् ।
गोमहश्च विराटस्य त्रिगर्ते, प्रथमं कृतं ॥ २१० ॥
यत्रास्य युद्धं मुमहूर्त्तरासील्लोमहर्षणम् ।
हियमाणश्च यत्रासौ भीमसेनेन मोक्षितः ॥ २११ ॥
गोवनं च विराटस्य मोक्षितं यत्र पाण्डवं ।
अनन्तरं च कुरुभिस्तस्य गोमहणं कृतम् ॥ २१२ ॥
समस्ता यत्र पार्थेन निर्जिता कुरवो युधि ।
प्रत्याहृतं गोघनं च विक्रमेण किरीटिना ॥ २१३ ॥

विराटेनोत्तरा दत्ता स्नुषा यत्र किरीटिन ।

अभिमन्यु समुद्दिश्य सौमद्रमरिघातिनम् ॥ २१४ ॥

चतुर्धमेतद्विपुल वीराट पदं वर्णितम् ।

बारह साल के यनवास की अवधि समाप्त कर पाण्डवों ने एक साल के गुप्तवास की अवधि में प्रवेश किया। उन्होंने अपने सारे अस्त्रों को एक विशाल शमीवृक्ष के कोटर में छिपा दिया तथा भेष बदलकर मत्स्यो के सम्राट विराट की राजधानी में प्रवेश किया। युधिष्ठिर ने पासा फेंकने में निपुण ब्राह्मण बद्ध का रूप ग्रहण किया। भीम न मुकुन्दराज बल्लभ के रूप में रसोई घर का कामभार ग्रहण किया। अर्जुन ने नृत्य समीत विशारद कित्तु नपुंसक गृहभला का रूप ग्रहण किया। नकुल विराट के घोड़ों के संरक्षक के रूप में नियुक्त हुए और सहदेव को राजा की हजारों गायों के रक्षक का प्रमाण बताया गया। बिचारी द्रौपदी ने सिरंधी का रूप ग्रहण किया। उस पटरानी के बाल सजान वाली महिला का काम सौंपा गया।

विराट की सेना का शक्तिशाली प्रधान सेनापति महारानी का भाई कीचक था। उसने द्रौपदी के रूप सौंदर्य को देखा। पहली ही दृष्टि में वह द्रौपदी के प्रति आसक्त एक अभिभूत हो गया। उसने गम्यागम्य का विचार छोड़ द्रौपदी का पीछा करना शुरू कर दिया। द्रौपदी ने उसे बहुत समझाया और बोली— मेरा पति एक गणपति है जो अदृश्य रहकर भी मेरी रक्षा में सतत सज्ज रहता है। यदि उद्यम तुम्हारे इस अर्थात् प्रेम व्यवहार का योग्य भा पता चल गया तो किसी भी स्थिति में वह तुम्हें जिंदा न छोड़ेगा। कित्तु, काचक कुछ भी गुप्त करने की क्षमता नहीं था। अतः हारकर द्रौपदी ने उन नृत्यशाला में आने को कहा। अक्सर आते ही कीचक वहाँ आ धमका। द्रौपदी के अपमान का बदला लेने के लिए भीम पहले से ही वहाँ उपस्थित थे। गला दमकर उन्होंने सत्यान कीचक की हत्या कर डाली। उसने मृत शरीर का क्षतविक्षत कर डाला। उसका शपथ इतने तरह विधुत था कि उसे परमान पाना बचिन हो रहा था। काम समाप्त कर भीम वहाँ से चले गये। द्रौपदी ने नृत्यशाला के रक्षकों को बुलाया तथा उन्हें कित्तु पराई स्त्री के प्रति मोह रक्षा के कारण

कुरु सेना शीघ्र ही पीछे की ओर भाग खड़ी हुई। अर्जुन ने युद्ध विजय के बाद अपने सारे हथियार उसी शमी वृक्ष के कोटर में छुपा दिये और उत्तर को इस युद्ध का पूरा ध्येय दिया। यहाँ उन्होंने अपने आप को पूर्णतः गौण रखा। उत्तर को भी अपना रहस्य छिपाने के लिए अनुकूल बना लिया। विजय की खबर जब सम्राट् विराट को मिली तब उन्होंने कुमार उत्तर के स्वागत की भव्य तैयारी की। वे स्वयं कक के साथ पासा खेलने बैठ गये। कक ने इन युद्ध का श्रेय बृहन्नला को दिया। यह सुनते ही विराट भटक उठे। आवेश में उन्होंने पासा फेंक कर कक पर प्रहार किया। पासा की चोट से कक के नाक से खून की धारा बहने लगी। बगल में खड़ी सैरन्धी ने जब यह दृश्य देखा तो भट से एक दरतन में उस खून को समेट लिया उसी समय बृहन्नला के साथ उत्तर दरबार में उपस्थित हुआ। लेकिन, युधिष्ठिर ने चुपचाप दरवान से कहा केवल उत्तर को ही दरबार में उपस्थित करो। क्योंकि, उन्हें भय था कि कहीं बृहन्नला के रूप में छिपा अर्जुन अगर उनके नाक से बहते खून को देख लिया तो अनर्थ हो जायेगा। कुमार उत्तर ने बृहन्नला को छोड़कर ही दरबार में प्रवेश किया। युद्ध की सारी घटनाओं का उसने सही-सही चित्रण उपस्थित किया। अर्जुन के परिचय को छिपाकर इनकी जगह किसी देवपुत्र की लक्ष्यता का उल्लेख किया।

इस युद्ध-विजय के बाद तीसरे दिन पाण्डवों ने अपनी राजसी पोशाक में विराट की सभा में प्रवेश किया। सभा में उन्होंने अपना-अपना स्थान उन गद्दियों पर ग्रहण किया जो मात्र राजाओं के लिए आरक्षित थे। विराट ने जब यह दृश्य देखा तो क्रोध से कांपने लगे। किन्तु उसी क्षण अर्जुन ने उठकर युधिष्ठिर एवं अपने अन्य भाईयों का परिचय विराट के सामने दिया। कुमार उत्तर ने इसका समर्थन किया तथा अर्जुन की शक्ति की उसने भूरि-भूरि प्रशंसा की। मत्स्य सम्राट् विराट ने अपने को दोषी घोषित किया तथा इस अपराध के लिए अपनी सुपुत्री कुमारी उत्तरा को भेंट स्वरूप उनके सामने अर्पित किया। अर्जुन ने अपनी पुत्रवधू के रूप में कुमारी उत्तरा को ग्रहण किया। पुनः उसी नगर में पाण्डवों ने अपने आवास स्थान पर धूम-धाम के साथ उत्तरा का विवाह अभिमन्यु के साथ सम्पन्न किया।

पञ्चरात्र की कथावस्तु

प्रथम अङ्क

कुछ सम्राट् महाराज दुर्योधन ने एक विशाल यज्ञ प्रारम्भ किया। उस यज्ञ में कुछ लड़कों ने उपद्रव सजा किया। उन्होंने यज्ञ मण्डप में आग लगा दी। ऋत्विजों ने किसी तरह आग पर नियंत्रण प्राप्त किया। यज्ञ सम्पादन के बाद देश-देशान्तर के आये हुए ब्राह्मणों, समासदो एवं सामन्तों ने दुर्योधन का माधुवाद किया। अन्त में दुर्योधन ने अपने आचार्य द्रोण से यज्ञान्त की दक्षिणा स्वीकार करने की प्रार्थना की। पहले तो द्रोण ने कहा—मेरी दक्षिणा सुरक्षित रखो, समय पर माँग लूँगा। किन्तु, प्रतिज्ञात दुर्योधन के अत्यधिक जाग्रह पर उन्होंने कहा—पाण्डवों को उनका आधा राज्य दे दो, यही हमारी यज्ञ-दक्षिणा होगी। शकुनि ने इसे आचार्य की धर्म-वचनता कहा। उसके इस कथन से द्रोण क्रुद्ध हो गये। उन्होंने कहा—पाण्डवों का राज्यायं उन्हें लौटा दो, अन्यथा वे बल पूर्वक अपना हिस्सा तुमसे ले ही लेंगे। अब तुम्हीं सोच लो कि मेरी प्रार्थना अच्छी है अथवा उनका बल प्रयोग। क्रुद्ध आचार्य को पितामह भीष्म और कर्ण ने समझा बुझा कर शांत किया।

दुर्योधन ने इस संवध में अपने मामा शकुनि से परामर्श लिया और अन्त में उसने धोषणा की—यदि पाँच रात के अन्दर पाण्डवों का पता लगा दिया जाय तो पाण्डवों को राज्य का आधा हिस्सा दिया जा सकता है। भीष्म के अनुरोध पर द्रोणाचार्य ने दुर्योधन की यह शर्त मान ली।

इसी बीच दुर्योधन के दरवार में यह खबर मिली कि विराट के सारे सौ कीचकों का बध किसी ने बिना अस्त्र प्रयोग के ही कर दिया है। भीष्म ने निश्चय किया कि यह कर्म भीष्म के सिवा और कोई कर ही नहीं सकता है। अतः उन्होंने द्रोणाचार्य को बता दिया कि पाण्डव विराट के नगर में ही हैं। भीष्म ने दुर्योधन को बतलाया कि विराट के साथ हमारी पुरानी शत्रुता है।

इस यज्ञ में भी विराट नहीं आया। अतः उसके ऊपर आक्रमण करना चाहिए। उसका गोधन अपहृत कर लेना चाहिए। पितामह की यह चाल समयानुकूल थी। यह आक्रमण पाण्डवों का पता लगाने का एक साधन था। उनका यह विश्वास था कि विराट पर जब यह आक्रमण होगा तब पाण्डव चुपचाप नहीं बैठेंगे क्योंकि उनमें कृतज्ञता के भाव हैं। अतः ऐसी स्थिति में उनका पता आसानी से चल जायेगा।

द्वितीय अङ्क

उक्त दिन विराट का जन्मदिन था। इस जन्मदिन के उपलक्ष्य में राजधानी सजाई गई थी। कण-कण में उल्लास फैला था। गोधन भी सजाये गये थे। सभी गोपाल उत्सव मना रहे थे। इसी बीच दुर्योधन ने अपनी नैना के साथ उनपर आक्रमण किया। गायें हरी जाने लगीं। गोपाल घबडाकर भाग खड़े हुए। इस अप्रत्याशित आक्रमण की खबर गोपालों ने राजा को दी। उन्होंने कहा—कौरवों ने गोधन पर आक्रमण किया है। उनकी सेना में पितामह भीष्म और आचार्य गुरु द्रोण भी हैं। उनका सामना करने के लिए कुमार उत्तर बृहन्नला को सारथी बनाकर जा चुके हैं। विराट सूचना पाते ही अपने पुत्र की मदद के लिए तत्पर हो उठे किन्तु इसी बीच उन्हें दूसरी सूचना मिली—युद्ध क्षेत्र से भीष्म एवं दुर्योधनादि राजगण हार कर भाग चुके हैं। युद्ध में केवल अभिमन्यु लड़ रहा है। कुछ ही देर बाद द्रुपद ने फिर खबर दी कि युद्ध समाप्त हो चुका है। कुमार विजयी रहा। राजा ने अपने पुत्र को देखने की उन्कट अभिलाषा प्रकट की। किन्तु, कुमार उत्तर युद्ध में बहादुरी दिखलाने वाले वीरो का नाम उस समय अज्ञित कर रहा था। विराट ने बृहन्नला को ही बुलाकर युद्ध का विवरण जानना चाहा। इसी बीच एक दूत ने आकर प्रसन्नता पूर्वक खबर दी कि युद्ध में अभिमन्यु पकड़ा गया। अभिमन्यु को पकड़ने वाला वही वीर है। जिसे पाकशाला में नियुक्त किया गया था राजा का दिल प्रसन्नता से नाँच उठा। उन्होंने ससम्मान अभिमन्यु को उपस्थित करने का आदेश दिया।

अभिमन्यु तथा भीम से भेंट होने पर बृहन्नला अभिमन्यु के माता पिता की कुशलता का समाचार पूछती है। भीम और बृहन्नला दोनों मिलकर उसे

चिढ़ाते और उत्तेजित कर देने हैं। इसके पश्चात् बृहन्नला अभिमन्यु को विराट् के पास ले जाती है। वहाँ भी वह किए गये प्रश्नों का उत्तर अत्यन्त उत्तेजना के साथ देता है। इसी बीच कुमार उत्तर वहाँ आकर बृहन्नला की ओर सकेत करते हुए घोषणा करता है कि ये अर्जुन हैं। इन्होंने ही दमशान स्थित शर्मो वृक्ष पर दौंगे अपने धनुष बाण को लाकर आज के युद्ध में कौरवों को पराजित किया अतः आज के युद्ध के विजयी वीर यही हैं। मैं नहीं हूँ। इतने ही में भगवान् युधिष्ठिर पाण्डवों के अज्ञात वास की अवधि समाप्त होने की घोषणा करते हैं। इन सारी घटनाओं को देख सुनकर अभिमन्यु पुलकित हो जाता है। वह अपने पितृजनो से मिलकर अत्यन्त परितृप्ति का अनुभव करता है। राजा विराट् भी पाण्डवों का परिचय पाकर प्रसन्न हो जाते और अपने को गौरवान्वित समझने लगते हैं। वे इस विजय के उपलक्ष्य में अपनी पुत्री उत्तरा को अर्जुन के लिए समर्पण करने की घोषणा करते हैं। जिसे अर्जुन अपनी पुत्र-वधू के रूप में ग्रहण करने की स्वीकृति देते हैं।

तृतीय अङ्क

कौरव पक्ष में अभिमन्यु के अपहरण का समाचार फैलने ही सभी लोग चकित हो उठते हैं। एक पदाति ने अर्केसे ही शस्त्रों से सुसज्जित और सेना से रक्षित अभिमन्यु को कैसे अपहृत किया। भीष्म ने श्लोको का समाधान करते हुए कहा कि अभिमन्यु का अपहर्ता भीम के अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकता। शकुनि को यह कथन बहुत ही अप्रिय प्रतीत हुआ और उसने कहा कि तब तो आप हम लोगों को पराजित करने वाले कुमार उत्तर को भी अर्जुन ही समझ रहे होंगे।

द्रोणाचार्य और भीष्म दोनों ने शकुनि की कही हुई बात को सत्य प्रतिपादित करते हुए कहा कि युद्ध की बाणवृष्टि तो यही सकेत कर रही है कि वह अर्जुन की ही युद्धकला थी। बाण-वर्षण में इतनी त्वरा और लघुहस्तता है ही किममें, जो क्षण भर में ही आकाश को बाणों से आच्छन्न करके भूमिस्त का दृश्य उपस्थित कर दे। भीष्म के रथ की श्वजा में लगा हुआ एक बाण लाया गया। शकुनि ने उसमें अर्कित अर्जुन के नाम को पढ़कर लज्जित होकर उसे फेंक

राजभवन में इस गोग्रहण का समाचार मिला। यह भी महाभारत-कथा में विपरीत चित्रण है। लयता है, मुख्य कथा के वर्वर भागों को चिकना बनाने के लिए ही भात ने ऐसा किया है। यथा—कीचक का द्रौपदी के प्रति पाशविक आसक्ति, भीम का भयानक बदला, कीचक के साथ उनके अन्य अनुयायियों की हत्या का बिल्कुल उल्लेख नहीं किया गया है। केवल हत्या के संबंध में सकेत भर है। ठीक इसी प्रकार युधिष्ठिर के नाक से रत्नस्राव की घटना को भी दबा दिया गया है। दुर्योधन के चरित्र को कुछ अधिक ही पक्षपात पूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया गया है। लेकिन, उसका उदार स्वल्प पाण्डवों के प्रति अपनी सारी शोभा तब खो देता है जब शकुनि से सुनने के बाद वह सोचता है कि उसने उतावली में काम किया है। और सिर्फ वाक्छन्द से अपने समझौता से छुटकारा पाकर प्रसन्न हो जाता है। महाभारत की मूलकथा के अनुसार यहाँ भी शकुनि दुर्योधन को दुष्ट प्रतिभा का प्रतीक है। जब कि कर्ण जो महाभारत में धमण्डी, धृष्ट और विपसी है, यहाँ वह मित्र और शान्ति के प्रति झुका हुआ चित्रित किया गया है।

महाभारत में युद्ध विजय के बाद पाण्डवों ने तीन-चार दिनों के बाद अपना छत्रवेश परित्याग किया है। जबकि यहाँ उसी दिन पाण्डव अपने रूप में आ जाते हैं! डॉ० विण्टरनिज़ की दृष्टि में विराट् का पुत्र उत्तर एक योद्धा की अपेक्षा हँसोड अधिक है। जो युद्धभूमि से भागकर जब विराट् को युद्धभूमि का सुना हुआ इतिवृत्त सुनाता है तो विराट् समझता है कि उसका पुत्र किसी प्रशंसनीय कार्य में व्यस्त था। संभवतः इस हँसोड भाव का उपयोग इसलिए किया गया है कि उत्तर को इस मजमा से अलग रखा जा सके। अन्यथा, सारी सचाई को वह मजाक बना देता। उस- समय भी उसे अलग रखा गया जब अभिमन्यु स्वयं अपने पिता को पहचानने में असमर्थ हो रहा था।

इस नाटक में विराट् अपने रनिवास में पूरे एक साल तक बृहद्रथ (छत्रवेशी अर्जुन) के रहने पर विशेष विनित-प्रतीत होता है चिन्ता का कारण संभावित अफवाह है जो इसकी आसन्न यौवना पुत्री उत्तरा और अर्जुन के एकान्तवास का कारण बन सकती है। इसलिए विराट् स्वेच्छा से उत्तरा को अर्जुन के

हाथों में सौंप देता है। इस नाटक में अर्जुन स्वयं अपने पति के प्रति सतर्क है और विराट से प्राप्त उपहार स्वरूप उत्तरा को प्राप्त कर उसे अपनी पुत्रपत्नी के रूप में स्वीकार कर अपने पति की उज्वलता को प्रमाणित कर देता है।

पशु आक्रमण की चर्चा महाभारत में भी है। किन्तु, भात में इसे द्रोण को समय से पूर्व ही पाण्डवों का पलायन जाने के लिए प्रेरित किया है। भीष्म ने विराट के साथ अपने निजी घेरे को स्वीकार किया है। और उन्होंने कौरवों को समझाया कि यज्ञ में विराट की अनुपस्थिति को मोघहण का बहाना बनाया जाय। महाभारत में ये निगताँ के राजा के एक विवाह संधि की सलाह पर चिन्तित है जो भीष्म की मृत्यु के बाद विराट के सेनापति द्वारा किये गये सारे अपमानों के बदले उसके दण्ड को पूरा कर डालना चाहता है।

इस प्रकार महाभारत की प्रसिद्ध एव विस्तृत कथा को विशेष रूप से मोघहण एव अभिमानु के परिग्रहण की शृङ्खला में कवि ने काफी स्वेच्छा-चारित्य दिया है। इसका एक भाग कारण है, इस नाटक को घोररस प्रधान सुखात्त नाटक बनाने की दिशा देना। इस नाटक में कोई स्त्री पात्र नहीं है। बृहन्नला के रूप में अर्जुन ही एक नारी पात्र है। द्वितीय अंक के मध्य में रङ्गमञ्च पर गाय के चरघाटों की भीड़ अनावश्यक लगती है।

म० म० गणपति सास्त्री और प्रो० कीच इस नाटक को समयवार मानते हैं। किन्तु 'दशरूपक' में दी गई समयकार की परिभाषा (III, ६२-६७) के अनुसार यह ठीक ढंग से बँट नहीं पाता है। क्योंकि, यह रणक में तो ईश्वर से सम्बन्ध रखता है और न दासों से ही सम्बन्धित है। शू गार रस की तो इनमें शेषमात्र भी चर्चा नहीं है। ऐसा कहा गया है कि समयकार के मायक (घोर) सत्य में ब्यक्त होने चाहिए। उत्सुवतापरा नाटक के मांगलिक द्रोण में कवि ने ब्यक्त चरित्रों की सूची अवश्य प्रस्तुत कर दी है। पर, कवि की मेधा मुझ का परोक्ष चित्रण करने की बुद्धि में स्थिर है। यह नाटक ब्यंग्यात्मक स्थिति में जो पाठकों या दर्शकों के अनाद या मुख्य स्रोत है, छपवेसा से देता जा सकता है।

सम्पूर्ण नाटक में धर्म-परायणता एव विनीत भाव का ही धातावरण है किन्तु, सारे पतिव्रत ब्राह्मण धर्म से जकड़े प्रतीत होते हैं। डॉ० विण्टर-

पात्र-परिचय



| | | |
|----------------|-----|-----------------------------------|
| १. दुर्योधन | ... | कुरुदेश का राजा |
| २. भीष्म | ... | कौरवो तथा पाण्डवो के पितामह |
| ३. द्रोण | ... | अस्त्रविद्याचार्य |
| ४. कर्ण | ... | अङ्गदेशाधीश तथा दुर्योधन के मित्र |
| ५. शकुनि | ... | दुर्योधन के मामा तथा गान्धारराज |
| ६. वृद्धगोपालक | ... | विराट के घोपपाल |
| ७. गोमिदक | ... | चरवाहा |
| ८. भगवान | ... | अज्ञातवासी युधिष्ठिर |
| ९. भीमसेन | ... | विराट के पाकाध्यक्ष |
| १०. बृहन्नला | ... | नपुंसकरूप में अर्जुन |
| ११. राजा | ... | विराट, मत्स्यदेशाधीश |
| १२. उत्तर | ... | विराट के पुत्र |
| १३. अभिमन्यु | ... | अर्जुन व पुत्र |
| १४. सूत | ... | सारथि |
| १५. काशुकीय | ... | विराट के कशुकी |
| १६. भट | ... | राजभृत्य |



पञ्चरात्रम्

‘विमला’ संस्कृत-हिन्दो-व्याख्योपेतम्

प्रथमोऽङ्कः

(नाचन्ते तत प्रविशति सूत्रधार)

सूत्रधार —

श्रेण पृथिव्यर्जुनभीमद्वतो यं वर्णधारं शकुनीश्वरस्य ।

वर्णतालपवनैरलीन् यथा धारयन्निखिलविघ्नहम्बरम् ।
तन्निराकृतिगजास्यविग्रहं चिन्तये विमपि मञ्जुलमह ॥
यत्पृषातरणिमानसथयात् गोष्पदी भवति वाह्मयाम्बुधि ।
ना समस्तसुरवृन्दद्विधा भारती भवतु शूरिसूतये ॥
पञ्चरात्ररचना समुज्ज्वला भासवर्णितगुणा यथामति ।
ध्यायया विमलया मयाञ्चिता मोददास्तु सतत शुभात्मनाम् ॥

अथ नुप्रथितयशास्तरभवान् कवितावामिनीहामो महाकविर्भास पञ्चरात्रा-
भिधान समवधारसज्ञया स्यकविशेष चिन्तयुं तदारम्भे प्रयोगमभ्यङ्गिष्पति-
परिपन्थिदुरितप्रशम्पीपापिल पूर्वैरङ्गप्रधानाङ्गमङ्गलरलोकपाठम् उपक्रम्यमाण-
प्रयोगस्य कथावस्तुवसस्य निवेदनं च प्रयोगनिर्वाहधूमहेण सूत्रधारणं रङ्गे

(नान्दी के बाद सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्रधार— जी सचन सतेज भीषण गर्जनयुत श्यामवर्ण मेघ के सदृश हूँ,
जिन्होंने राज्य प्राप्त कराने के निमित्त भीम तथा अर्जुन का द्वन्द्व स्वीकार किया

दुर्योधनो भीष्मयुधिष्ठिर स पायाद् विराडुत्तरगोऽभिमन्यु ॥१॥
(परिक्रम्य) एवमार्यमिथान् विज्ञापयामि । अये । किन्तु खड्ग मयि

प्रथमगमाचरणायम् । पश्यस्तस्य प्रवेश तावदाह—नान्द्यन्ते तत् प्रविशति सूत्रधार' इति । नान्दी आनक । सा च उपलक्षण वाद्यान्तराणामपि तस्याऽपि प्रयोगपूर्वाङ्गभूते आनकादि वाद्यवादनेऽवसित इत्यर्थः । अथवा—नन्दिरानन्द इय नान्दी गीतवाद्यवादनक्रिया तस्या अन्ते सा हि प्रयोगारम्भे देवतापरिपदा नन्दार्थानुष्ठानुष्ठीयते । तत् तदनन्तर नान्दीपरिसमाप्ति अव्यवहितोत्तरकाल इत्यर्थः । 'नान्द्यन्ते प्रविशति सूत्रधार' इत्युक्तौ नान्द्यवसानसूत्रधारप्रवेश क्रिययो पीर्वापर्यमान प्रतीयते, न तु क्रियान्तराव्यवधानमपि, तयो क्रियान्तर व्यवधानेऽपि पीर्वापर्यव्यवहारा हानात् । तेन नान्द्यवसानक्रियान्तरमेव प्रविष्ट सूत्रधारो मङ्गलमाचरति—द्रोण इति ।

द्रोण मेघस्तत्सदृशकृष्णवर्ण, पृथिव्यजुनभीमद्वत् पृथिव्यै स्वाशभूतायै मुवे अजुनभोमयो पाण्डुनन्दनद्वत् प्रेष्यभाव गत शकुनीश्वरस्य विहगराजस्य दिनतामुतस्य य कर्णधार नियन्त्रक, दुर्योधन दुन्वेन योध्यत इति दु ख दु ख कर येन तादृशो वाऽतिबलतया पराजेतुमशक्य इत्यर्थः । भीष्मयुधिष्ठिर भीष्मो अरिभयानक युद्धे रणौ स्थिरश्च उत्तरग प्रशस्तपथगामी अनिद्याचार अभिमन्यु मन्थुम् यज्ञम् अभिगत आराधनीय इति धावत् एतादृश विराट् आदिपुरुषो भगवान् श्रीकृष्ण पायात् प्रेक्षकान् प्रयोक्तृश्च मङ्गलेन योजित्वित्यर्थः । अथ चात्र द्रोण अर्जुन-भीम-कर्ण-शकुनी-दुर्योधन-भीष्म युधिष्ठिर-विराट् उत्तरा अभिमन्वाख्यातानि नाटकीयानि पात्राणि मुद्रालङ्कारभङ्गाया मूचितानि । नान्दी मङ्गलमाचारण द्वादशपदत्वमप्यत्र बोधव्यम् ॥ १ ॥

(परिक्रम्य भ्रमण कृत्वा) एवम् वक्ष्यमाणप्रकारेण, आर्यमिथान् समादग्नीयान् विज्ञापयामि निवेदयामि, अये, इति अव्ययम्, खड्ग निश्चयेन मयि

जिनका पक्षिराज गण्ड पर नियन्त्र है तथा जो युद्धभूमि में कठोर योद्धा है, जो निश्चय के घनी ओर भयङ्कर हैं, हमेशा जिनका कृत्य उत्कृष्ट है तथा त्याग के लिए जो सदैव प्रस्तुत हैं ऐसे आदि पुरुष श्रीकृष्ण हम सबों की रक्षा करें॥१॥
(घूमकर) इस तरह मान्य आर्यों से निवेदन करता हूँ । अरे निवेदित

विज्ञापनव्यग्रं शब्द इव श्रूयते । अङ्ग । पश्यामि ।

(नेपथ्ये)

अहो कुरुराजस्य यज्ञसमृद्धिः ।

सूत्रधारः—भवतु, विज्ञातम् ।

सर्वैरन्तःपुरैः सार्धं प्रीत्या प्राप्तेषु राजसु ।

यज्ञो दुर्योधनस्यैव कुरुराजस्य वर्तते ॥ २ ॥

सूत्रधारे, विज्ञापनव्यग्रं = स्वाभिमतबोधनाय प्रयुञ्जाने शब्द. ध्वनि., इव यथा श्रूयते कर्णागोचरोभवति । अङ्ग = इति सम्बोधनमव्ययम्, पश्यामि अवलोकयामि ।

(नेपथ्ये रङ्गस्य पृष्ठ देशे)

अहो आश्चर्यम्, कुरुराजस्य घृतराष्ट्रसुतस्य, यज्ञसमृद्धिः. भागमम्पन्नता,

सूत्रधारः—भवतु = यानु, विज्ञातम् = अवधारितम् ।

सर्धैरिति—एषां दृश्यमानविभवः, कुरुराजस्य दुर्योधनस्य घृतराष्ट्रसुतस्य यज्ञं मख वर्तते जायते, यत्र यज्ञप्रेम्णा दुर्योधनप्रेम्णा वा, सर्वैः सकलैः अन्तःपुरैः नृपवधृजने, सार्धम् सह राजसु मवलेषु भूपतिषु, प्रीत्या आनन्देन, प्राप्तेषु आगतेषु सत्सु । अयं हि कुरुराजस्य दुर्योधनस्य यज्ञो वर्तते इति मया शब्द कारण ज्ञातमिति भावः । अस्मिन् दलोके अनुष्टुप् छन्दः ॥ २ ॥

करने के लिए मेरे प्रस्तुत होते ही, यह शब्द कैसे सुनाई पड़ रहे हैं? अच्छा, देखता हूँ ।

(नेपथ्य मे)

आश्चर्यं, महाराज दुर्योधन का यज्ञ वैभव भी विलक्षण है ।

सूत्रधार—अच्छा, मैं समझ गया ।

यह महाराज दुर्योधन का यज्ञ जो हो रहा है, इसमें स्नेहवश अनेक राजन्य महाराज के प्रति अपना सम्मान प्रकट करने हेतु अपने रनिवात के साथ एकत्र हुए हैं ॥ २ ॥

(निष्क्रान्तः)

स्थापना ।

(ततः प्रविशन्ति ब्राह्मणास्त्रयः)

सर्वे—अहो कुरुराजस्य यज्ञसमृद्धिः !

(निष्क्रान्तः = बहिर्गतः)

स्थापना—प्रस्तावना स्थाप्यते उपस्थाप्यते कथावस्तु अनयेति व्युत्पत्तिः । भासकृतनाटकेषु स्थापनाशब्दप्रयोग एव सर्वत्रैतदयंकृतः । कालिदासादिरचित-नाटकेषु इयमेव प्रस्तावना आमुखमित्यादिनाम्ना व्यवहियते । स्थापनाशब्दप्रयोगो हि भासस्य प्राक्तनता सूचयति । तत्क्षणं हि 'सूत्रधारो नटी ब्रूते मारिष वा विदूषकम् । स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत्तदाहुःखम् ।' प्रस्तावना इति च प्रस्तावनाभेदेषु चेह प्रयोगातिशयो नामभेदः । 'यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽप्यप्रयुज्यते, तेन पात्रप्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तदा ।' इति वचनात् । अत्र सूत्रधार-मुखेन पात्रप्रवेशात् प्रयोगातिशयः । यद्यपि नाटकनियमानुसारं स्थापनायाः कवि-नाटकयोः नामकीर्त्तनमावश्यकम्—'प्रसाद्य रङ्गं विधिवत् कवेर्नाम च कीर्त्तयेत् । प्रस्तावना ततः कुर्याद् काव्यप्रख्यापनाथयाम् । (ना० शा० ६) इत्यभियुक्तोक्तेः, तथापि महाकविना नियम एव उपेक्षितः । अत्रोच्यते—प्रस्तावनायाः कविकाव्य-कीर्त्तनसमुदाचारस्तद्विदस्य पुराणमहाकवेः कालेनावर्तत । पश्चात् कालेन कवीनामुपजातं कविकाव्यकीर्त्तनसमुदाचारप्रणय लक्ष्येषु भूयिष्ठमुपलभ्य तदनु-सारिण्ये लक्षणकारैः प्रणीतमित्यदोष इति ।

(ततः = तत्पश्चात्, प्रविशन्ति रङ्गभूमिमागच्छन्ति, ब्राह्मणास्त्रयः
त्रिसंख्यकाः विषा)

सर्वे—अहो आश्चर्यम्, कुरुराजस्य दुर्गोवनस्य, यज्ञसमृद्धिः महत्तवैभवम् ।

(प्रस्थान)

(उसके बाद तीन ब्राह्मणों का प्रवेश)

सभी—अहा ! कितना सुन्दर है महाराज का यागवैभव ।

प्रथम — इह हि,

द्विजोच्छिष्टैरन्ने प्रकुम्भितवाशा इव दिशो
हविर्धुमैः सर्वे हृतकुमुमगन्धास्तरुणा ।

मृगस्तुल्या व्याघ्रा वधनिभर्तसिहाश्च गिरयो
नृपे दीक्षा प्राप्ते जगदपि सम दीक्षितमिव ॥ ३ ॥

द्वितीय — सम्यग् भवानाह ।

प्रथम — इह अस्मिन् स्थाने, हि यत् —

द्विजोच्छिष्टैरिति— द्विजोच्छिष्टं द्वाभ्याम् जन्म-संस्काराभ्याम् जाय-
तेति द्विजन्तेषामुच्छिष्टं मुक्तावशिष्टं, अन्ने = तण्डुलादिभिः, दिश दिशति
वदात्यवकाशमिति दिश् + क्विप्, आशा प्रकुम्भितवाशा विकसितकाशकुसुमा,
इव वधा, हविर्धुमैः हवमातजनितधूमैः, सर्वे सकला, तरुणा पादपाः,
हृतकुमुमगन्धा अपहृतसुमन्गन्धा इव जाता इति शेष । व्याघ्रा शङ्खला,
मृगस्तुल्या हरिणवत् अहिंसकस्वभावा जाता इत्यर्थं, गिरयो पर्वताश्च, वध-
निभर्तसिहा अहिंसककेमरिण जाता इति शेष । नृपे मूषे, दीक्षा प्राप्ते यज्ञावसरे
तेन समम् सदैव जगदपि निखिलविश्वोऽपि, दीक्षितम् यज्ञार्थकृतसकल्पमिव
जातम् । अस्मिन् स्थाने हेतुत्प्रेक्षा अलङ्कार, शिखरिणीवृत्तश्च, तल्लक्षण यथा—
“रमैरीशैश्छिता यमनशमलाग शिखरिणी इति ॥ ३ ॥”

द्वितीय.— सम्यक् युक्तम्, आह वक्ष्यति, भवान त्वम् इति ।

पहला— इसमें, ब्राह्मणों द्वारा खाकर छोड़े गये बिखरे अवशेषों के कारण
ऐसा लगता है मानो सभी ओर काश के फूल खिल उठे हों, अनेक पेड़ यज्ञ के
धुँआ से घुमिल होकर अपन फूलों की मुगन्ध खो बैठे हैं, बाध हरिण की तरह
(पालतू) हो गये हैं, पर्वत की कन्दराओं में रहने वाले निहो न हत्या करना
बन्द कर दिया है, ऐसा लगता है कि महाराज के माथे मारा मसार ही
यज्ञदीक्षित हो रहा है ॥ ३ ॥

दूसरा— आपने ठीक ही कहा ।

तृप्तोऽग्निर्हविषाऽमरोत्तममुखं वृषा द्विजेन्द्रा घनै-

स्तृप्ताः पक्षिगणाश्च गोगणयुतास्ते ते नराः सर्वशः ।

हृष्टं सम्प्रति सर्वतो जगदिदं गर्जन्तृपे सदगुणै-

रेवं लोकमुदारोह सकलं देवालयं तद् गुणैः ॥ ४ ॥

तृतीयः—इमेऽत्रभवन्तो द्विजातयः,

राज्ञां वेष्टनपट्टघृष्टचरणाः श्लाघ्यप्रभूतश्रवा

वाङ्मयेऽप्यभिवर्धमाननियमाः स्वाध्यायशूरैर्मुखैः ।

तृप्तोग्निरिति—अमराणाम् सुराणाम् उत्तमाः धेयाः अमरोत्तमास्तेषाम् सुखम् आननम् अग्नि पावक, हविषा हृष्यद्रव्यगणैः वृष संतुष्ट, द्विजेन्द्रा- विप्राः, घनैः अर्यैः, वृषाः सन्तुष्टा, गोगणयुता गोभिः सहिता ते ते पक्षिगणा खगा, यथाभिलषिताहारलाभेन सर्वश सर्वात्मना वृषाः सन्तुष्टा, ते ते सर्वे सकला नरा लोका अपि कल्याणकामनया वृषा, सदगुणं प्रशस्तगुणनमूह- नृपे राजनि, गर्जत् तारस्वरेण प्रतिपादयत्, इदम् एष, जगत् भुवनम् सम्प्रति अधुना, सर्वतः सर्वतोभावेन हृष्टम् प्रसन्नम्, तत् देवालयम् स्वर्गम्, लोकम् मर्त्य- लोकम्, सकलम् सम्पूर्णम्. एवम् अनेन प्रकारेण, उदारोह अतिक्रान्तवत् । शार्दूलविक्रीडितम् वृत्तम् तल्लक्षणम् यथा—'सूर्याश्विर्मंसजाम्बतः स गुरवः शार्दूलविक्रीडितम्' ॥ इति ॥ ४ ॥

तृतीयः—इमे सन्मुखे उपस्थिताः, अत्रभवन्त श्लाघनीयाः, द्विजातयः विप्रा —

राज्ञामिति—राज्ञाम् भूभृताम्, वेष्टनपट्टेन शिरस्केण घृष्टचरणा प्रणाम- परिपाटीभिः स्पृष्टपादा, श्लाघ्यः पूज्यः प्रभूतः पर्याप्त श्रवः शान्तिश्रवणम् येषा

हवि से देवताओं के मुख अग्निदेव संतुष्ट हो गये हैं, उत्कृष्ट ब्राह्मण सम्पत्ति से संतुष्ट हैं । पशुसमूह के साथ पक्षिगण भी प्रसन्न हो रहे हैं, सभी मानव भी प्रसन्न हैं इस प्रकार यह समस्त विश्व प्रसन्न दीख रहा है, महाराज के सदगुणों से यह मर्त्यलोक स्वर्ग का भी अतिक्रमण कर रहा है ।

तीसरा ये हैं वे पूजनीय ब्राह्मण ।

जिनके चरण नृपतियों की पगड़ी के अनवरत स्पर्श से धिम गये हैं, जिनके

विप्रा यान्ति वय प्रवर्षंशिविला यष्टिनिपादक्रमा

शिष्यस्वन्धनिवेशिताञ्चितकरा जीर्णा गजेन्द्रा इव ॥ ५ ॥

सर्वे—भो भो माणवका ! भो भो माणवका ॥ अनवसितऽवभृद्यस्नान न खडु तावदग्निरुत्सृष्टव्यो भवद्भिः ।

प्रथम —हा धिग्, दशितमेव तावद् बहुचापलम् ।

ते तयोक्ता, वार्धक्येऽपि वृद्धावस्थायामपि, अभिवर्धमाननियमा रात्रिर्दिवसु-
पचीयमानव्रतादिविषया, स्वाध्यायसूरे शास्त्राध्ययनतत्परे मुखे आनन, वय-
प्रवर्षंशिविला वृद्धवात् इत्यशरीरा, यष्टिनिपादक्रमा दण्डावलम्बनन
पादत्रयगालिन, शिष्यस्य अतवासित स्वन्धे असद्वेशे, निवसित आरोपित
अञ्चित समाहृत निजकर हस्त, यै तादृशा, जीर्णा अतिवृद्धा, गजेन्द्रा-
करिण, इव यथा, विप्रा ग्राह्यणा, यान्ति गच्छन्ति । अस्मिन् दलाके उपमा-
लङ्कार, शाब्दलविक्रीडित छन्द ॥ ५ ॥

सर्वे—भो भो माणवका हे ह यद्यप, अनवसित असमाप्ते, अवभृद्यस्नाने
यज्ञात्वाधवे मास्कारिणमार्जने, न नहि, खडु निश्चयेन, तावदिरयवधारणे,
अग्निं हामसृष्टव्यं वह्नि, उत्सृष्टव्य इतस्तत् क्षेप्तव्य, भवद्भिः श्रीमद्भि-
रिति भाव ।

प्रथम—हा धिगिति कुस्तायाम्, दशितम् प्रवटीकृतम्, बहुचापलम् शिशु-
मुलभचाञ्चल्यम् ।

ज्ञान विस्तृत जीर्ण प्रसन्ननीय है बुढाप म मा जिनके व्रतादिनियम कम हाने
का अपेक्षा बढ ही रह है, जिनके होठो पर सदैव वैदिक मन्त्रा का ही उच्चारण
हाता रहता है जिनके शरीर वृद्धावस्था के कारण शिथिल है और जो दण्ड के
नहार अपन शिष्यों के कंधा पर हाथ रखकर वृद्ध गजेन्द्र की तरह धीर धीरे
जा रहे हैं ॥ ५ ॥

सभी ब्राह्मण—ह द्रह्मचारि बालकगण, यज्ञात्स्नान के समाप्त न हान
सक आप लाय यज्ञशाला स अग्नि का बाहर न निकालें ।

पहला—छि टि इन लोमा न अन्तत लटकपन कर ही डाला ।

एषा भो । दीप्तयूपा कनकमयभुजेवाभाति वसुधा
 चैत्याग्निर्लौकिकाग्निं द्विज इव वृषल पार्श्वे न सहते ।
 नात्यर्थं प्लुष्टपृष्ठा हरितकुशतया वेदी परिवृता
 प्राग्वशं चैष धूमो गज इव नलिनी फुलां प्रविशति ॥ ६ ॥

द्वितीयः—एवमेतद्,

अग्निरग्निभयादेव भीतैर्निर्वास्यते द्विजैः ।

व्याख्या—दीप्तयूपा दीप्त प्रज्वलित युपः यज्ञदारु. यस्या सा तादृशी
 वसुधा घरणी, कनकमयभुजा काञ्चननिभेतमुन्नशालिनी, इव यथा, आभाति
 शोभते, यूपाना अग्निसम्पर्कवशात् प्रज्ज्वलता दाहुवत् कनकवर्णतया चेषमृत्प्रेक्षा ।
 चैत्याग्नि. यज्ञवेदीगतो वह्निः, लौकिकाग्निम् सामान्यजनैः प्रज्ज्वालितं सस्कारा-
 भावात् लौकिकाग्निम्, द्विज. विप्रः, वृषलम् घृद्रम्, इव यथा, पार्श्वे निकटे, न
 नहि, सहते मृष्यति, हरितकुशतया अध. उत्पादितदर्भसमूहेन, परिवृता आच्छा-
 दिता, वेदी यज्ञभूमि, नात्यर्थम् नाधिकम्, प्लुष्टपृष्ठा दग्धतलभूमि, यथा च फुल्लं
 प्रस्फुटिताम्, नलिनीम् कमलिनीम्, गज. हस्ती विशति तथैव एष पुरोवर्तमान,
 धूमः, प्राग्वशम् वह्निर्वेदीम्, प्रविशति प्रवेश करोतीत्यर्थः । अस्मिन् श्लोके
 उपमालङ्कारं सुवदनाच्छन्दश्च तद्यथा—सुवदना श्रीभनी स्मी लगावृपिस्वरत्नं ।

द्वितीयः—एवम् भवदुक्तम्, एवम् सत्याप्रापति,

व्याख्या—एष. पुरोवर्त्तनोऽयम्, अग्नि. होमवह्नि, अग्निभयात्,
 सामान्यवह्निप्रकोपभयात्, भीतैः सन्नस्तैः, द्विजै विप्रै, निर्वास्यते दूरमपत्तायते,

यज्ञ मण्डप के खम्भो के जल उठने से ऐसा प्रतीत होता है कि मानो
 घरती को सुनहली बाँहे बाहर निकल आई है, यज्ञ कुण्ड की जाग सामान्य
 आग को अपने पास उसी तरह फटकने नहीं दे रही है जैसे ब्राह्मण शूद्र को पास
 नहीं आने देते । हरे कुशो से आच्छादित होने के कारण यद्यपि यज्ञ की वेदी
 अधिक नहीं जल सकी है, फिर भी ये घूँए यज्ञशाला में उसी प्रकार प्रवेश कर
 रहे हैं जैसे कोई हाथी विकसित कमलवाले सरोवर, में प्रवेश कर रहा हो ॥६॥

दूसरा—ऐसा ही है ।

डरे हुए बाह्यण सामान्य आग के डर से यज्ञाग्नि को उसी प्रकार यज्ञ-

कुले व्युत्क्रान्तचारिणे ज्ञातिर्ज्ञातिभयादिव ॥ ७ ॥

तृतीय — इदमपरं पश्यता भवन्ती,

शकटी च घृतापूर्णा सिच्यमानापि वाग्निः ।

नारीवोपरतापत्या वान्स्नेहेन दह्यते ॥ ८ ॥

प्रथम — सम्यग् भवानाह,

तत्र दृष्टान्तमाह व्युत्क्रान्तचारिणे उल्लङ्घितमदाचारे, कुले वशे, ज्ञातिभयात् दुष्टदायादवानात्, ज्ञानि वाग्धव इव यथेति । यथा स्वजनपु दुष्टभाव गतेषु तत्सम्पर्कपरिहारेच्छया ज्ञातिविशेषोऽन्यत्र निर्वास्यते तथैवायं ह्यमाग्निस्त्रीविकानिदौर्जन्यसम्पर्कपिनित्रीपया वह्निर्नायत इत्यर्थं । अस्मिन् श्लोके उपमालङ्कार, अनुष्टुप् छन्दश्चेति ॥ ७ ॥

तृतीयः—इयम् एषा, अपरम् अन्यत्, पश्यताम् दृश्यताम्, भवन्ती श्रीमन्ताविति ।

व्याख्या—घृतापूर्णा आज्येन भृता, शकटी शकटिका पानम् वा, उपरतापत्या मृतवत्सा, नारी स्त्री, इव यथा वारिणा सलिलेन, सिच्यमानापि सचनक्रियासम्पन्नापि, बालस्नेहेन उपरतापत्यप्रेम्णा, दह्यते ज्वलति ॥ ८ ॥

प्रथमः—सम्यक् सत्यम्, भवान् त्वम्, आह ।

गाला से हटा रहे हैं जैसे एक चरित्रहीन या दुराचारी के भय से कोई अपने आत्मीय को जलन हटा लेने हैं ॥ ७ ॥

तोसरा—और आप लग यह दूतग भी तो देखिए—

पानी का छिन्काव होने के बावजूद यज्ञार्थ घी डाले वाली यह गान्नी कुछ ज्वलित घी के वाग्ण अभी भी उसी प्रकार जल रही है जैसे कोई मृतवत्सा नारी आँसू से तर आँखों के रहने पर भी भीतर ही भीतर मृतबालक के स्नेह में जलनी रहती है ॥ ८ ॥

पहला—आपने ठीक ही कहा—

एता चक्रधरस्य धर्मशकटी दग्धु समभ्युद्यतो
 दर्भे शुष्यति नीलशाद्वलतया वह्नि शनैर्वाग्मन ।
 वातेनाकुलित शिखापरिगतश्चक्र क्रमेणागतो
 नेमीमण्डलमण्डलीकृतवपु सूर्यायते पावक ॥ ६ ॥

द्वितीय — इदमपर पश्यता भवन्तो,

बल्मीकमूलाद् दहनेन भीतास्तत्कोटरै पञ्च सम भुजङ्गा ।

व्याख्या—वह्नि अग्नि, नील श्यामवर्ण, शाद्वल शादा मन्त्यन्, वलच्, तृणपुत्त तदाश्रयतया, वामन खर्वं, दर्भे कुशे, शनै मन्द मन्द शुष्यति शुष्को भवति, चक्रधरस्य नृपदुर्गोचनस्य, एताम्, पुरोदृश्यमानाम्, धर्मशकटीम् हव्यवाहकम् यानम्, दग्धुम् होतुम्, समभ्युद्यत उद्यत सन्, वातेन तात्कालिक वायुना, आकुलित आन्दोलित, शिखापरिगत सक्तोभावेन ज्वालाजालव्याप्त, क्रमण क्रमशः, चक्रम् यानाङ्गम् चक्रभूतमरसज्ञकम्, आगत प्राप्त सन्, पावक ज्वलन, नेमीमण्डलमण्डलीकृतवपु नेमीमण्डले मण्डलीकृतशरीर चक्राकारण व्याप्नुवन् पावक अग्नि, सूर्यायते सूर्य दिवाकर तद्वत् आचरति अथात् गोल वपुर्भवतीति शेष । अस्मिन्श्लोके उपमालङ्कार शार्दूलविक्रीडितम् वृत्तम् ॥९॥

द्वितीय — एवम् एतत्, अपरम् अन्यत्, पश्यताम्, भवन्तो ध्योमती—

व्याख्या—पञ्च=बाणसज्ञका, भुजङ्गा सर्पा, दहनेन अग्निप्रकोपोत्पन्न दाहेन हेतुना, भीता = सन्नस्ता सन्त, बल्मीकमूलात् = बल्मीकाधोभागात्, तत्कोटरै, तस्य वृक्षस्य कोटरै, समम् निर्गता बहिरागता, यथा विपन्नस्य मृतस्य

यह आग पहले हरित रूबो से आच्छादित मृत्ति पर वामन रूप म थी, कि तु जैसे-जैसे घास सूखती जाती है यह आग भी फैलती जा रही है । बढ़ते-बढ़ते अब यह महाराज को हव्यवाही गाड़ी तक पहुँच चुकी है । तीव्र वायु की प्रेरणा से अब यह पहिये को छू रही है । रथचक्र के किनारे किनारे आग पकड़ लेन के कारण इनकी जाहृति अब सूर्य की तरह गोल हो रही है ॥ ९ ॥

दूसरा—आप इधर भी ना देखें—

सामने पेड़ के तने के खोखले भाग के नीचे बाबी से आग म जलजाने के डर से पाच साँप ठीक उसी तरह एक साथ निकल रहे हैं जैसे मृतमानव की

समं विपन्नस्य नरस्य देहाद् विनि मृताः पञ्च यथेन्द्रियाणि ॥१०॥
 तृतीय.—इदमपरं पश्यतां भवन्ती,

दह्यमानस्य वृक्षस्य सानिलेन मग्नाग्निना ।

कोटरान्तरदेहस्याः खगा प्राणा इधोद्गता ॥ ११ ॥

प्रथमः—एवमेतत्,

शुष्केणैनेन वृक्षेण बलं पुष्पितपादपम् ।

कुलं चारित्रहीनेन पुरुषेणैव दह्यते ॥ १२ ॥

नरस्य पुहयस्य, देहात् शरीरात्, विनि मृता. बहिर्निगता, पञ्चेन्द्रियाणि प्राणादि-
 पञ्चवायव, यथा इव, प्रतीयन्ते । अस्मिन् श्लोके उपमालङ्कार ॥ १० ॥

तृतीय — इदम् पुरादृश्यमानम्, अपरम् अन्यत्, भवन्ती युवाम्, पश्यताम्
 व्याख्या—भानिलेन पवनयुगेन, मग्नाग्निना यज्ञवह्निना, दह्यमानस्य,
 ज्वलितस्य, वृक्षस्य तरो, कोटरान्तरदेहस्या, कोटरान्तरनिर्गदेहस्याः शरीरस्या,
 खगा पक्षिणः, प्राणा प्राणवायव, इव यथा उद्गता बहिर्निगता ॥ ११ ॥

प्रथमः—एवम् इत्थम्, एतत् अयम्,

व्याख्या—पुष्पितपादपम् विनतितसकलकुमुमतश्चनम् अरण्यम् उद्या-
 नम्वा, एकेन अद्वितीयेन, शुष्केण, रगरहितेन, वृक्षेण पादपेन, चरित्रहीनेन
 दुश्चरित्रेण, पुरुषेण व्यक्तिविशेषेण, कुलम्, सकल वशम्, इव यथा, दह्यते ।
 उपमालङ्कार ॥ १२ ॥

देह से प्राणादिक पञ्चेन्द्रियाँ एक साथ निकल जाती हैं ॥ १० ॥

नौसरी—आप लोग यह भी देखें—

चायुप्रेरित यज्ञाग्नि से जलने वाले तरकोटरो से चिड़ियाँ निकलकर उसी
 प्रकार उड़ रही हैं, जैसे मृत्यु के समय मनुष्य की देह से प्राण निकल
 रहे हैं ॥ ११ ॥

पहला—ठीक है,

जैसे एक चरित्रहीन व्यक्ति अपने बुद्धय से सम्पूर्ण बुल्ल बाँ बलकित-
 कर देता है, उसी प्रकार जगल का एक सूतावृक्ष फल फूल में भरे इन हरे भरे
 जगल को जला रहा है ।

तृतीयः—हन्त सत्पुरुषरोप इव प्रशान्तो भगवान् हुताशनः ।

एतदग्नेर्वलं नष्टमिन्धनानां परिक्षयात् ।

दानशक्तिरिवार्यस्य विभवानां परिक्षयात् ॥ १७ ॥

प्रथमः—

स्रग्भाण्डमरणीं दर्भानुपभुङ्क्ते हुताशनः ।

व्यसनित्वान्नर-क्षीणं परिच्छदमिवात्मनः ॥ १८ ॥

इव यथा पतति धरण्यामापतति । परशुरिवेत्युपमालङ्कार, शिखरिणी वृत्त-
ञ्चेति ॥ १६ ॥

तृतीयः— हन्त, इति हर्षे, सत्पुरुषरोपः सुपुरुषस्य क्रोधः इव यथा, प्रशान्तः
क्षीणज्वालोऽभूत्, भगवान्, श्रीमान्, हुताशनः वह्नि इति ।

व्याख्या—अग्ने याज्ञिकहुताशनस्य, एतत् पुरोर्वात्तनम्, बलम् सामर्थ्यम्,
इन्धनानाम्, दहनाय समर्पितकाष्ठखण्डानाम्, परिक्षयात् समाप्ते, आर्यस्य श्रेष्ठ-
जनस्य, विभवानाम् ऐश्वर्यानाम् परिक्षयात् विनष्टात्, दानशक्तिं दानसामर्थ्यम्,
इव यथा, नष्टम् विनष्टमिव । यथा कस्यापि सुपुरुषस्य दानशक्तिं विनष्टेषु
विभवेषु समाप्तं गच्छति, तेनैव प्रकारेणान्ते दाहसामर्थ्यरूपविभवपरिक्षयात्
अवमितन् जातमित्यर्थः । उपमालङ्कारः ॥ १७ ॥

व्याख्या—व्यसनित्वात् आसवपानाञ्जक्रीडादिषु प्रवृत्तत्वात् क्षीण शक्ति-
हीनः, नर जनः, आत्मनः स्वस्थ, परिच्छदम् वस्त्राभूषणम् इव यथा, हुताशनः
यज्ञाग्निः अल्पज्वालः सद्, स्रक् दारुनिर्मितहोमसाधनम्, भाण्डम् घृतपात्रम्,
अरणीम् मन्थनकाष्ठम् च सकलमपि होमपरिकरं दर्भान् कुशान् च उपभुङ्क्ते भक्षण-

शिव के परशु की तरह गिर रह है ॥ १६ ॥

तीसरा—अहा, भद्र पुरुष के क्रोध की तरह अग्निदेव शान्त हो गये ।

सम्पत्ति नष्ट हो जाने पर जैसे किसी दानी की दानशक्ति नष्ट हो जाती है,
उसी प्रकार यज्ञीय सामग्रियों के जल जाने पर अग्नि देव का भी बल समाप्त
हो रहा है ॥ १७ ॥

पहला—जैसे कोई जुधारी अपने दुर्व्यसन के कारण निर्धन होकर अपना
वस्त्राभूषण भी बेचकर खा जाता है, उसी तरह अग्निदेव को भी जब जलाने के

द्वितीय —

अवनतविटपो नदीपलाश पवनवशाच्चरितैकपर्णहस्त ।

द्वन्द्वहननिपन्नजीवितानामुद्वमिवैष करोति पादपानाम् ॥ १६ ॥

तृतीय — तदागम्यताम् । वयमपि तावदुपस्पृशाम ।

उभौ—वाटम् ।

(सर्वे उपस्पृश्य)

प्रथम — अथ । अयमन्नवता कुरराजो दुर्योधनो भीष्मद्रोणपुर सरमर्वराज-

कूरोतीत्यर्थं । यथादुर्व्यंगनी पुरुष समाप्तोन्नव मन् निजदन्त्रामूपणादिवमपि
उपमुञ्चते तद्वदेवायम् होमवह्निं श्रुग्भाग्दारगिदमर्दीन् हामनावनानुपमुस्त ॥
उपमालङ्कार, अनुष्टुप् छन्दश्च ॥ १८ ॥

व्याख्या—अवनतविटप अधोनतवृक्ष, पवनवशात् वायुवशात् चरितै-
कपर्णहस्त च-चलीभूतैकपर्णरूपकर, एष उभौ, नदीपलाश सरित्तटगतपलाश,
द्वन्द्वहननिपन्नजीवितानाम् वनान्निगतामूनाम् पादपानाम् वृक्षाणाम् उन्नवम्
प्रेतोदकदानम् इव यथा करोति विदधाति ॥ १९ ॥

तृतीय — तदा तर्हि, आगम्यताम् इहागच्छ । वयमपि तावदित्यन्नकारणे,
उपस्पृशाम आचमनं कर्म ।

उभौ—वाटम्, स्वीकृतम्, तव कथनमित्याशय ।

(सर्वे सकला जना उपस्पृश्य आचम्य)

प्रथम.—अथे इति शर्षे, अयम् एष, अन्नवता श्रीमता, कुरराज कुशदेश-
विशेषस्य सम्राट्, दुर्योधन धृतराष्ट्रसुत, भीष्मद्रोणपुर सरमर्वराजमण्डलेन

लिए कुछ शेष नहीं बचा तो झुक, अरणी और कुशा का ही जला रह है ।

दूसरा—नदी के किनारे पर सड़े पलाश पेड़ की झुकी डाली वायु वेग म
पानी में हिल रही है, इसे देखते से लगता है मानो आग म पुलक कर मरने वाले
अपने वृक्ष वन्धुओं को यह पत्ररूपी हाथ से जलाञ्जलि दे रही हो ॥ १९ ॥

तासरा—तो फिर आइए हमलोग भी आचमन कर लें ।

दोनों—हां, ठीक ही तो है ।

(सभी आचमन करके)

पहला—वाह, सम्राट् दुर्योधन पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण एवं सम्पूर्ण

मण्डलेनाऽनुगम्यमान इत एवाभिवर्तते । इमे हि,

यज्ञेन भोजय, मही जय विक्रमेण,
रोप परित्यज, भव स्वजने दद्यावान् ।
इत्येवमागतकथामधुर द्रुवन्त
कुर्वन्ति पाण्डवपरिग्रहमेव पीरा ॥ २० ॥

तदागम्यताम् । वयमपि तावत् कुरुराज सम्भावयाम् ।

उभौ—वाढम् ।

आचार्यपितामहप्रभृतिराज-यकेन, अनुगम्यमान अनुसृत, इत एव अस्मिन्नेव स्थाने अभिवर्तते समागच्छति । इमे हि एते जना —

व्याख्यान—यज्ञेन मन्त्रेण, भोजय जनान् तर्पय, विक्रमेण पराक्रमेण, महीम्, सकला पृथिवीम्, जय विजयगुरु, रोपम् कोपम्, परित्यज जहिहि स्वजनं आत्मीयजने, दद्यावान्, कृपायुक्तो भव, इत्येवम् इत्यरूपेण, आगतकथामधुरम् स्वागतवचनरूप प्रियकथनम्, द्रुवन्त कथयन्त, पीरा पुरवाग्नि जना, पाण्डवपरिग्रहम् मुधिष्ठिरादिपाण्डवपञ्जरातम्, एवेति निश्चये कुर्वन्ते । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ २० ॥

तत् तस्मात्, आगम्यताम्, समागच्छ, वयम् दर्शका, अपि, तानदित्यवधारणे, कुरुराजम् दुर्योधनम्, सम्भावयाम् नमुचितसत्कारेणाप्रियामहे ।

उभौ—वाढम् स्वीकृतम् ।

राजमण्डल के साथ इधर ही तो आ रहे हैं । ये लोग—

यज्ञ के माध्यम से भोजन देकर प्राणियों को संतुष्ट करो, क्रोध छोड़ स्वजनो पर कृपा करो, अपने पराक्रम से सम्पूर्ण धरती को जीतो—इस तरह समयानुबूल श्रुतिमुखद बातें लोग कह रहे हैं, जिमसे पाण्डवों के प्रति उनका सम्मान अर्थात् प्रक्षपात ही प्रकट हो रहा है ॥ २० ॥

अत आइये, हमलोग भी महाराज दुर्योधन के प्रति अपना सम्मान प्रकट करें ।

दोनो—बहुत अच्छा ।

सर्वे—जयतु भवान् जयतु ।

(निष्क्रान्ता सर्वे)

विष्कम्भक ।

(ततः प्रविशती भीष्मद्रोणी)

द्रोण — धर्ममालम्बमानेन दुर्योधनेनाश्रमेवातुगृहीतो नाम । कुतः ,

अतीत्य वधूनवत्सङ्घे मित्राण्याचार्यमागच्छति शिष्यदोष ।

वाल ह्यपत्य गुरवे प्रदातुर्नैवापराधोऽस्ति पितुर्न मातु ॥२१॥

सर्वे—जयतु भवान् जयतु सर्वतोभावेन श्रीमान् विजयताम् ।

(निष्क्रान्ता बहिरागता गवः सक्लाजना)

विष्कम्भक — तत्तच्छण दशरूपके—'वृत्तवर्तिष्यमाणानां वधाशाना निदर्शक । सतिहायस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजित इति ।'

(ततः तत्पश्चात् प्रविशन् प्रवेशं कुरुत भीष्मद्रोणी पितामहाचार्यौ)

द्रोण — धर्ममालम्बमाना धर्मस्याचरणं क्रियमाणेन, दुर्योधननकुलसम्राजा, अहम् आचार्यद्रोण, अनुगृहीतं कृपाचितं, नाम इत्यवयवे । कुतः कस्माद्धेतो—

व्याख्या— शिष्यदोष उपदशयजने उपस्थिते पापाचरणादिरूपोऽपराध वधूनं स्पृजान्, अतीत्य अतिरुम्य, मित्राणि सुहृदश्च, अबलरुच्य उल्लङ्घनम् कृत्वा, आचार्यं गुरुं मागच्छति निदर्शयति । शिष्यदोषेण गुरोरेव निंदा भवति । वालम शिषुम्, अनत्यम्, सत्ततिम् गुरवे आचार्याय, प्रदानु समपद्यत, पितु जनकस्य मात्र जनयात्र, अपराध दोष, न नहि, अस्ति भवति । यतोहि

सभी—महाराज की जय हो ।

(सबका प्रस्थान)

विष्कम्भक

(भीष्म तथा द्राण का प्रवेश)

द्रोण—इन का पाप का अनुष्ठान करके वस्तुतः दुर्योधन न मेरा ही सम्मान बढ़ाया है । यात्रि—

शिष्यो के द्वारा किय गय अपराध गुरु के मन ही मढा जाता है । इत दोष का हफदार न छोर्डे व धुकायव होना है और न मित्र-मण्डल ही । मां

२ प ० रा०

शकुनि —सम्यगाह गङ्गोपस्पर्शनाद् धौतकल्मषाङ्गोऽङ्गराज ।

कर्ण —

इक्ष्वाकु-शर्म्यति-ययाति-राम-मान्धातृ-नाभाग-नृगाऽम्बरीषा ।

एते सकोशा पुरुषा सराष्ट्रा नष्टा शरीरै क्रतुभिर्घरन्ते ॥ २३ ॥

किञ्चित् सयोज्यम् प्रत्युत् तमर्थं केवलम् चापम् देयम् । यतो हि राजपुत्रा स्वदाहुवलेन घनिनो भविष्यन्ति अस्मिन् दलोके शालिनीवृत्तम् ॥ २४ ॥

शकुनि —सम्यक् युक्तिसंगतम्, आह कथयति, गङ्गोपस्पर्शनात् गंगाया कृतस्नानात्, धौतकल्मष प्रक्षालितपाप, अङ्ग शरीरम्, अङ्गराज अङ्ग-देशाधिपति कर्ण,

ध्याख्या—इक्ष्वाकु-शर्म्यति-ययाति राम-मा-धातृ-नाभाग-नृगाऽम्बरीषा एते उल्लिखिता इक्ष्वाकुप्रभृतय अपृत्तस्यका नृपतम, सकोशा घनागरे सहिता, सराष्ट्रा आत्माधीनेन राज्येन सहिता, पुरुषा जना, शरीरै स्वदेहै, नष्टा विनाशम् गता, क्रतुभि यज्ञै, तु इत्यवधारणे, घरन्ते जीवतीति शेष । अयमाशय जीवा स्वकीये जीवने पादशकर्ममाचरति ते भाविनि काले तादृशम् जीवनमपि लप्स्यन्ते । सति कर्माण्येव जीवनघटकानि । जीवन ह्युत्तम सर्व विधतया समुन्नतश्च क्रतुं सतत शुभान्येव कर्माणि कर्त्तव्यानि । यज्ञात् क्रते न यज्ञ शरीरम् तस्माद्यज्ञो यत्नेन करण्यम् । यज्ञकर्त्ता जीवो विनश्वरे शरीरे नष्ट नति कीर्तिस्वरूपम् सच्छरीरमश्नुते । इक्ष्वाकुप्रभृतीनाम् कोशम् देशम् शरीरश्च-कालातिपात्वाद् गतमेव । केवलम् तेषा यज्ञ कायेनान्तिमरणभयमिति । इन्द्र वच्चावृत्तम् ॥ २५ ॥

यह है कि वह सारा घन ब्राह्मणों को दानकर पुत्र के लिए चापनात्र छोड जाय ॥ २४ ॥

शकुनि—गङ्गा म स्नान करने के कारण प्रक्षालित पापवाले अङ्गराज कर्ण ने ठीक ही कहा है ।

कर्ण—महाराज इक्ष्वाकु, शर्म्यति, ययाति, भगवान् राम, मा-धाता नाभाग, नृग, तथा अम्बरीष प्रभृति नारे नृपतियो के घनागार एव राज्य इनका देह के साथ ही विनष्ट हो गये, केवल कीर्तिशरीर से वे अब भी जीवित हैं ॥२५॥

सर्वे—गान्धारीमात ! यज्ञसमाप्त्या दिष्टया भवान् यथंते ।

दुर्योधन—अनुगृहीतोऽस्मि । भो आषास्ये ! अभिवाद्ये ।

द्रोण—एहं हि पुन ! अयमक्रम ।

दुर्योधनः—अथ कः क्रम ?

द्रोणः—किं न पश्यति भवान् ?

देवत मानुषीभूतमेव , सावन्नमरमत्ताम् ।

सर्वे—गान्धारीमातः, हे दुर्योधन, यज्ञसमाप्त्या यज्ञानुष्ठानम् प्रशस्यम् तव यातम्, दिष्टया गौभाग्येन, भवान् त्वम्, यथंते सौभाग्यभाजन भवति ।

दुर्योधन.—अनुगृहीत कृपान्वित. अस्मि भवामि, भो आषास्ये हे गुरुदेव, अभिवाद्ये ।

द्रोणः—एहं हि समागम्यताम् द्विरुत्तरनादरव्यम्भजाय । अयम् एषः, प्रणाम. नति. अक्रमः न क्रमप्राप्तः । यतो हि मद्वेत्तया प्रथम भीष्मः. प्रणम्यस्त-तोऽहमित्याशयः ।

दुर्योधनः—अथ इति प्रद्वारम्भे, क. क्रम प्रणामस्योचित. क्रमः किमिति दुर्योधनस्याशयः ।

द्रोणः—किमिति प्रदने, भवान् दुर्योधन, न नहि, पश्यति अवलोकयति ?
 द्वापद्या—एष. असी भीष्मपितामहः, मानुषीभूतम् मनुष्यलोणा-यतीर्णम्, देवतम् देवमूर्त्तिम्, सायत् प्रथमम् नमस्यताम् प्रणम्यताम्, भीष्मम्

सभी—हे दुर्योधन, सौभाग्य से आप का यज्ञ सम्पन्न हो गया और आप धन्युदय के भाजन बन रहे हैं ।

दुर्योधन—आप की कृपा है गुरुदेव, मैं आपको प्रणाम करता हूँ ।

द्रोण—आओ आओ यस्त, प्रणाम करने का यह वन तो ठीक नहीं है ।

दुर्योधन—तो फिर उचित क्रम क्या होगा ?

द्रोण—क्या तुम देखते नहीं ?

मनुष्य रूप में अवतीर्ण देवगुण अपने पितामह भीष्म को सर्वप्रथम प्रणाम करो । इन्हें छोड़कर तुमने जो पहले मुझे प्रणाम किया है तुम्हारे इत

अहं नाचरणं मन्ये भीष्ममुत्क्रम्य वन्दितुम् ॥ २६ ॥

भीष्मः—मा मा भवानिवम् । बहुभिः कारणैरपकृष्टोऽहं भवतः । कुतः,

अहं हि मात्रा जनितो भवान् स्वयं ममायुधं वृत्तिरपह्नवस्तव ।

द्विजो भवान् क्षत्रियवंशजा वयं गुरुर्भवान् शिष्यमहत्तरा वयम् ॥ २७ ॥

श्रेष्ठजनम्, गगापुत्रम् उत्क्रम्य परित्यज्य, वन्दितुम् अभिवादयितुम्, न
तहि अहम् द्रोण, आचरणम् उचितव्यवहारम्, मन्ये जानामि युक्तमिति ॥ २६ ॥

भीष्मः—मा मा नहि नहि, भवान् त्वम् एवम् इत्यम्, बक्तुमुचितम् ।
यतो हि बहुभिः अनेकैः कारणैः हेतुभिः, अहम् भीष्म. भवत श्रीमत, अपहृष्ट
हीनः अस्मि, कुतः कस्माद्धेतोः -

व्याख्या—अहम् भीष्मः, हि यतः, मात्रा जनन्या, जनित उत्पादित,
भवान् त्वम् द्रोणाचार्यः, स्वयम् अर्थात् अयोनिजः, भरद्वाजमुनेः कलशादुत्पन्न-
तया तस्यायोनिजत्वम् । मम भीष्मस्य, आयुधम् अस्त्रास्त्रम्, वृत्ति. जीवनचर्या
तव भवतस्तु, अपह्नव. सकलजन्तुस्नेहः, भवान् त्वम्, द्विज ब्राह्मण, वयम्
क्षत्रियवंशजा राजकुलोत्पन्ना, भवान् द्रोण, गुरु ब्राह्मणत्वेन जनानाम् गुरु,
वयम् तु । शिष्यमहत्तरा शिष्येषु ब्राह्मणानुशासनीयेषु क्षत्रियवैश्ययूद्रेषु श्रेष्ठा
इत्यर्थः । वशस्थ वृत्तम् ॥ २७ ॥

अस्मिन् श्लोके भारतीयसंस्कृते. निदर्शनमस्ति । अस्या सस्कृतौ ममाजस्य
मंगलाय धर्णव्यवस्था कल्पितास्ति । यस्मिन् जनवर्गे सात्विक तत्त्व प्रधानतया
दृश्यते स इह सस्कृतौ श्रेष्ठत्वेन 'ब्राह्मण' इति, यत्र सात्विकतान्वितम् राजस
तत्त्वं प्रमुखं स 'क्षत्रिय' इति, यत्र रजोगुणविशिष्टस्य तमोगुणस्य उन्मेषो वीक्ष्यते

आचरण को मैं धर्म सम्मत नहीं मानता ॥ २६ ॥

भीष्म—नहीं नहीं, आप ऐसा न कहे, कई कारणों से मैं आपकी तुलना
में अपने को हीन मानता हूँ । क्योंकि—

मुझे माता ने जन्म दिया है, आप अयोनिज होने के कारण स्वयम्भू है ।
मैं हृदयारो के बल पर जीता हूँ और आप जीवों के प्रति सहानुभूति वाटवर
स्नेह के बल पर जीते हैं । आप जन्मना ब्राह्मण है और मैं जन्मजात क्षत्रिय हूँ,
आप वर्णों के गुरु है और मैं शिष्यों में आप का श्रेष्ठ शिष्य हूँ ॥ २७ ॥

द्रोण — नोन्महन्ते महात्मानो ह्यात्मानमुपस्तौनुम् । एहि पुत्र ! अनिवादय-
स्व माम् ।

दुर्योधन — आचार्य ! अनिवादये ।

द्रोण — एहो हि पुत्र ! एवमेवावभृथस्नानेषु सेदमवाप्नुहि ।

स 'वैश्व' इति, यत्र च तमा गुण एव विद्यते मुख्यतया स 'शूद्र' इति निश्चये । यतो हि जीवा द्विविध — उद्बुद्ध, अनुबद्धश्च, ततोद्बुद्धत्रिविध ज्ञानप्रधान, क्रियाप्रधान, इच्छाप्रधानश्च । ये मस्तिष्केण समाज सेवन्ते त सात्त्विका जीवा ज्ञानप्रधानत्वात् 'द्राणाश्चायवत्' 'ब्राह्मणा' इति कथ्यन्ते । ये दाह्वलेन समाज-माराधयितुमनसस्त राजसजीवा क्रियाप्रधानत्वात् देव मन्त्रपि मनुष्यरूपा-वतीर्ण भीष्मन्त् 'क्षत्रिया इति भाष्यन्ते, भौतिकदृष्टिमन्तन्तम प्रधाना राज-सजीवा 'वैश्या' इति उच्यन्ते, अनुद्बुद्धा प्राणिन तमोगुणप्रधाना शूद्रा इति शम्यन्त । मनुष्येषु ज्ञान, क्रिया, इच्छा इत्येते भावा प्राप्यन्ते । इमान् एव भावान् आवृत्त्य-नमशुद्धि-कर्मशुद्धि जातिशुद्धिमन्वात् मददेश्या थोष्ट इति भवता मद्विषय प्राक् प्रणम्यत्वानिवातम् न युक्तमिति भीष्मकयनम्याशय इति ।

द्रोण — महात्मान उत्तमजना, हि इति निश्चये, आत्मानम्, स्वम्, उपस्तातुम् प्रशंसितुम्, न त्ति उस्तत्त अनिलपन्ति । अत पुत्र ह वत्स, एहि समागम्यताम्, अनिवादयस्व भीष्मानुरोधादेव प्रथमम् द्रोणम् प्रणम्यताम् ।

दुर्योधन. — आचार्य ह गुरुदेव, सर्वप्रथम त्वामेव अनिवादय प्रणमामि ।

द्रोणः — पुत्र हे वत्स, एह्यहि समागम्यताम्, एवमेव नततम् इत्यमेव अवभृथस्नानेषु यज्ञात्स्नानविधिषु, सेदम् परिश्रमम्, आप्नुहि प्रापय अर्थात् सर्वदा एवमेव यज्ञ कुह ।

द्रोण — उच्चकोटि के लोग अपनी प्रशंसा नहीं सुनना चाहते हैं । आओ बेटा, पहले मुझे ही प्रणाम करो ।

दुर्योधन — गुरुदेव, मैं आप को प्रणाम करता हूँ ।

द्रोण — आओ बेटा, इसी प्रकार सदा यज्ञ करते रहो और यज्ञान्तस्नान से सदा इत्य वन रहो ।

दुर्योधनः—अनुगृहीतोऽस्मि । पितामह ! अभिवाद्ये । -

भीष्म—एहो हि पौत्र । एवमेव ते बुद्धिप्रशमनं भवतु ।

दुर्योधनः—अनुगृहीतोऽस्मि । मातुल ! अभिवाद्ये ।

शकुनि.—वत्स !

एवमेव क्रतून् सर्वान् समानीयाप्तदक्षिणान् ।

राजसूये नृपाञ्जित्वा जरासन्ध इवानय ॥ २८ ॥

दुर्योधन —अनुगृहीतोऽस्मि कृपान्वितोऽहम्, पितामह हे पितामह भीष्म, त्वाम् अभिवाद्ये तव चरणे दुर्योधनोऽहम् प्रणमामि ।

भीष्मः—एहोहि समागम्यताम्, पौत्र पुत्रस्यापत्यम्, पुत्रशब्दोऽत्र मन्तविपरक उपलक्षणम्, एवमेव इत्यमेव, ते तव, बुद्धिप्रशमनम् सवोधशमनम्, भवतु यातु, मनसो रागादिप्रवृत्तः निवृत्तिर्जायताम् इत्याशीर्बन्धनम् ।

दुर्योधनः—अनुगृहीतोऽस्मि कृपान्वितोऽहम् । मातुल हे माम, अभिवाद्ये प्रणमामि ।

शकुनि.—वत्स हे पुत्र,

दयाहया—एवमेव, इत्यमेव आसः, उपलब्ध दक्षिणान् यज्ञमुपलक्ष्य ब्राह्मणान् प्रदत्तोपहारान्, सर्वान् सकलान्, क्रतून् यज्ञान्, समानीय नम्पाद्य, राजसूये राजसूयनामके मखविशेषे, जरासन्ध इव यथा नृपान् भूमृत, जित्वा विजित्य, ध्यानय समानीयताम् । यथा मगधाधिपतिः जरासन्ध स्वकृते राजसूये यज्ञे सर्वान् नृपान् समाहूय कारागारे निक्षिप्तवान् तथैव त्वमपि कुरु इति ।

दुर्योधन—मैं अनुगृहीत हुआ । पितामह, मैं आपको प्रणाम करता हूँ ।

भीष्म—आओ पौत्र, इसी तरह तुम्हारी बुद्धि बिलक्षण बनी रहे ।

दुर्योधन—धन्य हुआ । मामा, आपको प्रणाम करता हूँ ।

शकुनि—वत्स, इसी तरह यज्ञ करते रहो, यज्ञान्त में लम्बी-लम्बी दक्षिणा भी देते रहो और अन्त में महाराज जरासन्ध की तरह नभी गजाओं को राजसूय यज्ञ में बुलाकर बन्दी बना डालो ॥ २८ ॥

द्रोण - अहो ! आशीर्वचनेऽपि शकुनिरुद्योगं जनयति । अहो ! प्रियविरोधः
सख्यय क्षत्रियकुमारः ।

दुर्योधन — वयस्य ! कर्ण ! गुरुजनप्रणामावसाने प्राप्तक्रममुपभुज्यतां वयस्य-
विग्रम्भ ।

कर्ण — गान्धारीमात' ।

ऋतुव्रतस्ते तनु गात्रमेतत् सोढुं बल शक्यसि पीडयानि ।

अन्तस्त्वनामन्त्र्य न धर्षयामि राजपिघीराद् वचनात् भय मे ॥२६॥

द्रोणः—अहो आश्चर्यम्, आशीर्वचनेऽपि शुभाशुस्तितवाग्नेऽपि, शकुनि-
रुद्योगम्, दुर्योधनमातुल उद्योगम्—गुढार्थप्रयत्नम्, जनयति प्रेरयतीति भावः ।
अहो आश्चर्यम्, प्रियविरोधः वैररसिकः सत्रु निश्चयेन, अयम् एव, क्षत्रिय-
कुमारः शकुनिनामकोदुर्योधनमातुल इति ।

दुर्योधनः—वयस्य मित्र, कर्ण अङ्गराज, गुरुजनप्रणामावसाने श्रेष्ठजन-
प्रणामावसाने, प्राप्तक्रमम् उचितव्यवहारम्, उपभुज्यताम् उपभोगः कियताम्, वयस्य-
विग्रम्भः मित्रप्रेमालिङ्गनम् ।

कर्ण — गान्धारीमातः हे दुर्योधन —

व्याख्या—एतत् इदम्, ते तव, गात्रम् शरीरम्, ऋतुव्रतं मन्त्रे कृतोप-
वामादिनियमैः, तनु शीणम्, बलम् शक्तिम्, सोढुम् सह्य कर्तुम् शक्यसि
ममर्थोऽपि तर्हि पीडयानि बलवदालिङ्गानि तव शरीरमिति, अन्तः चित्तम्, तु
किन्तु, अनामन्त्र्य अनाभाष्य न नहि, धर्षयामि आलिङ्गनम् नाचरामि, राजपि-

द्रोण - आश्चर्य है, आशीर्वाद में भी इसने गुह्य की प्रेरणा दी है । यह
क्षत्रिय कुमार कितना विरोध प्रेमी है ।

दुर्योधन—मित्र कर्ण, गुरुजनों को प्रणाम करने के बाद अब मित्रों से
मिलने की चारी आई है, आओ, हम एक दूसरे के गले लगे ।

हे दुर्योधन, यज्ञ में प्रतादि के कारण तुम्हारी देहअति वृष हो गई है,
यदि तु मेरे आलिङ्गन को सह सको तो मैं अवश्य तुम्हारा आलिङ्गन कर्ण
अभयना नहीं । मैं प्रेमभाषण के अतिरिक्त तुम्हें कोई अन्य कष्ट नहीं देना

शकुनि—प्रेषितोऽस्य मया दूतः । शङ्के पयि वर्तते इति । --
 दुर्योधनः—भो आचार्य ! धर्मं घनुपि चाचार्य ! प्रतिगृह्यता दक्षिणा ।
 द्रोणः—दक्षिणेति । भवतु भवतु । व्यपश्रयिष्ये तावद् भवन्तम् ।
 दुर्योधन - कथमाचार्योऽपि व्यपश्रयिष्यते ।
 भीष्म—भो ! किन्तु खलु प्रयोजनं, यदा—

पीतः सोमो वाल्यदत्तो नियोगा-

शकुनि —अस्य विराटस्य, मया शकुनिना, दूत. सवाववाहकं प्रेषितं निदेशितं, शङ्के सम्भावयामि पयि मर्गो, वर्तते अस्तीति शेषः ।

दुर्योधन—भो आचार्य हे गुरुदेव, धर्मं धार्मिककृत्ये, च पुनः घनुपि घनुर्विद्यायाम्, त्वम् आचार्यः उपदेशकः अस्ति, अतः प्रतिगृह्यताम् स्वीक्रियताम्, दक्षिणा यज्ञे कृतस्याचार्यत्वस्य यथोचितमुपहारम् ।

द्रोण --दक्षिणेति, भवतु भवतु, दक्षिणा, इति शब्दं श्रुत्वा द्रोणः कथयति तिष्ठतु तावत्तव दक्षिणा, व्यपश्रयिष्ये समये समागते सति याचिष्ये, तावदित्यवधारणे भवन्तंत्वामितिशेषः । अत्रागयः—मदीया दक्षिणा सर्ववपाश्वं तिष्ठतु समागते अवसरे याचिष्ये ।

दुर्योधनः--कथम् केन प्रकारेण, आचार्योऽपि राजगुरुरपि, व्यपश्रयिष्ये याचिष्ये ।

भीष्म--भोः, किन्तु किम्वा, खलु निश्चयेन, प्रयोजनम् दक्षिणायाः आवश्यकता अस्ति, यदा—

ध्यास्या--वालयदत्तं शैशवावस्थयावत्तः, सोम. सोमनामकलताया रसः,

शकुनि—मैंने उनके पास दूत भेजा था, संभव है वे रास्ते में हों ।

दुर्योधन—हे गुरुदेव, आप मेरे धर्म तथा घनुप के उपदेष्टा हैं, कृपया अपनी दक्षिणा स्वीकार करें ।

द्रोण—दक्षिणा, रहने दो इसे, जरूरत पड़ने पर मैं स्वयं मांग लूँगा ।

दुर्योधन—राजगुरु होकर भला आप माँगने क्यों जाँय ?

भीष्म—दक्षिणा की जरूरत ही क्या है इन्हें—

इन्होंने किशोरावस्था में ही विधिवत सोमरस का पान किया है, तुम्हारे

छत्रच्छाया सेव्यते ग्यातिरस्ति ।

किं तद् द्रव्यं किं फलं को विशेषः

क्षत्राचार्यो यत्र विप्रो दरिद्र ॥ ३० ॥

दुर्योधनः—आज्ञापयतु भवान्, किमिच्छति । किमनुतिष्ठामि ।

द्रोण—पुत्र । दुर्योधन । कथयामि ।

दुर्योधन—किमिदानीं भवता विचार्यते ।

नियोगात् विधिवत् शास्त्रोक्तरीतिमनुमृत्य, पीतं पानवृत्त, छत्रच्छाया नृपाश्रय, सेव्यते उपभुज्यते, स्याति. प्रसिद्धि अस्ति, क्षत्राचार्यं राजगुरुवर्यं द्रोणाचार्यं, यत्र यस्मिन्निवपये, दरिद्रं धनहीनं स्यात्, तादृशम् किं द्रव्यम्, किं वा फलम्, को वा विशेषः अस्ति ? न कोऽपीत्यर्थः ॥ अनेन द्रोणेननाख्यातस्वायामंत्र सोमरस पीत, भवादृशस्यनृपस्वाश्रय. प्राप्त, कीर्तिरर्जिता, तदय कस्मिन्नपि विषयेनास्ति हीनो यदयं दक्षिणाग्रहणानुरोध उपयुज्येनेत्यर्थं ॥ भारतीयनाटक-काराणाम् स प्रयत्न सदाभरति येन नायकस्य चरित्र पवित्र सन्तिष्ठेन न काटुप्यस्य क्षेत्रोऽपि तन्मनागपि न स्पृशेत् । नायकचरित्रस्य रक्षार्थमिह नदय प्रयत्न कृतोऽस्मत् । एवविषम्यप्रयत्नस्य दिशिनकेत साधुतयाऽस्मिन् श्लोके भवति । शाब्दिकीवृत्तम् ॥ ३० ॥

दुर्योधनः—आज्ञापयतु आदिशतु, भवान् त्वम्, किमिच्छति किनाञ्छा किमस्ति किमनुतिष्ठामि किमाचरामि भवदर्थे ।

द्रोण—पुत्र इत्येतन्, दुर्योधन, गान्धारीमुत्, कथयामि वच्मि ।

दुर्योधन—इदानीम् अधुना मयि दक्षिणादातु प्रवृत्तेसति, भवता त्वया किं विचार्यते विचारो व्यर्थ इति ।

जैम बातिशाली राजा की छत्रच्छाया में निवास करते हैं, इतना ही नहीं इन्होंने पर्याप्त यश भी अर्जित कर लिया है, फिर वह कौन सी वस्तु, फल या अनुग्रह-लाभ है, जिसे तुम्हारे आचार्य ने प्राप्त नहीं किया है ॥ ३० ॥

दुर्योधन—आचार्य, आदेश दीजिए, आपकी क्या इच्छा है ? मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?

द्रोण—बेटा दुर्योधन, कहता हूँ ।

दुर्योधन—आप सोच क्या रहे हैं गुरुदेव ?

प्राणाधिकोऽस्मि भवता च कृतोपदेशः

शूरेषु यामि गणनां कृतसाहसोऽस्मि ।

स्वच्छन्दतो वद किमिच्छसि किं ददामि

हस्ते स्थिता मम गदा भवतश्च सर्वम् ॥ ३१ ॥

द्रोणः—पुत्र ! ब्रवीमि खलु तावत् । वाष्पवेगस्तु मा बाधते ।

सर्वे—कथमाचार्योऽपि वाष्पमुत्सृजति ।

भीष्मः—पीत्र ! दुर्योधन ! अफलस्ते परिश्रमः ।

व्याख्या—प्राणाधिक प्राणोऽप्यधिकः तव प्रियः अस्मीति भावः, भवता त्वया च, कृतोपदेशः, अनुशासितः, शूरेषु वीरेषु, गणना यामि भवामि, कृतसाहसः कृतः विहितः साहसो येनासौ मयि दक्षिणादातुं समुद्यते सति स्वच्छन्दतः स्वच्छया, वद कथय, किम् इच्छसि अभिलपसि, किं ददामि कथय दक्षिणारूपेण त्वाम् किं अर्पयामि, हस्ते करे, स्थिता मम दुर्योधनस्य, गदा मुद्गर एव पर्याया, च पुत्रः सर्वम् सकलम् विभवम् भवतः त्वदधीनाम् एवेति ॥

द्रोण — पुत्र वत्स, ब्रवीमि कथयामि, खलु निश्चयेन, तावदित्यवधारणे, वाष्पवेगः आनन्दाश्रुगतिः तु किन्तु, माम् गुरुद्रोणम्, बाधते बध्नुं प्रतिषेधति ।

सर्वे—कथम् केन प्रकारेण, आचार्योऽपि गुरुरपि, वाष्पम् अश्रुम्, उत्सृजति जहाति ।

भीष्मः—पीत्र दुर्योधन, ते तव, परिश्रमः आयामः, अफले, निष्फलो धातः ।

मैं आपका प्राणाधिक प्रिय शिष्य हूँ, आपने ही मुझे शिक्षा दी है, मैं वीरो में अग्रगण्य हूँ, युद्ध में मैंने साहस किया है, आप अपना अभिलपित तो बतलाएँ, मुझे केवल हाथ में गदा चाहिए, शेष सारा विभव तो आपका ही है ॥ ३१ ॥

द्रोण—बेटा, अभी बतलाता हूँ किन्तु देखो न ये आँखों के पानी बलात् रोक रहे हैं मुझे कुछ कहने से—

सभी—क्यों आचार्य भी रो रहे हैं ?

भीष्म—पीत्र दुर्योधन, तुम्हारा सारा श्रम बेकार है ।

दुर्योधनः—कोऽत्र ।

(प्रविश्य)

भट—जयतु महाराज ।

दुर्योधन—आपस्तावत् ।

भट.—यदाज्ञापयति महाराज । (निष्क्रम्य प्रविश्य) जयतु महाराज ।
इमा आप ।

दुर्योधन.—आनय । (कल्शं गृहीत्वदा) भो आचार्य । अश्रुपातोच्छिष्टस्य मुखस्य
क्रियता शौचम् ।

दुर्योधनः—कोऽत्र क पुरुषविशेष, अनु अस्मिन् स्थाने अस्ति, इति
जिज्ञास्यते,

(प्रविश्य प्रवशकृत्वा)

भट.—जयतु महाराज. सर्वतोभावन विजयताम् श्रीमान् ।

दुर्योधन—आप जलम्, तावदित्यवधारणे ।

भटः—यदाज्ञापयति यथादिशति, महाराज नृपदुर्योधन (निष्क्रम्य बहि-
र्गत्वा, प्रविश्य) जयतु महाराज विजयताम् श्रीमान्, इमा आप जलानीति शेष ।

दुर्योधनः—आनय देहि, (कल्शम् घटम्, गृहीत्वानीत्वा) भो आचार्य
हे गुरुदेव, अश्रुपातोच्छिष्टस्य वाष्पपातनोपहृतस्य, मुखस्य आननस्य, क्रियताम्
विर्धायताम्, शौचम् ।

दुर्योधन—कोई यहाँ है ?

(प्रवेश करके)

भट—महाराज की जय हो ।

दुर्योधन—भट थोडा पानी तो लाओ ।

भट—महाराज की जो आज्ञा (बाहर जाकर फिर लौटकर) जय हो
महाराज की ये रहा पानी ।

दुर्योधन—लाओ (कल्श लेकर) आचार्य, आँसुओं से पवित्र मुख का
प्रक्षालन तो कर लें ।

द्रोण — भवतु भवतु । मम कार्यं क्रियेव मुखोदकमस्तु ।

दुर्योधन — हा धिक्,

यदि विमृशन्ति पूर्वजिह्वाता मे यदि च समर्थयसे न दास्यतीति ।

शरशतकठिन प्रयच्छ हस्त सलिलमिद करण प्रतिग्रहाणाम् ॥ ३२ ॥

द्रोण — हन्त । लब्धो मे हृदयविश्वास । पुन । श्रूयता ।

येषा गति कापि निराश्रयाणा सवत्सरैर्द्वादशभिर्न दृष्टा ।

द्रोण — भवतु भवतु तिष्ठतु तावत्, मम द्रोणस्य, कार्यां क्रियेव कामसिद्धिरेव, मुखोदकम् आननजलमस्तु ।

दुर्योधन. — हा धिक् इति खेदे ।

व्याख्या — यदि चेत, मे मम पूर्वजिह्वाताम् पुराकृतकुटिलकमत्वम्, विमृशन्ति विचारयन्ति, यदि चेत, न नहि, दास्यति यच्छति, इति इत्यम्, समययसे समथन करोषि तदा शरशतकठिनम् सततबाणाभ्यासेन कठोरम्, हस्तम् वरम् प्रयच्छ देहि, प्रतिग्रहाणाम् उपहारस्वीकरणानाम्, करणम् साधनम्, इदम् एतेषु, सलिलम्, जल, उन्मृजयते । अस्मिन् श्लोके, पुष्पिनाप्रावृत्तम् ॥ ३२ ॥

द्रोण. — हन्त इति हर्षे, लब्ध प्राप्त, मे मम, हृदयविश्वास चित्तप्रत्यय, यतो हि अय दुर्योधन सर्वेषा भूपतीनाम् समक्ष दक्षिणादानस्य कृता प्रतिज्ञाम येषा न करिष्यतीति भाव । पुन वत्स श्रूयताम् अवधायताम् —

व्याख्या — येषाम् जनानाम्, निराश्रयाणाम् आश्रयपरहितानाम्, यत्र सत्र भ्रमताम् पाण्डवानाम् युधिष्ठिरादीनाम्, द्वादशभिर्द्वादशसंख्याभिः, सवत्सरैर्हामनैः, कुत्रापि गति गमनम्, न नहि, दृष्टा अवलोकिता अर्थात् युधिष्ठिरादि

द्रोण — छोटी, मेरी सफलता ही मेरा मुखोदक बनेगी ।

दुर्योधन — आह, मुझे धिक्कार है ।

मेरी पूर्वकृत कुटिलता पर यदि आप ध्यान देते ह, और यदि आपको यह भय है कि मैं आपकी इच्छा पूरी नहीं करूँगा तो लाइए बाणप्रक्षेपणाभ्यास त वना कठोर अपना हाथ, रख दूँ उस पर अभी ही सकल्प जल ॥ ३२ ॥

द्रोण — प्रसन्न हूँ बेटा, अब मैं पूर्ण आश्रय हूँ सुनो —

बारह साल से जिनका कोई पता नहीं है, जो आश्रयविहीन होकर दर-दर

स्व पाण्डवानां कुरु सविभागमेवा च भिक्षा मम दक्षिणा च ॥ ३३ ॥

शकुनि — (सोढेगम्) मा तावद् भो ।

उपन्यस्तस्य सिद्ध्यस्य विश्वस्तस्य च गौरवे ।

यज्ञप्रस्तुतमुत्पाद्य युक्तेय धर्मवन्दना ? ॥ ३४ ॥

द्रोण — वयं धर्मवन्दनेन । तावद् भो गान्धारविषयविन्मित ! शकुने । त्वद-
नार्यभावात् सर्वलोकनार्यमिति मन्यसे । हन्त भो ।

पञ्चपाण्डवानां द्वांसभिर्धर्मैः कुशापि स्थिति, नौपलब्धा, त्वम् भवान्, तेषाम्
पाण्डवानां, नविनागम् सम्यक्प्रकारेणविभाजनम्, कुरु विधीयताम् अर्थात्
राज्यार्धम् प्रदीयताम्, एषा पाण्डवानां कृते अशदानस्य धोषणा एव मम आचार्य-
द्रोणस्य भिक्षायाचना च पुनः दक्षिणा यज्ञेऽवृत्तन्याचार्यत्वस्य यथोचितम् वेतनम्
नदिष्यतीति । इन्द्रवज्रावृत्तम् ॥ ३३ ॥

शकुनि — (सोढेग आवेगनहितम्) मा तावत् द्रोणात्पविश्वान मा कुरु ।

व्याख्या — उपन्यस्तस्य दक्षिणादानम् प्रस्तुतजनस्य, गौरवे भवता महत्वे,
विश्वन्मस्य सिद्ध्यस्य, सिद्ध्यस्य अन्तर्वासिनः, यज्ञप्रस्तुतम् नखलाप्रस्तावम्,
उत्पाद्य उत्तमम् कृत्वा इयम् एषा, धर्मवन्दना धर्माचरणव्यापनेन छलम्, युक्ता
रक्षिता ? मत्तन्वापेनन्वजिन्दस्य स्वया वन्दनम् इति न युक्तम् ॥

द्रोण — क्वम्, केन प्रकारेण, धर्मवन्दना धर्माचरणव्यपदेशेनकपटमिति,
गान्धारविषयविन्मित गान्धारदशविशेषम् राज्यत्वेन प्राप्य गबोडशकुने, त्वत्
भरत, अनार्यभावान् कुटिलविचारात्, सर्वलोकम् सबलजनम् अनार्यम् दुष्टम्,
मन्यसे, हन्त भोक्त्रम् मा —

की टोस्टें खा रह हैं उन पाण्डवों की उनकी आपा राज्य लीज दें, यही मेरी
भीख है, यही मेरी दक्षिणा भी ॥ ३३ ॥

शकुनि — (धवलाकर) नहीं नहीं,

जिनने तुम्हारे गुरुदत्त पर विश्वास किया, जिनने तुम्हारी इच्छानुसूल दक्षिणा
देने का संकल्प लिया उन जिनके के लिए यह धार्मिक वन्दना क्या उचित है ?

द्रोण — धर्मवन्दना कैसी ? ओ गबोले गान्धार नरेश, तुम स्वयं अनार्य
हो इनलिए सारा सत्कार तुम्हें अनार्य प्रतीत होता है ।

भ्रातृणा पैतृक राज्य दीयतामिति वञ्चना ।

किं पर याचित्तैर्दत्त बलात्कारेण तैर्हृतम् ॥ ३५ ॥

सर्वे—कथं बलात्कारेण नाम ।

भीष्म—पौत्र । दुर्योधन । अवभृथस्नानमात्रमेव खलु तावत् । मित्रमुख्यं शत्रो शकुनेर्वचनं न श्रोतव्यम् । पश्य पौत्र ।

यत् पाण्डवा द्रुपदराजमतासहाया

व्याख्या—भ्रातृणाम् वान्धवानाम्, पैतृकम् वंशकृमागतम्, राज्यं ऐश्वर्यम्, दीयताम् समर्प्यताम्, इति इत्यम्, वञ्चना छलम् ? नेद कपटव्यस्य हारम् औचित्यमेवार्थं राज्यदानमिति, याचित्तैर् प्रार्थितैर्मया नवद्विदत्तं प्रदानम् कृतम्, बलात्कारेण बलप्रयोगेण वा तं युधिष्ठिरादिभिः, हृतम् अधिभूतम्, किम् कतमम्, परम्, उत्कृष्टम्, मत्प्रार्थनया दीयते, युध्यमानैर्वा पाण्डवैरस्य ह्रियते, किमनयो श्रेष्ठ स्यादिति विचारणीयम् ॥ ३५ ॥

सर्वे—कथम् केन प्रकारेण पाण्डवा राज्यार्थं हरिष्यन्ति, बलात्कारेण बलपूर्वकेन नाम इति प्रश्नात्प्रत्ययः

भीष्मः—पौत्र दुर्योधन, अवभृथस्नानमात्रमेव इदम् केवलम् मत्तसमाप्तिं मुपलक्ष्यविहितम् स्नानम् न द्यूतम् अतः अस्मिन्कार्ये गुरुद्वारेणस्यैव वचनं ग्राह्यम् न शकुनेर्वचनम् याह्यम् मित्रमुख्यस्य शत्रो कपटाचारी मुहुद शकुने वचनम् कथनम् न नहि श्रोतव्यम् आचरितव्यम् अर्थात् मातुलस्य वचनम् परित्यज्याचार्यकथनमादरणीयमिति । पश्य पौत्र अवलोक्य—

व्याख्या—यत् सर्वत्राबोधकसर्वनाम, द्रुपदराजसुतासहाय द्रुपद्या सह,

‘अपन चचेरे भाईयो को उनका पैतृक राज्य लौटा दो, यह कथन कपटपूर्ण कैसे है ? मेरे मागने से उनका राज्य लौटा दो यह अच्छा होगा अथवा वे बल पूर्वक तुमसे अपना हक छीन लेंगे यह अच्छा होगा (सौच लो) ॥ ३५ ॥

सर्व—बल पूर्वक क्यों ?

भीष्म—बेटा दुर्योधन, तुमने अभी ही यज्ञान्त स्नान किया है कपटी मित्र शकुनि का तुम विश्वास मत करो । देखो पौत्र,—जङ्गल में धूलिबूसरितगात

। कान्ताररेणुपरुषाः पृथिवी भ्रमन्ति ।

यस्व च तेषु विमुखस्त्वयि ते च वामा-

स्तत्त्वं सर्वमेव शकुनेः परुषावलेपः ॥ ३६ ॥

दुर्योधन—भवतु, एवं तावदाचार्यं । पृच्छामि ।

द्रोणः—पुत्र । कथय ।

दुर्योधन—

यत् पुरा ते सभामध्ये राज्ये माने च घर्षिता ।

पाण्डवा पाण्डुपत्न्यपुत्रा, कान्ताररेणुपरुषा वनधूलिधूमरा, पृथिवीम् धरित्रीम्, भ्रमन्ति पर्यटनं कुर्वन्ति, यत् च पुत्र, त्वम्, भवान्, तेषु पाण्डवादिषु, विमुख प्रतिमूल, च पुन, ते पाण्डवा, स्वयि दुर्योधने, वामाः विपरीता, तत्, सर्वम्, सकलम्, एव शकुने तव मानुलस्य, परुष कठोर, अवलेप गर्व । जगति एवविध कः प्राणो य सुप्तानि उपभोक्तुं नाभिलषते । पाण्डवानामप्यन्त करणे एषवेच्छोत्कटा मूर्खा जरीजूम्भते यत् तेषां सविधे जगत सकलमुलसाधनानि स्यु । समग्रस्यापि भूमण्डलस्य प्रभुत्वम् स्वायत्त विधाय ते सानन्दं विहरन्त्यु । किञ्च शकुनेर्गर्भवशादेव तव पाठ्य पाण्डवाना वेद्यम् हीना दशा जाता, अतः शकुने. कथनम् विहाय पाण्डवेषु पवित्रहृदयो भवेति भावः ॥ ३६ ॥

दुर्योधनः—भवतु यातु, एवम् इत्यम्, तावदित्यवधारणे, आचार्यं हे गुरुरदेव, पृच्छामि भवतः एव ज्ञातुमिच्छामि ।

द्रोणः—पुत्र तनय, कथय वद—

व्याख्या—यत्पुरा यत्तक्रीडासमये, ते पाण्डवा, सभामध्ये अवक्रीडा-

पत्नी के साथ पाण्डवगण दर-दर की ठोकरें खाते फिर रहे हैं । वे आज तुमसे विभुत हैं या तुम उनके विपरीत हो, इन सारे उपद्रवों की जड़ शकुनि का अभिमान है ॥ ३६ ॥

दुर्योधन—अच्छा गुरुदेव, मैं आप से ही पृच्छता हूँ ।

द्रोण—पूछो बेटा,

दुर्योधन—यदि पाण्डव इतने बली हैं तो जिन समय सभा में उनके राज्य

बलात्कारसमर्थैः किं रोषो धारितस्तदा ॥ ३७ ॥

द्रोण.—अत्रेदानीं धर्मच्छलेन वञ्चितो द्यूताश्रयवृत्तिर्मुधिष्ठिरः प्रष्टव्यः,

येन भीमः सभास्तम्भं तोलयन्नेव वारितः ।

यद्येकस्मिन् विमुक्तः स्यान्नास्माञ्छकुनिराक्षिपेत् ॥ ३८ ॥

भीष्मः—अन्यत् प्रस्तुतमन्यदापतितम् । भो आचार्य ! कार्यमत्र गुह्यं,
न कलहः ।

सभायामेव, राज्ये राज्यापहारे, माने पितामहादिश्रेष्ठजनसमक्षद्रोषद्याः केवलं कर्पणादिना प्रतिष्ठाया न धर्पिता अपमानिता, तदा तस्मिन्नेवकाले, बलात्कारसमर्थैः बलप्रयोगसमर्थैः, तैः पाण्डवैः, रोषः क्रोधः किं किमर्थं धारितः ॥

द्रोणः—अत्र अस्मिन् विषये, इदानीम् अधुना, धर्मव्याजेन, वञ्चितः प्रचारितः, द्यूताश्रयवृत्तिः अक्षक्रीडाप्रेमी, युधिष्ठिरः पाण्डवाग्रज, प्रष्टव्यः जिज्ञासितव्यः ।

ध्याख्या—येन युधिष्ठिरेण, भीमः पाण्डवद्वितीयः, सभास्तम्भम् सभाकस्तम्भम्, तोलयन् परीक्षमाण, एव यथास्यात्तथा, वारितः अवरोधित यदि स्यात्, एकस्मिन् द्यूतसभासंरुभे, युधिष्ठिरेण विमुक्तः स्वेच्छया व्यवहर्तुमात्रं स्यात् तदा शकुनि- अधुना अस्मान् द्रोणादीन्, न नहि, आक्षिपेत् अधिक्षिपेत् ॥३८॥

भीष्मः—अन्यत् अपरम्, प्रस्तुतम्, अन्यत् अपरम्, आपतितम् जातम्, भो आचार्य हे उपाध्याय, कार्यम् करणीयम्, अत्र अस्मिन् विषये गुह्यतरः श्रेष्ठतरः न नहि, कलहः शिष्यविरोधः उचितमिति भावः ।

तथा मान का अपहरण कर उन्हें अपमानित किया गया था, उस समय उन्होंने अपना रोष क्यों छिपा लिया था ? क्यों नहीं अपना बल प्रदर्शित किया था ? ॥३७॥

द्रोण—इस सम्बन्ध में धर्म के नाम पर उर्गे गये द्यूतव्यसनी, युधिष्ठिर से ही पूछ लो—

सभा भवन के स्तम्भों को उखाड़कर जब भीम इस अन्याय के विरुद्ध तुम सभों पर प्रहार करना चाह ही रहा था कि इसी युधिष्ठिर ने इशारे से उसे रोक दिया । केवल यदि उसी काम के लिए भीम को वह नहीं रोकता तो शायद आज इस तरह हम पर आक्षेप करने के लिए शकुनी वच्चे नहीं रहते ॥ ३८ ॥

भीष्म—कहाँ की बात कहाँ आ पड़ी ? आचार्य, काम की बात करें, भगड़ना तो बाद में भी होगा । ।

द्रोणः—माऽत्र कर्दनं कार्यं, कलह एव भवतु ।

भीष्मः—प्रसीदत्वाचार्यं । पश्य पौत्र ।

ये दुर्वलाश्च कृपणाश्च निराश्रयाश्च
त्वत्तश्च साम मृगयन्ति न गर्वयन्ति ।

ज्येष्ठो भवान् प्रणयिनस्त्वयि ते कुटुम्बे

तान् धारयिष्यसि मृगैः सह वर्तयन्तु ॥ ३६ ॥

द्रोणः—भा इति निषेधे, अत्र अस्मिन् विषये, कर्दनम् दैन्यपूर्वकम् राज्य-
यात्वा, कार्यम् करणीयम्, कलह एव भवतु क्रोधमूर्च्छिका द्रोणस्येयमुक्तिः अर्थात्
न्याययुद्धमेव जायतामिति ।

भीष्मः—प्रसीदतु प्रसन्नो भवतु आचार्यो गुरुद्रोण, पश्य अवलोकय च पौत्र
दुर्योधन ।

व्याख्या—ये पाण्डवा, दुर्वलाः शक्तिहीना, च पुनः कृपणा दैन्या, निराश्रयाः
असहाया, च पुनः, स्वत्तः स्वस्तमीपात्, साम सान्त्वना मृगयन्ति अभिलेपन्ति
याचयन्ति वा, न च नाहं गर्वयन्ति गर्वम् कुर्वन्ति, भवान् स्वम् तेभ्यः ज्येष्ठ-
वयसाऽधिकं, च पुनः ते पाण्डवा, स्वयि दुर्योधने, प्रणयिनः अनुरक्ताः, अतस्त्वं
तान् पाण्डवान्, कुटुम्बे स्वकीयपरिवारे धारयिष्यसि स्वान् दास्यसि, अथवा वा,
ते पाण्डवाः, मृगैः हरिणैः, सह सार्धम्, वर्तयन्तु तिष्ठन्तु । पश्यतितिलकावृत्तम् ॥

विचार्यताम् इदं जगत्, इमे सम्यग्धिनः, इमे पुत्रकलत्रादयः, इमा राम्पदः,
इदम् भवनम्, इयम् धरा, इदं सकलं साम्राज्यं, एषा चं प्रभुतां सर्वम् विहाय
एकस्मिन्नहनि गन्तव्यमापतति । अतो विचार्यताम् ये युधिष्ठिरादयः शक्तिहीनाः
सन् त्वया सान्त्वनम् याचयन्ति तेभ्यः जीविकासाधनस्वरूपम् राज्याङ्गम् प्रदान-
मूचितमथवा तदुपेक्षणम् युक्तिमिति भावः ॥

द्रोण—यहाँ कायरता दिखलाना ठीक नहीं, बलह, करना ही ठीक है ।

भीष्म—भाफ करो आचार्य, पौत्र देखो—

अभी पाण्डव शक्तिहीन हैं, दुःखी हैं, आश्रयरहित हैं, तुम्हारे प्रति प्रेम
रखते हैं, तुमसे शान्ति की याचना करते हैं, छोटे हैं तुम्हारे सामने कभी गर्व
नहीं करते, ऐसी स्थिति में तुम्हीं बतलाओ उन्हें अपने परिवार में धरण दोगे
या यो ही जङ्गली हरिणों के साथ घूमने के लिए छोड़ दोगे ॥ ३९ ॥

शकुनि—वर्तयन्तु वर्तयन्तु ।

कर्ण.—भो आचार्य ! अलममर्षेण । दुर्योधनो हि नाम,

हितमपि परुषार्थं रुष्यति श्राव्यमाणो

वरपरुषविशेष नेच्छति स्तूयमानम् ।

गतमिदमवसान रक्षयता शिष्यकार्यं

गज इव बहुदोषो मादवेनैव वाह्य ॥ ४० ॥

शकुनि—वर्तयन्तु वर्तेतिष्ठन्तु, वर्तयन्तु वन्द्यजन्तुभि सह सदा वर्ते ए
तिष्ठन्तु ।

कर्ण—भो आचार्य, हे गुरुदेव, अलम् व्यर्थम्, अमर्षेण क्रोधेन,
दुर्योधनो हि नाम—

व्याख्या—परुषार्थम् अवभाषितम्, श्राव्यमाण उच्यमान सन् हितमपि
परिणामगुणकरमपि, रुष्यति कोप करोति, परपरुषविशेषम् गुणातिशयशालिन
श्रेष्ठजनम्, स्तूयमानम् प्रशस्यमानम् न नहि, इच्छति अभिलषति, इदम् एत
द्विषयम्, अवसानम् समाप्तप्रायम्, गतम् जातम्, शिष्यकार्यम् दुर्योधनदृष्टे
यागसम्पादनरूपम् कृत्यम्, रक्षयताम् विधीयताम्, अयं हि दुर्योधन बहुदोष
बहुदोषयुक्त, गज, द्विप, इव यथा, मादवेनैव मृदुतायुक्तैर्नैव, ग्राह्य प्रहणीय
पाठान्तरे वाह्य, वहनीयेति भाव । स्वभावेन दुर्योधन अमहिष्णुरस्ति अत-एव-
मेव शान्तिमवलम्ब्य यज्ञान्ते दोषमानदक्षिणाग्रहणञ्च करोतु । अग्निम् त्यजे
चमपालकार, मालिनी वृत्तञ्च ॥ ४० ॥

शकुनि—जङ्गल में हिरणो के साथ ही वे रहे ।

कर्ण—हे गुरुदेव, आप क्रोध न करें । दुर्योधन—

दुर्योधन कठोर शब्दों में कही गई हित की बातों को सुनकर भी क्रुद्ध हो जाता
है । यह अत्यन्त स्वाभिमानी व्यक्ति है । दूसरों की प्रशंसा सुनकर भडक उठता है
अब यह बात समाप्त हो चुकी है, अपने शिष्य का हित नाधन करें, मतवाले
हाथी को फुमला कर ही बस में किया जा सकता है, दुर्योधन को भी मृदुता से
ही मनाइएँ, भगडने से भ्रष्ट क्या लाभ औचोर्ष । ॥ ४० ॥

द्रोणः—वन्न ! कर्ण ! तेजस्वि ब्राह्मण्यम् । काले सम्बोधितोऽस्मि । एषोऽहं भवच्छन्दमनुवर्ते । पुन ! दुर्योधन ! अहं तव प्रभावी ननु ।

भीष्म—एष इदानीं मार्गेणारब्धः । सास्त्वं हि नाम दुर्विनीतानामोपधम् ।

दुर्योधन—न ममैव, कुलस्यापि मे भवान् प्रभुः ।

द्रोण—एतत् तवैव युक्तम् । तत् पुत्र !

त्वं दञ्ज्यसे यदि मया न तयाऽत्र दौष-

द्रोण—इत्य पुत्र, कर्णं अङ्गाधिपते, तेजस्वि उन्नस्वभावम्, ब्राह्मण्यम् द्विजत्वम्, तेन मया तथोक्तमिति । काले यथोचिते ममये, सम्बोधित प्रबोधित, अस्मि भवामि । एष एतत्, भवच्छन्दम् भवदीयाशयम्, अनुवर्ते अनुसरामि पुत्र हे सुत, दुर्योधन गान्धारीतनय, अहम् द्रोण, तव भवतः, प्रभावी ननु तव कथनं युक्तितरम् ममये इति भाव ।

भीष्म—एष इदानीम् अधुना, मार्गेण उचितरत्या, आरब्ध. सम्पक् रूपेण समारम्भित, सास्त्वम् मादेवम् हि यत, ननु निदम्बपार्यकमवययम् । दुर्विनीतानाम् दुष्टानाम् औपधम् शमनमिति ।

दुर्योधन—न नहि, ममैव दुर्योधनस्यैव, कुलस्यापि सम्पूर्णवंशस्यापि, भवान् त्वम्, मे मम, प्रभुः सास्तेति—

द्रोण—एतत् इदम् वचनम्, तव भवतः एव युक्तम् उचितम्, तत् तस्मात्, पुत्र वत्स ।

व्याख्या—यदि चेत्, त्वम् दुर्योधन, मया द्रोणेन वञ्छसे प्रतार्यसे तर्हि, अत्र अस्मिन्विषये, तव भवत, दौषः अपराध, न नहि, यदि चेत्-काऽप्यदास्त्वाम् दुर्योधन

द्रोण—बेटा-कर्ण, ब्राह्मण प्रकृत्या तेजस्वी होते है, तुमने समय पर ही याद दिलाई है, मैं तुम्हारी इच्छा के अनुसार ही करूँगा । बेटा दुर्योधन, क्या मेरा तुम पर कुछ अधिकार है या नहीं ।

भीष्म—ध्व मे रान्से पर चल रहे हैं । दुष्टो की दया कोमलता ही है ।

दुर्योधन—अकेले मुझ पर ही नहीं, हमारे सम्पूर्ण वंश पर आजका अधिकार है आचार्य ।

द्रोण—मे बातें तुम्हारे ही अनुकूल है बेटा—

ऐसी स्थिति में यदि मैं तुम्हें ठगता हूँ तो लोग मुझे ही दोष देंगे जयवा

स्त्वां पीडयामि यदि वास्तु तवैप लाभः ।
भेदाः परस्परगता हि महाकुलाना - -

धर्माधिकारवचनेषु गमीभवन्ति ॥ ४१ ॥
दुर्योधन—तेन हि समर्थयितुमिच्छामि ।
द्रोण—पुत्र ! केन समर्थयितुमिच्छसि ?

भीष्मेन कर्णेन कृपेण केन किं सिन्धुराजेन जयद्रथेन ।
किं द्रौणिनाऽऽहो विदुरेण नाध्वं पित्रा स्वमाना वद पुत्र ! केन ॥ ४२ ॥

पीडयामि दक्षिणारूपेण राज्याद्ध पाण्डवेभ्यो दापयामि तदा एव एतव, लाभ उपलब्धि, तव भवत एव, अस्तु भवतु, महाकुलानाम् उच्चकुलोत्पन्नानाम् भवतु दृशानाम् जनानाम् परस्परगताः अन्योन्यप्राप्ताः हि यतः, भेदा वैमनस्या, धर्माधिकारवचनेषु आप्तकथनेषु, शमीभवन्ति प्रशमनम् यान्ति । त्वादृशानाम् महाकुलसम्भूतानाम् जनानाम् मङ्गलाय सुखशान्तिपूर्वकम् तेषाम् जीवनम् जगति व्यतीयाव, बन्धुविग्रहोऽपि प्रशमनं यातु इत्येतत् प्रयोजनेन गुरुजनोपदेशो भवति । तेनैवोपदेशेन पारस्परिकविरोधाः प्रशमनम् यान्तीति भावः । अस्मिन् श्लोके वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ४१ ॥

दुर्योधनः—तेन कारणेन, हि इति निश्चयेन, समर्थयितुम् अनुमोदनं प्राप्तुम् वाञ्छामि ।

द्रोणः—पुत्र हेवत्स, केन पुरुषविशेषेण, समर्थयितुम् सम्मतिं प्राप्तुम्, इच्छसि अभिलषसि—

व्याख्या—भीष्मेण गङ्गापुत्रेण, कर्णेन अङ्गाधिराजेन कृपेण कृपाचार्येण, सिन्धुराजेन सिन्धुदेशाधिपतिना जयद्रथेन, किम् किम्वा, द्रौणिना अश्वत्थाम्ना, आहो इति

यदि तुम्हे पीडा पहुँचाता हूँ तो उससे भी तुम्हे ही लाभ होगा । क्योंकि उच्चकुलोत्पन्न महापुरुषों का पारस्परिक कलह गुरुजनो के आप्त वचनो से ही शान्त होता है ॥ ४१ ॥

दुर्योधन—मैं इसका समर्थन चाहता हूँ ।

द्रोण—बेटा, किसकी सम्मति लेना चाहते हो ?

पितामह भीष्म का, कर्ण, कृपाचार्य, सिन्धुराज जयद्रथ, अश्वत्थामा, विदुर

द्रोणः—वत्स !

क्रोधप्रायं वयो जीर्णं क्षन्तव्यं बहुचापलम् ।

अस्य रूक्षस्य वचसः परिष्वङ्गः शमीक्रिया ॥ ४३ ॥

भीष्म—(आत्मगतम्)

एष शिष्यस्य वात्सल्याच्छकुनिं याचते गुरुः ।

एवं सान्त्वीकृतोऽप्येष नैव मुञ्चति जिह्वाताम् ॥ ४४ ॥

शकुनिः—(आत्मगतम्) अहो शठं खल्व्याचार्यं, स्वकार्यलोभान्मां सान्त्वयति ।

द्रोणः—वत्स पुत्र ।

व्याख्या—जीर्णम् जराग्रस्तमतिजीर्णम्, वयो आयुः, क्रोधप्रायम् क्रोधाविष्टम्, तत् बहुचापलम् शिशुजनोचितम् चाश्वल्यम् कटुवचनप्रयुक्तान्मकम् क्षन्तव्यम् मर्षितव्यम् अस्य पूर्वकथितस्य द्रोणस्य रूक्षस्याप्रियस्य कठोरस्य वचसः कथनस्य परिष्वङ्गः आस्तेयः, एव शमीक्रिया शान्तिसाधनम् भवतीतिशेषः ॥ ४३ ॥

भीष्म—(आत्मगतम् स्वगतम्)

व्याख्या—एष, असी, गुरुः, आचार्यं, शिष्यस्य, अन्तेवासिनः, वात्सल्यात्, वत्सलभावात् हेतोः शकुनिम्, दुर्बोधनमानुलम्, याचते प्रार्थयते, किन्तु, एवम् इत्थम्, सान्त्वीकृतः कृपापूर्वं केनानुनीतोऽपि एषः शकुनिः, जिह्वाताम् निजकुटिलताम्, नैव मुञ्चति जहातीत्यर्थः ॥ ४४ ॥

शकुनिः—(आत्मगतम् स्वगतम्) अहो इत्याश्चर्यम्, शठं घूर्तं, खलु

द्रोण—वत्स,

बुढ़ीती मे लोगो को क्रोध जल्दी ही आजाता है । इसलिए क्रोधावेश मे मैंने तुमसे जो कुछ भी कटुवचन कहा है उसे भूल जाओ । आओ, उत गलती के लिए तुम्हे गले लगाता हूँ ॥ ४३ ॥

भीष्म—(स्वगतम्)

हाय, शिष्य के प्रति स्नेह होने के कारण ही आचार्य शकुनि को इस तरह मना रहे है किन्तु, यह दुष्ट इस तरह मनाये जाने पर भी अपनी कुटिलता नहीं छोड़ता है ॥ ४४ ॥

शकुनि (अपने आप) अरे, आचार्य तो प्रपची है, अपने काम की सिद्धि के

(नयेँ परिक्रम्योपविशन्ति)

दुर्योधन—मातुल ! पाण्डवाना राज्यायँ प्रति को निश्चय ?

शकुनि—न दातव्यमिति मे निश्चय ।

दुर्योधन—दातव्यमिति वक्तुमर्हति मातुल !

शकुनि—यदि दातव्ये राज्ये किमन्नाभि नह मन्त्रयमे । ननु सर्वमेव प्रदीयताम् ।

दुर्योधन—वयस्य ! अङ्गराज ! भवानिदानी न त्रिचिद्राह ।

निश्चयेन, आचार्यं, द्रोण, स्वकार्यलोभात् निजकार्यसाधन्यप्रत्वात्, माम् शकुनिम्, मान्त्वयनि मृदुवचनेः सम्बोधयति ।

सर्वे सकलजना, परिक्रम्य भ्रमणे कृत्वा, उपविशन्ति तिष्ठन्ति

दुर्योधन — मातुल न म, पाण्डवाना पाण्डुपुत्राणाम्, राज्यायँम् राज्य-
स्यायँनायम्, प्रतिदानुम्प्रति, को निश्चय. तत्र कः निर्णय ?

शकुनिः—न नहि, दातव्यम् देयम्, इति इत्यम्, मे शकुनि, निश्चयः—निर्णय. ।

दुर्योधनः—दातव्यम् दानुम् योम्, इति इत्यन्, वक्तुम् कर्णयितुम्,
अर्हति शकुनि, मातुल मातु भ्राता,

शकुनि — यदि चेत्, दातव्य त्वया दानुम् निश्चितम् राज्ये. राज्यायँ-
भागम्, किम् कथम्, अस्माभि शकुन्यादिभि, सह नार्थम्, मन्त्रयसे विचारं
करोषि नन्विति प्रश्ने, सर्वमेव सकलराज्यमेव, प्रदीयताम् तन्म दीयताम् ।

दुर्योधन — वयस्य मित्र, अङ्गराजकर्णं, मत्रान् त्वम्, इदानीम् अपुना,
न नहि, त्रिचिद्र किमपि, आह क्यत्र वदाम ?

टिप्पण कुन्ने इस तरह मना रहे है ।

(सभी धूमकर बैठ जाते हैं)

दुर्योधन—मामाजी, पाण्डवों को राज्यायँ देने के सम्बन्ध में आपको क्या राय है ?

शकुनि—मेरा अर्णितम निर्णय है कि उन्हें कुछ नहीं देना चाहिए ।

दुर्योधन—मामाजी, आपको तो बहना चाहिए कि उन्हें दना उचित है ।

शकुनि—यदि देना ही है तो फिर हमने विचार क्यों पूछा है ? सारा राज्य हा दे डालो ।

दुर्योधन—मित्र कर्ण, तुम अपना अभिनत क्यों नहीं व्यक्त करते ?

कर्ण — इदानीं किमभिधास्यामि,

रामेण भुक्ता परिपालिता च मुञ्जातृता न प्रतिपेक्षयामि ।

क्षमाक्षमत्वे तु भवान् प्रमाणं सङ्ग्रामकालेषु वयं सहाया ॥ ४५ ॥

दुर्योधन — मातुल ! बलवत्प्रत्यमित्रोऽनुपजीव्यश्च कश्चित् कुदेशश्चिन्त्यताम् । तत्र वमयु पाण्डव ।

शकुनि — हन्त भो !

कर्ण — इदानीम् अधुना, किम् अभिधास्यामि वक्ष्यामि ।

व्याख्या—रामेण दाशरथिना, भुक्ताम् अनुभूताम्, मुञ्जातृताम् सुष्ठुरूपेण भ्रातृभावम्, परिपालिताम् सर्वतोभावेन रक्षिताम्, न नहि, प्रतिपेक्षयामि निपेक्षयामि, क्षमाक्षमत्वे राज्यस्वार्थभाग देयमदेयम् वेति निर्णये, भवान् त्वम् स्वयमेव प्रमाणम् निर्णायकं, वयम् तु कर्णादिकास्तु, संग्रामकालेषु यदा सगरो भविष्यति तदा तस्मिन् काले, सहाया सहायकरूपेण उपस्थिता भवाम ॥ ४५ ॥

दुर्योधन — मातुल हे माम्, बलवत्प्रत्यमित्रं सशक्तशत्रुभिर्युक्तं अनुपजीव्यं जीविकाप्रदानेऽक्षमं कश्चित् कोऽपि, कुदेशं कुत्सितप्रदेशं, चिन्त्यताम् विचार्यताम्, तत्र तस्मिन्नेव स्थाने वसेयुः निवासं कुर्युः, पाण्डव पाण्डो पञ्चपुरा ।

शकुनि — हन्त भो इति खेदे,

कर्ण—भला इस पर मैं तुम्हें क्या कहूँ ?

भगवान् राम की तरह अगर तुम मातृत्व के सुख का उपभोग करना चाहो तो मैं भला उसका निपेक्ष क्यों करूँ ? जहाँ तब राज्य देने या न देने का प्रश्न है इनमें तुम पूर्ण स्वतन्त्र हो, हाँ, युद्ध छिड़ जाने पर मैं तुम्हारा साथ दूँगा, यह निश्चित है ॥ ४५ ॥

दुर्योधन—शक्तिशाली शत्रुवा से घिरा कोई कुदेश जो जीविका देने में अयमर्थ हो वहाँ पाण्डव निवास करें ।

शकुनि--खेद है-

शून्यमित्यभिधास्यामि कः पार्थाद्व बलवत्तर ?

ऊपरेष्वपि मस्य स्याद् यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ ४६ ॥

दुर्योधन—अधेदानी,

गुरुकरतलमध्ये तोयमार्वाजित मे

श्रुतमिह कुलवृद्धैर्यत् प्रमाणं पृथिव्याम् ।

तदिदमपनयो वा वञ्चना वा यथा वा

भवतु नृप । जलं तत् सत्यमिच्छामि वक्तुम् ॥ ४७ ॥

व्याख्या—शून्यम् नकारात्मन् उत्तरम्, अभिधास्यामि दास्यामि यत् पार्थात् अर्जुनात्, क पुरुषविशेष, बलवत्तर समधिकबल ? ऊपरेष्वपि अदूर्व-रेष्वपि मस्यसमृद्धिम्, स्यात् भवेत्, यत्र यस्मिन् देशे, राजा नृपनि, युधिष्ठिर धर्मराज, अस्तीति । त्वया कुदेश, चिन्त्यताम् इति कृतस्यानुसंधेस्योत्तरे शून्यमित्यभिधास्यामि । जीवा स्वकीये जीवने यादृशं कर्म आचरन्ति तादृशमेव फलमपि लप्स्यन्ते, सन्ति कर्माण्येव जीवनघटकाणि । पाण्डवाः सततं जीवनं सुप्तं सर्वविधं तथा समुन्नतं च कर्तुं शुभान्येव कर्माणि कुर्वन्ति । अतः धर्ममूर्तयुधिष्ठिरस्य स्वामित्वमात्रेण मुदेशस्यापि उर्वरत्वं भवति । अर्जुनापेक्षया न कोऽपि बलवत्तर अतः कस्मिंश्चिदपि देशे दीयमाने तेषां प्रभावातिशयात्स्यादेवोत्तति ॥ ४६ ॥

दुर्योधनः—अयं अनन्तरम्, इदानीम् अधुना—

व्याख्या—गुरुकरतलमध्ये आचार्यद्रोणस्य हस्ते, तोयम् सलिलम्, मार्वाजितम्, इह अस्मिन्विषये, मे मम, कुलवृद्धं भीष्मप्रभृतिपुराणपुरुषं, श्रुतम् अवगतम् यत् जलदानम् पृथिव्याम् भुवि, प्रमाणम् प्रसिद्धम्, तत् तस्मात्, इदम् एतत्, अपनयं दुर्नाति, वा जयवा वञ्चना प्रतारणा, यथा येन प्रकारेण वा भवतु जातु, नृप हे राजन्, तत् तस्मात्, जलम् सलिलम्, मत्स्यम् प्रमाणितम्

ऐसा कोई देश नहीं जहाँ अर्जुन से अधिक बलशाली उसका शत्रु हो या जहाँ युधिष्ठिर का साम्राज्य हो वहाँ की भूमि उपजाऊ बन जाय ॥ ४६ ॥

दुर्योधन—अच्छा तो अब

हे राजन् मैंने गुरुदेव के हाथों मे दान का जल छोड़ दिया है। इसे आप अनीति कहें या ठीक। मैंने कुल वृद्धों से भुना है, शास्त्रों से जाना है कि यह जल

दूतः—विपादेनावृतो नोपगच्छति ।

सर्वे—कस्तस्य विपादः ?

दूतः—श्रोत्रुमर्हति महाराजः । यत् तत्सम्बन्धि मन्त्रिकृष्टं कौचकानां भ्रातृशतं,

रात्री छन्नेन केनापि बाहुभ्यामेव हिंसितम् ।

दृश्यते हि शरीराणामशस्त्रजनितो वधः ॥ ५१ ॥

सर्वे—कथमशस्त्रजनितो वध इति ।

दूतः—विपादेन कष्टेन पीडया वा आवृतः पीडित, न नहि, उपगच्छति
आयातौति भावः ।

सर्वे—कः कुतः, तस्य विराट् नृपते, विपादः कष्टम् ?

दूतः—श्रोत्रुम् आकर्षणुम्, अर्हति शक्नोति, महाराजः नृपतिः । यत्
तत्सम्बन्धि विराट् नृपते. आत्मीयजन., सन्त्रिकृष्टम् अत्मासजनम्, कौचकानाम्
भ्रातृशतम् सततरयका. कौचकाः ।

व्याख्या—रात्री निशीथे, छन्नेन गुप्तरूपेण, बाहुभ्यामेव करमुष्टयादिभ्यामेव
केनापि अपरिचितेन जनेनापि, हिंसितम् मारितम् । केवलमुष्ट्याघातेनैव शनसंख्यकाः
विराट्श्याला कौचकबन्धवः केनापि हताः । मुष्ट्याघातहन्ने प्रमाणमाह—दृश्यते
इति । शरीराणाम्मृतकौचकदेहानां अशस्त्रजनितः शस्त्राघातरहित, वध. मारणम्,
दृश्यते अबलोक्यते । तेषां मृतशरीरे शस्त्राघातजनितचिह्नानामनुपलब्धि. । तेन
बाहुभ्यामेव हिंसित इति भावः ॥ ५१ ॥

सर्वे—कथम् केन प्रकारेण, अशस्त्रजनित शस्त्राघातरहित, वध. हिंसा इति ।

दूत—नही श्रीमान् वे अभी कुठ कष्ट मे पड़े हैं ।

सभी—उन्हे क्या तकलीफ है दूत !

दूत—तो सुने महाराज, उनके निकट सम्बन्धी सौ भाई कौचको का—
किसी ने रात में ही हाथों से वध कर डाला है । क्योंकि मृतको के शरीर
पर किसी तरह के शस्त्राघात के कोई चिह्न नहीं हैं ॥ ५१ ॥

सभी—क्या कहा, बिना हथियार के ही उन सबों की हत्या कर दी गई ?

भीष्म — कथमशस्त्रेणेति । (अपचार्यं) भो आचार्य ! अभ्युपगम्यता पञ्चरात्रम् ।

द्रोण — (अपचार्यं) किमर्थम् ? ॥ ५१ ॥

भीष्म —

भीमसेनस्य लीलेषा सुव्यक्त बाहुशास्त्रिनः ।

योऽस्मिन् भ्रातृने रोष स तस्मिन् फलिनः गते ॥ ५२ ॥

द्रोण — कथं भवान् जानाति ?

भीष्म —

कथं पण्डित ! कृतोऽन्तानां बालचापलम् ।

भीष्म — कथम् इति प्रश्ने, अशस्त्रेणेति शस्त्रप्रयोग विनैव मारिता कीचका इति आश्चर्यस्य विषयः । (अपचार्यं) भो आचार्य हे द्रोण, अभ्युपगम्यताम् स्वीक्रियताम्, पञ्चरात्रम् पञ्चरात्रेणैवाविबधोपलब्ध्या पाण्डवा इति ।

द्रोण — अपचार्यं—अ. म न शृणुयुरिति बुद्ध्याभिपत्ताकरेणावृत्यसुखमिति बोध्यम् । किमर्थम् एतस्य कथनस्य विमात्राय ।

व्याख्या—एषा धूममाणा, लाला क्रीडा, बाहुशास्त्रिनः अतिगतिशालिनः, भीमसेनस्य पाण्डवद्वितीयेष्वस्य, सुव्यक्तम् स्पष्ट प्रतिभाति, अस्मिन् कौरवे, भ्रातृसेने भतनस्यकेषु भ्रातृषु यः रोषः कायत्रिषोषः, स अस्मिन् तस्मिन् शत कीचकादी वृत्तार्थताम् गतः । भीमादतिरिक्तं न बोध्यन्त्य एव कर्तुम् ममर्थं इति ॥ ५२ ॥

द्रोण — कथम् केन प्रकारेण, भवान् श्रीमान्, जानाति अथगतोऽसि ?

व्याख्या—पण्डित ह बुद्धिमन् द्रोण, छलेषु, कपटेषु, भ्रान्ताताम् भ्रमताम्, वन्माताम्, बालवृत्तमानाम्, बालचापलम् शैशवजन्यचाञ्चल्यम्, शृङ्गस्था-

भीष्म—कथो विज्ञ हवियरर के ही (एक ओर मुँह करके) आचार्य, जब आत्र पाँच रात के भातर पाण्डवा का पता लगाने वाली शर्त स्वीकार कर लें ।

द्रोण—(एक ओर मुँह करके) कथो ?

भीष्म—निश्चय ही अनन्य पराक्रमी भीम के हाथों का यह खेल है । मी भाई कौरवों पर जो उमका क्रोध था उसे उमने उठा तो भाई कीचकी पर ही उतारा ॥ ५२ ॥

द्रोण—यह आप कैसे जानते हैं ?

भीष्म—जानता हूँ आचार्य, किनारे पर दीड लगाने वाले बछड़े

नाभिजानन्ति वत्सानां शृङ्गस्थानानि गोवृषाः ॥ ५३ ॥

द्रोणः—गोवृषा इति । हन्त ! सिद्धं कार्यम् । (प्रकाशम्) पुन ! दुर्योधन !
अस्तु पञ्चरात्रम् ।

दुर्योधनः—अथ किम् । अस्तु पञ्चरात्रम् ।

द्रोणः—भो भो यज्ञमनुभवितुमागता राजान ! शृण्वन्तु शृण्वन्तु भवन्त !
इहात्रभवान् कुरुराजो दुर्योधनः, न, न, न, मातुलसहित, यदि पाण्डवानां

नानि शृङ्गेण सननस्थानानि, गोवृषा. बलोवर्दा, कथम् केन कारणेन, न नहि,
अभिजानन्ति अवगच्छन्ति ॥ अप्रस्तुतप्रशंसालङ्कार ॥ ५३ ॥

द्रोणः—गोवृषा इति वृषराज इति, हन्त इति प्रसन्नतायाम्, सिद्धम्
सफलम्, कार्यम् मनोरथम् (प्रकाशम् यथा स्यात् प्रकटम्) पुन हे सुत, दुर्योधन
गान्धारीसुत, अस्तु स्वीकृतम् तव पञ्चरात्रम् मया पञ्चरात्रेणैव पाण्डवा
अन्विष्योपलब्धव्या ।

दुर्योधन —अथ किम् किमन्यत्, अस्तु भवतु पञ्चरात्रम् स्वीकार्यताम्
मदीयकथनम् ।

द्रोणः—भो भो इति सम्बोधने, यज्ञम् मखम्, अनुभवितुम् द्रष्टुम्, आगता
सम्प्राप्ता सम्मिलिता वा राजान. नृपतयः, शृण्वन्तु शृण्वन्तु सर्वे राजान
आकर्णयन्तु, भवन्त. श्रीमन्त., इह अस्मिन्निषये, अनभवान् श्रीमान्, कुरुराज
कुरुदेशस्य नृपति, दुर्योधन. कौरवानामग्रज., न न न नहि नहि, मातुलसहित
मातुः भ्रात्रा सहित, यदि चेत्, पाण्डवानाम् पाण्डुपुत्राणाम् प्रवृत्तिरूपनेतव्या

चचलता और उसकी सींगो के उल्लंघन स्थान को भला वृषराज कैसे नहीं
जानेगा ? ॥ ५३ ॥

द्रोण—वृषराज, तव तो काम बन गया (प्रकट) दुर्योधन, तुम्हारी पाँच
रातवाली शर्त मुझे मज़ूर है ।

दुर्योधन—अच्छी बात है तो रही पाँच रात की बात ।

द्रोण—इन यज्ञ में भाग लेने वाले नृपतिगण आप-लोग, कान खोलकर
सुनें, समादरणीय कुरुराज, नहीं-नहीं अपने, मामा के साथ, महाराज दुर्योधन

प्रवृत्तिरूपनेतृव्या, राज्यस्वार्थं प्रदास्यति किल, ननु पुत्र ।

दुर्योधन—अथ किम् ।

द्रोणः—एतद् द्विस्त्रिं सम्प्रधार्यताम् ।

शकुनिः—काले ज्ञास्यामि ।

द्रोणः—ननु गाङ्गेय ।

भीष्मः—(आत्मगतम्)

आचार्यस्य यदा हर्षो धैर्यमुत्क्रम्य सूचितं ।

राङ्गे दुर्योधनेनैव वञ्च्यमानेन वञ्चितः ॥ ५४ ॥

ममाचार प्राप्यते, राज्यस्वार्थम् अधिष्ठतराष्ट्रविशेषस्वार्थभागम्, प्रदास्यति प्रदानं करिष्यति, किल निश्चयेन, नञ्विति प्रश्ने, पुत्र हे सुत ।

दुर्योधनः—अथ किम् कथन्नहि ? सत्यमिदम् कथनम् ।

द्रोणः—एतत् वार्ता, द्वि द्विचारम्, त्रिं निवारम् वा, सम्प्रधार्यताम् सम्यक् प्रकारेण धारणम् क्रियताम् ।

शकुनिः—काले समायाते समये, ज्ञास्यामि विचारम् करिष्यामि ।

द्रोणः—नञ्विति प्रश्नायं, गाङ्गेय हे गङ्गापुत्र भीष्म ।

भीष्मः—(आत्मगतम् स्वगतम्)

व्याख्या—यदा यदि, आचार्यस्य गुरुद्रोणस्य, हर्षं प्रसन्नता, धैर्यम् गाम्भीर्यम् उत्क्रम्य अतिक्रमणम् कृत्वा, सूचितं प्रकटीकृतस्तेन शङ्के सम्भावयामि, एष. गुरुद्रोणः, वञ्च्यमानेन राज्यार्थविभाजने वाध्यमानेन दुर्योधनेन,

ने स्वीकार किया है यदि पाँच रात के भीतर पाण्डवों को पता लग जाय तो उन्हें राज्य का आधा भाग दे दिया जायेगा । क्यों बेटे ठीक है न ?

दुर्योधन—हाँ तो और क्या ?

द्रोण—इस बात पर दो-तीन बार विचार लो ।

शकुनि—समय धाने पर सोच लूँगा ।

द्रोण—क्यों गाङ्गेय,

भीष्म—(स्वगत) आचार्य की प्रसन्नता भीमा पार कर गई है । अतः मुझे

(प्रकाशम्) पौत्र । दुर्योधन । 'अस्ति मम विराटेनाप्रकाश वैरम्, अथ यज्ञमनुभवितुमनागता इति । तस्मात् क्रियता तस्य गोग्रहणम् । -

द्रोण — (अपवार्यं) भो गाङ्गेय । प्रियशिष्य खड्ग मे तत्रभवान् विराटेऽथ ।
किमर्थं तस्य गोग्रहणम् ।

भीष्म — (अपवार्यं) ब्राह्मणार्जवबुद्धे ।

र्धापिता रथशब्देन रोपमेप्यन्ति पाण्डवाः ।

कुरुदेशाधिपतिना, वञ्चित प्रजासित । द्रोणस्यास्मिन्दिपये प्रदक्षितातिर्हर्षं वदान्ति
खेदे परिणतो भविष्यतीति भीष्मस्याशङ्का ॥ ५४ ॥

(प्रकाशम् स्पष्टम्) पौत्र दुर्योधन, मम भीष्मस्य विराटेन विराटदधिपतिना सह अप्रकाशम् आन्तरिकम् वैरम् विरोध, अस्ति, अथ अनन्तरम्, भवन्तीति, यज्ञम् मसम्, अनुभवितुम् द्रष्टुम्, अनागता-न-स्मिन्दिता, तस्मात् कारणेन, तस्य विराटनृपतेः, गोग्रहणम्, गवामपूहरणम्, क्रियताम् निधीयतामिति ।

द्रोण — (अपवार्यं आच्छाद्य) भो गाङ्गेय । हे भीष्म, प्रियशिष्य प्रियोऽन्तेवासी, खड्ग निश्चयेन, मे मम, तत्रभवान् विराटेऽथ विराटनृपति, किमर्थम् केन कारणेन तस्य विराटनृपतेः, गोग्रहणम् गोघनहरणमिति ।

भीष्म — (अपवार्यं जनान्तरम्) ब्राह्मणार्जवबुद्धे मरुपदानभिज्ञमरुपेण,
व्याख्या — रथशब्देन स्मृत्तस्य घोषेण, र्धापिता, आकृष्टकर्णा, पाण्डवा पाण्डुपुत्रा, रापम्, क्रोधम्, एप्यन्ति, भविष्यन्ते, तेषाम् सुधिष्ठिरादीन्,

सन्देह है कि ठगे जाने वाले दुर्योधन से कहीं आचार्य स्वयं न ठगे जायें ॥५४॥
(प्रकट) पौत्र दुर्योधन, विराट नरेश से हमारा आन्तरिक विरोध ता है ही, इस यज्ञ मे उसने भाग नहीं लिया है तो क्यों न उसका शासन अपहृत किया जाय ।

द्रोण — (एक ओर मुँह फेर कर) अजी पितामह भीष्म, विराट नरेश तो मेरे प्रिय शिष्यो मे एक है तो फिर उसका गोघन क्यों अपहृत करेंते हो ?

भीष्म — (मुँह फेर कर) अरे ओ निश्चल ब्राह्मण देवता, दुर्योधन के रथ की धरबराहट सुनकर ही पाण्डव भडक उठेंगे, उन

अस्ति तेषां कृतज्ञत्वमिष्टं गोग्रहणे स्थितम् ॥ ५५ ॥

भट—जयतु महाराज । सज्जा खड्ग रथा नगरप्रवेशाभिमुत्साह ।

दुर्योधन —

एभिरेव रथैः शीघ्रं क्रियता तस्य गोग्रहः ।

गदा यज्ञप्रशान्ता च पुनर्मै करमेप्यति ॥ ५६ ॥

द्रोण—तस्मान्मे रथमानयन्तु पुस्पा,—

कृतज्ञत्वम् उपकारज्ञत्वम्, अस्ति, गोग्रहणे गोधनहरणे, इष्टम् अभिलषितम्, उपस्थितमस्ति । अर्थात् विराटनोपवृत्ता पाण्डवा तस्य गधामपहरणे तुष्णीं भूत्वा स्थातुम् न शक्नुवन्ति, तत्प्रत्युपकारार्थं ते समराङ्गणे उपस्थिता भविष्यन्ति । अत एव गोग्रहणेन न सर्वाहितसिद्धिः सम्भविष्यतीति भावः ॥ ५५ ॥

भट—जयतु विजयतान्, महाराज नृप दुर्योधन, सज्जा मुनियोजिता, खड्ग निश्चयेन, रथा स्यन्दना नगरप्रवेशाभिमुत्साह हस्तिनापुर प्रवेष्टुमानीत स्यन्दन ।

व्याख्या—एभिः सन्मुखे स्थितै रथैः, स्यन्दनैः, एव शीघ्रम् त्वरितम् तस्य विराट्पते, गोग्रहः गोधनापहरणम्, क्रियतान् विधीयताम्, च पुनः, यज्ञ-प्रशान्ता मखावसरे प्रशान्ता परित्यक्तनिजव्यापारा, इयम् गदा मुद्गरम्, पुनः, मे मम, करन् दृष्टम् एप्यति, अर्थात् पुनरप्यहम् हस्ते गदा नीत्वा युद्धाय ममुद्यतो भवामि ॥ ५६ ॥

द्रोणः—तस्मात्, मे मम, रथम् स्यन्दनम्, धानयन्तु आहरन्तु, पुस्पा राजभृत्या ।

कृतज्ञता तो है ही, वे सामने आज्ञायेंगे और आपका काम अपने हाथ वन जायेगा समझे देवता ॥ ५५ ॥

भट—महाराज की विजय हो, नगर में प्रवेशार्थ रथ तीव्र है धीमन् ।

दुर्योधन—बस, इसी रथ से विराट के गोधन का अपहरण किया जाय ।

यज्ञ के कारण शान्त बनी मेरी यह गदा फिर से मेरे हाथ में चमके ॥ ५६ ॥

द्रोण—मेरा रथ लाओ ।

शकुनिः—

—हस्ती समानीयतां,

कर्णः— भारथं भृशमुद्यत्तिरिह ह्यैयुक्तो रथः स्थाप्यताम् ।

भीष्मः— बुद्धिर्मे त्वरते विराटनगरं गन्तुं धनुस्त्वयंतां

सर्वे—

मुक्त्वा चापमिहैव तिष्ठतु भवानाज्ञाविधेया वयम् ॥ ५७ ॥

द्रोणः—पुत्र ! दुर्योधन ! आवा तव युद्धे पराक्रमं द्रष्टुमिच्छामः ।

शकुनिः—मम गान्धारनृपतेः, हस्तीगजः, समानीयताम् आनय ।

कर्णः—भारथं भारम् वोद्गुम्, भृशम् अत्यथंम्, उद्यत्तः तत्परेः, इह अस्मिन् स्थाने, ह्यैयुक्त अश्वैः संयोजितः, रथः स्थान्दनः, स्थाप्यताम् जानीयताम् ।

भीष्मः—मे मम भीष्मस्य, बुद्धिः प्रज्ञा, विराटनगरम् विराटनृपतेः राव घानीम्, गन्तुम् चलितुम् त्वरते शीघ्रताम् करोति, मम धनुः चापम् त्वयंताम् शीघ्रमेव समानीयताम् ।

सर्वे—भवान् श्रीमान् चापम् धनुः, मुक्त्वा परित्यज्य, इहैव अत्रैव, तिष्ठतु स्वीयताम् वयम् सर्वे जनाः, आज्ञाविधेया श्रीमदाज्ञानुवर्त्तिनः । अस्मिन् कार्ये वयमेव पर्याप्ताः अस्मासु सत्सु श्रीमतः तत्र गमनमनुपयुक्तम् तस्मादत्रैव तिष्ठतु भवन्त इत्याशयः । शार्ङ्गलविक्रीडितम् वृत्तम् ॥ ५७ ॥

द्रोणः—पुत्र हे सुत, दुर्योधन गान्धारोसुत, आवाम् अहम् भीष्मश्च, तव भवतः, युद्धे रणे, पराक्रम विक्रमम् पुरुषार्थम् वा, द्रष्टुम् अवलोकितुम्, इच्छामः अभिलषामः ।

शकुनिः—मेरा हाथी नजाया जाय ।

कर्णः—भार डोने मे समर्थ मजवूत घोडो वाला रथ मेरे लिए लाया जाय ।

भीष्मः—विराट नगर जाने के लिए मेरा मन चबल हो उठा है, शीघ्र मेरा धनुष लाओ ।

सभी—आप अपना धनुष रख दें, वहाँ जाने के लिए आप के बशवर्ती हम लोग ही पर्याप्त हैं ॥ ५७ ॥

द्रोणः—बेटा दुर्योधन, हम लोग, रणाङ्गण में तुम्हारा पुरुषार्थ देखना चाहते हैं ।

दुर्योधनः—यदमिहचित्तं भवते ।

द्रोणः—वत्स ! गान्धारराज ! अस्मिन् गोप्रहणे तव खड्ग प्रथमरथ ।

शकुनि—वाटम् । प्रथमः कल्पः ।

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति प्रथमोऽङ्कः ।

दुर्योधनः—यत् यथा, अमिलपितम्, भवते गुरवे ।

द्रोणः—वत्स नृत, गान्धारराज शकुनि, अस्मिन् एतस्मिन्, गोप्रहणे गोपन-
हरणे, तव भवत, खड्ग निश्चयेन, प्रथमरथः सर्वतोऽपि श्रीमत रथ एव गच्छतु ।

शकुनिः—वाटम् स्वीकृतम्, प्रथमः कल्पः मुख्यो विषय ममेवेति प्रथमम्
तावदिदम् कर्तव्यमिति । इति निष्क्रान्ताः सर्वे इति अङ्कसमाप्तम् सूचयति ।
तदुक्त साहित्यदर्पणेऽङ्कलक्षणनिरूपणे—

प्रत्यक्षनेत्रचरितौ रसभावममुज्ज्वलः ।

भवेदगूढशब्दार्थः क्षुद्रचूर्णकमयुतः ॥

विच्छिन्नावन्तरं

प्रत्यक्षचित्रचरितैर्युक्तोभावरणोद्भवैः ।

अन्तनिष्क्रान्तनिखिलः पात्रोऽङ्क इति कीर्तित, इति ॥

इति विमलाब्धाख्याया प्रथमोऽङ्कः ।

दुर्योधन—आप का जो आदेश ।

द्रोण—वत्स गान्धार नरेश, गोप्रहण मे तुम्हारा रथ पहला होगा ।

शकुनि—अच्छी बात है, ठीक है ।

(सभी जाते हैं)

प्रथम अङ्क समाप्त

अथ द्वितीयोऽङ्कः.

(तत प्रविशति वृद्धगोपालक)

वृद्धगोपालक — गावो मेऽहीनवत्सा भवन्तु । अविधवाश्च गोपयुवतयो
 (गावो मे अहीणवच्छा होन्तु । अविहवा अ गोवजुवदीधो)
 भवन्तु । अस्माक राजा विराट एकच्छत्रपृथिवीपतिर्भवतु । महा
 (होन्तु । गो लाभा विलाडो एकच्छत्रपुद्गुचीपदो होतु । मत्)
 राजस्य विराटस्य वर्षवर्धनगोप्रदाननिमित्तमस्या नगरोपवाचीष्या
 (लाअप्य विलाडप्य वप्यवड्ढणगोप्यदाणमिस्त इमप्य णअलोववणवीहीए)
 मागन्तु गोधन सर्वे च कृतमङ्गलामोदा गोपदारका दारिकाश्च

अथ प्रथमाङ्कसूचिता विराटस्य गोधनग्रहणौ गदा वृत्वा युद्धोद्धतस्य दुर्गोव
 स्यातिविकला दशा विवर्णयिपन् तत्प्रवेशाय वृद्धगोपालकस्य प्रवेश तत्त्वदा-
 तत प्रविशति वृद्धगोपालक ।

वृद्धगोपाल — गाव धेनव, मे मम, अहीनवत्सा जीवद्वत्सा, भवन्तु मत्,
 अविधवा वैधव्यरहिता गोपयुवतय ग्वालवध्व, भवन्तु यातु, अस्माकम
 प्रजानाम्, राजा नृपति, विराट एकच्छत्रपृथिवीपति सकलाया भुवो भर्ता
 भवतु अस्तु महाराजस्य विराटनृपते, वर्षवर्धो गोप्रदाननिमित्तम वपारम्भ
 गोदानाय अर्थात् स्वजन्मदिनमभिलक्ष्य प्रतिवर्षे स्वमङ्गलायापुप च लोक
 गोदानादिकम् कर्तुम् चेष्टते, अत एव विराटोऽपि स्वजन्मदिनमभिलक्ष्य तस्मिन्दिने
 गोदानादिकम् कर्तुम् यतते । अस्या पुरोर्वान्याम्, नगरोपवाचीष्याम्, नगरोद्या
 नस्यैकदेशे, आग तुम् एतम् गोधनम् गोरूपसम्पदम्, सर्वे सकला, च पुन, कृत

वृद्ध गोपाल — मेरी गायें सदा मवत्सा रह । यादव तरुणियाँ सदा मधवा
 रहै । धरती की सार्वभौम सत्ता हमारे महाराज विराट के हाथों मे हो । आज
 महाराज विराट का जन्म दिन है । इन शुभावसर पर दान करने के निमित्त
 नगर के उपवन की राह पर गायें सजाई गई है । गोवदाठ और बाठार
 सजबजकर इस मङ्गलोत्सव म भाग लेने के लिए तत्पर है । इनमे सबसे बटा

(आजन्तु गोपसं पदे अ विद्वन्कृतानोऽ गोवदालया दाम्निजा अ)
 तावत् । एषु ज्यैष्ठ्यं गवान्मविष्मामि । (विलोक्य) किं नृ नन्देन वापसः
 (दाव । एषु ज्यैष्ठ्यं गान्तिन अत्रमविष्मन । (विलोक्य) किं नृ एषा वाजसा)
 शुनवृषभनादह सुनगाडानियष्टेऽनानिपानिडुः विन्वर
 (घुमन्तु खं वापुत्तिन पुम्ननासां नैत्तिननुष्ट जादिवाहिदु- विन्वर)
 विलानि । शक्तिनन्दे इत्तिनंरुडु जन्माव गानन्म्य व । माद-
 (विलानि । पन्ती होडु पन्ती होडु चर्या गोवन्म ज । वाव)
 देषु ज्यैष्ठ्यं गवा गोपनाकाया दाम्निजा व्यातगनि । (परिदन्म)
 (एषु ज्यैष्ठ्यं गच्छत गोवदाल्याया दाम्निजा वात्तनि) । (परिदन्म)
 अरे गोमिन्न ! गानिदन् !
 (जने गोमिन्न ! गोमिन्न !)

मङ्गलानां विद्वता जन्मात्तर्षा, गान्तात्ता गावल्या, दाम्निजा गान-
 बाल्ये, तानदिपवनात्ते, एषु ज्यैष्ठ्यं नन्दे, ज्यैष्ठ्यं वपसः ज्यैष्ठ्येन प्राक-
 मत्तान् गत्वा, कृतनावस्याम अनुमन्तु कृमिष्मति, (विलोक्य इह) कि-
 नु खडु इति जन्मावनामान्, एष पुरावर्ता वापसः काङ्, सुवदन्
 गौपसन् गान्हाजात्तन् इ वा, सुनगाडानियष्टेऽनानिपानिडुः कर्तव्यावावा
 निवृत्तन् धर्षसादि । गान्तिपानिडुः, इत्तिनंरुडु इ वा, विस्वरन्
 विस्वरन्, विष्मनि गान् रुरोति । इत्तिनंरुडु प्रजन्तन् ननु, जा प्रमंरु
 विष्मत्तजन यातु । जन्मावन् गोपनामान्, गान्हाव गान्हावन्, च पुन ।
 यावदिपवनात्ते, एषु ज्यैष्ठ्यं नन्दे ज्यैष्ठ्यं ज्यैष्ठ्यं गवा ज्यैष्ठ्यं वपसि-
 कर्तव्यं जन्मावनात्त, गान्हावनात्त गान्हावनात्त, दाम्निजात्त वाहि
 वानान्, व्याहरामि गान्हावन् कृतामि (पान्हाव्य जन्मान् कृत्वा) अरे गानि-

हान का सम्मान मैं प्राप्त करूँगा । (दाम्नि) यह कसयुक्त कैला १-मह काज
 कौगा सुडे पड को सुगी आठ पर बैठकर जन्ती चोंद पिय रहा है । इतना ही
 नहीं मूरत की जोर मुँह करते जन्ती जन्ती जावात ने काँव-काँव कर दात्रामरा
 को बोधित बना रहा है । ईश्वर हम उदा की रसा पर हमारी गायों की रसा
 करें । अब मैं इनके बीच एक बूँद के रूप में गोप बालक और बालिकाओं को
 बुलाऊँगा । (घुमकटे) अरे गोमिन्न, अरे वो गोमिन्न ।

(नेपथ्ये)

किं धार्तराष्ट्ररिति ?

भटः—आर्य ! अथ किम् ।

(प्रविश्य)

- काञ्चुकीयः—मदशमेतद् भ्रातृजनेष्वपि द्रोहिणाम् । एते हि,

कुलिताम् कृतेन विहितेनात्तनादेन भीतस्वरेणाकुलितम् पीडितम्, व. १, पेशना
कुलम् समूहः, समन्तत सर्वतः, शोच्यम् चिन्तनीयम् जायते ॥ १ ॥चौरकृतेनोपद्रवेण संव्रस्ता वत्सा. पलायन्ते, धेनुधमूहाः, पीडामनुभवन्ति,
दस्यूनाम् दर्शनमात्रेण गोवृषाः व्रस्तानना जायन्ते, धेनुनामात्तनादः सर्वत्र
विजृम्भते, सम्पूर्णंगोकुल चिन्त्यदशाम् प्राप्तम् ॥ वंशस्थं वृत्तम् ॥ १ ॥नेपथ्ये रङ्गस्थलातिरिक्तम् यवनिकान्तरितम् नटाना वेपरचनादित्यत्र
नेपथ्यं तु प्रसाधने । रङ्गसूमी वेपथ्ये, इति । कुशीलबकुडुम्बस्य स्थलं नेपथ्य-
मुच्यते इति च । वेशरचनागृहे ।

किम् कथम्, धार्तराष्ट्रैः धृतराष्ट्रपुत्रैः दुर्योधनादिभिः कुतमुपद्रवमिति ।

नटः—आर्य देव, अथ किम् अस्त्वेवमिति भावः (प्रविश्य प्रवेशम् कृत्वा)

काञ्चुकीयः—एतत् इदम्, सदशम् युक्तम्, भ्रातृजनेषु पाण्डवेषु द्रोहिणाम्
द्रोहम् कुर्वताम् ये धृतराष्ट्रसुताः स्वपितृव्या. पुत्रेषु द्रोहं कुर्वन्ति ते भिन्नविराटस्य
गोधर्न हरेयुरिति युक्ततरमिति । एते हि—के मुँह मूत रहे हैं, चारो ओर हाहाकार मचा है, गोवश की दशा जति
चिन्तनीय हो रही है ॥ १ ॥

(नेपथ्य मे)

क्या कहा ? कौरवों ने उपद्रव मचा रखा है ?

भट, हाँ आर्य, और क्या ?

(मंच पर उपस्थित होकर)

काञ्चुकीय—अपने भाईयो के प्रति जलन एव इर्ष्या रखने वाले; कौरवों
के लिए यह उचित ही है । ये कौरव—

मज्जैश्रापैर्वद्गोघाडगुलित्रा वमंञ्छन्ता कल्पितस्यन्दनस्या ।

वीर्योन्मिक्त्वा युद्धसज्जा कृतान्त्रा राज्ञो वैरं गोषु नियतियन्ति ॥ २ ॥

जयसेन ! ज-मनप्रक्रियाव्यापृतस्य महाराजस्य तावदकालनिवेदा म-यु-
मुत्पादयति । तस्मात् पुण्याहावसाने निवेदयिष्ये ।

भट —आर्यं अतिपाति कायमिदं, शीघ्रं निवद्यताम् ।

वराटया—जज्ञे युद्धाय तत्परे घातौ धनुमि, बद्धेवृत्ते, गोघा ज्याघात-
धारणम् अगुलित्रम् अगुलित्राणम् च यैस्ते तयोक्ता घृतगोघाडगुलित्रा वमंञ्छन्ता
घृतकवचा कवचेनावृतशरीरा कल्पितस्यन्दनस्या सुमज्जितरये उपस्थिता,
वीर्योन्मिक्त्वा, पराक्रमगर्बोद्धता, युद्धमञ्जा सभ्रामार्थं मयुत्सुका अत एव च
कृतान्त्रा गृहीतप्रहरणा एत अकृतान्त्रा राज्ञो विराटस्य वैरम् शत्रुत्वम्, गोषु
घेनुषु नियतयन्ति, प्रतिशाधयतीति भावः शालिनी वृत्तम् ॥ २ ॥

ज-मनप्रक्रियाव्यापृतस्य ज-मदिनवृत्त्ये लग्नस्य, महाराजस्य नृपते,
तावद्, अकालनिवेदनम् असमये सूचनाप्राप्तम् । म-युमुत्पादयति अन्वसरे प्राप्त-
सूचना कोष जनयति । तस्मात् कारणात्, पुण्याहावसाने धार्मिके कृत्यसमाप्तौ
निवेदयिष्ये कथयिष्ये ।

भट —आर्यं देव, अतिपाति शीघ्रं कथनीयम्, इदम् एतत्, कायम् कम,
शीघ्रम् अनरितम्, निवद्यताम् कथ्यताम् ।

सो मज्जाय रथो पर सवार हैं । शरीर पर कत्रच लगाये है, अगुलित्रो म
अगुलित्राण लगाय धनुष ताने हैं । अत्र-अत्र स सुमज्जित ये गर्वाणि कौरव युद्ध
क लिए उद्यत हैं । महाराज के साथ दुश्मनी का बढना गायो से चुका
रह ६ ॥ २ ॥

जयसेन ! महाराज तो इस समय ज-मदिन मनाने म लगे है । असमय
सूचना स ता कुपित होंगे । अत इस धार्मिक कृत्य की समाप्ति पर ही उह
सूचित किया जायेगा ।

भट—आर्य, यह काम ता जल्दी का है । उन्हें शीघ्र स्थिति स अवगत
कराया जाय ।

काञ्चुकीयः—इदं निवेद्यते ।

(ततः प्रविशति राजा)

राजा—

मा तावद् व्यथितविकीर्णबालवत्सा गावो भे स्थरवशङ्कया ह्लियन्ते ।
पीनासञ्चलवलयः सचन्दनार्द्रो निर्लज्जो मम च कर काराणि भुङ्क्ते ॥३॥
जयसेन ! जयसेन !

(प्रविश्य)

भट—जयतु जयतु महाराज ।

काञ्चुकीयः—इदम् एव, निवेद्यते कथ्यते । (तत तदनन्तरम्, प्रविशति
प्रवेशं करोति राजा नृप. ।

व्याख्या—स्थरवशङ्कया स्थन्दनशब्दसन्देहेन, व्यथितविकीर्णबालवत्सा,
व्यथिता दुःखिता अत एव च विकीर्णा यत्र तत्र प्रचलिता, बालवत्सा न
जातवत्सा यासा तास्तथोक्ता मे मम, गावः, धेनुवः, ह्लियन्ते बलाश्रीयन्ते.
मातावदिति कुत्सायाम्, पीवाम्, स्थूलस्कन्ध, चलवलय चपलकट, सचन्दनार्द्र
चन्दनेन लिप्त, मे मम कर हस्त, च पुनः काराणि भोज्यद्रवाणि, निर्लज्ज
लज्जारहित. सन् भुङ्क्ते भोजनग्रहणम् करोति प्रहृषिणी वृत्तम् ॥ ३ ॥

जयतु विजयतामिति, जयतु इति द्विरुक्ताभ्याम् शब्दाभ्या आदरातिथौ
द्योतते । महाराज नृप. ।

काञ्चुकीय—अभी सूचित कर्ता हूँ ।

(राजा वा प्रवेश)

राजा—मुझे धिक्कार है, बछड़े डर कर इवर-उधर भाग रहे हैं । गर्भ
छुट रही हैं और मेरा यह मोटा कधा चन्दन चर्चित हो रहा है और मेरे
निर्लज्ज हाथ भोजन चख रहे हैं ॥ ३ ॥

ओ जयसेन, जयसेन—

(प्रवेशकर)

भट—महाराज की विजय हो, जय हो श्रीमान् की ।

राजा—अर्धं महाराजशब्देन । अवधूतं मे क्षत्रियत्वम् । उच्यता रणविस्तरः ।

भट्ट.—महाराज ! न विस्तरार्हाणि त्रिप्रियाणि । एष समानः,
एकवर्णेषु गान्धेपु गवा स्यन्दनरेणुना ।
कशाघातेषु दृश्यन्ते नानावर्णविभक्तयः ॥ ४ ॥

राजा—तेन हि,

धनुरुपनय शीघ्रं कल्प्यता स्यन्दनो मे

राजा—अर्धम् व्यर्थम्, महाराजशब्देन, मर्दर्थे महाराजशब्दस्य प्रयोग इति । अवधूतम् विनष्टम्, मे मम विराटस्य, क्षत्रियत्वम् क्षान्धमम्, अपगतम् मम क्षत्रियत्वम् यन्मयि जीविते मम धेनुवः घाताराष्ट्रं रपह्नियन्ते । उच्यताम् अभिधोयताम्, रणविस्तर विस्तरेण युद्धविवरणम् ।

भट्ट—महाराज हे नृप, न नहि, विस्तरार्हाणि विशेषरूपेण निवेदयितुं शक्यम्, त्रिप्रियाणि विगतानि प्रियकथनानि, एष एतत् समाप्त. सक्षिप्तरूपेण श्रूयताम्—

व्याख्या—स्यन्दनरेणुना रथधूलिभिः, गवाम् धेनुनाम्, गान्धेपु धारीरेषु, एकवर्णेषु ममानरूपेषु गतेषु, कशाघातेषु चोरकृतकशाताडनेषु क्रियमाणेषु, नानावर्णविभक्तयः अनेकरूपप्रविभागाः, दृश्यन्ते स्फुटीभवन्तीति । तद्गुणालङ्कारः ॥ ४ ॥

राजा—तेन कारयेत्, हि—

व्याख्या—मे मम, धनुं चापम्, शीघ्रम् त्वरितम्, उपनय आहर, स्यन्दन. रथः, कल्प्यताम् सजीक्रियताम्, यस्य पुरपविशोपस्य गवि भक्तिः प्रीतिरस्ति

राजा—मेरे लिए महाराज शब्द का प्रयोग बंकार है भट्ट, मेरा क्षत्रियत्व सण्डित हो चुका है, युद्धक्षेत्र का समाचार विस्तार से कहो ।

भट्ट—महाराज, अप्रियप्रसंग का भविस्तार वर्णन उचित नहीं प्रतीत होता । अतः धीमान् संक्षेप में ही सुनें—

रथ के चक्के के घर्षण से उठी हुई धूलियों के पड़ने से सभी गावों का रथ एक जैसा हो गया फिर, उन पर जो कोड़े धरमाये गये उनसे उनकी देहों पर अनेक आकृतियाँ बन गई हैं ॥ ४ ॥

राजा—तब तो शीघ्र ही मेरा धनुष लाओ, रथ तैयार करो, जिनके

मम गतिमनुयातुच्छन्दतो यस्य भक्ति ।
रणशिरसि गवार्ये नास्ति मोघ प्रयत्नो

निघनमपि यश स्यान्मोक्षयित्वा तु घर्म ॥ ५ ॥

भट — यदाज्ञापयति महाराज । (निष्क्रान्त)

राजा—भो । किन्तु खलु दुर्घोषनस्य मामन्तरेण वैरम् । यज्ञमनुभवितुमनागत इति । कथमनुभवामि । कीचकानां निघनमुत्तीतसन्तापा नवृत्ता । अथवा पराक्षमपि पाण्डवानां स जन छन्दत स्वच्छया, मम विराटस्य, गतिन् युद्धाय गमनम् अनुकरणम् करानु, गवार्ये गाहृते, रणशिरसि समराङ्गणे, प्रयत्न मोघ व्यर्थ नास्ति न भवति निघन रणे मरणम्, अपि यशस्य मोक्षयित्वा यदि दस्युहन्तात् गा माक्षयित्वा तु घर्म स्यात् मालिनी वृत्तम् ।

भट — यत् यथा, आज्ञापयति आदिशति महाराज नृपविराटस्य । (निष्क्रान्त वहिर्गत)

राजा—भो इति नबुद्धो, किमिति प्रश्ने, नु गद्व खलु शब्दस्य वि- यद्वा खल्विति दाक्यालङ्कारे दुर्घोषनस्य धार्तराष्ट्रस्य, मामन्तरेण माहु वैरम् शत्रुताम्, आ इति स्मृणम्, यज्ञम् मखम् अनुभवितुम् द्रष्टुम्, ना न समायात इति । कथन् केन प्रकारेण अनुभवामि अनुभवितम् समयो न् । कीचकानाम् मम श्यालकानाम्, विनाशेन मरणेन वयम् विराटादय उन्ना सन्तापा समानीनपरितापा, नवृत्ता सजाता । अथवा किम्वा, परोपनि प्रच्छन्नभावनापि, पाण्डवानाम् युधिष्ठिरादीनाम्, स्तिथ इति प्रोताही

हृदय मे गायो क प्रति भक्ति है व अपनी इच्छा स मेर साथ चल, मारो क लिए युद्ध क्षेत्र म किया गया प्रयास व्यर्थ नही होगा, यदि लड़ाई नानार रने दो यत मिलेगा यदि गायो को छुडा लिये ता वम होगा ॥ ५ ॥ ७

भट—महाराज की जैसी आज्ञा ।

(जाता है)

राजा—भट दुर्घोषन की दुश्मनी मेरे साथ कथी होगी ? हा, जब समय, उसके यज्ञ म हमने भाग नही लिया, लता भी दत्त ? काचको के वध स हा हम स्वय दुर्खी थे । अथवा पाण्डवो क प्रति मेरा स्नह नी अपरोक्ष कारण हा

इति । सर्वथा योद्धव्यम् । हस्तिनापुरनिवारणच्छीलजो भगवान् दुर्योधनस्य ।
अथवा,

काम दुर्योधनस्यैव न दोषमभिघातयति ।
अथित्यसदपन्थिश्चान्तः पृच्छत्येव हि कार्यंवाद् ॥ ६ ॥

कोऽयं ?

(प्रविश्य)

भट.— जयतु महाराज ।

अस्मीत्यभिघातं द्युताम् गतं । सर्वथा आक्रमणकारणम् यद्भवतु तद्भवतु
प्रतिकारबुद्धपातेन सत् अवश्यम् योद्धव्यम् । युद्धं कर्त्तव्यम्, हस्तिनापुरनिवा-
सात् पूर्वं हस्तिनापुरे हृतनिवासत्वात्, शीलज स्वभावेन परिचितः, भगवान्
मुधिष्ठिरं अत्र सर्वथा भगवान् शब्देन मुधिष्ठिर एव बोधयति । विराटरुदनेऽ-
नेनैव नाम्ना सा प्रसिद्ध इति दुर्योधनस्य धार्तराष्ट्रस्येति । अथवा—

व्याख्या—एष भगवान्, कामम् निश्चयेन, दुर्योधनस्य धार्तराष्ट्रस्य दोषम्
तस्य पराजयस्य तापनशून्यम् किमपि छिद्रम्, न गच्छति, अभिघातयति यद्यति, हि
मतः, कार्यवान् प्रयोजनापेक्षी जनः, अथित्यात् कार्ययत्नित्यात्, अपरिथान्तः
अगिन्नः सन्, पृच्छत्येव प्रश्नम् करोत्येव, यंपरिथान्तित्यात् कार्यार्थी जनः
पृच्छत्येवेति भावः ॥ ६ ॥

कोऽयं अस्मिन् स्थाने कः अस्तीति विराटस्य जिज्ञासा ।

भट — जयतु महाराज सर्वतोभावेन विजयताम् श्रीमान् विराटेन्द्र इति ।

मक्ता है । जो हो, युद्ध तो करना ही होगा । हस्तिनापुर में रहने के कारण
भगवान् तो दुर्योधन के स्वभाव से परिचित होंगे ही, अथवा-भले ही भगवान्
दुर्योधन का दोष कहना न चाहे पर, मैं तो उनसे पूछूँगा ही क्योंकि कार्यार्थी
प्रायःता करने में तो धरेगा नहीं, पूछेगा ही ॥ ६ ॥

कौन यहाँ है ?

(भीतर आवर)

भट—महाराज की विजय हो ।

उद्योगः प्रस्तुतः कस्माच्छीनं सन्तोषमिच्छति ।
पीडयिष्यति सोत्सेकान् पीडितान् मोक्षयिष्यति ॥ ८ ।

राजा—भगवन् ! गोग्रहणादवमानितोऽस्मि ।

भगवान् - केन ?

राजा—घातंराष्ट्रैः ।

भगवान्—घातंराष्ट्रैरिति । (आत्मगतम्) भो ! कष्टम्,

व्याख्या—कस्मात् केन हेतुना, उद्योग. पुढाय कृतपरिधम, प्रस्तुत सञ्जीकृत, किमितिप्रश्ने—श्री सम्पत्तिः, सन्तोषम् तृप्तिम्, न नहि, इच्छति वाञ्छति, प्राप्तादधिकम् घनमोहमान. परानाक्रमितुमभिलषतीति भाव । रणोद्योगे द्वयीविधा ववचित् गर्वोद्धतपुरुषस्य गर्वहरणमुद्देश्यम् ववचित् पीडितान् पीडाहरणमुद्देश्यम्भवतीति भाव । उभययुद्धे भवान् किमुद्देश्यम् पृच्छति—सोत्सेकान् गर्वोद्धतपुरुषान्, पीडयिष्यति गर्वम् हरिष्यति अथवा पीडितान् दुःखितान् मोक्षयिष्यति आपदस्त्राण कारयिष्यति भवान् इति भाव ॥ ८ ॥

राजा—भगवन् इति सम्बुद्धी, गोग्रहणात् गोधनापहरणात्, अवमानितोऽस्मि अपमानितोऽहम् ।

भगवान्—केन केन पुरुषविशेषेणापमानितोऽसि भवान् इत्याशय ।

राजा—घातंराष्ट्रैः घृतराष्ट्रमुतं अपमानितोऽस्मि (आत्मगतम् स्वगतम्) भो इति सम्बोधने कष्टम्—खेदम् ।

यह युद्ध की तैयारी कंसी है ? क्या इतना बडा साम्राज्य पाकर भी आपको सम्पत्ति से संतोष नहीं है ? अथवा किसी गर्वलि का गर्व भङ्ग कीजियेगा त किसी पीडित को पीडा ने त्राण दिलाइयेगा ॥ ८ ॥

राजा—भगवन्, मेरी गायो का अपहरणकर मुझे अपमानित किया है ।

भगवान्—किसने ?

राजा—कौरवोंने ।

भगवान्—घृतराष्ट्र के वेदो ने ? (अपने आप) हाँ गजब हो गया ।

एकोदकत्वं सञ्जु नाम रोमे मनस्विना कम्पयते मनामि ।

वैरप्रियन्तीहि कृतेऽपराधे यत्नत्वमस्माभिरिवापराद्धम् ॥ ६ ॥

राजा—भगवन् ! किमिदानीं निचारत ।

भगवान्—न सञ्जु किञ्चित् । तेनाद्भुत्वम् ।

व्याख्या—लोकं अस्मिन् मनारो, एकोदकत्वं एकस्मिन्नेव कुले जन्म-
प्रहातवन्, सञ्जु नाम जन सञ्जुशब्द नामरुद्धञ्च निम्नपार्यम्, मनस्विनाम्
बुद्धिमत्ताम्, नन्मि चेतासि, कम्पयते भेदयति, हि मत, तं धृतराष्ट्रम्,
वैरप्रियं कहरति, कृते प्रहिते अपराधे धेनूनामपहरणरूपेऽप्ये अनुष्ठित,
यन् यथा, यत्नम् यथायत्नं, अस्मानि पापदब्बादिभि इव यथा, अपराद्धम्
स्वराजराश्रयिभ्य भावयाम । बुध्दिश्च चिन्ता—अनाजतिविनाशिता
पुरगार्जलनिता बन्धित्वा, समम्बपारिणी च सगोत्रीयमनीषामवति, दुर्षोप-
नादिनिर्जस्तु वैररनिक्केषा यत् कापल्लोपमपराधं कृतः तेन स्वबुल्लोत्पन्नत्वन
मम मानसगतित्त् विविधपरिस्थितिवर्दीषादशक्ति मासुद्धेल्यति, यता हि स्वद्वन्द्वम्
इवापरान्न भावयाम, नन्मिन्नेव केवलम् सुमानोदकपमेव, सगोत्रजनैः सत्यनि
निरोमे मन्वन्ना न निवर्तते नन हि समानोदकत्वसम्बन्धो मनस्विना दुत्तदायक
इति भावः । उपजाति दृष्टम् ॥ ९ ॥

राजा—भगवन् ह बुध्दिश्च, तिन क विषयमवलम्ब्य, इदानीम् अञ्जुना,
विचारयन्, विचारम् करोमि ।

भगवान्—न नहि, सञ्जु निश्चयेन, किञ्चित् किमपि, तेना दुर्षोपनादीनाम्
दृष्टं उच्यते चिन्तितः ।

स्ववराज विचार विवेकी हृदय को कौपा देता है यद्यपि विरोधप्रेमी
कौरवों ने अपराध किया है फिर भी स्ववशीय होने के कारण मुझे लगता है
जैसे कर्नर हमने ही किया है ॥ ९ ॥

राजा—भगवन् आप नन्म कया श्लेष रहे हैं ?

भगवान्—बुद्ध नहीं, मैं उन कौरवों के लिये ही तो दुःखी हूँ ।

राजा—(उत्थाय कृताञ्जलि) कथं तत्रभवान् गाङ्गेयोऽपि प्राधः ।

भगवान्—(आत्मगतम्) साधु धर्मितेनापि नातिक्रान्तः समुदाचारः । भो ।

किमर्थं खलु सम्प्राप्तः कुरुणां गुरुतमः ।

शङ्के तीर्णा प्रतिज्ञेति स्मारणं क्रियते मम ॥ १२ ॥

राजा—कोऽन ।

सर्वेषाम् महापुरुषाणाम् रथोत्कम्पचलत्पताके. स्पन्दनसंचारणे कम्पमानध्वन-
दण्डरेव वयम् विराटपरिजनाः पराजिता. न तु वाणैः शरैरिति इन्द्रवज्रावृत्तम् ।

राजा—(उत्थाय कृताञ्जलिरिति भीष्मं प्रत्यादरप्रकाशाय श्रद्धाञ्जलि-
भूत्वा) कथम् इत्याश्चर्ये, तत्रभवान् गंगापुनत्वेन मानवीयः गाङ्गेयोऽपि
पितामहभीष्मोऽपि, प्राध. अस्मिन् युद्धे समागतः ।

भगवान्—(आत्मगतम् स्वगतम्) माधु सुष्ठु, धर्मितेनापि अपमानित
सधर्मि, अतिक्रान्तः नोत्कङ्क्षितः, समुदाचारः. सम्यक् आचरणम्, भो. इति
सम्बुद्धौ ।

व्याख्या—कुरुणाम् कुरुवंशोद्भवानाम्, उत्तम. धेष्ट, गुरुः पितामहभीष्म.
किमर्थम् केन हेतुना, सम्प्राप्तः अस्मिन् युद्धे समागताः, शङ्के तर्क्याभिः, प्रतिज्ञा
अज्ञातवास रूप प्रतिज्ञा तीर्णा समुत्तीर्णा अर्थात् सुष्ठुरूपेण समापिता, इति
उक्तम्, मम पाण्डवानाम्, स्मारणम् स्मरणस्य भावः स्मारणम् क्रियते बोध्यते
युष्माभिः सम्यक् प्रकारेणाज्ञातवासः. निगूढा. इति अस्माकम् स्मारयितुमेव
पितामहोऽन समागतो भवेदिति मदीया शङ्कति ॥ १२ ॥

राजा—कोऽन अस्मिन् स्थाने क. परिजन वत्तंत इति भावः ।

चालन से कम्पित ध्वजदण्डो को देखकर ही हम पराजित हो गये हैं ॥ १२ ॥

राजा—(उठकर और हाथ जोड़कर) क्या कहा समादरणीय पितामह
भीष्म भी आये हैं ? भगवान् (अपने आप) ठीक है, अपमानित होकर भी
महाराज विराट ने अपने औचित्य का परित्याग नहीं किया है ।

मला कौरवों के पितामह भीष्म यहाँ क्यों आये हैं ? लगता है अज्ञातवास
की मेरी अवधि समाप्त हो गई है, इसी की याद दिग्गने वे आये हैं ॥ १२ ॥

राजा— कोई यहाँ है ?

(प्रविश्य)

भट—जयतु महाराज ।

राजा—मूतस्तावदाहूयताम् ।

भट.—यदाज्ञापयति महाराज ।

(निष्क्रान्त)

(प्रविश्य)

मूत —जयत्वायुष्मान् ।

राजा—

रथमानय शीघ्र मे इत्याद्य प्राप्ते रणातिथि ।

तोपयिष्ये शरैर्भीष्मं जेष्यामीत्यमनोरथ ॥ १३ ॥

(प्रविश्य मचे उपस्थितो भूत्वा)

भटः—जयतु महाराज जयत्वित्यादि आचारः स्वोपस्थितिम् सूचयति ।

राजा—मूत स्यन्दनमचालक, तावदित्यवधारणे, आहूयताम् आकार्यताम् ।

भट.—यदाज्ञापयति यथादिशति महाराज विराटेश्वर इति । (निष्क्रान्तः प्रस्थातुमारुह्य)

(प्रविश्य ततः सूतस्य प्रवेशमाह)

सूतः—जयत्वायुष्मान् सर्वोत्कर्षेण विजयताम् श्रीमान् ।

व्याख्या—शीघ्रम् त्वरितम्, मे मम विराटस्य, रथम् स्यन्दनम् आनय नीयताम् अचरन्त्याद्य परमपूज्यः, रणातिथिः समराङ्गणेऽतिथि प्राप्त समायातः शरैर्वाणैर्भीष्मम् तमतिथिम् तोपयिष्ये युद्धेन प्रसादयिष्यामि, रथेभीष्मम्

(प्रवेश करके)

भट—जय हो महाराज की ।

राजा —मारथी को बुलाओ ।

भट—महाराज की जैनी आज्ञा (जाता है)

(प्रदेश करके)

सारथी—जय हो महाराज की ।

मेरा रथ जल्दी लाओ, भीष्म पितामह रण के मुख्य अतिथि हैं, उन्हें जीत

अनुज्ञातोऽसि किं तेन न राज्ञा सारथिर्भवान् ॥ १६ ॥

मृतः—प्रसीदत्वायुष्मान् । रथं सङ्कल्पयित्वा तु मृतसमुदाचारेणोपस्थित
खल्वहम् । कुमारेण,

किन्तु तत् परिहासार्थं किन्तु तत्रास्ति कौशलम् ।

मामतिक्रम्य सारथ्ये विनियुक्ता - बृहन्नला ॥ १७ ॥

राजा कथं बृहन्नलेति ।

भगवान्—राजन् ! अलमलं सम्भ्रमेण ।

रथम् स्यन्दनम्, किम् कुत, न नहि, वाहितवान्, नवान् त्वम्, राज्ञाम् नृपती
नाम्, सारथिः रथवाहकः, अस्ति, भवसि तेन राजकुमारेण, किम् कथम् त्वाम्
न नहि अनुज्ञातः आज्ञापितः युद्धे गन्तुम् ॥ १६ ॥

सूतः—प्रसीदतु प्रसन्नो भवतु, आयुष्मान् चिरञ्जीविन्, रथम् स्यन्दनम्,
सङ्कल्पयित्वा सञ्जीकृत्य तु, मृतसमुदाचारेण सारथिपदेनाहम् तत्र उपस्थितो
बभूव तु किन्तु, कुमारेणोत्तरेण —

व्याख्या—माम् सारथिम्, अतिक्रम्य परित्यज्य बृहन्नलानाम विराट्-
कन्याचास्तौर्यचिन्काचार्या, सारथ्ये रथवाहकपदे, विनियुक्ता अध्यारोपिता, तत्र
जाने तत् परिहासार्थम् बृहन्नलाया उपहासाय तत्पद प्रदत्तमथवा बृहन्नलाम्
सत्यमेव तत्र तस्मिन् किमपि कौशलम् चातुर्यमस्ति ॥ १७ ॥

राजा—कथं बृहन्नलेति वदतो विराटस्याश्चर्यं व्यक्तं भवति बृहन्नलायाः
स्त्रीत्वेन मृतकर्मणि अनुपयुक्तत्वात् ।

भगवान्—राजन् हे नृप, अलमलम् निरर्थकम्, ससम्भ्रमेणावेगेनेति ।

तो अनुभवो राजाओ के सारथी हो । फिर तुम्हें राजकुमार ने रथ-संचालन की
अनुमति क्यों नहीं दी ? ॥ १६ ॥

सारथी—जोमा करें श्रीमान् रथ सजाकर मैं सारथी के रूप में उनके
सामने उपस्थित हुआ किन्तु पता नहीं कुमार ने मेरे परिहास के लिए अथवा
बृहन्नला की किसी खास विशेषता के कारण मुझे छोड़कर उसे सारथी पद पर
नियुक्त किया ॥ १७ ॥

राजा—क्यों बृहन्नला को सारथी बनाया गया ?

भगवान्—महाराज, घबड़ाने की कोई बात नहीं है ।

यदि स्वचक्रोद्धतरणदुर्दिन रथ ममास्वाय गता बृहन्नला ।

परान् क्षणैर्नमिरर्चैर्निवारयन् विनापि वाणान् रथ एव जेष्यति ॥ १८ ॥

राजा—तेन हि शीघ्रमाप्नो रथ कल्प्यताम् ।

सूत — यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । (निष्क्रान्त) ।

(प्रविश्य)

भट — भग्न खलु कुमारस्य रथ ।

व्याख्या—यदि चेत्, स्वचक्रोद्धतरणदुर्दिनम् निजरथचक्रोत्थापितघूलि
वर्षाकरम्, रथम् स्वदनम् समास्वाय समुचितस्वोणारह्य, बृहन्नला नपुंसक
भावापनोऽज्ञातवासस्थोऽजुन, गता प्रस्थिता तदा तर्हि क्षण क्षणमात्रेणैव,
नमिरर्चै चक्रपरिविश्रं परान् अरीन्, निवारयन् निषेधयन्, रथ एव स्य दन
एव वाणान् शरपातान् विनापि जेष्यति विजयमाप्स्यति । वशस्थ वृत्तम् ॥१८॥

राजा—तेन वारणविशेषण, हि यत्, शीघ्रम् अथ अपर, रथ
स्वदन कल्प्यताम् सञ्जाक्रियताम् ।

सूत — यदाज्ञापयत्यायुष्मान् यथा भवतादिष्ट तथा करोमीत्यय (निष्क्रान्त
रङ्गशालात् निगत सूत)

(प्रविश्य रङ्गशालायास्तुपस्थितो भूत्वा)

भट — भग्न कुमारस्य उत्तरस्य, स्वदन खलु निश्चयेनति ।

यदि गन्धमुख बृहन्नला ही सारथी बन कर गई है तो निश्चय ही उसके
रथ के पहिये में उठी हुई घूलि आकाश में मघमाला की सरचना करेगी ।
इतना ही नहीं उसका रथ, चक्के की आवाज से ही दुश्मनों को जीतकर धण
भर में ही लौट आयेगा । कुमार को वाण चलाने की भी आवश्यकता
नहीं होगी ॥ १८ ॥

राजा—तो फिर शीघ्र ही दूसरा रथ तैयार करो न ।

सूत—आयुष्मान् की जैसी आना । (जाता है)

(मन्त्रपर आवर)

भट—कुमार का रथ पराजित हो गया ।

राजा—कथं भग्नो नाम ।

भगवान्—कथमिदानीं भग्नो नाम ।

भटः—श्रोतुमर्हति महाराज ।

बहुभिः समराभिज्ञैराच्छन्नाश्वपथः परैः ।

भग्नो गहनलोभेन श्मशानाभिमुखो रथः ॥ १६ ॥

भगवान्—(आत्मगतम्) आ अत्र खलु गाण्डीवम् । (प्रकाशम्) भो राजन्!

निमित्तं किञ्चिदुत्पन्नं श्मशानाभिमुखे रथे ।

राजा—कथमित्याश्चर्ये, भग्नः पराजितः नाम ।

भगवान्—कथम् कुमारस्य पराजयत्वमसंभाव्य भवतः जिज्ञानेति, इदानीं अधुना भग्नो नामेति प्रश्नः ।

भटः—श्रोतुम् आकर्णितुम् अर्हति शक्नोति महाराजः नृषविराट् ।

व्याख्या—बहुभिः अनेकैः, समराभिज्ञैः रणकुशलेः, परैः अरिभिः, आच्छन्नाश्वपथः आच्छन्नः आवृतः अश्वपथः रथगमनमार्गः, निरुद्धमार्गमबलैर्भक्तैः कुमारस्य रथः स्यन्दनः, गहनलोभेन आत्मसंरक्षणहेतुना, श्मशानाभिमुखं श्मशानमभिलक्ष्य तस्यामेव दिशाधाम् भग्नं प्रतिनिवृत्तो मातः ॥ १९ ॥

भगवान्—(आत्मगतम् स्वगतम्) आः स्मृतम्, अत्र अस्मिन् स्थाने, खलु निश्चयेन, गाण्डीवः गाण्डीवनामकं घनु, अस्ति, (प्रकाशम् सचंघाण्डम्) भो राजन् हे नृप—

व्याख्या—रथे स्यन्दने, श्मशानाभिमुखे श्मशानमभिलक्ष्य चलिते सति किञ्चित् किमपि, निमित्तम् द्युभकारणम्, उत्पन्नम् जातम्, तत्तु यत्र यस्मिन्

राजा—क्या कहा ? कुमार का रथ पराजित हो गया ?

भगवान्—वाह, इस समय कैसे पराजित हो गया ?

भट—सुनिश्चयमान्,

युद्ध कला में प्रवीण योद्धाओं ने महाराज रथ का मार्ग रोक लिया, फिर आत्मरक्षणार्थं सारथी ने रथ लेकर श्मशान की ओर प्रस्थान किया ॥ १९ ॥

भगवान्—(अपने आप) हाँ, अब बात समझ में आई । श्मशान में ही तो अजुन का गाण्डीव रक्खा है । (सुनाकर) महाराज, झुके तो लगता है

घातंराष्ट्राः स्थिता यत्र श्मशानं तद् भविष्यति ॥ २० ॥

राजा—भगवन् ! अबाले स्वस्थवाक्यं मन्युमुत्पादयति ।

भगवान्—अल मन्युना । कदाचिदनुत् नोक्तपूर्वम् ।

राजा—आ अस्त्येतत् । गच्छ भूयो ज्ञायता वृत्तान्त ।

भट्ट—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रान्तः)

राजा—को नु खल्वेव महसा कम्पयन्निव मेदिनीम् ।

स्थाने स्थिता, उपस्थिता, घातंराष्ट्राः घृतराष्ट्रसुता* तत् स्थानम् निश्चयेन श्मशानम् अन्तिमसंस्कारभूमिं भविष्यति यास्यति ॥ २० ॥

राजा—भगवन् हे युधिष्ठिर, अकाले असमये, स्वस्थवाक्यम् सुवचनम्, मन्युम् क्रोधम्, उत्पादयति उत्पन्न करोतीति ।

भगवान्—अलम् व्यर्थम्, मन्युना कोपेन, कदाचित् कदापि, अनृतम् जसत्यम्, न तद्दि, उक्तम् कथितम्, पूर्वम् अतीति ।

राजा—आः इत्यादर्थे, अस्ति भवति, एतत् तव कथनम् सत्यम्, गच्छ याहि, भूय पुनरपि, ज्ञायताम् बुध्यताम्, वृत्तान्त रणसमाचारः ।

भट्टः—यदाज्ञापयति यथादिशति, महाराज सम्राट् (निष्क्रान्तः रङ्ग-शालातः निर्गतः)

व्याख्या—को नु खलु एषः शब्दः सहसा हठात्, मेदिनीम् धरि-
त्रीम्, कम्पयन् चालयन् इव यथा आविद्धः चक्रीभूतः, नदीस्रोतः सरित्प्रवाह

किं जब रथ श्मशान की ओर गया है तो रणभूमि श्मशान ही बनकर रहेगी ॥ २० ॥

राजा—भगवन्, असमय में कहे गये शुभ सूचक स्वस्थवाक्य भी क्रोध उत्पन्न करता है ।

भगवान्—क्रोध की आवश्यकता नहीं है, इससे पहले तक मेरी कोई बात झूठ नहीं हुई है महाराज ।

राजा—हाँ यह तो है । फिर भी भट्ट, तुम जाकर वही का पता करो ।

भट्ट—जैसी आज्ञा (जाता है) ।

राजा—महसा धरती को कँपा देने वाली यह आवाज कहाँ से आ रही है ?

। । नदीतीर्त इवाविद्ध क्षणात् सवर्तते ध्वनि ॥ २१ ॥
ज्ञायता शब्द ।

(प्रविश्य)

भट — जयतु महाराज । इमशानान्मुहूर्तविधान्ततुरगेण कुमारेण तु,

भगवान्—एष मामनृतवादिन न कुर्यात् ।

राजा—किं कृतं कुमारेण ?

भट —

कृता नीला नागा शरशतनिपातेन कपिला

इव यथा, ध्वनि रव, क्षणात् निमिषात् सवर्तते प्रादुर्भवतीतिभाव ॥ २१ ॥

ज्ञायताम् परिचीयताम् शब्द इति ।

(प्रविश्य समरवृत्तान्तं ज्ञात्वा दुर्योधनस्य दुरवस्थां च विलोक्य भट प्रविश्यात्)

भट.—जयतु सर्वोत्कर्षेण विजयताम् महाराज ; विराटराज । इमशानान्
शब्दाहम्यानात् मुहूर्तम् क्षणम्, विधान्ततुरगेण स्वरथेभ्यो विधामावसरं प्रदात्,
कुमारेण तु ।

भगवान्—एष पुरोवर्ती सवाद्वाता, माम् युधिष्ठिरम्, अमृतवादिन्
मिथ्यावादिनम् न कुर्यात् साधयेदिति ।

राजा—किं कृतम् युद्धे, किं विधत्तम्, कुमारेणेति ?

व्याख्या—शरशतनिपातेन अगणितबाणवर्षणेन, नीला कृष्णवर्णा, नागा

लगता है नदी की धारा उलट गई हो ॥ २१ ॥

। देखो, यह आवाज कैसी है ?

(प्रवेश करके)

भट—महाराज की जय हो । इमशान में कुछ पल अपने धोहो की विधान
देकर कुमारने,

भगवान्—शायद यह मुझे मिथ्यावादी न सिद्ध कर दे ।

राजा—कुमार ने क्या किया ?

भट—सैकड़ों बाणों के प्रहार से उनके मदनस्त काले हाथियों को लाल

हयो वा योधो वा न वहति न कश्चिच्छरशतम् ।

शरैः स्तम्भीभूता शरपरिकरा स्यन्दनवराः

शरैश्छन्ना मार्गाः स्रवति धनुस्या शरनदीम् ॥ २२ ॥

भगवान्—(आत्मगतम्)

एतदक्षयतूणित्वं येन शक्रस्य खाण्डवे ।

यावत्स्य पतिता धारास्तावन्तः प्रेषिता शरा ॥ २३ ॥

राजा—अथ परेपिदानी को वृत्तान्त ।

गजा, कपिला रक्तवर्णा कृता निर्मिता, हय अथ वा घोडा शरवीरा, वा न कश्चित् न कोऽपि, शरशतम् शतसंख्यके वर्षे क्षतानि, न वहति न धारयस्वेवेति, शरपरिकरा बाणेनावृत्ता स्यन्दनवरा रथश्रेष्ठा शरैः कुमारविमृष्टवर्णा, स्तम्भीभूता स्थिरत्वम् याताः निश्चलीकृता इत्यर्थं, मार्गा रणभूमिपथा, शरैश्छन्ना वर्षा व्याघ्रा, धनु कुमारस्य चाप, उग्राम् अतिभीषणाम्, शरनदीम् वाणानाम् नरिनम् स्रवति प्रवाहयति । शिखरिणी वृत्तम् ॥ २२ ॥

भगवान्—(आत्मगतम् स्वगतम्)

व्याख्या—एतत् अविरलभारवर्षित्वम् धनुष, अक्षयतूणात्त्वम् शरक्षय-रहिततूणीरभावः, येन गाण्डीवन, खाण्डवे खाण्डवनामकारण्ये, यावत्स्यः यत्स्ययाज्ञा, शक्रस्य देवराजेन्द्रस्य, धारा जलवृष्टय पतिता स्रविताः तावत्कालपर्यन्तम् शरा वाणाः, प्रेषिता ॥ २३ ॥

राजा—अथ अनन्तरम्, परेषु अरिषु, इदानीम् सम्प्रति, क किम्, वृत्तान्त अर्थान् कीदृश समाचार इति जिज्ञासा ।

यना डाला है । ऐसा एक भी घोडा या घोडा नहीं बचा जिसे बाण से बिध न दिया गया हो । शरो के बीच घिर कर शरै रथ गतिहीन होकर खडे है । लगता है धनुष से शरलरी नदी की धारा प्रवाहित हो रही है ।

भगवान्—(अपने आप) यह प्रभाव तो उन जक्षय तूणारों का है जिन्होंने इन्द्र के प्रिय खाण्डव वन को जलाने के समय इन्द्र की जल धारा को तरह वाणा की ही वर्षा की थी ॥ २३ ॥

राजा—अब दुश्मनों की स्थिति क्या है ?

भटः—अप्रत्यक्ष हि तत्र मे । प्रवृत्तिपुरुषाः कथयन्ति—

धनुर्घोषं द्रोणस्तदिदमिति बुद्ध्वा प्रतिगतो
ध्वजे बाणं दृष्ट्वा कृतमिति न भीष्मः प्रहरति ।
गरैर्भग्न कर्णः किमिदमिति चान्ये नृपतयो
भयेऽप्येको वाल्यान्न भयमभिमन्युर्गणयति ॥ २४ ॥

भगवान्—कथमभिमन्यु प्राप्तः । भो राजन् !

भट —अप्रत्यक्षम् प्रत्यक्षरहितम्, हीति निश्चयेन, तत्र रणाङ्गणे, मे मम, प्रवृत्तिपुरुषाः वात्ताहराः दूताः कथयन्ति—

व्याख्या—धनुर्घोषम् चापटङ्कारम्, तत् इदम् इति तस्यामुक्तस्य चापस्यापटङ्कार इति बुद्ध्वा ज्ञात्वा, द्रोणः गुरुद्रोणः, प्रतिगतः युद्धात् परावृत्तः, ध्वजे स्वकेतो, बाणम् शरम्, प्रहृतम् दृष्ट्वा अवलोक्य, भीष्मः गागेयः, कृतमिति व्यर्थं मेव युद्धमिति बुद्ध्वा न प्रहरति बाणप्रक्षेपं न करोतीति, कर्णः राधेयः, गरैर्बाणप्रहारैः, भग्नः पराजितो जातः, अन्ये च ते बहवः नृपतयः किमिदमित्याश्चर्यान्विता अजायन्त । भयेऽपि भयङ्करस्थितावपि, वाल्यात् शिशुचपलतया, एकः केवलम्, अभिमन्युः अर्जुनसुतः, भयम् भीतिम्, न गणयति निर्भीकभावेन युद्ध्यते ॥ २४ ॥

भगवान्—कथमित्याश्चर्यै, अभिमन्युः सोमद्रेयः, प्राप्तः समागतः, भो राजन् हे नृप,—

भट—महाराज, इस सम्बन्ध मे मेरी प्रत्यक्ष तो कोई जानकारी नहीं है, पर संवाददाताओ का कहना है कि—

द्रोण ने धनुष का आवाज को पहचान कर ही युद्ध बन्द कर दिया है । अपने रथ के ध्वजो मे लगे बाणो को देखकर ही लडना बन्दकर दिया है । कर्ण बाणो से विध गया है, अन्य राजे लगातार प्रहारो से चकरा गये है । भय के कारण सामने देखकर भी केवल अभिमन्यु लड रहा है ॥ २४ ॥

भगवान्—क्या अभिमन्यु भी आया है ? हे राजन्,

युध्यते यदि सौमद्रस्तेजोनिर्बन्धयोर्द्वयो ।

सारथि प्रेष्यतामन्यो विवल्वात्र बृहनला ॥ २५ ॥

राजा—मा मा भवानेवम् ।

भीष्म रामशरैरभिभ्रजन्वच्च द्रोण च मन्त्रायुध

कृत्वा कर्णजयद्रथौ च विमुखौ शेषाञ्च तास्तात्र नृपान् ।

सौमद्र स्वशरैर्न धर्षयति वि भीत पितु प्रत्ययान्

समृष्टोऽपि वयस्यभावसहन तुल्य वयो रक्षति ॥ २६ ॥

व्याख्या—यदि चेत्, द्वयो बन्धो मालुपितृकुलयो, तजोऽग्नि प्रताण्वह्नि,

सौमद्र सुमद्रामुन अभिमन्यु, युद्धयत युद्धम् करोति तदाग्य अपर, सारथि-
मूत, प्रेष्यतान्, अत्र अस्मिन् महायुद्धे, बृहनला विवल्वा भयविह्वला स्यात् ॥ २५ ॥

राजा—मा मा नहि नहि, भवान् त्वम् एवम् इत्यम् वदतु—

व्याख्या—रामशरै परशुरामबाणै, अभिभ्रजन्वच्चम् अक्षतवर्माणम्,

भीष्मम् गागयम्, च पुन, ममायुधम् मम ग्रहरणम्, द्रोणम् द्रोणाचार्यम्,
कर्णजयद्रथौ अङ्गराजसिन्धुराजौ च विमुखौ कृत्वा युद्धे परामुप, तास्तात्र शेषान्
नृपान् राज्ञ, विमुखान् कृत्वा कुमार उत्तर कि स्वशरै बाणै, सौमद्रम् सुमद्रा-
युधम्, न धर्षयति पराजेतु न शक्यते किम् ? पितु प्रत्ययात् अर्जुनस्य स्याते, भीम
शङ्कित सन्, समृष्टोऽपि कृतमैत्रिकोऽपि, तुल्यम् समानम्, वय अवस्थाम् वयसो
भाव समानवयसोहितयोर्भैत्रीभाव रक्षतीति । शार्ङ्गलविक्रीडित वृत्तम् ॥ २६ ॥

यादव और पाण्डवों का सम्मिलित तेज अभिमन्यु यदि लड़ रहा है तो
आप कुमार के रथ पर किसी अन्य सारथी को भेजे क्योंकि वहाँ आपकी
बृहनला विवला है ॥ २५ ॥

राजा— नही-नही आप ऐसा मत कहें ।

जिनके कवच परशुराम के बाणों से भी नहीं बिधे एव भीष्म को, मन्त्रायुध
द्रोण को, कर्ण तथा जयद्रथ को एव अयाय वीरा को युद्ध में पराजित करने
वाला कुमार उत्तर क्या अभिमन्यु को अपन बाणा से पराजित नहीं कर
सकता ? नभ्रव है अर्जुन की रथाति के हवाल से अभिमन्यु से दोस्ती करले,
यह भी आयु एव वय के विचार से उचित ही होगा ॥ २६ ॥

भट—एष खलु कुमारस्य रथः,

आलम्बितो भ्रमति धावति तेन मुक्तो
 न प्राप्य धर्षयति नेच्छति विप्रकर्तुम् ।
 आसन्नभूमिचपलः परिवर्तमानो
 योग्योपदेशमिव तस्य रथः करोति ॥ २७ ॥

राजा—गच्छ । भूयो शायता वृत्तान्तः ।

भट—यदाज्ञापयति महाराजः (निष्क्रम्य प्रविश्य) जयतु महाराजः ।
 जयतु विराटेश्वरः । प्रियं निवेदये महाराजाय । अवजित् गोगहनम्, अपय

भटः—एषः एतत् खलु निदधयेन, कुमारस्य, रथः स्यन्दनः ।

व्याख्या—तेन सारथिना, आलम्बितः अवरोधितः सन्, भ्रमति मुक्तः
 मुक्तः त्यक्तप्रहः सन्, धावति पलायति, प्राप्य अवसरम् लब्ध्वापि, न धर्षयति
 आक्रमणं न करोति, विप्रकर्तुम् पराजितुम्, नेच्छति नाभिलषति, आसन्नभूमि
 चपलः प्रतिरथसमीपस्थो अस्थिरः, परिवर्तमानः समन्ततः चरन्, रथः कुमारस्य
 स्यन्दनः, तस्य कुमारस्य, योग्योपदेशम् रथाचालनदोषोचिताम्यासं करोति ॥

राजा—गच्छ याहि, भूयः अतिशयम्, वृत्तान्तं संवादः, शायताम् विद्धि ।

भटः—यदाज्ञापयति महाराजः यथा भवतादिष्टं तथा करोति, (निष्क्रम्य
 वहिर्गत्वा, प्रविश्य पुनरागत्य) जयतु महाराजः सर्वोत्कर्षणं विजयताम् वृषति
 महाराजायै राज्ञे, प्रियं सुखकरम् निवेदये निवेदनं करिष्ये, अवजितम् पर

भट—ओर, यह कुमार का रथ है, स्यन्दनः, रथः

सारथी जब उसे रोक लेता है तो वह चारों ओर घूमने लगता है । ओर
 जब छोड़े की लगाम छोड़ देता है तो वे तेजी से आगे की ओर दौड़ने लगता है,
 दुस्मनों के रथ के पास पहुँच कर भी उस पर आक्रमण करने की अपेक्षा
 उसके चारों ओर चकराटने लगता है, देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि
 अपने प्रतिद्वन्द्वी को रणाङ्गण में रथ-सञ्चालन का अभ्यास करा रहा हो ॥ २७ ॥

राजा—जाओ, और अधिक संवाद लाओ ।

भट—श्रीमान् की जैसी आज्ञा, (बाहर निकलकर पुनः प्रवेश करके)
 महाराज की जय हो, जय हो विराटेश्वर की । श्रीमान् को खुशरावरी सुनाता है,

घात'राष्ट्रा' ।

भगवान्—दिष्ट्या भवान् वर्धते ।

राजा—न न । भगवतो वृद्धिरेषा । अथ कुमार इदानीं क्व ?

भटः—दृष्टपरिस्पन्दानां योचपूरयाणां कर्माणि पुस्तकमारोपयति कुमारः ।

राजा—अहो श्लाघनीयव्यापारः खल्वयं कुमारः ।

ताडितस्य हि योचस्य श्लाघनीयेन कर्मणा ।

अकालान्तरिता पूजा नाशयत्येव वेदनाम् ॥ २८ ॥

जित गोश्रहणम् गवामपहरणम्, अपयाता पलायिता, घात'राष्ट्राः कौरवा ।

भगवान्—दिष्ट्या प्रसन्नतानूचकमव्ययम्, भवान् त्वम्, वर्धते अम्बु-
दय याति ।

राजा—न न नहि नहि, भगवतः श्रौमत्, वृद्धिं सद्युन्नति, एषा । अथ
अनन्तरम्, इदानीम् सम्प्रति, कुमारः उत्तर, क्व कुनास्ति ?

भट—दृष्टपरिस्पन्दानाम् कृतपरिश्रमाणाम्, योचपूरयाणाम् वीरेषु अग्र-
सराणाम्, कर्माणि युद्धस्पर्द्धय कृत्यानि, पुस्तकम् आरोपयति पुस्तके लिखति,
कुमार' कुमार उत्तरः ।

राजा—अहो इत्याश्चर्यं, श्लाघनीयव्यापारः प्रशस्तनीयकार्यकरः खलु
निश्चयेन, अथम् एषः, कुमारः उत्तरः ।

व्याख्या—श्लाघनीयेन प्रशस्तनीयेन, कर्मणा कृत्वेन, ताडितस्य आहतस्य,
योचस्य शीनेकस्य, अकालान्तरिता सद्यः कृता, पूजा सम्मानविरोधः, वेदनाम्
पीडाम्, नाशयत्येव ताडनव्ययाम् चिन्तयत्येवेति भावः ॥ २८ ॥

गोहरण मे कुमार की जीत हुई, दुश्मन जान लेकर भाग गये ।

भगवान्—महाराज, सौभाग्य से आप को विजय हुई ।

राजा—नही नहीं, यह तो आप का ही श्रेय है । अच्छा, अभी कुमार कहाँ है ?

भट—कुमार रणाङ्गण मे अपना कौशल दिखलाने वाले वीरो का वाम
पुस्तक में अंकित कर रहे हैं ।

राजा—अरे कुमार का यह काम तो प्रशस्तनीय है ।

युद्ध मे आहत वीरो के प्रशस्तनीय कार्यों के लिए यदि तत्काल उनका
सम्मान दिया जाय तो निश्चय ही वे लड़ाई के सारे कष्टों को भूल जाते हैं ॥ २८ ॥

जित्वापि गां विजयमप्युपलभ्य राज्ञो

नैवास्ति मे जयगतो मनसि प्रहर्षः ।

दुःशासनं समरमूर्धनि सन्निगृह्य

वदध्वा यदद्य न विराटपुरं प्रविष्टः ॥ ३१ ॥

उत्तराप्रीतिदत्तालङ्कारेणालङ्कृतो व्रीडित इवास्मि राजानं द्रष्टुम् । तस्मात्
विराटेश्वरं पश्यामि । (परिक्रम्यावलोक्य) अये अयमाख्यौ युधिष्ठिरः,

सयौवनः श्रेष्ठतपोवने रतो नरेश्वरो ब्राह्मणवृत्तिमाश्रितः ।

व्याख्या—नाम् गोधनम्, जित्वा अरिहस्तात् विजित्य, अपि, राज्ञ
विराटनृपतेः, विजयम् जयम्, उपलभ्य प्राप्य, अपि, मे मम, मनसि चित्ते,
जयगतः उत्कर्षसंभवः, प्रहर्षं प्रसन्नता, नैवास्ति न सम्भूत एव, तत्कारणमाह—
दुःशासनम् दुर्योधनानुज, यत् यस्मात्, समरमूर्धनि समराङ्गणे, सन्निगृह्य गृहीत्वा,
वदध्वा निगडयित्वा, अद्य अस्मिन्नेव किं, विराटपुरम् विराटनृपते नगरे
न प्रविष्टः प्रत्यागतः ॥ ३१ ॥

उत्तरा प्रीतिदत्तालङ्कारेण विराटकन्यया प्रीत्या प्रदत्ताभूवणेन, अलङ्कृतं
सुशोभितं व्रीडितं लब्धित इव अस्मि भवामि, राजानम् नृपम्, द्रष्टुम् अवलोक-
यितुम्, तस्मात् तेन कारणेन विराटेश्वरम् विराटनृपतिम् पश्यामि अवलोक-
यामि, (परिक्रम्य भ्रमित्वा, अवलोक्य दृष्ट्वा) अये आश्चर्यम्, अयम् एषः, आख्यं
मान्यं युधिष्ठिरं पाण्डवाद्यजः—

व्याख्या—सयौवनः युवावस्थायामेव, अपि, श्रेष्ठतपोवने उत्तम आश्रमे,
रतः निरतः, नरेश्वरः नृपो भूत्वापि, ब्राह्मणवृत्तिमाश्रितं ब्राह्मणस्य विप्रस्य वृत्ति-

मैने ही गायी को दुश्मनो के हाथो से छुडा लिया, युद्ध मे विजय श्री प्राप्त
की किन्तु मेरे मन मे जीत की कोई खुशी नहीं हुई क्योंकि मेरे मन मे अभी
कसक है कि मैने दुःशासन को युद्ध भूमि से बाँधकर विराट नगर मे नही प्रवेश
किया ॥ ३१ ॥

हाय, उत्तराने प्रेमोपहार के रूप मे जो आभूषण दिया है, उसे धारण कर
राजा के सम्मुख जाने मे सकोच होता है । अच्छा तो महाराज विराट के पास
जाऊँ (देखकर) अरे, यही तो आर्य युधिष्ठिर हैं—

इन्होंने भरी जवानी मे कठोर तप किया है, राजा होकर भी ब्राह्मणवृत्ति

विमुक्तराज्योऽप्यभिर्वाधितः श्रिया त्रिदण्डधारी न च दण्डधारकः ॥३२॥

- भगवन् । वन्दे ।

(उपगम्य) (भगव । वन्दामि ।)

भगवान्—स्वस्ति ।

बृहन्नला—जयतु भर्ता ।

(जेडु नट्टा ।)

राजा—

अकारणं रूपमकारणं कुलं महत्तु नीचेषु च कर्म शोभते ।

आर्जाविकाम् आधितः अवलम्बित, विमुक्तराज्यं परित्यक्तं निजसाम्राज्यम्, जयि, श्रिया कान्था, अभिर्वाधित सम्पन्न, त्रिदण्डधारी त्रिदण्डधारणे वृत्ते नश्यति न दण्डधारक न दण्डाधिकारसम्पन्न । विरोधाभावालङ्कार, वशम्भ वृत्तम् ॥ ३२ ॥

(उगम्य समोपम् गत्वा) भगवन्, श्रीमन् वन्दे अभिवाद्ये ।

भगवान्—स्वस्ति कल्याणम् भवतु ।

बृहन्नला—जयतु भर्ता सर्वोत्कर्षेण विजयताम् स्वामी ।

व्याख्या—रूपम् स्वरूपम् शारीरिकं सोन्दर्यम्, अकारणम् आदरानिश्चयस्य कारणम् नास्ति, कुलम् वशमपि अकारणम् सम्मानहेतुर्भवति, महत्तु स्वरूप-वशाधिकेषु नीचेषु निम्नकोटिजनेषु कर्म आचरणम्, शोभते सम्मानजनक

अननाया है, राज्य छोड़ देने पर भी थीसम्पन्न हैं, त्रिदण्डधारी होकर भी दण्डाधिकारी नहीं रह गये हैं ॥ ३२ ॥

(समीप आकर) भगवन्, मैं आपको प्रणाम करती हूँ ।

भगवान्—तुम्हारा कल्याण हो ।

बृहन्नला—महाराज की जय हो ।

राजा—व्यक्ति चाहे ऊँच हो या नीच उसके सम्मान का कारण न हो उसका रूप होता है और न वश गौरव ही, अपने कर्म से, ही कोई व्यक्ति

इदं हि रूपं परिश्रुतपूर्वकं तदेव भूयो बहुमानमागतम् ॥
 बृहन्नले । परिधान्तामपि भवती भूयः परिश्रमशिष्ये । इ
 रणचिस्तर ।

बृहन्नला—शृणोतु भर्ता ।

(सुणातु भट्टा ।)

राजा—ऊर्जितं कर्म । ससृष्टमभिधीयताम् ।

बृहन्नला—श्रोतुमर्हति महाराज ।

(प्रविश्य)

भवति, इदम् एतत्, हि मत, रूपम् छेदम्, परिश्रुतपूर्वकम् अनादरस्य नार
 भूतम्, तदेव तदेव रूपम् कर्मप्रकर्षात् भूय अतिशय, बहुमानमागतम् अत्याद
 मजनि ॥ अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कार, वक्ष्यस्थवृत्तम् ॥ ३३ ॥

बृहन्नले, परिधान्तामपि कृतश्रमानपि, भवतीम् त्वाम्, भूय पुन परिश्रम
 शिष्ये श्रमकारविष्यामि । उच्चताम् कथ्यताम्, रणचिस्तर विस्तरेण रण-वादा

बृहन्नला—शृणोतु आकर्ष्यताम्, भर्ता स्वामी ।

राजा—अर्जितम् आजस्वि, कर्म कृत्यम्, ससृष्टमभिधीयताम् देव
 वाग्यामेव कथ्यताम् ।

बृहन्नला—श्रोतुम् आकर्णितुम्, अर्हति शक्नोति महाराज तृपति ।

(प्रविश्य प्रवेशम् कृत्वा)

प्रशम्नीय होता है । इन बृहन्नला का यह वही रूप है जिसे कल्पक ल
 अपमानित करते थे—राज वही आदर सम्मान का पात्र बना है ॥ ३३ ॥

बृहन्नले, मैं समझता हूँ तुम पूरी धकी हो फिर भी मैं तुम्हें कुछ इट
 देना चाहूँगा । लड़ाई के मैदान वा वित्तुत समाचार सुनाओ ।

बृहन्नला—सुनिय महाराज ।

राजा—ससृष्ट भावा म ही वहाँ की घटनाओं का वर्णन करो । क्याकि,
 ये सारी घटनायें तेजस्वी है ।

बृहन्नला—सुनिए महाराज

(प्रवेश करके)

भटः—जयतु महाराज ।

राजा—

अपूर्वं इव ते हर्षो ब्रूहि केनामि विस्मित ।

भटः—

अथद्वेयं प्रिय प्राप्त सौभद्रो ग्रहण गत ॥ ३४ ॥

बृहन्नला—कथं गृहीत । (आत्मगतम्)

तुलितबलमिदं मयाद्य सैन्य परिगणितं च रणोऽद्य मे न दृष्टं ।

सहन इह तु तेन नास्ति कश्चित् क इह भवेन्निहतेषु कीचकेषु ॥ ३५ ॥

भटः—जयतु महाराजः सर्वोत्कर्षेण विजयताम् महाराज ।

राजा—ते तव, हर्षं प्रसन्नता, अपूर्वं इव बिलक्षण इव, केन कारणेन, विस्मित. आश्चर्यचकित अति ब्रूहि कथय ।

भटः—सौभद्रो अर्जुनसुत ग्रहण गत, बन्दीभूत इति, अथद्वेयमपि अविश्वसनीयमपि प्रियं सुखकरम् प्राप्तम् जातमिति ॥ ३४ ॥

बृहन्नला—कथम् इत्यारचयें, गृहीत. बन्दीभूत (आत्मगतम् स्वगतम्)

व्याख्या—अद्य अस्मिन्नेव दिन, मया अर्जुनेन, इदम् एतत् सैन्यम् विराटस्य सैनिकम्, तुलितबलम् पूर्णरूपेण परीक्षितशक्तिकम्, परिगणितम् गणनापिकृतञ्च, सः असौ अभिमन्यु. मया दृष्टं रणे साक्षात्कृतं, इह अस्मिन् युद्धे, कीचकेषु शतसंख्यकविराटशालेषु, निहितेषु मृतेषु क जन, तेन अभिमन्युना सदृश. तुल्यः कश्चित् कोपि नास्तीति ॥ ३५ ॥

भट—महाराज की जय हो ।

राजा—तुम्हारी छुशी की तो आज मीमा ही नहीं दीखती । इसका क्या कारण है ?

भट—महाराज, अविश्वसनीय प्रिय प्राप्त हुआ है । अभिमन्यु युद्ध में बन्दी बना लिया गया है ॥ ३४ ॥

बृहन्नला—कथा कहा पकड़ लिया गया । (अपने आप)

विराट की सेना का ताकत तो आज मैंने तोल ही ली थी । उसकी गणना भी की थी । रणभुञ्ज अभिमन्यु को पराजित करने वाला तो उसमें एक भी नहीं था । कीचकों की मृत्यु के बाद मला उससे लड़ ही पाऊँ सबता है ॥ ३५ ॥

भगवान्—बृहन्नले ! किमेतत् ।

बृहन्नला—भगवन् !

न जाने तस्य जेतारं बलवाञ्छिक्षितस्तु स ।

पितृणा भाग्यदोषेण प्राप्नुयादपि धर्षणम् ॥ ३६ ॥

राजा—कयमिदानीं गृहीत ।

भट. —

रथमासाद्य निःशङ्कं बाहुभ्यामवतारित' ।

राजा—केन ?

भगवान्—बृहन्नले, एतत् किम् ?

बृहन्नला—भगवन्—

दयाहया—तस्य अभिमन्योः जेतारम् विजेतारम् न जाने अहम् नां गच्छामि, सः अती, बलवान् शक्तिशाली, शिक्षितः रणकुशलः अस्ति, पितृणां पाण्डवानाम्, भाग्यदोषेण विपरीतभाग्येन कदाचित् धर्षणम् पराक्रमं प्राप्नुयात् लभेत ॥ ३६ ॥

राजा—इदानीम् अधुना, कथम् केन प्रकारेण, गृहीत अभिमन्युर्वन्दीकृत' ।

भटः—रथम् स्यन्दनम्, आसाद्य प्राप्य, निःशङ्कम् अर्नदिग्धभावेन, बाहुभ्यां कराभ्यामेव, अवतारित स्यन्दनादधोनीत' ।

राजा—केन पुरुषविद्येणावतारित इति जिज्ञासा नृपस्य ।

भगवान्—बृहन्नले, क्या बात है ?

बृहन्नला—भगवन्, मुझे पता नहीं कि अभिमन्यु को किसने पराजित किया है ? अभिमन्यु बलवान् और रणकुशल है । सम्भवतः वह अपने पिता के भाग्य दोष से ही पराजित हुआ है ॥ ३६ ॥

राजा—अब वह कैसे पकड़ लिया गया है ?

भट—बिल्कुल आसानी से रथपर चढ़कर हाथों से उतार लिया गया ।

। राजा—किमने उतार लिया ?

३८ —

य किलैष नरेन्द्रेण विनियुक्ती महानसे ॥ ३७ ॥

वृहन्ला—(अपवार्य) एवम् आर्यभीमेन परिष्वक्त, न गृहीत ।

दूरस्था दर्शनादेव वय मन्तापमागता ।

पुत्रस्नेहस्तु निविष्टस्तेन मुव्यक्तकारिणा ॥ ३८ ॥

राजा—तेन हि सत्कृत्य प्रवेश्यतामभिमन्युः ।

भट्ट—यः पुरुषः क्विल एषः नरेन्द्रेण विराटेन महानसे पाकशालायाम् विनियुक्तः पाचकमूत्रेण विनियोजितः तेनैव ॥ ३७ ॥

वृहन्ला - (अपवार्यं परावर्तनेन सर्वमन्वावधित्वा) तदुक्तम् सामन्त-महापात्रेण—

“ .. तद्भेदपरितम् । रट्स्वन्तु यद्रन्यस्व परावृत्य प्रकारयते । इति । एवम् इत्यम्, आर्यभीमेनमध्मभ्रात्राभीमेनाभिमन्यु परिष्वक्त आलिङ्गितः न तु गृहीतः बन्दीकृतः ।

व्याख्या—वयम् सर्वे पाण्डवाः, दूरस्था दूरे स्थिता एव, दर्शनात् अवलोकनान् सन्तोषम् वृष्टिम्, आगता प्राप्ता तु किन्तु तेन भीमेन, मुव्यक्त-कारिणा मर्त्यजनमन्मृषे एव पुत्रमभिमन्युम् स्यन्दनादवतार्यं, पुत्रस्नेहः पुत्रजन्य-रोति, निविष्टः स्थित अर्थात् अपत्यालिङ्गनजन्यसुखं लब्धमिति ॥ ३८ ॥

राजः—तेन वारणेन, हि यतः, सत्कृत्य ससम्मान्यं, अभिमन्युम् अर्जुन-पुत्रम्, प्रवेश्यताम् मदीयनमुखे समानोषताम् ।

भट्ट—वही जिसे महाराज द्वारा रनोई घर की सेवा में नियुक्त किया गया है ॥ ३७ ॥

वृहन्नला—(एक ओर को) अब दाव समझ में आई, इस प्रकार आर्य भीम ने उनका आलिङ्गन किया है, पकड़ा नहीं ।

हमलोगो ने दूर से ही बेटा अभिमन्यु को देखकर सत्तोष प्राप्त कर लिया किन्तु, आर्य भीम ने सदा के सामने ही अपने पुत्र प्रेम को सार्थक कर दिखलाया ॥ ३८ ॥

राजा—ठीक है, ससम्मान अभिमन्यु को यहाँ बुला लाओ ।

भगवान्—भो राजन् ! वृष्णिपाण्डवनाथस्याभिमन्योः पूजा भयार्तिः ।
ज्ञास्यति । तदवधीरणमस्य न्याय्यम् ।

राजा—नावधीरणमर्हति यादवीपुत्रः ।

कुत.—

पुत्रो ह्येष युधिष्ठिरस्य तु वयस्तुल्यं हि न. नूनना
सम्बन्धो द्रुपदेन नः कुलगतो नप्ता हि तस्माद् भवेत् ।
जामातृत्वमद्वरतोऽपि च भवेत् कन्यापितृत्वं हि नः

भगवान्—भो राजन्, हे नृप, वृष्णिपाण्डवनाथस्य वृष्णयः २०
पाण्डवाश्च नाथा यस्य तादृशस्य अभिमन्योः अर्जुनमुतस्य, भयात् २१
नृपविराटेन सम्मानः प्रदर्शित इति लोकः जनः, ज्ञास्यति । तत् तस्मात्,
अभिमन्योः, अवधीरणम् अनादरमेव, न्याय्यम् उचितम् ।

राजा—यादवीपुत्रं सुभद्रानुतः, अवधीरणम्, अनादरम्, न
अर्हति युज्यते ।

कुत. कस्मात्—

व्याख्या—एष अभिमन्युः, युधिष्ठिरस्य पुत्र धर्मराजानुतः, तु पान्दव
वयसः अवस्थाक्रमेण, न. अस्माकम् सूनुना पुत्रेण, तुल्यम् समम्, न. अस्माकम्
द्रुपदेन नृपेण, कुलगत परम्परयावशात्पुत्रतः, सम्बन्धः सख्यभावः तन्ना
कारणात् हि यतः नप्ता द्रौहित्रः अपि चेत् भवेत् स्यात् । कन्यापितृत्वम् २२
जनकत्वम् हि यतः न. अस्माकं अद्वरतोऽपि शीघ्रमेव जामातृत्वं पुनीति
चापि भवेत् जायेत्, अतिथिः आगन्तुकश्च, पूजार्हः इत्याद्यो भवेत्, वृष्ण

भगवान्—राजन्, यदि आप यादव एव पाण्डवों से नुरक्षित अभिन्न
का इस तरह सम्मान करेंगे तो लोग कहेगे कि विराट न डरकर उसका सम्म
किया है । इसलिए उसकी अवहेलना ही उचित है ।

राजा—नहीं, सुभद्रा का बेटा अनादरणीय नहीं है । क्योंकि,

क्या वह युधिष्ठिर का बेटा नहीं है ? मेरे कुमार का सम्बन्ध नहीं है ।
द्रुपद के साथ दूर का वाशिक सम्बन्ध होने के कारण वह मेरा नाती ना
है । मैं बेटे का बाप हूँ, हो सकता है निकट भविष्य में वह हमारा जामाता है

पूजाहोष्यतिभिर्वेत् रदनिभवेरिष्टा हि नः पाण्डवा ॥ ३६ ॥

भगवान्—एवमेतत् । यत्तव्य परिहृतं च ।

राजा—अथ केनाय प्रवेशयितव्य ?

भगवान्—बृहन्नया प्रवेशयितव्य ।

पाण्डवा युधिष्ठिरादयः, स्वभिर्भरैः आत्मनस्पदैः, इष्टा अभिष्टाः । अस्मदोया-
वेद्रोहिणी भावा प्रचण्डभ्रमोत्यापनकारिणो भवन्ति, भासेनाग्निम् नाद्रेकेड-
भ्रुवनतापतहापुधाराभिर्विशोहिभाषभीपगतज्वाला निर्शान्निवुम् कृतोऽस्ति
प्रयास । पर न स तदभ्याये सत्तां द्रष्टुमभिलष्यते । तस्य वैशुदाभाधारिणो लीला
नाम् सन्दर्श्य स निरोधातुम् तम्, सत्वर पटश्रेणमभि विदधाति । अभिमन्योः
सम्मानन्यायेनापि कारणानि सन्ति तत्र प्रथममनौ यास्वपाण्डवस्ययो
प्रनापान्निष्ठो अभिमन्युरस्ति, तनो मम मुतेन वधया । तुल्यं सखाऽस्ति, ममानु-
वाञ्छितमुपदनवधेन दौहित्र, भावी जामाता, माण्ड्योतिभिश्च पाण्डवानां
पुत्रास्वेति सकनैरेभि कारणं व्यस्तरप्यभिमन्युरादरमहंति अस्मात्कारणात्
मसम्मानम् तम् प्रवेशयताम् । शाङ्खलिकीडितम् युतम् ॥ ३९ ॥

भगवान्—एवमेव उचितमेव तव कथनम् । यत्तव्यम् मम वधनम्, परि-
हृतं च यमान्यमभिनिवुमहंति ।

राजा—अथ अन्तरम्, केन पुरुषेण, अयम् एव अभिमन्यु, प्रवेशयितव्यः
आनन्यो भवेत् ।

भगवान्—बृहन्नया नपुंसकभावान्नोऽज्ञातवातस्योऽर्जुन, प्रवेशयितव्यः
आनेत्येव इति ।

अतिथि का सकार तो होना ही चाहिए उन पर भी अपनी समृद्धि के कारण
पाण्डव तो हमारे मित्र भी है ॥ ३९ ॥

भगवान्—आप का कथन ठीक है, इन सम्बन्ध में हमारा कहना नहीं भी
माला जा सकता है ।

राजा—अच्छा तो अभिमन्यु को बुलायेगा कौन ?

भगवान्—बृहन्नया को ही भेजा जाय ।

राजा—बृहन्नले ! प्रवेश्यतामभिमन्यु ।

बृहन्नला—यदाज्ञापयति महाराज ! (आत्मगतम्) चिरस्य खत्वाकाशं
नियोगो लब्धः । (निष्क्रान्ता) ।

भगवान्—(आत्मगतम्)

अद्येदानीं यातु सन्दर्शनं या शून्ये दृष्ट्वा गाढमालिङ्गनं वा ।

स्वैरं तावद् यातु मुद्वाष्पतां वा मत्प्रत्यक्षां लज्जते ह्यप पुत्रम् ॥

राजा—पश्यतु भवान् कुमारस्य कर्म ।

राजा—बृहन्नले, प्रवेश्यताम् आनीयताम्, अभिमन्युः सुभद्रासुत इति ।

बृहन्नला—यत यथा, आज्ञापयति आदिशति, महाराजं विरह्य
(आत्मगतम् स्वगतम्) चिरस्य बहुकालस्य खलु निश्चयेन, आकाशत आ-
लपित, अयम् एषः, नियोगः आदेशः, लब्धः प्राप्तः (निष्क्रान्ता बहिर्गता)

भगवान्—(आत्मगतम् स्वगतम्)

व्याख्या—अद्य अस्मिन्नेवदिने, इदानीम् अधुना, सन्दर्शनम् पुरातन
स्कारम् यातु भयतु, शून्ये जनशून्ये दृष्ट्वा अभिमन्युमवलोक्य, गाढमालिङ्गनं
गम्भीरास्लेपम् वा यातु । वा अथवा—तावद् तावत्कालपर्यन्तम्, स्वैरम् पञ्च
मुद्वाष्पताम् प्रमथताजन्यनयनवारि वा यातु, एष हि अर्जुनः मत्प्रत्यक्षम् म
युधिष्ठिरस्य सम्मुखे पुत्रम् सुतमभिमन्युम् आलिङ्गयितुम् लज्जते सकुच ॥४०॥

राजा—पश्यतु अवलोकयन्, भवान् श्रीमान् कुमारस्य उत्तरस्य, सं-
रणकौशलम् ।

राजा—बृहन्नले, अभिमन्यु को बुलालाओ ।

बृहन्नला—श्रीमान् की जैसी आज्ञा (अपने आप) पढ़त दिनों के बाद
इच्छित आदेश मिला है (जाती है)

भगवान्—(अपने आप) अब अर्जुन को अकेले में बेटे से मिलने का
मीका मिला है, अथवा एकांत में उसे गले लगाने का अवसर मिला है, समय
है अकेले में बेटे को पाकर हर्षातिरेक में वह पर्याप्त आसू बहाये क्योंकि उसे
सामन वह पुत्र को गले लगाने में संकोच का अनुभव करता है ॥ ४० ॥

राजा—आप जब कुमार का काम देखें—

नृपा भीष्मादयो भग्नाः सौभद्रो गृहण गत ।
 उत्तरेणाद्य सक्षेपादर्थत पृथिवी जिता ॥ ४१ ॥
 (तत्र प्रविशति भीमसेन)

भीमसेन —

मादीपिते ज्तुगृहे स्वभुजावसक्ता मदभ्रातरश्च जननी च मयोपनीता ।
 सौभद्रमेव मदतार्यं रथात् बालं त च श्रम प्रयमनद्य मम हि मन्ये ॥ ४१ ॥
 इत इत कुमार ।

व्याख्या—भीष्मादय भीष्मद्रोणादय, नृपा राजान, भग्ना पराजिता, सौभद्र अभिमन्यु गृहण गत बन्दीकृत, अद्य अस्मिन्नेव दिन उत्तरेण कुमारैण, सक्षेपात् समासात् अर्थत बन्तुत, पृथिवीम् धरित्रीम्, जिता अधि-
 कृतेति ॥ ४१ ॥

(तत्र तत्पश्चात्, प्रविशति प्रवेशम् करोति भीमसेन)

व्याख्या—ज्तुगृह ल्या. गृहे मादीपिते प्रज्वलिते सति स्वभुजावसक्ता स्वस्य
 आत्मन, भुजयो वरया अवसक्ता स्वापिता, मत् मम भौमस्य, भ्रातर जननी
 माता च, मया भीमेन उपनीता म्यानान्तर प्रापिता, अद्य तु एकम् केवलम्,
 सौभद्रम अभिनपुन्, रथात् स्यग्दात्, अवतार्यं अवतराप्य, तम् च अद्यतनम्
 प्राप्तवम च श्रमम् परिश्रमम् हि इति निश्चये अद्य समन् तुल्यन् मये अर्चामि ।
 वनन्तद्विलशावुत्तम् ॥ ४२ ॥

इत इत भस्वामेव दिशि समागम्यताम् कुमार ।

आज उसन घरती ब सर्वाधिक शक्तिशाली भीष्मादि राजाचो को पराजित
 कर अभिमन्यु का बन्दी क्या बना लिया मानो सारी पृथ्वी का ही जीत
 लिया है ॥ ४१ ॥

(भीमसेन का प्रवेश)

भीमसेन—लाशागृह म जय आम लगी थी तब हमने अपने हाथो से सभी
 भाइयो और माँ को उठाकर अलग लिया था और आज अचैते अभिमन्यु को
 रथ से उठाता हूँ । पर मेरी दृष्टि में दोगो ही श्रम समान है ॥ ४२ ॥

(तत. प्रविशत्यभिमन्युर्बृहन्नला च)

अभिमन्युः—भोः । को नु खल्वेषः,

विशालवक्षास्तनिमार्जितोदरः स्थिरोन्नतासोरुमहान् कटीकृणः ।

इहाहृतो येन भुजैकयन्त्रितो बलाधिकेनापि न चास्मि पीडितः ॥ ४३ ॥
बृहन्नला—इत इतः कुमारः ।

अभिमन्युः—अये अयनपरः कः,

अयुज्यमानैः प्रमदाविभूषणैः करेणुशोभाभिरिर्वापितो गजः ।

(तत. तत्पश्चात् प्रविशति प्रवेशम् करोति अभिमन्युः बृहन्नला च)

अभिमन्युः— भो को नु खलु पुरुष विशेषः एष' असौ,

व्याख्या—विशालवक्षा. विपुलो रसक, तनिमार्जितोदर' कृशत्वेनातिसुन्दरो-
दरः स्थिरोन्नतास. सुदृढोन्नतस्कन्धः, च पुन', उरुमहान् विशालबाहु. कटी कटी-
प्रदेशः कृश दुर्बल' अर्थात् मध्ये क्षीण, येन पुरुषविशेषेण, भुजैकयन्त्रित. एकैव
हस्तेन धृत्वा, इह अत्र आहृत समानीतोऽस्मि बलाधिकेनापि । अत्यधिकशक्ति
शालिनाऽपि, पीडित' अतिक्रान्त. नास्मि ॥ ४३ ॥

बृहन्नला—इत इत' कुमार' अस्मिन्नेव मार्गेण समागम्यताम् ।

अभिमन्युः—अये आश्चर्यम्, अयम् पुरोवर्त्तिनः, अपरः अन्यः, कः
पुरुषविशेषः ।

व्याख्या—अयुज्यमानैः अयुक्तिकरैः, प्रमदाविभूषणैः वनितालङ्कारै-
करेणुशोभाभिः हस्तिनीप्रभाभिः, अर्पितैः सुसज्जितैः, गज' करी, इव यथा अयम्

(अभिमन्यु और बृहन्नला का प्रवेश)

अभिमन्युः—अरे यह कौन है ?

चौडी छाती, कृश उदर, उन्नत स्कन्ध, तथा लम्बी बाहे हैं, हाथ से ही
जिसने मुझे यहाँ तक उठा लाया है, अधिक बलशाली होने पर भी इसने मुझे
अतिक्रान्त नहीं किया ॥ ४३ ॥

बृहन्नला—इधर से इधर से कुमार चलें ।

अभिमन्युः—अरे, यह दूसरा कौन है ?

यह औरत के वेष में ऐसा लगता है जैसे हथिनी की शोभा से युक्त कोई

लघुश्च वेपेण महानिर्वाजसा विभात्युमावेपमिवाश्रितो हरः ॥ ४४ ॥
बृहन्नला—(अपवार्य) इममिहानयता किमिदानीमायें कृतम् ।

अवजित इति तावद् दूषित पूर्वयुद्धे
दयितसुतवियुक्ता शोचनीया सुभद्रा ।
जित इति पुनरेनं रूप्यते वामुभद्रो
भवतु बहू किमुक्त्वा दूषितो हस्तसारः ॥ ४५ ॥

पुरुष वेपेण वस्त्राभूषणेन, रघुः सामान्यं च ओजसा तेजसा, महान् अतिश्रेष्ठ, इव यथा, उमावेपम् गीरीरूपम्, आश्रितं धृतं हरः शिव इव विभाति शोभा धारयति ॥ ४४ ॥

बृहन्नला—(अपवार्यं अभिमन्युमथावयित्वा) इमम् अभिमन्युकुमारम्, इह विराटमदने, आयें पूज्येन इदानीम् अधुना, आनय वा कुमारमानयनम्, किं कृतम् उचितं न कृतमासीत् ।

व्याख्या—पूर्वयुद्धे प्रथमे सङ्गरे, अवजितः पराभूतः, इति इत्यम्, तावत् इति वाच्यालङ्कारे, दूषितः कलङ्कितोजातः, सुभद्रा अभिमन्युजननी, दयितसुत-वियुक्ता दयितेन पत्न्या मुतेन पुत्रेण च वियुक्ता उचितता, शोचनीया चिन्तनीया, मता, पुनः, एनम् अभिमन्युम्, जितः प्रथमे समरे पराजित इति हेतोः वा सुभद्र-श्रीवृष्ण, रूप्यते रूप्यति, बहुकिमुक्त्वा अत्यधिककथनेन किम् ? भवताऽभि-मन्यु गृहीत्वा, बाहुसारम् निजमुज्वलम्, दूषितः कलुषितः । भवतु द्वरे तिष्ठतु इत्येकार्यम् ॥ ४५ ॥

मत्तयजराज हो, वेप से यह जितना सामान्य है पराक्रम से उतना ही महान् प्रतीत होता है । लगता है शङ्कर ने उमा का वेप धारण किया है ॥ ४४ ॥

बृहन्नला—(एक ओर को) अभिमन्यु को यहाँ लाकर आपने क्या किया? पहले ही युद्ध में इसे पराजित होने का कलक लगाया, पति और पुत्र से विहीन सुभद्रा को शोचनीय दशा में पहुँचाया । इसकी हार की खबर से वृष्ण अलग क्रुद्ध होंगे । अधिक क्या ? आपने अपने बाहुवल को कलंकित किया है ॥ ४५ ॥

भीमसेन.—अजुंन !

बृहन्नला—अथ किम्, अथ किम्, अजुंनपुत्रोऽयम् ।

भीमसेन—(अपवायं)

जानाम्येतान् निग्रहादस्य दोषान् को वा पुत्र मर्षयेच्छत्रुहस्ते ।

इष्टापत्या किन्तु दु.खे हि मग्ना पश्यत्वेनं द्रौपदीत्याहृतोऽयम् ॥४३॥

बृहन्नला—(अपवायं) आर्यं अभिभाषणक्रीतृहल मे महत् । वाचालयत्वेनमादं ।

भीमसेन.—(अपवायं) बाढम् ! अभिमन्यो !

भीमसेनः—अजुंन भो पायं ।

बृहन्नला—अथ किम्, अथ किम्—किमन्यत् यदुक्त तत्तदेवेत्यर्थं, अङ्गीकारेऽपि चाथ किम् इति अथ किमेत्येकमव्ययम् । अजुंनपुत्रोऽयम् अजुंनस्वैवायं सुत. इत्यनेनाभिमन्योः पराभवं प्रति रोषो व्यञ्जितः ।

भीमसेन—(अपवायं) अजुंनमथाव्य—

दयाख्या—अस्याभिमन्यो, निग्रहात् अवग्रहात् अवरोधात्, एतादृशं पूर्वोक्तान्, दोषान् पूर्वोक्तदोषत्रयान्, जानामि अवगतोऽस्मि, कः पुरुषविशेष, वा पुत्रम् स्वसुतम्, शत्रुहस्ते अरिकरे, मर्षयेत् क्षिपेत्, इष्टापत्या मन्ये सर्वं ज्ञात्वं वेदम् कृतम् तत्कारणमाह—दु.खे कष्टे, मग्ना निमग्ना, द्रौपदी द्रुपदसुता, इमम् अभिमन्युम्, पश्यतु अवलोकयतु, इति हेतो, मया अयम् अभिमन्यु आहृतः आनीत—इत्याशयः ॥ ४६ ॥

भीमसेनः—(अपवायं अथाव्य) बाढम् स्वीकृतम्, अभिमन्यो !

भीमसेन—अजुंन ।

बृहन्नला—हाँ हाँ, यह अजुंन का बेटा है ।

भीमसेन—(एक ओर)—अभिमन्यु की हारसे उत्पन्न इन दोगो से अवगत हैं । भला ऐसा कौन होगा जो अपने बेटे को शत्रु के हाथ में जाना पसंद करे । फिर भी ऐसा इसलिए किया कि दुःखी द्रौपदी को इसे देखकर जान्त्वना मिले ॥ ४६ ॥

बृहन्नला—(एक ओर) आर्य, इससे बात करने की मेरी बड़ी उत्कण्ठा है, आप इसे बोलने को बड़े ।

भीमसेन—(एक ओर) ठीक है, अभिमन्यु ।

अभिमन्यु — अभिमन्युर्नाम ।

भीमसेन — रघुपत्येव मया । त्वमेवैनमभिभाषय ।

बृहन्नला — अभिमन्यो ।

अभिमन्यु — क्व क्वम् । अभिमन्युर्नामाहम् । भो —

नीनैरप्यभिभाष्यन्ते नामभिः क्षत्रियान्वया ।

इहाय समुदाचारो ग्रहण परिभूयते ॥ ४७ ॥

बृहन्नला — अभिमन्यो । सुखमास्ते ते जननी ।

आभिमन्यु — अभिमन्युर्नाम — स्वनाम ध्रुवा नाश्रयं वदन्वभिमन्युर्नामिति ।

भीमसेन — मया भीमेन, एव अभिमन्यु, स्यति कुप्यति । त्वमेव बृहन्नेव, एतम् अभिमन्युम् अभिभाषय भाषण कुम् ।

बृहन्नला — तम् सम्बोधयति — अभिमन्यो ।

अभिमन्यु — क्वचित्प्राश्रयं, अभिमन्यु इति नाम्ना आह्वयति । भो इति आह्वानो —

व्यारूपा — नीचं निम्नकार्येषु गलनैः सेवकैः, क्षत्रियान्वया क्षत्रिय-
वंशोद्भवा, नामभि नामैश्च, अभिभाष्यन्ते सम्बोध्यन्ते, इह अस्मिन् नगरे,
अयम् एतादृश, समुदाचार- व्यवहार ? अथवा ग्रहणम् अहम् शत्रुवशगतः
तेन परिभूयते अवमन्यते ॥ ४७ ॥

बृहन्नला — हे अभिमन्यो, ते तव, जननी माता, सुखमास्ते कुशलनीविद्यते ।

आभिमन्यु — अभिमन्यु ।

भीमसेन — मुझे तो यह चिडता है, तुम्ही इससे बात करो ।

बृहन्नला — अभिमन्यु ।

अभिमन्यु — क्यों मेरा नाम लेकर पुकारते हो । क्या क्षत्रिय कुमार को यहाँ के सेवक नाम लेकर ही पुकारते हैं । यहाँ का यही व्यवहार है ? अथवा बन्दी होने के कारण मुझे अपमानित किया जा रहा है ॥ ४७ ॥

बृहन्नला — अभिमन्यु, तुम्हारी माँ तो अच्छी है ?

अभिमन्युः—कयं कयम् ! जननी नाम ।

किं भवान् घर्मराजो मे भीमसेनो घनञ्जयः ।

यन्मा पितृवदाक्रम्य स्त्रीगता पृच्छसे कयाम् ॥ ४८ ॥

बृहन्नला—अभिमन्यो ! अपि कुशली देवकीपुत्रः केशवः ?

अभिमन्युः—कयं तत्रभवन्तमपि नाम्ना । अथ किम्, अथ किम् । कुशली भवतः संसृष्टः ।

(उभौ परस्परमवलोकयत.)

अभिमन्युः—कयम् कयम् जननीनाम् मम मातुः कुशलं पृच्छति क्रोधा-
भिव्यक्तिः ।

व्याख्या—यत् यस्माद्धेतोः, मामभिमन्युम्, पितृवत् जनकमदृशः, आक्रम्य
अधिकृत्य, स्त्रीगताम् स्त्रीविषयाम्, कयाम् वात्ताम्, पृच्छसे जिज्ञाससि, तत् किम्
भवान् त्वम्, मे ममाभिमन्यो, घर्मराज युधिष्ठिरः, भीमसेन वृकोदरः अथवा
घनञ्जयः अर्जुनः, त एव एतान् प्रश्नान् कर्तुम् अधिकुर्वते न च त्वादृशः
नीचसेवका इति ॥ ४८ ॥

बृहन्नला—अभिमन्यो, देवकीपुत्र देवकीसुतः, केशव श्रीकृष्णः, अपि
कुशली सकुशलमस्तीति भावः ।

अभिमन्युः—कयम् केन कारणेन, तत्र भवन्तम् श्रीमन्तम् श्रीकृष्णमपि,
नाम्ना नामग्रहणेनैव व्याहरति । अथ किम् इदमेकमव्ययमङ्गीकार्यम्, त्वम्
यदात्प तत्तयैवेत्यर्थः । कुशली सकुशलम्, भवतः त्वदीयः संसृष्टः सम्बन्धे ।

(उभौ द्वौ, परस्परम् अन्योन्यम्, अवलोकयत.)

अभिमन्युः—क्या ? क्या ? मेरी माँ के बारे में पूछता है—

कयो आप घर्मराज युधिष्ठिर, भीम अथवा अर्जुन हैं जो मुझे अधिकृतकर
मुझसे मेरी माँ के बारे में पूछ रहे हैं ? ॥ ४८ ॥

बृहन्नला—कयो अभिमन्यु, देवकी पुत्र कृष्ण तो सकुशल हैं ?

अभिमन्युः—कयो भगवान को भी नाम लेकर ही । और क्या आपके
सकुशल हैं ।

(दोनों एक दूसरे को देखते हुए)

अभिमन्युः—कयमिदानीं सावज्ञमिव मा हस्यते ।

बृहन्नला—न खलु किञ्चित् ।

पार्थं पितरमुद्दिश्य मातुलं च जनार्दनम् ।

तरुणस्य कृताखरस्य युक्तो युद्धपराजयः ॥ ४६ ॥

अभिमन्युः—अलं स्वच्छन्दप्रलापेन ।

अलमात्मस्तवं कर्तुं नास्माकमुचितं कुन्ते ।

हृतेषु हि शरान् पश्य नाम नान्यद् भविष्यति ॥ ५० ॥

अभिमन्यु—कयम् केन कारणेन, इदानीम् अधुना, सावज्ञम् अवहेलना-पूर्वकम्, माम् अभिमन्युम् हस्यते उपश्रमति,

बृहन्नला—न खलु किञ्चित् नास्ति किमापे ।

व्याख्या—पितरम् जनकम्, पार्थम् अर्जुनम्, उद्दिश्य अभिलक्ष्य च पुन मातुलम् मातुः भ्रातरम्, जनार्दनम् श्रीकृष्णम् अभिलक्ष्य ज्ञात्वा चा, तरुणस्य नवयुवकस्य, कृताखरस्याधीतधनुर्विद्यस्य, युद्धपराजयं रुमरे पराभवं युक्तम् किमुचितमिति नास्त्येवाति भावः ॥ ४९ ॥

अभिमन्यु—अलम् व्यर्थम्, स्वच्छन्दप्रलापेन यथेच्छया वार्तालापेन,

व्याख्या—आत्मस्तवम् निजप्रशंसाम्, कर्तुम् कृत्वा, अलम् व्यर्थम् अस्माकम् न, कुन्ते वसे, उचितम् युक्तम्, न नहि, हृतेषु मृतेषु, शरान् बाणान्, पश्य अवलोकय, अन्यत् परस्य, नाम सज्ञा, न नहि भविष्यतीति मयैव युद्धे सेनिका मारिता ॥ ५० ॥

अभिमन्यु—कयो अब तो ये मेरी ओर अवहेलना पूर्वक देखकर हँस बृहन्नला—कुछ नहीं,—अपने पिता पार्थ, तथा मामा कृष्ण को यादकर इस मनी जवानी में युद्ध विचारद होकर भी क्या आपको युद्ध में इस तरह चाहिए था ॥ ४९ ॥

अभिमन्यु—घस-वस, यथेच्छ अट सट बकना बन्द करो ।

अपने वंश की मर्यादा के अनुसार मैं अपनी प्रशंसा अपने मुख से नहीं करना चाहता, इस सम्बन्ध में इतना ही कहूँगा—मृतसैनिकों की देह को जाकर देखो बाणों पर किसी दूसरे का नाम नहीं मिलेगा ॥ ५० ॥

अभिमन्यु.—ब्राह्मणेनेति । (उपगम्य) भगवन् । अभिवादये ।

भगवान्—एह्येहि वत्स !

शौण्डीर्यं धृतिविनय दया स्वपक्षे माधुर्यं धनुषि जय पराक्रम च ।
एकस्मिन् पितरि गुणानवाप्नुहि त्वं शेषाणा यदपि च रोचते चतुर्णाम् ॥१४॥

अभिमन्यु—अनुगृहीतोऽस्मि ।

राजा—एह्येहि पुत्र ! कथं न मामभिवादयसि । अहो उत्तिक्त
खल्वय क्षत्रियकुमारः । अहमस्य दर्पप्रशमनं करोमि । अयं केनाप
गृहीतः ।

अभिमन्यु.—ब्राह्मणेन विप्रेण इति (उपगम्य समीपम् गत्वा) भगवद् हे
देव, अभिवादये प्रणमामि ।

भगवान्—एह्येहि समागम्यताम्, वत्स पुत्र ।

व्याख्या—शौण्डीर्यम् शूरत्वम्, धृतिविनयम् धैर्यविनम्रतयो समाहार
स्वपक्षे स्वजने, दयाम् कृपाम्, माधुर्यम् मधुरवचनम्, च, धनुषि चापे, जयम्
विजयम्, पराक्रमम् साहसञ्च, इति एकस्मिन् जनकानाम् च गुणेषु यत्
रोचते तदप्यधिगच्छ । पितृतुल्यगुणी भव । प्रहर्षिणीवृत्तम् ॥ ५४ ॥

अभिमन्युः—अनुगृहीतोऽस्मि—कृपान्वितोऽस्मि ।

राजा—एह्येहि समागम्यताम्, पुत्र हे वत्स । कथन्न हि माम् विराट्
अभिवादयसि प्रणमसि, अहो इत्याश्चर्यं, उत्तिक्त गर्वोद्भूतः, खलु शब्दश्च
वितर्कं, अयम् एषः, क्षत्रियकुमारः अभिमन्यु । अहम् विराट्, अस्य अभिमन्योः,

अभिमन्यु—ब्राह्मण के साथ (पास जाकर) भगवन् मैं आपकी प्रणाम
करता हूँ ।

भगवान्—आओ बैठे, तुम्हारे एकपिता धनञ्जय मे जो धीरता, धीरता,
विनम्रता, दयालुता, मिष्टभाषिता प्रभृति गुण हैं, उन्हें तथा अन्य पिताओं के
वर्तमान गुणों मे से जो तुम्हे जँचे उसे ग्रहण करो ॥ ५४ ॥

अभिमन्यु—अनुग्रहीत हुआ ।

— ८ —

राजा—आओ वेटा आओ, तुम मुझे प्रणाम क्यों नहीं करते ? अहो, यह

भीमसेन—महाराज ! मया ।

अभिमन्युः—अशस्त्रेणैवभिधीयताम् ।

भीमसेन—शान्त शान्तं पापम् ।

सहजौ मे प्रहरणं भुजौ पीनांसकोमलौ ।

तावाश्रित्य प्रमुध्येय दुर्वलैर्गृह्यते धनुः ॥ ५५ ॥

अभिमन्यु—मा तावद् भो ,

वाहरक्षौहिणी यस्य निर्व्याजो यस्य विक्रम ।

दपंप्रशमनम् मिष्टभाषितं सान्त्वनम्, करोमि विदधामि, अथ इदमेवमव्ययम्,
केन पुरूपेण, अयम् एष, गृहीत वन्दीकृत ।

भीमसेनः—महाराज हे नृप, मया भीमेन,

अभिमन्युः—अशस्त्रेण शस्त्रविहीनेन इति इत्यम्, अभिधीयताम् कथ्यताम् ।

भीमसेनः—शान्तम् शान्तम् पापम् पापप्रशमन भवतु इत्यनेन विरोधम्
दर्शयति—अहो, इत्यम् भवितुम् नाहंतीति भावः ।

व्याख्या—पीनांसकोमलौ स्खलस्कन्धकोमलौ, भुजौ करो एव मे भीमस्य,
सहजौ स्वामाविकौ प्रहरणम् शस्त्रम्, तौ भुजावेवाश्रित्यावलम्बनम् कृत्वा,
प्रमुध्येयम् युद्धम् कुर्याम्, धनुः चापस्तु दुर्वलैः बलहीनैः गृह्यते ग्रहणं कृत्वा
मुद्व्यते ॥ ५५ ॥

अभिमन्युः—मा तावत् भो एवं मा वद—

व्याख्या—यस्य भीमस्य, बाहु एव भुजा एव, अक्षौहिणी अपरिमितमेना,

क्षत्रिय कुमार तो बड़ा घमण्डी है, पहले इसके घमण्ड को दूर करता हूँ ।
अच्छा तो इंगे किसने पकड़ा ?

भीमसेन—महाराज मैंने ।

अभिमन्यु—‘निहत्थे होकर पकड़ा’ ऐसा कहिए ।

भीमसेन—नहीं ऐसा नहीं हो सकता—ये मोटी मासल दाहिं ही मेरे
हथियार हैं । धनुष तो दुर्वलो के अस्त्र हैं ॥ ५५ ॥

अभिमन्यु—नही, जिनकी भुजा ही अक्षौहिणी सेना के बराबर हैं, जिनका

किं भवान् मध्यमस्तावस्तस्यैतत् सदृशं वचः ॥ ५६ ॥

भगवान्—पुत्र ! कोऽयं मध्यमो नाम ।

अभिमन्यु—श्रूयताम् । अपवा, न्वनुत्तरा वैषं ब्राह्मणेषु, सान्त्वये
दूयात् ।

राजा—भवतु भवतु । मद्बचनात् पुत्र ! कोऽयं मध्यमो नाम ?

अभिमन्युः—श्रूयताम् । येन,

योक्त्रयित्वा जरासन्धं कण्ठजिल्लटेन बाहुना ।-

विक्रमः पराक्रमस्तु, निर्घ्नाजः कपटशून्यः, एतादृशः किं भवान् मध्यमस्ताव
भीमसेनः ? एतद्बचः पूर्वोक्तम् वचनम् तस्यैव सदृशम् युक्तम् न तु भवतः ॥५६॥

भगवान्—पुत्र हे नृत, कोऽयम् कः अस्ती मध्यमो नाम ?

अभिमन्यु—श्रूयताम् आकर्ष्यताम् जयवा, न्विति वितर्के, अनुत्तर
अप्रतिवचना, वचम् ब्राह्मणेषु विप्रेषु साधु मुष्टु भवति, यदि अन्यः अत्र
दूयात् कथयेत् ।

राजा—भवतु भवतु यद्भवतु तद्भवतु पुत्र मद्बचनात् मदीयप्रस्तात् दृष्टि
कोऽयं मध्यमो नाम ?

अभिमन्यु—श्रूयताम् आकर्ष्यताम्, येन पुरुषविशेषेण—

व्याख्या—कण्ठाजिल्लटेन तत्कण्ठासक्तैः, बाहुना स्वमुजेन जरासन्धम्
मगधाधिपतिं बृहद्रथपुत्रम् योक्त्रयित्वा बद्धम् विधाय, असह्यम् असाध्यम्
तत् पूर्वोक्तम्, कर्म कृत्यम्, कृत्वा विधाय कृष्णः वामुदेवः अतदहंताम् तादृशं

पराक्रम निष्कपट है, ऐसे हमारे मध्यम तात को ही ऐसे कथन शोभते हैं ॥५६॥

भगवान्—बेटा, तुम्हारे ये मध्यम तात कौन हैं ?

अभिमन्यु—सुनिष्ट, अपवा—हमलोग ब्राह्मणों के साथ सवाल-जवाब नहीं
करते हैं । अच्छा होता कोई दुसरा ही पूछता ।

राजा—अच्छी बात है, बेटा, मेरे ही प्रश्न का उत्तर दो । तुम्हारे
मध्यम तात कौन हैं ?

अभिमन्यु—सुनिये—जितने अपने हाथों से जरासन्ध के कण्ठ को बांधकर

अमह्यं कर्म तत् कृत्वा नीतः कृष्णोऽजदहंताम् ॥ ५७ ॥

राजा—

न ते क्षेपेण सृष्यामि सृष्यता भद्रता रमे ।

किमुक्त्वा नापरादांऽहं कथं तिष्ठति यास्त्रिति ॥ ५८ ॥

अभिमन्युः—यद्यहमनुप्राप्त्य ,

पादयोः समुदाचारः क्रियतां निग्रहोचितः ।

वाहृभ्यामाहृत भीमां वाहृभ्यामेव नेष्यन्ति ॥ ५९ ॥

तर्पन्नमताम् नीतः प्राणितः । यः कृष्णोऽपि न हतस्तमप्यपराधीदित्यर्थः ॥ ५७ ॥

दयादया—ते तर, क्षेपेण निन्दावचनेन, न नहि, सृष्यामि क्रुद्धो भवामि, सृष्यता क्रुष्यता त्रसता भद्रता, रमे प्रउन्नो भवामि, किमुक्त्वा कि कथयित्वा, सृष्यता तिष्ठति यानु गच्छतु वा, अहम् निरादं न नहि, अपराधः अपराधी याम ? कथम् तिष्ठति जयवा वयेष्ट गच्छ इत्युक्त्वाहमपराधी भवेयमिति मारः ॥ ५८ ॥

अभिमन्यु—यदि चेत्, अहम् अभिमन्युः, अनुप्राप्तः मयि कृपा करणीया तर्हि—

दयादया—पादयो मम चरणयोः, निग्रहोचितं बन्दीजनोपमुक्तः समुदाचारः उचिताचरण, क्रियताम् विधीयताम्, इन्धमूते व्यतिकरे, वाहृभ्याम् मुजान्याम् आहृतम् आनीतम्, वाहृभ्यामेव मुजान्यामेव भीमां मम मध्यमतान्, नेष्यन्ति नीन्त्या ममिष्यन्ति ॥ ५९ ॥

उम अमह्यं कर्म को पूरा किया जिसे भगवान् कृष्ण भी पूरा नहीं कर सके ॥ ५७ ॥

राजा—तुम्हारी निन्दा करने में मुझे कष्ट नहीं होता है पर, तुम्हें चिढ़ाने में धानन्द आता है । तुम क्यों खड़े हो अथवा यहाँ से तुम अर जाओ, ऐसा अगर कहूँ तो तुम्हारे प्रति मेरा यह अपराध नहीं होगा क्या ॥ ५८ ॥

अभिमन्यु—यदि मुझे पर कृपा करना चाहते हो तो—

मेरे पैरों में बाँधी जनोचित बन्दी टाळ दीजिए । मुझे कोई हाथों से पकड़ कर लाया, मेरे मध्यम पिता भी मुझे हाथों से छुड़ाकर ले जायेंगे ॥ ५९ ॥

(ततः प्रविशत्युत्तरः)

उत्तर.—

मिथ्याप्रशंसा खलु नाम कष्टा येषां तु मिथ्यावचनेषु भक्तिः ।

अहं हि युद्धाश्रममुच्यमानो वाचानुवर्तो हृदयेन लज्जे ॥ ६० ॥

(उपसृत्य) भगवन् ! अभिवादये ।

भगवान्—स्वस्ति ।

उत्तरः—तात ! अभिवादये ।

राजा—एह्येहि पुन ! आयुष्मान् भव । पुन ! पूजिता

(ततः तदनन्तरम् प्रविशति प्रवेशङ्करोति कुमार उत्तर.)

व्याख्या—येषाम् वन्दीचारणादिजनानाम्, मिथ्यावचनेषु असत्यकृतं
भक्तिः प्रीतिः तेभ्यम्, मिथ्याप्रशंसा असत्यस्तुतिः, खलु निश्चयेन, कष्टा कष्टप्रदानात्,
अहम् उत्तरः हि यतः, युद्धाश्रमम्, युद्धविजयम्, उच्यमानः अभिवीर्यमानः,
सन्, वाचानुवर्तो मुखशब्देन तान्नाभिनन्दन्नपि, हृदयेन चित्तेन, लज्जे जिह्मेमि ॥ ६० ॥

(उपसृत्य समीप गत्वा) भगवन्, अभिवादये प्रणमामि ।

भगवान्—स्वस्ति कल्याण भवतु ।

उत्तरः—तात हे पितः, अभिवादये प्रणमामि ।

राजा—एह्येहि आगच्छ, पुन हे सुत ! आयुष्मान् भव चिरञ्जीव, पुन

(उत्तर का प्रवेश)

उत्तर—भूठी प्रशंसा दुःखदायिनी होती है । चारण और भाटो को तो
मिथ्या स्तुति का अभ्यास ही बना रहता है । ये इस युद्ध के सम्बन्ध में मेरी
प्रशंसा करते हैं और मैं भी वचन से उनकी प्रशंसा करता हूँ । पर हृदय में
लज्जित हो रहा हूँ ॥ ६० ॥

(पास आकर) भगवन् ! मैं प्रणाम करता हूँ ।

भगवान्—तुम्हारा कल्याण हो ।

उत्तर—पिताजी, प्रणाम करता हूँ ।

'राजा—आजो बेटे आजो । चिरजीवी बनो, बेटा, युद्ध में काम आने वाले

योधपुरपा ?

उत्तर—पूजिता । पूज्यतमस्य क्रियता पूजाम् ।

-राजा—पुत्र । कस्मै ?

उत्तर—इहायभवते धनञ्जयाय ।

राजा—कथं धनञ्जयायेति ।

उत्तर—अथ किम् । अनभवता,

श्रमशानाद्भनुरादाय तूणीं प्राक्षयसायके ।

नृपा भीष्मादयो मग्ना वयं च पण्डिरक्षिता ॥ ६१ ॥

पूजिता अर्चिता, कृतकर्माण समर प्रदर्शितपुरूपकारा, योधपुरपा युद्धवीरा ।

उत्तर—पूजिता अर्चिता, पूज्यतमस्य श्लाघनीयस्य, पूजाम् अर्चाम्, क्रियताम् विधीयताम् ।

राजा—पुत्र ह मुत् । कस्मै कस्य पूजाम् करिष्यामि ?

उत्तर.—इह अस्मिन् स्थान अत्र भवते श्रीमत धनञ्जयाय अर्जुनाय ।

राजा—कथम् केन प्रकारेण धनञ्जयाय अर्जुनाय इति ।

उत्तर—अथ किम् इदमवमव्ययमङ्गीकारार्थमिदम् त्वं यदात्थ तत्तथैवत्यर्थं । अत्र भवता पूज्येन धनञ्जयेन ।

व्याख्या—श्रमशानात् श्रमशानप्रदशात्, धनु गाण्डीवम्, आदाय नीत्वा, अक्षयसायके असौणवाणे तूणीम् तुणौरम् च नीत्वा, भीष्मादय भीष्मादि-

प्रमुखा, नृपा राजान मग्ना पराजिता च पुन वयम्, रक्षिता याता । अत पूजामहेति धनञ्जय इति भाव ॥ ६१ ॥

वहादुरो का सत्कार सम्पन्न हो गया क्या ?

उत्तर—सम्पन्न हो गया । अब सर्वाधिक पूज्य की पूजा कीजिए ।

राजा—किसकी पूजा करने को कहते हो वटा ।

उत्तर—वस, इस पूजनीय धनञ्जय की ।

राजा—क्या धनञ्जय की ?

उत्तर—और क्या ? इस धनञ्जय न श्रमशान में अपना गाडीव एवं अक्षय नृपीर लाकर भीष्मादि प्रमुख राजाओं को युद्ध में परास्त किया और हमारी रक्षा की है ॥ ६१ ॥

राजा—एवमेतत् ।

बृहन्नला—प्रसीदतु प्रसीदतु महाराज ।

अयं बाल्यात्तु सम्भ्रान्तो न वेत्ति प्रहरन्नपि ।

कृत्स्नं कर्म स्वयं कृत्वा परस्येत्यवगच्छति ॥ ६२ ॥

उत्तर—व्यपनयतु भवान्छङ्काम् । इदमाख्यास्यते,

प्रकोष्ठान्तरसगूढं गाण्डीवज्याहतं किणम् ।

राजा—एवम् इत्थम्, एतदिति घनञ्जयेन यदि वयम् परिरक्षिता अवश्यमेवायम् पूजामर्हतीति भावः ।

बृहन्नला—प्रसीदतु प्रसन्ना भव, प्रसीदतु कृपा कुरु, महाराज हे नृप ।

व्याख्या—अयम् उत्तर, बाल्यात् शिशुभावात्, सम्भ्रान्त, भ्रमित एव प्रहरन्नपि अरिषु प्रहारं कुर्वन् अपि, न नहि, वेत्ति जानाति । कृत्स्नं सम्पूर्णं कर्म समरविजयम् कृत्वा विधाय, परस्य अयस्य, इत्यवगच्छति जानाति । स्वयं समरे शत्रून् विजित्यान्यकृतकर्म इत्यवस्यति तदयं कुमारस्य बाल्यभावात् सभ्रम एव केवल इति ॥ ६२ ॥

व्याख्या—प्रकोष्ठांतरसगूढम् मणिवन्धमध्ये समुत्पन्नम्, गाण्डीवज्याहतं गाण्डीवस्य एतन्नामकचापकस्थं ज्या मौर्व्याहितम् आघातेन समुत्पन्नम्, किणं व्रणम् यत् दृश्यते, तद् द्वादशवर्षान्ते द्वायधिकदशवत्सरापगमेऽपि मरुपतानं समरूपताम् नैव याति न भवति । अगुनस्य प्रकाष्ठांतरं परस्य बहुकालांतरात्

राजा—क्या ऐसी बात है ?

बृहन्नला—क्षमा करें महाराज क्षमा करें ।

अल्प वयस्क होने के कारण कुमार बुरी तरह घबड़ा गया है, शत्रुजा पर स्वयं इन्होंने प्रहार किया, सारी लड़ाईयाँ इन्होंने स्वयं लड़ी पर, इन्हें लता है, कोई दूसरा लड़ता रहा है ॥ ६२ ॥

उत्तर—आप अपना सन्देह दूर करें । यह आपको बलता रहा है—

कलाई का घाव जो गाण्डीव की प्रत्यक्षा की रगड से उत्पन्न हुआ है वे वे घनञ्जय है घाव के इस चिह्न ने बारह साल बीत जाने पर भी अपना रङ्ग नहीं

यत्तद् द्वादशपर्यान्ते नैव याति सवर्णताम् ॥ ६३ ॥

बृहन्नला—

एतन्मे परिहाराणां व्यावर्तनकृत किणम् ।

सन्निरोधवियर्णत्वाद् गोघास्थानमिहागतम् ॥ ६४ ॥

राजा—पद्मामस्तावत् ।

बृहन्नला—

रुद्रवाणावलीडाङ्गो यद्यह भारतोऽजुंन ।

सुव्यक्त भीमसेनोऽयमय राजा युधिष्ठिर ॥ ६५ ॥

तस्य गार्डनज्याहृतम् चिह्नम् सुरभितमस्ति स अयमजुंन एवेति ॥ ६३ ॥

व्याख्या—एतत् एषः, मे मम, परिहाराणाम्, वर्यमानाम्, सन्निरोध-
वियर्णत्वात् सुन्दरप्रतिबन्धनकृतवर्णभेदात्, गोघास्थानम्, गोव्याघातनिवारण
स्वल्पम् प्रकोष्ठदेशमागतम्, व्यावर्तनम् अनेकपरिवर्तनजन्यचिह्नम्, कृतम्
निर्मितम् । नाय गार्डनचालनचिह्नम् प्रस्युत वलयविवर्तनजन्यचिह्नमस्ति ।
अतोनाह धनञ्जयः व्ययमेवाऽज्ञाऽस्ति ॥ ६४ ॥

राजा—तावदित्यवधारणे, पद्माम्, निरूपयामः, अर्थात् सूक्ष्मतया
निरोधव्य निर्णयङ्करोमि ।

व्याख्या—यदिचेत्, अहम् बृहन्नला, रुद्रवाणावलीडाङ्गो सङ्करसारथत-
गात्रः, भारत भरतवंशीयः, अजुंनः पार्थः अस्मि तर्हि अयम् एष तव पापकः,
भीमसेनः वृकोदरः अस्ति तथा चायम् भगवान् राजा कृपः, युधिष्ठिर धर्मराजः,
सुव्यक्तम् सुस्पष्टमस्ति ॥ ६५ ॥

वदता है ॥ ६३ ॥

बृहन्नला—यह तो मेरे कंगने की रंगड से निहूत बन गये है, ये छस्ते
बार-बार हिलते हैं जिससे मणिबंध छिड़ गया है ॥ ६४ ॥

राजा—हम देखें तो,

बृहन्नला—सकर के शरो पे शवाङ्ग यदि मैं भरतवंशीय अजुंन हूँ तो
निश्चय आर्य भीम है वे महाराज युधिष्ठिर है ॥ ६५ ॥

॥ तस्य पुत्रापराधस्य प्रसादं कर्तुंमर्हसि ॥ ६८ ॥
(इति प्रणमति) १

भीमसेन—एहोहि पुत्र ! पितृसदृशपराक्रमो भव ।

अभिमन्युः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

भीमसेन—पुत्र ! अभिवादयस्व पितरम् ।

अभिमन्युः—भोस्तात ! अभिवादये ।

अर्जुन—एहोहि वत्स ! (आलिङ्ग्य)

अयं स हृदयाह्लादी पुत्रगात्रसमागमः ।

पराधस्यात्मनहतागसः, प्रसाद अनुग्रहम्, कर्तुं विधातुम् अर्हति योग्योसि ॥ ६८ ॥
(इति प्रणमति अभिवादयति)

भीमसेनः—एहोहि पुत्र आगच्छ सुत, पितृसदृशपराक्रम. निजजनकतुल्य
शक्तिशाली भव ।

अभिमन्युः—अनुगृहीतोऽस्मि कृपान्वितो जातः ।

भीमसेनः—पुत्र हे सुत, पितरम् जनकम्, अभिवादयस्व प्रणम्यताम् ।

अभिमन्युः—भो तात हे पित, अभिवादये प्रणमामि ।

अर्जुनः—एहोहि समागच्छ वत्स पुत्र (आलिङ्ग्य गाढालिङ्गन कृत्वा)

व्याख्या—अयम् एषः, सः पूर्वमनुभूत, हृदयाह्लादी चित्तानन्दकर. पुत्र
गात्रसमागम. आत्मजस्पर्श. वः पुत्र, प्रोपितः दूर गतः, त्रयोदशवर्षान्ते त्रयोधिक

बेटे के इस अपराध को आप क्षमा करें ॥ ६८ ॥

(प्रणाम करता है)

भीमसेन—आओ बेटे आओ । अपने पिता की तरह ही पराक्रमी बनो ।

अभिमन्यु—अनुगृहीत हुआ ।

भीमसेन—बेटा । अपने बाप को तो प्रणाम करो ।

अभिमन्यु—पिता जी, प्रणाम करता हूँ ।

अर्जुन—आओ बेटे आओ । (गले लगाकर)

हृदय को आनन्दित करने वाले पुत्र के शरीर का यह वही स्पर्श है जो

यद्ययोदशवर्षान्ति शोषितं पुनरागतं ॥ ६६ ॥

पुत्र ! अभिवाद्यता विराटेश्वरः ।

अभिमन्युः—अभिवाद्ये ।

राजा—एह्येहि बल ।

योधिष्ठिर धैर्यमवाप्नुहि इव भीमं बलं नैपुणमजुनस्य ।

माद्रीजयो कान्तिमयाभिरूप्यं कीर्तिं च कृष्णस्य जगत्प्रियस्य ॥ ७० ॥

(आत्मगतम्) उत्तराचन्द्रिकर्षन्तु मा वाद्यते । किमिदानीं करिष्ये । भवतु,

दशाब्दान्तानि पुनरागतं पुनः प्राप्तवानिति भावः ॥ ६९ ॥

पुत्र हे सुत, अभिवाद्यताम् विराटेश्वरं विराटनृपति ।

अभिमन्यु—अभिवाद्ये प्रणमामि ।

राजा—एह्येहि समागम्यताम् बलं हे पुत्र,

व्याख्या—त्वम् भवान्, योधिष्ठिरम् धर्मराजस्य, धैर्यम् धीरता भीमम् भीमस्य, बलम्, शक्तिम्, अजुनस्य धनञ्जयस्य नैपुणम् निपुणताम्, माद्रीजयोः नकुलगृहदेवयोः कान्तिम् मीन्दर्यम्, आभिरूप्यम् बुद्धिमत्त्वञ्च, जगत्प्रियस्य नमाराज्ञादजनकस्य कृष्णस्य देवकीमुत्तम्य कीर्तिम् यशञ्च, वाप्नुहि प्राप्नुहि । धर्मराज इव धीरो भीम इव शक्तिशाली, पायं इव युद्धकुशल, नकुल इव प्रियदर्शनं सहदेव इव विद्वान्, कृष्ण इव यशस्वी च जायस्देति भावः ॥ ७० ॥

(आत्मगतम् स्वगतम्) उत्तराचन्द्रिकर्षन्तु उत्तरया मह अजुनस्य सम्बन्धः, माम् विराटम् वाद्यते, इदानीम् अधुना, जि करिष्ये जि कर्त्तुं शक्नोमि भवतु

तेरह वर्षों तक अलग रहने के बाद आज फिर मिला है ॥ ६९ ॥

वेदा, विराटेश्वर का प्रणाम करो ।

अभिमन्यु—प्रणाम करता हूँ ।

राजा—आओ बेटे । तुम युधिष्ठिर का धैर्य, भीम का बल, अजुन की रणकुशलता नकुल की सुन्दरता, सहदेव की बुद्धिमत्ता तथा जगत प्रिय भगवान् कृष्ण की कीर्ति प्राप्त करो ॥ ७० ॥

(अपने आप) उत्तरा के साथ अजुन का संबंध मूके चलता है । ऐसी स्थिति

अन्तःपुरनिवासस्य सदृशी कृतवान् क्रियाम् ॥ ७२ ॥ - १२६

अद्यैव खलु गुणवन्नक्षत्रम् । अद्यैव विवाहोऽस्य प्रवर्तताम् ।

युधिष्ठिरः—भवतु भवतु । पितामहसकाशमुत्तरं प्रेषयामः ।

राजा—यदभिरुचितं भवद्भ्यः । धर्मराज-वृकोदर-धनञ्जय । इत इतो भवन्तः ।

अनेनैव प्रहर्षेणाभ्यन्तरं प्रविशामः ।

आचरणेषु व्यवस्थितः स्थिरः, अन्तःपुरनिवासस्यावरोधस्थितेः, सदृशीम् अनु-
रूपाम्, क्रियाम् व्यवहारम् कृतवान् सम्पादितमिति ॥ ७२ ॥

अद्यैव अस्मिन्नेव दिने, खलु निश्चयेन, गुणवन्नक्षत्रम् प्रशस्तगुणयुक्तम्
नक्षत्रम् अतः अद्यैव अस्य अभिमन्योः विवाहं पाणिग्रहणसंस्कारः प्रवर्तताम्
विधीयताम् ।

युधिष्ठिरः—भवतु भवतु स्वीकृतम् मया । पितामहसकाशम् भीष्मस्य
समीपम्, उत्तरम् कुमारम् प्रेषयामः कुलश्रेष्ठ गाणेयम् निमन्त्रयितुम् विराट-
पुरं प्रेषयाम इत्यर्थः ।

राजा—यत् यथा, अभिरुचितम् अभिलषितम्, भवद्भ्यः श्रीमद्भ्यः ।
धर्मराज हे युधिष्ठिर वृकोदर हे भीम, धनञ्जय हे अर्जुन, इत इतो भवन्तः अस्या-
मेव दिशि समागम्यन्ताम् भवन्त अनेनैव प्रहर्षेण आनन्देन प्रविशामः अन्त-
पुरं गच्छामः ।

अन्तःपुर निवास के योग्य काम क्रिया है ॥ ७२ ॥

आज सर्वगुण सम्पन्न नक्षत्र है, आज ही इनका विवाह सम्पन्न करे ।

युधिष्ठिर—अच्छी बात है, भीष्मपितामह के पास कुमार उत्तर को
निमन्त्रण लेकर भेजते हैं ।

राजा—जैसी आप की इच्छा । हे धर्मराज, वृकोदर और धनञ्जय आपलोग

अथ तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति नूतः)

सूतः—भो भोः ! निवेद्यतां निवेद्यतां सर्वक्षत्राचार्यपुरोगाणां क्षत्रियाणाम् ।
एष हि,

अपास्य नारायणचक्रजं भयं चिरप्रनष्टान् परिभूय पाण्डवान् ।
घनुत्सहायैः कुशभिर्न रक्षितो हृतोऽभिमन्युः क्रियता व्यपन्नया ॥१॥
इति ।

(ततः प्रविशतो भीष्मद्रोणौ)

(ततः—अथ पूर्वोत्तरवस्तुवृत्तसंघट्टनायविष्मन्मकरचनादुक्तेन क्यानारत्नते
वत इति) पूर्ववृत्तान्तमित्यर्थः ।

सूनः—भोः भोः इत्यनिदिष्टजनस्य सम्बोधने, निवेद्यतान् कथ्यतान्, सर्व-
क्षत्राचार्यपुरोगाणाम् - सर्वेषाम् सञ्जालानाम् क्षत्राणाम् क्षत्रियाणाम्, अपास्यः
गुरुः पुरोगं अग्रगम्यः येषां तेषाम् द्रोणप्रमुखानामिति, एषः अज्ञो अभिनन्द्युः ।

दशालया—नारायणचक्रजम् नारायणस्य श्रीहृष्णस्य चक्रात् चक्रान्तर्गतं
खत्, समुत्पन्नम्, भयम् त्रानम्, उपास्य विहाय, चिरप्रनष्टान् चिरकालं
अज्ञातवृत्तान्, पाण्डवान् पाण्डुपुत्रान्, परिभूय अनादरम् कृत्वा, अभिनन्द्युः
घुनद्रामृतः, हृतः अपहृतः, घनुत्सहायैः घनुषोरिभिः, कुशभिः कौरवैः, न रक्षितः
रक्षितः संरक्षितुं न समर्थाः, व्यपन्नसालज्या क्रियताम् ॥ १ ॥

(ततः तत्पश्चात् प्रविशतः भीष्मद्रोणौ पितृव्याचार्यौ)

(नूत का प्रवेश)

सूत—अरे खबर कर दो, एकलव्यकाचार्यप्रधानभद्रिषीं को, मह-नारायण
के चक्र का भय छोटकर, बहुत दिनों से सोये पाण्डवों का तिरस्कार का,
घनुओं ने अभिनन्द्यु का अनहरण कर लिया है, कौरव उसे दबा नहीं सके,
लज्जा करनी चाहिए ॥ १ ॥

(भीष्म और द्रोण का प्रवेश)

द्रोण—मृत ! कथय कथय ।

रणपटुरपनीत' केन मे शिष्यपुत्रः

क इह मम शरैस्तैर्देवतैर्मोद्घुक्वाम ।

कथय पुरुषसारं यावदस्त्रं बल वा

बलवत इपुद्गतास्तत्र सम्प्रेषयामि ॥ २ ॥

भीष्म—मृत ! कथय कथय ।

भग्नायानेप्वनभिज्ञदोषस्तारुण्यभावेन विलम्बमान ।

द्रोणः—मृत सारथे, कथय वद, कथय कि वृत्तान्तम् ?

ध्याएषा—रणपटु युद्धकुशल, मे मम, शिष्यपुत्र. अभिमन्यु, केन शत्रुणा, अपनीन अपहृत, तै. जने, मम द्रोणस्य, देवर्त दिव्यं, शरै. वाणै, इह अस्मिन् नसारे, क' पुरुषविशेष' योद्घुक्वाम युद्धाभिलाषी वृत्तते, यावत् यावत्कालपर्यन्तम् अस्त्रम् प्रहरणम्, बलम् शारीरिक् सामर्थ्यम्, वा अथवा, पुरुषसारम् पौरुषम् मारम् यस्यानो पुरुषसारस्त कथय आख्याहि, तस्मिन् अभिमन्युहर्त्तरि रिषो बलवत अतिशयबलशालिन, इपुद्गतान् वाणरूपोद्गतान् प्रेषयामि प्रेरयामि ॥ २ ॥

भीष्मः—मृत सारथे, कथय कथय वद मे—

ध्याएषा— भग्नानाम् पराजितानाम्, अपयानेषु पलायनप्रवृत्तेषु, अनभिज्ञ-दोष' पलायनानभिज्ञत्वस्त्रुपणवान्, तारुण्यभावेन यौवनदर्पेण, विलम्बमान,

द्रोण— सारथी, कहो, कहां,

मेरे शिष्य अर्जुन वा पुत्र रणप्रवीण अभिमन्यु का किमने अपहरण किया है ? मेरे दिव्यवाणों ने कौन छाना चाह रहा है, ललकार दो उसके पौरुष को, कह दो उसके हथियारों वा, मैं अभी अपने बलवान् वाण खी दूतो को उनके पास भेजता हूँ ॥ २ ॥

भीष्म—मृत कहो, कहो,

हारकर भी युद्ध से जो भागता नहीं जानता, यही निममे द्रोण है, इन्हें पर भी जबानी के जोर में जो रणाङ्गण में अजा रहा, उन अभिमन्युहथियारों

केनैप हस्तिग्रहणोद्यतेन यूथेऽपयाते कलभो गृहीतः ॥ ३ ॥

(तत' प्रविशति दुर्योधन. कर्णः शकुनिश्च)

दुर्योधनः—मृत । कथय कथय । केनापनीतोऽभिमन्युः । अहमेवैनं
मोक्षयामि । कुतः,

मम हि पितृभिरस्य प्रस्तुतो जातिभेद-

स्तदिह मयि तु दोषो वन्तृभिः पातनीय ।

अथ च मम स पुत्रः पाण्डवाना तु पञ्चान्

रणाङ्गरो स्थिरीभूतः, एषः असी, कलभ गजशावकोऽभिमन्युः, हस्तिग्रहणोद्यतेन
गजग्रहणप्रयत्नशीलेन, यूथे गजसमूहे, अपयाते निर्गते सति, कलभः गजसिन्धु
गृहीतः । इन्द्रवेद्या वृत्तम् ॥ ३ ॥

(अय पूर्वोत्तरवाती संघटयितुम् पूर्ववर्णितयोः कर्ण-दुर्योधनयोः शकुनिना
सह प्रवेशमाह—तत इति)

दुर्योधन—मृत हे सारथे, कथय वद, केन पुरुषेण, अपनीत. अपहत,
अभिमन्यु' सुभद्राकुमारः अहमेव दुर्योधन एव, एतम् अभिमन्युम्, मोक्षयामि
ग्रहणान्मोक्षयामीति—

व्याख्या—अस्य अभिमन्योः, पितृभि धर्मराजादिपाण्डवैः मह, मम
दुर्योधनस्य, जातिभेद' दयादाभावकृतं वैरम्, प्रस्तुत. उपस्थित. अस्ति, त्वं
तस्मात्कारणात्, इह अस्मिन् प्रसंगे वक्तृभि. लोकैः, मयि दुर्योधने, दोष' कलङ्क,
पातनीयः अर्पणीय, अथ च अन्यच्च, स' अभिमन्युः, मम दुर्योधनस्य पुत्र
स्नेहशीलतया सजन्यसुत इव, तु पाण्डवानाम्, पाण्डपुत्राणाम् पञ्चात् अर्थात्
अभिमन्यु. पाण्डवापेक्षया मयि अधिकत्वेनहशील इत्यर्थः, च पुनः, कुलविरोधे

वालरू को यूथपतियों के भाग जाने पर कितने पकड़ लिया है ॥ ३ ॥

(कर्ण, दुर्योधन एव शकुनि का प्रवेश)

दुर्योधन—सारथे, कहो, कहो, कितने अभिमन्यु का अपहरण किया है,
मैं ही उसे छुड़ाऊंगा, वयोकि—

मेरा उसके पिताओ से विरोध चल रहा है, इस आनुवंशिक विरोध के
कारण उसे पकड़े जाने पर लोग मुझे ही दोषी ठहरावेंगे । इसके अनिश्चित

नति च कुलविरोधे नापराध्यन्ति बाला ॥ ४ ॥

कणं—अतिस्निग्धमनुकूलं चाभिहितं भवता । गान्धारीमातः ।

मा तावत् स्वजनभयात् तु बालभावाद्

व्यापन्नः समरमुखे तव प्रियार्थम् ।

अस्माभिर्न च परिरक्षितोऽभिमन्यु-

गृह्यन्ता धनुरपनीय वल्कलानि ॥ ५ ॥

शकुनिः—बहुनाय खत्रु सोमद्रः । मुक्त एवेति तम्प्रधार्यताम् । कुतः,

सति नत्यपि दायादभावकृतविरोधे, बाला' शिशव' न' नहि, अपराध्यन्ति स्नेहाच्चयन्ते । मालिनी वृत्तम् ॥ ४ ॥

फर्णः—अतिस्निग्धम् परमप्रीतिकरम्, अनुकूलम् स्वगृह्यम्, अभिहितम् कथितम्, भवता त्वया दुर्योधनेन, गान्धारीमात' हे दुर्योधन,

व्याख्या—बालभावात् अनाद्यभवात्, वा स्वजनभयात् आत्मीयजन-कृतनिन्दान्धनभीते तावन्मा नाभिमन्युर्मोक्ष्यताम् तु अपितु तव प्रियार्थम् तव दुर्योधनस्य प्रियार्थम् हितसाधनाय व्यापन्न गृहणमानत', च पुन', अभिमन्यु सुभद्रामुत, अस्माभि कणंशकुनिदुर्योधनादिभि, न नहि परिरक्षित सरक्षित, समरमुखे समराङ्गणे, तेन च धनु चाप, अपनीय, परित्यज्य, वल्कलानि वृक्षत्तच गृह्यन्ताम् धार्यन्ताम् । प्रहृषिणीवृत्तम् ॥ ५ ॥

शकुनिः—बहुनाय अनेकरक्षके' सरक्षित, खत्रु निश्चयेन, सोमद्रः अभिमन्यु', मुक्त वन्धनरहित एव तम्प्रधार्यताम् निश्चीयताम् । कुत इति—

पहले वह मेरा लड़का है बाद में पागड़वो का, वाशिक विरोध रहने पर भी भला उस बच्चे का कमूर क्या है ? ॥ ४ ॥

फर्णः—हे दुर्योधन, तुमने अति प्रेम पूर्ण एव अपने अनुरूप वार्ते कही है—

दर भगल लोकनिन्दा के भय से नहीं, अपने प्यार के कारण भी नहीं, उमें छुडाना तो इसलिय है कि वह रणाङ्गण में आपका हितसाधन करते हुए ही पकड़ा गया है । और हम धनुषारियो से उनकी रक्षा नहीं हो सकी । ऐसी स्थिति में हमें धनुष छोडकर वल्कल धारण कर लेना चाहिए ॥ ५ ॥

शकुनिः—अभिमन्यु को छुडाने वाले बहुत लोग है, उसे छूटा ही समझें ।
क्योकि—

मुञ्चेदजुंनपुत्र इत्यवगतो राजा विराटः स्वयं

स्मृत्वा चाद्य रणाजिरादवजितं मुञ्चेत् स दामोदरम् ।

क्रोधोद्घृतहलात् प्रलम्बमथनाद् भीतेन मुच्येत वा

भीमस्त्वेनमिहानयेद् बलमहान् हत्वा रिपून्जितान् ॥ ६ ॥

द्रोण.—सूत ! कथय कथय । कथमिदानीं गृहीत ।

पर्यस्तोऽस्य रथो ह्या नु चपलाश्चक्राक्षमा मेदिनी

व्याख्या—अर्जुनपुत्र. अयमभिमन्यु. पार्थस्य सुत. इति इत्यम्, अवगत-
प्रतीतः सन्, राजा नृप, विराट. स्वयम् आत्मन एव, अभिमन्युम् मुञ्चेत् बन्धनाद्
मुक्त. कुर्यात्, अद्य अस्मिन्नेवादिने रणाजिरात् समराङ्गणात्, अवजितम्
पराजित्य गृहीतमभिमन्युम् सः विराटेश्वरः, दामोदरम् श्रीकृष्णम्, स्मृत्वा
स्मरणं कृत्वा, मुञ्चेत् बन्धनान् मुक्तः कुर्यात् वा अथवा, क्रोधोद्घृतहलात् क्रोधेन
कोपेन उद्घृत. कम्पित. हलात् हलरूपप्रहरणात्, प्रलम्बमथनात् श्रीकृष्णाग्रजात्
बलदेवात्, भीतेन भयेन, मुच्येत् त्यजेत्, वा अथवा, बलमहान् अतिशक्तिशाली, भीम-
द्वितीय. पाण्डव., जितान् दपितान्, रिपून् शत्रून्, हत्वा मारित्वा, एनम् अभिम-
न्युम्, इह अस्मिन् स्थान आनयेत् नीत्वा आगच्छेत् । शार्दूलविक्रीडितम् ॥ ६ ॥

द्रोणः—सूत हे सारथे कथय कथय, कथम् केन प्रकारेण, इदानीम् अधुना,
गृहीत, बन्धनगतोऽभिमन्यु. ?

व्याख्या—अस्य अभिमन्यो, रथ स्यन्दन, पर्यस्त पतित, ह्या अर्था,
चञ्चला. जाता., नु वितर्के, मेदिनी धरित्री, चक्राक्षमा निम्नोन्नता तेन हि रथ-

विराट को जब यह पता चलेगा कि वह अर्जुन का बेटा है तो वह स्वयं
उसे छोड़ देगा, श्रीकृष्ण वा यह भानजा है यह याद आते ही मुझ में हराकर
लाने पर भी वह उसे उसीक्षण मुक्त कर देगा अथवा क्रोध से हलहिलाने वाले
बलराम के डर से ही विराट उसे छोड़ देगा या महाबली भीम दुस्मनो का
गर्व, दपित कर उसे स्वयं छुड़ाकर यहाँ ले आयेगा ॥ ६ ॥

द्रोण—सूत कहो कहो, वह कैसे पकड़ा गया ?

क्या रथ उलट गया ? घोड़े भडक गये ? रणभूमि रथमचार के योग्य

तूणी क्षीणशरे त्वमस्य विगूणो ज्याच्छेदवन्ध्य धनुः ।

एता देवकृता भवन्ति रथिनां युद्धाश्रया व्यापदो

वाणैरप्यवकृष्यते खलु परैः स्वाधीनगिहस्तु म ॥ ७ ॥

सूत — आयुष्मन् । पुरुषमयो धनुर्वेदः । किनायुष्मता न ज्ञायते ।

न चापि दोषा भवताभिभाषिताः स चापि वाणौघमयो महारथ ।

अलातचक्रप्रतिमस्तु मे रथो गृहीत एवापतता पदातिना ॥ ८ ॥

चक्रभ्रमणानर्हा नु किम् ? तूणी तूणीरे, क्षीणशरे वाणक्षये, नु जाते किम् ? अस्य अभिमन्यो, त्वम् सूत, विगुण गुणरहित' अयोग्यो जात' किम् ? धनु चाप., ज्याच्छेदवन्ध्यम् मौर्वीश्रुटानात् विफलो जातः ? एताः पूर्वोक्ता, युद्धाश्रयाः रणाङ्गणे उपस्थिता रथिनाम् घोघानाम्, देवकृता भाग्यदोषेण प्राप्ताः व्यापदः विपत्तयः, भवन्ति जायन्ते, स्वाधीनगिह यदेच्छाचरणसममुद्धाम्यासशाली सः अती, खलु निश्चयेन, परैः अरिभिः, वाणं शरं, अपि, अपकृष्यते गृह्यते ॥ ७ ॥

सूत—आयुष्मन् चिरञ्जीविन्, पुरुषमयो धनुर्वेद' पुरुषरूपेण साक्षात् धनुर्वेदश्चासी, आयुष्मता अभिमन्युना किं न ज्ञायते किं न जानासि ।

व्याख्या—भवता आचार्यद्रोणेन अभिभाषिताः कथिताः, दोषा दुर्गुणाः न नहि, सः अभिमन्युः अपि महारथ युद्धवीरः, वाणौघमय शरस्रमूहवपी आसीदिति, मे मम, रथः स्मन्दनः, अलातचक्रप्रतिमः भ्रमदुल्लुपकतुल्यः सर्वबोधावेन सर्वत्र नृत्यन् एव, आपतता तस्मिन्नेव काले सम्मुखे समागता केनाप्यपरिचितेन

नही थी ? तरकस के वाण चूक गये, या तुमने प्रतिबुलता दिखलाई ? भयवा धनुष की प्रत्यक्षा टूट गई, लड़ाई के मैदान में वीरो की हार के यह देवी कारण हैं, हाँ कभी कभी शत्रु वाणो से भी प्रतिद्वन्द्वी को सींच लेते हैं किन्तु, अभिमन्यु तो रण कुशल था ॥ ७ ॥

सूत—आयुष्मान्, आपका पता नहीं है कि कुमार अभिमन्यु धनुर्वेद के पुरुषावतार ही है ।

ऊपर आपने जिन खानियों की चर्चा की है, उनमें एक भी नहीं थी, रथ पर सवार होकर कुमार अभिमन्यु शत्रुदल पर वाण बरसा रहे थे, मेरा रथ भी अलातचक्र की तरह नाच ही रहा था कि इसी बीच किसी अपरिचित

सर्वे—कथं पदातिनेति ?

द्रोणः—अथ कीदृशः पदातिः ?

सूतः—किमभिधास्यामि रूपं वा पराक्रम वा ?

भीष्मः—रूपेण स्त्रियः कथ्यन्ते । पराक्रमेण तु पुरुषाः । तत् पराक्रमोऽस्याभिधीयताम् ।

सूत —आयुष्मन् !

दुर्योधन — किमर्थं स्तूयते कोऽपि भवता गर्विताक्षरैः ।

पदातिना पदचारिणा गृहीत एवः अभिमन्यु ग्रहणमागत एवेति । वशम् वृत्तम् ॥ ८ ॥

सर्वे—कथं पदातिना पदचारिणा एव केन प्रकारेण गृहीतोऽभिमन्युरिति आश्चर्यम् प्रकाशते ।

द्रोण —अथेति प्रश्ने कीदृशः पदातिः पदचारिति प्रश्नः ?

सूतः—किमभिधास्यामि किं कथयामि तस्य पदातेः रूपम् आकृतिः वा पराक्रमः शौर्यम् इति प्रष्टुराशयः ?

भीष्मः—रूपेण आकृत्या, स्त्रियं नार्यः, कथ्यन्ते, पराक्रमेण शौर्येण तु पुरुषाः नराः कथ्यन्ते । तत् तस्मात् पराक्रमः साहसम् तस्य पुरुषविशेष्यः, अभिधीयताम् कथ्यताम् ।

सूत —आयुष्मन्-चिरञ्जीविन्,

व्याख्या—भवता सूतेन, 'गर्विताक्षरैः' साभिमानशब्दे, किमर्थम् केन हेतुना, कोपि पुरुषविशेष, स्तूयते प्रशस्यते, मे मम, प्राप्तं मयम्, नास्ति न

वीरने पैदल ही आंगे बढकर रथ को धाम लिया ॥ ८ ॥

सभी—क्या कहा किसी पदाति ने ?

द्रोण—अच्छा तो वह पदाति कैसा था ?

सूत—मैं उसका रूप बताऊँ या पराक्रम ?

भीष्म—ओरतो का स्तूयते प्रशस्यते, मे मम, प्राप्तं मयम्, नास्ति न कहा जाता है, पराक्रम ही बतलाओ सूत,

सूत—आयुष्मन् .

दुर्योधन—क्योकि किसी स्तुति साभिमान शब्दो मे आप कर रहे हैं,

कथ्यता नास्ति मे त्रासो यद्येप पवनो जवे ॥ ९ ॥

सूत—श्रोतुमर्हति महाराज । तेन खड्ग,

लङ्घयित्वा जवेनाश्वान् न्यस्तश्चापस्करे करः ।

प्रमाग्निहयश्रीवो निष्कम्पश्च रथः स्थितः ॥ १० ॥

भीष्म—तेन हि न्यस्यन्तामायुधानि ।

सर्वे—किमर्थम् ?

विद्यते, अतः निःसंकोचभावेन कथ्यताम् उच्यताम्, यदि चेत्, एष भयता वर्ग्य-
मानः पुरुषः, जवे पवनः प्रायुरपि स्यात् भवेत् तथापि मम भय न
भवतीति भावः ॥ ९ ॥

सूत.—श्रोतुम् आकर्णितुम्, अर्हति योग्योऽस्ति भवान् इति । तेन हेतुना, खड्ग-

व्याख्या—जवनं वेगेन, अश्वान् ह्वयान्, रथान्, लङ्घयित्वा अतिक्रमण

कृत्वा, अपस्करे रथस्याग्रिमभागे, करं हस्तं, न्यस्तं स्थापितं, प्रमाग्नि-
हयश्रीवः रथग्रहीतभारेण ह्यनाश्रीवानामागत् प्रसारयन् च रथः स्वन्दनः,
निष्कम्पः अचलभावेन स्थितः स्थिरोभूत् ॥ १० ॥

भीष्मः—तेन कारणेन, हि इति निश्चयार्थं, न्यस्यन्ताम् भुज्यन्ताम्,
आयुधानि अस्त्राणि ।

सर्वे—किमर्थम् केन हेतुना त्यक्तव्यानि अस्त्राणि ।

आप माफ़ शब्दों में घतलाय वह पवन की तरह वेगवान शत्रु क्यो न हो-
में किसी से नहीं डरता हूँ ॥ ९ ॥

सूत—मुनि महाराज । उस पदाति ने—

रथाश्रयो के वेग को अतिक्रमितकर एक ही हाथ से रथ के अगले भाग को
धाम लिया, घोड़ोंने पूराजोर लगाया उनकी गर्दनें लम्बी हो गईं, फिर भी रथ
उस से मम नहीं हुआ ॥ १० ॥

भीष्म—तो फिर हथियार डाल दिए जाय ।

सभी—क्यो ?

भीष्मः—

हृतप्रवेगो यदि बाहुना रथो वृकोदरस्याङ्कगतः स चिन्त्यताम् ।
पुरा हि तेन द्रुपदात्मजा हरन् पदातिनेवावजितो जयद्रथः ॥ ११ ॥
द्रोणः—सम्यगाह गाङ्गेयः । बाल्योपदेशात् प्रभृत्यहं तस्य जवमवगच्छामि ।

इष्वत्त्रशालाया हि,

कर्णायते तेन जरे विमुक्ते विकम्पित तस्य शिरो मयोक्तम् ।

गत्वा तदा तेन च बाणतुल्यमप्राप्तलक्षः स शरो गृहीतः ॥ १२ ॥

व्याख्या—यदिचेत्, बाहुना एकेनैव, हस्तेन, रथः स्यन्दन, हृतप्रवेगः निरुद्धवेगः कृतः तर्हि सः अभिमन्युः, वृकोदरस्य भीमस्य, अङ्के क्रोडे, गतः स्थितः इति चिन्त्यताम् विभाव्यताम्, पुरा पूर्वस्मिन् काले, द्रुपदात्मजाम् द्रौपदीम्, हरन् स्वस्यन्दनेऽवस्थाप्य गच्छन्, तेन भीमेन, पदातिनेव पदचारणेनैव जयद्रथः एतदाख्यनृप, अवजितः पराजितः । अर्थात् रथादवतार्यं द्रौपदीमानीत इति भावः ॥ ११ ॥

द्रोणः—सम्यगाह गागेयः भीष्मः सुष्ठु भणति । बाल्योपदेशात् प्रभृति शोशवादारभ्य क्रियमाणशिक्षणात्, अहम् द्रोणः तस्य भोगस्य, जवम् वेगम्, अवगच्छामि जानामि । इष्वत्त्रशालाया हि अस्त्रशिक्षणविद्यालये हि—

व्याख्या—तेन भीमेन, कर्णायते कर्णपर्यन्ताकृष्टे, शरे बाणे विमुक्ते व्युक्ते सति, मया द्रोणेन तस्य भीमस्य, शिरः उत्तमाङ्गं विकम्पित विधूतम् उक्तम्, कथितम्, तदा तर्हि, तेन भीमेन, बाणतुल्यम् शरसदृशम्, गत्वा घावन् यात्वा,

भीष्म—यदि एक ही हाथ की पकड़ से रथ की गति रोक दी गई तो निश्चय ही अभिमन्यु भीम की गोद में गया है, क्योंकि पहले द्रौपदी हरण के समय भीम ने पैदल ही चलकर जयद्रथ को पराजित कर उसके रथ से सैरम्भी को इसी तरह उतार लिया था ॥ ११ ॥

द्रोण—गागेय का कहना बिल्कुल ठीक है । उसकी इस तीव्रगति से उसके बचपन से ही मैं परिचित हूँ । अस्त्रप्रशिक्षण विद्यालय में—

एक बार भीमने कान तक खींचकर बाण छोड़ा, मैंने कहा बाण छोड़ने में तुम्हारा शिर हिल गया, यह एक दोष है । फिर क्या था जिधर बाण फँका

शकुनि —अहो हान्यमभिधानम् । भा । पृच्छामि तावद् भवन्तम् ।

नास्त्यन्यो बलवाँत्रोक्ते नवंमिष्टेषु बध्यते ।

जगद्द्व्याप्तान् भवन्त वि मर्जे पश्यन्ति पाण्डवान् ॥ १३ ॥

भीष्म —गान्धारराज ! सर्वमनुमानात् बध्यत ।

वय व्यपाश्रित्य रण प्रयाम शस्त्राणि चापानि रथाधिस्टा ।

द्वावेव दोर्म्या ममरे प्रयातो हलायुधश्चैव वृकोदरश्च ॥ १४ ॥

अप्राप्तस्य लक्ष्यदेशम् अप्राप्त एव, ग असौ, शर बाण गृहीत घृत ॥

शकुनि —अहा इत्यादिचर्चो, हान्यम् हसितु योग्यमर्थात् उपहासास्पदम् अभिधानम् कथनम्, भो इति सम्वाधने, पृच्छामि तावद् भवन्तम् त्वम् ।

व्याख्या—लोके सत्सारे, अन्य अपर बाधि पाण्डवेभ्य बलवान् शक्ति-शाली नास्ति न विद्यत । इष्टेषु आत्मीयजनेषु, नवंम् सबलम्, बध्यते प्रयुज्यते प्रगसावचनम्, किम् कथम नवं भवन्त भीष्मद्राणप्रभृतय पाण्डवान् पाण्डु-पुत्रान्, जगद्द्व्याप्तान् सर्वत्रोपस्थितान्, पश्यन्ति मभावति इति ॥ १३ ॥

भीष्म —गान्धारराज, देशकुले, सर्वम् सकलम् अनुमानात् अनुमान-प्रमाणात् बध्यते प्राच्यत ।

व्याख्या—वयम् भगन्तश्च सर्वे, रथाधिकृता स्यन्दने आरोहणम् कृत्वा, चापानि घृत पि, शस्त्राणि आयुधानि च व्यपाश्रित्य अवलम्ब्य, रणम् ममर-भूमिम, प्रयाम प्रत्यान कुर्मं, हलायुध बलभद्र, वृकोदरश्च भीमश्च, द्वावेव उभावेव, दोर्म्याम् बाहुभ्याम् ममरे युद्धे, प्रयात गच्छत । अस्मिन् सत्सारे-

गया था उधर ही दीडकर घाण को लक्ष्य तक पहुँचन के पहले ही उसे पकड लिया ॥ १२ ॥

शकुनि—मूर्ख, वितर्क उपहासास्पद वात है ? मैं आप से ही पूछता हूँ—क्या इस समार म कोई दूसरा वीर नहीं है ? अपने आत्मीय जनों के लिए सब कुछ कहा जाता है । क्या आप लोग पाण्डवों को जगद्द्वयापी मानते हैं ॥ १३ ॥

भीष्म—हे गान्धारनरेश, सब कुछ अनुमान से ही कहा जाता है ।

हमलोग हथियार के साथ रथ पर सवार होकर ही युद्ध यात्रा करते हैं ।

शकुनिः—

एकेनैव वयं भग्ना. सहसा साहसप्रिया. ।

उत्तरं च तमप्येके कथयिष्यन्ति फल्गुनम् ॥ १५ ॥

द्रोण.—भो गान्धारराज । अत्रापि तावद् भवतः सन्देहः ।

किमुत्तरेणापि रणे विकृष्यते निमृष्टशुष्काशनिर्गजितं धनु ।

किमुत्तरस्यापि शरैर्हतातपः कृतो मुहूर्तस्तिमितो दिवाकरः ॥१६॥

केवल द्वापेव पुण्यौ स्तः यौ बाहुप्रहरणौ समराङ्गणे गच्छतस्तेन शक्यतेऽनुमानु-
मिदम् यद्भ्रीमेनेवाभिमन्युर्गृहीत इति ॥ १४ ॥

व्याख्या—एकेनाद्वितीयेन, एव, साहसप्रियाः यलवन्तः वयम्, भीष्म-
द्रोणादयः, सहसा हठात्, भग्ना पराजिता, तमुत्तरम् विराट्पुत्रम् अपि एके
त्वाद्दशा. केचन, फल्गुनमर्जुनम् कथयिष्यन्ति ॥ १५ ॥

द्रोण—भो गान्धारराज हे दुर्योधनमातुल, अत्रापि अस्माकं पराजित-
मर्जुनत्वेऽपि, तावत् भवतः तव, सन्देहः आशङ्क ?

व्याख्या—उत्तरेण विराट्पुत्रेण, अपि, रणे समरे, निमृष्टशुष्काशनिर्गजितम्
कृतशुष्कवज्रध्वनिः, धनु. चापम्, विकृष्यते आकृष्यते किमिति प्रश्ने ? उत्तर-
स्यापि विराट्पुत्रस्यापि, शरैः बाणैः, हतातप-दारितातप, मुहूर्तस्तिमित. क्षण
कालपर्यन्तमस्तंगत इव यथा, दिवाकर रवि, कृत. इति विश्वास्य किम् ॥१६॥

किन्तु ससार में बलराम और भीम दो ही ऐसे व्यक्ति हैं जो केवल बाहुबल के
सहारे रणाङ्गण में उतरते हैं ॥ १४ ॥

शकुनि—हम लोगो जैसे दुर्धरं साहसी धीरो को, हठात् अकेले ही
जिस उत्तर कुमार ने युद्ध में पराजित कर दिया, उसे भी कुछ लोग अर्जुन ही
तो कहेंगे ॥ १५ ॥

द्रोण—वेशक, इसमें भो आपको सन्देह है क्या ?

क्या कुमार उत्तर भी सूखे वज्र की तरह गरजने वाला धनुष खींचना
जानता है ? क्या उत्तर के भी बाणों से भी सूरज डँक जाता है या दिन में ही
अस्तगत सूर्य दीखने लगता है ही ॥ १६ ॥

भीष्म—गान्धारीमातः । विस्मष्ट खलु कथ्यते । ननु जानीते भवान् ।

वाणपुङ्खाक्षरैर्वीज्यैर्ज्याजिह्वापरिर्वतिभिः ।

विकृष्टं खलु पार्थेन न च श्रोत्रं प्रयच्छति ॥ १७ ॥

(प्रविश्य)

सूत—जयत्वायुष्मान् । शान्तिवर्मनिष्ठीयताम् ।

भीष्मः—किमर्थम् ?

सूत—

उचितं ते पुरा वतु ध्वजे वाणप्रघर्षिते ।

भीष्मः--गान्धारीमातः हे दुर्योधन, विस्मष्टम् सुस्पष्टम्, खलु निश्चयेन, कथ्यते । नन्विति वितर्के, जानीते भवान् त्वमिति—

व्याख्या--वाणपुङ्खाक्षरैः शरभूरोज्ज्वितनामाक्षरैः, ज्या मीर्वा, जिह्वा परिर्वतिभि रसनापरिर्वतिभिः, वाज्यै धनुर्ध्वनिभिः, खलु निश्चयेन, विकृष्टम्, आकृष्टम्, पार्थेन धर्जुनेन, न च श्रोत्रं प्रयच्छति किं तत्र भवान् किं न दत्तवान्, अर्जुनेनैवेदम् धनुराट्टप्यत इति स्पष्टमाह्वातम् ॥ १७ ॥

(प्रविश्य प्रवेशं कृत्वा)

सूतः--जयतु सर्वोत्कपेण विजय लभस्व आयुष्मान् चिरञ्जीविन्, शान्ति-वर्मं शमनवर्ग्यम्, अनुष्ठीयताम् क्रियताम् ।

भीष्मः--किमर्थम् कर्म निमित्ताय ?

व्याख्या--ध्वजे स्यन्दनकेतो, वाणप्रघर्षिते अन्ववाणप्रविद्धे सति, पुरा-

॥ भीष्म--हे दुर्योधन, मैं स्पष्ट कहूँगा, आप जानते हैं,

वाणपुस्त पर रिशे शब्द को ज्याम्पररुना से दुहराने वाले धनुष के शब्द ने स्पष्ट कह दिया कि पार्थ ही धनुष खींचते हैं । क्या आपने उधर कान नहीं दिया ?

(प्रवेश करते)

सूत--जय हो महाराज की, शान्ति वर्मं लीजिए ।

भीष्म--क्यों ?

सूत--आपकी ध्वजा दूसरे के वाण से जिग समम बिद्ध हुई, उसके लिए

अयं हि वाणः कस्यापि पुङ्खे नामाभिधीयते ॥ १८ ॥

भीष्मः—आनय ।

(सूत उपनयति)

भीष्मः—(गृहीत्वा निरीक्ष्य) वत्स ! गान्धारराज ! । जराशिथिलं मे चक्षुः ।
वाच्यतामयं शरः ।

शकुनिः—(गृहीत्वानुवाच्य च) अर्जुनस्य । (इति क्षिपति । द्रोणस्य
पादयो पतति ।)

द्रोण —(शरं गृहीत्वा) एह्येहि वत्स ।

पूर्वमेव ते तव भीष्मस्य, कर्तुं मुञ्चितम् शान्तिकर्म विधातुमुञ्चितम्, अयं हि असौ
वाणः शरः, येन वाणेन ध्वजः, केतुः, प्रघर्षितः विद्धः, अस्य शरस्य पुङ्खे मूले,
कस्यापि पुरुषविशेषस्य नाम सज्ञा, अभिधीयते उच्यते ॥ १८ ॥

भीष्मः—आनय समानीयताम् ।

(सूतः सारथिः उपनयति आनयति)

भीष्म —(गृहीत्वा नीत्वा, निरीक्ष्य दृष्ट्वा) वत्स हे पुत्र, गान्धारराज,
जराशिथिलम् वृद्धत्वेन शिथिलम् मे मम, चक्षुः नेत्रम्, वाच्यताम् पश्यताम्
अयम् एषः, शरः वाणः ।

शकुनिः—(गृहीत्वा नीत्वा अनुवाच्य पठित्वा च) अर्जुनस्य घतञ्जयस्य
(इति क्षिपति प्रक्षिप्तवाणं द्रोणस्याचार्यस्य पादयोः चरणयोः पतति)

द्रोण —(शरम् वाणम्, गृहीत्वा नीत्वा) एह्येहि समागम्यताम् वत्स हे सुत ।

शान्ति कर्म और भी पहले करना चाहिए था । जिस वाण ने आपकी ध्वजा
को बेधा है उन वाण पर नाम किसका लिखा है ? ॥ १८ ॥

भीष्म - लाओ वाण । (सारथी लाता है ।)

भीष्म— लेकर और देख कर) वेटा गान्धारराज, वृद्धावस्था के कारण मेरी
आँख काम नहीं कर रही है । जरा पढो तो इस पर किसका नाम लिखा है ?

शकुनि— (लेकर और पढकर) अर्जुन का यह वाण है । (फेकता है,
वाण द्रोण के पैरो पर गिरता है) ।

द्रोण - (वाण लेकर) वेटा, अर्जुन ने इस वाण को भीष्म को प्रणाम

एष शिष्येण मे क्षिप्तो गाङ्गेय वन्दितुं शरः ।

पादयोः पतितो भूमौ मा क्रमेणाभिवन्दितुम् ॥ १६ ॥

शकुनि—मा तावद् भो ! शरप्रत्यय इदानीं श्रद्धातव्यम् ।

यीष स्यादर्जुनो नाम तेनाय चोज्जितः शरः ।

लिखितं चोत्तरेणापि प्रकाशमुपनीयताम् ॥ २० ॥

दुर्योधनः—

तेषां राज्यप्रदानार्थमनृतं कथ्यते यदि ।

राज्यस्यार्थं प्रदास्यामि यावद् दृष्टे युधिष्ठिरे ॥ २१ ॥

व्याख्या—एष अनी, मे मम, शिष्येण पाथेन, गाङ्गेयम् भीष्मम् वन्दितुम् प्रणमितुम्, क्षिप्तं श्रेणित, शर. बाण, क्रमेण क्रमशः, माम् गुरुद्वाराणम्, अभि-
वन्दितुम्, प्रणामम्, कर्तुंम्, पादयो चरणयो पतित भूमौ पृथिव्यामिति भावः ॥

शकुनि.—मा तावद् भो एवम्, मा बद, शरप्रत्यये बाणानुमानविश्वासे,
इदानीम्, अधुना, श्रद्धातव्यम्, विश्वास कार्यं ।

व्याख्या—यीष कश्चिदन्य पुरुषनिशेषवीर अर्जुन धनञ्जय. स्यात् भवेत्
तेन कारणेन अयम् पुरो दृश्यमान. शर बाण उज्जित विमृष्ट स्यात् भवेत्
उत्तरेण विराटपुत्रेण, लिखितम्, अङ्कितम्, प्रकाशमुपनीयताम्, स्पष्टतः
प्रकाश्यताम् ॥ २० ॥

व्याख्या—तेषाम्, पाण्डवानाम्, राज्यप्रदानार्थं राज्य प्रदायितुम्, यदि
चेत्, अनृतम्, मिथ्या, कथ्यते दृश्यते तदा, राज्यस्यार्थम्, साम्राजस्यार्द्धभागम्,

करने के लिए ही भेजा था । और, अब यह बाण क्रमशः मुझे प्रणाम करने के
लिए मेरे पैरों पर गिरा है ॥ १९ ॥

शकुनि—नही जी नही । बाणों पर लिखे नाम पर भरोंसा नही
करना चाहिए ।

अर्जुन नाम का कोई दूसरा यादवा भी ता हो सकता है । वह भी तो बाण
चला सकता है । यह अर्जुन पाण्डव है, इसके लिए कुमार उत्तर द्वारा लिखित
प्रमाण प्रस्तुत करना होगा ॥ २० ॥

दुर्योधन—और यदि उत्तर ने भी पाण्डवों को यादवा राज्य दिलाने के
लिए झूठ का सहारा लिया तो अपनी शक्ति से युधिष्ठिर को देखकर ही यादवा

द्रोणः—किमाह धर्मराजः ?

उत्तर.—श्रूयताम्,

उत्तरा मे स्नुषा लब्धा प्रतीक्षे राजमण्डलम् ।

तत्रैव किमिहेवास्तु विवाहः क्वे प्रवर्तताम् ॥ २३ ॥

शकुनि—तत्रैव तत्रैव ।

द्रोणः—

इत्यर्थं वयमानीताः पञ्चरात्रोऽपि वर्तते ।

द्रोणः—किमाह किं कथितं, धर्मराजं युधिष्ठिरः ?

उत्तरः—श्रूयताम् अवधार्यताम् ।

व्याख्या—मे मम युधिष्ठिरस्य, स्नुषा पुत्रवधूः, उत्तरा एतन्नामिका विराट सुता लब्धा प्राप्ता, राजमण्डलम् राजस्यवर्गम्, प्रतीक्षे तद्विवाहोत्सवार्थम् प्रतीक्षा करोमि, तत्रैव हस्तिनापुरे एव अथवा इहैव विराटनगरे एव, विवाहः पाणिग्रहणोत्सवः क्व कुत्र, प्रवर्तताम् जायताम् इति निश्चीयताम् ।

शकुनिः—तत्रैव तत्रैव विराटनगरे एव भवतु ।

व्याख्या—इति इत्थम्, वयम् भीष्मद्रोणादयः, सर्वेऽपि, अर्थम् पाण्डवोपलब्धिरूपम्, आनीता सम्यक् प्रकारेण समानीता, पञ्चरात्रोऽपि पञ्चरात्र्यात्मकः

द्रोणः—क्या कहा है धर्मराज ने ?

उत्तर—सुनिये—

विराट पुत्री कुमारी उत्तरा मुझे पुत्रवधू के रूप में मिली है । मैं आप सवों के आदेश की प्रतीक्षा कर रहा हूँ । विवाहोत्सव हस्तिनापुर में हो या विराट नगर में, इसका निर्णय आपलोग करें ॥ २३ ॥

शकुनि—वहाँ ही हो, वही ।

द्रोणः—हमने पाँच दिनों के भीतर पाण्डवों को पता कर लिया है । अभी पाँच रात नहीं बीती है । इसलिए धर्मपूर्वक आधा राज्य देने को स्वीकार की

धर्मणावर्जिता भिक्षा धर्मैर्णैव प्रदीयताम् ॥ २४ ॥

दुर्योधन —

वाङ् दत्तं मया राज्य पाण्डवेभ्यो यथापुरम् ।

मृतेऽपि हि नरा. सर्वे सत्ये तिष्ठन्ति तिष्ठति ॥ २५ ॥

द्रोण —

हन्त मर्वे प्रसन्ना स्म. प्रवृद्धकुलसग्रहा ।

अवधित्वेन नियतः कालोऽपि वसति, धर्मेण स्वकृतप्रतिज्ञा पालनपूर्वकेण, आवर्जिता स्वीकृता, भिक्षा मया याचिता गुह्यदक्षिणा, धर्मैर्णैव प्रतिज्ञापूर्वकेनैव, प्रदीयताम् ॥ २४ ॥

व्याख्या—वाङ्म स्वीकृतम्, मया दुर्योधनेन, यथापुरम् पूर्वमिव, राज्यम्, पाण्डवेभ्यः युधिष्ठिरादिभ्यः, दत्तम् प्रदत्तम्, नरा. जनाः, मृतेऽपि मरणान्तरेऽपि, सत्ये ऋते, तिष्ठन्ति, अमते सति तिष्ठन्ति यथाकामेन तिष्ठन्तीति भावः ॥ २५ ॥

द्रोणः—हन्त इति हर्षे, प्रवृद्धकुलसग्रहा विशालवंशद्वयस्य सगमाः अर्थात् पारस्परिकविरोधप्रशमनेन राज्याद्धविभागेन च कौरव-पाण्डवयोः कुलयोः

गई गुह्यदक्षिणा धर्मपूर्वक ही मिल जानी चाहिए ॥ २४ ॥

दुर्योधन—मुझे स्वीकार है । मैंने पाण्डवों को अपना आधा राज्य पहले की ही तरह दिया । यदि सत्य निर्णय रहता है तो लोग मरने के बाद भी यश स्वी शरीर में जिंदा रहते हैं ॥ २५ ॥

द्रोण—आज ये दोनों ही विशाल वंश पारस्परिक द्वेष के प्रशमन हो जाने से उन्नत हो रहे हैं, इससे हम सभी प्रसन्न हैं, सम्पूर्ण धरती का प्रशासन सूत्र

इमामपि मही कृत्स्ना राजसिंह. प्रशास्तु न ॥ २६ ॥

(निष्क्रान्ता सर्वे)

इति तृतीयोऽङ्कः

सङ्गमे गति, वयम् सर्वे जना प्रसन्ना स्म मोदामहे, इमाम् पुरोवर्तिनीम्, कृत्स्नाम् अखण्डाम्, महीम् पृथिवीम् च न अस्माकम् राजसिंहो नामा नृपति प्रशास्तु प्रशासनम् करोतु ॥ २६ ॥

(सर्वे सकलजना, निष्क्रान्ता रङ्गभूमित प्रस्थिता)

इति 'विमला' सस्कृतव्याख्याया तृतीयोऽङ्कः ।

हमारे राजसिंह सभालें ॥ २६ ॥

(सबो का प्रस्थान)

तृतीय अङ्क समाप्त

इति 'विमलाय' मण्डला तर्गतगङ्गादक्षिणतटोपवर्ति 'अकबरपुर' ग्रामाभिजनेन यशोवशेषश्रीमद्देवज्ञरत्न 'कीर्तिनाथशर्मा' तनुजुषा 'डाक्टरेट' उपाधिधारिणा एम एम द्वय व्याकरणज्ञान्नि साहित्याचार्येण श्रीजगदीशचन्द्रमिश्रेण विरचित विमलाख्य सस्कृत-हिन्दीव्याख्याद्वययुत पञ्चरात्र समाप्तम् ।

सम्पूर्ण पञ्चरात्रम्

परिशिष्ट

नोट्स (टिप्पणी)

प्रथम अङ्क

नाटक के नाम को अन्वयकता—दार्शनिक दृष्टि में किमी नाम की अन्वयकता का अभाव चाहे जो कुछ हो साहित्यिक दृष्टि नाम की भाव्यकता तो मानती ही है। नामकरण के औचित्य के सबध में क्षेमेन्द्र का दृष्टिकोण स्पष्ट है—**नाम्ना फर्मान्त्पेण जायते गुणदोषयोः** ।

ऐसी दशा में किमी भी नाटक के प्रवृत्त अर्थ के अनुकूल नाम चुनने में कवि की कला परिलक्षित होती है। इसी अन्वयकता एवं सूषयुक्तता के कारण भास ने 'पञ्चरात्र' शब्द को अयंगौरव की दृष्टि से शीर्षक के रूप में ग्रहण किया है। इस नाटक की सारी घटनाएँ पाँच रात में भीतर ही घटित हुई हैं। 'पञ्चरात्र' पद यहाँ रूपात् परक है।

'पञ्चरात्रमस्ति विषयत्वेन अस्त्येति पञ्चरात्रम्, अर्थ आदित्वादच् ।'

नामात्मिक व्युत्पत्ति की दृष्टि से इनका एक दूसरा भी विग्रह है—

'पञ्चाना रात्रीणा समाहार पञ्चरात्रम् ।' यहाँ सख्यावाचक शब्द पूर्ण में रहने के कारण द्विगु ममास हुआ है।

श्लो० १—द्रोणः—इस नाटक के मङ्गलश्लोक में द्रोण आदि नाटक के प्रमुख पात्रों का नामोल्लेख एक साथ मुद्रालंकार के रूप में किया गया है। नामोल्लेख की यह विधि भास के 'स्वप्नवासवदत्तम्' 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' एवं 'प्रतिमानाटक' में भी देखी जा सकती है। पात्रों के नामों का उल्लेख श्लिष्ट रूप में है। 'द्रोण' काले वाक और मेघ को भी कहते हैं। द्रोण द्रोणाचार्य का भी नाम था। यहाँ कुछ टीकाकारों ने द्रोण का अर्थ विशेषण के रूप में वृष्ण के लिए वाला वीजा का रङ्ग लिया है। लेकिन भेरी दृष्टि में वृष्ण का रङ्ग सघन बादल की तरह श्यामवर्ण था, न कि कौए की तरह। अतः हमने द्रोण

का अर्थ 'मेघ' ही लिया है, 'काक' नहीं। 'कृष्णवर्णसादृश्यात्' द्रोण का अर्थ काला कोआ भी होता है। अत कुछ लोगो ने लक्षणा के द्वारा इसका अर्थ 'द्रोणसदृश अर्थात् 'कृष्णकांससदृश' 'लगाया है। मैं समझता हूँ, द्रोण का अर्थ बादल लगाना ही उचित है, जिसकी उपाय परब्रह्म श्रीकृष्ण को दी जाती है। Cf 'अनावृष्टिहते सस्ये द्रोणमेघ इवोदित' । मृच्छ० १०-२६ ।

पायाद् विराट्—यह भी एक विचारणीय शब्द है। 'विराट प्राचीन पुरुष का प्रतीक है जो हमारे सरक्षक हैं। विराट इस नाटक का एक पात्र भी है जो 'शब्देकदेशलक्षणाविराज्' के रूप में भगवान के साथ पहचाना जाता है जो इस सृष्टि का पुरातन तत्व है और बाद में चलकर विष्णु के रूप में सर्वमान्य है। अत इसका प्रयोग इस श्लोक में दो अर्थों में निहित है—एक तो कृष्ण का निरूपण करता है, दूसरा 'विराट्' नृपति का।

पृथिव्यर्जुनभीमदूतः—इसके भी दो अर्थ हैं—चमक और आश्चर्य का दूत पृथ्वी पर—पृथिव्या अर्जुनस्य भीमाना च (कर्मणा) दूत । यह अर्जुन और भीम के दूत का भी अर्थ बोध कराता है जो कौरव के न्यायालय में घरती पर अपने हिस्से की माँग में उपस्थित हुआ है। एक और बात, 'त्रातुर्ज्यायस' के अनुसार पहले भीम का नामोल्लेख होना चाहिए तब अर्जुन का। किन्तु अर्थच्छवि की दृष्टि से ऐसा प्रयोग किया गया है।

शकुनीश्वरस्य कणधार—शकुनीश्वरस्य, गरुडस्यनिपन्ता । शकुनि इत नाटक का एक पात्र है। दुर्योधन का मामा तथा गान्धार देश का राजा।

दुर्योधन—दुष्कर शत्रुभि योधने यस्य । एक कठोर प्रहारक या अद्वितीय योद्धा। 'दुष्कर' शब्द का 'कर' 'प्रादिभ्यो घातुजस्य' धात्तिक से लोप कर दिया गया है। दुर्योधन की तरह युधिष्ठिर भी यौगिकार्थ सम्पन्न शब्द है युधि स्थिर।

उत्तरग—उत्तर भी युधिष्ठिर की तरह इत नाटक का एक पात्र है तथा शब्दगत इसका अर्थ आश्चर्य जनक कार्य करता हुआ है। उत्तर प्रशस्त कार्य गच्छति आचरति । उपयुदीच्यधेष्टेष्वत्युत्तर इति अमर ।

स्थापना—'प्रस्तावना' और 'आमुख' के सदृश ही 'स्थापना' है। अच्छे-अच्छे नाटकों में 'प्रस्तावना' एवं 'आमुख' का ही प्रयोग मिलता है, 'स्थापना' का नहीं। 'दशरूपक' में भी 'आमुख' और 'स्थापना' की चर्चा तो है पर

'स्थापना' की कोई चर्चा नहीं है। भान न अपने सभी नाटकों में 'स्थापना' का ही प्रयोग किया है। जब कि सूत्रधार पूर्ववर्ग-विधान के बाद मन्त्र से उतर जाना है तो सूत्रधार एक समकक्ष नट, जिसे स्थापक कहा जाता है, रगमञ्च पर आकर नाटक प्रयोग की 'स्थापना' करता है। 'स्थापक' के द्वारा नाटक प्रयोग की यह उपक्रमणिका ही 'स्थापना' कहलाती है।

श्लो० ३-शब्द — इस शब्द का अर्थ सामान्यतः पका हुआ भोजन होता है। लेकिन यहाँ इसका प्रयोग विशेष रूप में हुआ है। कुछ लोग न इस शब्द का प्रयोग स्वतः पुष्प की तुलना में किया है और कुछ खीर के अर्थ में

प्रकुसुमितकाशा इव दिश — यहाँ दिशामो की तुलना काश के फूल से की गई है जो अत्यधिक श्वेत हाता है। OF शरच्छशाङ्गीरेण वाताविद्धेन भामिनि, काशपुष्पलक्षणेदम् साधुनात दृष्ट मम। N F मृगस्तुल्या इत्यादि। यह मस्कृत कवियों के वर्णन की विशेषता है कि वे तपोवन का चित्र ऐसा खींचते हैं जहाँ चैतन्य मानव की बात तो दूर रही, पालतू जानवर भी अपना विकास भयरहित शान्तिपूर्ण वातावरण में कर पाते हैं।

वधनिभृतसिहा — वधे निभृता सिहा येषु — जहाँ सिंह मारे जाने के मय में आक्रांत रहते हैं और इनका अर्थ गणपति शास्त्री के शब्द में 'वधे ताडनेऽपि परकृते निभृता निर्विकारा अकापना सिहा येषु' हैं। सिंह भी शांति एवं तजस्वी जीवन यहाँ उत्साह के साथ बिताते हैं, यहाँ तक कि कोई उम्र तग भी कर देता हो तो उसे वे क्षमा कर देते हैं। सम्पूर्ण विश्व जिस यज्ञ की दीक्षा लेने को कसम-सा ला लिया हो। काम — क्रोध आदि का त्याग तपोवन के अणु-अणु में व्याप्त हो उठा है। इस वर्णन को अत्यधिक उत्प्रेक्षा का उदाहरण कहा जा सकता है।

श्लो० ४-तप्तोऽग्निर्विद्योऽभरोत्तनमुखम् — अग्नि और अमरोत्तम मुख एक दूसरे का विराधामान है। अग्नि देवताओं के मुख को माना गया है — 'अग्निमुखा वै देवा' इति श्रुति। गर्ज-नृपे सदगुर्ण — इसका म्यान 'नृपे विद्यमाने के लिए दीर्घवृत्तीय' है। व्याख्या — नृपे (विद्यमाने इति शेष) गद्गुर्ण उवतो गजत् इदं जगत् सम्प्रति हृष्टम्। सारा ससार राजा की प्रशंसा प्रस्तन हृदय में करता है। उदात्तरोह-अतिशिष्टे — ऊपर उठ गया।

दृष्टाः पक्षिगणाश्च—यहाँ संयोजक 'च' का प्रयोग प्रत्येक शब्द के बाद या संयुक्त शब्द के अन्त में ही होना चाहिए। अतः इसकी व्याख्या 'ते ते नरा' के साथ होनी चाहिए न कि 'पक्षिगणा.' के साथ। ऐसा करने से एक साहित्यिक मुहावरे की भी सृष्टि होती है।

सर्वश—'बह्वल्पायात् शस् कारकात् अन्यतरस्याम्। पा. ५।४।४२ के अनुसार 'सर्व + शस्' से हुआ है।

अत्र भवन्त—पूज्याः। इतराम्योऽपि दृश्यन्ते। (पा. ५।३।१४) इति प्रथमान्ताद् भवच्छब्द योगे तल्। यहाँ 'त्र (ल्) का संयोग सर्वनाम 'इदम्' के लिए कर्ताकारक के रूप में प्रयुक्त है। जब यह 'भवत्' के साथ संयुक्त होता है।

श्लो० ५—'श्लाघ्यप्रभृतश्चवाः—श्लाघ्य' प्रभृत श्रव (ख्याति शाल् श्रवण वा) येषां ते। जिसकी ख्याति एवं ज्ञान प्रशंसनीय एवं विस्तृत है।

— स्वाध्यायशूरैः मुखै—उपलक्षिता। उपलक्षणार्थे तृतीया। जिसके होठ बहादुर हो। जिसकी व्याख्या सीमा रहित हो। स्वाध्याय 'वेदाध्ययनम्' है। सिष्यस्कन्ध० इत्यादि 'श्वित्' का अर्थपूजित हो—उनका प्रशंसनीय हाथ।

— भो भो माणवकाः—'वालः स्यान्माणवक' इत्यमरः। 'अपत्ये कुत्सिते गूढे मनोरौत्सगिक. स्मृत। नकारस्य च मूर्धन्यस्तेन सिध्यति माणव।' स्वार्थेकद माणवक।

अनवसिते—उत्सृष्टव्यः—जैसा कि व्याख्याकार की दृष्टि पड़ी है। यज्ञ समाप्ति के बाद यज्ञमण्डप में, रुडिगरा अग्नि की स्थापना की गई है।

श्लो० ६—एषा "कनकमयभुजैव—यहाँ यज्ञवेदी के स्तूप को स्वर्ण-निमित्तवाहु की सजा दी गई है। (कनकधूपविलम्बवाहु, और रुचिरकनकधूप-व्यापतालम्बवाहु।) चैत्याग्निःलौकिकाग्निः, इत्यादि। चैत्य यज्ञस्थान तद्ग-सोऽग्निः, चैत्याग्निः। यज्ञवेदी पर की आग, तीन तरह की होती है—गार्हपत्य, आहुवनीय और दक्षिण। जिस आग को लडको ने जलाई उसे लौकिकाग्नि कहा जाता है। यह आग यज्ञवेदी की अग्नि से मिश्र तरह की आग नहीं है। महाकवि भास ने इन दोनों (यज्ञाग्नि और लौकिकाग्नि) की तुलना ब्राह्मण और शूद्र के रूप में की है।

प्राग्बंधम्—यज्ञशालाविशेष । 'प्राग्बंधं प्राग् हविर्गोहात्' । यह यज्ञशाला का वह भाग है जिसमें यज्ञ की मारी नामप्रिया सुरक्षित रखी जाती है । अथवा—यह वह स्थान है जहाँ याज्ञिक लोग यज्ञशाल में निवास करते हैं । शीर्षवाग्नि के शब्दों में—'पत्नीशालास्य अग्निशालाया प्राक् षो भाग' ।

श्लो० ७—अग्निरग्निभवादेव—यहाँ प्रथम अग्नि शब्द का प्रयोग पवित्र गार्हपत्यग्नि के रूप में हुआ है तथा द्वितीय अग्नि का प्रयोग सामान्य आग के रूप में । यज्ञवेदी की गार्हपत्यग्नि को यज्ञान्त में ऋत्विजों ने हटाकर प्राग्बंध में रखा था । आग लगने पर लौकिकान्नि से कही यह दूषित न हो जाय इन मय म लोग इसे अलग हटा रहे हैं ।

श्लो० ८—शकटी—शकट शब्द का यह औपत्ययान्त रूप है । मृच्छकटिक में मुरगांशकटिका, मृत्तिकाशकटिका आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है । 'शकटी च घृता पूर्णा'—का आशय यह है—'यथा घृतापूर्णाशकटी वारिणा निच्यमानासि वाग्मनहन धल्यवृत्त दह्यते तयोपरतापत्या नारीवाप्यवारिणा निच्यमानासि वाग्मनहन अपन्यप्रेम्णा दह्यते इति ऋग्वेदो महागया ।

वालस्नेहेन—यह शब्द परस्परित श्लेष के रूप में व्यवहृत है । इनका एक अर्थ है 'वाक् के प्रति स्नेह की भावना' और दूसरा अर्थ है अल्पस्नेह जिसकी उपा अशिशु अल्प घी के माप है ।

श्लो० ९—चक्रधरस्य—सर्वथेष्ट परमात्मा का—सुषोषन, सुष्यति दग्धे परमेश्वरों दग्धुं प्रवृत्त । यज्ञिय सामग्री टोने में प्रवृत्त गाड़ी जहाँ घातों से आवृत्त होने के कारण आग धीरे-धीरे बट रही थी, वहाँ अब तेज आग हो गई और उस गाड़ी का चलाने में जब तत्पर हुई तो क्रमशः फैलती हुई आग को बुझाने के लिये वह आँसु की ओर दब गया ।

नीलशाडूलतया वह्निः शनैर्वाभिन—घातों से हरित होने के कारण यह कम जलता है । पावक शब्द का प्रयोग वह्नि के रूप में पक्ति दो में हुआ है ।

सूर्यापते—सूर्य इव आचरति । मण्डलाकाशतया सूर्य इव भाति । सूर्य चन्द्रात् आचरिं वयत् । कर्तुं वयत् सलोपश्च । पा. ३।१।११ ।

श्लो० १०—वह्नेन भीक्षुः—अन्धमिन्द्र है और इनका शब्द 'दहनाद् भीता' होता है—भीशार्याना भयहेतु । पा० १।४।२५ ।

श्लो० ११—कोटरान्तरदेहस्था—कोटर एव अन्तरदेह देहाभ्यन्तर
तत्र तिष्ठन्ति । आत्मा जो शरीर के अन्दर की वस्तु है, उसकी उपमा किमी
पेड़ की गुफा में प्रविष्ट किसी पत्नी से की गई है ।

श्लो० १२—शक्रेणकेन—इसके लिए Cf एकेनापि कुवृक्षेण कोटरस्थेन
वह्निना । दहते तदन सर्वं कुपुत्रेण कुल यथा ॥ चाणक्यशानकम् में उद्धृत है ।
(इसके बाद दो श्लोक गणपति शास्त्री के द्वारा सग्रहीत पुस्तक में दिया गया है ।
पर, त्रिवेन्द्रम साहित्य के मूल पुस्तक में इन दोनों श्लोकों का अस्तित्व नहीं है ।

श्लो० १४—निविष्टो दुष्कुले माघु—ऽप्राप्त्या—दुष्कुले स्त्रीदोषण
निविष्ट साधु इव दह्यते । 'निविष्ट' का अर्थ यहाँ 'ससृष्ट' है । कोई सत्पुरुष
यदि किसी गलत परिवार की दुष्ट महिला के सम्पर्क में आता है, तो उसका
नाश भी निश्चित होता है ।—दुष्टस्त्रीससर्गं सत्पुरुषस्य दोषाय भवति ।

श्लो० १५—सवक्षक्षुपग्लमम्—वृक्ष क्षुपे गुल्मीञ्च सह वत्तमानम् 'वनम्'
सपुष्ट करता है । क्षुप एक छोटी झाड़ी है । इसका प्रयोग 'अविमारक' में भी
हुआ है । V-६-नभोमागंरूढक्षुपा नीलाम्बुदा ।

श्लो० १६—मघपटल चक्रेण महता—तृतीया उपलक्षणार्थं म है । लम्बा
ताड का पेड़ अपने मधुकोष के साथ बड़ा भयावह दीखता है । इसकी तुलना
रुद्र की कुल्हाड़ी से की गई है जो बड़ा ही सजीक है ।

श्लो० १८—स्रग्भाण्डमरणो—स्रग् का अर्थ कलटुल और भाण्डम् का
अर्थ काठ का कटोरा होता है । 'स्रक्' हवनी सन्न जुहूपमृदादिभेदभिन्न दारमय
होमसाधन—तद्रूप भाण्ड पात्रम् । उपमुष्पने—अग्नि के साथ जलन का बोध कराता
है । जहाँ उपमान के साथ इसका अर्थ 'खा जाना' होता है । विक्रीय जीवति—
वेचकर खाता है ।

श्लो० १९—चलितं कपर्णहस्तः—चलित एक पत्रं एव हस्ता यस्य स
तथाभूत यहाँ पेड़ की टहनियाँ नदी के ऊपर झूल रही ह और जैसे-जैसे हवा
उगहे झुलाती है, वह पानी पर अब डूब रही है । मानो वह आग में जलकर
मरे हुए अपने वृक्षवधुओं को जलाजलि दे रही है । कवि की यही कल्पना है ।

श्लो० २०—आगतकथा मधुर—आगतस्य प्रसक्तस्य यज्ञस्य कथया
प्रस्तावेन मधुर यथा भवति तथा ।

पाण्डवपरिग्रह कुर्वन्ति—सधुतामूलक क्रोधका परित्याग कर अपन स्वजनो पर दया करने का अनुरोध किया है। शब्दान्तर में पाण्डवा के ऊपर महृदयता दिखाने का स्पष्ट आग्रह है।

विष्कम्भक — विष्कम्भक तथा प्रवेशक में भी विष्कम्भक प्रधान है। प्रवेशक विष्कम्भक का ही दूसरा रूप कहा जा सकता है। जहाँ नीच पाद होते हैं तथा उसका प्रयोग प्रथम अक्षर के प्रारम्भ में नहीं होता। विष्कम्भक के द्वारा मूल काल की या भविष्यत काल में होने वाली घटना की संकेत किया जाता है। यज्ञ को कार्य समाप्त हो चुका था। इस विष्कम्भक के माध्यम से नाटक की क्या वस्तु को समझा नहीं जा सकता। कवि ने अग्नि को विस्तृत वर्णन किया है। इस क्रम में उन्होंने यज्ञ महद्वज्जने का तथा यज्ञीय सामग्रियों को भी जला डालने का रोचक वर्णन किया है।

श्लो० २२—स्यग्रहणात्—यहाँ यह पाण्डवों की सम्पत्ति का जूए में जीने के तात्पर्य को सपुष्ट करता है। 'स्य' का अर्थ पुनरुत्त स्वर्णमुद्रा या काना जैसे धातुओं के निकले से है। रूपादाहितप्रशंसिर्गोपु। पा. ५।२।१२०। स्य आहृतस्वर्णरज्ज्वे।

अवशो निपीतवान्—अवश को भी जिसने पी लिया है—नितरां अनुभूतवान्।

श्लो० २३—मे निवसति गुणो—मुझमें दयादि गुणों का निवास हो रहा है। यहाँ निवसति का अर्थ नितरावसति है। मयि स्थिरवान् करोति 'मि' शब्द का प्रयोग इस श्लोक में उपयुक्त नहीं है—जगद् विश्वस्तं मे। फिर भी, यहाँ 'मयि' का प्रयोग संस्कृत भाषा के अनुसार होना चाहिए। फिर भी, इसे हम गुण के माय ग्रहण कर सकते हैं। मे मम गुण निवसति।

यदिह कथयति—यहाँ 'लोके' या 'आगमे' विषय प्रयोग उपयुक्त होगा।
व्याख्या—मूर्त प्राप्य स्वर्ग (दति) यदिह (लोक) कथयति एतद् अनुत्तम्। VL यदिह कथयन्त्येतदनुत्तम् अच्छा होगा।

गान्धारीमातः—इस तरह का प्रयोग भारत ने बहुत किया है—मुनिगामान, कौरवगामाज, केकेयीमान, (प्रतिमा)। शौरसेनीमात, यादवीमात, (वालचरितं मे)। काण्वेलीमात (चारुदत्त मे)।

इस तरह के प्रयोग में पाणिनि के नियम की उपेक्षा की गई है, पाणिनि के अनुसार नद्यृतरच्, से कप् होना चाहिए ।

समाप्तान्तविधि की अनित्यता मानकर इसको शुद्ध कर लिया जाता है ।

— धौतकल्मपाङ्गः अङ्गराजः—अनुप्रास का यह एक सायास प्रयोग है ।
धौत कल्मपं यस्मात् तद् धौतकल्मषम् । धौतकल्मपं अङ्गं यस्य सः । अर्थात्
कायविशुद्धः ।

श्लो. २५—इक्ष्वाकुशर्याति—ये सारे सूर्यवंशी राजा अपनी महानता और
द्रयालुता के लिए प्रसिद्ध थे । नष्टाः शरीरैः ऋतुभिर्धरन्ते । Cf हतेषु देहेषु गणा
धरन्ते—कर्णभार १७—धरन्ते किन्तु यहाँ आत्मने पद का प्रयोग असामान्य है ।
सामान्यतः ध्रियन्ते (अर्थात् जीवन्ति) रूप आता है ।

अयमक्रमः—मास को क्रम के प्रति एक आस्था है । इस तरह का प्रश्न
उन्होंने प्रतिमा में भी उठाया है । Cf राजा रामो लक्ष्मणो वैदेही व्ययमत्रम
सुमन्त्रः—अथ कः क्रमः । प्रतिज्ञा ii. १४२० ।

श्लो० २६—वैवंतं मानुषीभूतम्—महाभारत I-१०६ में भीष्म को
'देवता' का अवतार आना गया है । ये आठ 'यसुओ में से एक है । शापवस
इन्हे मनुष्य योनि में आना पड़ा है । अतः इन्हे मनुष्य के रूप में देवता कहा
गया है । दूसरी पंक्ति की छंद रचना जटिल है । व्याख्या—भीष्ममुत्क्रम्य
वन्दितु आचरणं अहं न मन्ये । वन्दितुम्—'तुमुन्' क्रियार्थ है । क्रियोपपद-
वन्दितुम् आचरणं वन्दितुं चेष्टितं अहं न मन्ये नातुजानामि । भीष्म की उपेक्षा
कर तुमने जो प्रथम मुझे प्रणाम किया है, उससे मैं संतुष्ट नहीं हूँ । या हम
वन्दितुं की व्याख्या अन्य तरह से भी कर सकते हैं—जहाँ 'तुमुन्' मात्र धात्वर्थ
के लिए ही प्रयुक्त है अर्थात् वन्दनं, आचरणं, अर्थात् शिष्टाचारं न मन्ये । भीष्म
की उपेक्षाकर इस प्रणाम को मैं शिष्टाचार नहीं मानता ।

नमस्यताम्—'नमस्यति' का कर्मवाच्य आज्ञा सूचक अन्ध-पुरुष एक
वचन है । नाम धातु—नमस्+व्यच् । 'नमोवरिवश्चित्रड' के अनुसार
पा० ३।१।१९ ।

श्लो० २७—भवान् स्वयम्—भीष्म का यह कथन है । उन्होंने द्रोण की
श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए यह कहा है कि मुझे माता ने जन्म दिया है और

आप स्वयम् अयोनिज हैं। महाभारत आदि पर्व के खण्ड-१३० म द्रोण के जन्म की कथा वर्णित है। उनका जन्म भरद्वाज मुनि के कल्पम हुआ था। अतः वे स्वयम् हैं।

अपह्नव—शब्द यहाँ एक विशेष अर्थ में प्रयुक्त है। वस्तुतः अपह्नव का अर्थ श्मशान होता है। किन्तु, म. म. गणपति शास्त्री ने इस शब्द की व्याख्या करते हुए 'स्नेह' अर्थ लिखा है—अपह्नव स्नेह यद्भावितचित्तस्य रागद्वेषौ न स्तः सा। भूतमैश्रीत्यर्थः। अपनी इस व्याख्या की संपुष्टि में उन्होंने वैजयन्ती का उद्धरण दिया है 'अपह्नवी ह्युत्तिम्नही'।

शिष्यमहत्तरा—प्रमुख शिष्य। 'महीयस्' की तरह 'महत्' की तुलना 'महत्तर' के साथ है।

नोत्सहन्ते महात्मान—यह वाक्य अतिनिहित प्रसन्दाचक है। क्या महात्मा लोग अपनी प्रशंसा करने में तत्पर होते हैं?

बुद्धिप्रशमनम्—बुद्धि महस प्रशमन रागद्वेषादि कणुपतानिवृत्ति। तुम्हारी बुद्धि प्रशान्त हुआ करे।

श्लो० २८—समानीय—अनुष्ठाय। प्राप्तदक्षिणान—आशा पर्याप्ता दक्षिणा येषु तान्। यहाँ ऋतु शब्द यज्ञार्थपरक है। यहाँ ब्राह्मणों को उदारता पूर्वक दान दिया जाता है। Cf ऋतुभिश्चाप्तदक्षिणैः। द्रोणपर्व १८-२५।

उद्योग जनयति—यहाँ 'उद्योग जनयति' का अर्थ हुआ 'युद्ध के लिए प्रेरित करता है। यह अभिव्यक्ति प्रतिमा I-१९ में आता है। अस्मद्राज्य-भ्रंशा भवत उद्योग जनयति। प्राप्तश्रम—'प्राप्तपर्याय यथा भवति तथा'।

श्लो० २९—अन्तस्त्वयनमाग्य—म. म. गणपतिशास्त्री के शब्दों में—प्रातिपूर्वकमनाभाष्य—इसकी व्याख्या करते हुए आचार्य रामचन्द्र मिश्र ने लिखा है—यज्ञानुष्ठाननियमादिना वृशकायस्त्वम् मदालिङ्गनज वल् यदि सोऽद् गद्यनि तदाह त्वा दृढमालिङ्ग्य मुसयिष्यामि, पर त्वदाय हृदयाभिप्रायम ज्ञात्वा नाह प्रवर्त्तयिष्ये त्वालिङ्गने इति भावः।'

सभाजयति—बधाई देता है। 'सभाज प्रीतिसेवनयो' चुरादि। स्नहात् सभाजयितुमेत्य दिना यमूनि। उत्तररामचरि० १, ३।

—वासुभद्रेण—वासुदेवेन । वासु का यहाँ अर्थ है वासुदेव, सम्पूर्ण वासुदेव शब्द के लिए यहाँ उसके एक देश 'वासु' का प्रयोग किया गया है । वासुश्चासी भद्रश्च । बलभद्र या रामभद्र की तरह यहाँ श्रीकृष्ण के लिए वासुभद्र का प्रयोग किया गया है । क्षीर स्वामी ने इसकी व्याख्या की है—'जगत्या सर्वहृदये चसतीति वासुः ।' महाभारत की कथा के अनुसार अभिमन्यु ने गोग्रहण में भाग नहीं लिया था । उत्तरा के साथ इसकी शादी निश्चित हो जाने पर ही बाद में इसे मत्स्यपुर अर्थात् विराट नगरी में बुला लिया गया ।

व्यश्रयिष्ये—मैं प्रार्थना कर लूँगा (कालान्तर में माँग लूँगा) (वि + अप् + श्रि) इसी अभिव्यक्ति का उपयोग 'मध्यमव्यायोग' में भी एक जगह किया गया है—“बुद्धा—हन्त, निराशा स्म. । भवतु, पुत्र व्यपश्रयिष्ये तावदेनाम् । स्वप्नवासवादत्ता मे इस की व्याख्या है—व्यपाश्रयणा=प्रार्थना । आचार्य रामचन्द्रमिश्र ने लिखा है—“व्यश्रयिष्यते—साधारणो हि याचको दातार समग्रान्तरे याचते, आचार्यस्तु न भवति मामान्ययाचकोऽतो नोचितम् तस्य व्यपश्रयणमिति ।

—, इतो० ३०—पीतः सोमो, बाल्यदत्तः—आचार्य ने युवावस्था में ही सोम-रस का नियोगात् अर्थात् विधिवत् पानकर लिया है । (बाल्यदत्तः—बाल्ये तरुणे वयसि अभिपुत.) यन्न दग्धिः यस्मिन् दग्धिः ।

अशपस्तावत्—पानी लाओ । जल की यह माँग कई नाटकों में विभिन्न परिस्थितियों में देखी जाती है । यथा—अभिषेक—१-२६^०, प्रतिमा २-२०^६, मध्यम १-४७^४, दूतवाक्य १-४३^३, प्रतिज्ञा १-१५^{१९} ।

अधुवातोच्छिष्टस्य—वाष्पासारदूषितस्य अर्थात् धासुओ से अपवित्र
इतो० ३२—करणम् प्रतिग्रहाणाम्—प्रतिग्रहाणाम् दामनस्वीकरणानाम् करणम् साधनम्—यहाँ करणशब्द अत्यधिक प्रभावकारी साधन या प्रमाण है । करण का यही अर्थ है एक बन्धपत्र, अनुबन्ध या प्रमाणपत्र । उदाहरण—
मनु० Nu ५१५२ ।

इतो० ३३—येषां गतिं क्वापि—यथा निराश्रयाणाम् कुत्राप्याश्वस्तमाश्रय-मलभमानानां कुत्रापि गतिं नोपलब्धा—जिन्हें कोई आश्रय नहीं है । महा-भारत के अनुसार कौरवों को यह पता नहीं था कि वारहवर्षों तक पाण्डव

दर दर की ठोकर खाने के बाद यह तेरहवाँ वर्ष अज्ञात वाद्य म स्म्य म वहाँ व्यतीत कर रहे हैं। प्रथम पक्ति म उल्लिखित सर्वनाम ययाम् की तरह द्वितीय पक्ति म पाण्डवाग के साथ तेषाम है।

श्लो० ३४--उपन्यस्तस्य--दक्षिणादानोपयासम्, दक्षिणा देन के प्रस्ताव को उपस्थित करने वाले प्रतिगृह्यणाम् दक्षिणा इति उपन्यास कुर्वाणस्य। उपन्यस्तस्य = उपन्यस्यवत् क्त्वरिक्तः। और इसका एक अर्थ मर्मपित्त (तुम्हारी देवरेख) म भी हो सकता है। गौरव-गुणस्व तुम्हें आध्यात्मिक पद प्रदर्शक मान कर जिन पर विश्वास किया।

यज्ञप्रस्तुतम्—यज्ञे प्रस्तुतम्, यज्ञ के लिए आवश्यक बनाना अर्थात् यज्ञ की आवश्यकताओं से लाभ उठाना यथा इप्सितदान प्रभृति, धनवञ्चना-धर्मण हतुना वञ्चना धर्म के नाम पर छल।

गान्धारविषयविश्विमत विश्विमत गवित। विश्विमत शब्द का प्रयोग अन्यनाटको म भी इसी अर्थ म हुआ है—यथा-विहगजाहनमानविश्विमत द्रुतवाक्य। १-१०

मयल्लोकमनार्यमिति मन्वसे—यहवाक्य रचना अनियमित है। इन होना चाहिए था। नवं लाक अनायं इति मन्वस। यहाँ इति शब्द का लोभ भी जा सकता है। सूत्रि 'मयस' सर्वलोकमनार्यम्' म द्वितीया विभक्ति का प्रयोग है। इति का एना प्रयोग गीता म भी उपलब्ध है "यमन्याममिति प्राहुः" ६-२१।

श्लो० ३५—किं पर याचितं दंत बलात्कारेण तं हतम्—ऐसा ही प्रयोग भास न श्रीकृष्ण के मुख से द्रुतवाक्य म किया है—

दातुमंहति मदाक्यात् राज्यायं घृतराष्ट्रज।

अन्यथा मागराता गा हरिष्यति हि पाण्डवा ॥

याचितं—याचनाभि। भावत् ।

अवभृयस्नानमात्रमेव खलु—इद यज्ञान्तस्नानम्। यहाँ 'इदानीम्' वर्तन का प्रयोग होना चाहिए। तुम इस समय यज्ञान्त स्नानकर चुके हो। इन पवित्रतम स्थिति म तुम्हें शकुनि की बात नही सुननी चाहिए क्योंकि शकुनि मित्रमुख. मित्र मुखम्—वाक्यस्य अर्थात् वाङ्मत्तमित्रम्।

धर्मच्छलेन—धर्मः— इति छलं तेन । धर्मच्छलेन सत्यवचनपालनाग्रहेण । धर्म शब्द के नाटकीय व्याज से । द्यूताश्रयवृत्तिः—द्यूतव्यसनी, जुए का शौकीन ।

श्लो० ३८—तोलयन्नेव—जब वह 'ज्घ्वोन्मुख हो ही रहा था । म० म० गणपतिशास्त्री ने इसकी व्याख्या की है—उन्मिमान एव । उन्मानमिह तारतम्य-परीक्षणम् । किमनेन स्तम्भेन घर्षयितृन् प्रहरेयं किममुना स्तम्भेनेति तत्सारफल्गु-ताम्—दृष्ट्या पर्यालोचयन् नन् । यथा—एष दुरात्मा भीमः सर्वराजनमत्तमव-मानिता द्रौपदी दृष्ट्वा प्रवृद्धामयं सभास्तम्भ तुलयति । दूतवाक्य—१-७ ।

यद्येवमिन् विमुक्तः—किसी एक व्यक्ति पर आक्षेप किया गया है । यद्यपि स्पष्टतः किसी का नामोल्लेख नहीं है फिर भी स्पष्टतः शकुनिकी ओर संकेत है ।

कर्दमम्—दृत्सितः शब्दः । एषा च भिक्षा मम दक्षिणा च “इत्येवं रूप याश्चादेन्यपरः शब्दः । म० म० गणपतिशास्त्री ने इसका अर्थ 'सुशामद' लिखा है । अर्थात् सुशामद मत करो ।

कर्दमम् का अर्थ है 'कुत्सितम् याचनम् ।'

श्लो० १-३६—ज्येष्ठो भवान्—इस कथन से स्पष्टतः यह पता चलता है कि उम्र की दृष्टि से दुर्योधन पाण्डवों से बड़ा था । किन्तु, महाभारत, आदि पर्व के अनुसार युधिष्ठिर तो कौरवों से बड़े थे ही । कदाचित् भीम भी दुर्योधन से बड़े थे । क्योंकि दुर्योधनका भी जन्म उसी दिन हुआ था जिस दिन भीम ने जन्म लिया था—

‘यस्मिन्नहनि भीमस्तु जज्ञे भारतसत्तम,

दुर्योधनोऽपि तत्रैव प्रजज्ञे वसुधाधिप ।’—महाभारत, आदिपर्व.

इसी श्लोक के अन्तिम पंक्ति में प्रश्नार्थक दो विकल्प उपस्थित किये गये हैं—कुटुम्बे तान् धारयिष्यसि ? अथवा—‘पाण्डवाः मृगं सह वर्तयन्तु । तान् पाण्डवान् कुटुम्बे परिवारे धारयिष्यसि अन्तर्भाव्यपरिपालयसि ? अथवा—पाण्डवाः मृगं सह वर्तयन्तु = देहयात्रा कुर्वन्तु । यहाँ वृत् घातु का प्रेरणार्थ रूप (वर्तयति) है जिसका अर्थ सदा कार्य रत रहना है ।

श्लो० ४०—गतमित्तमवसानम्—इदम् अवसानम् गतम्, अब यह बात समाप्त हो चुकी है । रक्ष्यताम्—शिष्यकार्यम्—शिष्यकार्यम् से कौरव और पाण्डव दोनों ही शिष्यों का हितसाधन कीजिए । ‘पाण्डवों को ‘राज्यांशप्राप्ति

म्ह' अर्थात् आधा राज्य दिलवाकर हित मापन करें और बीरवी को 'गुरु-दक्षिणादान प्रतिज्ञा' की श्राप्ति करें ।

श्लो० ४१—धर्माधिकारवचनेषु शमीभवन्तु—धर्माधिकारिणः धर्मोप-
देशाधिकारिणः गुरुना', तथा वचनेषु अर्थात् भूदाटशाना महाकुलाना वाग्धव-
द्विग्रहो गुरुजनोपदेशैरेव शास्त्रान्ताति भावः । इतो तरह का अन्य प्रयोग 'परिष्वङ्गः
गनीक्रिया' और नष्टानि कार्याणि शमीकरोति । अविमारव ६-१६ पृष्ठक ।

समर्पयितुम्—अनुमोदनम् वारयितुम्, स्वन्नहायाना सम्मति प्राप्तमित्यर्थः ।
हृन्विपन्नम् कार्यम्—यह वाक्य 'बालचरित १-१९ में प्राप्त है ।
यह एकस्वगत भाषण है और हम इसमें मच्च प्रदर्शन की आशा करते हैं ।
'जानगतम्' मन्दमंगत है ।

यदि दातव्ये राज्ये—राज्ये यदि दातव्ये, जिसका अर्थ है 'राज्य
दानव्यम् चेत, यहाँ निदेश की अल्पपृथा के कारण 'यदि' का प्रयोग आवश्यक
नहीं है ।

श्लो० ४५—क्षमाक्षत्वे तु भवान् प्रमाणम्—राज्याद्ध'दानस्य क्षमा-
क्षमत्वे युक्तानुक्तत्वे—तुम्हें अकेले ही इस बात का निर्णय लेना है कि राज्य
आधा हिस्सा जो तुम पागड़वों को दोगे, वह उचित है अथवा अनुचित ।

सुभ्रातृनाम्—दन्दिते भ्रातु । पा० ५।४।१५६ इति क्य प्रतिषेधः ।
शोभनः भ्राता यस्य अतो सुभ्राता, तस्य भावः सुभ्रातृता । भातृ ने 'सौभ्रातृम्'
गन्द वा प्रयोग प्रतिज्ञा १-३० अभियेक ३-२५ में किया है ।

श्लो० ४६—शून्यमित्यभिधास्यामि—ऐना कोई देश नहीं है जहाँ
पार्थ से अधिक शक्तिगाली कोई अन्य बीर हो अथवा—जहाँ राजा युधिष्ठिर राज्य
जर्गे वतां कमर भी ऊपदाऊ हो जायेगा इस तरह की बात महाभारत में भी
कही गई है—

सदा च तत्र पञ्चन्यः सम्यग् वर्षा न मञ्चयः

सम्पन्नस्य च मही निरातङ्का भविष्यति

न भय त्वा दिद्येत्तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः । महाभारतविराटपर्व २८

श्लो० ४७—अनमिह कुलवृद्धं—यहाँ वृत्तिया का प्रयोग कुलवृद्धेभ्यः के
लिए प्रयुक्त है । यदिहृ पृथिव्याम् प्रमाणम् कुलवृद्धेषुखाव धृतम् अवगतम् । नैन

गुह्यदेव के हाथ में जल छोड़ दिया है। यह इस दानि का प्रमाण है, ऐसा कुल-
वृद्धों ने शास्त्रों से जाना है। 'अपनय' तस्मात् जलदानादिकर्म अपनय—अनीति-
वाचञ्चना द्रोणकृतास्मदप्रतारणा यथा वा अन्य एव वा कोप्यनयो भवत्
जायताम्, नृप—शकुनि के लिए प्रयुक्त है।

श्लो० ४८—सम्बत्सरद्वादशभिर्न दृष्टा—म म गणपति शास्त्री ने
इसकी व्याख्या की है—द्वादशवर्षों में करणभूत—यहाँ तब की उनकी व्याख्या
का तात्पर्य यह है कि—

प्रतिज्ञा यह थी कि बारह वर्षों के बनवास के बाद पाण्डवा को एक वर्ष
गुप्तवास में रहना पड़ेगा। इस गुप्तवास की अवधि में यदि वह किसी की
पहचान में आ गया तो पुनः बारह वर्षों का बनवास भोगना पड़ेगा। किन्तु
कठोर धर्म के बाद भी कौरवों को गुप्तवास की अवधि में पाण्डवा का पता
नहीं चल सका। किन्तु, भास महाभारत की इस प्रचलित कथा में पूर्णतः अन-
भिज्ञ प्रतीत होते हैं। क्योंकि, इनसे पूर्व के पद्य में उद्घोषित लिखा है कि 'बारह
वर्षों से जिनका पता नहीं चला है—

येदा गतिं चापि निराश्रयाणा मवत्सरेद्वादशभिर्न दृष्टा

—पञ्चरात्रम् १, ३३

अच्छलो घम—अच्छल भिक्षुत्व नाम। अविमारक ४-१२-३३ अच्छलो
हि स्नेहो नाम अविमारक-५-४

श्लो० ५०—हनूमत्त्व गता स्पृहा—स्पृहा अभिलाष, हनूमत्त्व गता मम
इच्छा हनूमत् इच्छेधातिविशाला जातेत्यर्थः। हनूमान को भी सीता के निवास
स्थान का कुछ भी पता नहीं था 'फिर भी उन्हें जानका का पता लगान में
मफलता मिली। दूसरी पंक्ति में प्रयुक्त 'येन' शब्द हनुमत् शब्द का ही बोध
कराता है। प्रथम पंक्ति में यद्यपि जो शब्द अप्राप्य है फिर भी हनूमत्त्व के
तद्विध रूप में वह प्राप्य है।

कुतो न खलु पाण्डवाना प्रवृत्तिरूपानेताव्या—तो फिर कहाँ से पाण्डवों
का पता चले? द्रोण के इस स्वगत प्रश्न का उत्तर भट्ट के—शब्दों में मिला
है—'विराटनगरात्' यद्यपि इसने यह उत्तर अन्य उद्धरणों के रूप में दिया है।

द्वितीय अङ्क

गोपालो के इस दृश्य की तुलना 'वालचरित' के तृतीय अंक के प्रारम्भिक दृश्य के साथ की जा सकती है ।

अहीनवत्साः—न हीना अहीनाः, अहीना वत्सा यासां ता अहीनवत्साः । अहीनवत्साः की दूसरी व्याख्या 'स्वस्तिमन्त' अथवा—'अनपेत' भी की जा सकती है ।

आ अन्तु—इसे 'आ अन्तु' आयान्तु होना चाहिए । म० म० गणपति शास्त्री ने इसकी व्याख्या—'आअन्तु आगन्तु सञ्जीकृतम्' के रूप में की है ।

किदमङ्गलमोदआ—इससे सुन्दर 'किदमङ्गलामोदा' प्रयोग है । कृत मङ्गलम् आमोदश्च यैस्ते । यहाँ 'मङ्गल' का अर्थ नवीन वस्त्र एवं आभूषण से है जिससे वे सजे सजाये हैं, और 'आमोद' का अर्थ उसके माला और सुगन्धि से है । अथवा हम यो कह सकते हैं कि 'मङ्गल' का अर्थ शुभ होता है और आमोद का अर्थ 'प्रीति' पुत्री या प्रसन्नता 'कृतः मङ्गल आमोदः यैस्ते—आमोद यहाँ पुत्री और प्रसन्नता के लिए प्रयुक्त है । यथा—'विवाहामोदसंकुले राजकुले । स्वप्नवासवदत्ता, ३-३ ।

एषो वा अषो पुत्रस्तुक्त्वं इत्यादि—इस अपशकुन की सूचना के लिए द्रष्टव्य—

रुक्षस्वरं वाशति वायसोऽयम् एव शुष्कवृक्षस्थितोऽ्वाक्ष आदित्यमुखस्तथा—
गृच्छकटिक ९-१०-११.

एषु ज्येष्ठं गच्छिष्य—यहाँ ज्येष्ठम् का प्रयोग ज्यैष्ठयम् के अर्थ में हुआ है । अर्थात् वयोधिकत्वकृतं सत्कारमात्माय व्याहरामि । मैं उनमें सबसे बड़े का अभिनय करूँगा ।

दिवाचन्द्रपभापण्डुल इत्यादि—पण्डुलजोवगुण्ठिमण्डलु—पाण्डुरजो-
,वगुण्ठितमण्डल'—दिवसनिशाकरस्य कान्तिरिव धवलपीतवर्णवद्रजस्तेनावगुण्ठित,
व्याप्तम् छत्रं मण्डल यस्य तादृशोऽयं सूर्यः । अस्ति च नास्ति च, आकारमात्रेण
विद्यते प्रभया पुनर्नास्ति, सन्नपि न प्रकाशते इत्यर्थः । तात्पर्यं यह है कि गोपबाल
भयाक्रान्त होने के कारण अपनी आशका में सूर्य के शतशतभयावह आँखों को
आकाश में देखता है जो घूल रूपी बादल की घूँघट से भाक रही हैं ।

पथकार—अमरकाव्य के अनुसार—पद्म का अर्थ दशरथ है। किन्तु, यहाँ इस शब्द का प्रयोग गोपाल की कृत्रिया के अर्थ में है। गोपाल अथवा जानि होने के कारण निम्न कौटि में है अतः उनके लिए, 'पद्म' शब्द का प्रयोग यहाँ कवि को अर्थात् है। डॉ० पुष्कर ने 'पद्म' का चाण्डाल का निवास स्थान माना है और इससे ब्रह्मणा कर्म हुए लिखा है कि वे गोपाल अथवा कृत्रिया से ब्राह्मण बनाने के लिए, यों ही निम्ने कौटि की सेना से आक्रान्त गावों को देखकर बुरी तरह घबरा कर बिलाने लगे। कुछ ही दूर पर स्थित 'पद्म' निवासी चाण्डालों को आभारण के क्रम में पुकारने लगे।

दम्पुत्रमप्रच्छन्नविश्रमं—पराक्रममप्रशम्भं दम्पुत्रादमदम्पुत्रुजहृत्पे-
प्रवृत्तान्त्रं। अन्ते पराक्रम को छिनाकर कुत्रों को तरह दृष्टान्त में निरन्तर होकर लोगों को आविष्टित कर रहे थे।

श्लो० १—दूतैश्च वन्मैः—दम्पुत्रेनोदवेगं पीडिता वलाः इवन्ति,
गोपाला व्याधाम्नुमदन्ति, वीरदात्र दम्पुत्रा दर्शनानेन श्रन्ताना वदन्ते।
'वाक्यलक्षणम्' में निम्नोक्तयो पा० सू० ६।१।४ में निम्न द्विव दृजा है।

श्लो० २—गोधा—इसकी व्याख्या 'ज्याघातवाग्धम्' के अर्थ में की गई है। दम्पुत्र गोपा चमरे की उस पत्नी का नाम है जो प्रयत्ना के अन्ते अपने में होने वाली पीडा से बचने के लिए बायाँ कान पर लगाई जाती है।

कन्धिनम्भन्दास्था—यहाँ कथित का अर्थ पूर्ण सुनचित है।

जन्मनक्षत्रक्रिया—यहाँ क्रिया का तात्पर्य पूजा के ढग से है।

पुण्याहासताने—धानिक कृत्व की समाधि को पुण्याहासन या म्वन्तिवाचन कहा जाता है। यह शुभ अनुष्ठान का एक अन्तिम चरण है। यज्ञसमाधि के बाद पुरोहित शुभासीर्वादि का जो प्रयोग करने हैं वह भी पुण्याहासन के अन्तर्गत ही है।

घतिपानि कार्यम्—दिलम्बासहिन्नुकारम्,। इसी तरह इस शब्द का प्रयोग अमिषेक नाटक के तृतीय अङ्क में दर्शनीय है।

श्लो० ३—यासादन्—इति गहापान्—अन्ता के अर्थ में इस समूह के नाटकों में यह शब्द प्रयुक्त हुआ है। 'करामि' का प्रयोग यहाँ 'अन्तविशेषण' अर्थात् यथेच्छ भोजन के अर्थ में हुआ है।

प्रविश्य—मन्त्र निर्देशन के लिए प्रयुक्त यह शब्द यहाँ अनावश्यक है, जबकि मट पहले से ही मन्त्र पर उपस्थित है।

एव समासः—इस शब्द का प्रयोग कवि ने इसी प्रकार अपने कई नाटकों में किया है। यथा—अविमारक २-९^५, प्रतिज्ञा २-९^१।

श्लो० १-रगशिरसिगवार्थे—इसी तरह का श्लोक भास ने 'कर्णभार' में भी लिखा है—

हतोऽपि लभने स्वर्गं जित्वा तु लभते यशः ।

उभे बहुमते लोके नास्ति निष्फलता रणे ॥

ऐसे वर्णन के लिए कवि का मूल स्रोत श्रीमद्भगवद्गीता है—

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्

तस्माद्दुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ।

-मोक्षयित्वा—अर्थात् गाः १ यहाँ गाः कर्म के रूप में प्रयुक्त है।

उन्नीतमन्तापाः—प्राप्तदुःखाः अर्थात् हमलोग पर्याप्त ऋषि में थे। उन्नीतः उपचितः सन्तापः येषां ते तथाभूताः। यहाँ म० म० गणपति नाट्यी का कहना है कि—वयमुपनीतमन्तापाः चवृत्ता । परोक्षमपि—अप्रत्यक्षम् । क्योंकि हने पाण्डवों के प्रति अप्रत्यक्ष सहानुभूति है फिर भी प्रत्यक्ष रूप में हम कौरवों के साथ हैं।

श्लो० —अर्थित्यादपरिश्रान्तः—भगवत् युधिष्ठिरस्य परदोषानभिप्रायकत्वस्य निदर्शये तत्संकाशे जिज्ञासा प्रकाशनमनुचितमिति चेत्तत्राह—अर्थित्याद् प्रयोजनशालित्वात् अपरिश्रान्तः—अपने स्वभाव से भगवान् किन्ती का दोष बतायेंगे नहीं, फिर भी मुझे जानकारी प्राप्त करनी है, जत. मैं तो उनसे पूछूँगा ही।

श्लो० ६-सानुकर्पा—अधोवरकाष्ठयुक्ता क्रियन्त । रजो पर जुए ढाल दिव्ये जाय । अनुकर्प शब्द महाभारत में अनेकत्र. प्रयुक्त है। अनुकर्प शब्द की व्याख्या की गई है अनुकर्प. गुडविमर्दे यस्य कस्यचित् रथावयस्य नष्टस्य प्रतितमाधानार्थम् यद्वयस्य अधोदाह्वयते तत् । अनुकर्पोरथाघस्यदारुणीति—मेदिनी। इति वा अर्थ रथ की घुरी है। 'रथ की घुरी कन दी जाय।' सानुकर्पाः—उपसर्गम् पा० ६।३।१२२, सूत्र से दोष विधान किया गया। यथा—सानुकर्पाः सत्प्रीताः सर्वख्याः सतोमराः । महाभारत, उद्योगपर्व १५५.३ ।

न सलु आत्मन्यस्तम्—मृत्ते अपने लिए कोई नय नहीं है। मैं अपने चपल भाईयों के लिए डरता हूँ, ऐसे अवसरों पर वे अपने आप को छिपाने नकते और गुप्तवास का रहस्योद्घाटन बनायास हो जायेगा।

श्लो० ६—एकोदकत्वम्—समानोदकत्वमन्वय—एकम् उदकं निवापोदकं यथा मे एकोदकाः, तथा भावः एकोदकत्वम् • दाह क्रिया के अवसर पर जो समान रूप से तिलाञ्जलि देने के हृदयार हैं तथा पवित्र धातु के अवसर पर मणिष्ठ के अधिकारी हैं ऐसे लोग सभी समनोदक हैं।

तेषाम् मुखाः—उत्सुक का प्रयोग यहाँ विचारणीय है। मैं उनके लिए बहुत दुःखी हूँ। तेषु विषये दुःखितोऽहम्। दुःखेष्टमानेषु विधीदामि।

आभंगतम्—यह शब्द वाच्य के प्राग्भन में प्रयुक्त होना चाहिए। चापुनपितेनादि के क्रम में इमीलिए म० न० गणपति शास्त्री के पाठ में 'प्रकाशम्' को हटा दिया गया है।

श्लो० १३—रणानियिः—इस तरह का प्रयोग अभिषेक नाटक ४-२२ में भी द्रष्टव्य है—

आगतोऽहं न पश्यामि द्रष्टुक्वामोरजातिधिः।

श्लो० १४—रिपूणामित्यादि—महामारत के अनुनार मोरहम के समय महाराज अपनी राजधानी में उपस्थित नहीं थे। वे मिंगतों को समाप्त करने में लगे थे। फिर पता नहीं मान न किन उद्देश्य से विराट को इस राजधानी में उपस्थित दिसलाया है।

श्लो० १५—स्वचक्रोद्धतः इत्यादि—स्वचक्रः उद्धतं रेपूना दुर्दिनं येन तम् क्षयं।

श्लो० १६—भग्नो गहनलोभेन—इसका जगह त्रिवेन्द्रम् संस्करण में 'वाहनलोभेन' है। किन्तु यह संस्करण कहीं उपलब्ध नहीं है।

श्लो० २१—नदीत्नोन इवाग्निः—इस तरह इस शब्द का प्रयोग विक्रनोर्वशीय ४,२८ में है। यथा—'यथाग्निः यतिम्बलितमभिनंयाय वहुनः।'

श्लो० २२—हावनि—इसका प्रयोग प्रेरणार्थक क्रिया के रूप में यहाँ है। 'बहने की प्रक्रिया', अन्तर्भावितगन्तायत्त्वादिति।

श्लो० २३—ऋक्षयतूणिस्त्वम्—अक्षये तूण्यौ यस्य स. ऋक्षयतूणिस्तस्य भावः तत्त्वम् । यह अर्जुन या उसके धनुष की ओर संकेत करता है जिसका तरकस कभी खाली नहीं होता है । यह ऋक्षय तूणीकरत्व का संक्षिप्त रूप है । अन्त में इस सामासिक शब्द के स्वरतूणिः के सयोग के कारण ही कप् प्रत्यय का 'क' लुप्त है ।

श्लो० २४—किमिदमिति—इस शब्द में चिन्तयन्ति का समावेशकर हम अर्थ कर सकते हैं—यह क्या हो रहा है ऐसा सोचकर चकरा गये हैं ।

श्लो० २६—सौभद्र स्वशरैः—उत्तरः कुमारः किं स्वशरैः सौभद्र न धर्षयति, अवश्य जयतीति भावः । पितुः प्रत्ययात् अर्थात् अर्जुनस्य जगदेक-वीरताख्याते. भीतः शङ्कितः सन् ससृष्टोऽपि अभिमन्युना सहकृतमैत्रीकोऽपि सौभद्रवयसा समान वयः रक्षति । समानवयसोऽहि, तयोर्मैत्रीभावो जायमानो वयः कारणक एव सभवतीति भावः । यो राजकुमार उत्तर' परशुरामेण सह युद्धेऽपि अप्राप्तजत भीष्मं तथा मन्त्रायुधम् द्रोणाचार्यमेवं कर्णं जयद्रथम् तथाऽन्यान् बहून् नृपतीन् परामृतवान् तस्यैव कुमारस्याभिमन्युना सह जायमान सख्यं तयोस्तुल्यवयसोऽयुक्तमेव, समवयसोऽहि सख्यस्य स्वाभाविकत्वम् । अतएव च सख्यादभिमन्युं नाभिभवति कुमार इति ५० रामचन्द्र मिश्रः ।

भीष्मं रामशरैः—महाभारत उद्योगपर्व १७९-१८६ में वर्णन है कि एक बार भीष्म का युद्ध परशुराम के साथ हुआ था जिसमें परशुराम ने अपनी हार स्वीकार की थी । यहाँ इसी कथा की ओर संकेत है ।

श्लो० २७—आलम्बितो भ्रमति—यहाँ सारथी अर्जुन (बृहन्नला) की असमर्थता का वर्णन है । सारथी रथ को आगे पीछे इस तरह घुमा रहा है जैसे वह आक्रमण का एकमात्र बहाना कर रहा है, वस्तुतः उसे किसी पर आक्रमण करना है ही नहीं । अतः अभिमन्यु की मार से अपने को बचाते हुए रथ को नचा रहा है ।

योग्योपदेशमिव—योग्याया उपदेशम् । योग्या का यहाँ अर्थ 'अभ्यास' से है । अभ्यास का तात्पर्य रथचर्या से है ।

अधजितम् योग्रहणम्—गावो को छूटने वाले छुटेरे पराजित हो गये हैं यह अभिव्यक्ति अशुद्धी है, यह भी संभव है कि अवसितम् की जगह अधजितम्

पाठ हो गया हो। अवसितम् कहने पर अर्थ परिवर्तित होकर ध्वनित होता है। 'अव गोग्रहण का युद्ध समाप्त हो गया।

दृष्टपरिष्पन्दानाम्—परिस्पन्दः नायकत्व का बोधक है। यथा चारु-
दत्त २-२०४ योगपुरुषाणां... पुस्तकमारोपयति। इसी तरह अभिपेक
४-१८ क्रमाग्निवेश्यमानानु सेनायु वृन्दपरिग्रहेषु परीक्ष्यमाणेषु पुस्तकप्रामाण्यात्
कुतश्चिदपि अविज्ञायमानो द्वौ चनोकसौ गृहीतौ।

श्लो० २८—श्लाघनीयेन कर्मणा—इसकी तृतीया विभक्ति 'हेतौ
तृतीया के कारण ही है। 'अप्रतिम साहस के कारण पायल। इसका अर्थ है
'श्लाघनीये कर्मणि ताडितस्य'।

श्लो० २९—गाण्डीयेन— "प्रतिस्पधितमासीत्—आसतगुरोण (भवता)
गाण्डीय धनुष पर मीर्ची चढ़ाने में मुझे कुछ देर तक कष्ट हुआ। बाण को
पकड़ने और छोड़ने में दृढ़ता नहीं रही, कुछ देर तक धातुष्क की स्थिति में
पटुता का अभाव रहा। स्त्री बेश में रहने के कारण मुझे ये शारी वस्तुएँ अभिनव
प्रतीत होती रहीं। पर शीघ्र ही मेरा पुरुष स्वभाव मुझे स्मरण हो आया।

श्लो० ३०—लज्जायमानेन—लज्जा से 'सुखादिभ्य' क्यङ् कर्तृवेदनायाम्'
पा. ३।१।१८ से क्यङ् करने पर लज्जायमान रूप बना—अनेन स्त्रीवेपेण हेतुना
लज्जामनुभवनेति।

यात्रा तु तावत्—यहाँ याना का अर्थ संचार है। अर्थात् शत्रुओं की
यात्रा बाण वर्षा में होने लगी। कद्रुपः—लहृडुहान।

श्लो० ३१—जित्वापि गाम्—यहाँ गाम् = गा.—जगतावेकवचनम्। ये
विराट के सभी गाँवों को लौटा लाये।

श्लो० ३२—त्रिदण्डधारी—त्रयाणाम् दण्डाना ममाहारः त्रिदण्डम्, पाना-
द्यन्तस्य न' इत्यनेन स्त्रीत्वनिषेध । त्रिदण्डत्वेन—

चाग्दण्डोऽथ मनोदण्डः कायदण्डस्तथैव च ।

यस्यैते निहिता बुद्धौ त्रिदण्डी स निगद्यते ॥ मनु० १२।१० ।

श्लो० ३३—परिभूतपूर्वकम्—पूर्वं परिभूत परिभूतपूर्वम्। कृत्साया कन्-
परिभूतपूर्वकम् । पूर्वतिरप्युत्त ।

संस्कृतमभिधीयताम्—बृहन्नला स्त्री पान होने के कारण प्राकृत में बोल रही थी, किन्तु, रणरूप ओजस्वीकर्म होने के कारण उसके वर्णन में संस्कृत भाषा में बोलने को कहा गया । इन सम्बन्ध में दर्शनीय है—

कार्यतश्चोत्तमादीनां कार्यो भाषाव्यतिक्रमः । दशरूपकम् तथा--कालाव-
स्थान्तरकृतं योज्यं पाठ्यं तु संस्कृतम्—भरतमुनि ।

वृष्णिपाण्डवनाथस्य—वृष्णयः पाण्डवाश्च नाथा यस्य तस्य । लोग ऐसा सोच सकते हैं कि अभिमन्यु श्रीकृष्ण एवं पाण्डवों द्वारा सरजित है । अतः इन दोनों के भय से बिराट ने कैदी अभिमन्यु का इतना सम्मान किया ।

यादवीपुत्रः—अभिमन्यु । यादवी सुभद्रा के लिए प्रयुक्त हुआ है ।

श्लो० ३६—स्वविभ्रं—यहाँ 'स्व' का अर्थ विवादास्पद है । स्व शब्द का प्रयोग पाण्डवों के लिए भी हो सकता है और 'हमारे लिए' भी हो सकता है । यदि इसे पाण्डवों के लिए प्रयुक्त मानें तब अर्थ होगा 'पाण्डव अपनी श्रेष्ठता के कारण हमारे मित्र है ।' यदि स्वशब्द का प्रयोग 'न' के लिए हुआ है तब अर्थ होगा—सम्पूर्ण सम्पदा के साथ हमारे लिए वे अतिथि के रूप में पूज्य है ।

श्लो० ४०—लज्जते होष पुत्रम्—पुत्रमुद्दिश्य लज्जते । मेरे सामने पुत्र से मिलने में वह लज्जा का अनुभव करता है । यहाँ 'लज्' धातु का सकर्मक प्रयोग अनियमित है ।

श्लो० ४२—त च श्रमं प्रथमम्—यहाँ श्रम शब्द का प्रयोग 'तं श्रम' और 'प्रथमं श्रमम्' के रूप में हुआ है । प्रथम के अनुसार पाँच व्यक्तियों को अपने कंधे पर भार लेने के अर्थ में है तथा यहाँ इसका प्रयोग किसी एक व्यक्ति को रथ से उतारने के अर्थ में है ।

श्लो० ४३—तनिमाजितोदरः—तनिम्ना अजितम् उदरं यस्य । यहाँ अजितम् का अर्थ संस्कृतम् है यथा 'सम्पादितसौष्ठवम् ।' 'अर्ज अतिबलने' बुरादि । स्थिरोद्भूतस्तोरुमहान्—स्थिरोद्भूतासश्च ऊरुमहान्, ऊर्वोर्महाश्च । विदोषणोभयपद कर्मधारयः । यह एक अनियमित योगिक है ।

भुजैकयन्त्रित—एकमुजयन्त्रितः । यहाँ एक का परनिपात अनियमित है ।

श्लो० ४४—करेणुशोभाभिरिवापितो गजः—यहाँ 'शोभा' का अर्थ है आभूषण । अपित का अर्थ है नयोजित । ऋ घानु का निजयंक मूनकालिक क्रिया है ।

श्लो० ४५—पूर्वयद्धे—इदम् प्रथमे युद्धे अर्थात् 'अपने प्रथम युद्ध में शत्रु' को वात जानकर एवमुद्दिश्य घातुदेवः रूप्यते । यहाँ रूप्यते का आत्मनेपद अनियमित है ।

भीमसेन ने व्याकुल होकर 'अर्जुन' का नाम लेकर ही उन्हें सम्बोधित किया । आवेश में वे इस बात को भूल गये कि वे छद्मरूप में अज्ञातवास कर रहे हैं । अर्जुन ने भीम के इस आवेश को ठीक से समझा और भीम द्वारा की गई गलती को सुधारते हुए भीम की बात को बीच में काट कर कहा हूँ हूँ यह अर्जुन पुन ही है । इस तरह बीच में ही भीम की बात को काटते हुए अर्जुन ने उन्हें याद दिलाना चाहा । इसतरह परिचय दिलाना समय से पूर्व घातक सिद्ध हो सकता है ।

श्लो० ४६—इष्टापत्या—द्रीपदी के साथ सम्बन्धित है । इष्टापत्या में 'अनुचित' पा० ८।४।४६ के अनुसार तकार को द्वित्व हुआ है । यहाँ 'इष्टापत्ति' शब्द दोनों ही स्थिति से सम्बद्ध है । पुत्र का शत्रु के हाथ में सौपना अनुचित है, पर इस केवल इसलिए यहाँ से आया है, कि इसे देखकर दु खिनी द्रीपदी को सान्त्वना मिले ।

श्लो० ४७—इहायं समदाचारो ग्रहण परिभूयते—यह दुहरे प्रश्नों से सम्बन्धित वाक्य है क्या यहाँ यही शिष्टाचार है ? क्या मैं बन्दी होने के कारण अनादरित हो रहा हूँ ? अथवा—क्या मैं इस कैद में हूँ, इसीलिए तुम मुझे अपमानित करोगे ?

श्लो० ४८—पितृवदाश्रम्य—तुम मुझसे इस तरह बातें कर रहे हो जैसे मेरे पिता-हो मेरे साथ तुम्हारा व्यवहार या वार्त्तालाप ऐसा हो रहा है जैसे कोई पिता अपने पुत्र में बातें कर रहा हो ।

नसष्टः—सम्बन्धी—'तुम्हारे स्वजन' यह अभिमन्यु की व्यङ्ग्योक्ति है । क्योंकि वे इस वान को बिल्कुल पसंद नहीं कर रहे थे कि श्रीकृष्ण जैसे महा-पुरुष और मुमद्रा जैसी उसकी माँ के सम्बन्ध में नाम लेकर या सम्बन्धी की

तरह कोई अदना आदमी इस तरह प्रश्न पूछे । अतः वे जलमुनकर कहते हैं हाँ, हाँ वे तुम्हारे सम्बन्धी सकुशल है ।

हस्यते—इसका 'भावे प्रयोग.' होना चाहिए । भवद्भिः हस्यते मा (उद्दिश्य इति शेष.) ।

श्लो० ५०—अलमात्मस्तवं कर्तुंम्—यहाँ कर्तुंम् का प्रयोग नकारात्मक अव्यय अल के साथ अनियमित है । इसे 'अलंकृत्वा' होना चाहिए ।

श्लो० ५१—सरथतुरगदृप्तनागयोधे—रथैः तुरगैः दृप्तनार्गैः योर्ध्वं सहिते गच्छति 'सैन्ये' या युद्धरङ्गे अन्तर्निहित है । इन नाटको में 'योध' की जगह बहुधा 'योध' शब्द प्रयुक्त हुए हैं ।

श्लो० ५५ सहजौ मे प्रहरणम्—यह विचार अनेक नाटको में प्राप्त है यथा—अयं तु दक्षिणो बाहु. आयुष सदृशम् मम । मध्यम व्यायोग १.४२. और वयमपि च मुजायुधप्रधाना । अविमारक २-११ गिरीतटं कठिनासाबेव बाहु ममैती प्रहरणमपरं तु त्वादृशा दुर्बलानाम् ३-१२, इसी प्रकार मृच्छकटिक ३-१६ भीमस्यानुकरिष्यामि शस्त्र बाहुर्भविष्यति ।

तस्यैतत्सदृशं वचः—यथा इदमुपपन्न पितुर्मे भीमसेनस्य मध्यमव्यायोग १-४२ मध्यमस्तात्—यह शब्द एक प्रकार की उत्सुकता प्रदान करता है । महाभारत के अनुसार भीम युधिष्ठिर के बाद जन्म लिए थे । फिर भी उन्हें मध्यमतात अभिमन्यु ने क्यों कहा । मध्यम तो पाँचों पाण्डवों के बीच अर्जुन ही थे । फिर भीम के लिए मध्यम शब्द का प्रयोग चौकाने वाला है ।

अनन्तरा वयं ब्राह्मणेषु—यद्यपि इसका उत्तर उनके लक्ष्यो पर था, फिर भी वे एक ब्राह्मण के साथ उलझना नहीं चाहते थे । इस नाटक में ब्राह्मणों को अत्यधिक प्रतिष्ठा दी गई है ।

श्लो० ५७—योक्त्रयित्वा—बद्ध विधाय योक्त्रवन्त कृत्वा । योक्त्र उम डोरी का नाम है जिमसे गाड़ी के जुओ पर बेल को बाँधा जाता है । योक्त्रयित्वा अर्थात् योक्त्रवन्त कृत्वा यथा—योक्त्रयामास बाहुभ्या पशुं रक्षणाय यथा । महाभारत वृ० पर्व २२-६१ तुल्यित्वा हल्के पन के साथ ।

असहृद्यं कर्म—असहनीय दृश्य, भयावह कर्म । नीत कृष्णः तदर्हताम् । श्रीकृष्ण ने कत का बप कर दिया अत्याचारी कस जरासंध का जामाता था ।

उसने वृष्ण से बदला लेने की प्रतिज्ञा की। उसने सम्पूर्ण यादव वंश का विनाश करने का शपथ लिया था। अपने इस नीच उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने १८ वार श्रीवृष्ण को मथुरा में घेरा था। अन्ततः श्रीवृष्ण उससे बचकर मथुरा छोड़कर द्वारिका भाग आये थे। उससे बदला लेने की बात श्रीवृष्ण सोच ही रहे थे कि भीम ने उसकी हत्या कर दी। अतः अभी दिन से अतदहं= जरासन्धवधानर्ह, बनाये गये।

श्लो० ५८—न ह्ये ज्ञेयेण ऋष्यापि—इस श्लोक के अपराद्ध का विस्लेषण करने से—‘अहम् कथं तिष्ठति यातु इति उक्त्वा किं नापराद्ध (भवेयम्) कथा मे क्रोध न कर्हंगा यदि कर्हं ‘वह कैसे खड़ा है ? (मेरी उपस्थिति में) उसके साथ अलग हट जाओ। इसी की व्याख्या दूसरी तरह से भी की जा सकती है ‘कथा’ कहते हुए, कथा मैंने तुम्हें क्रुद्ध नहीं किया ? ‘किमुक्त्वा नापराद्धोऽहम्’ अथवा—यह मैं कैसे कह सकता हूँ—‘तुम जा सकत हो’ यहाँ तक कि जब तुम स्वयं यहाँ खड़े हो। तिष्ठति (स्वयं) कथं यातु इति (ब्रवीमि) लेकिन यह एक विचित्र प्रयोग है। इसी तरह प्रतिमा नाटक के चतुर्थ अङ्क के श्लोक ५ में हम देखते हैं—भक्तिमान् आगत कश्चित् कथं तिष्ठतु यातिविति। प्रस्युत यहाँ तिष्ठतु की जगह तिष्ठति का प्रयोग होना चाहिए। ‘कथं तिष्ठतु यातु इति किमुक्त्वा नापराद्धोऽहम्। कथा मैं कह सकता हूँ ‘खड़े रहो’ या मैं कह सकता हूँ ‘चरो जाओ’ कथा एसा कहकर मैं तुम्हारे विषय में अपराधी नहीं साबित होऊँगा ?

श्लो० ६०—मिथ्याप्रशंसा इत्यादि। इन श्लोक की प्रथम पक्ति की व्याख्या करें—येषां तु मिथ्यावचनेषु भक्ति (तेषां अन्तर्निहित है) मिथ्या प्रशंसा खलुनाम कथा। यहाँ उन बन्दिमों चारणों या भाटों की ओर संकेत है जो मिथ्यास्तुति के अभ्यस्त हैं। वाचानुवर्त्ता—वाङ्मात्रेण तद्वचनमङ्गीकुर्वन् मैं भी भुक्त मैं उनकी प्रशंसा करता हूँ पर, हृदय से लज्जित हो रहा हूँ।

इदमाख्यास्यते—आख्यास्यते, की व्याख्या आने के श्लोक में ‘किणम्’ के साथ है। ‘तुम्हारे असली परिचय का रहस्योद्घाटन इस हाथ पर के चिह्न में हो जायगा। ‘किण’ शब्द पुलिग है। पर, यहाँ इसका प्रयोग नपुंसक लिग की तरह हुआ है।

श्लो० ६४—सन्निरोधविवर्णत्वात्—'दवाव के द्वारा रङ्गहीन करना।' ठीक तौर की जगह। गोधास्थानम् अर्थात् मणिवन्ध पर।

श्लो० ६६—गस्त्रयोदशवर्णान्ते—यत्तद् द्वादशवर्णान्ते, यह वर्णन प्रथम अङ्क के श्लोक ४८ एवं द्वितीय अङ्क के श्लोक ६३ के अनुरूप है।

उत्तरा सन्निवर्षस्तु मां दाघते—उत्तरा के साथ यह घनिष्ठता मेरे लिए कष्टप्रद है। यह सोचकर विराट हृदय से दुःखी थे कि अन्तःपुर में अर्जुन ने उत्तरा की एकान्त घनिष्ठता प्राप्त की है। साथ ही उत्तरा के चरित्र के सम्बन्ध में भी वे संदिग्ध हो उठे।

गोग्रहणविजयशुल्कार्यम्—गोग्रहण विजय एव शुल्कं तस्मै। गोहरण युद्ध में अर्जुन ने विजय प्राप्त की थी। इसके उपलक्ष्य में विराट ने अपनी पुत्री उत्तरा को बधू के रूप में उन्हें समर्पित किया। यह उत्तरा गोग्रहणविजयशुल्क के रूप में समर्पित की गई।

एतद्वनतं शिरः—युधिष्ठिर ने बड़ी गहराई से विराट के कथन पर चिन्तन किया। अर्जुन के चरित्र पर भी कोई संदेह कर सकता है, यह सोचकर ही उन्होंने कहा 'मेरा शिर झुक गया।' पाण्डव अपने चरित्र के लिए सब दिन 'उन्चैः शिरस' रहे हैं। वे अपने शिर सदा ही ऊँचा रखते हैं। लेकिन, यह काम मेरे लिए उचित नहीं कहा जा सकता है। युधिष्ठिर ने एक सामान्य बात पर बड़ी गहराई से चिन्तन किया है।

तृतीयोऽङ्कः

श्लो० १—परिभूय पाण्डवान्—अन्यत्र—परिभूयवान्धवान्। कुरुभिर्न रक्षितः। गणपतिशास्त्री 'न रक्षित' को एक योगिक शब्द मानते हैं। नजयस्य न शब्दस्य मुष्पुपेति समासः। क्रियता व्यपत्रपा—गणपतिशास्त्री ने इसकी व्याख्या की है—व्यपत्रपा लज्जा क्रियताम् अनुभूयताम् अर्थात् कुरुभिः।

श्लो० २—रणपटुरपनीतः—पाठान्तर, रणमुव उपनीतः। देवतैः शरैः—देवतासवम्भिभिः शरैः देवी बाणैः।

पुरप्रसारम्—पुरप्रप्रेषम् । मजबूत आदमी । मनुष्यो मे सर्वोच्च । यावदल्लं बल वा । वाक्य बड़ा ही जटिल है । यावत् अल्लं और बल को मनुष्ट करता है और इसका अर्थ लगाया जाता है कितना और क्या ? अतः कथय क्रिया के तीन कर्म हैं—पुरप्रसारम्, यावदल्लम्, और बलम् च । मृमंसे नही, यह शक्ति कौन है ? और इसका अर्थ क्या है ? इस श्लोक की अन्तिम पक्ति का अर्थ है—‘उसको ललकारने के लिए बलवान् दूत को उनसे पास भेजता हूँ ।’ लेकिन, सवाद-वाहक का बलवान् होना क्यों आवश्यक है ? और सवादवाहक को ही क्यों भेजा जाय ? क्यों न शत्रु पर भीने आक्रमण ही कर दिया जाय । अतः महामहोपाध्याय गणपतिशास्त्री का कथन है कि ‘बलवत् इष्टुद्वतान्’ मूल अर्थ के रूप में तेजस्वी वाण को शत्रु के पास भेजूंगा जो वहाँ मेरा सवादवाहक का काम करेगा ।

श्लो० ३—भग्नापमानेऽवनभिज्ञदोषः— भग्न का अर्थ यहाँ ‘पराजय’ लिया गया है । इस अर्थ में भग्न शब्द का इस नाटक में अनकश प्रयोग हुआ है । यथा—नृपा भीष्मादयो भग्ना २-४१ अतः अभिव्यक्ति का अर्थ पराजित व्यक्तियों के अपमान में है । अनभिज्ञदोष दोषानभिज्ञ, सतरे स लापरवाह । फिर भी गणपतिशास्त्री ने इसकी व्याख्या की है—अनभिज्ञ इति एव रूपो दोषो यस्य नः अथवा—अनभिज्ञत्वं अनिपुणत्वं दोषो यस्य नः इति ।

मोक्षयामि—मोचयामि के अर्थ में मोक्षयामि का यहाँ प्रयोग है । यथा—अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच । भगवद्गीता ।

श्लो० ४—ज्ञातिभेदः—दायादर्वैरम् । गृहविरोध । वक्त्रुभिः—विद्वद्भिः बुद्धिमान् अथवा दूफके—मेरानिन्दक । मयि तु दोष—मयि एव अथवा तु का अर्थ विशेषण माना जा सकता है—मयि विशेषण—खाकमर मेरे ऊपर है ।

श्लो० ५—मा तावत् न्यजनभयात्—मा तावत् की व्याख्या ‘त मोक्षयितव्यः’ के रूप में होनी चाहिए । उसे दुर्योधन को ही मृत कराना चाहिए । न केवल स्वजनों के भय से अथवा उनके शिशुत्व के कारण प्रस्युत वह तुम्हारे (दुर्योधन) के लिए ही इतनी बड़ी विपत्ति से गुजरा है । और, हम लोग उसे बचाने में असमर्थ रहे । अपनी प्रतिष्ठा को कायम रखने के लिए भी उसे मृत कराना आवश्यक होगा ।

श्लो० ६—अवगतः—अवगतिः ज्ञानम् ।

रणाजिरात् श्रवजितम्—यहाँ अपादानकारक प्रसंग का अनुसरण नहीं कर पाता है। रणाजिरात् की जगह इसे रणाजिरे होना चाहिए। रणाजिरात् 'अपगतम्' का प्रयोग दामोदर के साथ होना चाहिए। पर, ध्यान रखना चाहिए कि दामोदर युद्ध के भेदान से बहुत दूर थे। शलमहान्—एक विशेष कथन है—वले अर्थात् बलविषये महान्—शक्तियुक्त। वाणैरप्यवकुष्यते—घोड़ा भी पकड़े जा सकते हैं और उन्हें अपने दुश्मनों के द्वारा उनके वाणों से वेद किया जा सकता है। अवकुष्यते = अवजित्थ गृह्यते।

श्लो० ६—गविताक्षरं.—प्रौढं वाक्यैः साभिमान् शब्दो के द्वारा।

श्लो० १०—न्यस्तचापस्करे—इस श्लोक में दो चकार दो दृष्टो के द्योतक है। अतिक्रम्य अपस्करे योधासनस्थाने रथावयवे कर. निजहस्ती न्यस्त. स्थापित.। आपस्कर की जगह अपस्कर का प्रयोग दर्शनीय है। स्थादरथाङ्गमपस्कर इत्यमर'।

श्लो० ११—पदातिनेवावजितो जयद्रथ—यह कथन युक्तिसंगत नहीं है। महाभारत वनपर्व २६० के अनुसार पहले जयद्रथ और भीम दोनों ही रथ पर सवार थे। बाद में दोनों ही रथ से उतर कर तब तक युद्ध करते रहे जब तक जयद्रथ ने अपनी हार स्वीकार नहीं कर ली।

अहोहास्यमभिधानम्—यही अभिव्यक्ति प्रतिज्ञा में भी दो दो बार आई है—अंक चार श्लोक १९ की तीसरी पंक्ति एवं उसी अंक के दशम श्लोक की चतुर्थ पंक्ति एवं द्वादशश्लोक प्रथम अंक ३७ वें श्लोक के बाद की प्रथम पंक्ति।

श्लो० १४—वयं व्यपाधित्य—इस श्लोक की प्रथम पंक्ति में 'प्रयाम' है जब कि दूसरी पंक्ति में 'प्रयाती' का प्रयोग है। इन दोनों रूपों को देखते हुए निश्चय ही वर्तमानकालिक रूप में दोनों क्रिया की साधकता सिद्ध हो सकती है।

श्लो० १६—निसृष्टशुष्काशनिर्गजितंघनः—निसृष्ट (जनितम्) शुष्काशनिर्गजितम् येन तत् जो वर्षाविहीन बाबल की गर्जना-तर्जना है।

ननु जानीते भवान्—इसकी व्याख्या इससे पूर्व के श्लोक की प्रथम पंक्ति के साथ की जाती है। 'न च श्वोत्रं प्रयच्छति भवान्' क्या आपने इसे सुना नहीं? क्या आपने इस पर अपना ध्यान नहीं दिया?

श्लो० २०—**योधः स्यादर्जुनो नाम**—योधः योध' के लिए प्रयुक्त है।

इन नाटक में इसके अनेक प्रयोग द्रष्टव्य हैं। प्रज्ञादिवात् स्वार्थेऽण् प्रत्ययः।

श्लो० २१—**यावदृष्टेयुधिष्ठिरे**—यावत् का प्रयोग एव के अर्थ में हुआ

है। एव यहाँ जवधारणार्थक है। युधिष्ठिरे दृष्टे एव।

श्लो० २५—**यथापुरम्—यथापूर्वम्—पुरा अनतिक्रम्य यथापुरम्।**

मृतेऽपि—मरणेऽपि के अर्थ में।

महारथ—

एकादशानहस्ताणि योधयेयस्तुधन्विनाम्।

शत्रुशास्त्रप्रवीणश्च विज्ञेयः स महारथः॥

फाल्गुनः—अर्जुन का ही फाल्गुन दूसरा नाम है—अर्जुन का यह नामकरण क्यों हुआ इसका उत्तर महाभारत के शब्दों में—

उत्तराम्या फाल्गुनीम्या नक्षत्राम्यामहदिव्या

जातो हिमवत पृष्टे तेने मा फाल्गुन विदुः।

श्लो० २६—**प्रबृद्धकुलसग्रहा**—प्रबृद्ध (प्रकर्षेण वृद्धि प्राप्तः) कुलस्य (कुलवंशस्य) सग्रह उच्छ्वाय येषाम्। सग्रह का यहाँ प्रयोग उच्छ्वाय के अर्थ में है। उच्छ्वाय अर्थात् महानता। यथा—संग्रहा पुन। स्वीकारोच्छ्वाय सक्षेना। इति केशवः।

राजसिंह—भास ने अपने अनेक नाटकों में अविचारक, अभियेक, प्रतिमा और पञ्चरात्रम् के भरतवाक्य में राजसिंह का उल्लेख किया है। किन्तु राजसिंह के सम्बन्ध में इतिहास कुछ नहीं कहता है। पता नहीं है राजसिंह (भास के आययदाता) कहीं के राजा थे ?

पञ्चरात्र में वर्णित स्थानों का परिचय

१. **अङ्ग**—आधुनिक बिहार के भागलपुर जिले का दक्षिणी क्षेत्र प्राचीन काल में अङ्गदेश के नाम से प्रख्यात था। इस देश का राजा कुन्तीपुत्र कर्ण था। अंग देश को तात्कालिक राजधानी अङ्गपुरी या चम्पानगरी थी। प्रतापी

एवं दानी कर्ण इस क्षेत्र का प्रशासक था, इसके प्रमाणस्वरूप मुंगेर की कर्ण-चण्डी, मीरकासिम के किले में अवस्थित कर्णचौरा एव भागलपुर की पार्श्व-भूमि में स्थित कर्णगढ आज भी साक्ष्यभूत है। बिहार विधान सभा के भूतपूर्व अध्यक्ष डॉ० सुधाचु ने बिहार की मैथिली, मगही और भोजपुरी की तरह इस क्षेत्र की बोली को 'अंगिका' के नाम से प्रतिस्थापित करने की सफल चेष्टा की थी।

२. कुरु—गीता का कुरुक्षेत्र ही 'कुरु' देश के नाम से प्राचीनकाल में प्रसिद्ध था। कौरवों के पूर्वज कुरु नृपति के नाम पर ही इस देश का नामकरण किया गया था। आधुनिक दिल्ली का उत्तराञ्चल ही प्राचीन 'कुरु' है।

३. गान्धार—आधुनिक 'कान्धार' प्रदेश ही प्राचीनकाल में गान्धारदेश के नाम से ख्यात था। इसकी आधुनिक भौगोलिक सीमा भारत और पर्सिया के बीच में है। यह आधुनिक 'इन्डस' का पश्चिमी भाग है।

४. खाण्डव—कुरुक्षेत्र प्रदेश में विद्यमान देवराज इन्द्र का एक प्रियवन था जिसे अर्जुनने श्रीकृष्ण की सहायता से कभी आग में जला दिया था। यह वन यमुना नदी के उत्तरीय तट पर अवस्थित था।

५. दक्षिणापथ—आधुनिक 'डेकान' का प्राचीन नाम दक्षिणापथ था।

६. विराट—आधुनिक धौलपुर का ही प्राचीननाम विराट था। यही विराट नगर मत्स्यदेश के नाम से प्रसिद्ध था। यह धौलपुर के पश्चिम जयपुर से लगभग ४० मील उत्तर में विराटा नाम से प्रसिद्ध है। संभवतः यही विराटा उस समय विराट की राजधानी रही हो।

७. सिन्धु—प्राचीन भारत के इतिहास में इसका महत्वपूर्ण स्थान था। इसी के नाम पर 'हिन्दू' नामकरण हुआ है। यहाँ ही भारतीय सस्कृति फूली फली। एक समय महाभारत का प्रसिद्ध वीर जयद्रथ यहाँ राज्य करता था। यह आधुनिक इन्डस के आसपास की भूमि है। मालवा होकर बहने वाली सिन्धुनदी की तटवर्ती भूमि भी सिन्धु देश के नाम से ख्यात है।

८. हस्तिनापुर—यहाँ ही भरत की राजधानी थी। भारत के प्रशासन सूत्र का यही से बीजारोपण हुआ था। यह भारत की वर्तमान राजधानी दिल्ली से लगभग ५६ मील पश्चिमोत्तर में बसी थी। कौरवों की यहाँ राजधानी थी।

पञ्चरात्र में प्रयुक्त छन्दों का विवरण

| अक्षर सं० | प्रयुक्त छन्दो का नाम | कहाँ प्रयोग किया गया | श्लोको की कुल संख्या | छन्दो की परिभाषाएँ |
|-----------|-----------------------|--|----------------------|--|
| ८ | (१) अनुष्टुप् | प्र० अं० २, ७, ८, ११, १२, १३, १४, १७, १८, २६, २८, ३४, ३५, ३७, ३८, ४३, ४४, ४६, ५०-५६ द्वि अं० ४, ६, ८, १२-१४, १६, १७, १९-२१, २३, २५, २८, ३४, ३६-३८, ४१, ४७-५०, ५२, ५३, ५५-५९, ६१-६९, ७१, ७२ तृ० अं० ९, १०, १३, १५, १७-२१, २३-२६ | ७९ | (१) पञ्चम लघुगवंत सप्तम द्विचतुर्थयो । मुखस्य च पादाना चतुर्णा स्यादनुष्टुभिः । |
| ११ | (२) इन्द्रवज्रा | प्र० अं० १, २५, ३३, ४२, ४९, द्वि० अं० ११, ७०, तृ० अं० ३. | ८ | (२) स्यादिन्द्रवज्रा यदितो ज्यो गः (३) उपेन्द्रवज्राजतगास्ततो गौ । |
| " | (३) उपेन्द्रवज्रा | प्र० अं० १५. | १ | (४) अन्तरोदीरितिलक्ष्म भाजो पादो यदीयावुपजातमस्ताः |
| " | (४) उपजाति. | प्र० अं० १०, २१, २९, ४५, ४८, द्वि. अं० १, ३०, ६० तृ० अं० १२, १४ | १० | (५) मात्तो गौ चेच्छालिनी वेदलोकेः । |
| " | (५) शालिनी | प्र० अं० २४, ३०, द्वि० अं० २, १०, ४०, ४६, | ६ | |

(६) अयुजि न युगरे फतो यकारो
युजि च नजो जरगाश्च पुण्यिवाग्रा ।

(७) जतो तु वंशस्यमृदीरितं जरी ।

(८) त्र्यांशाभिर्मनजरगाः प्रह्विणीयम् ।

(९) श्रेया चसन्तविलका तभजा
जगो गः ।

(१०) नानमययुतेय मालिनी भोगिलोकः ।

(११) रसीर्द्विच्छता यमनशमलागः
शितारणी ।

(१२) सूर्याश्चर्यदिमः राजो सततयाः
शादूलविक्रीडितम् ।

(१३) श्रेयाससाध्यपद्भिर्मरभनसुताग्लो
गः सुवदना ।

| | | | |
|-------|------------------|--|-----|
| १२/१३ | (६) पुण्यिताग्रा | प्र० अ० १९, ३२ द्वि० अ० ३५, ५१ | ४ |
| १२ | (७) वंशस्य | प्र० अं० २२, २७ द्वि० अं० १, १८, ३२, ३३, ४३, ४४, तु० अं० १, ८, ११, १६, | १२ |
| १३ | (८) प्रह्विणी | द्वि० अं० ३, ५४, तु० अं० ५ | ३ |
| १४ | (९) वसन्तति० | प० अ० २०, ३१, ३६, ३९, ४१, द्वि० अं० २७, ३१, ४२, तु० अं० २२, | ९ |
| १५ | (१०) मालिनी | प्र० अं० ४०, ४७, द्वि० अं० ५, १५, ४५ तु० अं० २, ४, | ७ |
| १७ | (११) शितारणी | प्र० अं० ३, १६, २३, द्वि० अं० ७, २२, २४, | ६ |
| १९ | (१२) शादूलचि० | प्र० अं० ४, ५, ९, ५७ द्वि० अं० २६, २९, ३९ तु० अं० ६, ७, | ९ |
| २० | (१३) सुवदना- | प्र० अं०-६ | १ |
| | | | १५५ |

पञ्चरात्र में प्रयुक्त सुभाषित

| | |
|---|--------|
| अकारणं स्वप्नकारणं कुरु महत्तु नीचेपु च कर्मं शोभते । | २/३३ |
| अकाले स्वस्ववाक्यं मन्थुमुत्पादयति । | २/२०-१ |
| अच्छलो घर्मः । | १/४८-७ |
| अतीत्य घन्धुन् जवत्तद्ध्य मित्राण्याचार्यं मागच्छति शिष्यदोषः । | १/२३ |
| अद्विवादपरिश्रान्तं पृच्छन्नेव हि कार्यं वाक् । | २/६ |
| एकोदवत्व खड्गु नामलोके भगस्विना कम्पयते मनासि | २/९ |
| को वा पुत्र मपयेच्छत्रुहस्ते ? | ०/४६ |
| ताडितस्य हि योधस्य श्लाघनीयेन कर्मणा, | |
| अकालान्तरिता पूजा नाशयत्येव वेदनाम् ॥ | २/२८ |
| न च दहति न कश्चित् ननिवृष्टो रणान्ति । | २/१५ |
| न विस्तार्हीणि विप्रियाणि | ०/३-६ |
| नोत्सहन्ते महात्मनो आत्मानमपस्तोतुम् । | १/२७-१ |
| न्यस्तशस्त्रं हि को हन्यात् । | ०/५२ |
| परोक्षे न स्वर्गो बहुगुणमिहैवेप फलति । | १/२३ |
| भेदा परस्परगता हि महाकुलानां घर्माधिकारवचनेषु शमीभवन्ति | १/४१ |
| मिथ्या प्रसंसा खड्गु नाम कष्टा । | २/६० |
| मृतेऽपि हि नरा सर्वे सत्ये तिष्ठन्ति तिष्ठति । | ३/२५ |
| रूपेण स्त्रियः कथ्यन्ते पराक्रमेण तु पुण्याः । | ३/८-३ |
| श्रीर्न सत्तोपमिच्छति । | ०/८ |
| राति च कुलविरोधे नापराध्यन्ति बालाः | ३/४ |
| सर्वमिष्टेषु कथ्यते । | ३/१३ |
| सान्त्वं हि नाम दुर्विनीतानामीषम् । | १/४०-४ |



पञ्चरात्रगत नाटकीय विषय

१ समवहार —

वृत्तसमवकारे तु स्यात् देवासुराश्वयम्, सन्धयो निविमशोस्तु त्रयोङ्कास्तत्र चादिने ॥
सन्धी द्वावत्यपोस्तद्वेदेक एको भवेत्पुन, नायका द्वादशोदात्ता प्रख्याता देवमानवा ॥
फलपृथक्पृथक्तेषा वीरमुख्योऽखिलो रत्न, वृत्तयो म दकैशिवयो नाशबिन्दुप्रवेशकौ ॥
वीथ्यङ्गानि च तत्र स्युर्यवालाभ त्रयोदश, गायश्रुण्णिण्वमुखायत्रच्छ दसि
विविधानि च ॥ त्रिशृ गारस्त्रिकपट कार्यश्राय निविद्वत्, वस्तु द्वादशतालीनि
निष्पाद्य प्रथमाङ्गकम् ॥ द्वितीयेङ्क चतसृभिर्द्वाभ्यामङ्क तृतीयके ॥ (मा द)

२ पूर्वरङ्ग — यन्नास्थवस्तुन' पूर्वं रङ्गविधोपशा'तये ।
कुशीलवा प्रकुवन्ति पूर्वरङ्ग स उच्यते ॥

३ नान्दी — वाशीवचनसमुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादाना त्स्मान्ना'दीति सजिता ॥

४ सूत्रधार — आसूनयन गुणान् नेतु कवेरपि च वस्तुन ।
रङ्गप्रसाधन प्रौढ सूत्रधार इहोदित ॥

५ नेपथ्यम् — कुशीलवकुटुम्बस्य स्थल नेपथ्यमुच्यते ।

६ स्थापना — सूत्रधारो नगीम्ब्रूते मारिष वा विदूषकम् ।
स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम् ॥
प्रस्तावना स्थापना वा " ।

७ विष्कम्भक — वृत्तवर्तिष्यभाषाणा कथाशाता निदर्शक ।
सक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजित ॥

८ प्रवेशक — प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्वा नीचपात्रप्रयोजित ।

९ प्रकाशम् — सर्वथाव्य प्रकाशम् ।

१० स्वगतम् — अथाव्य स्वगत भतम्

११ अपवारितम् — रहस्य कथ्यतेऽयस्य परावृत्त्यापवारितम् ।

१२ काञ्चुकीय — ये नित्य सत्यसम्पन्ना कामदोषविर्जिता ।
ज्ञानविज्ञानकुशला काञ्चुकीयास्तु ते स्मृता ॥

१३ वीररत्न — विभावेरनुभावेऽश्च स्वोचितैर्व्यभिचारिभि ।
नीत सदस्यरस्यत्वमुत्साहो वीर उच्यते ॥



नाटकगत शब्दार्थपरिचय

| | |
|----------------------------------|---------------------------------|
| अज्ञीहिणो—तेना का परिभाषा | अपराह—अनुराधी । |
| जिनमें २१८७० रस तथा हाथी, | गनात्प—हुंकार । |
| ६९१० घोड़े, एवं १०९३५० | अभिधा—कथन । |
| पैसल चलने वाले सैनिक होते हैं । | अभिप्रायवच—अदृष्ट कथन । |
| अङ्ग—देश, (जिनका कर्म राजा था) । | अभिवर्धमान—वर्धन शक्ति । |
| अङ्गुलिद्व—अङ्गुलि की रसायं पहना | अभिवाचय—प्रमाण करो, हाथ जोड़ो । |
| जानेवाला कथन । | अभ्यन्तर—भीतरी भाग । |
| अनवर्ह—उतके योच नहीं । | अभ्युपगम—नञ्चर करना । |
| अतिनाति—जिनका अचरन्त बीत | अमर—देवता, नहीं मरने वाले । |
| रहा हो । | अमर्य—गुम्ना । |
| अतीत्य—अतिक्रमण करके । | आरणि—एक पत्नीय काष्ठ बितके |
| अत्यर्थ—बहुत । | मन्थन से बाग पैदा होती है । |
| अनभिज्ञ—अज्ञानी । | अर्ज—उपायन करना । |
| अनवहित—अतनाह । | अर्जुन—पाण्डवों में तृतीय । |
| अनार्यभाव—शुभ्रता । | अर्णव—रलाकर । |
| अनिल—हवा । | अर्यतः—वास्तव में । |
| अनुपजीव्य—आश्रयरहित । | अर्यत्व—मागना । |
| अनुरूप—रस का ऊपरी हिन्ता । | अर्यगुणित—संपा हुआ, आवृत । |
| अन्वय—वंग । | अवजित—पराजित । |
| अपकृष्ट—नून । | अवधीरण—तिरस्कार । |
| अपत्य—मन्तवि । | अवभय—यज्ञान्त स्नान । |
| अपनय—दुर्नीति । | अवलेप—अहंकार । |
| अपनीत—दृषक किया गया । | अवसान—अन्त, समाप्ति । |
| अपहृव—गुह रखना । | अविदु—अन्वेद्य । |
| अपमात—बागा हुआ । | अप्यदेय—अज्ञा के पात्र नहीं । |
| अपराध—दोष । | अत्य—दक्ष, बाधुष । |

घ्राकुलाकुल—अधिक व्यग्र ।
 घ्राचरण—व्यवहार ।
 घ्राचार्य—अध्यापक, गुरु ।
 घ्राज्ञाविधेय—आज्ञापालक ।
 आवीपित—प्रज्वलित, दग्धावशेष ।
 घ्राभिरुष्य—मनोरमता ।
 घ्रायुध—अस्त्र, शस्त्र ।
 घ्राज्व—सरलता, मृदुता ।
 घ्रात्त—पीडित, खिन्न ।
 घ्राय्य—पूज्य, श्रेष्ठ ।
 घ्रात्मवमान—आश्रित, निर्भर ।
 घ्रावर्जित—केन्द्रित ।
 घ्रावृत—अपा हुआ ।
 घ्रासक्त—आकृष्ट ।
 घ्रासन्न—निकटवर्ती ।
 घ्रासाद्य—पाकर ।
 घ्राधन—लकड़ी, जलावन ।
 उग्र—भयङ्कर, उत्तेजित ।
 उच्छिष्ट—भोजनावशेष, पूठा ।
 उत्सङ्ग—गोद, क्रीडा ।
 उवकक्रिया—मृतक-जलदान ।
 उद्वाष्प—आँसू, क्षुब्ध ।
 उद्यत—प्रस्तुत ।
 उन्नत—ऊपर उठा हुआ ।
 उपन्यस्त—प्रस्तुत हुआ ।
 उपरत—मरा हुआ ।
 उपरतापत्या—मृतवत्सा ।
 उपस्पर्श—आचर्षन ।

ओजस्—आंतरिक बल ।
 कपिल—श्वेत ।
 करण—कर्मसाधन ।
 करेणु—हस्तिनी ।
 कर्णधार—नौका खेनेवाला ।
 कर्वन—नीचवाचक शब्द ।
 कलभ—हापी का बच्चा ।
 कल्प—प्रकार ।
 कल्मष—पाप, अध ।
 कशा—चाबुक ।
 काश—पवित्र तृण ।
 किण—घाव का चिह्न, मास प्रथि ।
 कुलविरोध—वशागत विद्रोह ।
 कूल—किनारा, तट ।
 कृतकर्मा—सफल मनोरथ, कृतकृत्य ।
 कृत्स्न—सकल ।
 कुपण—मक्खीमूस, कज्जम ।
 कृश—दुबल, खिन्न ।
 कोश—सजाना ।
 क्रतु—यज्ञ ।
 क्रम—क्रमिक, सिलसिलेवार ।
 क्षुप—छोटे पौधे, उद्यान की भारी ।
 खग—पक्षी ।
 खाण्डध—वन का नाम ।
 खेद—कष्ट, दुःख, सन्ताप ।
 गहन—सघन, भयङ्कर ।
 गाङ्गेय—भोग्यपितामह ।
 गुल्म—वनप्रदेश की भाँड़ी ।

| | |
|---------------------------------------|---|
| गोधा—बमबे का दस्ताना । | दुन्दुभि—बाघविशेष । |
| घट—पित्ता हुआ । | दुर्दिन—मेघाच्छन्न दिन । |
| घोष—गोघ्न, वयान । | दुयिनीत—नम्रता-सून्य |
| घापल—बपलता । | द्युत—जुआ (दाव या खेल) । |
| घिराय—अधिक दिनो के लिये । | द्रोण—मेघ, काक, द्रोणाचार्य । |
| घोर—बलकल-बल । | धर्मशकटी—यतीय वस्तुयो को ढोने वाली गाडी । |
| चैत्य—चिता-मन्दिर, चिता पर के वृक्ष । | धर्माधिकार—न्यायाधिकार । |
| छन्द—इच्छा । | घोत—धुला हुआ बल । |
| छन्न—आवृत, क्षपा हुआ । | धर्षण—आक्रमण । |
| छलन—घोखा देना । | धारा—जल स्रोत, प्रवाह । |
| जतुगह—लट निर्मित घर । | धृति—धैर्य, उत्साह । |
| जिह्वाता—दुष्टता । | नाग—हाथी । |
| जोर्ण—पुराना, बेकाम । | निग्रह—परास्त, पराजय । |
| ज्येष्ठघम्—ब्रह्मपत्न । | निघ्न—मृत्यु । |
| ज्ञाति—दायाद, बन्धु, बान्धव । | निभृत—चुपचाप, शान्तिपूर्वक । |
| तनिमा—कृशता, खिन्नता । | निमग्न—चिता में डूबा हुआ । |
| तीर्ण—तैरना । | निराधय—सहायरहित । |
| तुण्ड—मुंह । | निर्यति—चला जाना । |
| तूणी—तरकन । | निर्वासय—बाहर कर दो । |
| वपित—प्रेमी, स्नेही । | निर्व्याज—नि.प्रपच, सचाई से । |
| वर्भ—कुशा । | नेमि—रथ की धुरी । |
| वय—वन । | न्यम्तशास्त्र—शस्त्र को रख देने वाला । |
| वस्यु—छुटेरा, डबैत । | न्याय्य—उचित । |
| वहन—जलन । | पक्कण—भोपटी, शबरालय । |
| विष्टया—भाग्यवशात् । | पट्ट—रेशमी बल । |
| वीक्षा—उपदेश, सङ्कल्प । | परशु—फरसा (शस्त्र विशेष) । |
| वीक्षिन—कृतसङ्कल्प । | परिकर—तैयारी, आरम्भ । |

परिग्रह—लेना ।
 परिघ—वेरा ।
 परिच्छन्द—भापने वाला ।
 परिष्वङ्ग—आलिङ्गन ।
 परिस्पन्द—रोमान्च, कपट ।
 परुष—कठोर, क्लिष्ट ।
 पाण्डु—पाण्डुर वर्ण, पाण्डु राजा ।
 पाण्डुर—श्वेत पीत वर्ण ।
 पादप—वृक्ष सामान्य ।
 पारिहाय—भूषण, बलय, कठहार ।
 पावक—भाग ।
 पार्श्व—बगल, समीप ।
 पीन—स्थूल, मोटा ।
 पुण्याह—पवित्रदिन उत्सव समारोह ।
 पुरोग—अग्रगामी, आगे चलनेवाला ।
 पैतृक—वर्षीती, पूर्वजों की ।
 प्रकुमुमित—प्रफुल्लित ।
 प्रकोष्ठ—केहुनी के नीचे वाले भाग ।
 प्रतिग्रह—दान लेना ।
 प्रतिषेध—अस्वीकार, ग्रहण निषेध ।
 प्रत्यभिन्न—शत्रु, दुश्मन ।
 प्रभावी—प्रभावशाली, पराक्रमी ।
 प्रमाण—मापक ।
 प्रवृत्ति—समाचार, कथोपकथन ।
 प्रवृत्तिपुरुष—युधन्वर, सी आई डी
 प्रसाव—धनुग्रह, कृपा ।
 प्रहरण—मल्ल शस्त्र ।

प्राग्बश—यज्ञ शाला के पूर्वभाग में
 रचित यज्ञगृह ।
 बट्ट—बालक माणवक ।
 प्रोपित—घरसे पृथक, परदेश में स्थित ।
 बहुनाथ—अनेकों से रक्षित ।
 वाढम्—अच्छी बात, स्वीकार ।
 भग्न—नष्ट, पराजित ।
 भृश—अतिशय अत्यन्त ।
 भ्रान्त—भ्रमित, धोखे में ।
 मण्डल—गोलाकार ।
 मधुपटलवक्र—मधुमक्खी का छत्ता ।
 मन्थ—क्रोध ।
 महानस—रसोई घर ।
 मारावक—ब्रह्मचारी बटुक ।
 माद्रीज—माद्री के सुत, नकुल-सहदेव ।
 मानुषीभूत—मनुष्य के रूप में ।
 मार्दव—कोमलता, मृदुता ।
 मिथ्र—आदरणीय, उपासनीय ।
 मोध—व्यर्थ वृथा ।
 यन्त्रित—नियमित, परीक्षित ।
 यादवी—यदुवश में उत्पन्न सुभद्रा ।
 यूय—समुदाय, दल, सेना ।
 यूय—यज्ञस्तम्भ, यज्ञीय दाह ।
 योग्या—अभ्यास ।
 योध—लडाकू योद्धा ।
 रणविस्तर—युद्ध विस्तार ।
 रव—युद्ध नाद, शब्द ।

| | सर्ग. | श्लो. | | सर्ग. | श्लो. |
|---------------------|-------|-------|----------------------|-------|-------|
| भीमसेनस्य | १ | ५२ | रात्रौ छन्नेन | १ | ५१ |
| भीष्मेण कर्णेन | १ | ४२ | रामेण मुक्ता | १ | ४९ |
| भीष्मं रामशरै | २ | २६ | रिपूणा सैन्य | ० | १४ |
| भ्रातृणां पैतृकं | १ | ३५ | रुद्रबाणावली | २ | ६५ |
| मम हि पितृभि | ३ | ४ | लङ्घयित्वा | ३ | १० |
| मा तावद् व्यथित | २ | ३ | लतया सत्पथा | १ | १४ |
| मा तावत् स्वजन | ३ | ५ | वनं सवृक्षधुप | १ | १५ |
| मिथ्या प्रशसा | २ | ६० | वय व्यपाशित्य | ३ | १४ |
| मुञ्चेदजुंनपुत्र | ३ | ६ | वपेग वा वपंशतेन | १ | ४९ |
| यज्ञेन भोजय | १ | २० | वल्मीकसूलात् | १ | १० |
| यत् पाण्डवा | १ | ३६ | विशालवशा | २ | ४३ |
| यत् पुरा ते सभा | १ | ३७ | शकटी च घृता | १ | ८ |
| यदि विमृशसि | १ | ३२ | सुप्केर्णकेन | १ | १२ |
| यदि स्वचक्रो | २ | १८ | सून्यमित्यभिषास्यामि | १ | ४६ |
| युध्यते यदि | २ | २५ | सूराणा सत्यसन्धाना | २ | ६६ |
| ये दुर्बलाश्च | १ | ३९ | शौण्डीयं घृति | २ | ५४ |
| येन भीमः सभा | १ | ३८ | श्मशानाद्भु | २ | ६१ |
| येषा गतिः क्वापि | १ | ३३ | सञ्चञ्चापैर्बद्ध | २ | २ |
| ये कस्तु कामैश्छलनं | १ | ४८ | स यौवनः श्रेष्ठ | २ | ३२ |
| योक्त्रयित्वा जरा | २ | ५७ | सरथतुरग | २ | ५१ |
| योषिष्ठिरं | २ | ७० | सर्वैरन्तःपुरैः | १ | २ |
| यौवः स्यादजुंन | ३ | २० | सहजी मे प्रहरणं | २ | ५५ |
| रणपटुरपनीतः | ३ | २ | सुग्भाण्डमरणी | १ | १८ |
| रथमानय | २ | १३ | हन्त सर्वे प्रसन्नाः | ३ | २६ |
| रथमासाद्य नि. | २ | ३७ | हितमपि परुष | १ | ४० |
| राज्ञा वेष्टनपट्ट | १ | ५ | हृत्प्रवेगो यदि | ३ | ११ |



॥ श्रीः ॥

हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला

२०८

महाकवि-भासप्रणीतं

प्रतिमा-नाटकम्

‘प्रकाश’ संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः

आचार्यः श्रीरामचन्द्रमिश्रः

मुजफ्फरपुरस्थधर्मसमाजसंस्कृतमहाविद्यालयप्राध्यापकः.

प्रस्तावनालेखकः.

डॉ० सत्यव्रत सिंहः

(प्राध्यापकः लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ)



चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

१९८३

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी

संस्करण : अष्टम, वि० स० २०४०

मूल्य : १०-००

© चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर-लेन

पो० बा० ८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)

फोन : ६३१४५

प्रधान वितरक

कृष्णादास अकादमी

पो० बा० नं० ११८

चौक, (चित्रा सिनेमा बिल्डिंग), वाराणसी-२२१००१ (भारत)

HARIDAS SANSKRIT SERIES

208



PRATIMĀNĀTAKAM

OF

MAHĀKAVI BHASA

Edited with

The 'Prakasha Sanskrit and Hindi Commentaries

By

ACHARYA RAM CHANDRA MISHRA

Professor, D. S. S. College, Muzaffarpur



CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE

VARANASI-1

1983

© Chowkhamba Sanskrit Series Office
K. 37/99, Gopal Mandir Lane
Post Box 8, Varanasi-221001 (India)
Phone : 63145

Elghtth Edition

1983

Price Rs 10-00

Also can be had from

KRISHNADAS ACADEMY

Oriental Publishers & Distributors

Post Box No. 118

Chowk, (Chitra Cinema Building), Varanasi-221001

(INDIA)

प्रस्तावना

भास-नाटक-चक्र

महाकवि भास के 'नाटक-चक्र' का मकेत सर्वप्रथम छठी-शताब्दी के महाकवि वाण ने किया है :—

'सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिर्नैः । सपतानैर्यशो लेभे भामो देवकुलैरिव ॥'

(हर्षचरित)

इस मकेत से इतना तो अवश्य स्पष्ट है कि भास की नाटक-कृति एक नहीं अपितु अनेक थीं ।

महाकवि भास के नाम के साथ उनके रचित 'नाटक-चक्र' का सम्बन्ध कालान्तर में भी संस्कृत के विषयों और ऐतकों की स्मृति में मुरचित रहा क्योंकि 'सूक्तिमुक्तावली' के रचयिता कवि राजशेखर ने भी भाम और उनकी नाटक-कृतियों का स्मरण किया था :—

'भामनाटकचक्रोऽपि ष्टोकैः छिप्ते परीक्षितुम् ।

स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभूत्त पावकः ॥'

१० वीं शताब्दी के कवि कदहण ने अपनी 'सूक्तिमुक्तावली' में राजशेखर की 'सूक्तिमुक्तावली' की इसी उपयुक्त सूक्ति का पुनरुल्लेख कर भाम के 'नाटक-चक्र' की प्राचीन स्मृति को जागृत रखा है ।

किन्तु समय के हेर-फेर से भास का 'नाटक-चक्र' लुप्तप्राय हो गया । भास के 'नाटक-चक्र' की खोज १९०६ में हुई और महामहोपाध्याय टी० गणपति शास्त्री ने भास के १३ नाटकों को मस्कृत के विद्वज्जगत् के सामने उपस्थित किया । संस्कृत के अनुसंधानशील भारतीय और विदेशीय विद्वान् भास के इस 'नाटक-चक्र' के सम्बन्ध में दो विरुद्ध पक्षों में विभक्त हो गये । एक पक्ष ने दक्षिण भारत में उपलब्ध 'स्वप्नवासवदत्तम्' आदि १३ नाटकों को भास के 'नाटक-चक्र' के रूप में माना, किन्तु दूसरे पक्ष ने इन्हे सन्देह की दृष्टि से देखा । महामहोपाध्याय टी० गणपति शास्त्री के द्वारा प्रकाश में लिये गये 'स्वप्नवासवदत्तम्' आदि १३ नाटकों को भास के 'नाटक-चक्र' के रूप में मानने वाले विद्वानों में डाक्टर कीध, डाक्टर टामस, डाक्टर स्वरूप आदि रहे और इन्हें सन्देह की दृष्टि से देखने वाले विद्वानों में डाक्टर वार्नेट, डाक्टर सिल्वन स्लेवी, डाक्टर तुल्लर, म० म० कुप्प स्वामी शास्त्री आदि थे ।

अस्तु, महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री की खोज में मिले 'नाटक-चक्र' में ये १३ नाटक हैं :-

- | | |
|--------------------------|------------------|
| १. स्वप्नवासवदत्तम् | ८. मध्यमन्यायोगः |
| २. प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् | ९. दूतवाक्यम् |
| ३. अविमारकम् | १०. दूतघटोत्कचम् |
| ४. चारुदत्तम् | ११. कर्णभारम् |
| ५. प्रतिमानाटकम् | १२. ऊरुभङ्गम् |
| ६. अभिषेकनाटकम् | १३. बालचरितम् |
| ७. पञ्चरात्रम् | |

प्रतिमानाटक : नामसार्थक्य

उपर्युक्त भास-नाटक चक्र में 'प्रतिमानाटक' एक मुख्य नाटक है। 'प्रतिमानाटक' का नाम कुछ लोग इसलिये सङ्गत मानते हैं कि इसमें प्रतिमा-गृह अथवा मूर्तिगृह की घटना का महत्त्व ही नाटक की इतिवृत्त रचना की विशेषता है। प्रोफेसर ध्रुव के अनुसार इस नाटक का पूरा नाम 'प्रतिमा-दशरथ' रहा होगा जिसे संक्षिप्त रूप में 'प्रतिमा' कर दिया गया। भास का एक नाटक 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' भी है जिसे संक्षेप में 'प्रतिज्ञा' नाटक कहा जा सकता है। भास के 'स्वप्नवासवदत्तम्' की कुछ प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों में केवल 'स्वप्न-नाटक' ही लिखा मिलता है।

प्रतिमा का इतिवृत्त

भास ने 'प्रतिमा नाटक' का मूलवृत्त रामायण से लिया है। वाल्मीकि-रामायण के अयोध्याकाण्ड और भरण्यकाण्ड में वर्णित वृत्त ही वस्तुतः इस नाटक का आधार वृत्त है। किन्तु इस आधारवृत्त की रचना जो नाटक के इतिवृत्त रूप में है वह महाकवि भास की अपनी नाटकीय कल्पना है। 'प्रतिमा' के सात अङ्कों में भास की इतिवृत्त-कल्पना जिस नाटकीय घटना-चक्र की सृष्टि करती है उसका रूप निम्न है :-

प्रथम अंक (दृश्य प्रथम)

महाराज दशरथ के राजप्रासाद में राम के राज्याभिषेक की तैयारी हो रही है। महाराज दशरथ ने राज्याभिषेक की सामग्री की तैयारी के सम्बन्ध में आज्ञा दे दी है और उनकी प्रतीहार रक्षी उनकी आज्ञा के पालन के सम्बन्ध में कञ्चुकी से सब समाचार जानना चाहती है। कञ्चुकी के द्वारा प्रतीहार-रक्षी को और प्रतीहार-रक्षी के द्वारा महाराज दशरथ को भी पता

चलता है कि राज-छत्र, राजसिंहासन, मङ्गरकलश आदि सभी सामग्रियाँ तैयार हैं और महर्षि विश्वामित्र राज्याभिषेक संस्कार प्रारम्भ करने के लिये महाराज की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

(दृश्य—द्वितीय)

सीताजी अपने हर्म्य-कक्ष में अपनी चेटियों के साथ हास परिहास में लगी हैं। इतने में उनकी एक चेटी आती है और अपने साथ एक बल्कल-वस्त्र लाती है जिसे उसने राजप्रासाद की नाट्यशाला से, नाट्यशाला की संरक्षिका को बिना बताया, ले लिया है। सीताजी इस चेटी को कुछ भला-बुरा कहती हैं और बल्कल को नाट्यशाला में लौटाने की आज्ञा देती हैं। चेटी बल्कल लौटाने ही जा रही है कि सीताजी उसकी मुन्दरता से आकृष्ट होकर कौतुकवश उसे पहन लेती हैं। इतने में एक दूसरी चेटी आती है और सीताजी को राम के राज्याभिषेक की सूचना देती है। अभिषेक समारोह के मङ्गलवाद्य वज्रते-वज्रते अस्मान् बन्द हो जाते हैं और सीता के पास राम आ पहुँचते हैं। राम प्रसन्न है क्योंकि उनका राज्याभिषेक होते होते रक गया है। राम अपने राज्याभिषेक के रङ्गने का कारण बताते हैं और सीता प्रसन्न होती हैं। अस्मान् राम का ध्यान सीता के बल्कल परिधान पर जाता है और स्वयं भी उन्हें बल्कल पहनने की इच्छा होने लगती है। इतने में अन्त पुर का करण-अन्दन सुन पड़ता है और महाराज दशरथ के शोक-मूर्च्छित होने का समाचार फैल जाता है। क्रोध में लक्ष्मण सीता के हर्म्यकक्ष में पहुँच जाते हैं और कैकेयी से बडला लेने के लिये श्रीजाति के सहार की प्रतिज्ञा करते हैं। राम समझा बुझा कर लक्ष्मण को शान्त करते हैं और राम के साथ सीता और लक्ष्मण वन गमन के लिये तैयार हो जाते हैं।

द्वितीय अङ्क

राम, सीता और लक्ष्मण को वन गमन से रोकने में असमर्थ महाराज दशरथ शोकान्मत्त हैं और अपने अन्त पुर में मूर्च्छित पड़े हैं। कैसल्या महाराज दशरथ को शान्त करने में लगी हैं। इतने में राम के साथ सीता और लक्ष्मण को अयोध्या की सीमा के पार पहुँचा कर लौटे हुये सुमन्त्र आते हैं। सुमन्त्र से राम के वन गमन का समाचार जान महाराज दशरथ मूर्च्छित और निष्प्राण हो जाते हैं।

तृतीय अङ्क

दिवगत रघुवशी राजाभो का प्रतिमागृह सजाया जा रहा है और सुन महाराज दशरथ की प्रतिमा के स्थापन संस्कार के लिये कैसल्या आदि रानियों के आगमन की प्रतीक्षा हो रही है। महाराज दशरथ के अस्वास्थ्य का समाचार सुन भरत अपने मातुलगृह (केकय देश) से चले आ रहे हैं और अयोध्या की सीमा पर निर्मित 'प्रतिमागृह' की सजावट देख वहाँ रक जाते हैं। अयोध्या

से बहुत समय बाहर रहने के कारण भरत को यह प्रतिमा-गृह अपने पूर्वजों का स्मारक नहीं अपितु देवमन्दिर-सा लगता है। इतने में भरत के स्वागतार्थ शत्रुण का सैनिक सेवक आता है और उन्हें अयोध्या-प्रवेश के लिए शुभमुहूर्त की प्रतीक्षा करने के लिये कहता है। अयोध्या-प्रवेश के शुभ मुहूर्त की प्रतीक्षा में भरत प्रतिमागृह के दर्शन के लिये चल पड़ते हैं और देवकुलिक (प्रतिमागृह के पूजनाधिकारी) के द्वारा क्रमशः दिलीप, रघु और अज की प्रतिमाओं का परिचय प्राप्त करते हैं। महाराज दशरथ की प्रतिमा दिखाये जाने पर और यह बताये जाने पर कि प्रतिमागृह दिवंगत रघुवंशी राजाओं का स्मारकभवन है, भरत मूर्च्छित हो जाते हैं। मूर्च्छा से उठने पर भरत को राम और दशरथ का पूरा वृत्तान्त बताया जाता है और भरत पुनः मूर्च्छित हो जाते हैं। इतनेमें कौसल्या आदि स्त्रियाँ प्रतिमागृह में पहुँचती हैं। भरत मूर्च्छा से उठते हैं और सुमन्त्र के साथ आये अपने मातृवर्ग से मिलते हैं। कैकेयी पर भरत क्रोध होते हैं और अपने राज्याभिषेक के बदले राम के साथ वनवास करने का दृढ निश्चय प्रकट करते हैं।

चतुर्थ अङ्क

राम, सीता और लक्ष्मण के साथ वन में रहने लगे हैं। सुमन्त्र के साथ भरत राम की पर्णकुटी पर जा पहुँचते हैं भरत के स्वर से उन्हें पहचान कर राम उनसे मिलने को उत्सुक हो जाते हैं। भ्रातृमिलन के बाद भरत राम के प्रति निधिरूप से अयोध्या का राज्य चलाने पर किसी प्रकार तैयार होते हैं और राम, सीता और लक्ष्मण से विदा लेते हैं।

पञ्चम अङ्क

रावण कपट-परिभाषक बनकर वन में पहुँचता है और राम का आतिथ्य ग्रहण करता है बातचीत में महाराज दशरथ के श्राद्ध के लिये रावण राम को सुवर्णस्रग के निवाप का उपदेश देता है। राम सुवर्णस्रग के पीछे चल पड़ते हैं और लक्ष्मण एक महर्षि के स्वागतार्थ चले जाते हैं। सीता रावण का आतिथ्य करने रक जाती है। रावण सीता को अपना वास्तविक परिचय देता है और डरा धमकाकर बलात् उनका अपहरण करता है। सीता का करुण-क्रन्दन जटायु को सुन पड़ता है और जटायु रावण के मार्ग में यथाशक्ति विघ्न उपस्थित करता है।

षष्ठ अङ्क

(दृश्य—प्रथम)

रावण सीता को आकाश-मार्ग से भगाये लं जा रहा है और जटायु रावण ने लज्जा-भिडता उड़ रहा है। अन्त में जटायु की मृत्यु हो जाती है। 'अन्तर्धान' वन के दो शपिकुमार सीतापहरण तथा जटायुबध की घटना अवगत कराने के लिये राम को दूँ देने निकल पड़ते हैं।

(हृदय-द्वितीय)

'जनस्थान'-धन से लौटे मुमन्त्र अयोध्या के राजप्रासाद में भरत से मिलते हैं और सीतापहरण का दुःख समाचार टिपाने की यथानक्ति चेष्टा करते हैं। रावण के द्वारा सीतापहरण का समाचार मिलते ही भरत कैकेयी पर अपना क्रोध निकालने लगते हैं। कैकेयी चमा माँगती हैं और यह निवेदन करती हैं कि उनके मुँह से 'चौदह दिन' के वनवाग्य के बदले 'चौदह वर्ष' का वनवास निकल पड़ा। भरत कैकेयी की वान पर मुमन्त्र के कहने से विश्वास कर लेते हैं और रावण पर आक्रमण करने के लिये उत्कण्ठित हो उठते हैं।

सप्तम अंक

रावण विजय के घाट लड़ा मे लौटे राम जनस्थान में पहुँच आये हैं। उनके साथ सीता और लक्ष्मण हैं। जनस्थान की प्राचीन सुखद स्मृति में तीनों एक दूसरे से वार्तालाप कर रहे हैं। इतने में उन्हें भरत और उनकी सेनाओं के यहाँ पहुँचने का समाचार मिलता है। भरत के साथ मुमन्त्र और कैकेयी आदि हैं। मयकी उपस्थिति में भरत अपने अग्रज राम के घरणों में राज्य-भार समर्पण कर देते हैं और कैकेयी की आज्ञा से राम अपना राज्याभिषेक स्वीकार करते हैं।

'प्रतिमा' के इतिवृत्त का रामायण के मूल वृत्त से भेद

मान अङ्कों में अङ्कित प्रतिमानाटक का इतिवृत्त रामायण के मूलवृत्त का नवीन कवि-रूपना-प्रभूत रूपान्तर है। नाट्यविद्या की प्राचीन परम्परा के अनुसार नाटककार को जो यह अधिकार प्राप्त है कि वह अपने रस-भाव की दृष्टि से प्राचीन मूलवृत्त में यथाम्भव परिवर्तन कर सकता है, उसका पूरा उपयोग प्रतिमानाटक में किया गया है। प्रतिमानाटक में महाकवि भास्व ने जो घटना-चक्र रचा है वह रामायण के कथानक से इन इन अंशों में नवीन है :-

(१) प्रथम अङ्क की कल्पना की घटना रामायण में नहीं है। नाटक कवि की यह अपनी कल्पना है, जिसका उद्देश्य सीता और राम के मधुर गार्हस्थ्य का प्रकाशन है। रामायण में राम के राज्याभिषेक में भरत के साथ शत्रुघ्न को भी अनुपस्थित दिखाया गया है किन्तु 'प्रतिमा' में केवल भरत अनुपस्थित रहते गये हैं और शत्रुघ्न को राज्याभिषेक के समय अयोध्या में उपस्थित बताया गया है।

(२) द्वितीय अङ्क में शत्रुघ्न-दास्या पर पड़े दशरथ के सामने उनके स्वर्ग से आये पूर्वजों का जो हृदय है वह नाटककार की कल्पना है क्योंकि रामायण में इसका कोई निर्देश नहीं है।

(३) तृतीय अङ्क की घटना नाटककार की एक मात्र नाटकीय कल्पना है। रामायण में 'प्रतिमागृह' की कोई भी चर्चा नहीं है। वस्तुतः तृतीय अङ्क की प्रतिमागृह-सम्बन्धी कल्पना ही प्रतिमानाटक की जन्मभूमि है।

(४) पञ्चम अङ्क में राम और रावण का जैसा मिलन वर्णित है उसका रामायण में कोई भी निर्देश नहीं। यहाँ मारीचरूपी मायाशुग के बदले 'काञ्चनपार्व' युग की कल्पना है और दिवंगत दशरथ के श्राद्ध के लिये इस युग के अन्वेषण में राम को सीता के पास से जो हटाया गया है वह भी सर्वथा एक नयी कल्पना है।

(५) षष्ठ अङ्क में सुमन्त्र का पुनः दृष्टकारण्य में जाना और रावण के द्वारा सीतापहरण की घटना से परचित होना नाटककार की कल्पना है। रामायण में इस प्रकार का कोई वर्णन नहीं है। साथ ही साथ सुमन्त्र द्वारा वर्णित सीता-पहरण के वृत्तान्त से दुःखित भरत का अपनी माता वैदेयी को कोसला और कैकेयी का यह कहना कि चौदह दिन के वनवास के बदले चौदह वर्ष का वनवास सम्भ्रमव्रत उसके मुँह से निकल पडा आदि बातें प्रतिमानाटक की इतिवृत्त रचना की विशेषता हैं क्योंकि रामायण में इस प्रकार का कोई संकेत नहीं। रावणविजय के लिये भरत का सेना-समुद्योग भी नाटककार की ही कल्पना है जिसका रामायण में कोई उल्लेख नहीं है।

(६) सप्तम अङ्क में राम के राज्याभिषेक का जनस्थान में होना, अयोध्या के नरनारियों का इस राज्याभिषेकोत्सव में सम्मिलित होना, विभीषण, सुग्रीव आदि का भी यहाँ विराजमान रहना और पुनः धूमधाम में राज्याभिषेक के लिये सबका अयोध्या जाना आदि नाटककार की इतिवृत्त-कल्पना से सम्बद्ध है। इसका भी रामायण में कोई निर्देश नहीं है।

'प्रतिमा' में चरितचित्रणः रामायण की चरितवर्णना से भिन्न - नाटककार भास ने 'प्रतिमा' में जैसा चरितचित्रण किया है उसी के अनुसार इतिवृत्त-रचना की है। 'प्रतिमा' का चरितचित्रण 'प्रतिमा' के रस-भाव का अनुसरण करता है। जहाँ 'प्रतिमा' में जो मुख्य रस-भाव विद्यमान है वह करण-रस है और इसी के विविध प्रकार के परिपोष में प्रत्येक चरित विविधरूप में विकसित होते हैं।

राम का चरितचित्रण

'प्रतिमा' के राम रामायण के राम नहीं। रामायण के राम अपने पिता महाराज दशरथ के सम्बन्ध में वह कोमल भाव नहीं रखते जो 'प्रतिमा' के राम में स्पष्ट झलकता है। 'प्रतिमा' के राम अपने राज्याभिषेक के होते-होते रक जाने और अपने वनवास के सम्बन्ध में प्रसन्न होकर यह कहते हैं—

'वनगमनवृत्ति' पार्थिवस्यैव तावत्, मम पितृपरवेत्ता बालभावः स एव ।
नवनृपतिविमर्शो नास्ति शङ्का प्रजानामथ च न परिभोगैर्वञ्जिता भ्रान्तरो मे ॥

(पृ० ३१)

वहाँ रामायण के राम का इस अवसर पर कुछ दूसरा ही रूप है :—

'गुह्य राजा च पिता च वृद्धः क्रोधान् प्रहपाद्य वापि कामात् ।

यद् व्यादिशेत् कार्यमवेक्ष्य धर्मं कस्तन्न कुर्यान्नृशंसवृत्तिः ॥

(अयोध्याकाण्ड २१, २६)

रामायण में राम को कैकेयी पर कुछ क्रोध और शोभ भी प्रकट करते वर्णित किया गया है :—

मम प्रवजनाद्य कृतकृत्या नृपात्मजा ।

सुतं भरतमव्यग्रमभिपेक्षयतां ततः ॥

मयि चीराजिनधरे जटामण्डलधारिणि ।

गतैःशरण्यं च कैकेय्या भविष्यति मनःसुखम् ॥

(अयोध्याकाण्ड २२, १२ १३)

किन्तु, 'प्रतिमा' (पृ० २८-२९) में राम को कैकेयी के प्रति क्रोध-शोभ-रहित दिखाया गया है :—

रामः—'अथ कुत उत्पन्नोऽयं शोषः !

कान्शुकीयः—स्वजनात् ।

रामः—स्वजनादिति । हन्त, नास्ति प्रतीकारः !

शरीरैःशरिः प्रहरति हृदये स्वजनस्तथा ।

कस्य स्वजनशब्दो मे लज्जामुत्पादयिष्यति ॥

कान्शुकीयः—तत्र भक्त्याः कैकेय्याः ।

रामः—किमभ्याया ? तेन हि उदरैः गुणेनात्र भवितव्यम् ।

कान्शुकीयः—कथमिव ?

रामः—ध्रुवताम्—

यस्याः शक्रसमो भर्ता मया पुत्रवती च यथा ।

फले कस्मिन् स्पृहा तस्या येनाकार्यं करिष्यति ॥

रामायण के कवि ने राम को सीता के स्पृहा-विनोदन के लिए माया-भृगु-सारीच के प्रति भेजा है :—

आर्यपुत्राभिरामोऽसौ शृगो-हरति मे मनः ।

आनयैतं महाबाहो क्रीडार्थं नो भविष्यति ॥

(अरण्यकाण्ड ४३, ६)

यावद् गच्छामि सीमित्रे ! शृगमानपितुं द्रुतम् ।
पश्य लक्ष्मण ! वैदेही शृगत्वचि गतस्पृहाम् ॥

(अरण्यकाण्ड ४३, ४८)

किन्तु 'प्रतिमा' के नाटककार ने राम को काञ्चन-पार्श्व शृग का पीछा करते चित्रित करते हुए पितृभक्त पुत्र के रूप में प्रस्तुत किया है (पृ० १३६-४०) :—
रावणः—कौसल्यामातः ! अलमतिमनोरयेन । न ते (काञ्चनपार्श्वः शृगाः)
मानुषैर्दृश्यन्ते ।

रामः—भगवन् ! किं हिमवति प्रतिवसन्ति ?

रावणः—अथ किम् ।

रामः—तेन हि पश्यतु भवान्—

सौवर्णान् वा शृगांस्तान् मे हिमवान् दर्शयिष्यति ।
भिक्षो मद्वाणवेगेन क्रीडित्वं वा गमिष्यति ॥

रावणः—(स्वगतम्) अहो असह्यः खल्वस्यावलेपः । (प्रकाशम्) अये
विद्युत्-संपात इव दृश्यते । कौसल्यामातः ! इहस्थमेव भवन्तं पूजयति हिमवान् ।
एष काञ्चनपार्श्वः ।

रामः—भगवतो वृद्धिरेषा ।

सीता—दिष्टया आर्यपुत्रो वर्धते ।

रामः—न न—

तातस्यैतानि भाग्यानि यदि स्वयमिहागतः ।
अहंत्येष हि पूजायां लक्ष्मणं ब्रूहि मैथिलि ! ॥

सीता का चरित-चित्रण

'प्रतिमा' की सीता बही नहीं जो 'रामायण' की सीता है । रामायण की सीता तो महाराज दशरथ की बनवास की आज्ञा के पालन में राम को कुछ खरी-खोटी भी सुनाती है :—

'ज्ञान्वमाना तु रामेण मैथिली जनकात्मजा ।
, बनवासनिमित्तार्थं भर्तारमिदमब्रवीत् ॥
सा तमुत्तमसंदिग्ना सीता विपुलवत्सलम् ।
प्रणयाञ्चाभिमानाच्च परिचिन्नेष राघवम् ॥
किं त्वामन्यत वैदेहः पिता मे मिथिलाधिपः ।
, रामं जामातरं प्राप्य खिर्यं पुरपविग्रहम् ॥

स्वयं तु भार्या कौमारीं चिरमध्युपितां मतीम् ।
शैलूप इव मां राम परंभ्यो दातुमिच्छसि ॥

(अयोध्याकाण्ड ३०.१.७)

किन्तु 'प्रतिमा' की सीता राम के राज्याभिषेक में न तो प्रमत्त हैं और न वनगमन में स्थित। राम से सीता इतना ही कहती है :—

'प्रियं मे । महाराज एव महाराजः । आर्यपुत्र एवार्यपुत्रः ।' (पृ० २३)

रामायण की सीता मायासृग के आटे के लिए निकले राम के पीछे लक्ष्मण को न जाते देख लक्ष्मण पर क्रुद्ध होती है :—

'तमुवाच ततस्तत्र शुभिता जलकारमला ।
सौमित्रे मित्ररूपेण भ्रातस्त्वमस्मि शत्रुवत् ॥
यस्त्वमस्याभवस्यायां भ्रातरं नाभिपद्यसे ।
इच्छसि त्वं विनश्यन्तं रामं लक्ष्मण मत्कृते ॥
लोभान्तु मत्कृते नूनं नानुगच्छमि राघवम् ।
व्यसनं ते प्रियमन्ये स्नेहो भ्रातरि नास्ति ते ॥

(अरण्यकाण्ड ४२-२-७)

किन्तु 'प्रतिमा' नाटक के कवि ने सीता के इस व्यक्तित्व का चित्रण करना अनुचित समझकर मायासृग की घटना में लक्ष्मण को ही अनुपस्थित निर्दिष्ट कर दिया है ।

कौसल्या का चरित-चित्रण

रामायण में तो कौसल्या को कैकेयी के दुर्व्यवहार पर दुःख चित्रित किया गया है और भरत पर भी रष्ट बताया गया है :—

तथैव क्रोशतस्तस्य-भरतस्य महात्मनः ।
कौसल्या शब्दमाज्ञाय मुमिश्रां चेदमवतीत् ॥
आगतः क्रूरकार्यायाः कैकेय्या भरतः सुतः ।
तमहं द्रष्टुमिच्छामि भरतं दीर्घदर्शिनम् ॥
भरतं प्रत्युवाचेदं कौसल्या मृशदुःखिता ।
इदं ते राज्यकामस्य राज्यं प्राप्तमकण्ठकम् ।
सम्प्राप्तं वत कैकेय्या शीघ्रं क्रूरेण कर्मणा ॥
प्रस्थाप्य चीरवसनं पुत्रं मे वनवासिनम् ।
कैकेयी कं गुणं तत्र पश्यति क्रूरदर्शिनी ॥

(अयोध्याकाण्ड ७१.२-१२)

किन्तु 'प्रतिमा' में कौसल्या का जो चरित है उसमें कहीं भी उसे रष्ट अथवा दुःख नहीं देखा जा सकता ।

और साथ ही साथ लक्ष्मण का क्रोध (पृ० ३४)—

‘यदि न सहसे राशो मोहं धनुः स्पृश मा दया’

स्वजननिभृतः सर्वोऽप्येवं शृदुः परिभूयते ।

अथ न रुचिं मुञ्च त्वं मामहं कृतनिश्चयो
युवतिरहितं कर्तुं यतश्छलिता वयम् ॥

कहण रस का ही प्रादुर्भाव परिपोष का उपाय मात्र है ।

द्वितीय अङ्क तो कहण रस से ओतप्रोत है ही ।

तृतीय अङ्क (पृ० ७२) में भरत की स्वजन-दर्शन की यह उत्सुकता—

पतितमिव क्षिरः पितुः पादयोः सिञ्चतेवास्मि राज्ञा समुत्थापितः

स्वरितमुपगता इव आतरः क्लेदयन्तीव मामश्रुभिर्मातरः ।

सदृश, इति महानिति व्यायतश्चेति भृत्यैरिवाहं स्तुतः सेवया

परिहसितमिवात्मनस्तत्र पश्यामि विषं च भाषा च सौमित्रिणा ॥

सहृदय सामाजिक में जिस विचित्रता से कहण रस का सञ्चार करती है वह अन्यत्र सुलभ नहीं । ‘प्रतिमागृह’ में भरत का प्रतिमा-दर्शन और कलाविनोद कहण रस की एक नयी ही उद्गावना है । चतुर्थ अङ्क में जो कहण का विराम है और पञ्चम अङ्क में जो रावण के चरित्र में विस्मय-भाव का प्रकाशन है वह सप सीतापहार की दुःखद घटना में पर्यवसित होकर, कहण का ही परिपोषक बना दिखाई देता है ।

उत्तररामचरित का कहण काव्यव्यङ्ग्य कहण रस है किन्तु ‘प्रतिमा’ का कहण नाट्यव्यङ्ग्य कहण रस है । जैसे तो भवभूति ने भी ‘उत्तररामचरित’ को नाटक-रूप में ही रचा है किन्तु वहाँ जो कहण की-अवतारणा है वह कविता का कार्य है । ‘प्रतिमा’ में कहण रस कविता द्वारा नहीं अपितु नाटक द्वारा अभिव्यक्त किया गया है । नाटक की मुख्य घटना ‘प्रतिमागृह’ और प्रतिमा-दर्शन में भरत की उत्सुकता—जिसकी स्मृति नाटक के नामकरण में सुरचित रखी गयी है—बिना काव्यमय कहण सन्दर्भों के ही कहण रस की उद्गमभूमि बनी प्रतीत हुआ करती है ।

‘प्रतिमा’ का नायक

प्रतिमा नाटक के धालोचक विद्वानों की दृष्टि में ‘राम’ प्रतिमानाटक के नायक है । डाक्टर गणपति शास्त्री का कहना है :—

‘In the Pratima, however, the central Rasa that runs through it, is the Dharmavira mingled with Karuna Rasa—the Dharmavira manifesting itself in the enthusiasm displayed by the hero (Bama) In cherishing the single thought of carrying out the Dharma I, e. fulfilling the mandates of his royal father’—Pratima Introduction,

जिसका अभिप्राय यही है कि राम को नायक मान कर नाटककवि ने अपने नाटक में घर्मवीर रस की पूर्णरूप से अभिव्यक्ति की है। किन्तु ऐसा लगता है कि नाटककार को वहाँ कर्णरस की ही अभिव्यक्ति अभिप्रेत है और इस दृष्टि से भरत ही इस नाटक के नायक रूप में चित्रित है।

रामायण में भरत का जो उदात्त चरित्र है उसकी छाप 'प्रतिमा' पर सर्वत्र पड़ी दिखाई देती है। यद्यपि इस नाटक के प्रथम अङ्क (पृ० ३०) में 'भरत' का दर्शन नहीं होता किन्तु राम की इस उक्ति अर्थात्—

'ताते धनुर्न मयि सख्यम्बेक्षमाणे मुञ्चानि-मातरि शरं स्वधनं हरन्त्याम् ।

दोषेषु ब्राह्मणनुजं भरतं हनानि किं रोपणाय रचिरं त्रिषु पातकेषु ॥'

में भरत के व्यक्तित्व का पुँघला चित्र सहृदय सामाजिकों की अन्तर्दृष्टि के आगे अवश्य उपस्थित किया गया है। दूसरे अङ्क (पृ० ६४) में भी भरत को सहृदय सामाजिक नहीं देखते किन्तु राजा दशरथ की इस उक्ति अर्थात्—

'गतो रामः प्रियं तेऽस्तु स्वप्नोऽहमपि जीवितैः ।

शिप्रमानीयतां पुत्रः पापं सफलमस्त्विति ॥'

में वे भरत की प्रतीक्षा में तन्मुख अवश्य हो उठते हैं। सहृदय सामाजिकों की तन्मुक्ता तीसरे अङ्क में भरत को देखकर शान्त हो जाती है। तीसरे अङ्क (पृ० ७०) में भरत का जो करण चित्र सहृदय सामाजिक के मामले आता है वही अन्त तक नये-नये दृष्टिकोणों से दीखता चला करता है। सुमन्त्र के साथ भरत की जो उक्ति-प्रयुक्ति है :—

भरतः—पितृर्मे को व्याधिः ।

'सूतः—हृदयपरितापः सखु महान् ।

भरतः—किमाहुस्तं वैद्याः ।

सूतः—न ह्यलु म्रिपजस्त्वत्र निपुणाः ।

भरतः—किमाहारं मुहूर्त्वे शयनमपि ।

सूतः—भर्मा निरदानः ।

भरतः—किमाशा स्यान् ।

'सूत —दैव ।

भरतः—स्फुरत हृदयं बाहय रयम् ।

उसमें भरत का पिता के प्रति स्नेह शोक की एक तीव्र व्यथा से लिपटा प्रतीत हो रहा है। भरत का व्यक्तित्व एक शोकाकुल महापुरुष का व्यक्तित्व है और इस व्यक्तित्व में तन्मय सामाजिक को इस नाटक के अन्य चरित्रों का व्यक्तित्व भी कर्ण-व्यक्तित्व ही लगा करता है।

—सुमन्त्र की यह उक्ति (पृ० ८७)—

सुमन्त्रः—इत इतो भवत्यः—

इदं गृहं तत् प्रतिमानृपस्य नः समुच्छ्रयो यस्य स हर्म्यदुर्लभः ।

अयन्निर्गतरप्रतिहारिकागतैर्विना प्रणामं पथिकैरुपास्यते ॥

(प्रविश्यावलोक्य)

भवत्यः ! न खलु न खलु प्रवेष्टव्यम्—अयं हि पतितः कोऽपि वयस्स्थ इव पार्थिवः ।

देवकुलिकः—परशद्दामलं कर्तुं गृह्यतां भरतो ह्ययम् ॥

राजा दशरथ को प्रतिमा—दशरथ सिद्ध करने के लिए नहीं अपितु भरत को करुण रस की प्रतिमा सिद्ध करने के लिए है । भरत का कैकेयी के प्रति यह श्लोक

(पृ० ११)—

अयशसि यदि लोभः कीर्तयित्वा किमस्मान्, किमु नृपफलतर्पं. किं नरेन्द्रो न दद्यात् ।

अथ तु नृपतिमातेत्येप शब्दस्तयेष्टो, वदतु भवति ! सत्यं किं तवार्यो न पुत्रः ॥
चस्तुतः भरत के श्लोक का ही एक प्रकाशन प्रकार है ।

चतुर्थ अङ्क (पृ० १०४) में भरत का व्यक्तित्व भरत के शब्दों में स्वयं प्रकाशित है :—

‘निघृणश्च कृतघ्नश्च प्राकृतः प्रियसाहसः ।

भक्तिमानागतः कश्चित् कथं तिष्ठतु यात्विति ॥’

छठे अङ्क (पृ० १२५) में भरत की यह उक्ति—

भरतः—तात ! अपि दृष्टस्त्वया लोकाविकृतपितृस्नेहः । अपि दृष्टं द्विधामृत-

मरन्धतीचारित्रम् । अपि दृष्टं त्वया निष्कारणावहितचनवासं सौभ्रात्रम् ।

भरत के करुण महान् व्यक्तित्व को और भी स्पष्टतया प्रकट कर देती है ।

भरत का कैकेयी से यह कहना (पृ० १६६)—

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि । आशुच्छान्यत्रभवतीम् । अद्यैवाहमार्थस्य साहा-

य्यार्थं कृत्स्नं राजमण्डलमुद्योजयामि । अयमिदानीं—

चेलामिमां मत्तगजान्धकारां करोमि सैन्यौधनिवेशनद्वाम् ।

वलैस्तरङ्गिश्च नयामि तुल्यं शलानि समुद्रं सह रात्रणेन ॥

जो रामायण में असम्भव है, भरत की कर्तव्यनिष्ठा की तो सूचना देता ही है किन्तु साथ ही साथ भरत के करुण व्यक्तित्व को भी झलका जाता है ।

सप्तम अङ्क (पृ० १७७) में सहृदय सामाजिक भरत को अवश्य प्रसन्न देखते हैं—

भरतः—आर्य ! अभिवाद्ये भरतोऽहमस्मि ।

रामः—एद्येहि वत्स ! इत्थवाकुमार ! स्वस्ति, आयुष्मान् भव ।

वचः प्रसारय कवाटपुटप्रमाणमालिङ्ग मां सुधिपुलेन मुजद्भवेन ।

उत्तमयाननमिदं शरदिन्दुवलयं प्रह्लादयं व्यसनदग्धमिदं शरीरम् ॥

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्ये ! अभिजादये, भरतोऽहमस्मि ।

सीता—आर्यपुत्रेण विरसञ्चारी भव ।

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्य ! अभिवाद्ये ।

लक्ष्मणः—एहोहि वत्स ! दीर्घायुर्भव । परिष्वजस्व मादम् ।

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्य ! प्रतिगृह्यतां राज्यभारः ।

किन्तु भरत की यह प्रसन्नता करुणा की ही प्रसन्नता है । नाटक को सुखान्त होना चाहिये । भरत की करुणा यद्यपि हँस रही है तथापि वह करुणा ही है ।

‘प्रतिमा’ और अभिज्ञानशाकुन्तल

भामहूत ‘प्रतिमा’ की मधुर कल्पना ने महाकवि कालिदास को कम प्रभावित नहीं किया । ‘प्रतिमा’ के प्रथम अङ्क में वल्कलावृता सीता के सम्बन्ध में अवदा-तिदा की जो उक्ति है :—

‘भट्टिनि ! सर्वंशोभनीर्यं मुरूपं नाम’ (पृ० १२)

उसी की भावना ‘अभिज्ञानशाकुन्तल’ में कालिदास की इस स्मरणीय उक्ति की प्रेरणा है :—

‘सरसिजमनुपिदं क्षीबलेनापि रम्यं, मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं वनोति ।
इयमधिकमनोज्ञा चकलेनापि सन्वी, किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ॥

(अभिज्ञानशाकुन्तल १. १०)

‘प्रतिमा’ के पञ्चम अङ्क (पृ० १२०) में पेड़-पौधों को पानी से पटाती सीता का जो सुन्दर चित्र है—

‘योऽस्याः करः ध्राम्यति वर्षणेऽपि स नैति खेदं कलशं वहन्त्याः ।

कष्टं वनं स्त्रीजनसौकुमार्यं समं लताभिः कठिनीकरोति ॥’

उसी के आधार पर सम्भवतः महाकवि कालिदास ने शाकुन्तला का यह चित्र खींचा है :—

‘इदं किलाव्याजमनोहरं वपुः तपश्चमं साधयितुं य इच्छति ।

ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया समीलतां हेतुगृपिर्व्यवस्यति ॥’

(अभिज्ञानशाकुन्तल १. १०)

‘प्रतिमा’ के पञ्चम अङ्क (पृ० १२८) की यह मधुर कल्पना—

‘आवृच्छ पुत्रकृतकान् हरिणान् द्रुमांश्च, विन्ध्यं वनं तव सखीर्दयिता लताश्च ।’

अभिज्ञानशाकुन्तल की इस कल्पना में अपने पूर्ण माधुर्य में उमर उठी है—

‘पातुं न प्रियमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या

नादत्ते प्रियमण्डनानपि भवतां स्नेहेन या पञ्चवम् ।

आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः

। सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुजायताम् ॥

(अभिज्ञानशाकुन्तल १. ८)

‘प्रतिमा’ के सप्तम अङ्क (पृ० १७३) में राम की सीता के प्रति यह उक्ति—
‘अप्युपलभ्यतेऽस्य सप्तपर्णस्याधस्तात् शुक्लवाससं भरतं दृष्ट्वा परित्रस्तं हृद्युयमासीत् ।’

अभिज्ञानशाकुन्तल के पञ्चम अङ्क में शकुन्तला की दुप्यन्त के प्रति इस उक्ति में झलक रही है :—

‘नन्येकस्मिन् दिवसे-नवमालिकामण्डपे नलिनीपत्रभाजनगतमुदकं तव हस्ते सन्निहितमासीत् । तत्क्षणं स मे पुत्रकृतको दीर्घापाङ्गो नाम सुगपोतक उस्थितः । त्वयाऽयं तावत् प्रथमं पिबत्वित्यनुकम्पितोपच्छन्दित उदकेन । ननु स्तेऽपरिचयाद्दस्ताभ्यामुपगतः । पश्चात्तस्मिन्नेव मया गृहीते सलिलेऽनेन हृद्यप्रणयः । तदा स्वमित्थं प्रहसितोऽसि सर्वः सगन्धेषु विश्वसिति । द्वावप्यारमकाविति ।’

ऐसा लगता है कि भास की रेखा-रचना को कालिदास की कविप्रतिमा ऐसा उम्मीलित कर देती है कि देखने वाले चित्र देखने में ही मुग्ध हो जाते हैं और उसके पूर्वरूप को देखना नहीं चाहते ।

(८) प्रतिमा और उत्तररामचरित

‘प्रतिमा’ की ‘प्रतिमा-कल्पना’ ने उत्तररामचरित की ‘चित्र-वीथी’ की कल्पना को भी प्रभावित किया है । यद्यपि उत्तररामचरित की ‘चित्रवीथी-कल्पना संस्कृत काव्यसाहित्य में एक अद्भुत कल्पना है और ऐसी कल्पना है जो चित्र और काव्यकला दोनों के गठबन्धन की एक अभूतपूर्व कल्पना है किन्तु इसकी सृष्टि भास की ‘प्रतिमा’-कल्पना के कारण ही संभवतः हुई है । यद्यपि उत्तररामचरित की ‘चित्रवीथी’ की यह सुन्दरता :—

‘अयं तावद्वाप्सस्तुटित इवमुष्णामणिसरो, विसर्पन्धाराभिलुठति धरणीं ज्वरकण्ठं ।
निरुद्धोऽप्यावेगः स्फुरदधरनासापुटतया, परेषामुन्नेयो भवति चिरमाप्मातहृदयम् ।’

(उत्तररामचरित १. २६)

‘प्रतिमा’ में कहीं नहीं, और हो भी नहीं सकती, क्योंकि आँसू का अंकन संगीत और चित्र तथा काव्य की कलायें ही कर सकती हैं—मूर्तिकला नहीं, किन्तु तब भी ‘प्रतिमा’ की ‘प्रतिमा-कल्पना’ उत्तररामचरित की ‘चित्रकल्पना’ की एक प्रबल प्रेरणा अवश्य है ।

‘प्रतिमा’ में अलङ्कार-योजना

‘प्रतिमा’ में अलङ्कार-योजना की वही विशेषता है जो भास के ‘स्वप्न-वासुदेतमम्’ किंवा ‘अविमारक’ आदि में दिखाई देती है। भास का परमप्रिय अलङ्कार ‘उपमा’ अलङ्कार है। कालिदास तो उपमा के प्रयोग और उपयोग में सिद्धहस्त प्रसिद्ध ही है, किन्तु भास की ‘उपमा’ भी अपनी स्वाभाविकता और प्रभावमयता का प्रदर्शन किया ही करती है। ‘प्रतिमा’ के प्रथम अष्ट (पृ० ४१) में लक्ष्मण की यह उक्ति:—

‘अनुचरति शशाङ्कं राहुदोषेऽपि तारा, पतति च वनवृत्ते याति भूमिं लता च ।
स्वजति न च वरेणुः पद्मकलनं गजेन्द्रं, व्रजतु चरतु धर्मं भर्तृनाथा हि नार्यः ॥

‘अर्थान्तरन्यास’ के सदुपयोग का एक दृष्टान्त अवश्य है, किन्तु इसमें भी ‘उपमानोपमेयभाव’ का ही सौन्दर्य छिपा झलक रहा है। यह ‘अर्थान्तरन्यास’ नीरस नहीं अपितु सरस है।

‘प्रतिमा’ के तृतीय अष्टक (पृ. ८४) में भरत की इस उक्ति:—

‘अयोध्यामद्वीभटां पित्रा भ्रात्रा च वर्जिताम् ।

पिपासात्तंऽनुधावामि चीणतोयां नदीमिव ॥’

में ‘उपमा’ की जो योजना है उसमें भरत की विकल मन-स्थिति का दर्शन स्पष्ट हो रहा है।

भास की ‘उत्प्रेक्षा’ भी ‘प्रतिमा’ में यही प्रभासपूर्ण वन पड़ी है। द्वितीय अष्टक (पृ. ४७) में महाराज दशरथ के इस वर्णन:—

‘मेरुश्रलन्निव युगक्षयसन्निकर्षे शोषं व्रजन्निव महोदधिरप्रमेयः ।

सूर्यः पतति च मण्डलमात्रलक्ष्यः शोकाद् भृशं शिथिलदेहमतिनरेन्द्रः ॥’

में जो ‘उत्प्रेक्षा’ है, उसमें महाराज दशरथ और उनके पुत्रशोक—दोनों की महानता और गम्भीरता का स्पष्ट अङ्कन प्रतीत हो रहा है।

‘प्रतिमा’ के प्रथम अष्टक (पृ. ४३) में भास ने ‘वल्कल’ पर यह रूप-रचना की है:—

‘तप संग्रामरुच्य नियमद्विराड्कृतः । खलीनमिन्द्रियाश्वानां गृहता धर्मसारथिः ॥

किन्तु इसकी सुन्दरता इसलिये आकर्षक है कि हमके पहले (पृ. २४ में) भास ने ‘वल्कल’ को ‘ससन्देह’ अलङ्कार से अलङ्कृत कर दिया है:—

‘आदर्शं वल्कलानीय किमेते सूर्यरश्मयः । हसितेन परिज्ञातं क्रीडेयं नियमस्पृहा ।

राम क लिये ‘वल्कल’ पहले तो मनोविनोद का साधन बना और बाद में ही ‘तपः संग्रामरुच्य’ आदि रूप में निखरा। अलङ्कार चरित-चित्रण में भी साधन है—यह यहाँ स्पष्ट प्रतीत हो रहा है।

महाकवि भास

काल-निर्णय

भारत के साहित्यिक इतिहास की सबसे बड़ी कठिनाई कवियों और कान्य-प्रकृतियों का काल-निर्णय है। महाकवि कालिदास भारत के कविसम्राट हैं किन्तु अभी तक इनके भी युग के सम्बन्ध में मतभेद चल ही रहे हैं। महाकवि कालिदास ने 'भास' का आदरपूर्वक स्मरण किया है। कालिदास के पहले नाम की नाटक-कृतियों का बोलबाला अवश्य रहा होगा। अन्यथा कालिदास को भास की स्तुति क्योंकर हो पाती। किन्तु तब भी भास के काल-निरूपण में एक का मत दूसरे से नहीं मिलता।

भास का समय भिन्न-भिन्न विद्वान् भिन्न-भिन्न मानते आ रहे हैं—म० म० गणपति शास्त्री, म० म० हरप्रसाद शास्त्री आदि विद्वानों की दृष्टि से भास का समय यदि ६००-४०० ई० पूर्व का होना चाहिये तो म० म० डाक्टर कामे, म० म० रामावतार शर्मा आदि विद्वानों के मत में ईसा की ६ वीं १० वीं शताब्दी। डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल, प्रिंसिपल ध्रुव आदि ऐतिहासिक भास को यदि २ वीं-३ वीं शताब्दी पूर्व का सिद्ध करना चाहते हैं तो डाक्टर वार्नेट, प्रोफेसर देवधर आदि विद्वान् ईसा की ७ वीं शताब्दी का। भास को ईसा की २ वी, ३ वी, ४ थी, ६ वीं और छठी शताब्दी में स्थान देने वालों का भी अपना-अपना मत और अपना-अपना दल है। तात्पर्य यही है कि भास के युग के अनिर्णय में जितना सन्देह नहीं उतना निर्णय में है।

भास का काल-निर्णय तभी संभव है जब कौटिल्य, शूद्रक, कालिदास और अश्वघोष का काल-निर्णय निःसन्देह हो जाय। ६ वीं-७ वीं शताब्दी के बाद तो भास को रखा ही नहीं जा सकता, क्योंकि महाकवि याग के द्वारा भास और भास नाट्य-क्र, भास-नाटक की विशेषता आदि के निर्देश एक सन्तुष्टा बन जायेंगे। कालिदास के पहले भास का होना अनिवार्यरूप से आवश्यक है, क्योंकि कालिदास ने भास का नामोल्लेख किया है जिसका कारण है कालिदास के पूर्व भास की नाट्यकृतियों की प्रसिद्धि।

नाट्य-रचना की दृष्टि से भास का समय कालिदास से बहुत पहले का होना चाहिये। भास की नाटक-कृतियों पर भरतकृत नाट्यशास्त्र का प्रभाव नहीं दिखाई देता, किन्तु कालिदास की नाटक-कृतियाँ भरतमुनि की नाट्य-परम्परा में आ जाती हैं। म० म० गणपति शास्त्री ने भासकी नाटक-रचना पर भगवान् पार्श्विनी द्वारा निर्दिष्ट 'नटसत्र' के सम्प्रदाय के प्रभाव का अनुमान किया है। भास

पाणिनि के पूर्ववर्ती न भी हों, क्योंकि अष्टाध्यायी पर भास्कर प्रयोगों की कोड़े छाप नहीं दिखाई देती, तब भी इतना तो माना जा सकता है कि भास्कर के नाटक भरतमुनिवृत्त नाट्यशास्त्र की मर्यादा से पहले की नाट्य मर्यादा का अनुसरण करते हैं।

भास्कर को भगवान् युद्ध का पूर्ववर्ती मानना, जैसा कि म० म० गणपति शास्त्री का कहना है, ठीक नहीं जैचता, क्योंकि भास्कर के नाटकों में 'शाक्य-श्रमणक', 'नगना श्रमणिका' आदि-आदि प्रयोग बहुधा आये हैं।

भास्कर के नाटकों में जिस सामाजिक परिस्थिति का चित्रण है वह कालिदास के नाटकों में चित्रित सामाजिक परिस्थिति से पर्याप्त रूप से प्राचीन है। 'प्रतिमा' नाटक में प्रतिमागृह की प्राङ्गणभूमि में 'वालुका' (वालू) का छँटना जो वर्णित है उसके आधार पर म० म० हरप्रसाद शास्त्री का अनुमान है कि भास्कर २ वीं शताब्दी ई० पूर्व के रहे होंगे क्योंकि आपस्तम्ब (६०० ई० पूर्व) ने ही 'वालुकास्तरण' का उल्लेख किया है और किसी गृहसूत्रकार ने नहीं। भास्कर के 'अविमारक' में जिस प्रकार के वैवाहिक सम्बन्ध का निर्देश है उसे मनुस्मृति युग में अवैध माना गया है। इसके आधार पर भी भास्कर का युग मनुस्मृति (२ वीं शताब्दी ई० पूर्व) का पूर्ववर्ती सिद्ध किया जाता है।

भास्कर के नाटकों में बौद्ध और जैन धर्म के प्रति कोड़े मद्भाषना का भाव नहीं दिखाई देता, प्रायुक्त जो भी धार्मिक आदर्श प्रस्तुत किया गया है वह वैदिक धर्म का ही आदर्श है—भास्कर की प्राचीनता में यह भी एक प्रमाण है।

भास्कर के नाटकों में प्रतिबिम्बित सामाजिक जीवन कौटिलीय अर्थशास्त्र की राजनीति की पृष्ठभूमि सा लगता है। अर्थशास्त्र में मद्रिरा गृह और उसके राजकीय संरक्षण का उल्लेख भास्कर के प्रतिज्ञा-योग्यधरायण (अङ्क ४ प्रवेशक) की इन पंक्तियों में स्पष्टतया निर्दिष्ट है:—

गात्रमेवक--क इटानीमेपोऽद्य राजमार्गे गात्रमेवक ! गात्रमेवक ! इति मां शब्दापयति ? पानामाराकिक्रान्तो दृष्टोऽग्निम इम श्चशुरेण सुरप्टेन । ६६८-मल्लकेन घृतमरिचचलवणरूपितो मांमल्लण्डो मुखे प्रचिप्तश्च । स्नुपा रज्यति पीता यदि । इन्द्रधनुंनु दण्डोद्यता भवति ।

धन्याः सुराभिर्मत्ता धन्याः सुराभिरनुलिप्ताः ।

धन्याः सुराभिः स्नाता धन्याः सुराभिः सज्ञापिताः ॥

अर्थशास्त्र में, दहे-दहे नगों में किन्हीं विशेष श्वसरो पर नागरिकों के रात्रि-श्रमण के प्रतिबन्ध (कपयू) का जो सङ्केत है और उसके लिए तूर्यवादन के द्वारा सदको मूच्छि करने का जो विधान है उसका चित्र भास्कर के नाटक 'चारुदत्त' में स्पष्ट चित्रित है:—

विदूषक-भो वयस्य ! क. कालः कृतपरिघोषतया निःसम्पात्ता राजमार्गाः ।

कौटिल्य अर्थशास्त्र और भास्करनाटक-धर्म में समसामयिक जीवन का जो चित्र है उसके आधार पर भास्कर को ३ वीं पूर्व का ही महाकवि मानना अनिवार्य

हो जाता है। कालिदास के पूर्ववर्ती भास को आज-कल उपलब्ध नाटकचक्रों की कृति से सम्बद्ध अथवा असम्बद्ध सिद्ध करने के भी अनेकोंनेक प्रयत्न किये जा चुके हैं। किन्तु इतना निश्चित है कि आलङ्कारिकों द्वारा नामग्रहण के साथ उद्धृत 'स्वप्नवासवदत्त' यदि भासकृत है तो अन्य उपलब्ध १२ नाटक भी भासकृत ही होने चाहिये। भास की कृति के रूप में प्रसिद्ध 'स्वप्नवासवदत्त' आदि तैरहों नाटक एक प्रतिभाशाली नाटक कवि की रचनाएँ हैं न कि किसी प्राचीन नाटक मण्डली के द्वारा अभिनय के लिये संगृहीत रूपक-वस्तुएँ। डॉक्टर विंटर-निट्ज का इसीलिये कहना है :—

'Plays like ऊहभङ्ग, पाञ्चरात्र and बालचरित, to say nothing of such works as the स्वप्नवासवदत्त and प्रतिज्ञायौगन्धरायण or अविमारक are original works and cannot by any stretch of the term be designated as Compilations.'

भास की शैली

भास की शैली संस्कृत नाटक की आदर्शशैली कहना चाहिये। नाट्याचार्यों ने जिसे 'भारती वृत्ति' कहा है उसमें आधुनिक नाट्य-सर्गादा का *Dialogue* (कथनोपकथन अथवा संवाद) अन्तर्भूत प्रतीत होता है। भास के नाटकों की जो 'भारती वृत्ति' है वह दूसरे संस्कृत नाटकों में दुर्लभ है। म० म० गणपति शास्त्री का कहना है :—

'The superior excellence of sentences which are not subject to the restrictions of versification is everywhere to be observed in these Rupakas. It really surpasses in grandeur, the style of other works and is incomparable, अर्थात् भास के नाटक चक्र में वाक्य-योजना की जो विशेषताएँ हैं उनका अनुकरण नहीं हो सकता और न उन्हें अन्यत्र पाया ही जाता है।

भास की भाषा बोलचाल की संस्कृत भाषा है। भास की भाषा की स्वाभाविकता कालिदास की भाषा में नहीं। भास की भाषा पहाड़ी निहारिणी-सी स्वच्छन्द होते हुए सरल है किन्तु कालिदास की भाषा गङ्गा की धारा-सी संयत और सुन्दर है।

भास ने अपने नाटकों में चरितों के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है। कालिदास के नाटकों में काव्यात्मकता की सुन्दरता स्थान-स्थान पर मिलती है किन्तु भास के नाटक नाटकीयता से पूर्ण हैं। भास को भारती वृत्ति—संवाद-रचना—का अद्वितीय कलाकार कहना कोई अत्युक्ति नहीं होगी। भास की शैली के सम्बन्ध में यह उक्ति—

'He is terse and sparse in his expression. He tells us more by the things he does not say than by the things he says. He is the master

of silence. अर्थात् 'भाम की शब्दार्थ-योजना अभिव्यञ्जना से शोभप्रोत है' सर्वथा युक्तियुक्त है प्रत्येक रम-भाव के अनुकूल, देश और काल के अनुसार भास की भाषा का प्रवाह देखते ही यतदा है।

भास की रस-योजना

अलङ्कारशास्त्र में 'रस' को नाट्य और काव्य की आत्मा कहा गया है। भास की नाटक कृतियों में रसरूपी आत्मतत्त्व सर्वत्र प्रकृतता है। भास की रचना एक रमाविष्टहृदय कवि की रचना है और इसीलिये उसने शब्द-ग्राम, अर्थ-सार्थ उत्कृष्टवैसरी, कल्पना-वैचित्र्य सभी के सभी स्वभावतः विंचे चले भाये हैं। भास को वीर, वात्सल्य, हास्य, धृदुभुत, रौद्र और करुणरस पर अधिकार है। भास की शब्दर रम की भी नाटक कृतियाँ हैं, जिनमें रति अथवा प्रेम का भाव अत्यन्त उत्कृष्ट रूप का अभिव्यक्त हुआ है।

भास की रस योजना में अलङ्कार कहीं भी बाधक नहीं प्रतीत होते। उपमा, उल्लेख, रूपक और अर्थान्तरन्यास—इन कतिपय अलङ्कारों की योजना भास की रससिद्ध रचनाओं की एक सुन्दरता है। कालिदास ने भास की नाटक कृतियों की शाला में अलङ्कार-योजना का अध्ययन किया है। कालिदास की अलङ्कार-योजना की सुन्दरता का बहुत कुछ श्रेय इस दिशा में भास के मार्ग-प्रदर्शन को है। डाक्टर ए० वी० कीच की यह उक्ति—

His practical appreciation of the merits of the dramatist (Bhasa) with whose established fame his (Kalidasa's) nascent genius had to contend अर्थात् 'कालिदास ने भास की विरोधताओं का अपने में आधान किया है क्योंकि कालिदास की उद्गीयमान कवि-प्रतिभा को भास की चमकती प्रतिभा का सामना करना पडा है' कोई अत्युक्ति नहीं।

भास का प्रकृतिवर्णन

भास का प्रकृति-निरोहण सूक्ष्म और व्यापक दोनों है। सूक्ष्म इसलिये है कि प्रत्येक दृश्य केन्द्र रंगानिवेश के रूप में नहीं अपितु पूर्ण चित्र के रूप में अङ्कित हुए हैं और व्यापक इसलिये कि भास की नाटक कृतियों में प्रकृति के अनेक दृश्य एक के बाद एक आया-जाया करते हैं। 'श्वप्नवासवदत्त' (१. १६) में मायकाल का यह चित्रण :—

'सगा वासोपेताः सुल्लिमवगाढो मुनिजनः
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिचनम् ।
परिभ्रष्टो दूराद्रविरपि च सल्लिसकिरणो-
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम् ॥'

जितना स्वाभाविक है उतना ही सुन्दर और सरस भी है ।

कालिदास की कृतियों में प्रकृति और मानव का जो घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित दिखायी देता है और प्रकृति के दृश्य मानव-हृदय के प्रति सान्त्वना और सम-वेदना के भावों से जो ओत-प्रोत लगते हैं उन सब का पूर्व-रङ्ग भास की नाट्य-कृतियाँ हैं । भास ने अपने नाटक में अविमारक के वियोग-दुःख में निदाघ को संतप्त चित्रित किया है :—

‘अत्युष्णा ज्वरितेव भास्करकरैरापीतसारा मही

यक्ष्मात्ता इव पादपाः प्रमुषितच्छाया दवाग्न्याध्रयात् ।

विक्रोशन्त्यवशाद्विचोच्छ्रितगुहाग्न्यात्ताननाः पर्वता

लोकोऽयं रविपाकनष्टहृदयः संयाति मूर्च्छामिव ॥’ (अविमारक ४४)

इसी प्रकार ‘अविमारक’ की प्रसन्नता में प्रकृति भी प्रसन्नता से फूली नहीं समाती :—

‘न्यासुष्टसूर्यतिलको विततोद्भुमालो नष्टतपो सुदुमनोहरशीतवातः ।

संलीनकामुकजनः प्रविकीर्णशूरो वेपान्तरं रचयतीव मनुष्यलोकः ॥’

(अविमारक २. १३)

कालिदास ने आकाशमार्ग से इन्द्र-रथ पर चलते हुए महाराज दुष्यन्त के द्वारा देखे गये भूलोक के दृश्य का जो सच्चा और स्वाभाविक चित्र उपस्थित किया है :—

‘शैलानामवरोहतीव शिखरादुन्मज्जतां मेदिनी

पर्णान्यन्तारलीनतां विजहति स्कन्धोद्वयात् पादपाः ।

संतानैस्तनुभावनष्टसलिला व्यक्तिं भजन्त्यापगाः

‘केनाप्युत्तिष्ठतेव पश्य भुवनं मत्पाश्वर्यमानीयते ॥’ (शाकुन्तल ७ ८)

उसकी रेखा भास के अविमारक (४. ११) में ही बन चुकी है :—

‘शैलेन्द्राः कलभोपमा जलधयः क्रीडातटाकोपमा

वृषाः शैचलसन्निभाः चितितर्ल प्रच्छन्ननिम्नस्थलम् ।

सीमन्ता इव निम्नगाः सुविपुलाः सौधाद्य विन्दूपमा

दृष्टं वक्रमिवावभाति सकलं संक्षिप्तरूपं जगत् ॥’

महाकवि कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तल (१६) में द्रुतगतिगामी रथ पर आरूढ दुष्यन्त के द्वारा देरो गये प्राकृतिक दृश्यों का यह वर्णन :—

‘यदालोकं सुक्ष्मं द्रजति सहसा तद्विपुलता

यदर्धे विच्छिन्नं भवेति कृतसंधानमिव तत् ।

प्रकृत्या यद्भ्रमं तदपि समरेखं नयनयो

न मे दूरे किञ्चित् क्षणमपि न पाश्वर्यं रथजवात् ॥’

अपनी स्वाभाविकता में जितना सुन्दर है उतना ही भास के प्रतिमानाटक (पृ. ७१) में तीव्रगामी रथ पर आरूढ़ भरत के द्वारा देखे गये प्राकृतिक दृश्यों का यह वर्णन भी स्वभावमनोहर है :—

‘दुमा घाघन्तीघ द्रुतरथगतिशीणविषया नदीवोद्भृताम्बुनिपतति मही नेमिविवरे ।
अरव्यक्तिर्नष्टा स्थितमिध जगच्चक्रवलर्यं रजश्चाश्वोद्भूतं पतति पुरतो नानुपतति ॥’

भासकृत रात्रि-वर्णन और संतमम-वर्णन वास्तविकता और कलात्मकता का बड़ा सुंदर संमिश्रण है। भास ने ‘अविमारक’ (२ १२) में ‘सांध्यवेला’ का जो चित्र रखा है :—

‘पूर्वां तु काष्ठा तिमिरानुलिप्ता सन्ध्यारुणा भाति च पश्चिमाशा ।

द्विधा विभक्तान्तरमन्तरिचं यात्यधनारीश्वररूपशोभाम् ॥

यह संस्कृत काव्य-साहित्य में अपनी स्वभावोक्ति और यत्रोक्ति में अनुपम है।

भास की प्रमुख विशेषता

भास का अधिकार नाट्य-कला पर है। नाट्य-कला का चरितचित्रण-कला अत्यन्त भावदयक अङ्ग है। यह चरितचित्रण-कला भास की सबसे बड़ी विशेषता है। भास के नाटकों में क्या देव और क्या मनुष्य सभी उपस्थित हैं। सबका चित्रण भास ने किया है और इस दृष्टि से किया है जिसमें सहृदय सामाजिक उन्हें अनायास अपना सके।

भास का चरित-चित्रण मनोवैज्ञानिक है। मानवहृदय के अन्तर्द्वन्द्व के चित्रण में भास मिद्वहस्त है। भास ने प्रायः २३० चरित अपनी नाट्य कृतियों में चित्रित किये हैं।

महाकवि बाण को भास की ‘अनेक चरित-चित्रण कला’ का स्मरण है :—

‘सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्यद्बहुभूमिकैः । सपताकैर्यंशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥’

भास की कल्पना द्वारा उद्भावित प्रत्येक चरित का अपना-अपना व्यक्तित्व है। क्या छोटे और क्या बड़े सभी प्रकार के चरित इस प्रकार चित्रित हैं कि उन्हें पृथक्-पृथक् देखना सरल है।

भास का ‘प्रतिमानाटक’ भास की चरितचित्रणकला का एक प्रमुख निदर्शन है। ‘प्रतिमा’ में चित्रित राम और सीता आदि के चित्र में सहृदय सामाजिक अनायास तन्मय हो सकता है। कालिदास और बाण द्वारा उद्भावित चरितों की कल्पनाशक्ति, भवभूति द्वारा चित्रित चरितों की भावुकता और शूद्रक की प्रतिभा से प्रसूत चरितों की स्वाभाविकता—इन सबकी विशेषतायें भास के चरित-चित्रण में गुली-मिली हैं किन्तु तब भी भास का चरित-चित्रण भास का ही चरित-चित्रण है।

पात्र-परिचय

पुरुष पात्र

- १ सूत्रधार—नाटक का स्थापक ।
- २ राजा—अयोध्याधिपति महाराज दशरथ ।
- ३ राम—महाराज दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र, नाटक के नायक, कौशल्यानन्दन ।
- ४ लक्ष्मण—महाराज दशरथ के पुत्र, सुमित्रातनय ।
- ५ भरत—महाराज दशरथ के पुत्र, कैकेयीतनय ।
- ६ शत्रुघ्न—लक्ष्मण के सोदर भाई ।
- ७ सुमन्त्र—महाराज दशरथ के मन्त्री ।
- ८ सूत—भरत के सारथी ।
- ९ रावण—नाटक का प्रतिनायक लङ्काधिपति ।
- १० वृद्धतापसद्वय—रावण और जटायु के युद्ध को देखने वाले ।
- ११ देवकुलिक—प्रतिमा गृह का पुजारी ।
- १२ तापस—दण्डकारण्य के तपस्वी ।
- १३ नन्दिलक—तपस्वी के परिजन ।
- १४ भट—राजपुरुष ।
- १५ सुधाकार—प्रतिमा-गृह में सुधा का लेप करने वाला ।
- १६ कांचुकीय—अन्तःपुर का वृद्धसेवक ।

स्त्री पात्र

- १ नदी—सूत्रधार की स्त्री ।
- २ कौशल्या—महाराज दशरथ की प्रथम पत्नी, राम की माता ।
- ३ कैकेयी—महाराज दशरथ की द्वितीय पत्नी, भरत की माता ।
- ४ सुमित्रा—महाराज दशरथ की तृतीय पत्नी, लक्ष्मण की माता ।
- ५ सीता—मिथिलेश महाराज जनक की कन्या, राम की पत्नी ।
- ६ अयदातिका—सीता की सखी ।
- ७ प्रतिहारी—अन्तःपुर की द्वारपालिका ।
- ८ विजया—कैकेयी के अन्तःपुर की प्रतिहारी ।
- ९ नन्दिनिका—कैकेयी की परिचारिका ।
- १० तापसी—दण्डकारण्य की तपस्विनी ।

॥ श्रीः ॥

प्रतिमानाटकम्

'प्रकाश' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

अथ प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः ।)

यदिङ्गित चक्रमदृष्टसाह्य विनैव मृदण्डपटैकदेशान् ।
ब्रह्माण्डमाण्डानि सृजत्यद्येदं त कुम्भकारं प्रणतं प्रपद्ये ॥ १ ॥
यो गुरुर्मम विकास्य सेमुगी कल्पनामपि न जातु जग्मुषीम् ।
सिद्धिमानयत मा द्यामये तस्य पादसरसोरहं धय ॥ २ ॥
ध्यात्वा नतेन शिरसा 'जयमणि'-'मधुसूदनी' पितरो ।
प्रतिमा 'प्रकाश'विषये प्रयते धीरामचन्द्राऽहम् ॥ ३ ॥
सन्तो गुणेन तुष्यति स नैकान्तेन दुर्लभ ।
दोषाविलेऽपि तेनात्र दृक्पातं त्रिव्यतां वुषं ॥ ४ ॥

नाटकप्रणयनमाचार्यस्वेनाधुनावधि सस्तुत प्रधानकविर्मासोऽभिनययोग्य
प्रतिमाऽभिधानं नाटकं निमित्तम् । प्रारम्भे तस्य निविघ्नान्मितयसम्पत्तिं विद्वत्समुदय-
प्रतिपत्तिपरिपन्थिदुरितक्षयसाधनं पूर्वरङ्गप्रधानाङ्गं मङ्गलश्लोकपाठं तद्भङ्गार्थं च
कथासनिर्देशं प्रयोगनिपुणेन सूत्रधारेण प्रथमाचरणीयं विभावयस्तस्य तावत् प्रवेश-
माह—'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः' इति । मा'द्या' अ'ते इति समासः ।
नान्दी जानक , 'दु'दु'भिस्त्वानको भेरी मग्ना नासूँ च नाद्यपि' इति वैजयन्ती ।
सा चात्र वाद्यान्तराण्यप्युपलक्षयति । तथा चामिनेयनाटकीयकथारम्भपूर्वाङ्गभूते

(नान्दी के अन्त म सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्रधारः—

सीताभवः पातु सुमन्त्रतुष्टः सुग्रीवरामः सहलक्ष्मणश्च ।
यो रावणार्थप्रतिमश्च देव्या विभीषणात्मा भरतोऽनुसर्गम् ॥ १ ॥

आनवादिवाद्यवादे समाप्त इत्यर्थः पर्यवस्यति । यद्वा—नन्दिरानन्दस्तस्या इव नान्दी—गीतवाद्यवादिनादिक्रिया, तस्या अन्ते-उपरमे इत्यर्थः, तदनुष्ठानं च देवता-परिपदादिप्रसादनाय क्रियते । ततः तदुत्तरकालम्, नान्दीसमाप्त्यव्यवहितोत्तर-काल इति तु नाप्यं, मध्ये वाद्यादिस्थापनादौ ध्यापारान्तरेऽनुष्ठायमानेऽपि पौर्य-पर्याव्याघातात्, अव्यवधानाश्रयाविवक्षितत्वात्, तत्त्वेऽप्यधिकचमत्काराऽनाध-नात् । नान्दीलक्षणं साहित्यदर्पणे यथा—‘आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते । देवद्विजनृपादीना तस्मान्नान्दीति शब्दिता’ ॥ इति ॥

प्रविश्य सूत्रधारः कर्तव्यस्य कर्मणो निर्विघ्नसम्पूतये मङ्गल विघ्नं-सीताभव इति । सीतायाः स्वनामरूपाताया जनकदुहितुर्भव. क्षेमः तत्कारणमित्यर्थः, कार्यकारणयोरभेदोपचारकृत ईदृक्प्रयोगः । सुमन्त्रतुष्टः शोभनेन मन्त्रेण मुदितः । सह-लक्ष्मणः-लक्ष्मणसहितः, अथवा भ्रातुरर्थे धनवासतत्परिषरणस्वप्रेमसीवियोगादि क्लेशाना सोढा लक्ष्मणस्तदभिधानो भ्राता यस्येत्यर्थः । विशेषणद्वयमपीदं रामस्य । सुग्रीवराम —शोभनकण्ठभ्रासो राम इति कर्मधारयः । कर्तृपदमिदम् अनुसर्ग-सर्गं सर्गं जन्मनि जन्मनि प्रतिप्रादुर्भावमित्यर्थं, बीप्सायामध्ययीभावः । पातु-रक्षतु अस्मान् युष्माश्चेति शेषः, सत्रास्मानिति पक्षे प्रयोगसाफल्यप्रदातमत्र पालनेन-भिप्रेतम्, युष्मानिति पक्षे च मघाभवदगोष्ठ फल इत्यादिति ।

उत्तरार्धेन पुनरपि रामं विशिनष्टि—यो रावणार्थप्रतिम इति । रावणारि-रावणशत्रुः, न विद्यते प्रतिमा सादृश्य यस्यासौ अप्रतिम. निरुपम इत्यर्थः । प्रतिमा शब्दस्य प्रसिद्ध मूर्तिवाचकत्व तथापि—‘सरोरुह तस्य दृशैव निर्जित जिताः स्मितेनैव विधोरपि श्रियः ! अतद्द्वयीजित्वरमुन्दरान्तरे न तन्मुखस्य प्रतिमा चराचरे’ इति नैपवीधे सादृश्यपरत्वमपि प्रतीतमिति बोध्यम् । देव्या-सीतया, सहित इति शेषः । विभीषणः रावणानुजः, तस्मिन् आत्माभे स्वसदृशे स्वसममुखदु.ख इति तात्पर्यम् ।

सूत्रधारः—सीता के आनन्ददाता, अष्टे मन्त्र के पक्षपाती, सुन्दर कण्ठशाली (अथवा सुग्रीव के मित्र), लक्ष्मण के सहचर, सीताहरण द्वारा कृतापराध रावण के निहन्ता, विभीषणाभिन्नहृदय (अथवा शत्रुभयङ्कर) भगवान् राम जन्म जन्म में हमारी तुम्हारी रक्षा करें ॥ १ ॥

(नेत्रय्यानिमुचनवशोक्य)

आर्ये ! इतस्तावन् ।

(प्रविश्य)

नटी—आर्य ! इयमस्मि ।

अय्य ! इयन्ति ।

मूत्रधारः—आर्ये ! इममेवेदानीं शरत्कालमधिकृत्य गीयतां तावन् ।

नटी—आर्य ! तथा ।

अय्य ! तद् । (गायति)

रतः अनुरक्तः च अन्तोति पदमध्याहारम् । अथ चारु-मिता रान-तुन्त्र-
मुश्रीव-लदमज-रावण-विनीयम-नरतानिधानानि नाटकोयानि प्रमुखपात्राणि
मुद्रालङ्काराद्योपनिबद्धानि । अप्रतिमपद्यकः प्रतिमशब्दार्थं कदेशविकृतव्यायमस्मिन्ना
'प्रतिना' शब्दं स्मारयन् नाटकस्य नामनेन प्रतिनानाटकमद्वयपदेभ्यतावीत्रमूर्ते
दशरथप्रतिमावृत्तं चावेदयति । इयं च द्वादशपदा नान्दी मङ्गलमाचारस्यत्र बोध्या ।
तदुक्तमभियुक्तैः—'पदेयुन्ता द्वादशमिरशानिवां पदैरत' इति । अत्र पद्यपदं श्लोकपार्श्वं
सुवन्दतिदन्तत्वम्पदत्वनाज च मद्मुह्यति । अत्र यद्यपि 'स्नाप्य पुनरादानाद्
समानपुनरातने'ति कश्चित् समानपुनरात्वं प्रतिनामने, तथापि पालनस्य रावणारि-
त्वविनोक्षणत्वत्वादिपदत्रयाभ्याशासनार्थत्वेनोन्यताकाङ्क्षत्वं प्रतिपद्यपरिहरणाय
तदिति बोध्यम् । अत्रेन्द्रवज्रावृत्तम्, ललक्षणं यथा—'स्यादिन्द्रवजा यदि तौ जगो मः' ।

इतस्तावदिति—आगम्यतानिति चेष्टाव्यङ्ग्यम् ।

इममिति—अविरप्रवृत्तम् । तावदितोद् प्रथममित्यर्थः । गीयताम्—गानमागम्य-
तामित्यर्थः ।

'अय्य तद्' इति—तथेति तदुक्तिः स्वीकृता, गायानोत्पथः ।

(नेत्रय्य की ओर देखकर)

आर्ये, इधर तो आना ।

(नटी का प्रवेश)

नटी—आर्ये, आउं नो ।

मूत्रधार—इसी शरद् ऋतु के सम्बन्ध में इस समय कुछ गाओ ।

नटी—अच्छी बात, गानी हूँ । (गाती है)

सूत्रधारः—अस्मिन् हि काले,

चरति पुलिनेषु हंसी काशांशुकवासिनी सुसंष्टा ।

(नेपथ्ये)

आर्य ! आर्य !

अय्य ! अय्य !

(आकर्ष्य)

सूत्रधारः—भवतु, विज्ञातम् ।

मुदिता नरेन्द्रभवने त्वरिता प्रतिहाररक्षीव ॥ २ ॥

अस्मिन्निति—इदं चरतीत्यादिना पद्येन सम्बध्यते ।

चरतीति । अस्मिन् काले शरत्समये काशाशुः काशपुष्पप्रकाशा, कवासिनी जलनिवासिनी च । सुसंष्टा अतिमुदिता सती हंसी बरटा पुलिनेषु नदीसंज्ञितस्यलोपु चरति—यथेच्छमितस्ततो भ्रमति । हंसी धवला, शरदि काशविकासाद्यच्छप्रभेत्यर्थः । एतावतो मागस्य भ्रवणात् प्रवृत्तोऽस्मिन् इत्यस्माभिरपि सन्नद्धैर्वा व्यमिति नेपथ्यगतानां पात्राणामितस्ततः सम्भ्रमं सम्भवन्तमुत्प्रेक्ष्याह—नेपथ्ये इति । प्रतीहार्या प्रवेशाय कृतभूमिकाधारणायाः सम्भ्रमकृता द्विराक्त—'आर्य आर्य' इति ।

विज्ञातम्—कस्य पात्रस्य वचनमिदमिति मया विदितमित्यर्थः । तस्यैव विदितोक्ते पात्रविशेषस्य प्रवेशमनुजानान इव सूत्रधारः प्रतीहारीपदगमंमार्योत्तरार्धं पूर्वाद्धोपात्तहम्युपादानमुखेनाह—

मुदितेति । हंसी अस्मिन् काले चरतीति पूर्वत्र पादेऽभिहितमिदानीं केव अस्मिन्निति यत्कथं तदाह—नरेन्द्रभवने दशरथाख्यनरपत्यन्तःपुरे प्रतीहाररक्षी प्रतीहारीद्वाराविहृतेव । सा कथम्भूतेत्यपेक्षायामाह—मुदिता प्रसन्नान्तरङ्गा, त्वरिताकार्या-

सूत्रधारः—इस शरत्समय में—

काश के फूलों से धवल प्रकाशवाली, (अथवा अतिस्वच्छ काशकुसुमों से आच्छादित नदी तीर में रहनेवाली) हंसी प्रसन्न-चित्त होकर नदीतट पर इस तरह पदसन्चार कर रही है . . . ।

(नेपथ्य में)

आर्य, आर्य,

सूत्रधार—अच्छा समझ गया ।

जिस तरह (काशपुष्प-सदृश इवैतं शृङ्खलवत्तु पहने) प्रसन्नहृदया द्वारपालिका शीघ्रतापूर्वक महाराज दशरथ के अन्तःपुर में (परिभ्रमण करती है) ॥ २ ॥

(निष्क्रान्ती)
स्थापना ।
(प्रविश्य)

प्रतीहारी—आर्य ! क इह काञ्चुकीयानां सन्निहितः ।
अथ । को इह कञ्चुईमाण सन्निहितो ।

पिष्टतत्वेन सञ्जातत्वेन । किञ्चान्नोपमानभूतप्रतीहार्यामपि काशाङ्कुवातिनीति
विशेषणं वादावदङ्गुलं वस्ते इति विगृह्य योजनीयम् । काशाङ्कुमुभवसनयोश्च सूक्ष्मत्व-
घबलत्वादिकृत सादृश्यम् । अन्यत् स्पष्टम् ॥ २ ॥

निष्क्रान्ताविति-कयावस्त्वंशम्य स्थापनात् स्थापना*, प्रस्तावनेति पययिणा-
पीयमभिधीयते ।

अप्येति-प्रतीहारी कञ्चुकिन कश्चिदाह्वयति, कञ्चुकिना मध्ये कीदृश सन्नि-
हितः ? सन्निहित.—समीपस्थितः । यस्तथा तेनागन्तव्यमिति तदाशयः ।

(दोनों का प्रस्थान)

[प्रतीहारी का प्रवेश]

प्रतीहारी—आर्य, कौन कञ्चुकी यहाँ उपस्थित है ?

+ अत्र रागपतिशास्त्रिणः—

‘प्रसाय रङ्गं त्रिधिवत् कथेर्नाम च कीर्तयेत् ।

प्रस्तावना ततः कुर्यात् काव्यप्रख्यापनाश्रयाम् ॥’ (नाट्यशा० ६)

‘वाञ्छाकलापस्तु कचेरभीष्टार्थप्रकाशनम् ।

स्वाभिधेयगतत्वेन सा द्विधा परिपठ्यते ।

स्वगतं तु स्वगोत्रादिस्वीयकीर्तिप्रशंसनम् ।

अभिधेयगतं यन् तत् काव्यनाम्ना प्रकाशनम् ॥’ (भावप्र०)

इत्यादिलक्षणशास्त्रनिहिता कविकाव्यकीर्तना कालिदासादिनिखिलकविग्रामाचरि-
ताऽत्र स्थापनाप्रकरणे कर्त्तव्या सती दस्मान्न कृता ? उच्यते—प्रस्तावनायां कवि-
काव्यकीर्तनसमुदाचारस्तावदस्य पुराणमहाकवेः काले नावर्त्तन, पश्चात् कालेन
कवीनामुपजातं कविकाव्यकीर्तनसमुदाचारप्रणयं भूषिष्टमुपलभ्य तदनुसारिलक्षणं
लक्षणकारैः प्रणीतमित्यदोषः । अस्य तु नाटकस्य मातृकाग्रन्थान्तदृष्टपाठानुसारान्
प्रतिमानाटकमिति संज्ञा । श्रीरामे वनाय प्रस्थिते दशरथस्य या दशासाप्रतिमागृहे
तत्प्रतिमा दृष्टवता भरतेनावगतेति प्रतिमाप्रधानावाटस्य तथा व्यपदेशः । एतत्कवेश्च
‘भास’ इति नामधेयमनुमितम् । यथा च तदनुमितिसिद्धिस्तत् स्वप्नवासवदत्तो-
पोद्घाते निरूपितं तत एवावगन्तव्यम् इति ।

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः—भवति ! अयमस्मि । किं क्रियताम् ?

प्रतीहारी—आर्य ! महाराजो देवासुरसङ्ग्रामेष्वप्रतिहतमहारथो

अयम् । महाराजो देवासुरसंगामेषु अप्पडिहदमहारथो

दशरथ आज्ञापयति—शीघ्रं भर्तृदारकस्य रामस्य राज्यप्रभाव-
दसरथो आणवेदि—सिग्ध भर्तृदारकस्य रामस्य राज्यप्रभाव

संयोगकारका अभिपेकसम्भारा आनीयन्तामिति ।

सञ्जीवकारका अहिसेवसम्भारा आणीयन्तु त्ति ।

काञ्चुकीयः—भवति ! यदाहप्तं महाराजेन, तत् सर्वं सङ्कल्पितम् ।
पश्य—

किं क्रियताम् इति—अवसरप्राप्तं कार्यमादिश्यतामिति तत्तात्पर्यम् ।

अयम् महाराजो इति—आर्य, इति कञ्चुकिसम्बोधने, महाराजः—दशरथ इति विशेष्यमनतिद्वारे देवासुरसंग्रामेषु देवदानवयुद्धेषु अप्रतिहतमनोरथ —अवाधप्रसार. महारथो रथमुख्यो यस्य स तथाभूतो दशरथ आज्ञापयति आदिशति । किमिति जिज्ञासायामाह—शीघ्रमिति । शीघ्रम्-अविलम्बम्, भर्तृदारकस्य—राजकुमारस्य रामस्य राज्यप्रभावसयोगकारका राज्ञ. कर्म राज्य, प्रभाव=कोशदण्डजं तेजः, ताभ्या संयोग. सम्बन्धस्तस्य कारका सम्पादयितारः अभिपेकसम्भारा.=अभिपेकोपकरणानि आनीयन्ताम्=सञ्जीविक्रियन्ताम् । अस्मिन् आदेशे राज्यप्रभावसयोगकारिका इत्यशस्याधमाशयः, इदानीं रामो यौवराज्येऽभिपेक्तव्यः, तस्मिन्स्तत्पदमाश्रितवति तस्य राज्यकर्माधिकृतत्वेन स्वत एव राजकार्यभारः समापन्नो भवति, तेन यौवराज्याभिपेक एव राज्यप्रभावसंयोगकारक इति ।

सङ्कल्पितम् इति—सञ्जीकृतमित्यर्थः । सञ्जीकृतानि यौवराज्याभिपेकोपकरणानि गणयितुं तानि नामग्राहमाह—

(कञ्चुकी का प्रवेश)

कञ्चुकी—आर्य, मैं हूँ, आज्ञा दें, क्या कार्य है ?

प्रतीहारी—आर्य, देवासुरयुद्ध में समरविजयी महाराज दशरथ का आदेश है कि शीघ्रातिशीघ्र राजकुमार राम के राजोचितप्रभुत्व के परिचायक राज्याभिपेक की सारी सात्मग्रियाँ प्रस्तुत की जायें ।

कञ्चुकी—आर्य, महाराज की आज्ञा के अनुकूल सब कुछ सैयार हूँ । देखिये-

छत्रं सव्यजनं सनन्दिपटह भद्रासन कटिपत

न्यस्ता हेममयाः सदभंकुसुमास्तीर्याम्बुपूर्णा घटाः ।

युक्तः पुष्परथश्च मन्त्रिसहिताः पौराः समभ्यागताः

सर्वस्यास्य हि मङ्गलं स भगवान् वेद्या वसिष्ठः रिवतः ॥३॥

प्रतीहारी—यद्येव, शोभन कृतम् ।

जइ एव, सोहण किद ।

छत्रमिति—छत्र राजघारणीय श्वेतातपत्र सव्यजन वीजनसामानावित
 धामरसहितमित्यर्थ । कल्पितमिति शेष । सनन्दिपटह—नदिरानन्द नस्य
 तत्कालोपयुक्त पटहो—वाद्यविशेषस्तेन सहित भद्रासन मङ्गलमयमासनम्, अत्रापि
 कल्पितमित्यन्वितम् । सदभंकुसुमा—दभं कुशं कुसुमं पुष्पंश्च सहिता (तथा)
 तीर्थम्य गङ्गादितीर्थविशेषस्य तोष जल तेन पूर्णा भूतान्तरा हेममया सोवर्णा
 घटा बलशाश्च न्यस्ता समुपस्थापिता । राजपुत्राणा योवराज्यामिपेकावसरे तत्त
 क्षीर्षोपहृतानाञ्जलानामुपयोग इतितत्प्रदायसिद्धम् । पुष्परथ श्रीढाविहारप्रयो-
 जनो रथविशेषश्च युक्त योजिताश्च कृत, मन्त्रिभिस्तरात्कार्याधिकृतैः प्रधानराज्य
 कर्मचारिभि सहिता पौरा पुरवासिन समभ्यागता । अमिपेकदर्शनेन निजाधीणि
 मफलपितुमुपस्थिता इति भाव । नैतावद्भिन्नरूपकरणैरेव सर्वं सम्पाद्यमन्तरेण तत्त्वा-
 वधानदक्षपुरोहितोपस्थितिमित्याशयमन्तनिघायाह—सर्वस्येति । अस्य पुरोदीरितस्य
 सर्वस्य वस्तुसमुदायस्य मङ्गलोपकरणकत्वेन प्रसिद्धावपि वसिष्ठसन्निधानेनैव तेषा
 तत्त्वम् इति भाव । अस्य छत्रादे सर्वस्य मङ्गलोपकरणस्य मङ्गल कुशलकारणम्
 भावप्रधाननिर्देशेन कुशलत्वहेतुमित्यर्थ । वसिष्ठ—नदाक्षय्या प्रसिद्ध ऋषि वेद्याम्
 अनुष्ठानस्थान स्थित कर्मोपदेष्टृत्वेन वर्तमान इति भाव । अत्र काञ्चुकीयोक्ती
 सामनसम्पत्तिसमुपस्थितिसूचनेन कार्यावसर समर्थ्यते । शादूलविक्रीडित वृत्तम् ।
 तल्लक्षण यथा—‘सूर्याश्वमेजसास्तता सगुरव शादूलविक्रीडितम्’ इति ॥ ३ ॥
 जइ इति—भवदुक्तकार्ये कृते पूरिता आवश्यकतेत्यर्थ ।

ये छत्र और चक्र हैं, ये माङ्गलिक बाने और सिंहासन हैं, यहाँ कुश, पुष्प
 और मङ्गलप्रद तीर्थजलो से पूर्ण बलश रथे गये हैं, श्रीदारुध जोता खडा है, राज
 मन्त्रियों के साथ मकल पुरजन आ गये हैं, इस समूची आनन्दमयी सृष्टि के प्रव
 र्तक व भगवान् वसिष्ठ भी वेदी पर विराजमान हैं ॥ ३ ॥

प्रतीहारी—यदि ऐसी बात है तो अति उत्तम ।

काञ्चुकीय --हन्त भोः !

इदानीं भूमिपालेन कृतकृत्या कृताः प्रजाः ।

रामाभिधानं मेदिन्या शशाङ्कमभिपिञ्चता ॥ ४ ॥

प्रतीहारी—त्वरतां त्वरतामिदानीमार्यः ।

तुरवदु तुरवदु दाणि अयो ।

काञ्चुकीय --भवति ! इदं त्वर्यते । (निष्क्रान्त)

प्रतीहारी--(परिक्रम्यावलोक्य) आर्य ! सम्भवक ! सम्भवक ! गच्छ,
आर्य ! सभव ! सभव ! गच्छ,

त्वमपि महाराजवचनेनार्यपुरोहितं यथोपचारेण त्वरय ।

तुव पि महाराजवचनेन अथपुरोहितं जहोपचारेण तुरवेहि ।

(अन्यतो गत्वा) सारसिके ! सारसिके ! सङ्गीतशालां गत्वा
सारसिए ! सारसिए ! सङ्गीतशालां गच्छ

हन्त भो इति--निपातसमुदयोऽयमानन्दव्यञ्जक इति ।

इदानीमिति--इदानीमधुना रामाभिधानं रामनामकं शशाङ्कं शीतलशीलं
प्रियदर्शनत्वादिना चन्द्रमस मेदिन्या पृथिव्या घराभारधारणे योवराज्येऽभिपिञ्चता
न्यापयता भूमिपालेन राजा दशरथेन प्रजा अस्मदादय प्रकृतय कृतकृत्या
कृतार्या कृता विहिता । रामयोवराज्याभिपेको हि जनतामनोरथसिद्धिरित्यर्थः ।
अत्राभिपिञ्चतेत्यत्र-वर्तमानरामीष्ये लट् तत्स्थाने शतृ । तेन चानुपदमेव भवन्नभि-
पेक सम्पत्तिः ॥

'तुरवदु' इति--अत पर करणीयानामनुष्ठाने क्षिप्रताऽऽदिश्यते ।

यथोपचारेण यथोचितसम्मानपूर्वकम् । त्वरय आगतुमनुच्छ्वस्व । नाट

काञ्चुकी--अहो ! बड़े हर्ष की बात है--

पृथिवी पर के चन्द्र श्रीराम का राज्याभिषेक करके अब महाराज दशरथ ने
सचमुच प्रजा को कृतकृत्य कर दिया है ॥ ४ ॥

प्रतीहारी--आर्य, शीघ्रता कीजिये, शीघ्रता ।

काञ्चुकी--आर्य, यह शीघ्रता कर रहा हूँ ।

प्रतीहारी--(धूमकर और देखकर) आर्य सम्भवक, सम्भवक, जाओ, तुम भी
महाराज के आदेशानुसार मान्य पुरोहितमहोदयको यथोचित आदर के साथ शीघ्र
बुला लाओ (दूसरी ओर जाकर) ओ सारसिके, सारसिके, संगीतशाला में जाकर
अभिनय करनेवालों से कहो कि वे आज एक सामयिक अभिनय दिखाने को तैयार

नाटकीयेभ्यो विज्ञापय—कालसंवादिना नाटकेन सज्जा भवतेति ।
नाट्यैवाण विष्णवेहि—कालसंवादिना नाटकेण सज्जा होह ति ।
यावद्दहमपि सर्वं कृतमिति महाराजाय निवेदयामि ।
जाव गृह वि सर्वं विद ति महाराजस्य निवेदेमि ।

(निष्प्रान्ता ।)

(तत प्रविशत्यवदातिका वल्कल गृहीत्वा)

अवदातिका—अहो अत्याहितम् । परिहासेनापीमं वल्कलमुपनयन्त्या
अहो । अच्चाहिदं । परिहासेण वि इम वल्कल उपनयन्तीए
ममैतावद् भयमासीत्, किं पुनर्लोभेन परधन हरत । हसितु-
मम एतिअ मअ आसी, कि पुण लोभेण परधण हरन्तस्स । हसिदुं
मिचेच्छामि । न खल्वेकाकिन्या हसितव्यम् ।
विअ इच्छामि । ण तु एआइणीए हसिदव्वं ।

योयेभ्यो नाटकप्रयोगाधिकृतेभ्य कुशीलवेभ्य इत्यर्थं । अत्र कर्मणि पठ्यो चिन्त्या ।
सज्जा-प्रयोगाय कृतसम्नाह्वा । निवेदयामि यावत् निवेदयिष्यामि सूचयिष्यामी-
त्यर्थं । 'यावत्पुरानिपातयोलंट्' इति नविष्यति लट् ।

अहो—कष्टम्—अत्याहितम् महद्भयमुपस्थितम् । किन्तदिति विबुणोति—'परि-
हासेण' इति—अवदीयाम्—इतरस्वामिकाम्, अल्पमूल्याम्—अनधिकमूल्याम्,
वृक्षरवच तरवल्कल, परिहासेन विनोदपरिहासार्यम्, उपनयन्त्या—गृह्णत्या अपि
मम एतावत् स्वानुभवंकगोचरप्रमाण मय साध्वस जात प्रादुर्भूत चेत्, लोभेन पर-
धन-परकीया सम्पद हरतश्चोरयत कीदृग् भय जायेतेत्यर्थं । एतेन कैंकेयीकवृं-
रामराज्यापहारकशेङ्गितेन सूचिता । हमितव्यमिति स्निग्धजनसविभक्त हि सुख-
मधिक स्वदत इति द्वितीया-वेपणोचित्यम् ।

रह, मं तव तक 'सब कुछ तैयार है' ऐसी सूचना महाराज को देती हूँ ।

(प्रस्थान)

(वल्कल लिपि अवदातिका का प्रवेश)

अवदातिका—ओह ! बड़ा बुरा हुआ । पिनोड में भी इन वल्कलो को उठा
लाने से जब मैं इतना डर गयी हूँ, तो बुरी नीयत से परकीय धन को हरने वालों
की क्या दशा होती होगी ? हँसने की इच्छा भी हो रही है, परन्तु एकाकी हमना
तो भला न लगेगा ।

सीता—उन्मत्तिके ! एवं दोषो वर्धते । गच्छ, निर्यातय, निर्यातय ।
उन्मत्तिण ! एव्व दोसो वड्ढइ । गच्छ, निम्पादेहि, निम्पादेहि ।

अवदातिका—यद् भट्टिन्याज्ञापयति । (प्रस्थातुमिच्छति)
अ भट्टिणो आणवेदि ।

सीता—हला एहि तावत् ।
हला एहि दाव ।

अवदातिका—भट्टिणि ! इयमस्मि ।
भट्टिणि ! इअमिह ।

सीता—हला ! किन्नु खलु ममापि तावत् शोभते ।
हला ! किणु ह मम वि दाव सोहदि ।

अवदातिका—भट्टिणि ! सर्वशोभनीयं सुरूपं नाम । अलङ्करोतु भट्टिणी ।
भट्टिणि ! मव्वसोहणीअं सुरूपं णाम । अलङ्करोतु भट्टिणी ।

उन्मत्तिके—उन्मादिति, भ्रान्तचित्ते परिहासार्थमग्नदीपवस्तवादानं न काले
तद्य साधु मत्वाऽनुविष्टन्ती भ्रान्तमतित्वमात्मनःसूचयतीति यथा सम्बोधिता । एति-
हासचोर्धमपि लोभमुपचयन् परमार्थचोर्धे प्रवर्तकत्वमुपयातीति भावः, निर्यात-
परावर्तय, अत्र द्विशक्तिः सम्भ्रमसूचनार्था, सम्भ्रमश्च तस्य कार्यस्य त्वरयातुशुभं
व्यञ्जयितुम् ।

मम वि इति—मया धार्यमाणमिदं वल्कलं धियमाश्पाति न वेति तत्प्रस्तावः ।
सव्व इति—सुरूपं सुभगं स्वभावरमणीयं वपुः शरीरं, सर्वशोभनीयम्—सर्व-
सुन्दरताऽऽधानसमर्थं. अतथाधिर्धर्वा पदार्थैः शोभनीयं शोभयितुमलङ्कृतुं समर्थम् ।
सुन्दरी आकृतिः केनापि पदार्थेन भूयमितुं शुश्रूषेति तात्पर्यम् । अनुपारि-
आपमर्गं—कालिदासेनापि—‘किमिव हि भगुराणा मण्डनं नाकृतीनाम्’ इति ।

सीता—पगली, इसी प्रकार डुराई दबती है । जा, लौटा दे, लौटा दे ।

अवदातिका—जो आज्ञा । (जाना चाहती है)

सीता—अरी डुरा डूधर तो आ ।

अवदातिका—महारानी, आई ।

सीता—अरी, क्या यह वल्कल मुझे भी भला लगीगा ?

अवदातिका—महारानीजी, सुन्दर रूप पर सभी चीजें अच्छी लगती हैं । आप
पहन कर देखें ।

सीता—आनय तावत् । (गृहीत्वा लङ्कृत्य) हला । पश्य, किमिदानीं
आणेहि दाव । हला । पश्य, किं दाणि

शोभते ?
सोहृदि ?

अवदातिका—तव खलु शोभते नाम । सौवणिकमिव बल्कलं संवृत्तम् ।
तव पु सोहृदि नाम । सौवणिकमिव विभ्र बल्कल संवृत्तम् ।

सीता—हृज्जे । त्वं किञ्चिन्न भणसि ।
हजे । तुवं किञ्चि न मणासि ।

चेटी—नास्ति वाचा प्रयोजनम् । इमानि प्रहर्षितानि तनूरुहाणि
णत्थि वाआए पओअण । इमे पहरिसिदा तणूअहा

आणेहि दावत्यादि—इदानीं बल्कलधारणानन्तरम्, शान्त-भासते मम वपु-
रित्यर्थं । घृतेनानेन बल्कलेन मदीयशरीरकान्तिरधिकीकृता न वेति तदाशयः ।
अथवा धारितेनानेन बल्कलेन मदीयशरीरमलङ्कृत्यते स्वशोभा वा मत्कायमम्पकं-
वशादतिशय्यते इति प्रश्नाशयः । अत्रार्थे सीताया रूपगवितत्व प्रतीयते, एतन्नन्द
तादृश्या नायिकाया नोपयुज्यत इति प्रथमार्थे एवाशयः । तस्मिन्नाश्रयीमाणे 'किंनु
खलु ममापि तावच्छोभते' इति पूर्वोक्तन सम पुनरुक्तिरित्युभयन पाशारज्जुरियम् ।
सौवणिकम् इति—सुवर्णनिमित्तमिव । त्वत्कायमम्पकमहिम्ना तरुवल्कलमिव
सुवर्णनिमित्तमिवावभासत इत्यर्थः ।

'ण भणसि' इति—त्व किञ्चिन्न मणासि, अत्र प्रसङ्गे तद्वानिप्रायो नामिद्व्यज्यते,
तत्र हेतु न विभ्र इति सीताऽभिप्रायः ।

'णत्थि' इति—वाचा प्रयोजनम्—वचनस्यावश्यकता 'निमित्तपर्यायप्रयोगे
सर्वानां प्रायदर्शनम्' इत्यनुगासनात् निमित्तार्थकप्रयोजनशब्दयोगे वाचेरत्यत्र
तृतीया । न-वेव वाचोऽप्रयोजनत्वेऽनुमापकप्रमाणामाव इत्यपक्षायामाह इमानीति ।

सीता—अच्छा हा । (लेकर तथा पहन कर) अरी, देख तो अन्न अच्छा
लगता है ?

अवदातिका—आपको तो अच्छा लगता है । यह बल्कल तो अब सुवर्णनिमित्त
सा प्रतीत होता है ।

सीता सखि, तुम कुछ नहीं बोलती ।

चेटी—बाणी का प्रयोजन नहीं । ये हमारे रोगटे सत्र कहे दे रहे हैं ।

मन्त्रयन्ते । (पुलकं दर्शयति)
मन्तेति ।

सीता—हृज्जे ! आदर्शं तावदानय ।
हंजे ! आदसर्जं दाव भाणेहि ।

चेटी—यद् भट्टिन्याज्ञापयति । (निष्क्रम्य प्रविश्य) भट्टिनि ! अयमादर्शः
जं भट्टिणी भाणवेदि । भट्टिणि ! अर्जं आदसर्जे

सीता—(चेटीमुख विलोक्य) तिष्ठतु तावदादर्शः । त्वं किमपि
चिद्दु दाव आदसर्जे । तुव किं वि वत्तुकामो विश

चेटी—भट्टिनि ! एवं मया श्रुतम् । आर्यवालाकिः कञ्चुकी भर्णा
भट्टिणि । एवं मए सुदं । अर्यवालाई कचुई मणारि
अभिपेकोऽभिपेक इति ।
अहिसेओ अहिसेओ ति ।

सीता—कोऽपि भर्ता राज्ये भविष्यति ।
को वि भट्टा रज्जे भविस्सदि ।

तनूरुहाणि लोमानि प्रहपितानि-उद्गतानि । पुलकितानां रोम्णामेव मदन्तर्गतान्वा
नन्दाभिनयजकत्वशालित्वे तदभिप्राया वागावश्यकतारहितेति भावः । रोमोद्गर्षो
ह्यानन्दप्रभवः, आनन्दश्चात्र बल्कलाहितत्वत्कायशोभातिशयदर्शनजन्मवेति मम वक्त
भृतार्थं व्याहृतिमात्रतामुत्पच्छेदिति कृत्वैवाहमवचना स्थितास्मीति चेत्प्राशयः ।

'चिद्दु' इति—आनीतस्य दर्पणस्योपयोगस्तावन्मा कारि, किमपि त्वं वि
क्षसि, तदाकर्ण्यैव परत किमपि तदाधारेण निर्धारणीयमिति सीताया आशयः ।

को वि इति—दशरथस्य जीवनदशायामत्र राज्ये कस्यापि परिवर्तनस्थाना
वश्यकत्वेनाशङ्कनीयतया कुत्रापि राज्ये कोऽपि कुमारः अभिपेक्ष्यते तदस्माकमत्र ना

(रोमाञ्च दिखाती हैं)

सीता—सखि, जरा शीशा तो ला ।

चेटी—जो आज्ञा । (जाकर तथा आकर) महारानीजी लीजिये यह दर्पण ।

सीता—(सखी के मुँह पर दृष्टि देकर) दर्पण रहने दे । अच्छा पहले यह तो

बता—क्या तू कुछ कहना चाहती है ?

चेटी—महारानी, हमने ऐसा सुना है । आर्य वालाकि कञ्चुकी कह रहे थे-
राजतिलक है, राजतिलक है ।

सीता—हाँ, होगा किसी का राजतिलक ।

चेटी—भट्टिटनि ! प्रियाख्यानिकं प्रियाख्यानिकम् ।

भाट्टिणि । पिअक्खाणिअं पिअक्खाणिअं ।

सीता—किं किं प्रतीष्य मन्त्रयसे ।

किं किं पडिच्छिअ मन्तेसि ।

चेटी—भर्तृदारकः किलाभिपिच्यते ।

भट्टिटदारओ किल अहिसिञ्चोअदि ।

सीता—अपि तातः कुशली ?

अवि तादो बुसली ।

चेटी—महाराजेनैवाभिपिच्यते ।

महाराएण एव अहिसिञ्चोअदि ।

सीता—यद्येवं, द्वितीयं मे प्रियं श्रतम् । विशालतरमुत्सङ्गं कुरु ।

चइ एव्वं, दुदोअं मे पिअं सुद । विमालदर उच्छङ्गं करेहि ।

स्येति सीतया शोदासीन्यामिध्वंजिका वाचो नष्टिः ।

प्रियाख्यानिकम् इति—प्रियाख्यानमस्मिन्नस्तीति प्रियाख्यानिकं कर्म शुभ-
संवाद इत्यर्थः ।

किम् इति—प्रतीष्य उपलभ्य, किमाचारोदृत्य त्वदीया शुभसंवादश्रावण-
प्रवृत्तिरिति भावः ।

भर्तृदारक इति—भर्तुः स्वामिनः दारकः पुत्रः, राजकुमारि इत्यर्थं, तेन
चात्र रामो विवक्षितः ।

अवि तादो इति—रामाभिपेक, पितरि जीवत्यसम्भवं भत्वा तत्कुशलप्रदाने
रामाभिपेकसंवादश्रावणेन दत्तावसर इति बोध्यम् ।

दुदोअ इति—दशरथेन रामो राज्येऽभिपिच्यत इत्यनेन दशरथः कुशली,

[दूसरी चेटी का प्रवेश]

चेटी—महारानीजी, शुभ संवाद है ! शुभ संवाद है !!

सीता—क्या मन में रख कर धोल रही है ?

चेटी—सुना है राजकुमार का अभिपेक हो रहा है ।

सीता—पिताजी मकुशल तो है ?

चेटी—महाराज ही तो अभिपेक करा रहे हैं ।

सीता—यदि ऐसी बात है तो मैंने बुहरी खुशगवरी सुनी, अपना अंचल फैला ।

चेटी—भट्टिनि ! तथा । (तथा करोति)

भट्टिणि । तह ।

सीता—(आभरणान्यवमुच्य ददाति)

चेटी—भट्टिनि ! पटहशब्द इव ।

भट्टिणि ! पटहसदो विभ ।

सीता—स एव ।

सो एव्व ।

चेटी—एकपदे अवघट्टिततूष्णीकः पटहशब्दः संबृत्तः ।

एकपदे ओघट्टिओ तुल्लीओ पटहसदो संबुत्तो ।

सीता—को नु खलूद्घातोऽभिपेकस्य । अथवा बहुवृत्तान्तानि राज

को पु खु उग्घादो अहिमेअस्य । अहव बहुवृत्तान्तानि राज

कुलानि नाम ।

उलाणि णाम ।

रामस्य चाभिपेक इति द्वयमिति शुभम् । मे प्रियम्, मया श्रुतमिति व्याख्येयम् ।

उत्सङ्गम्, अञ्जलपटम्, विशालतरम्—परिणाहिनम्, शुभसवादाध्रवणावसरत्वं

पारितोषिकप्रहणायञ्जलप्रसारणं करणीयं शुभद्वयसवादाध्रवणावसरेतु पारितोषि-

द्वैगुण्यमुत्प्रेक्ष्य विशालीकरणायादेशः ।

सो एव्व इति—पटहशब्द एवेत्यर्थः । अभिपेकमङ्गलाङ्गभूतः पटहप्रपादः

श्रूयत इत्याशयः ।

एकपदे इति—एकपदे-सद्यः अवघट्टिततूष्णीकः—आरब्ध—विरतः पटहशब्द

श्रूयत इति । बहुवृत्तान्तानि—नानाविधकथानि । राजान्तःपुरं हि कतिपयदणः

परिवर्तनाकर इति भावः ।

चेटी—जो आज्ञा । (अंचल फैलाती है)

सीता—(गहने उतार कर देती है)

चेटी—महारानीजी, बाजे की आवाज—सी सुन रही है ।

सीता—हो, बाजे ही बज रहे हैं ।

चेटी—बाजे बजते ही घन्ट किये गये ।

सीता—अभिपेक मे कौन-सा विघ्न आ पडा ? अथवा राजकुल की कथा अनन्त होती है ।

घेटी—मट्टिनि ! एवं मया सुतं—मर्तुदारकमभिपिच्य महाराजो वनं
मट्टिनि ! एवं मए सुतं—मट्टिदारकं महिसिन्धिं महाराजो वनं
गमिष्यतीति ।
गमिस्सति ।

सीता—यद्येवं, न तदभिपेकोदकं, मुखोदकं नाम !
अइ एत्वं, न तो अहिसेकोदको, मुहोदकं नाम ।

(ततः प्रविशति रामः)

रामः—हन्त भोः !

आरक्ये पटहे स्थिते गुरुजने भद्रासने लङ्घिते
स्कन्धोच्चारणनम्यमानवदनप्रच्योतितोये घटे ।

मट्टिनि ! एवमिति—एवञ्च रामाभिपेकावसरप्रवृत्तस्य पटहप्रणादस्य मट्टिति
विरतो दग्नरक्षनगमननिश्चयाकर्णनं कारणं कदाचिदुत्प्रेष्येति भावः ।

मुखोदकमिति—राजवनगमनध्वनप्रवृत्तवाध्यप्रक्षालनाद्यं मुखोदक-
पदेन विवक्षितमिदधर्मः ।

ततः प्रविशति राम इति—निश्चितप्रतिबद्धराज्याभिपेकस्य वनवासाय राज्ञा-
दिष्टस्य च रामस्य प्रवेशमाहानेन ।

हन्त भोः ! इति—हर्षोऽस्य निपातममुदात्तस्यार्थं । त च रामस्य पितु-
निर्देशपालनावसरसामञ्जयोऽत्र ।

आरक्य इति । पटहे वाद्यभेदे आरक्ये प्रारक्यवादाने, गुरुजने वसिष्ठादि-
गुरुजने स्थिते अभिपेकमंगलावलोकनोत्सुकतया स्थित इत्यर्थः । भद्रासने सिंहासने
लङ्घिते आरक्ये मयेति शेषः । घटे तीर्थाहितजलपूर्णं गुम्भे स्कन्धोच्चारणनम्यमान-
वदनप्रच्योतितोये स्कन्धोच्चारणेन शिरसि आवजने मुकरतारुम्पादनाय स्कन्धोर्ध्व-

घेटी—महारानी जी, मैंने ऐसा सुना है—राजकुमार को अभिपिक्त कराके
महाराज वन चले जायेंगे ।

सीता—यदि ऐसी बात हुई तब तो यह अभिपेक-जल भाँसू धोने का पानी
होगा, अभिपेकजल नहीं ।

(राम का प्रवेश)

राम—ओह !

राजे वजने लगा गया, गुरुवारं चले आये, मैं सिंहासन पर बैठा दिया गया,
मद्गलमय तीर्थजलों से पूर्ण घटों को उठा-उठाकर उनके द्वारा मैं नहलाया जाने

राज्ञाह्वय विसर्जिते मयि जनो धैर्येण मे विस्मितः

स्वः पुत्रः कुरुते पितुर्यदि वचः कस्तत्र भो ! विस्मयः ? ॥५॥

'विश्रम्यतामिदानीं पुत्रे'ति स्वयं राज्ञा विसर्जितस्यापनीतमारो-
च्छ्वसितमिव मे मनः । दिष्ट्या स एवास्मि रामः, महाराज एव
महाराजः । यावदिदानीं मैथिलीं पश्यामि ।

अवदातिका—भट्टिनि ! भर्तृदारक खल्वागच्छति । नापनीतं बलकलम्
मट्टिणि ! मट्टिदारगो खु आगच्छइ । णावणीद ववस्त

देशनयनेन नम्यमानं नम्रीक्रियमाणं यद्वदनं मुखं मल्लविवरः तस्मात्
पातोन्मुखसलिले सतीत्यर्थः, मयि मल्लक्षणे जने राज्ञा महाराजेन
मद्रासनादवतार्यं गच्छेत्यादिष्टे मे मम (अभिपेकार्थमुपस्थापितस्य विना
दोषमेवाकस्मात्तया विसृष्टस्यापीत्यर्थः) धैर्येण
गाम्भीर्येण जनो विस्मितः आश्चर्याख्यं भावमावहन् । न चैतेदुचितं तत्र विस्मय-
रणीभूतालौकिककार्याभावात्, तदेवाह—स्व इति । यदि स्व. औरस पुत्र पितुर्वच-
नं कुरुते प्रतिपालयति तत्र पुत्रकर्तृकपित्राज्ञापालने को विस्मय ? न कोपित्वं
तस्य न्यायप्राप्तत्वेन सततमाशास्यमानत्वादिति भावः । शाद्वलविक्रीडितं वृत्तम् ॥५॥

विश्रम्यतामिति—विरम्यताम्—अभिपेकादिति भावः । विसर्जितस्य विद्वत्स्य
स्वच्छन्दो कृतस्येति भावः । अपनीतमारोच्छ्वसितम्—अपनीतो दूरीकृतो यो प्रातो
राज्य रक्षणवैजणादिकृतस्तेन उच्छ्वसितम्—साश्वासमिव जातमिति योजनीयम् ।
भारापहारकारणमाह—राम इत्यादिना । अहं पूर्ववद्रामं एव केवलं राम एव, न
तु महाराजपदामिलप्य, महाराजः शासनाधिकृतः (पूर्ववत्) महाराज एवेति
(स्ववनवासभरताभिपेकयाचनास्वरूपमजानतो रामस्येदृगुक्ति सम्भाषिनी) ।

नापनीतमिति—सुन्दरतममसूणक्षौमयोग्याया भवत्या बल्लपरिधानमालोत्त

लगा, इतना हो जाने पर भी राजा ने मुझे बुलाकर विदा दी। मेरी हृदय पर लोग आश्चर्यित रह गये। किन्तु अपना पुत्र यदि पिता की आज्ञा
पालता है तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? ॥ ५ ॥

'पुत्र ? इस समय राज्याभिषेक रहने दो' इस प्रकार खुद महाराज से
विदा प्राप्त कर अपने भार को उतरा समझ कर मेरा मन छुटकारे की साँस ले
रहा है। परमात्मा ने बड़ी कृपा की, जो मैं वही राम बना रहा और महाराज
महाराज ही बने रहे। अच्छा, तबतक चलकर सीता से भेंट करूँ।

अवदातिका—महारानीजी, राजकुमार धा रहे हैं। आपने अभी तक न

रामः—मैथिलि ! किमास्यते ?

सीता—इम् आर्यपुत्र । जयत्वार्यपुत्र ।
ह् अग्रउत्तो जेहु अग्रउत्तो ।

रामः—मैथिलि ! आस्यताम् । (उपविशति)

सीता—यद् आर्यपुत्र आक्षापयति । (उपविशति)
ज अग्रउत्तो भागवेदि ।

अवदातिका—भट्टिनि ! स एव भर्तृदारकस्य वेप । अलीकमिवैतद्
भट्टिणि ! सो एव भट्टिदारकस्य वेप । अलिअ विअ एदं
भवेत् ।
भवे ।

सीता—तादृशो जनोऽलीकं न मन्त्रयते । अथवा बहुवृत्तान्तानि
तादिसो जणो अलिअ ण मन्तेदि । अह्व बहुवृत्तान्तानि
राजकुलानि नाम ।
राजकुलानि णाम ।

रामः कदाचिन्मानमन्य वा कञ्चन भावमुत्प्रेक्षेत, ततोऽनूचितं स्यादिति तदाशयः ।

आम्यतामिति—आगतमात्रस्य रामस्य 'मैथिलि किमास्यते' इति प्रश्नः पुन-
त्र 'आस्यताम्' इत्यादेश विचारयतः 'सीता रामागमने प्रत्युत्थानाय स्वासन्नं
बह्व्य स्थिते'ति स्पष्टमवभासते, तदय सीतायाश्चारिष्यविशेष उपनिबद्धो वेदितव्यः ।

अलीकमिति—अलीकम् अनुत्तम् रामाभिषेकवृत्तमनत्यम्, रामवेपस्यापरि-
र्त्तनात् इति तदाशयः ।

तादृश इति—विश्वामपात्रतया राजकुले समाद्रियमाणः ।

यहाँ उच्चार ?

राम—मैथिली, बैठी क्या हो ?

सीता—यें, आर्यपुत्र हे ? जय हो आर्यपुत्र की ।

राम—मैथिली, बैठो । (बैठते हैं)

सीता—जो भाशा । (बैठती हैं)

अवदातिका—महारानी, राजकुमार का वेश तो अभी भी वही है । वह धान
'मूठी-सी मालूम पड़ती है ।

सीता—वैसे आदमी मूठी रखर नहीं फैलाते । अथवा राजकुल में बहुत-सी
घटनायें होती रहती हैं ।

रामः—मैथिलि ! किमिदं कथ्यते ।

सीता—न खलु किञ्चित् । इयं दारिका भणति—अभिपेकोऽभिपेक इति ।
ण खु किञ्चि । इयं दारिका भणति—अहिसेओ अहिसेओ ति ।

रामः—अवगच्छामि ते कौतूहलम् । अस्त्यभिपेकः । श्रयताम् । अद्या-
स्मि महाराजेनोपाध्यायामात्यप्रकृतजनसमक्षमेकप्रकारसद्विद्वत्
कोसलराज्यं कृत्वा बाल्याभ्यस्तमङ्कमारोप्य मातृगोत्रं स्निग्धमा-
भाष्य 'पुत्र ! राम ! प्रतिगृह्यतां राज्यम्' इत्युक्तः ।

सीता—तदानीमार्यपुत्रेण किं भणितम् ?

तदाणि अय्यउत्तेण किं भणितं ?

राम.—मैथिलि ! त्वं तावत् किं तर्कयसि ?

सीता—तर्कयाम्यार्यपुत्रेणाभणित्वा किञ्चिद् दीर्घं निश्चय्य महाराजस्य
तवकेमि अय्यउत्तेण अभणितं किञ्चिद् दिग्घं निश्चय्य महाराजस्य

अवगच्छामीति—कौतूहलम् अभिपेकवृत्तान्तध्रुवणोत्कण्ठाम् । उपाध्याया-
वसिष्ठादयो विद्यायशस्विनः, अमात्या. सुमन्त्रादयो मन्त्रिणः, प्रकृतय-प्रजा-
मुख्या पौराश्च, तेषां समक्षं तेषु शृण्वरसु, एकप्रकारसक्षिप्तम्—एकेन प्रकारेण
सक्षिप्तं मेलितम्, सकलार्थक्रोडीकरणेऽपि शब्दलाघवकृत संक्षिप्तत्वमत्र बोध्यम् ।
कोसलराज्यम्—स्वाधिकारवति समग्र राज्यम्, न तु कमपि भागमेकम्, मातृगोत्रम्-
जननीनाम, आभाष्य उच्चार्यं कोसल्यानन्दनेत्यदीर्येति भावः ।

तर्कयसीति—अनासादितराज्यमारोपयेच्छ पितृधरणपरिचर्यामाचरामि तन्मा

राम—मैथिली, यह क्या कहती है ?

सीता—कुछ नहीं । यह लड़की अभिपेक-अभिपेक कह रही थी ।

राम—तुम्हारी उत्सुकता समझता हूँ । हूँ सचमुच आज अभिपेक था । सुनो ।

आज पिताजी ने आचार्य, मन्त्री, मित्र, पुरोहित, पुरवासीगण—सभी
की उपस्थिति में एक प्रकार से छोटा-सा दरबार बुलाकर मुझे बाल्यकाल से
परिचित अपने अङ्ग में बैठाकर बड़ी ममता से 'कोसल्यानन्दन' नाम से पुचकार-
कर कहा—बेटा, यह राज्यमार स्वीकार करे ।

सीता—इस पर आपने क्या उत्तर दिया ?

राम—मैथिली, तुम्हीं बताओ, तुम क्या अनुमान करती हो ?

सीता—मेरा तो यही अनुमान है कि उस समय आर्यपुत्र कुछ भी मुँह से कहे

राम—ततोऽप्रतिगृह्यमाणेष्वनुनयेषु आपन्नजरदोषैः स्वैः प्राणैरस्मि
शापितः ।

सीता—ततस्ततः ।

तदो तदो ।

राम.—ततस्तदानीं,

शत्रुघ्नलक्ष्मणगृहीतघटेऽभिपेके

छत्रे स्वयं नृपतिना रुदता गृहीते ।

सम्भ्रान्तया किमपि मन्थरया च कर्णैः

राज्ञः शनैरभिहितं च न चास्मि राजा ॥ ७ ॥

तत इति—ततः वाष्परादिलनयनयोरऽवयोजार्तयोरनुनयेषु राज्यं ग्राहयितुं महाराजेन विहितेष्वनुनयेषु मया अप्रतिगृह्यमाणेषु अनन्युपगम्यमानेषु मत्सु आसन्नजरदोषैः आसादितवाद्दोषैः स्वैः प्राणैः शापितः उपालब्धः अस्मि, महाराजेनेति शेषः । यदि जरसाम्युपेतस्य पितुर्मम प्राणान् रिरक्षिषसि तर्हि राज्यं गृह्याणेत्यागृहीतोऽहं महाराजेनेति भावः ।

तदानीमिति—अप्रतिपत्तिमूढतादशायामेवावयोरित्यर्थः ।

शत्रुघ्नेति—शत्रुघ्नो लक्ष्मणकनिष्ठः लक्ष्मणश्च तान्मया गृहीत करघृत घटः तीर्थहितजलकलशो यस्य तस्मिस्तथाभूते (अभिपेके) छत्रे श्वेतातपत्ररूपे राज-घिह्ने रुदता आनन्दाश्रुविमुञ्चता नृपतिना स्वयम् आत्मना गृहीते सति, प्रवृत्ते-ऽभिपेककर्मणि इति भावः । सम्भ्रान्ततया त्वरया समुपसर्पन्त्या मन्थरया तदाख्यया कैवेयीपरिचारिकया राज्ञो महाराजदशरथस्य कर्णं किमपि जनान्तर-णाश्राव्यं यथा भवति तथा शनैरभिहितं निवेदितं च अहं राजा नास्मि न भवामि च । तदभिधानमात्रप्रतिबद्धराजभावोऽभूवमन्यथा सर्वाऽपि मदभिपेकसामग्री प्रस्तुता प्रवृत्तोपयोगा आसीदिति भावः । चकारद्वयेन मन्यरोत्तिमद्राजभावयो-प्रतिबन्ध्यप्रतिबन्धकभावः सम्बन्धो व्यक्तमुक्तः । वसन्ततिलका वृत्तम्—‘वसन्ततिलका तमजा जगौ ग’ इति तल्लक्षणम् ॥ ७ ॥

राम—इसके बाद जब मैंने प्रत्येक अनुनय को अस्वीकार कर दिया, तब उन्होंने अपने जीर्ण-शीर्ण प्राणों की क्षपथ दी ।

सीता—तब फिर ?

राम—तब—

शत्रुघ्न और लक्ष्मणने तीर्थजल के घड़े को थामा, रोते हुए महाराज ने स्वतः छत्र संभाला (और इस प्रकार अभिपेक का कार्यारम्भ हुआ) । इतने में ही हाँफती हुई मंथरा ने आकर राजाके कानोंमें धीरेसे कुछ कहा और मैं राजा नहीं हुआ ।

सीता—प्रियं मे । महाराज एव महाराजः, आर्यपुत्र एवार्यपुत्रः ।
 पित्रं मे । महाराजो एव महाराजो, अम्पउत्तो एव अम्पउत्तो ।

राम—मैथिलि ! किमर्थं विमुक्तालङ्कारासि ?

सीता—न खलु तावदाचक्ष्णामि ।

ण तु दाव आचक्ष्णामि ।

राम—न खलु । प्रत्यग्भावतारितैर्भूषणैर्भयितव्यम् । तथा हि—

कर्णो त्वरापहृतभूषणभुग्गपाशौ

संस्र सितामरणगौरतलौ च हस्तौ ।

एतानि चामरणमारनतानि गात्रे

स्थानानि नैव समतामुपयान्ति तावत् ॥ ८ ॥

पित्रं मे इति—महाराज एव महाराज, न तु महाराजत्वादिपत इति, आर्य-
 पुत्र आर्यपुत्र एव, न तु राजत्वसम्बन्धादप्याहशब्देन तस्य कियददीनापि स्नेह-
 न्यूनोभावाशङ्केति भावः ।

विमुक्तालङ्कारणा—अवतारितामरणा ।

आचक्ष्णामि—न विमुञ्चामि, सावधिको नायमलङ्काररत्यागो मम, किन्तु
 कियत्कालाभ्यापीति तदशयः ।

प्रत्यग्भावतारितै—अचिरपरित्यक्तं, द्विदक्षिणपुषमेव भूषणानां परित्याग-
 स्त्वया विहितोऽत किमपि कारणमत्र स्यादिति रामस्याशयः ।

भूषणानामचिरपरित्यक्तत्वमूषकप्रमाणानि प्रतिपादयति- कर्णो त्वरेत्यादिना
 कर्णो त्वरापहृतभूषणभुग्गपाशौ त्वरया शीघ्रतया अपहृतभूषणो अपसारितालङ्कारावत्
 एव गुणो बद्धतागत-पाश प्रविशमानो भूषणधारणाधारभागो ययोस्तादृशो, शीघ्र-
 मपनीतनूपणे श्रवणे तदपगमकृत भुग्गत्वमधुनाऽभ्युनीयत इति तदपगमकार्यस्यानति-
 चिरनिवृत्ततां विमाचक्षामः । हस्तौ बाहू च संस्र सितामरणगौरतलौ संस्र सितामरणौ

सीता—अच्छाहुआ, महाराज, महाराज ही रहे और आर्यपुत्र आर्यपुत्र ही रहे ।

राम—सीते, गहने क्यों उतार डाले ?

सीता—नहीं, नहीं, पहना करती हूँ ।

राम—नहीं तो, पहनती तो हो, गहने अभी के उतारे जान पड़ते हैं, क्योंकि-
 शीघ्रता में आभूषण उतारने के कारण कर्णों के छेद अभी भी लुप्त नीचे की ओर
 झके हुए हैं, हस्तामरण उतारने के कारण बाहू पड़ने से हथेलियों का धर्न

सीता—पारयत्यार्यपुत्रोऽलीकमपि सत्यमिव मन्त्रयितुम् ।

पारेदि बन्धुत्तो बलिञ्चं पि सच्चं विम मन्तेदुं ।

राम.—तेन हि अलङ्कृत्याताम् । अहमादर्शं धारयिष्ये । (तथा कृत्वा निवन्धं) तिष्ठ ।

आदर्शं बल्कलानीव किमेते सूर्यरश्मयः ।

हसितेन परिज्ञातं क्रीडेयं नियमस्पृहा ? ॥ ६ ॥

दूरीकृतालङ्करणो अत एव गौरतली कटकादिभूषणसंजनसम्भव बाहुभागगोरत्वमधुनापि विद्यमान भूषणापगमस्मानतिचिरनिवृत्तता प्रत्याघयति । मात्रे वपुषि आभरणभारनतानि भूषणधारणभारनिम्नीभूतानि न्यानानि समताम आगन्तुकनतत्वपरिहारेण स्वभावावस्थिति भूषणावतारणोत्तरकालशीघ्रलभ्यां नैव उपयान्ति नैव प्राप्नुवन्ति, त्वं भूषणानि नातिपूर्वमपसारितवत्यसि यतस्तव भूषणभारनञ्जीभूत-तत्स्थानसमताप्राप्तिपर्याप्तोऽपि कालो न व्यतीत इति स्वभावोक्तिः । पूर्वोक्तमेव । वृत्तम् ॥ ८ ॥

पारेदि इति—आर्यपुत्रोऽसत्यमपि वन्तु मत्यमिव वर्णयितु शक्तः, सत्यभूतम्य वस्तुनो यथावद् वर्णनं तु तवाशीव सुखेन साध्यमिति सीताया आशयः ।

तिष्ठ—आदर्शाभिमुखो मती निश्चला तिष्ठेति भावः ।

आदर्शं इति । आदर्शं दर्पणे बल्कलानीव बल्कलानि त्वया धृतानीव प्रतिभावन्त इत्यर्थः, प्रतिमानसाम्यादाशङ्कते—एते सूर्यरश्मयः भास्कराकरण नि किम् ? विशेषदर्शनेन निर्णयमधिगम्याह—तव हसितेन हासेन परिज्ञातम् अवयतम्, सूर्यरश्मितया सन्दिह्यमानं वस्तु बल्कलत्वेन निश्चितमित्यर्थः । बल्कलनिर्णयनेव पृच्छति—क्रीडेयं नियमस्पृहेति । इयं प्रत्यक्षदृश्या तव नियमस्पृहा नियमिजनधार्य-बल्कलधारणाभिलाषः तव क्रीडा अथवा वास्तविकनियमस्पृहेति प्रश्नकाकुः ॥ ९ ॥

अभी भी पूर्वानुरूप नहीं हो पाया है और आभूषण के भार से अवनत तुम्हारे अवयव अभी तक स्वाभाविक दशा को नहीं प्राप्त कर सके हैं ॥ ८ ॥

सीता—आप असत्य को सत्य साबित कर सकते हैं ।

राम—जाने दो, तुम गहने पहनो, मैं दर्पण दिखाता हूँ (दर्पण हाथ में लेकर) ठहरो ।

दर्पण में यह कुछ बल्कल-सा मालूम पड़ता है । कहीं ये सूर्य की किरणों तो नहीं हैं । अच्छा, तुम्हारी हँसी ने सारा रहस्य बता दिया । ठीक-ठीक कहो, तपस्विजनोचित यह बल्कल क्या तुमने केवल हँसी-खेल में पहने हैं, अथवा साधना करने का ही विचार है ? ॥ ९ ॥

अवदातिके ! किमेतत् ?

अवदातिका—भर्तः ! 'किन्तु खलु शोभते न शोभते' इति कीतूहलेना-
महा ! किन्तु ह सोहदि न सोहदि त्ति कोदहणेग
यदानि ।

भावज्ञा ।

राम—मैथिलि ! किमिदम् ? इक्ष्वाकूणां वृद्धालक्षारस्त्वया धार्यते ।

अस्त्यरमाकं प्रीतिः । आनय ।

सीता—मा खलु मा खल्वार्यपुत्रोऽमङ्गलं भणतु ।

मा तु मा तु अग्यउत्तो अमङ्गल भणतु ।

सीतामुदासीनवदासीनमनुत्तरयन्तीमाहोष्य तत्सतीमवदातिशामनुवृत्ते—
किमेवदिति । एतत्सीतावतृकवत्कलधारणं किम् विहेतुकमिति प्रश्नः ।

भर्तः इति—नेव सीताया नियमस्पृहा, किन्तु शोभते न वा शोभते इति परो-
क्षामात्रप्रयोजनेयं यत्कलधारणेति तदाशयः ।

किमिदमिति स्वया क्रियमाणमिदं वक्ष्यलधारणमनुत्तरमित्यर्थः । अनुत्तरये कार-
णमाह—इक्ष्वाकूणामिति । इक्ष्वाकूणामिदंशकुवदयानां वृद्धालक्षारो वार्ययथायसि-
लक्षारो वत्कल स्वया धार्यते, इक्ष्वाकूणो हि वृद्धाः सन्त पुत्रान्तर्गतलक्ष्मीया वान-
प्रत्ये कृतमतयो यत्कलं परिणहन्ति । इक्ष्वाकूपदं रामवशे पुत्र प्रादुर्भूतस्य रामो
वाचकम्, तत्समन्यादेव तदुत्तरवाचि, तथा च प्रयुक्तं बालिदासेन—'इक्ष्वाकूणप्रभवः
वयं इशाम्' इति, अन्याधि—पुत्रसन्तर्गतलक्ष्मीकीर्त्येक्ष्वाकूभिः कृतम्' इति ।
प्रीतिः वत्कलधारणामिलापः, आनय वत्कलं महा देहीत्यर्थः ।

'मा खलु' इति—अवदत्तुतो वरु कल नयनानुरोधो नितरामयुक्तः अमङ्गलापहत-
त्वादिति सीताऽऽशयः ।

अवदातिके, क्या बात है ?

अवदातिका—'अले लगते हैं या नहीं ?' यही देखने के लिये केवल विनोद में
यह वत्कल पहना गया है ।

राम—मैथिलि, क्या बात है ? तुम इक्ष्वाकूओं के वृद्धावस्था के अलक्षारवत्कल
इसी उम्र में पहने हुई हो । मैं भी पहनना चाहता हूँ । लाओ तो ।

सीता—नहीं, आप ऐसा अमङ्गल मुँह से न निकालें ।

रामः—मैथिलि ! किमर्थं वारयसि ?

सीता—उज्ज्विताभिपेकस्यार्यपुत्रस्यामङ्गलमिव मे प्रतिभाति !

उज्ज्विताभिपेकस्य अमङ्गलं दिव मे पडिहाति ।

रामः—मा स्वयं मन्युमुत्पाद्य परिहासे विशेषतः ।

शरीरार्थेन मे पूर्वमाघडा हि यदा त्वया ॥ १० ॥

(नेपथ्ये)

हा हा महाराजः ।

वारयसि बल्कलानयनप्रार्थना प्रतिपेधसि ।

उज्ज्वतराज्याभिपेकस्य—रित्यक्त राज्याभिपेकस्य । अयमाज्यः—आरज्याभिपेकपरित्याग एव तावदेकममङ्गलं, वनवाग्निजनोपयुक्तं बल्कलयाचनमिदं क्रियमाणं 'वनवासपरिवलेणोऽपि ते भावी'ति सूचयदिव मे द्वितीयानमङ्गलभावेन भासत इत्यर्थः ।

मा स्वयमिति—मम परिहासे त्वदुपमुक्तबल्कलयाचनात्मके विशेषतो विशेषेण स्वयम् आत्मनैव मय्य दुःखं मा उत्पाद्य अलं विधाय । विनोदवर्तिन्या नया नवत्या परिहितस्य बल्कलस्य याचने विधायमाने ततो भाविनोऽमङ्गलस्यासङ्ख्या मा व्यदिष्टा इत्यर्थः । खेदानादे कारमुनन्यग्यति—शरीरार्थेनेति । यदा त्वया मे मम रामस्य शरीरार्थेन देहावनाग्नूतेन जायालक्षणेन अर्धाङ्गेनेत्यर्थं, पूर्वं मद्याचनानन्दः प्रागेवं बल्कलाथावदा शरीरशोभायमुपयुक्तः । 'अर्धो वा एष आत्मनो यन् पत्नी' इति हि श्रूयते । त्वं च बल्कलं वसना मतो ममापि बल्कलदमनत्वं विहितवत्पेवानि, तदधुना मया घृतेऽपि बल्कले न किमपि हीयते इति बुद्ध्यते चेद इति भावः । अत्र 'मा उत्पाद्ये'ति क्त्वा चित्त्वः ॥ १० ॥

हा हा इति—हा इति खेदे । मन्त्रमे द्विरक्तिः । हा महाराज. खेदविषयो दशरथः, शोच्या दशाननुप्रपन्न इति यावत् ।

राम—मैथिलि, किम लिये रोक रही हो ?

सीता—अभी-अभी आपका अभिपेक होते-होते रोक गया है । इससे आपका बल्कलधारण मुझे अमङ्गल-सा लगता है ।

राम—सुद अमङ्गलकी आशा पूरा मत करो, विशेषतः विनोदमें । जब मेरी अर्धाङ्गिनी होकर तुमने पहले ही बल्कल पहन लिये, तो समझो मैंने भी पहन लिया ॥ १० ॥

(नेपथ्य में)

हाय ! हाय ! महाराज !!!-

सीता—आर्यपुत्र ! किमेतत् ?
कथं वदत ! कि एद ?

रामः—(आक्षेपं)

नारीणां पुरुषाणां च निर्मयादौ यदा घनिः ।

सुव्यक्तं प्रभवामीति मूले दैवेन ताडितम् ॥ ११ ॥

तूष्णीं क्षायतां शब्दः ।

(प्रविश्य)

काञ्चुकीय —परित्रायतां परित्रायतां कुमारः ।

रामः—आर्य ! कः परित्रायतव्यः ?

काञ्चुकीय —महाराजः ।

किमेतदिति—किमिदं महाराजशोचन्मूचकममयं समापतितमिति सीताया
व्याकृतोक्तिः ।

नारीणामिति—यदा नारीणां वनितानां पुरुषाणां च निर्मयादौ, सीमानमनि-
ब्रान्त, घनिः संदप्रकाशक, ममय शब्दः, (तदा) सुव्यक्तं मुग्धानुमेय कारणमन्व
कलकल्पयेति भावः । मुग्धानुमेयं कारणमेवोपन्यसिनुमाह—प्रभवामीति । दैवेन
मापनेयेन प्रभवामीति—‘सर्वंमामर्ष्यंशाली मत्प्रभावः’ इति श्रोत्रिणुं मूले प्रधान-
स्थाने महाराजस्यै ताडितं प्रहृतम्, न तु शाखायां स्कन्धे वा कृतं, प्रहार इति ।
दैवी ह्यपुरुषिणामाप्रकृता प्रमानमूनमहाराजविपत्तिरियं न कारणान्तरजनितेति
तदाशयः । एतेन महाराजविपत्तिसम्भावनया रामस्य श्रेयः प्रकटीकृतं ॥ ११ ॥

महाराजः दग्धस्य परित्रायतव्य इति शेषः ।

सीता—आर्यपुत्र, यह क्या हुआ ?

राम—(मुनकर) जो यह नर नारियों का जोरों से कोलाहल सुनाई पड़
रहा है, इससे ज्ञात होता है कि काल ने अपनी सर्वसामर्थ्यशालिता के बल पर
मूल में प्रहार किया है ॥ ११ ॥

शीघ्र कोलाहल के कारण का पता लगाओ ।

(प्रवेश कर)

काञ्चुकी—हुमा, रक्षा करें ।

राम—किसकी रक्षा ?

काञ्चुकी—महाराज की ।

रामः—महाराज इति । आर्य ! ननु वक्तव्यम् एकशरीरसंक्षिप्ता पृथिवी रक्षितव्येति । अथ कुत उत्पन्नोऽयं दोषः ।

कञ्चुकीयः—स्वजनात् ।

रामः—स्वजनादिति । हन्त ! नास्ति प्रतिकारः ।

शरीरेऽरिः प्रहरति हृदये स्वजनस्तथा ।

कस्य स्वजनशब्दो मे लज्जामुत्पादयिष्यति ? ॥ १२ ॥

नन्विति—महाराजः परित्रातव्य इत्यभिधानेन महाराजस्य विपद्ग्रस्तताऽ-
नुमीयते, तथा च सकलाया धरण्या रक्षणाय क्षममाणस्य महाराजस्य विपद्ग्रस्तत्वे
तत्परिपालिताया, पृथिव्या अपि विपदुपनिपातकृताऽव्यवस्थग्रामत्वे तत्पालनायापि
श्रयत्नः करणीय इति रामन्यासात् । एकशरीरसंक्षिप्ता—एकस्मिन् शरीरे महा-
राजरूपे संक्षिप्ता तत्पालनतया तदन्तर्भूतत्वेन स्थिता पृथिवी धरणी भूमिः
रक्षितव्येति । अयं दोषः महाराजस्य विपत्प्रतिरूपो दोषः ।

स्वजनाद्—आत्मीयान्, परिजनात् इत्यर्थः । आत्मीयजनेनैव जनितोऽयं
दोष इत्यर्थः ।

स्वजनादिति—आत्मीयजनाच्चरिते दोषे कोऽपि प्रतिकारो नास्ति, परेणा-
पकृते तन्मारणेन तद्धारणेन वा प्रतिक्रियते, स्वजने तु न तेऽभ्युपायाः तेषां दमने
आत्मीयदमनेन पुन खेदावसरोपनिपातात् ।

शरीरे इति—अरिः शत्रु शरीरे काये प्रहरति ताडयति, स्वजन हृदये
अन्तर्भ्रमणि प्रहरति इति । शरीरप्रहाराच्च हृदयप्रहारो दुःसहतर इति हादिकमात्मी-
यकृतमाघातं सोढुमक्षमस्य महाराजदशरथस्य विपत्प्रतिरतीव सम्भाविनीति भावः ।
येन महाराजस्यैव विपत्प्रतिरूपवादिता, कृतमोऽसौ परिजनः ? तं परिजनेषु गणयितुं
बाध्यस्य मम लज्जावनतं शिरो भवेत्, जघन्यकार्यविधानदुर्ललितस्य सम्पत्को हि
सापुजनं ह्यपयतीति भावनप्रेत्यमुक्तिः । स्वजनशब्दामिषेयेषु बहुषु कृतमोऽसौ यस्य

राम—महाराज की ? तब यही न कहिये कि एक शरीर में संक्षेप में वक्तमान
समूची पृथ्वी का पालन करना है । अच्छा, यह विपत्ति कहाँ से फट पड़ी ?

कञ्चुकी—आत्मीय जन से ही ।

राम—क्या आत्मीय जन से ? तब तो इसका प्रतीकार भी नहीं किया जासकता ।
बाहरी शत्रु केवल देह पर आघात करता है, किन्तु स्वजन मर्मस्थान पर ही
आघात करते हैं । न जाने इस विपत्तिमें कौन स्वजन निमित्तहुए हैं ? जिनकी याद

काञ्चुकीयः—तद्यभवत्याः कैकेय्याः ।

रामः—किमम्बायाः ? तेन हि उदकेण गुणेनात्र भवितव्यम् ।

काञ्चुकीयः—कयमिव ?

राम—श्रूयताम् ,

यस्याः शक्रसमो भर्ता मया पुत्रवती च या ।

फले कस्मिन् स्पृहा तस्या येनाकार्यं करिष्यति ॥१३॥

‘भवजन.’ इत्ययं शब्दो मम लज्जां ह्लिपम् उत्पादयिष्यति ॥ १२ ॥

किमम्बाया इति.—किमत्र स्वजनशब्दः यन्वा मातरं कैकेयो विपयीकरोति ? इति प्रश्नानयः । पद्येन तर्हि नासौ दोषः तस्याः, एतादृशाचरणप्रवृत्तेरलीकत्वात् । केनापि कारणविशेषेण तदाऽऽग्राहेऽपि सप्रति दोषत्वेन प्रतीयमानस्यास्य विपदुपनिपातस्य परिणाममुखप्रदत्वादिति तात्पर्यम् । उदकेण उत्तरफलेन, गुणेन हितकरणेन ।

कयमिति—सम्प्रति स्वतत्वेन, प्रतीतस्य कालान्तरेऽपि यथा बिना कयमि यत्न सदा भावेनैवोपलब्धरागा, तथाऽम्बाया विहितस्य दोषस्यापि सदा दोषत्वमेव लभ्यं न गुणत्रयमिति त्वयोच्यमानमुदकं गुणत्व केन प्रकारेण शक्योपपादनमिति पृच्छति ‘कयमिति’ ।

पूर्वोक्तां शङ्कां परिहरति—श्रूयतामिति । ययोक्तौ कारणमाकर्ण्यतामिति भावः । यस्या इति—यस्याः कैकेय्या भर्ता स्वामी शक्रसमः इन्द्रतुल्यः, परमैश्वर्य-शालित्वेन मानुषसामर्थ्याग्राध्यमपि साधयितुमलमित्यर्थः । न केवलमेतावदेव, किन्तु सा सुपुत्रापि, तदाह—या च मया पुत्रवती सेत्यर्थः । मया पुत्रवतीत्यत्र ‘प्रकृत्यादिभ्य उपसत्त्वानम्’ इति वार्तिनेनाभिदे नृतीया घान्तेन घनवातित्यत्र यथा । तस्याः इन्द्रममम्बायिना मनायायाः मया च पुत्रवत्याः कस्मिन् फले स्पृहा भिमिल्यः, येन सद्युमित्यमाणेन फलेन हेतुभूतेन अकार्यम्—दशरथव्यसनापादनरूपम्

मेरे लिये लज्जाकर होगी ॥ १२ ॥

काञ्चुकी—महारानी कैकेयी की ।

राम—क्या क्या ? मेरी माताजी की । तब तो अवश्य ही इसका परिणाम भला होगा ।

राम—सुनिये—

जिसके पतिदेव इन्द्र के समान हों और मैं जिसका पुत्र होऊँ, भला उसे क्या

काञ्चुकीय.—कुमार ! अलमुपहृतासु स्त्रीबुद्धिषु स्वमार्जवमुपनिक्षेप्तुम् ।
तस्या एव खलु वचनाद् भवदभिषेको निवृत्तः ।

रामः—आर्य ! गुणाः खल्वत्र ।

काञ्चुकीय.—कथमिव ?

रामः—श्रूयताम्,

वनगमननिवृत्तिः पार्थिवस्यैवं ताव-

न्मम पितृपरवत्ता बालभावः स एव ।

अकत्तंव्य करिष्यति विद्यास्पति । तदेव तु फल न विभावयामि, मद्राजाऽह वा
उदनुरोधेन साधयितु न क्षमेय, चात्र केनापि महता कारणेन नवितव्यमिति भाव ।
तथा चास्य दोगस्य परिणामे गुणत्वं पूर्वोक्तं पुष्यति ॥ १३ ॥

उपेति—उपहृतासु नष्टासु स्वभावकुटिलानु इत्यर्थं, स्त्रीबुद्धिषु वनिताजनमतिषु,
स्वबुद्धिगत निजमतिस्मन्वि, उपनिक्षेप्तुम् आरोपयितुम्, अल नोपयुज्यत इत्यर्थः ।
यथा तव मतिरतिसरला तथा स्त्रीबुद्धिरपि मा संस्था इत्याशय । कैवेयीबुद्धेः कुटि-
लत्वं निर्धारयितुमाह—तस्या एवेति । एतेन च स्त्रीसामान्यबुद्धेरसरलता प्रतिज्ञा
स्थापिता । अत्रोपनिक्षेप्तुमलम्, इत्यत्र तुमुन्प्रत्ययोपपत्तिरपाणिनीया, एतादृशस्थले
क्त्वाप्रत्ययस्वीचित्यात् 'अल हल्लोः प्रतिषेधयो. प्राचा क्त्वा' इत्यनुशासनादिति ।

गुणान् गणयति—वनगमनेति । तावत् प्रथम पार्थिवस्य महाराजस्य एव
वनगमनात् मद्राज्याभिषेकात् परतः कत्तंव्यत्वेनापत्तितात् अर्धवसितादित्यर्थः,
निवृत्तिरित्येको गुणः, मम रामस्य पितृपरवत्ता पितृपारतन्व्यलक्षणमन्वारध्यं सर्व-
थाऽमिलयितमिति स एव चरानुवृत्तः बालभावः शिशुभाव इति चेति द्वितीयतृतीयौ
द्वौ गुणौ । प्रजाना नवनृपतिविमर्शं नूतनराजकर्तृके राज्यमारनिर्वहणे विषये
राज्ञाविचिकित्सा नास्तीति च चतुर्थो गुणः । अथ च किञ्च मे मम भ्रातरो मरतादय.

कामना हो सकती है ? जिसके लिये वे ऐसा बुरा कार्य करेंगी ॥ १३ ॥

काञ्चुकी—कुमार, स्वभावतः मारी गई नारीबुद्धि पर अपने सीधेपन का
आरोप न करें । उसीके रोकने से तो आपका अभिषेक होते-होते रूक गया ।

राम—आर्य, इसमें अवश्य बहुत-सी भलाइयाँ हैं ।

काञ्चुकी—सो कैसे ?

महाराजका वन जाना रूक गया, मैं पिता की छत्र-छाया में बाल की तरह रह

नचनृपतिपिमर्शं नास्ति शङ्का प्रजाना-

मथ च न परिभोगैर्वञ्चिता भ्रातरो मे ॥ १४ ॥

काञ्चुकीय—अथ च तथाऽनाहृतोपसृतया भरतोऽभिपिच्यतां राज्य इत्युक्तम् । अत्राप्यलोभः ?

राम—आर्य ! भवान् रत्नरश्मत्पक्षपातादेव नार्यभवेक्षते । कुतः,

परिभोगं. राजकुमारतादशालग्न्यैर्मोग्यानुभवै. वञ्चिता रंहिता न भवन्तीति पञ्चमी गुण. । अयमाशयः—राज्याभियेके प्रतिबध्यमाने आपाततोऽध्यवसितविधातलक्षणो दोषोऽवसोपने, पर यद्यह राजा न क्रियेय, महाराज एव यथापूर्वं राज्यधुरा दधीत, अस्यामवस्थाया पञ्च गुणा.—राजा वनगमनकलेशाधिवारितो भवति इत्येकः, मन विमृपादकहरतरुच्छयावाप्तमुखसौलभ्यमिति द्वितीयः, राज्यभारानधिगत्या ययामुख्यमिति म्वास्थावाप्तिश्च ममेति तृतीयः, प्रजाना नवनिर्वाचितोऽयं राजाऽसाधु साधु वा स्व कर्तव्य पालयेदिति कातरभावेन चिन्तनाङ्गुक्तिरिति चतुर्थं, पितृपादेपु शासनधिहितेषु तत्पुत्रतया समेऽपि राजकुमारा असाधारणमुखनाजः, भ्रातरि मयि तथाभूतं तु स्वभागनात्राधिकारशालिनस्ते स्पृरिति पञ्चमो गुणः । तदेवं मध्यमागवाऽध्यवसायो गुणगुम्भित इति । गणपतिशास्त्रिनरतु धरमधरणस्य 'भ्रातरो भरतादयः परिमानैर्महाजनादमात्रलग्न्यैर्मोग्यानुभवैः वञ्चिता अकृतसविनागा न भवन्तीति । मे यथा तृतीयाथेऽध्यवसिदम्' इत्यर्थमाहुः । मालिनीवृत्तम्—'ननमपययुत्तैय मालिनी भोगिलोकै' इति सलक्षणम् ॥ १४ ॥

न केवलमेतावदेव तयोपद्रुतं, यत्वं राज्यानिवर्चितं, इत्य हि सति कदाचि-
एवदुक्तदिशा तदलोभताऽपि समर्थिता सति चेतसि पदमादध्यात्, किन्तु लोभादृष्ट-
चेतस्कतया भरताभियेकमपि याचितो महाराज इत्याह—अथ चेति ।

अस्मत्पक्षपातात् अम्मामु स्नेहातिशयात् । अर्थं वस्तुतत्त्वं, नावेद्यते न गणयति
स्वोक्ताथेऽप्युपानस्य काञ्चुकीयस्य रामपक्षपातादेव वस्तुतत्त्वानवबोधो रामाशयः ।

गया, प्रजाभोका 'नया राजा कैसा होगा ? इस आशङ्का से पिण्ड छूटा और मेरे
माई भी राज्यमुखोपभोग से वञ्चित नहीं हुए ॥ १४ ॥

काञ्चुकी—इस पर भी उसने बिना बुलाए ही महाराज के पास जाकर 'भरत
को राजतिलक हो, ऐसा कहा, क्या इसमें भी उसका लोभ नहीं झलकता ?

राम—आर्य, हमारी ओर अधिक प्रकाय होने के कारण आप वास्तविकता
की ओर नहीं देखते । क्योंकि,

शुल्के विपणितं राज्यं पुत्रार्थं यदि याच्यते ।

तस्य लोभोऽत्र नास्माकं भ्रातराज्यापहारिणाम् ॥ १५ ॥

काञ्चुकीय.—अथ ।

रामः—अतः परं न मातुः परिवादं श्रोतुमिच्छामि । महाराजस्य
वृत्तान्तस्तावदभिधीयताम् ।

काञ्चुकीय—ततस्तदानीम्,

शोकादवचनाद् राज्ञा हरतेनैव विसर्जितः ।

कैकेय्या बलोमतामेव समर्थयति—शुल्के इति । शुल्के विवाहसमये कन्यादेये विपणित विधेयेण पणीकृत सम्भावित राज्यं पुत्रार्थं यस्याः पाणिग्रहणावसर एव 'योऽस्याः पुत्रो भवेत् स एव राज्यमधिकुर्यादि' ति पणः कृतस्तदीरसपुत्रवृत्ते यदि राज्यं याच्यते प्राथ्यन्ति, अत्र पूर्वपणीकृतराज्ययाचने तस्या मध्यमाम्बाया लोभा अविवेककारित्वम्, भ्रातराज्यापहारिणां भ्रातुर्भरतस्य राज्य पित्रा पणीकृत्य दातुं प्रतिज्ञात ततश्चैव स्वभूत हतुं स्वायत्तीकतुं शीलं येषा तेषा परराज्यगृह्णना न. अस्माक लोभो न समर्थ्यते प्रतिपाद्यत इति आर्यस्थ पक्षपातमेवास्मासु विजृम्भमाणमुत्प्रेक्षामहे कारणमिति भाव ॥ १५ ॥

कैकेय्या दोषान्तरमभिधातुमुपक्रमते—अथेति ।

अत परमिति—दोषान्तरमभिधानाय यतमानं काञ्चुकीयं निवारयितुमिच्छामि न श्रोतुमिच्छामीति । गुरुजनपरिवादध्वषणस्यावर्जनकत्वस्य स्मृत्युक्तत्वादिति । तत इति—ततो भरतामपेकप्रार्थनानन्तरम्, तदानीम् इत्युक्तान्वयि ।

शोकादिति—राज्ञा महाराजदशरथेन शोकात् कैकेयीयाचनजनित्वाद् विषादात् अवचनात् वचनं विनैव किमप्यनुक्तवैत्यर्थं । एत्र कारणं च शोकाभिभूतत्वम् ।

विवाहावसर मे प्रतिज्ञात राज्यं यदि पुत्र के लिये मांगा जाता है तो इसमें उसका लोभ है, और भाई के राज्याधिकार के हरण करने वाले हम लोगों की निलोभता ही रही ॥ १५ ॥

काञ्चुकी—और—

राम—इससे अधिक और माँ की निन्दा नहीं सुनना चाहता हूँ । पहले महाराज का समाचार बताइए ।

काञ्चुकी—तब उसी समय—

शोक के कारण महाराज ने मौन हो, हाथ के इशारों से ही मुझे कैकेयीके विचार

किमप्यभिमतं मन्ये मोहं च नृपतिर्गतः ॥ १६ ॥

राम.—कथं मोहमुपगतः ?

(नेपथ्ये)

कथं कथं मोहमुपगत इति ?

यदि न सहसे राक्षो मोहं घनुः स्पृश मा दया

रामः—(आकर्ष्यं पुरतो विलोक्य)

अक्षोभ्यः क्षोभितः केन लक्ष्मणो धैर्यसागरः ।

हस्तेन गद्गदकण्ठतया विसृज्यतया च करचेष्टयैव (अहम्) विसृजितः, गच्छ कर्केयोचरितं राममद्राय आस्थाहीति गन्तुमनुजात । न केवल वाक्शक्तिविरह एव राज्ञ, किन्तु सर्वेन्द्रियलोपप्रभुर्मोहोऽपीत्याह—किमपीति । नृपतिः महाराजः किमप्यभिमतम् अमोहदशाया अपेक्षया किञ्चिद्विष्टत्वेन मन्यमानं मोह सर्वेन्द्रिय-संशालोप च गतः । अयमर्थ—एतादृशाप्रियोपनिपाते ससृजस्य हृदय शतघा दीर्येत्, विसंज्ञमात्रेण स्थितस्य तु न सदवसर इति ज्ञानावस्थापेक्षया मोहावस्थायामा मनागि-ष्टत्वमवसेयम्, तथा च प्रमुक्त कार्लिदासेन—‘सा मुक्तसज्ञा न विवेद दु ख प्रत्यागतासु. समतप्यतान्त । तस्या मुमित्रात्मजयत्नलब्धो मोहादभूत् कष्टतरः प्रबोधः’ इति ॥

कथमिति—कथं मोहमुपगत केन कारणेन विसृजोऽभवत् । मदभिपेक्षप्रति-घातस्य त मोहयितुमसामर्थ्यात्, ‘न हि तापयितु शक्य सागराम्मस्तृणोत्वया’ इति न्यायात् । अतिधीरत्वाभिमानवृत्तेरयमुक्तिः ।

अक्षोभ्य इति—धैर्यसागर गाम्भीर्ययोनिधि (कोपयितुमशक्य) लक्ष्मण. सोभित्ति केन कारणोभूतेन वस्तुना जनेन वा क्षोभित’ रोपमुपगमित । येन लक्ष्मणेन कष्टेन कुपितेन तिष्ठता अयत्न पुर प्रदेशम्, शताकीर्णम्, जनशतपरीतमिव

से आपको अवगत कराने के लिये भेजा और स्वयं मूर्छित हो गये । इस कारण दु ख की अवस्थामें होश से रहने की अपेक्षा मूर्छित हो जाना ही उन्होंने भला समझा ॥

सीता—क्यों मूर्छित हो गये ?

(नेपथ्य में)

यह क्यों—क्यों मूर्छित हो गये ?

यदि राजा की मूर्छितावस्था असह्य है तो घनुष धारण कीजिये, दया का समय नहीं है ।

राम—(सुनकर और सामने देखकर) अतिप्रदान्त धैर्यसागर इस लक्ष्मण को

येन रुष्टेन पश्यामि शताकीर्णमिवाग्रतः ॥ १७ ॥
(तत प्रविशति धनुर्बाणपाणिर्लक्ष्मण)

लक्ष्मण — (सक्रोधम्) कथ कथ मोहमुपगत इति ।

यदि न सहसे राज्ञो मोह धनुः स्पृश मा दया
स्वजननिभृतः सर्वोऽप्येवं मृदुः परिभूयते ।

अथ न रुचित मुञ्च त्वं मामहं कृतनिश्चयो

युवतिरहितं लोक कर्तुं यतश्छलिता वयम् ॥ १८ ॥

पश्यामि एवोऽपि क्षुभितो लक्ष्मण कोपकुटिलभ्रुकुटि शतजनसम्बाधमिवाग्रत
प्रदेशे कर्तव्यं ॥ १७ ॥

यदि न सहसे इति—यदि राज्ञ तातस्य महाराजस्य मोह विसंज्ञभावेनाव-
धानम्, न सहसे न मयसि, प्रतिचिकिर्षसि चेत्, धनुः स्पृश चापमास्फाल्य,
मोहहेतुजने चाप व्यापारयेत्यर्थः । दया, तितिक्षा मा न कर्तव्येत्यर्थः । तत्र कारण-
माह—स्वजनेति । स्वजने (अपकारपरायणोऽपि) निजे परिजने निभृत क्षमाशील
मृदु क्षीतलस्वभाव सर्वोऽपि (भवद्विषोऽखिलोऽपि जन) परिभूयते सर्वेषां तिर-
स्कारस्य पात्रत्वमुपयातीति भावः । अथ न रुचित स्वजनविषये स्वयं धनुरादान
नेच्छसि चेत् (अलं तथा कृत्वा, त्वयि धनुरास्फालयति साध्यस्य कार्यस्य मयापि
साध्यत्वादिति मनसिकृत्यऽहं) माम् लक्ष्मण मुञ्च स्वविचारमनुसृत्य व्यवहर्तुं स्वतन्त्र
कुरुष्वेत्यर्थः । अनुज्ञातस्य स्वस्य वृत्तं व्यमाह—अहमिति । अहं लोक ससारम्,
युवतिरहितं युवतिजात्या विरहितं कर्तुं कृतनिश्चय निर्धारितमिति कृतप्रतिज्ञ इत्यर्थः ।
युवतिविषयकस्य स्वप्रद्वेषस्य कारणमभिधातुमाह—यत इति । यत यस्मात् कार-
णात् वयं छलिता वञ्चिता राज्याद् भ्रशिता इत्यर्थः । युवत्या हि कञ्चयेया स्वयौव-
नन राजानं प्रलोभ्य स्वहावभावादिभिराकृष्य च वयं राज्याद् भ्रशिता, अतोयुवति-

किसने उभाड दिया ? इस अकेले लक्ष्मण के क्रोधित होने से मैं अपने आगे जन
समूह-सा देख रहा हूँ ॥ १७ ॥

(हाथ में धनुष बाण लिये लक्ष्मण का प्रवेश)

लक्ष्मण—(क्रोध से) यह 'क्यों क्यों मूर्छित हो गये' ।

यदि महाराज की मूर्च्छितावस्था सहा न हो धनुष बाण सभाले । यह दया का
अवसर नहीं है । स्वजन के लिये शान्तिप्रवीण जनो का इसी भाँति अनादर हुआ
फरता है । यदि स्वजनो के ऊपर धनुष उठाने का आपका विचार न हो तो मुझे तो

सीता—आर्यपुत्र ! रोदितव्ये काले सौमित्रिणा धनुर्गृहीतम् । अपूर्वः
अव्युत्त ! रोदिद्व्ये काले सौमित्रिणा धनु गृहीदं । अपूर्वो
खल्वस्यायासः ।

धनु से आआसो ।

राम —सुमित्रामातः ! किमिदम् ?

लक्ष्मण —कथं कथं किमिदम् ?

क्रमप्राप्ते हते राज्ये भुवि शोच्यासने नृपे ।

जातिरवास्माभ्वपराधिनीति तद्विध्वसोपाय प्रवर्तितुमिच्छामि, केवल त्वदादेशमात्र
प्रतीक्ष इति तदाशय । कृतापकारे दण्डविधया क्रियमाणस्थापकारस्यानिविदत्वादि-
यमनुज्ञायाचना । हरिणोवृत्तम्, तल्लक्षण यथा—'नसमरसला ग पडवैदह्यैर्हरिणो
मता इति ॥ १८ ॥

अव्युत्त इति—रोदितव्ये रोदनायोपस्थिते । 'शुद्धमग्निमिति रोदितव्यः'
इत्यधिकरणे तव्यद् बाहुलकात् । अरय लक्ष्मणस्य, आयास खेद, अपूर्व, अदृष्ट-
पूर्वप्रकारक, शोकप्रवाशनावसरे कोपाविष्कारस्यायुक्तत्वेनेत्यमुक्तिः ।

सुमित्रामातरिति—सुमित्रा माता यस्य तत्सम्बुद्धौ तथा । मातृगुणवत्तया
गुणवत्त्वमशसमानामा इदं सम्बोधनम् । यद्यप्यत्र 'नयुतश्चे'ति कप् प्राप्नोति,
तथापि 'मातृवमातृकमातृपु' इत्यत्र मातृशब्दे परतो बहुव्रीहौ व्यङ्ग्य सम्प्रसारण-
विकल्पविधायके मातृशब्ददशनात् कपा वैकल्पिकत्व कल्पयित्त्वेदं निर्वाह्यम् ।
किमिदम् अक्लाब्दे मरम्भस्य विमुपस्थित कारणमिति ।

कथं कथमिति अधुनाऽपि किमिदमिति प्रश्नस्यावसरमसहमान लक्ष्मणस्त्वयाह ।

क्रमप्राप्ते इति—क्रमप्राप्ते न्यायनत्वदासाद्यभावेनोपस्थिते राज्ये हते बला-

छोड़ दें, (यह सहने के योग्य बाल नहीं है कि) एक युवती—स्वामी को सुट्टी
में करके हम सभी को छः से परास्त कर दे, अतः मेने सम्पूर्ण विश्व को युवति
दान्य कर देने का निश्चय कर लिया है ॥ १८ ॥

सीता—आर्यपुत्र, लक्ष्मण ने रोने के अवसर पर धनुष उठाया है । इनका
इतना शोच तो कभी नहीं देखा गया ।

राम—सुमित्रानन्दन, यह क्या ?

लक्ष्मण—क्यों, क्या अब भी पूछ रहे हैं कि यह क्या ?

वशपरम्परा से प्राप्त राज्य छिन गया, महाराज भूचिर्दंत दशा में भूमि पर लोटते

इदानीमपि सन्देहः किं क्षमा निर्मनस्विता ? ॥ १६ ॥

राम — सुमित्रामातः ! अस्मद्राज्यभ्रंशो भवत उद्योगं जनयति ।

आः, अपण्डितः खलु भवान् ।

भरतो वा भवेद् राजा वयं वा ननु तत् समम् ।

यदि तेऽस्ति धनुःश्लाघा स राजा परिपाल्यताम् ॥ २० ॥

लक्ष्मण — न शक्नोमि रोप धारयितुम् । भवतु भवतु । गच्छाम-
स्तावत् । (प्रस्थित)

दपहते सति नृपे महाराजदशरथे च भुवि घरिन्त्याम् । (न तु पर्यङ्के) शोव्यासने
दुःखासिकायाम् (न तु सुखशयनीये) सति इदानीमपि अस्यामपि स्थितौ तदप-
कारिताया प्रकट प्रतीतायामपीत्यर्थं, सन्देह — प्रतिक्रियाविधाननिश्चयाभाव
(किमिदमित्यादिवचनेनोद्दिष्टम्) नव किं क्षमा सहनशीलता, निर्मनस्विता मन-
स्वितात्रिरहो वेति (न जाने इति भाव) एतादृश्यमपि तस्या अपकारिताया
प्रकट प्रतीतायामपि तव कर्तव्यमानवधारणस्वरूप सन्देह क्षमाया गौरवभावना-
शून्यतया वा प्रसूत इति न निर्णेतु शक्नोमोति तात्पर्यम् ॥ १९ ॥

उद्योगम्—युद्धसन्नाहम्, अपण्डित विवेकविधुर, मयि राज्यासनात् पातिते
त्व युद्धाय सन्नद्ध इति तत्रात्रिवेक एवेत्यर्थं ।

भरतो वेति — भरतो वा राजा भवेत् वयं वा राजानो भवेम, तदन्यतरा-
मिषेचन ननु सम तव विषये तुल्यम् औदासीन्येनावस्थानस्यैव प्रवृत्तकमिति
भाव । यदि ते धनुःश्लाघा धनुर्वरत्वमवं (अस्ति) तदा स नवामिपिक्तः
राजा भरत परिपाल्यता सहायवत्वमासाद्यान्तरैभ्यो बाह्यैभ्यश्च विघ्नेभ्यो
रक्षयताम् । अत्र मद्रिपये दोषे त्वया चिन्ता मा कारीत्युक्तं वा रामस्यात्मनिर्भरता
व्यक्ता । अन्यतस्पष्टम् ॥ २० ॥

रोपमिति—रोप कोपवेग धारयितु नियन्तु न शक्नोमि न क्षमे, तदत्रस्थित्वा-

हैं, बयो, अब भी आपको सदेह है ? क्षमा आत्मगौरवशून्यता को तो नहीं कहते।

राम—सुमित्रानन्दन, हमारी राज्यच्युति तुम्हें इतना उत्तेजित कर रही है,
खेद ! तुम इतने अर्धर हो ।

चाहे भरत को राज्य मिले या राम को तुम्हारे लिए तो दोनों बातें एक सी हैं।
हाँ, यदि तुम्हें अपने धनुषपर अभिमान है तो जाओ, राजा भरतकी सहायता करो।

लक्ष्मण—मैं रोप को रोक नहीं सकता, अच्छा जाता है । (प्रस्थान)

राम.—शैलोपर्यं दग्धुकामेव ललाटपुटसंस्थिता ।
भ्रुकुटिलक्ष्मणस्यैवा वियतीव व्यस्थिता ॥ २१ ॥
मुमित्रामातः ! इतस्तावत् ।

लक्ष्मण —आर्य ! अयमस्मि ।

राम —भवतः स्थैर्यमुत्पादयता । मयैवमभिहितम् ।

ताते धनुनं मयि सत्यमवेक्षमाणे

मुञ्चानि मातरि शरं स्वधनं हरन्त्याम् ।

ऽङ्कम्, अन्यथा तदावेशवशात् कदाचिदवाच्यमुच्येत अकार्यं वा क्रियेत, वरमत इतः न्यानादन्यत्र गन्तुमिति प्रकरणाद्यः ।

शैलोपर्यामिति—प्रथो लोका एव शैलोक्यम् चातुर्वर्णादित्वात् स्वार्थे व्यञ् । तत् भुवनत्रयम् दग्धु कामो यस्याः सा दग्धुकामा द्विषक्षन्तीव ललाट-पुटसंस्थिता कपालदेशेऽवस्थापिता एषा प्रत्यक्षदृश्या लक्ष्मणस्य भ्रुकुटि वक्रामृता कोपव्यञ्जिका झूलता वियति व्योमनि इव व्यवस्थिता । कोपतिरेकेण लक्ष्मण-स्योर्ध्ववद्ववद्भ्रुकुटितया दग्धुर्गैराकाशावस्थितमुत्प्रेक्षते । 'नियतीव' इति पाठे नियति नाम्यरेमेवेत्यर्थः । अतः पाठेऽर्थसामञ्जस्येऽपि ङीष्मिद्वये क्षिजन्तवादि-वमनुसरणीयम् । तच्चागतिकगतिभूतमिति सुधियो विभावयन्तु ॥ २१ ॥

स्थैर्यम्—चित्तविक्रियोपरमम् उत्पादयता जनयता स्वा शान्तयतेत्यर्थः । उच्यताम् इदानीं शान्तचित्तेन भवता मत्प्रश्नोत्तरमभिधीयताम् ।

तात इति । मयि स्वविधेय मल्लक्षणे जने मामवलम्ब्येत्यर्थः । सत्य स्वप्रति-श्रुतमरताभियेकान्यथाभावम् अवेक्षमाणे प्रतीक्षमाणे ताते धनुनं चापावसर एव नास्ति । किञ्च स्वधनं विवाहावसरप्रतिश्रुतं लभ्यतया निश्चित स्वधनं राज्यरूपं

राम—त्रिभुवन को भस्म करने के लिए उद्यत लक्ष्मण की भ्रुकुटि विधाता की इच्छा की तरह अटल मालूम पड़ रही है ॥ २१ ॥

मुमित्रानन्दनं जरा इधर तो आना ।

लक्ष्मण—आर्य, यह आया ।

राम—तुम्हें शान्त करने के उद्देश्यसे ही मैंने वैसा कहा है, अब तुम्हीं बताओ-क्यों पिता पर धनुष उठाया जाय जो अपनी प्रतिज्ञा का पालन कर रहे हैं, या माता पर प्रहार किया जाय जो पूर्व-प्रतिज्ञात अपना त्रिजह शूलक माँग रही है,

दोषेषु बाह्यमनुजं भरतं हनानि

किं रोपणाय रुचिरं त्रिषु पातकेषु ॥ २२ ॥

लक्ष्मणः—(सबाष्पम्) हा धिक् ! अस्मान् अविज्ञायोपालभसे ।

यत्कृते महति क्लेशे राज्ये मे न मनोरथः ।

वर्षाणि किल वस्तव्यं चतुर्दश वने त्वया ॥ २३ ॥

हरन्त्या मातरि कैकेय्या पारं मुञ्चानि चालयानि ? नैतदप्युपयुज्यते । दोषेषु एषु मद्राज्यप्राप्तिप्रतिबन्धकीभूतव्यापारकलापेषु बाह्यं पृथग्भूत हनानि मारयाणि, नैतदपि युक्तं, तस्य सर्वथा दोषरहितत्वात् । अस्या स्थितौ एषु त्रिषु पातकेषु पितृ-मातृभ्रातृवधाख्येषु महापापेषु रोपणाय कोपकलुपाय तुभ्यं किं कतमतः पातकं रुचिरं रुचिप्रदं रोचत इत्यर्थः । स्वजनोऽप्यपकुर्वन् हन्तव्य इति हि त्वदभिप्रायः । न चान्न गहितकर्मणि कस्यापि स्वजनस्यापराधं निर्णेतुमीशी, तातस्य स्ववचोरक्षा-व्रतपरायणत्वात्, मातुर्मध्यमायाः स्ववनप्राप्तिप्रवृत्तत्वात्, मम भ्रातुर्भरतस्यैभिर्व्या-पारकलुपपङ्कैरलिप्तत्वादतोऽत्र निरपराधप्रियपरिजनत्रयमध्ये कस्य वधो मया क्रियमाणस्त्वव्याऽभिप्रेयत इति रामाशयः । वसन्ततिलक वृत्तम्, लक्षणं पूर्वमुक्तम् ॥

हा विगिति—रुष्टमित्यर्थः, अविज्ञाय ज्ञातव्यमर्थमविज्ञाय । उपालभसे तिरस्करोपि । ज्ञाने वृत्तान्ते तथापि ममेव व्यग्रा चित्तवृत्तिर्भवेदित्यर्थः ।

तद्वस्तुतस्त्वमेवाह—यत्कृत इति । यत्कृते येनार्थेण जनिते महति दुरन्ते क्लेशे खेदे, मनसाऽध्यायमान इति शेषः । मे मम राज्ये राजपदे मनोरथः अभिलाषो न । तमेव क्लेशमविज्ञाय त्वं मामुपालभस इत्यर्थः । क्लेशमाह—वर्षा-णीति । त्वया रामेण चतुर्दशवर्षाणि वने वस्तव्यं स्थातव्यम्, इति । चतुर्दशव-र्षाणीत्यत्रात्यन्तसयोगे द्वितीया । न हि केवलं दुराणयया कैकेय्या भरताभिपेक-मात्रेण तृप्तं, किन्तु तव वनवासोऽपि तथा वृत्त इति भावः । चरमश्चायं वरो मर्भवेद्यी येनाहं पूर्वप्रकारेण वक्तुं बाधित इति सरलायं ॥ २३ ॥

अथवा अत्यन्त निर्दोष भरत को मारा जाय ? पितृवध, मातृवध और यन्धुवध; इन तीनों पातकों में कौन-सा पातक तुम्हारे रोप को अभिमत है ? ॥ २२ ॥

लक्ष्मण—(रोकर) रोद है, आप बिना जाने हमें उलाहना दे रहे हैं ।

मुझे राज्य की अभिलाषा नहीं है, किन्तु जिस बात पर मुझे इतना खेद हुआ यह यह है कि—आपको चौदह वर्ष तक वन में रहना होगा ॥ २३ ॥

राम.—अत्र मोहमुपगतस्तत्रभवान् ? हन्त ! निवेदितमप्रभुत्वम् ।
मैथिलि !

मङ्गलार्थेऽनया दत्तान् घटकलांस्तावदानय ।

करोम्यन्यैर्नृपैर्धर्मं नैवाप्त नोपपादितम् ॥ २४ ॥

सीता—गृह्णात्वार्यपुत्रः ।

गृह्णादु अद्यदत्तो ।

राम —मैथिलि ! किं व्यवसितम् ?

सीता—ननु सहधर्मचारिणी गन्त्वदम् ।

ण सहधर्मचारिणी क्नु अह ।

तत्र भवान् पूज्यस्तात । अत्र मदनवासलक्षणे विषयः । हन्त क्षेदे, अप्रभुत्वम् विपदुपनिपातसहभामाप्यर्थम् । निवेदित प्रकटीकृतम् । मया सुख साधयितुं योग्य कार्यं तातस्य तादृशी दद्यात् तत्पक्षे नितरामदुक्तेति भावः ।

श्वभरप्राप्त वत्तंध्यमादिगति-मङ्गलार्थे इति । अनया अवदातिकाभिन्ना-नया तव चेष्टया दत्तान् वत्कलान् तदवच्छिन्पिताति वमनानि मङ्गलार्थे मङ्गलमय-पित्राज्ञापालनात्मवचनवामापयोगिवन्कार्यम् आनय महमर्षय । वनवासस्य मङ्गल-मयतामेवोपपादयति परार्द्धेन-करोमीति । अन्यं मद्भिन्नै नृपै राजानि नैव आप्त दास्यभावे वत्तंध्यत्वेनाधिगत नापपादितम् तानुच्छित च । राजानो हि वार्द्धके पुत्रसमपितराज्यभारा मन् एव वनवामादसरमलभन्त ७थाऽऽवरत्र, प्रथमोऽप्रमवसरो यदहं बाल एव वनवामाय लङ्काश्वभरस्तथा कर्तुं यत् इति मङ्गलमयभावोक्त्य कर्मणस्तदागूनय मम वत्कलानीति रामस्वाशयः ॥ २४ ॥

व्यवसितम्—दृष्ट मयि वनाय चरिते स्वया किं चिकोपितमिति भावः ।

सहधर्मचारिणी—सहधर्मजुष्टानशीला । एतेन मयापि कृतव्यमिति व्यञ्जितम् ।

राम—क्या इसी बात पर महाराज मूर्च्छित हो गये ? अफसोस ! उन्होंने अपनी अधीरता व्यक्त की । मैथिलि,

इस समय उपस्थित इस मङ्गलमय कार्य के लिए मुझे अवदातिका द्वारा लाने गये वत्कल दे । उन्हें पहन कर मुझे ऐसा धर्म-कार्य करना है, जिसे किर्ता राजाओं ने नहीं किया ॥ २४ ॥

सीता—लीजिये आर्यपुत्र !

राम—मैथिलि, तुम्हारी क्या राय है ?

सीता—मैं तो आपकी सहधर्मचारिणी दूरी ।

राम—मयैकाकिना किल गन्तव्यम् ।

सीता—अतो न खल्वनुगच्छामि ?

अदो णु वखु अणुगच्छामि ।

राम—वने खलु वस्तव्यम् ।

सीता—तत् खलु मे प्रासादः ।

त वखु मे प्रासादो ।

राम—अश्रुश्रुश्रुश्रुपापि च ते निवर्तयितव्या ?

सीता—एनामुद्दिश्य देवताना प्रणामः क्रियते ।

ण उद्दिश्य देवदान प्रणामा करोअदि ।

राम—लक्ष्मण ! वार्यतामियम् ।

लक्ष्मण—आर्य ! नोत्सहे इलाधनीये काले वारयितुमत्रभवतीम् ।

कुतः—

एकाकिना सहायान्तररहितेन गुर्वाज्ञाया अक्षरशोऽर्थतोऽनुवृत्ती मम सहाय-
का-तररक्षण धमभ्युतिरतस्त्वया तथाऽऽग्रहो न कर्तव्य इति रामानिसपि ।

अतो नु खल्विति । असहायेन भवता गम्यतेऽत एव तु मया विशिष्य गन्तु
काम्यते, त्वत्सहायताया मद्दमत्वादिति ।

एता गुरुशुभ्रूपा, गुरुशुभ्रूपास्थाने वनदेवता प्रणम्य चेत सान्त्वयिष्यामि ।
अथवा मया पतिसहानुवृत्तिपरत-व्रतमा गृहेऽवस्थाय गुरुशुभ्रूपा विधातु नाशकीति
विवशाया त्वस्या अपराधमिम मपयितु देवता प्रणस्थानीति तदाशय ।

काले सीतायास्त्वदनुगमनाऽप्यवसायसमये ।

राम—मुझे तो अकेले वन जाना है ।

सीता—इसी से तो आपके साथ जाना है ।

राम—उहाँ तो वन म रहना होगा ।

सीता—वह वन मेरे लिये प्रासाद होगा ।

राम—सास ससुर की सेवा भी तो तैरा कर्त्तव्य है ।

सीता—इसके लिये मैं (सर्वसाक्षी) दबो की प्रणाम करती हूँ (कि वे
हमारी लाचारी देखें) ।

राम—लक्ष्मण, इसे वन जाने से रोको ।

लक्ष्मण—आर्य, ऐसे प्रशसनीय अवसर मे आर्या को रोकने का साहस नहीं
हो रहा है, क्योंकि—

अनुचरति शशाङ्कं राहुदोषेऽपि तारा

पतति च यनवृक्षे याति भूमिं लता च ।

त्यजति न च करेणुः पङ्कलग्नं गजेन्द्रं

मज्जतु चरतु धर्मं भर्तुं नाथा हि नार्यः ॥२५॥

(प्रविश्य)

चेटी—जयतु भट्टिनी । नेपथ्यपालिन्यार्यरेवा प्रणम्य विज्ञापयति—

जेदु भट्टिणी । जेवञ्चपालिणी अय्यरेवा पणमिअ विण्णवेदि—

अवदातिकया सङ्गीतशाला आच्छिद्य बलकला आनीता ।

ओदादिआव सङ्गीपमालादो आच्छिन्दिअ बक्कला आणोदा ।

अनुचरतीति । तारा चन्द्रमसो भार्या शशाङ्कं चन्द्रं राहुकृतोपरारोगेऽपि राहुप्रसनदशायामपीत्यर्थं, अनुचरति अनुगच्छति न तु स्वामिन विषदुपनिपतित त्यजति । किञ्च यनवृक्षे वये तरौ पतति (सति) लता बह्वरी च भूमिं याति-अधोदेशसयोगवती भवतीत्यर्थं । विद्य करेणुं हस्तिनी पङ्कलग्नं कर्दममग्नम्, गजेन्द्रं न त्यजति अनुयात्येव । एव देवभावमारभ्य तर्वादिभावपर्यन्त स्त्रीणा स्वनाथानुसरणस्य लक्ष्येषु भूमिष्ठ दृश्यमानत्वेन सोताया अपि त्वदनुवर्तनाप्यव-मायान्निवर्तनं न योग्यमित्यर्थं । सीताया, कर्तव्यनिर्णयमेव समर्थयति-मज्जतु स्वामनुवर्तताम् धर्मं पत्यनुवृत्तिलक्षणं सतीसमुदाचारं चरतु अनुतिष्ठतु । तमि-ममर्थमर्थान्तरन्यासेन पोषयति-मर्तुं नाथा हि नार्यं इति । नार्यं स्त्रियो मर्तुं नाथा स्वामिपरतन्त्रा, अतस्तासा तदनुवृत्तिस्तस्मिन्मुखदु क्षता च सदोचिनेति भावः । अत्र सामान्यन विज्ञेयसमर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासभेदः । हिशब्दोऽस्वार्थस्य प्रसिद्धता द्योतयति, शेष सुगमम् ॥ २५ ॥

विज्ञापयति सूचयति । आच्छिद्य बलादपहृत्य । अननुभूता अमिनवा अनुप-

राहुग्रहण के अवसर पर भी रोडिणी चन्द्रमा का साथ देती है, वृक्ष के धराशायी होने पर भी उसकी लतायें उससे लिपटी ही रहती हैं, गजराज के पङ्कपतित होने पर भी हस्तिनियों साथ नहीं छाहतीं (इसलिये) उन्हें भी बन जान दो, अपना धर्म निभाते दो । स्त्रियों के तो पति ही अवलम्ब होते हैं ॥२५॥

(चेटी का प्रवेश)

चेटी—जय हो महारानीजी की । नेपथ्यपालिका भार्या रेवा प्रणामपूर्वक निवेदन करती है कि अवदातिका सङ्गीतशाला से कुछ बक्कल स्वयं ही ले आयी

इमेऽपरा अननुभूता वल्कलाः । निर्वर्त्यतां तावत् किल
इमा अवरा अणणुदा वक्कला । णिव्वत्तीअदु दाव किल
प्रयोजनमिति ।

पञ्चोअण ति ।

रामः—भद्रे ! आनय, सन्तुष्टैषा । वयमर्थिनः ।

चेटी—गृह्णातु भर्ता । (तथा कृत्वा निष्क्रान्ता)

गल्लादु मट्टा ।

(रामो गृहीत्वा परिषते)

लक्ष्मणः—प्रसीदत्वार्थः ।

निर्योगाद् भूषणान्माल्यात् सर्वेभ्योऽर्घं प्रदाय मे ।

चिरमेकाकिना वद्धं चीरे खल्वसि मत्सरी ॥ २६ ॥

मुक्ताः । प्रयोजनम् उपयोगः । अनुष्ठीयता सम्पाद्यताम्, यथेच्छमुपयुज्यतामित्यर्थः ।

संतुष्टा पूर्वेत एव वल्कलपरिधानेन तृप्ता । एषा सीता । अयिनः वल्कलस्य
कृते वाचकाः, तथा मह्यं पानाणपयेति रामाशयः ।

रामेण वल्कले धार्यमाणे लक्ष्मणः स्वस्म रामानुगमनानिलापं व्यञ्जयन्नाह—
प्रसीदत्वार्थं इति ।

निर्योगादिति । निर्योगात् वल्कलञ्चुकादेराच्छादनोपयोगिवचनात्, भूष-
णात् कटककुण्डलादेरलङ्कारात्, माल्यात् पुष्पादित्थजः सर्वेभ्यो मे मह्यम् अर्घम्
समाशं प्रदाय दत्त्वा चौरं वल्कलम् (त्वया) एकाकिना मह्यमप्रदायैव वद्धं परि-
हितम् । बहुमूल्यवसनाभरणस्रगादीनां संविभागकरणे यत्स्वायंता दृष्टपूर्वा, चीरेण
तु अतिहीनमूल्यस्य सविभागे तत्र स्वार्थवृद्धिरुचितेत्याश्रयम्, इत्याह—चीरे
खल्वसि मत्सरीति । इदमेति मह्यं प्रदाय मामपि सह नयेति तदाशयः ॥२६॥

हे । (हो सकता है वे अच्छे नहीं हों) ये नये वल्कल है, इनसे अपना प्रयोजन
पूरा कीजिये ।

रामः—भद्रे, इधर जाना, इनका तो काम चल गया है, मुझको जरूरत है ।

चेटी—स्वामी ग्रहण करें । (वल्कल लेकर अस्थान)

(राम लेकर पहनते हैं)

लक्ष्मणः—आर्य, प्रसन्न हों । आज तक सभी तरह के वस्त्र, भूषण, माल्य-सर्मा
प्रकार की भोग्य वस्तुओं में आप मुझे आधा देते आये हैं, फिर इस वल्कल में
इतना जोश क्यों है कि इसे अकेले पहन रहे हैं ? ॥ २६ ॥

राम—मैथिलि ! धार्यतामयम् ।
 सीता—सौमित्रे ! निवर्त्यतां फ़िल ।
 सौमित्रे ! णिवसीप्रदु विल ।
 लक्ष्मण—आर्ये !

गुरोर्मे पादशुश्रूषां त्वमेका कर्तुं मिच्छसि ? ।
 तच्चैव वृत्तिणः पादो मम सख्यो भविष्यति ॥ २७ ॥

सीता—दयतां स्ववार्थपुत्रः । सतप्यते सौमित्रिः ।

दोऽप्रदु वनु अयउत्तो । सन्तपदि सौमित्री ।

राम—सौमित्रे ! श्रूयताम् । बल्कलानि नाम--

तपःसङ्ग्रामकषयं नियमद्विरदाडकुशः ।

निवर्त्यतां वनगमनाध्यवसायादिति दीप ।

गुरोर्मे इति । मे मम गुरो. पूजनोपरय ज्येष्ठभ्रातुः पादशुश्रूषाम् चरण-
 सहाहनादिपरिचर्याम् स्वम् एका सहायान्तरनिरपेक्षा कर्तुं विधातुम् इच्छति ?
 स्वयमेवाकिन्ती मम पूज्यस्य चरणौ सेवितुं कामा स्वं माम् उत्सवार्थावसारलामनो
 वञ्चयतीति तत्र नोचितमित्यर्थः । अथ तत्र महान्नाऽप्रहस्तहि तदीयं दक्षिणं पादं
 परिवार, मम कृते मध्यमेव तदीय पादं विमृज । एवमपि मया तत्पादपरिचर्या-
 वसरो गौणभावेनापि लब्धो भवेदित्यर्थः ॥ २७ ॥

तपःसङ्ग्रामेति । बल्कलानि नाम तप एव संग्रामः युद्धम् तत्र कथञ्च वनं
 युद्धे घर्तन्व्यतया प्रसिद्धम् । (तान्येव बल्कलानि) नियमो व्रतमेव द्विरदो गज तस्य

राम—मैथिलि, इत्से मना करो ।

सीता—लक्ष्मण, रहने दो ।

लक्ष्मण—आर्ये,

मेरे पूज्य राम की चरणशुश्रूषा तुम अकेले करना चाहती हो ? । भगवत्
 दक्षिण चरण पर तुम्हारा ही एकाधिपत्य रहेगा मैं याम चरण की ही सेवा करके
 अपना जीवन सार्थक समझ लूंगा ॥ २७ ॥

सीता—आर्यपुत्र, आप दिया करें, लक्ष्मण को (रोकने में) कष्ट होता है ।

राम—लक्ष्मण, यह बलकल—

तपस्वरूप संग्राम में कषय, संयमरूप हाथी के घसींकरण में अंकुश, इन्द्रिय-

चीरमात्रोत्तरीयाणां किं दृश्य वनवासिनाम् ?

राम —

गतेष्वस्मासु राजा नः शिरःस्थानानि पश्यतु ॥ ३१ ॥

(इति निष्कान्ता सर्वे)

॥ इति प्रथमोऽङ्कः ॥

द्वितीयोऽङ्कः

(उक्त प्रविशति कञ्चुकीम्)

कञ्चुकीय — भो भोः प्रतिहारव्यापृताः ! स्वेषु स्वेषु स्थानेष्वप्रमत्ता भवन्तु भवन्तः ।

(प्रविश्य)

चीरमात्रेति—चीरमात्रमुत्तरीय येषाम्ने चीरमात्रोत्तरीया वल्कलमात्रोत्तरीयवचना (न तु पाताम्बरपरिधाना) तेषां वनवासिनां किं दृश्य न किमपीत्यर्थः । तेन च राज्ञ आगमनस्य तत्प्रतीक्षार्थमवस्थानस्य चानावस्मत्त्वमुक्तम् । अस्मासु गतेषु अप्रतीक्ष्य राजानं वन प्रस्थितेषु राजा दशरथ नोऽस्माकं शिरःस्थानानि प्रधानवासस्थानानि विलोकयतु । अस्मदभ्युपितानि स्थानानि विलोकयात्मानं सान्त्वयत्वित्यर्थः ॥ ३१ ॥

इति मैथिलपण्डित श्रीरामचन्द्रमिश्रकृते प्रतिमानाटक-प्रकाशे प्रथमोऽङ्कः ।

प्रतीति—प्रतीहारव्यापृता प्रतीहार द्वारदेशे व्यापृता निमुक्ता, अप्रमत्ता सावधाना ।

चीरमात्रपरिधानं ह्यनं वनवासियो को देख कर क्या करेंगे ?

राम—हमारे चले जाने पर महाराज हमारे प्रधान निवासस्थानों को देखा करेंगे ॥ ३१ ॥

(सब का प्रस्थान)

प्रथम अङ्क समाप्त ।

(कञ्चुकी का प्रवेश)

कञ्चुकी—ये द्वारपालों, आप अपने स्थानों पर सावधान रहें ।

(प्रतिहारी का प्रवेश)

प्रतीहारी—हा हा एवंगतो महाराजः ?

हा हा एव्वगओ महाराओ ?

कञ्चुकीय.—भवति ! गच्छ ।

प्रतीहारी—आर्य ! तथा ।

अय्य ! तथा । (निष्क्रान्ता) .

कञ्चुकीय —(सर्वतो विलोक्य) अहो नु खलु रामनिर्गमनदिनादारभ्य
शून्यैवेयमयोध्या संलक्ष्यते कुतः—

नागेन्द्रा यवसाभिलापविमुखाः सास्त्रेक्षणा वाजिनो

होपाशून्यमुखाः सवृद्धवनितावालाश्च पौरा जनाः ।

त्यक्ताहारकथाः सुदीनवदनाः क्रन्दन्त उच्चैर्दिशा

रामो याति यया सदारसहजस्तामेष पश्यन्त्यमी ॥ २ ॥

एवमिति एवगतः ईदृग्दशत्वमुपगत ।

अहो इति—‘अहो नु खलु’ पदसमुदायोऽयं खेदमाह ।

शून्यत्वमेवोपपादयति—नागेन्द्रा इति । नागेन्द्रा गजमुल्याः यवसाभिलाप-
विमुखा घासप्रासग्रहणपराङ्मुखा , वाजिनः अश्वाः सास्त्रेक्षणाः सास्त्रे सवाप्ये ईक्षणे
येषां ते तथोक्ता , वाजिनः न केवलं सास्त्रेक्षणाः किन्तु ह्योपाशून्यमुखा मूकाः ह्येषां
अश्वगद्वन्तद्रहिता इत्यर्थः । सवृद्धवनितावालाः वृद्धैर्वनिताभिर्वालैश्च सहिता पौरा
जनाः पूरवासिनः त्यक्तहरकथाः विसृष्टभोजनवार्ता सुदीनवदना अतिदीनमुखा
क्रन्दन्तश्च । सर्वेऽपीमे गजेन्द्रवाजिपौरजना अमी तामेव दिशं पश्यन्ति यया दिशा
सदारसहजः सीतालक्ष्मणान्यामनुयातो रामो याति एतेन तेषां तं प्रति गाढानुराग-

प्रतीहारी—हाय, महाराज की ऐसी दशा ?

कञ्चुकी—श्रीमती जी, आप जायें !

प्रतीहारी—जाता हैं ।

कञ्चुकी—(चारों ओर देखकर) जब से राम गये, तब से यह समूची
अयोध्या सूनी दीग्न रही है ? क्योंकि—

गजराजों ने चारा ग्वाना छोड़ दिया है साधुनयन घोडों ने हिनहिनाना बन्द
कर दिया है, नगरवासी बूढ़े, स्त्रियाँ, बच्चे, जवान—सबने भोजन की बात भुला
दी है और जोर से रोने से उनका चेहरा उतर गया है । राम, सीता और लक्ष्मण
जिधर गये हैं; सबकी आँखें टकटक उसी ओर लगी हैं ॥ २ ॥

यावद्दहमपि महाराजस्य समीपवर्ती भविष्यामि । (परिक्रम्यावलोक्य)
अये ! अयं महाराजो महादेव्या सुमित्रया च सुदुःसहमपि पुत्रविरह-
समुद्भवं शोकं निगृह्यात्मानमेव संस्थापयन्तीभ्यामन्वास्यमानस्तिष्ठति ।
कष्टा रत्नवस्था वर्तते । एष एष महाराजः—

पतत्युत्थाय चोत्थाय हा ह्येत्तुच्चेर्लपन् मुहुः ।

दिशं पश्यति तामेव यथा यातो रघूद्वहः ॥ ३ ॥

(निष्क्रान्तः)

मिश्रविष्कम्भकः ।

वत्ताऽभिहित्वा । आहारकथात्यागाभिधानेन पौराण विमनायमानतोक्ता । स्पष्ट-
मन्वत् । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्, पूर्वमुक्तञ्च तल्लक्षणम् ॥ २ ॥

महादेव्येति—महादेव्या कौसल्यया । मुदु सहम् अत्यन्तासह्यम् । संस्थापय-
न्तीभ्याम् आश्रासनादिना धारयन्तीभ्याम् ।

पततीति—हा हा इति मुहु उच्चेर्लपन् उच्चारयन् उत्थायोत्थाय पतति
उत्तिष्ठति पुनश्च भूमौ पततीत्यर्थं । तामेव दिशं च पश्यति, यथा दिशा रघूद्वहः
रघुर्वंशश्रेष्ठो यान इत्यर्थः ॥ ३ ॥

मिश्रविष्कम्भक इति—तल्लक्षणमुक्तं यथा—

‘वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथागानां निदर्शकं ।

सक्षेपायंस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजित ॥

अच्छा अर मैं भी महाराज के पास चलूँ, (घुमकर और देखकर) मैं ये ही
तो महाराज हैं, कौशलया और सुमित्रा अत्यन्त असहनीय पुत्रशोक को भी
किसी भाँति सहकर महाराज को आश्रासन देती हुई उनकी सेवा में लगी हैं ।
किसी दर्दनाक दशा है । यह महाराज—

उठते हैं, गिरते हैं, फिर उठते हैं, हाथ हाथ की रट लगाये हुये हैं, फिर
लहरावताने हैं और उसी ओर एकटक निहार रहे हैं, जिधर से राम लक्ष्मण वन
को गये हैं ॥ ३ ॥

(प्रस्थान)

(मिश्रविष्कम्भक)

(वर्णित रूप में राजा और देवियों का प्रवेश)

सूर्य इव गतो रामः सूर्यं दिवस इव लक्ष्मणोऽनुगतः ।

सूर्यदिवसावसाने छायेव न दृश्यते सीता ॥ ७ ॥

(ऊर्ध्वमवलम्ब्य) भोः कृतान्तहतक !

अनपत्या वयं रामः पुत्रोऽन्यस्य महीपतेः ।

सूर्यं इवेति—राम सूर्यं इव गत दृष्टवत्संवह्निभूत एतेन यस्य सूर्यस्यैव पुनरुदयसम्भावनोक्ता (तादृशमस्तगतम्) सूर्यमिव राम दिवस इव लक्ष्मणोऽनुगतः, यथास्तमित भास्वन्त दिवसोऽनुगच्छति तथा यत्र गत राम लक्ष्मणोऽनुगृत्वानिति विवक्षितोऽर्थः । सूर्यश्च दिवसश्चेति सूर्यदिवसो तयोरवसानेऽन्तर्धानं छायेव सीता न दृश्यते । अयमाशयः—यथा सूर्योऽस्तमिते दिवसोऽपसरति, तत्र चापसृजे छायाऽनुविनश्यति, तथैव रामे प्रस्थिते लक्ष्मणस्तन्नुगत तयोश्च प्रस्थाने छायेव सीता पृष्णपथमतीत्य स्थिताऽभूदिति । अनोपमात्रयम्, सूर्यं इव राम इति प्रथमा, दिवस इव लक्ष्मण इति द्वितीया, छायेव सीतेति तृतीया । तत्र रामस्य सूर्वोपमया प्रकाशातिशयेन प्रतापवत्ताऽऽधिक्यम्, तददर्शनस्य मोहसमयत्वम्, सकल्पायिव-रामश्चेत्यादयोऽर्था व्यक्ता । लक्ष्मणस्य च दिवसोपमया रामेण सम प्रमाणस्य स्वभावसिद्धत्वमावेदितम्, सीतायाश्छायोपमया च तस्या अतिशयितपरत्यनुवृत्ति-लक्षण चारित्र्य प्रकटीकृतम् । किञ्च सूर्यस्यास्तमितस्यापि यथा पुनरुदयस्तत्सम्बन्धेन च दिवसश्रियो यथा पुनरनुवृत्तिश्छायायाश्च पुनर्यथा गृहाङ्गणालङ्करणभावस्तथा तेषामपि पुनरावृत्तिरिति च सर्वत्र प्रतिपाद्यमिति ॥ ७ ॥

इतेति—कृतान्तहतक कालहतक, हतकपद निन्दाद्योत्तनार्थम् ।

कृतान्तहतक इत्युक्तं तत्र तस्य हतकत्वमकार्यकारित्वादिति, तदाह—अनपत्या इति । त्वया एतद् त्रयं किं कुत्रो न कृतम्, अवश्यकरणीयमिदं त्रयं कुत परित्यक्तं यतश्च परित्यक्तं ततस्त्व निन्द्य इति । तदेव त्रयं विजरोतुमाह—अनपत्या इति । वयमहमित्यर्थं, अनपत्या सन्तानरहिता रामस्तदाख्यं, अन्यस्य परस्य महीपते

सूर्य की भाँति राम चला गया, सूर्य के पीछे दिन की तरह लक्ष्मण भी चला गया । सूर्य और दिन के चले जाने पर छाया की तरह सीता भी नहीं दीख पड़ती ॥ ७ ॥

(ऊपर की ओर देखकर) अरे दुर्दैव—

(इससे अच्छा तो यही होता कि) तुम मुझे निस्सन्तान, राम को किसी दूसरे

वने व्याघ्री च कैकेयी त्वया किं न कृतं प्रथम् ? ॥ ८ ॥

कौसल्या—(सफटितम्) अलमिदानीं महाराजोऽतिमात्रं सन्तप्य पर-
अल दाणि महाराजो अदिमत्त सन्तप्यिञ्ज पर-
वशमात्मानं फर्तुम् । ननु सा तौ च कुमारी महाराजस्य
वसं अत्तार्णं वादुं । णं सा ते अ कुमारा महाराजस्य
समयावसाने प्रेक्षितव्या भविष्यन्ति ।

समयावसाने पेनिञ्जदव्वा भविस्सन्ति ।

राजा—का त्वं भो ?

कौसल्या—अस्तिगवपुत्रप्रसविनी खल्वहम् ।
अमिणिद्वपुत्तप्पमविणी सु अहम् ।

राज पुत्रः सुत इति, तथा वीरयो तदात्प्रा मत्त मध्यमा भार्या, वने अरण्ये व्याघ्री
व्याघ्रयोनिजाया; इति त्रयं कृतो न कृतमिति पूर्वोक्तान्वयः । अथमाशय - यदि वय-
मनपरयाः कृता अमविष्याम तर्हि गुणवत्तमपुत्रपरित्यागावसरलाभेन नानुत्सामेति,
रामस्य चान्यनृपतिकुमारत्वे पुत्रोचितलालनस्थाने वनवासदृष्टं नापनिष्यत् कैकेय्या-
स्त्वेदृशक्रूरसत्त्वायाः काननव्याघ्रीभाव एवोचित इति अथमप्याशंसनमुपपन्नमेव ।
स्वप्नमभ्यत् ॥ ८ ॥

समयावसाने समयस्य चतुर्दशवर्षात्मकस्य वनवासावधेरवसाने समाप्ती,
प्रेक्षितव्याः आलोकनीयाः ।

का त्वमिति—त्रयोपशतदृष्टितया रामादिविरहजनिताश्रुपूर्णलोचनतया वा
राज्ञः समीपगन्धेऽपि जने तथा प्रदने ।

अस्तिगवेति—अस्तिगवः, स्नेहयूयः, तत्त्वञ्च यद्वदो जननीजनकौ परित्यज्य वनग-
मनादुपपद्यते । अथवा राज्ञा वनवासज्ञापदानात्सदप्रतीतिपात्रत्वेनास्तिगवत्वमभिप्रेतम् ।

राजा का पुत्र और कैकेयी को वनव्याघ्री बनावे । फिर तुमने ये तीनों कार्य क्यों
न किये ? ॥ ८ ॥

कौसल्या—(रोती हुई) महाराज, अब अधिक खेद न करें, बहुत विलाप
करके अपना धीरज न खोवें । चौदह वर्षों के बीत जाने पर तो आप सीता और
राम लक्ष्मण को देखेंगे ही ।

राजा—तुम कौन हो ?

कौसल्या—मैं उसी अमिय पुत्र की जननी हूँ ।

राजा—कि कि 'सर्वाजनहृदयनयनाभिरामस्य रामस्य ; जननी त्वमसि कौसल्या ?

कौसल्या—महाराज ! मैव मन्दभागिनी खल्वहम् ।

महाराज ! सा एव मन्दमाङ्गी तु अहं ।

राजा—कौसल्ये ! सारवती खल्वसि । त्वया हि खलु रामो गर्भे धृतः ।

अहं हि दुःखमत्यन्तमसह्यं ज्वलनोपमम् ।

नैव सोढुं न संहर्तुं शक्नोमि मुपितेन्द्रियः ॥ ९ ॥

(सुमित्रा विलोक्य) इयमपरा का ?

कौसल्या—महाराज ! वत्सलक्ष्मण—(इत्यर्धोक्ते)

महाराज ! वच्छलनमण—

राजा—(सहस्रोत्थाय) कासी कासी लक्ष्मणः ? न दृश्यते । भोः कष्टम् ।

(देव्यौ ससभ्रममुरदाय राजानमवलम्ब्येते)

मन्दभागिनीति—मन्दभागिनी हतभाग्या, तत्त्व च पुत्रप्रवामक्लेशोपनिपातात् । सारवतीति—सारवती सार प्रशस्त वस्तु रामनामक तद्वती मनुष्यः सम्बन्ध, स चात्र जन्यजनकभावलक्षणो वेदितव्यः ।

अहमिति—अहं नितान्तमसह्यं सोढुमशक्यम्, ज्वलनोपमम् अग्नितुल्य तत्तुलना च मन्तापप्रदानात् । दुःखं प्रियतमपुत्रप्रवानात् समुत्पन्नं क्लेशम् नैव सोढुं मर्षयितुम् शक्नोमि; न संहर्तुं प्रतिक्रिययाऽपनेतुं शक्नोमि, तत्र कारणमाह—मुपितेन्द्रिय इति । मुपितानि, उपहतसामर्थ्यानि इन्द्रियाणि ज्ञानकर्माभ्येन्द्रियाणि यस्य तथाभूतः । इन्द्रियोपहतो परिच्छेदाभावेन सहनप्रतिकारयोश्मयोरक्षयसम्पादनत्वादिति भावः ॥ ९ ॥

राजा—क्या कहा ? तुम सर्वनयनाभिराम राम की माता कौसल्या हो ?

कौसल्या—हाँ महाराज, मैं वही अभागिनी हूँ ।

राजा—कौसल्या, नहीं तुम धन्य हो । तुमने तो राम को गर्भ में धारण किया । अभागिनी तो मैं हूँ, जो अग्नि के समान अत्यसह्य इस दुःख को न सह सकता हूँ और न दूर कर सकता हूँ । मेरे इन्द्रियगण शून्य हो गये हैं ॥ ९ ॥

(सुमित्रा की और देखकर) यह दूसरी कौन है ?

कौसल्या—महाराज, वत्स लक्ष्मण—

राजा—(सहसा उठकर) कहाँ है ? कहाँ है वह लक्ष्मण ? नहीं देखता है । बढ़ी तकलीफ है !

(दोनों रानियाँ हड़बड़ाकर उठती और राजा को संभालती हैं)

कीमत्या—महाराज ! वत्सलक्ष्मणस्य जननी मुमित्रेति वक्तुं मयो-
महाराज ! वत्सलक्ष्मणस्य जननी मुमित्रेति वक्तुं मय
प्रक्रान्तम् ।
उवहृन्दं ।

राजा—अपि मुमित्रे !

तयैव पुत्रः सत्पुत्रो येन नक्तन्दिग्धं वने ।

रामो रघुकुलश्रेष्ठश्चाययेवानुगम्यते ॥ १० ॥

(प्रविश्य)

कान्शुकीयः—जयतु महाराजः । एष खलु तत्रभवान् सुमन्त्रः प्राप्तः ।

राजा—(महामोक्षाय महर्षेण) अपि रामेण ?

तयैवेति - तव मुमित्रायाः पुत्रा लक्ष्मण एव सत्पुत्रः प्रशंसानात्रेन तत्रय ।
तस्य प्रशंसामा कारणमाह—येनेति । येन लक्ष्मणेन वने रघुकुलश्रेष्ठे रघुवशावतसो
राम नक्तदिव दिवानिगम्, छायेवेवानुगम्यते । अत्र लक्ष्मणस्य छायापमायां लिङ्ग-
भेदेन 'सृष्टेव विमलश्रन्द' इत्येवाङ्गुहारदोषो नोद्भाव्य, तत्र स्नानान्यधर्मस्य
पुलिङ्गविमलपदस्य निपातत्वेन तेन न्येणोपमानोपमेययोर्मयोर्न्वेतुमयोप्यतया दोष-
स्त्रीकारेऽपि पक्षेऽस्मिन्प्रनुगम्यते इति क्रियायाः सामान्यधर्मत्वेनास्यत्रान्वययोप्यत्वात्
तथा दोषानुनिपातान् । उक्तञ्च—'न लिङ्गवचने भिन्ने न न्यूनाधिक्ये तथा । उप-
माद्वयणायान् यत्रोद्वेगो न योयताम् ॥' इति । इत्यने लिङ्गभेदेऽपि सादृश्येनोपनिबन्धो
वाप्येन कृतः, तद्यथा--'आयतनघनतदीसोमान्दयेतुवन्धेन' इति ॥ १० ॥

अपि रामेणेति—अत्र रामेण सह प्राप्त इति विवक्षा, महर्षेः शब्दयोगानावेऽपि
वृत्तौ 'वृद्धो मूने त्यादाविव तदध्याहारमाध्या ।

कौसल्या—महाराज, मैं तो यह कह रही थी कि यह वाम लक्ष्मण की माता
मुमित्रा है ।

राजा—मुमित्रे,

वेरा ही पुत्र सत्पुत्र है, जो छाया की भाँति रात दिन वन में रघुकुलश्रेष्ठ राम
के पीछे-पीछे चलता है ॥ १० ॥

(कान्शुकी का प्रवेश)

कान्शुकी—जय हो महाराज की । यह आर्य सुमन्त्र आ गये ।

राजा—(हाट्टकर हर्ष से) क्या राम के साथ ?

काञ्चुकीय.—न खलु, रथेन ।

राजा—कथं कथं रथेन केवलेन ? (इति मूर्च्छितः पतति)

देव्यो—महाराज ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि । (गात्राणि परामृशत)

महाराज ! समस्तसिहि समस्तसिहि ।

काञ्चुकीयः—भोः ! कष्टम् । ईदृग्विधाः पुरुषविशेषा ईदृशीमापदं
प्राप्नुवन्तीति विधिरनतिक्रमणीयः महाराज ! समाश्वसिहि
समाश्वसिहि ! :

राजा—(किञ्चित् समाश्वस्य) बालाके ! सुमन्त्र एक एव ननु प्राप्तः ?

काञ्चुकीयः—महाराज ! अथ किम् ।

राजा—कष्टं भो !

शून्यः प्राप्तो यदि रथो भग्नो मम मनोरथः ।

नूनं दशरथं नेतुं कालेन प्रेषितो रथः ॥ ११ ॥

मूर्च्छित. असज, तथाभावश्च रामशून्यरथानमनश्चवणेन रामपरावृत्त्याशात-
न्तुच्छेदाद् बोध्य. ।

ईदृग्विधाः ईदृशाः, लोकोत्तरत्व मननिकृत्येत्यमुक्तम् । विधिः भवितव्यता,
अनतिक्रमणीयः अनुल्लङ्घनीय. ।

शून्य इति—शून्यः जनानघिष्टितः, रथः यदि प्राप्त आयातस्तहि मम मनोरथो
रामपरावृत्तिलक्षणो भग्नस्तुटितः । एतन्मनोरथमङ्गस्य चमन्धृत्युनिटानत्वमित्याह-
नूनमिति । दशरथ नेतु कालेन यमेन रथ. प्रेषितो नूनम् । नूनं पदमुत्प्रेषायाम् ।

काञ्चुकी—नहीं, खाली रथ लेकर ?

राजा—क्या कहा ? खाली रथ लेकर ? (मूर्च्छित होकर गिर पडता है)

दोनो रानियाँ—महाराज, धीरज धरें, धीरज धरें । (महाराजकी देह सहलाती हैं)

काञ्चुकी—हाय, कैसा दारुण दुःख है ? ऐसे महापुरुष को भी इस प्रकार की
आपत्ति सहनी पडती है । सचमुच, भवितव्यता किसी से नहीं टाली जा सकती ।

राजा—(कुछ सँभलकर) बालाकि, क्या सुमन्त्र अकेले ही आये हैं ?

काञ्चुकी—जी हाँ ।

राजा—हा शोक !

रथ का खाली लौटना मेरे मनोरथ का टूटना है । जान पडता है कि—काल
ने दशरथ को डुला लाने के लिये ही यह रथ भेजा है ॥ ११ ॥

तेन हि शीघ्रं प्रवेश्यताम् ।

कञ्चुकीय — यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रान्तः)

राजा—धन्याः खलु वने वातास्तटाकपरिवर्तिनः ।

विचरन्तं वने रामं ये स्पृशन्ति यथासुखम् ॥ १२ ॥

(ततः प्रविशति सुमन्त्रः)

सुमन्त्र.—(सर्वतो विलोक्य सशोकम्)

एते भृत्याः स्वानि कर्माणि हित्वा स्नेहाद् रामे जातवाष्पाकुलाज्ञाः ।

चिन्तादीनाः शोकसन्दग्धदेहा विनोशन्तं पार्थिवं गर्हयन्ति ॥ १३ ॥

ततश्च दू-वरथप्रेषणम्यातयनापितया यमकृत दू-वरथप्रेषण दशरथानयनार्थमेवेति गम्यते ॥ ११ ॥

धन्या इति—तटाकपरिवर्तिन पक्षाकरपर्वाश्वत्तनशीला वने वाता वानन-माहता धन्या खलु । धन्य वनेत्र समयंयितुमुपन्यस्यति—विचरन्तमिति । ये वाता वने विचरन्त विहरन्त राम यथासुख यथेच्छ स्पृशन्ति आलिगन्ति, रामदेह-स्पर्श एव वातान् धन्यान् करोतीत्युक्तं वा तद्विरहितम्य स्वस्याधन्यस्वमुक्तम् । ममरामि चात्र पत्रे दृष्टे—'धन्या खलु वने वाता, बह्णारस्पर्शशीतला । रामयिन्दोवर-स्याम ये स्पृशन्त्यनिवारिता ॥' इति ॥ १२ ॥

एते भृत्या इति—एते भृत्याः स्वानि कर्माणि स्वनियोगान् हित्वा परित्यज्य रामे विषये स्नेहान् भावबन्धात् जातवाष्पाकुलाज्ञा सञ्जातबाष्पकलुपनेत्रा, चिन्तादीनाः चिन्तया मलिना, शोकसन्दग्धदेहा, रामविरहजनितखेदाग्निज्वलित-वपुषः विक्रान्त बहु विलपन्त पार्थिवं गर्हयन्ति निन्दन्ति ॥ १३ ॥

अच्छा तो शीघ्र ही अन्दर घुलाओ ।

कञ्चुकी—जो महाराज की आज्ञा । (प्रस्थान)

राजा—सरोवरों से होकर गुजरनेवाली वन की हवायें ही धन्य हैं, जो वन में विचरते हुए राम को स्वेच्छा से आलिङ्गन करती हैं ॥ १२ ॥

(सुमन्त्र का प्रवेश)

सुमन्त्र—(चारों ओर देखकर शोक से)

राम के स्नेह से उद्बुध, चिन्ता से म्लानमुख, शोक के मारे दरदरदय ये जोकर चाकर भी अपने-अपने कार्यों को छोड़ 'राम राम' की रट लगाते हुए महाराज को धिक्कार रहे हैं ॥ १३ ॥

(ज्येष्ठ) जयतु महाराजः ।

राजा—भ्रातः ! सुमन्त्र !

क मे ज्येष्ठो रामः—

न हि न हि युक्तमभिहितं मया ।

क ते ज्येष्ठो रामः प्रियसुत ! सुतः सा क्व दुहिता
विदेहानां भर्तुर्निरतिशयभक्तिर्गुरुजने ।

क वा सौमित्रिर्मां हतपितृकमासन्नमरणं
किमप्याहुः किं ते सकलजनशोकार्णवकरम् ॥ १४ ॥

क मे ज्येष्ठ इति—हे प्रियसुत, सुमन्त्र मे ज्येष्ठ सुत. राम. क ? इति प्रदु-
मुपक्रान्तम्, मध्ये मन्दभाग्यस्य स्वस्य रामेण सह सम्बन्ध परिजिहीषान्निवाह—
क ते ज्येष्ठ इति । ते तव (वनगमनकालेऽनुवृत्त्याः प्रियसुतत्व व्यञ्जितवत्स्वव,
न तु दनवासाज्ञाप्रदानेन निघृणस्य मम) ज्येष्ठ प्रथम. पुत्रो रामः क ? कुत्रोद्
देशे वर्तत इति जिज्ञासा । गुरुजने श्वशुरादौ निरतिशयभक्ति. सर्वातिशयभक्ति-
सवल्लिता विदेहानां मिथिलामहीमहेन्द्राणां शासने स्थितानां देशविशेषाणां भर्तुर्जन
कस्य दुहिता सुता सीता च क ? सुमित्राया अपत्यं पुमान् सौमित्रि लक्ष्मण वा
क ? किं ते रामलक्ष्मणसीताख्यास्त्रयोऽपि जना. सकलजनशोकार्णवकरम् अखिल-
लोकवेदसमुद्रोत्पादकम् (तत्त्व च रामवनवासाज्ञाप्रदानास्त्रेदावसरसम्पन्नाद्युज्यते)
आमन्त्रं सन्निहितं मरण यस्य तं सुसूप्तमित्यर्थं. । हतपितृकम् अभाग्यभाजन निज
जनक मा ते किमप्याहुः किमपि सन्दिदिशु. ? अथ तथा त्वरितमभिधोयतामिति
तदाऽऽशय । गिखरिणीवृत्तम्, तल्लक्षणं यथा—'रसं रद्वंश्छिन्ना यमनसमन्ता
नः गिखरिणी' इति ॥ १४ ॥

(पास आकर) जय हो महाराज की ।

राजा—भाई सुमन्त्र,

कहाँ है मेरा बेटा राम ?

नहीं नहीं, मैंने ठीक नहीं कहा,

कहाँ है तुम्हारा बेटा राम ? ऐ राम को प्यार करनेवाले, कहाँ है वह गुरुजनों

पर निरतिशय श्रद्धा रखनेवाली सीता ? कहाँ है वह सुमित्रा की आँखों का

तारा ? क्या उन्होंने सबके लिए शोकप्रद, आसन्नमृत्यु मुझ अभाग्य पिता को

कुछ संवाद कहा ? ॥ १४ ॥

सुमन्त्र—महाराज ! मा मैवममङ्गलवचनानि भाषिष्ठाः । अचिरादेव तान् द्रक्ष्यसि ।

राजा—सत्यमयुक्तमभिहितं मया । नायं तपस्विनामुचितः प्रश्नः । तत् कथ्यताम् । अपि तपस्विनां तपो वर्धते ? अप्यरण्यानि स्वार्थानानि विचरन्ती वैदेही न परित्यजेत् ?

सुमित्रा—सुमन्त्र ! बहुवल्कलालङ्कृतशरीरा वालाऽप्यवालचारित्रा मुन्त । बहुवल्कलालङ्कृतशरीरा वाला वि दशाचरिता मर्तुः सहघर्मचारिणी अस्मान् महाराजं च किञ्चिन्नालपति ? मर्तुणो मर्त्याम्भारिणी अहं महाराज च किञ्चि पालवादि ।

सुमन्त्र—सर्वं एव महाराजम्—

राजा—न न । श्रोत्ररसायनैर्मम हृदयानुरौप्यैर्नेपां नामधेयैरेव श्रावय ।

अमङ्गलवचनानि अमुनूचकवाक्यानि । तत्त्वञ्च राज्ञोक्ती अस्मन्मरण-
त्वादिनिधानेन बोध्यम् ।

तपस्विना नागरभोगविश्रामया तापमत्त्व परिगृहीतवत्तं रामार्थना द्रव्याणाम् । तपो बद्धे नियमादिक निर्विघ्नमनुशीलने । स्वार्थानानि स्वमर्तुमुज्ज्वलं मुक्तिवशाद् आत्मवशी स्थितानि, अकुतोमयसञ्चारिणीनि यावत् ।

बहुवल्कलालङ्कृतशरीरा अथिक्मङ्गलवल्कलवासिनी, एतेन सीतायाः शरीरवन्धनव्यञ्जनेन कार्यतत्त्वतोक्तिमुत्तेन प्रोडिष्ठा । बाला अन्ववयन्वा, अवा-
लचारित्रा प्रोडव्यवहारा ।
न नेति निषेधस्वैय मवादप्रेषकपुत्रप्रेमपराधीनस्य राज्ञः तेषा मर्दनात्मा निदोषग्या-

सुमन्त्र—महाराज, आप ऐसे अमङ्गल वचन अपने मुख में न निकालें । आप उन्हें शीघ्र देखेंगे ;

राजा—सबसुच मैंने ठीक नहीं कहा । तपस्वियों के विषय में ऐसे प्रश्न ठीक नहीं । अच्छा बगाम्भो—तपस्वियों का तप तो निर्विघ्न है ? वन में निररुद्ध विचर-
ती हुई वैदेही यकती तो नहीं ?

सुमित्रा—सुमन्त्र, बहुत बरकलों से नृपतिशरीरा वाला होकर मैं आदर्श-
चरित्रा, पवित्रहचारिणी वह पवित्रता सीता इन लोगों तथा महाराज को कुछ
कह तो न रही थी ?

सुमन्त्र—सबसे महाराज को.....

राजा—नहीं नहीं, कर्मरसायन तथा आतुर हृदय के लिये जीवनौपधित्वरू-

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयति महाराजः । आयुष्मान् रामः ।

राजा—राम इति । अयं रामः । तन्नामश्रवणात् स्पष्ट इव मे प्रतिभाति । ततस्ततः ।

सुमन्त्रः—आयुष्मान् लक्ष्मणः ।

राजा—अयं लक्ष्मणः । ततस्ततः ।

सुमन्त्र —आयुष्मती सीता जनकराजपुत्री ।

राजा—इयं नैदेही । रामो लक्ष्मणो नैदेहीत्ययमक्रमः ।

सुमन्त्रः—अथ कः क्रमः ?

राजा—रामो, नैदेही लक्ष्मण इत्यभिधीयताम् ।

रामलक्ष्मणयोर्मध्ये तिष्ठत्वत्रापि मैथिली ।

सहाय्यव्यञ्जकतयाव्यग्रताव्यञ्जक । योत्ररसायनैः, श्रुतिप्रियैः हृदयानुरोधैः मानसिकं व्यापप्रशमनपटुभिः । एष शार्धं आदुररदस्य भावप्रधानस्याश्रयणेन लभ्य इति बोध्यम्

अक्रम. अनुपयुक्त क्रमः, सीताया मध्यनिर्देशस्योष्पमाणत्वेनैवमुक्तम् ।

रामलक्ष्मणयोरिति—‘रामो लक्ष्मण सीता’ इत्यस्यासिद्धान्त्याक्रमत्व

वृत्तानेन राजा ‘रामः सीता लक्ष्मण.’ इत्ययं क्रमो निजामिलिखितो व्यक्तीकृतः, तदुप-
पत्तिमत्राह—अत्रापीति । मैथिली सीता अत्र नामधेयनिर्देशावसरेऽपि रामलक्ष्मणयो-
र्मध्ये तिष्ठतु, एकतो रामस्य नामान्वतश्च लक्ष्मणस्य नामामिधीयमान सीताया
मध्येऽमिधीयमान नामानुशोक्तित्यर्थः । अत्रापीत्यपि नामधेयनिर्देशोऽपि मध्यमत्ये-
नाभिप्रेतायाः सीताया वनवासावस्थाया गर्भदेव रामलक्ष्मणान्तरालवत्तिरवमभिप्रेत-

प्रत्येक का नाम लेकर उनके संवाद सुनाओ ।

सुमन्त्र—चिरंजीवी राम ।

राजा—अच्छा राम, यह राम, राम का नाम सुन लेने से ऐसा ज्ञान पड़ता है
साधो हमने उसे छाती से लगा लिया हो । हौं फिर ?

सुमन्त्र—चिरंजीवी लक्ष्मण ।

राजा—चिरंजीवी लक्ष्मण । अच्छा भागे ।

सुमन्त्र—आयुष्मती जनकनन्दिनी सीता ।

राजा—यह सीता ! ‘राम, लक्ष्मण, सीता’ यह क्रम तो ठीक नहीं ।

सुमन्त्र—तो फिर कौन-सा क्रम ठीक होगा ?

राजा—राम, सीता, लक्ष्मण ऐसा कहिये ।

यहाँ नामोस्वारण में जी मैथिली राम और लक्ष्मण दोनों के बीच में ही रहे,

बहुदोषाण्यरण्यानि सनाद्यैषा भविष्यति ॥ १५ ॥

मुमन्त्र — यदाज्ञापयति महाराजः । आयुष्मान् रामः ।

राजा — अयं रामः ।

मुमन्त्र — आयुष्मता जनकराजपुत्री ।

राजा — इयं वैदेही ।

मुमन्त्र — आयुष्मान् लक्ष्मणः ।

राजा — अयं लक्ष्मणः । राम ! वैदेही ! लक्ष्मण ! परिष्वजन्तु मां पुत्रकाः ।

सकृत् स्पृशामि वा राम, सकृत् पश्यामि वा पुनः ।

गतापुरमृतेनेव जीवामीति मतिर्मम ॥ १६ ॥

ममिच्छन्ने । तत्र कारवमाह—बहुदोषाणीति । अरण्यानि वनानि बहुदोषानि नानाविधमयानि, अत एव पालकसाधननिवासानाति एव स्थिता, चेया सनाया उमरदि—वन्दिनरानलक्ष्मण रूपसतिदेवरपालितवन निमंयावस्थाना । एत सर्वं दारपस्य मनोदत्त विवृण्वत् वात्मन्पातिगय पोययति ॥ ५ ॥

परिष्वजन्तु आलिङ्गत ।

म्राकिरावदयकत्व ध्वञ्जयितुमा—सकृदिति । सकृत् एकार राम स्पृशामि वा पुन सकृत् त पश्यामि, (रामदशनम्पगनधारनिप्रयमागताप्रतिपादन वात्तल्पनेप) उत्फनमाह—गतापुरिति । गतायुः मुमुषु यथा अमृतेनासादितेन जीवति तथा रामस्य दशनेन स्पशनेन वा मया जीवितव्यम् । इति मम म मति-निष्पारिपिका बुद्धि उपमया स्वस्थावस्थाभाविनरन्मुच्यते स्पष्टमयत् ॥ १३ ॥

क्योंकि वन में बहुत से भय हुआ करते हैं, दोनों के बीच में रहने से वह निरापद रहेगी ॥ १५ ॥

मुमन्त्र—ओ महाराज की आज्ञा । चिरजीवी राम ।

राजा—यह राम ।

मुमन्त्र—आयुष्मती जनकनन्दिनी सीता ।

राजा—यह सीता ।

मुमन्त्र—चिरजीवी लक्ष्मण ?

राजा—यह लक्ष्मण । राम, सीता, लक्ष्मण, आभो मुझसे लिपट जाओ, मेरे प्यारे बच्चों ।

मैं फिर कभी न कभी रामसे मिलूँगा, उसे देखकर मैंने शतिल कहाँ, इस सम्भावनासे मैं उसी प्रकार जी रहा हूँ, जैसे आसन्नमरण जीव अमृत की वृद्धोत्पे

सुमन्त्र -- शृङ्गवेरपुरे रथादवतीर्यायोध्याभिमुखाः स्थित्वा सर्व एव महाराज शिरसा प्रणम्य विज्ञापयितुमारब्धाः ।

कमप्यर्थं चिरं ध्यात्वा वक्तुं प्रस्फुरिताधराः ।

वाष्पस्तम्भितकण्ठत्वाद्नुक्त्वैव वनं गताः ॥ १७ ॥

राजा--कथमनुक्त्वैव वनं गताः ? (इति द्विगुण मोहमुपगत)

सुमन्त्र -- (ससम्भ्रमम्) घालाके । उच्यताममात्येभ्यः--अप्रतीका राया दशायां वर्तते महागज इति ।

विज्ञापयितुम्--सन्देष्टुम्, आरब्धा आरब्धवन्त अत्र कर्त्तरि तस्य मृग्यम् । कमपीति । कमपि पितरि श्रद्धा धारयद्भिः पुत्रैस्त्वयाविधाय स्थी पितुराश्वासनायोपयुज्यमान सदेशनीयम् अर्थ (वनवासस्य तातवचनपालनावसर प्रदायित्वेन नानानदनदीकाननसुखविहारावसरसमर्पकत्वेन चास्माक कृते प्रमोदा-वहत्वमेवेत्य रूप , अयोध्यायासावस्थाया मवस्वरणशुभ्रूपणावसरोऽस्माभिरनुदिन लभ्यते स्म, इदानी स विच्छिद्यमानोऽपि पुनर्नालभ्य इति कियन्ति हायनानि मवता स्वीयो वृद्धो देहो न विपद्य विपादनोय इत्येवविधो वान्यादृशो वात्र सन्देशाय) चिर बहुकाल ध्यात्वा बक्तुं प्रस्फुरिताधरा प्रचलितौष्टुष्टा अघरस्फुरणानुमितवचनप्रयत्ना अपीति यावत्, वाष्पस्तम्भितकण्ठत्वात् सद्य प्रियपितृपरिजनादिवियोगप्रसवेन स्तम्भितो निरुद्धव्यापारः कण्ठा यस्य तस्य भावस्तत्त्वं तस्मात् अनुक्त्वा चिन्तितमपि असन्दिश्यैव वनं गताः । एतेन तेषामवचनस्य शोकवेगपराहृतचित्तताप्रसूतत्वेन कारणान्तरजन्यता निरस्ता, दशरथादीन् प्रति तेषा मावातिशयश्च व्यञ्जित ॥१७॥

अनुक्त्वैवेति--मया जनितस्य वनवासात्मकखेदस्यातिभूमिप्राप्तिरेव वचनप्रति बन्धकरीति कथमहमेव तथा भावे निदानमिति राज्ञा भाव , अत एव च द्विगुण मोहोपगतिसङ्गति ।

सुमन्त्र--शृङ्गवेरपुर मे रथ से उत्तर कर अयोध्या की ओर मुख करके सब ने महाराज को सन्देश कहने का उपक्रम किया ।

न जाने कौन सी बात वडी देर तक सोचते रहे, कुछ कहने के लिये उनके ओठ फड़के, किन्तु अश्रुवेग से कण्ठारोध हो जाने के कारण बिना कुछ कहे ही वे वन चले गये ॥ १७ ॥

राजा--क्या, बिना कुछ कहे वन चले गये ? (यह कहकर घोर मूर्च्छा में पड़ जाता है)

सुमन्त्र--(इडबडाहट के साथ) पालाकि, मन्त्रियों से जाकर कहो कि

काञ्चुकीय — तथा । (निष्क्रान्त)

देव्यो—महाराज ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

महाराज ! ममस्मसिहि ममस्मसिहि ।

राजा—(किञ्चिन् मम द्रव्यम्)

अङ्गं मे स्पृश कौसल्ये ! न त्वा पश्यामि चक्षुषा ।

रामं प्रति गता बुद्धिरद्यापि न निवर्तते ॥ १८ ॥

पुत्र ! राम ! यन् मलु मया सन्तत चिन्तितम्—

राज्ये त्वामभिषिच्य सन्नरपतेर्लाभात् कृतार्थाः प्रजाः

कृत्वा, त्वत्सहजान् समानविभवान् कुर्यात्मनः सन्ततम् ।

इत्यादिद्य च ते, तपोवनमितो गन्तव्यमित्येतया

अर्गामिति । कौसल्य, म मम् अयं गरीर स्पृश (न त्वा मन्निहिता प्रतीत्य किञ्चिदाश्वासितहृदयत्वेन पुञ्जय) त्वा चक्षुषा उपहृत्पदगन्तान्मध्यमेन मन्त्रं न पश्यामि (अयान्न विरदुपनिनानेन यदि मदीया दगांनशक्तिर्नागोप्यत तदा तु दगांनेनैव तव मान्निध्यं ज्ञान्वाङ्गम्पानेन त्वा स्वमात्रिध्यमूचनाय नाकनेशदिय्य-पिति माय) राम प्रति तद्विषय गता (न तु प्रपिता, एतेन राज्ञो विवशत्वमुक्तम्) अद्यापि अपुनाऽपि न निवर्तते न परावर्तते । एवञ्च बुद्धिविरहितस्य ममाकार्य-कारित्वदशवृत्तयेऽपि नदाश्रयस्यान प्राप्तवयानमिति भावः ॥

राज्ये त्वामिति । त्वा राज्यं नृसाधिकार्येऽभिषिच्य व्यवस्थाप्य सन्नरपतेः प्रणामास्पदस्य त्वद्रूपस्य राज्ञो लाभान् प्रजा प्रज्जिजनान् कृतार्था कृतकृत्वा कृत्वा विनाय त्वमहजान तत्र महज्जुषो मन्त्रादीन् प्राप्तान् समानविभवान् स्वतुल्यमोग्धार्यमम्पदविवाग्नि कृत्विनि च ते तुम्हमादिद्य व्याहृत्य इतोऽयोध्याया तपावन

महाराज की वृत्ता असाध्य हो चुकी है ।

काञ्चुकी—जो आशा । (जाता है)

शोनों रानियाँ—महाराज, धीरज धरें, धीरज धरें ।

राजा—(बुड़ सँमलकर)

कौसल्या, मेरे अङ्गों पर हाथ फेरो मुझे मुम नहीं श्रीस्वती हो । राम की ओर गया हुआ मेरा हृदय अभी नहीं लौट रहा है ॥ १८ ॥

वेश राम, मैं सत्ता सोचता जा रहा था कि—

तुम्हें राजगद्दी पर बैठकर, प्रजावर्गों को उत्तमराजके लाभ से कृतार्थ कर और तुम्हें यह कहकर कि 'अपने भाइयों को सत्ता स्वमहदा पृथर्थाशाली बनाये रखना'

कैकेय्या हि तदन्यथा कृतमहो निःशेषमेकक्षणे ॥ १६ ॥

सुमन्त्र ! उच्यतां कैकेय्याः—

गतो रामः, प्रियं तऽस्तु, त्यक्तोऽहमपि जीवितैः ।

क्षिप्रमानीयतां पुत्रः, पापं सफलमस्त्विति ॥ २० ॥

सुमन्त्र—यदाज्ञापयति महाराजः ।

राजा—(ऊर्ध्वमवलोक्य) अये ! रामकथाश्रवणसन्दर्घद्वयं मामाश्वासयितुमागताः पितरः । कोऽत्र ?

(प्रविश्य)

तपसे समुपयुज्यमान किमपि काननं गन्तव्यामिति (यन्मया सन्तत विन्तितम्) तत् चिन्तित वस्तु निःशेषम् अखिलम् कैकेय्या अहो एकक्षणे क्षणमात्रेण अन्यथाकृतम् विपरीतता गमितम् । अत्रो वष्टम् ! पुत्रसक्रान्तलक्ष्मीकस्य स्वस्य वनगमने विन्त्यमाने पुत्रस्यैव वनगमनं विपरीतं सद्बोधकमिति भावः । शार्दूलविज्रीडितं वृत्तम् ।

गत इति । रामः गतः, वनमिति योजनीयम् । ते प्रियमस्तु त्वं तद्वनगमन-श्रवणेन प्रीता भव । पुत्र भरत क्षिप्रमानीयताम् अविलम्बमाकार्यताम्, पाप राम-निर्वासनस्वहृत्पम्, सफलं मरुताभिपेरेण फलेन सहितं यथा तथा अस्तु जायताम्, रामो वन गतो भरताय राज्यं देहीति राज्ञः सोल्लुण्ठवचनम् ॥ २० ॥

श्रवणमन्दग्धेति—श्रवणस्य च रामस्मरणद्वारा सन्नामकत्वादित्यमुक्तिः ।

पितरः पितृभूता, पितृपितामहादयः पूर्वजाः, तद्दर्शनस्य सन्निहितमरणसूचकत्वम् । एतच्च नियतमरणहवापकं लिगभरिष्टम् । तदुक्तम्—

‘श्वकाककङ्कगुध्राणा प्रेताना यक्षरक्षसाम् । पिशाचोरगनागाना भूताना विकृतामपि ॥

यो वा मयूरकण्ठाम विधूम वह्निमोक्षने ।

आतुरस्य भवन्मृत्यु स्वस्थो व्याधिमनाप्नुयात् ॥ (सु सू. अ. ३०)

मैं छुटकारा प्राप्त कर, इस वृद्धावस्था को तपोवन में व्यतीत करूँगा । परन्तु हाय, इन बातों को कैकेयी ने स्रगभर में पलट डाला ॥ १६ ॥

सुमन्त्र, जाओ, कैकेयी से कह दो—

राम वन चले गये, तुम अपना मनोरथ पूर्ण कर लो, मुझे भी मेरे प्राण छोड़ चले । अब तुम अपने बेटे को बुलवा लो, तुम्हारा पापाच्याय पूरा हो जाये ॥२०॥

सुमन्त्र—जो आज्ञा ।

राजा—(ऊपर की ओर देखकर) ओ, राम की इस विपद्गाथा से दग्ध मुझको सान्त्वना देने के लिए पितृगण भा गये हैं । कोई है यहाँ ?

(कञ्चुकी का प्रवेश)

सर्वे—हा हा महाराजः हा हा महाराजः ।

हा हा महाराजो । हा हा महाराजो ।

(निष्क्रान्ता. सर्वे)

द्वितीयोऽङ्कः ।

अथ तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति सुधाकारः)

सुधाकार—(सम्मार्जनादोनि कृत्वा) भवतु, इदानीं कृतमत्र कार्यमार्य-
मोदु, दाणि किदं एत्य कर्म्यं अथ

सम्भवकस्याज्ञप्तम् । यावन्मुहूर्तं स्वप्स्यामि । (स्वपिति)
सम्भवअस्स आणत्त । जाव मुहुत्त सुविस्सं ।

(प्रविश्य)

गटः—(चेटमुपगम्य ताडयित्वा) अह्णो दास्याःपुत्र ! किमिदानीं कर्म
अह्णो दासोएपुत्त । किं दाणि कम्मं

यया—'अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजो जरगाश्च पुष्पिताया' इति ॥२१॥

इति मैथिलपण्डितश्रीरामचन्द्रमिश्रकृते प्रतिमानाटक-प्रकाशे द्वितीयोऽङ्कः ।

सुधाकार इति—सुधा चूर्णम्, ता करोतोति विप्रहेण भवनमितिधवलीकरणाय
सुधालेपनाधिकृत. सुधाकार इत्युच्यते । स चात्र दशरथप्रतिमागृहपरिमार्जनेऽधि-
कृतो वेदिनव्यः ।

आर्येति—प्रार्थनसमवकस्य पूज्यस्य समवकाख्यस्य काञ्चुकीयस्य, आज्ञप्तम्
आदेशः । सम्बन्धसामान्ये पृष्ठी ।

अह्णो इति—निपातोऽयं सक्रोपामन्त्रणार्थः । दास्याःपुत्रेति निन्दार्थम्, अदासी-

सर्वे—हा महाराज, हा महाराज ! (सबका प्रस्थान)

द्वितीय अङ्क समाप्त ॥ २ ॥

(सुधाकार का प्रवेश)

सुधाकार—(हाहू लगाकर) अच्छा, आर्य सम्भवक द्वारा आदिष्ट सब कार्य
तो कर लिए, अब थोड़ी देर सो लूँ । (सोता है)

(भट का प्रवेश)

भट—(चेट के पास जाकर तथा उसे पीट कर) भरे दासीपुत्र, अब काम क्यों

न करोपि ? (ताडयति)

न वरेसि ?

सुधाकार — (बुद्ध्या) ताडय मां ताडय माम् !

तालेहि म तालेहि म ।

भट — ताडिते त्वं किं करिष्यसि ?

ताडिते तुवं किं करिस्ससि ?

सुधाकार — अधन्यस्य मम फात्तवीर्यस्येव बाहुसहस्रं नास्ति ।

अनण्यस्स मम कत्तवीर्यस्स विअ बाहुसहस्रं णत्थि ।

भट — बाहुसहस्रेण किं कार्यम् ?

बाहुसहस्रेण हि वय्य ?

सुधाकार — स्वा हनिष्यामि ।

तुवं हगिस्स ।

पुत्रस्यैव तथा सम्बोध्यमानत्वात् । 'पृष्ठा आक्रोशै' इति पृष्ठा अलुक । कर्म स्वनि-
योगम्, कर्तव्यत्वेनादिष्ट व्यापारम् ।

ताडयेति — स्वकर्तव्यस्य समापितत्वेन गर्वितस्य तस्मैत्यमुक्तिर्निरपराधताड-
नस्य बलवदनर्थात्तुवन्वित्त्वभावेदयति ।

ताडिते इति — 'त्वमि' इति विदोष्यमध्याहार्यम्, अथवा भावे क्त, तथा ध
शति ताडने कृतेऽपि स्व किं करिष्यसीति स्वामिमानः ।

फात्तवीर्यस्य तदाक्ष्यस्य, तथा हि स्मरते — 'फात्तवीर्याजुनो नाम राजा बाहु-
सहस्रभृत् । योऽस्य सङ्कीर्तयेन्नाम कल्पमुत्पाय मानव ॥ न तस्य वित्तनाशः स्या-
न्नष्ट च लभते ध्रुवम् ॥' इति ।

नहीं करता ? (पीटता ही है)

सुधाकार — (आगकर) मार लो, मुझे मार लो ।

भट — माहंगा ही तो तुम क्या करोगे ?

सुधाकार — मैं अभाग स हस्रबाहु की तरह हजार हाथ नहीं पाया ।

भट — हजार हाथ होने पर क्या करते ?

सुधाकार — तुमको मार डालते ।

भटः—एहि दास्याःपुत्र ! मृते मोक्ष्यामि । (पुनरपि ताडयति)
एहि दासिएपुत्त ! मुदे मुच्चिस्सं ।

सुधाकारः—(रुदित्वा) शक्यमिदानीं भर्त ! मेऽपराधं ज्ञातुम् ।
शक्य दाणिं भट्टा ? मे अवराहं जाणिदुम् ।

भटः—नास्ति किलापराधो नास्ति । ननु मया सन्दिष्टो भर्तृदारकस्य
णत्थि किल अवराहो णत्थि । ण मए सन्दिष्टो भट्टिदारकस्स
रामस्य राज्यविभ्रष्टकृतसन्तापेन स्वर्गं गतस्य भर्तुर्दशरथस्य
रामस्य रज्जविठमट्टकिदसन्दावेण सग्गं गदस्स भट्टिजो दसरहस्स
प्रतिमागेहं द्रष्टुमद्य कौसल्यापुरोगैः सर्वैरन्तःपुरैरिहागन्त-
पडिमागेहं देदु अज्ज कौसल्यापुरोएहि सब्बेहि अन्तेउरेहि इह आगन्त-
व्यमिति । अत्रेदानीं त्वया किं कृतम् ?
व्व ति । एत्थ दाणं तुए किं किद ?

सुधाकार —पश्यतु भर्ता अपनीतकपोतसन्दानकं तावद् गर्भगृहम् ।
पेक्खुदु भट्टा अवेणोदकवोदसन्दाणअ दाव गम्भगिह ।

मृत इति—स्वपि मृत एव त्वा त्यक्ष्यामीति भावः । जीवन्त त्वा न परित्यजा-
मीति हृदयम् ।

अपराधमिति—जानातेरिदं कर्म, शक्यमित्यत्र भावे प्रत्ययः, जानातेः कर्त्तरि
तुमुन्, तेन कर्मणि द्वितीया । एतादृशस्थले एवमेव व्यवस्थापनीयम् ।

नास्तीति—काकार्यविपर्ययः अस्त्येव तवापराध इति भावः । विभ्रष्टं विभ्रशः ।
सन्दिष्टः आज्ञप्तः, स्वमिति शेषः । प्रतिमागेहं मृतानां राज्ञा स्मृतिबिह्वभूताः प्रतिमा
यत्र स्थाप्यन्ते तद् गृहम् ।

अपनीतेति—सुधाकारस्य स्वकृतकार्यताप्रदर्शनार्थेयमुक्तिः । अपनीतं दूरीकृतं

भट—आः, भरे दासीपुत्र, अब तो खतम करके ही छोड़ूंगा । (फिर पीटता है)

सुधाकार—(रोते हुए) तो क्या इस समय आप हमारा अपराध धता सकते हैं ;

भट—कुछ अपराध नहीं, सचमुच कुछ अपराध नहीं । भला मैंने जो तुमको
आज्ञा दी थी कि—राजकुमार राम राज्यच्युत होकर बन चले गये उनके शोक में
महाराज ने प्राण दे दिये, उनकी प्रतिमा का दर्शन करने के लिये उनका समस्त
अन्तःपुर प्रतिमागृह जाने वाला है । यत्ता, सूने यहाँ क्या काम किया है ?

सुधाकार—देख लीजिये, प्रतिमागृह के अपरिमाणन से पक्षियों ने घोंसले बना

सौघवर्णकदत्तचन्दनपञ्चाङ्गुला मित्तयः । अवसक्तमान्य-
सोदृक्प्रदत्तचन्द्रगण्डगुण मिनीशो । बोमत्तमन्त्र-
दामशोभाणि द्वाराणि । प्रक्षीणां धानुकाः । अत्रेदानीं
दानमोक्षोनि द्वाराणि । पश्यन्त वायुशा । एष्य दानि
मया किं न कृतम् ?
नः किं न किं ?

नट — प्रद्योतं विश्वम्नो गच्छ । यावद्दृग्मपि सर्वं कृतमित्यमात्याय
त्रह गच्छं विष्णुदो गच्छ । ज्ञाव अत्रं वि सर्वं विद नि अमुष्मम्
निरेक्ष्यामि ।
निरेक्षेति ।

(निष्क्रान्तो)

(प्रवेशक)

(एव प्रविशति मन्त्रो रयेन मूढश्च)

कर्मोत्तमन्त्रानर्हं कर्मोत्तमो ह यस्याद् तद् । विगन्तिसाञ्जितेषु हि मूढेषु कर्मोत्तमो
नीटानावप्यसि । सोपे मृदानये वाके शालेने दने निवेष्टित चन्दनपञ्चाङ्गुल चन्द-
नमयवक्राङ्गुल्यासो वासु ताः । अवसक्तैः संशोभितैः मान्यदानमिः पृथ्वराभुनीः
शोभितुं शीलमेवास्मिन् तदावृणति । बाहुकाः मूढममिकलाः पादम्पर्शमूषार्थं ता
ग्यस्यन्ते । विश्वम्नः कृत्वक्कर्मोत्तमया ताहननपरश्चिन् प्रद्योतं ।

प्रवेशक उचि—प्रवेश एव प्रवेशक । तन्त्रक्षण यथा—

वृत्तवर्तिष्यमागता कथाज्ञाना निदर्शक । संशोभार्थस्य विष्णुमनो मध्यपात्रप्रयोजिनः ।
एतन्त्रकर्मतः मूढः मष्टुगो नोचमन्त्रयोः । उद्भवेदानुदानोत्तमो नीचपात्रप्रयोजितः ॥

'विप्रमानोप्यता वृषः' इति मूढवृंशत्रोन्मो मन्त्रध्यानमत म्बिन्म मन्त्रनि

त्रिये ये, वे ह्यत्र त्रिये गये ह्ये, वेवारो पुत्रता दी गयी ह्ये, उन पर पञ्चाङ्गुलि का
आकार बना दिया गया है, दरवाने पुण्यमालाश्रीं मे मजा त्रिये गये ह्ये, मजावट के
त्रिये पाशों ओर रेत बिजा दी गटे ह्ये । आप ही कहिये—यहो मैंने क्या नहीं किया !

नट—यदि ऐसी बात है तो इनमीनात मे जाओ, मैं भी मन्त्रीजी को सँभारो
की मूचना देता हूँ ।

(दोनों का प्रस्थान)

(प्रवेशक)

(रय में बैठे मात्र और मातृथि का प्रवेश)

भरत — (सावेगम्) सूत ! चिर मातुलपरिचयाद्विज्ञातवृत्तान्तोऽस्मि । श्रुत मया दृढमकल्यशरीरो महाराज इति । तदुच्यताम्—

पितुर्मे को व्याधिः

सूत — हृदयपरितापः खलु महान्

भरत — किमाहुस्त वैद्याः

सूत — न खलु भिषजस्तत्र निपुणाः ।

भरत — किमाहार भुङ्क्ते शयनमपि

सूत — भूमौ निरशनः

भरत — किमाशा स्याद्

सूत — दैव

भरत — स्फुरति हृदय बाहय रथम् ॥ १ ॥

तत्प्रवेशमाह—तत इति ।

मातुलेति—मातुलपरिचयात् मातुलस्य पुधाजित परिचयात् . तद्गृहे भृश-निवासात् । अविज्ञातवृत्तान्तः अविदितराजसमाचार । दृढ नितान्तम् । अकल्य-शरीर अस्वस्थदेह । उच्यता राज्ञोऽन्वस्यताया सामायतो ज्ञातत्वेनादिताया विशेषजिज्ञासाया शांतये विविच्य प्रतिपाद्यतामित्यथ ।

भरतस्य प्रश्नान् सूतेन दत्तायुत्तराणि चकपद्येनवाह—पुतिरिति । निपुणाः दक्षा , हृदयपरितापस्य निदानापथमगात्रसाध्यताया सर्वाबाधतत्वेन वैद्याना तत्रा प्रसरादिति ।

दैव भाग्यम्, तदेवात्र राजजीवने आशामुज्जोवयितुमीश इतिभाव । स्फुरतिहृदय

भरत—(चिन्तापूर्वक) सारथि, चिरकाल तक मामाजी क यहाँ रहने से मुझे घर की कुछ खबर नहीं मिली, मैंने सुना था महाराज अधिक रुग्ण है, तुम तो कहो—मेरे पिता को कौन व्याधि है ?

सूत—दारुण मानसिक सन्ताप ।

भरत—वैद्यो ने क्या कहा ?

सूत—उन्हें कुछ पता नहीं चला ।

भरत—खाने और सोने की क्या व्यवस्था है ?

सूत—भूमि पर निराहार पड़े रहते हैं ।

भरत—क्या उनके जीने की आशा है ?

सूत—दैव जाने ।

भरत—मेरा हृदय धड़क रहा है, रथ चलाओ ॥ १ ॥

सूत — यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । (रथं याहमति)

भरत — (रथवेग निम्न) अहो नु गलु रथवेगः । एते ते,

द्रुमा धावन्तीन् द्रुतरथगानिर्क्षीर्णाविपया

नदीषोद्गृत्ताम्बुर्निपतति मही नेमिविचरे ।

अरथ्यक्तिर्नष्टा स्थितमिव जवान्चक्रवलय

रथश्चाश्वोद्गृत्त पतति पुरतो नानुपतति ॥ २ ॥

सोऽकण्ठतया स्वरया स्पन्दत इत्यर्थं । जीर्वात्पतृचरणदिदृक्षानु स्थस्य मम दान्तये रथमाश्वानु चालयति नाव । सवाश्वमिति न विशिष्यध्याह्वयामर्हति ॥ १ ॥

अहो न खल्विति—आश्चर्यकररतश्च रथस्य वेग इत्यर्थं ।

द्रुमा इति—द्रुमया शीघ्रया रथगत्या रथचलनन क्षीणविपया अल्पीभूतदृष्टि-विषयपातिद्रुमभागा द्रुमा वृक्षा धावन्तीव धावन्त इव प्रतीयन्ते । रथवेगमहिम्ना स्वरया दृश्यमाना अपि द्रुमावयवा दूरमुपसर्गतो दृग्गोचरता जहतीति तेषां धावनमृत्प्रेक्षते । उद्गृत्ताम्बु उद्भ्रान्तजला मही भूमि नदीव नेमिविचरे प्रधिरन्ध्रे निपतति निपतन्तीव ज्ञायते । भूभागविदीपे विद्यमाना जलाशया रथवेगेन रथ स्थानां दृष्टो चलञ्जला इति तन्महिम्तायां भुवो नदीभावेन नेमिप्रवेश उत्प्रेक्ष्यते । अराणां नेमिनामिमध्यवस्तिदण्डाकारावयवानां व्यक्ति स्फुटावभासता पाथंकेन प्रतीयमानता नष्टा तिराटिता जयात् रथवेगात् चक्रवलयं चक्रमण्डलं स्थितमिव गतिरहितमिव अतिस्वरितगामिनो रथचक्रस्य त्वरितभ्रमणं नोपलभ्यत इति स्थित-स्वप्रतिभारा । अश्वोद्गृत्त वाजिपुगदातोस्थापित रजश्च पुरतः अग्रे पतति उद्ग-च्छति, न अनुपतति न रथमनुगच्छति, निमेषमात्रेण रजोऽनुपतनगोचरदेशातिक्र-मणादित्यर्थं उत्प्रेक्षासहकृता स्वभावोक्तिरलङ्कारः । शिखरिणीवृत्तम् ॥ २ ॥

सूत—जो भज्जा । (रथ चलाता है)

भरत—(रथ के वेग को देखकर) वाह,

रथ किस तीव्रता से भागा जा रहा है ? ये वृक्ष रथ की द्रुतगामिता में चुग भर में ही आँसों से ओझल हो गये, मैदर से युक्त जलवाली नदी की भाँति वृद्धी धुरी के टिङ्ग म गिर रही है, यही तेजी से घूमने के कारण चक्र के भारे दीप नहीं पड़ रहे हैं और धूलि घोड़ों की टापो से उड़कर सामने ही गिरती है, पीछे नहीं ॥ २ ॥

सूत—आयुष्मन् ! सोपस्नेहतया वृक्षाणामभितः खल्वयोध्यया भवितव्यम् ।

भरतः—अहो न खलु स्वजनदर्शनोत्सुकस्य त्वरता मे मनसः सम्प्रति हि,

पतितमिव शिरः पितुः पादयोः स्निह्यतेवास्मि राज्ञा समुत्थापित-
स्त्वरितमुपगता इव भ्रातरः क्लेदयन्तीव मामश्रुभिर्मातरः ।

सदृश इति महानिति व्यायतञ्चेति भृत्यैरिवाहं स्तुतः सेवया
परिहसितमिवात्मनस्तत्र पश्यामि वेपं च भापां च सौमित्रिणा ॥३॥

सोपस्नेहतया-वृक्षवाहुल्यनिमित्तकापक्वदवत्तया । त्वरता उत्कण्ठिता, स्वजनदर्शनानन्तरमाविस्वामोष्टकल्पनव्यग्रतेत्यर्थं, अत्र मत्वरतेनि त्वरितेति वा साधुबोधयम् ।

पतितमिधेति—पितुः पादयोश्चरणयोः शिरः मम मस्तकपतितमिव, स्निह्य-
त्कालानन्तरं राजानं प्रणस्यामीति सोत्कण्ठतयाऽपुनैव शिरः पितृपादयोः पतितं
प्रत्येमीति भावः । स्निह्यता मुतवात्सल्यद्रुतान्तरङ्गेणैव राज्ञा दृश्येन समुत्थापितः
पादप्रदेशादाकृष्यस्वाङ्कमारोपित इवास्मि । भ्रातरः रामादय त्वरित मदागमननाक-
र्णनोत्तरकालमविलम्बेनैव उगगताः मातुलकुलादुपगत मा परिवार्यं स्थिता इत्यर्थः ।
मातरः माम् अश्रुभिः पुत्रागमनप्रसूतानन्दाश्रुभिः क्लेदयन्तीव आद्रयन्तीव, सदृश
इति । यस्यामेव कायिकस्थितावितो मातुलकुल गतस्तदवस्थ एव परावृत्त इति, महानि-
ति यावदाकारो गतस्तत उपचितावयव सन् परावृत्त इति, व्यायत परिशीलित-
व्यायामश्चेति भृत्यैः सेवया चरणसेवाहनादिना स्तुत इवाहम् । भृत्या हि चिरादुपेतं
स्वामिपुत्रमुपलभ्यचरणसेवनादिकुर्वाणाम्तत्प्ररोचनायं यथास्वबुद्धिपु रोदीरितमिदमि-
दघतीति स्थितिः । आत्मनः वेपं केकयदेशोचितपरिधानीयानिवेश भापा तद्देशवासाव-

सूत—तुजों की सघनता तथा शीतलता से जान पड़ता है कि अयोध्या समीप में ही है ।

भरत—अहो, आरामीय जनों के दर्शनार्थ मेरा मन कितना उतावला हो रहा है । क्योंकि, इस समय—

ऐसा जान पड़ रहा है कि मैं पिताजी के चरणों में नत हूँ और उन्होंने वात्सल्य से मुझे गोद में उठा-सा लिया है । भाई शीघ्रता से आकर मुझे घेर से रहे हैं और माताओं की आँखें आनन्दाश्रु धरमा रही हैं, जिससे मैं भी भाँगता-सा जा रहा हूँ । भरत जैसे जाने के समय थे, अब भी वैसे ही हूँ, एक ने कहा,

सूत -- (आत्मगतम्) भोः ! कष्टम् , यद्यमविधाय महाराजविनाश-
मुदकैर्निष्कलामाशां परिवहन्नयोर्ध्यां प्रवेक्ष्यति कुमारः ।
जानद्भिरप्यम्माभिर्न निवेशने । कुतः,
पितुः प्राणपरित्यागं मातुरैश्वर्यलुब्धताम् ।
ज्येष्ठभ्रातुः प्रवासं च श्रीन् दोषान् कोऽभिधास्यति ? ॥४॥
(प्रविश्य)

म्यापरिशील्यमात्स्यभावेनापि बलान्मृत्वाप्रिगच्छन्ती सरस्वती च सोमिनिषा
रक्षमणेन परिहसिगमिज पश्यामि । रक्षमणो मम भाषा वेपं च भेदेन प्रतिपन्
परिहसिष्यतीति तदुपनतमियावगच्छामीति भरतस्योरुष्णाहृता प्रतीतिः । स्वभावो-
क्तिरलङ्कार । महद्विच्छिदो वृत्तभेद ॥ ३ ॥

उदकै र्वहन्नकाळे निष्कलाम् स्थितिपरिवर्तनेन पशुयोगं नानुभविष्यतीम् ।
आशां विनृप्रणाममतिस्नेहमानुशातस्यमृत्पसेवादिप्राप्तिविषयं मनोरथम् । जान-
द्भिरिति । सर्ववृत्तान्तज्ञोऽपि नाहं किमपि भरताय निवेदयामोति ।

एतत् कारणमाह -- पितुरिति-पितृ- प्राणपरित्यागं मृत्युम्, मातु उन्म्या
गैश्वर्यलुब्धताम् धनलोभताम्, ज्येष्ठभ्रातु गामचन्द्रम्य प्रवासं वनगमनरक्षणं
देशान्तरगमनं च (एतान्) श्रीन् दोषान् कः कतर अभिधास्यति ? भरताय
निवेदयिष्यति ? नाहं क्षम इति भावः । पितृमरणजन्यपश्चादभ्रातृवनवासानां
प्रयाणामेकैकस्य यमव्यवहारं महतानां तेषां मत्कर्तृकं भरताय निवेदनमनुकर-
मिति तात्पर्यम् ॥ ४ ॥

दूसरे ने कहा-नहीं, कुछ बड़े और कुछ भी हो गये हैं । इस तरह भृत्यगण मेरी
स्तुति प्रीति से करते हैं और लक्ष्मण मेरी भिन्न प्रकार की वेगभूषा तथा भाषा
पर परिहास कर रहा है ॥ ३ ॥

सूत--(आत्मगत) भोह ? बिनने शोक की बात है कि महाराज की मृत्यु से
अनगम होने के कारण भरत मिथ्या भाषा लिये अयोध्या में प्रवेश करने और
मकलवृत्तान्ताभिज्ञ होने पर भी मैं इन्हें कुछ भी नहीं बता रहा हूँ । बताऊँ भी
कैसे ?

पिता का स्वर्गाय, माता का राज्यैश्वर्यलोभ, बड़े भाई का वनगम, एक एक
ने बढ़कर इन तीनों दोषों को कहने के लिए कौन जीम हिलाएगा ? ॥ ४ ॥

(भट का प्रवेश)

भट --जयतु कुमारः ।

भरत --भद्र, किं शत्रुघ्नो मामभिगतः ?

भट --अभिगतः खलु वर्तते कुमारः । उपाध्यायास्तु भवन्तमाहुः ।

भरत --किमिति किमिति ?

भट --एकनाडिकाप्रशेषः कृत्तिकाविषयः । तस्मात् प्रतिपन्नायामेव रोहिण्यामयोध्या प्रवेक्ष्यति कुमारः ।

भरतः--वाढमेवम् । न मया गुरुवचनमतिक्रान्तपूर्वम् । गच्छ त्वम् ।

भट --यदाज्ञापयति कुमारः । (निष्क्रान्तः) ।

भरत --अथ कस्मिन् प्रदेशे विश्रमिष्ये । भवतु, दृष्टम् । एतस्मिन् वृक्षान्तराविष्कृते देवकुले मुहूर्त्तं विश्रमिष्ये । तदुभय भवि-

उपेति--उपाध्याया वसिष्ठवामदेवादयः ।

एकेति --एकनाडिकाप्रशेष एवा नाडिका दण्डोऽवशेषो यस्य तथा ।

कृत्तिकेति--कृत्तिकाविषय इत्तिकानक्षत्रयुक्त कालः ।

वाढम्--अङ्गीकारे । एव गृह्णादिध्तेन प्रकारेणानुतिष्ठामोति भावः । नातिक्रान्तपूर्वं न लङ्घितपूर्वम् ।

विश्रमिष्ये--विश्रमिष्ये दोषाध्वं ह्यनश्रममवाकरिष्यामि । आत्मनेपदमपाणिनीयमिति गणपतिशास्त्रिणः ।

वृक्षेति--वृक्षान्तरालाविष्कृते वृक्षावकाशलक्षिते । उभय श्रमनिवृत्तिः देवसम्भावना च, उपोषविषय उपकण्ठे क्षणमुपविश्य । सत्समुदाचारः शिष्टाचारः । एतेन श्रमा-

भट--जय हो राजकुमार की ।

भरत--भद्र, क्या शत्रुघ्न आये है ।

भट--कुमार तो आ ही रहे हैं, किन्तु उपाध्यायो ने आप को कहा है ।

भरत--क्या कहा है ।

भट--कृत्तिका एक दण्ड रह गया है, उसके बीत जाने पर रोहिणी में कुमार अयोध्या में प्रवेश करें ।

भरत--बहुत अच्छा । मैंने कभी गुरुजनों के वचन नहीं टाले । तुम जाओ ।

भट--जो आज्ञा । (जाता है)

भरत--किस जगह तबतक विश्राम करूँ । अच्छा, देख लिया । वृक्षों के अन्त से होकर एक मन्दिर देख रहा हूँ, वही चलकर कुछ दूर विश्राम करूँ, इस

प्यति-दैवतपूजा विश्रमश्च । अथ च उपापविश्य प्रवेष्टव्यान्नि
नगरानीति मत्समुदाचारः । तस्मात् स्याप्यता रथः ।

सूत — यदाक्षापयत्यायुष्मान् । (रथ स्थापयति)

भरत — (रथादवतीर्थं) सूत ! एकान्ते विश्रामयास्थान् ।

सूत — यदाक्षापयत्यायुष्मान् । (निष्क्रान्त)

भरत — (किञ्चित् गत्वाबलोक्य) साधुमुक्तपुष्पलाजाविष्कृता बलय,
दत्तचन्दनपञ्चाङ्गुला भित्तयः, अवसक्तमाल्यदामशोभीनि
द्वाराणि, प्रकीर्णां धालुकाः । किन्तु खलु पार्वणोऽय विशेषः ?
अथवा आह्निकमास्तिक्यम् ? कस्य तु खलु दैवतस्य
स्थानं भविष्यति ? नेह किञ्चित् प्रहरणं ध्वजो वा बर्हिश्चिह्नं

पाकरणदेववन्दनसदाचारपालनात्मक प्रयोजनत्रयमत्र वृक्षावकाशे समुपवेशनेन
साध्यत इत्यहो सौकर्यमिति भावः ॥

साधिवत्वादि—साधुमुक्तपुष्पलाजाविष्कृता साधुना दातस्वान्तेन देवादिपूजा-
रसिकेन मुक्तं अवकीर्णं पुष्पं लाजैश्च आविष्कृता प्राक् एव गमिता पार्वण,
पार्वणि तिथिविदोषे मय । अय बल्यादिदृष्ट । आह्निकम् अहन्यहन्यनुष्ठीयमानम् ।
आस्तिक्यम् अस्ति दिष्टमिति मतिर्येषा ते आस्तिका तेषा भावः कर्म वा आरित-
क्यम् । दैवतस्य स्तुत्याद्यन्तमस्य । प्रहरणम् आयुधम् (शकत्वादि) ध्वजः

तरह देवदर्शन और विश्राम, एक पन्थ दो काज होंगे । एक यात और—नगरों
के समीप थोड़ा बँठकर नगर में प्रवेश करना चाहिए, इस चिरागत शिष्टाचार
का भी पालन हो जायगा । अतः रथ रोकौ ।

सूत—जो आज्ञा ! (रथ रोकता है)

भरत—(रथ से उतर कर) सूत, एक ओर ले जाकर घोड़ों को विश्राम दो ।

सूत—जो आज्ञा ! (प्रस्थान)

भरत—(कुछ चलकर और देखकर) यहाँ तो विधिवत् पूल और सील के
नैवेद्य दिये गये हैं, दीवारों की पुताई के ऊपर चन्द्रन से पाँचों अङ्गुलियों की पाँच
छापें लगाई गई हैं, दरवाजों पर पूलों की मालाएँ लटक रही हैं, बाहर चारों ओर
रेत बिछी हुई है । क्या कोई त्योहार है ? जिसकी यह विशेषता है, अथवा प्रति-
दिन का नियमपालन है ? अच्छा, भीतर जाकर पता लगाता हूँ । (भीतर जाकर

दृश्यते । भवतु, प्रविश्य ज्ञास्ये (प्रविश्यावलोक्य) अहो क्रिया-
माधुर्यं पापाणानाम् । अहो भावगतिराकृतीनाम् । दैवतो-
द्दिष्टानामपि मानुषविश्वासतासा प्रतिमानाम् । किन्तु खलु
चतुर्दैवतोऽयं स्तोमः ! अथवा यानि तानि भवन्तु । अस्ति
तावन्मे मनसि प्रहर्षः ।

कामं दैवतमित्येष युक्तं नमयितुं शिरः ।

वार्षलस्तु प्रणामः स्यादमन्त्रार्चितदैवतः ॥ ५ ॥

(प्रविश्य)

कुक्कुटादि बहिःशिवं वाह्यं दैवतविशेषलक्षणं । पापाणमयीना प्रतिमाना दशनेना
ह्लादितचित्तस्य नरतस्योक्ति —

अहो इति—पापाणाना शिलाशकलानाम्, क्रियामाधुर्यम् गित्यचातुर्यम् ।
आकृतीनाम् आकाराणा भावव्यक्ति अहो । आसा प्रतिमाना दैवतोद्दिष्टानामपि
दैवप्रतिमात्वेन सङ्कल्पितानामपि मानुषविश्वासात् मनुष्यप्रतिमाविश्वासयोग्यता ।
प्रतिमाना गणना कुन्वाऽऽह—किन्तु खल्विति । चतुर्दैव चत्वारि दैवतानि अवयवा
यस्य तादृश स्तोम मङ्गल । अथवेति—चतुर्दैवततोमत्वशङ्का प्रतिक्षिप्याह—
यानीति । यानि तानि भवन्तु दैवतानि वा भवन्तु अन्यथा वा भवन्तु, मे मम
मनसि प्रहर्षं प्रतिमानामादरभाजनताविषया तृप्तिरस्त्येवेति भाव ।

काममिति—दैवतमित्येष देवताबुद्ध्यैव शिरो नमयितुं काम युक्तम् । तु
किन्तु प्रणाम न मन्त्रैरर्चित पूजित दैवत यत्र तथाभूत अत एव वार्षल शूद्रकृत
इव स्यात् । सम्भावनाया लिङ् । शूद्रो हि मन्त्रपाठ विनैव पूजयेदिति धर्मशास्त्र-
विधि, मन्त्रपाठस्य निषेधात् । शिरोनामने न कोऽपि दोष, दैवतविशेषनिश्चया-
भावात् मन्त्रपाठस्तु किदन्वयक क्रियेतेति स परित्यज्यत इति भाव ॥ ५ ॥

और देखकर) अहा, पत्थर की कारीगरी कितनी अच्छी बनी है ? मूर्तियाँ भाव
व्यञ्जना में सजीव प्रतीत होती हैं । देवमूर्तियाँ होकर भी मनुष्यमूर्तियाँ जान
पड़ती हैं । देव तो चार ही नहीं । जो हो मुझे तो इन्हें देखकर अपार आनन्द
हो रहा है ।

ये देवमूर्तियाँ हैं, ऐसा समझकर प्रणाम करना उचित है, परन्तु विशेष परि-
चय नहीं होना से बिना मन्त्र पढ़े ही प्रणाम करना होगा और वह परिपाटी शूद्रों
की सी होगी ॥ ५ ॥

(पुजारी का प्रवेश)

देवकृलिकः—भोः ! नैतिककावसाने प्राणिघर्ममनुविष्टानि मयि को नु
खल्वयमासां प्रतिमानामल्पान्तराकृतिरिव प्रतिमागृहं
प्रविष्टः ? भवतु, प्रविश्य ह्यास्ये । (प्रविनति)

भरत—नमोऽस्तु !

देवकृलिकः—न खलु न खलु प्रणामः कायः ।

भरतः—मा तावद् भोः !

यत्कृत्यं किञ्चिदस्मासु विशिष्टः प्रतिपाल्यते ।

किञ्चनः प्रतिपेक्षोऽयं नियमप्रमविष्णुता ॥ ६ ॥

देवकृलिकः दशगृहरक्षकः । नैतिककावसाने नित्यकर्मणा दशपूजास्वल्पस्य, अव-
साने ममासौ, प्राणिघर्मं भोजनम् । अल्पान्तराकृतिः स्वल्पभेदाऽऽकृतिः ममानादि-
तिरित्यर्थः । गार्हपत्ये प्रतिमानामाकृतिस्तत्तुल्याऽऽकृतिरित्यर्थः ।

प्रणामनिषेधे स्वापमानमुत्प्रेक्ष्य निषेधन्तं देवकृलिकं प्रति तदीयतदाचरणया-
नोचितीं प्रतिपिपादयिषन्नाह—मा तावद्भोरिति ।

यत्कृत्यमिति—किमपि यस्मात्पु मन्त्रक्षेत्रेषु जन्तु यत्कृत्यं वाच्यम्, दूषणम्,
(येनाहं प्रणामकरणायोग्यो गृह्येय । अथवा) विशिष्टः मदपक्षयोग्यकृतः मदपक्षपा-
श्रेष्ठ प्रणामानिकारीप्रतिपाल्यने प्रतीदयने (मदपक्षयोग्यकृतः एव प्रणाम कर्तुंमर्हति?) ।
अयम् भवता विधीयमानः प्रतिपेक्ष 'न खलु न खलु प्रणामः कायं' इत्येतादृशवाक्य-
प्रयोगस्य प्रतिपेक्षः किञ्चित् ? अस्मद्दूषणम् अस्मद्दूषणप्रतिपालनयोः कारणयोर्भेदं
केन कारणेन कृतः ? तृतीय कारणमुत्प्रेक्ष्यते—नियमप्रमविष्णुनेति । भरतः नियमेषु
तपोऽनुष्ठानेषु प्रमविष्णुता प्रीति (एवात्र कारणमिति प्रदत्तः) । अथमाशयः—नाहं
दृष्यामि, न वा मदकृत एव प्रणामेऽधिक्रियते, इत्यतस्त्वागणद्वयनिरामे स्वतपसि
प्रीतिभाजो भवत स्वतपाविष्णुतागृह्यकृत एवाव निषेधो भवितुमर्हतीति । अथवा नियमे

देवकृलिकः—अरे नित्यं नियतं पूजापाठं कर लेंगे किं वाद् मेरे भोजनादि के
अन्तर पर इन मूर्तियों से मिलती आकृतिवाला कौन इस प्रतिमागृह में पैदा है ?
अच्छा, भीतर जाकर पता लगाता हूँ । (भीतर जाता है)

भरत—नमस्कार ।

देवकृलिकः—नहीं नहीं, प्रणाम मत करो ।

भरत—क्यों, क्या बात है ?

क्या हममें कोई दोष है ? या हमारी अनेका क्रिया अच्छी

देवकुलिक — न खल्वेतैः कारणैः प्रतिषेधयामि भवन्तम् । किन्तु
 दैवतशङ्कया ब्राह्मणजनस्य प्रणामं परिहरामि । क्षत्रिया
 ह्यत्रभवन्तः ।

भरतः—एवम् । क्षत्रिया ह्यत्रभवन्तः । अथ के नामात्रभवन्तः ?

देवकुलिक.—इक्ष्वाकवः ।

भरतः—(सहर्षम्) इक्ष्वाकव इति । एते तेऽयोध्याभर्तारः ।

एते ते देवतानामसुरपुरवधे गच्छन्त्यभिसरी-

मेते ते शक्रलोके सपुरजनपदा यान्ति स्वसुकृतैः ।

नियोते प्रभविष्णुता स्वातन्त्र्यमेवात्र निषेधे हेतुः ? भवतोऽत्र प्रतिमागृहेऽधिकृतत्वे
 नैकच्छत्रं राज्यमुज्जृम्भते इति वस्तुतोऽधिकारिणोऽपि मम प्रणमनक्रिया वारयत-
 स्तवेय स्वेच्छामात्रानुवर्तनेति भावः ॥ ६ ॥

एतै. दोषकलुषितत्व-प्रणामायोग्यत्व स्वेच्छाचारित्वैः । परिहरामि भवन्तो
 ब्राह्मणाः दैवतभ्रमेण प्रतिमा एता मा प्रणसुरिति निषेधामि । अत्रभवन्तः पूज्याः
 मूर्तिषु चित्रिताः ।

एते त इति—अतिप्रसिद्धा इमे इक्ष्वाकवः देवताना देवानाम् असुरपुरवधे ।
 राक्षसी. सम युद्धे तद्वधे अभिसरी साहाय्यार्थमभिगमन गच्छति । देवसाहाय्यार्थं राक्ष-
 सान् हन्तु स्वर्गं गच्छन्तीति । एतेन इक्ष्वाकूणा देवासाध्यराक्षसवधसमर्पणप्रतिपा-
 दनेन तदपेक्षयाऽधिकपरक्रमक्षालित्व व्यञ्जितम् । एते ते इक्ष्वाकवः स्वसुकृतैः
 स्वाचरितैः पुण्यै सपुरजनपदा. सनगरप्रजा शक्रलोके स्वर्गं यान्ति एतेनैषा पुण्य-

की प्रतीक्षा कर रहे हो ? यह प्रणाम करने का निषेध क्यों कर रहे हो ? क्या यह
 तुम्हारा अधिकारमद तो नहीं है ? ॥ ६ ॥

देवकुलिक—नहीं, इन कारणों से नहीं रोक रहा हूँ, किन्तु इसलिये रोक रहा
 हूँ कि कहीं तुम ब्राह्मण होकर देवमूर्तियों के भ्रम से इन राजमूर्तियों को प्रणाम न
 कर लो । ये क्षत्रियों की मूर्तियाँ ही देवप्रतिमायें नहीं हैं ।

भरत—अच्छा, क्या ये क्षत्रिय महानुभाव हैं, तो फिर ये कौन महानुभाव हैं ?

देवकुलिक—ये इक्ष्वाकुवंशीय हैं ।

भरत—इक्ष्वाकुवंशीय ! यही अयोध्या के राजा ?

ये वे ही लोग हैं, जो असुरपुर के विनाश में देवों की सहायताके लिये जाते थे ।
 क्या ये वे ही हैं, जो अपने पुण्यप्रताप से अपने नगर तथा प्रजाजन के साथ स्वर्ग

एते ते प्राप्नुवन्तः स्वभुजबलजिता वृत्स्ना वसुमती
मेते ते, मृत्युना, ये चिरमनघसिताश्छन्दं मृगयता ॥ ७ ॥
भोः ! यहच्छया खलु मया महत् फलमासादितम् । अभिधीयता
कस्तावदत्रभवान् ?

देवकुलिङ्ग—अयं खलु तावत् सन्निहितसर्वरत्नस्य विश्वजितो
यज्ञस्य प्रवर्तयिता प्रज्वलितधर्मप्रदीपो दिल्लीपः ।
भरत—नमोऽस्तु धर्मपरायणाय । अभिधीयता कस्तावदत्रभवान् ?

प्रकर्षं प्रत्याप्यते । एते ते स्वभुजबलजिता निजबाहुपराक्रमायत्तीकृता कृत्स्ना
ममग्राम्, मही पृथ्वीम्, प्राप्नुवन्तः सतीति दौष । एते ते छन्द मृगयता इच्छा-
मनुवर्त्तमानेन मृत्युना कालेन चिर बहुकालम् अनवसिता अमक्षिता । 'मृतिर्नो
जायताम्' एवमिच्छतामेवेक्षाकूणा प्राणहरणे प्रभवता मृत्युना तत्प्राणहरणे
तदिच्छानुवर्त्तनमेवोपाय इति मृत्युजयप्रभुरव रूप प्रकर्षं । अयत् स्पष्टम् । सुवदना-
वृत्तम्, तल्लक्षण यथा—'सुवदना भ्रौ भ्रौ यो लावुपिस्वरत्तं व' ॥ ७ ॥

महदिति—महत् फलम् महापुरुषप्रतिभावलीकन रूपम् ।

गन्निहितसर्वरत्नस्य सन्निहितानि विश्वविजयापाह्नानि सर्वरत्नानि सकल-
विजानि अनध्यवस्तूनि यस्य तस्य । विश्वजित तदाह्यस्य यज्ञविदोपस्य । प्रवर्त्त-
यिता आहर्त्ता । प्रज्वलितधर्मप्रदीप प्रज्वलित सततप्रदीप धर्म एव प्रदीपो यस्य
स तादृश । धर्मस्य प्रदीपत्वञ्चाद्यतमसानुनोत्तरलोकमार्गप्रदर्शकत्वाद् बोध्यम् ।
धर्मैकपरायणाय धर्म एक परमयत्न गतिर्यस्य तादृश, धर्मैकनिरत इत्यर्थं ।
तस्मै धमनिष्ठाय ।

जाते थे? क्या ये थे ही हैं जो अपने बाहुबल से सम्पूर्ण भूमण्डल को जीतकर अपने
अधिकार में करते थे । और चिनकी मृत्यु अपनी इच्छा पर निर्भर करती थी ॥७॥
अहा ! भ्रकस्मात् मुझे महान् फल मिल गया । अच्छा, बताइये ये कौन
महानुभाव हैं ?

देवकुलिङ्ग—ये हैं महाराज दिल्लीप, जिन्होंने सभी रत्नों को इकट्ठा कर विश्व-
जित यज्ञ पूर्ण कर धर्म प्रदीप को प्रकाशित किया था ।

भरत—धर्मप्राण को नमस्कार । (प्रणाम करता है) आगे कहिये, ये कौन हैं?

देवकुलिक.—न खलु, अतिक्रान्तानामेव ।

भरतः—तेन ह्यापृच्छे भवन्तम् ।

देवकुलिकः—तिष्ठ ।

येन प्राणाश्च राज्यं च स्त्रीशुल्कार्थं विसर्जिताः ।

इमां दशरथस्य त्वं प्रतिमां किं नु पृच्छसे ? ॥ ८ ॥

भरतः—हा तात ! (मूर्च्छितः पतति । पुनः प्रत्यागत्य)

हृदय ! भव सकामं यत्कृते शङ्कसे त्वं

शृणु पितृनिधनं तद् गच्छ धैर्यं च तावत् ।

अतिक्रान्तानामेव इह लीलां सामाप्य लोकान्तरे गतानामेव ।

आपृच्छे, गच्छन्नामन्त्रये । समनकालिकमनुज्ञायाचनामन्त्रणादिकमाश्रय
न्यते, तयश्च कालिदासेन प्रयुज्यते मेघदूते—‘आपृच्छस्व प्रियसख ममुं सुङ्गमा-
लिङ्गघ शैलम्’ इति । ‘आङ्घ्रि नुपृच्छस्यो’ रिति तद् ।

येनेति—येन राजा दशरथेन स्त्रीशुल्कार्थं विवाहावसरे स्त्रियं देयतया प्रति-
ज्ञातं द्रव्यं स्त्रीशुल्कं तदर्थे प्राणाः राज्यं राज्यकर्म च विसर्जिताः, तस्य
दशरथस्य इमा पुरोवर्त्तमाना प्रतिमा त्वं किन्नु पृच्छसे किमिति न जिज्ञाससे ।
जिज्ञास्यचरित्रत्वात्तयाऽभिधानम् । अत्र प्राणा विसर्जिताः, राज्यं च विसर्जित-
मिति लिङ्गवचनविपरिणामेनान्वयः कार्यः, अन्यथैवरीये नपुंसकवहुवचनप्रसक्तिः
स्यादिति बोध्यम् ॥ ८ ॥

प्रत्यागत्य—संज्ञां लब्ध्वा ।

हृदयेति—हे हृदय चित्त ! सकामं पूर्णमनोरथं भव । पूर्णकामत्वं च स्वशङ्कि-
तार्थाविसवादादित्याह— त्वं यत्कृते यस्मिन् विषये शङ्कसे स्वाकर्णनीयत्वेनोत्प्रेक्षते
स्म, तत् स्वाशङ्कितं विषयं शृणु आकर्ण्य निदशङ्कं निरामय स्वशङ्कित पितृमर-
मिति भावः । मध्येमायां जायमानैरशकूनलक्षणैरन्यैश्च विकृतिदर्शनादिनिर्भरदया

देवकुलिक—नहीं जी केवल सुतकों की ।

भरत—अच्छा, अब आप मुझे आज्ञा दें ।

देवकुलिक—रुहरो,

जिन्होंने स्त्री-शुल्क के लिये अपने राज्य और प्राण सब कुछ छोड़ दिये, उन्हीं
महाराज दशरथ की प्रतिमा के विषय में आप क्यों कुछ नहीं जानना चाहते ? ॥

भरत—हा पिताजी (मूर्च्छित होकर गिरता है, फिर होश में आकर)

हृदय, अब तुम्हारी कमाना पूर्ण हुई, जिसकी तुम्हें आज्ञा थी, वह पितृमर-

स्पृशति तु यदि नीचो मामयं शुल्कशब्द-
स्त्वथ च भवति सत्यं तत्र देहो विद्योभ्यः ॥ ६ ॥

आर्य ?

देवकुलिक.—आर्येति इक्ष्वाकुकुलालापः खल्वयम् । कश्चित् कैकेयी-
पुत्रो भरतो भवान् ननु ?

भरत —अथ किम् , अथ किम् । दशरथपुत्रो भरतोऽस्मि, न कैकेय्याः ।

देवकुलिक.—तेन ह्यापृच्छे भवन्तम् ।

पितृपादनिघनवृत्तमकर्णनीयत्वेन सम्भावित तदधुना शृण्वदारभ्यः पूरय मनःकाम-
मिति स्पष्टार्थः । तु किन्तु नीचः गहितः अयं शुल्कशब्दः मां स्पृशेत् यदि मां सम्ब-
ध्नीयात् विषयोऽकुर्यात् , मद्राज्यानिषेचन शुल्कशब्दार्थत्वेन वक्तुरभिप्रेतं चेदित्यर्थं .

(न केवलं कथनमात्रेण किन्तु सत्सत्यत्वपरीक्षणैः) । अथ च सत्यं भवति यदि,
(तद्वचन तदभिप्रायेणोच्यमानं सत्यं यदि) सत्र तर्हि देहः विद्योभ्यः अग्निपृ पाकादिना
शुद्धिं प्रापणीयः । अयमाशय —अग्नोऽपि कृतमहापापः प्रार्थश्चिस्तान्तरेणाशोध्ये
स्वपापे क्वचिदग्निपृटे स्थित्वा प्राणान् जहाति शुद्धयति च, सर्ववाहमपि यदि मदीय-
जन्या मदभिषेचनार्थमेव स्वविवाहशुल्कभावेन राज्य याचमानया प्राणाः पितृपादा-
नामपहारिता इति सत्योक्तिस्तदा अग्निपृटे दग्ध्वा सर्वनिजमयशः सालपिप्यामीति ।)

आर्येति—आर्य इत्येव रूप सामान्येऽपि जने सबहुमानमामन्त्रणं सम्बोधनम्
इक्ष्वाकुकुलोत्पन्नपुरुषसाधारणम् । इयती मुजनता नद्यता मिष्टमापिता चैतेष्वेव
सम्भाव्यत इति मात्रः ।

अथ किम् अङ्गीकारेण इक्ष्वाकुकुलत्वमात्रे स्वीकृतिः प्रदत्ता न सर्वायै, तदाह-
न कैकेय्या इति ।

वृत्तान्तं सुनो और धीरज बाँधो । किन्तु हाय ! यदि श्री-शुल्क में याचित राज्य
का उद्देश्य मैं बनाया गया होऊँगा, तब तो देह की शुद्धि करनी होगी अर्थात्
कड़ी परीक्षा देकर अपना निर्दोषत्व साबित करना पड़ेगा ॥ ६ ॥

आर्य !

देवकुलिक—'आर्य' कहकर बात करना तो इक्ष्वाकुवंशी लोगों का क्रम है,
क्या आप कैकेयीपुत्र भरत तो नहीं हैं ?

भरत—जी हाँ, दशरथ का पुत्र भरत हूँ, कैकेयी का पुत्र नहीं ।

देवकुलिक—अच्छा, अब आप मुझे आशा दें ।

भरत.—तिष्ठ । शेषमभिधीयताम् ।

देवकुलिक—का गतिः ? श्रूयताम् । उपरतस्तत्रभवान् दशरथः ।

सीतालक्ष्मणसहायस्य रामस्य वनगमनप्रयोजनं न जाने ।

भरत—कथं कथमार्योऽपि वनं गतः ? (द्विगुण मोहमुपगतः)

देवकुलिक—कुमार ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

भरतः—(समाश्वस्य)

अयोध्यामटवीभूतां पित्रा भ्रात्रा च वज्रिताम् ।

पिपासातोऽनुधावामि क्षीणतोयां नदीमिव ॥ १० ॥

आर्य ! विस्तरश्रवणं मे मनसः स्थैर्यमुत्पादयति । तत् सर्वमनवशेषमभिधीयताम् ।

का गतिरिति—अयोध्यावृत्तान्तमभिधातुमागृहीतस्य मम कष्टनिवेद्येऽपि तत्किं प्रवृत्तिः कर्तव्यवैतनन्युपायतामापद्य परिताप व्यनक्ति । उपरत मृतः ।

अयोध्यामिति—पित्रा परलोकप्रवासेन भ्रात्रा वनगतेन च वज्रिता परित्यक्ताम् अत एव प्रियजनपरिहीनतया निरानन्दामटवीभूतामरण्यभाव गताम् अयोध्याम् पिपासया पानीयामिलापेण आर्तः पीडितः क्षीणतोया शुष्कजला नदी धारामिव अनुधावामि । अयमर्थः—यथा कोऽपि पिपासार्तं मरुपु शुष्यतोया सरितमनुधावन् विफलामिलापो भवति, तथैवाहमपि प्रियपितृपादस्नेहपरायणभ्रातृदृष्टयोमान्या मपि तान्या विरहिते अयोध्यानामनि पुरे प्रविशामि, तत्रागिलापपूर्त्तं रग्ममवादिदि । उपमात्रालङ्कारः ॥ १० ॥

विस्तरश्रवणं विवरणपूर्वकाकर्णनम्, (पितृभ्रातृव्यमनस्येति शेष) स्थैर्यं आकुलीभाववैधुर्यम्, अनवशेष नि शेषम्, अभिधिष्यमाने राज्यधुरि निधोष्यमाने ।

भरत—ठहरिये, और कुछ कहिये ।

देवकुलिक—क्या किया जाय ? सुनिये । महाराज दशरथ अब नहीं रहे । सीता और लक्ष्मणके साथ राम क्यों वन चले गये ? इसका पता मुझको नहीं है ।

भरत—क्या आर्य भी वन को चले गये ? (फिर मूर्च्छित होते हैं)

देवकुलिक—कुमार, धीरज धरो, धीरज धरो ।

भरत—(होश में आकर)

हाय पिताजी और आर्य राम से शून्य इस वन के समान अयोध्या में जा रहा है, जस कोइ प्यासा आदमी सूखी नदी की ओर दौड़ता जा रहा हो ॥ १० ॥

आर्य, विस्तरपूर्वक सुनते से मेरे मन को कुछ सहारा मिल रहा है, वृष्या पूरा वृत्तान्त कह सुनाइये ।

देवकुलिकः—श्रूयतां, तत्रभवता राज्ञामिपिच्यमाने तत्रभवति रामे भवतो
जनन्याऽभिहितं किल ।

भरत —तिष्ठ ।

तं स्मृत्वा शुल्कदोषं भवतु मम सुतो राजेत्यभिहितं
तद्वैश्याभ्यसन् यत्र व्रज सुत ! वनमित्यार्योऽप्यभिहितः ।
तं दृष्ट्वा बद्धधीरं निधनमसदृशं राजा ननु गतः
पात्यन्ते धिक्प्रलापा ननु मयि सदृशाः शेषाः प्रकृतिभिः ॥
(मोहमुपगत)

अत्र वर्तमानार्थकज्ञानघा कंकेयोक्तं विघ्नस्य अभिप्रेकप्रवृत्तिकालिकत्वमुक्तं तेन
च तादृशव्यवहारस्य नितास्तमनोचिंतयम्, तेमाधिभेदावदृष्टं च व्यञ्जितम् । भवतो
जनन्या एव मात्रा, अत्रापि तस्या नाम्नोनुपादानं क्षोभस्य व्यञ्जनायम् ।

तिष्ठ अलमितोऽप्रेऽभिधामेत्यर्थं । एतावतैव तदाचरितेन तन्मनोवृत्ते परिचये
शेषस्य स्वयमूर्हितुं दाक्यत्वादिति भावः ।

तं स्मृत्येति—त पूर्वोक्त शुल्क वैवाहिकपणम् (अनर्थकारितया) दोष
स्मृत्वा मनमिष्य 'मम कंवेय्या, सुतो भरतो राजा भवतु' इति कंवेय्या राज्ञेऽभि-
हितमुक्तम् तद्वैश्या स्वोक्तस्यार्थस्य राज्ञः स्वीकृतत्वे पुत्रकर्तृकराजत्वप्राप्ते जातेन
विश्वासेन आश्वसन्त्याऽशिवसफलतया सन्तोष बहुरत्या तथा कंवेय्या आर्य, रामोऽपि
'श्व वन व्रज चतुर्दश वर्षाणि वने निवासे व्यतिगमयेति' अभिहितः उदीरितः । तं
राम बद्धधीरं 'व्रमवासाय प्रस्थातुकामेन तदुपयुक्तवसनादिघाटनीयमि'ति परिहितव-
त्कल दृष्ट्वा राजा दशरथः असदृश स्वरूपानुरूप निधन मृग्यु गत । पुत्रशोकेन
प्राणान् पर्यंताधोदिगर्थः । (अधुना कंवेय्या तथाऽनुष्ठिते) शेषा सर्वस्यास्य

देवकुलिक—सुनिधे, जब माननीय महाराज राजकुमार राम का अभिप्रेक कर
रहे थे उस समय आपकी माता ने कहा.....

भरत—बसकीजिये,

उस अनर्थकारी विवाहशुल्क की याद आने से कहा होगा कि 'मेरा पुत्र
राज्याधिकार हो' । इस प्रार्थना के सफल हो जाने से उसका हार्दिक घल बंद गया
होगा, और उसने दूसरी प्रार्थना की होगी कि—राम वन को जाय । बद्धकलधारी
रामको वन जाते देख राजा बेमौत मर गये होंगे । इन सब बातों से दुःखी प्रजा
इन सभी बातों का मूल मुझे मानकर धिक्कारती होगी । उसका धिक्कारना टीक
भी है ॥ ११ ॥

(मूर्च्छित हो गये)

(नेपथ्ये)

उत्सरतार्याः ! उत्सरत ।

उत्सरह अय्या ! उत्सरह ।

देवकुलिकः—(विलोके) अये,

काले खैल्वैगिता देव्यः पुत्रे मोहमुपागते ।

हस्तस्पर्शो हि मातृणामजलस्य जलाञ्जलिः ॥ १२ ॥

(ततः प्रविशन्ति देव्यः सुमन्त्रश्च)

सुमन्त्र—इत इतो भवत्यः ।

दुराचरणस्य फलभूताः धिक्प्रलापा धिगित्युक्तयो निन्दावादा. प्रकृतिभिः अमात्य-
पुरोगै. पुरजनैः मयि भरते पात्यन्ते निधीयन्ते । अयमेव भरतो यदधमयमनर्ष
समुपगतो धिगिमम् इत्यधिपतिन्ति जना इति भावः । तिष्ठेत्यनेन दौषस्य स्वयमूहर्त
प्रतिभात तदनेन प्रकाशितमिति बोध्यम् ॥ १२ ॥

दशरथप्रतिमा साक्षात्कर्तुं कौसल्यादयो देव्य आजिगमिषन्ति, तदेतदवस्थानु-
रूपं समुदाचारमाचरति परिजनः—उत्सरतेत्यादिना ।

कारणे इति—देव्यः कौसल्यादयो राजाङ्गनाः काले उचिते समये लागताः
उपेताः सन्तु । तदेव समर्थयितुमाह—पुत्रे इति । पुत्रसमाश्वासनावसरस्योपस्थित-
त्वादश्रासामधुनोपसर्तिः कालान्तरोपसरथपेक्षया समधिकोपयोगेत्याशयः । ननु
सामान्यजन्मैर्नापि मूर्च्छितस्य भरतस्य वीजनादिनोपचारेण मूर्च्छादा निरसनीयत्वे
तन्मातृणामुपस्थितिर्नाधिकप्रयोजनेत्याशङ्कामाह—हस्तेति । मातृणां हस्तस्पर्शं
मातृभिः क्रियमाणः पाणिकरणकः स्पर्शः अजलस्य जलरहितस्य जलार्थिनः जला-
ञ्जलिः स इव तृप्तिप्रदो मातृहस्तस्पर्श इति भावः । अत्र सामान्येन विशेषसमर्थ-
नरूपोऽप्यन्तरन्यासोऽलङ्कारः ॥ १२ ॥

(नेपथ्ये मे)

हट जाह्ये । हट जाह्ये ।

देवकुलिक—(देखकर) अच्छा,

पुत्र के मूर्च्छित होने पर मातायें आ गईं, घडा अच्छा हुआ । क्योंकि पुत्र के
लिये माता का हस्तस्पर्श प्यासे के लिए जलधारा के समान हुआ करता है ॥१२॥

(देवियों तथा सुमन्त्र का प्रवेश)

सुमन्त्र—महारानि, आपलोग इधर से आवें ।

इदं गृहं तत् प्रतिमानृपस्य नः समुच्छ्रयो यस्य स हर्म्यदुर्लभः ।
 अयन्प्रितैरप्रतिहारिकागतेविना प्रणामं पथिकैरुपास्यते ॥१३॥
 (प्रविश्यावलोच्य) भवत्यः ! न गलु न गलु प्रवेष्टव्यम् ।
 अयं हि पतिः कोऽपि वयस्य इव पार्ययः ।

देवकुलिकः—

परशङ्कामलं कर्तुं गृह्यतां भरतो ह्ययम् ॥ १४ ॥
 (निष्काल)

इदमिति । यस्य प्रतिमागृहस्य समुच्छ्रय भोगरयम्, हर्म्यदुर्लभं, प्रासाद-
 दुराप म प्रसिद्ध, इतिदं नितरा प्रसिद्धम्, न अस्माकं हतनाम्नानां प्रतिमा-
 नृपस्य प्रतिमारूपणावशिष्टस्य च प्रतिमागृहम् अस्तीति शेषः । (यत् इदम्
 प्रतिमागृहम्) अप्रतिहारिकागते द्वारपालनैरपश्येण प्रविष्टैरत एव अयन्प्रितै
 कपाटादिनिष्पन्नगरहितै पथिकै अथवा विना प्रणामम् अतरेणैव नमस्कारम्
 उपस्थिते मार्गश्रमापनोदनाय निगान्निवाहनाय वा अध्युष्यते । मासा नृपस्य भवन
 प्रतीहारिद्वारागते, पदे पदे अयन्प्रितै अमात्यादिभिर्गपि प्रणामादिममृचित्तदिष्टा-
 चारपूर्वकं प्रविश्यते नैव्यते च, प्रतिमागृहमिदं तु पथिकै स्वय निरवरोधं प्रविश्यत
 प्रणामादिबन्तरेणैवाधुष्यते चेति प्रतिमागृहस्य राजगृहान्वयनतामत्रो व्यतिरेकः ॥

प्रविगन्तीना देवीना निपथ कृत, मप्रति तत्कारणमाह—अयमिति ।
 वयस्य वयसि वत्तमानस्तर्णः पादिव इव दारय इव कोऽपि पतिः भूमौ निप-
 तित । अस्तीति शेषः ।

परशङ्कापर भरताद्विनाशमिति शङ्कावितर्कं कर्तुं भूयस्वुषा, परोऽयमिति मा
 णश्छिष्टा इति माव । नियमेन बोधयन्नाह—अयं भूमौ भरत पतित गृह्यताम्, उत्पाय
 अक्षुमारोप्यशीतजलबीजनादिकोपचारैः प्रकृतिमानतुमिम प्रमत्ततामिति यावत् ॥

यह है कि प्रतिमारूप से अवस्थित महाराज का सदन जो ऊचाई में राज-
 महलों से भी बड़ा है । यात्री लोग यहाँ जिना रोक-टोक के आते जाने और जिना
 प्रणाम के उपासना करते हैं ॥ १३ ॥

(बैठकर और देखकर) आप अन्दर मा आयेँ,

यहाँ कोठे कुमार गिर पया है । मारुम पड़ता है जैसे राजा दशरथ की
 जवानी की देह हो ।

देवकुलिक—आप दूसरे श्री आनन्दा मत करें, ये भरत हैं, इन्हें संभारिये ॥ १४ ॥
 (जाता है)

देव्यः—(सहसोपगम्य) हा जात ! भरत ! (हा जाद ! मरद !)

भरतः—(किञ्चित् समाश्वस्य) आर्य !

सुमन्त्रः—जयतु महा (इत्यर्घोक्ते सविषादम्), अहो स्वरसादृश्यम् !
मन्ये प्रतिमास्थो महाराजा व्याहरतीति ।

भरत --अथ मातृणामिदानीं काऽवस्था ।

देव्यः—जात ! एषा नोऽवस्था । (अवगुण्ठनमपनयन्ति)
जाद ! एसा णो अवस्था ।

सुमन्त्रः—भवत्यः ! निगृह्यतामुत्कण्ठा ।

भरतः—(सुमन्त्रं विलोक्य) सर्वसमुदाचारसन्निकर्षस्तु मां सूचयति ।
कञ्चित् तात ! सुमन्त्रो भवान् ननु ?

स्वरसादृश्यं वाग्मङ्गीतुल्यत्वम्, येन भरते वदति प्रतिमागतो महाराजो वदतीति माहेशोऽपि चिरसहचरो जनो भ्राम्यति ।

इदानीं तातपादनिधनरामप्रवामानन्तरम् ।

अवगुण्ठनमपनयन्ति—अवगुण्ठनपटमपनीयं स्वशिरःसिन्दूरप्रमोषं शिरोघूनन-
जनितं श्रययु च दर्शयन्ति, तेन नितान्तक्लेशावस्थाऽनक्षरोच्चारणमेवावेदिता भवति ।
निगृह्यता मनस्सु नियम्यताम् । उत्कण्ठा आवेगः ।

सर्वसमुदाचारसन्निकर्षः सर्वस्मिन् सर्वप्रकारके अवगुण्ठनापनयनादिरूपे (पुत्र-
विस्रब्धवृद्धमन्त्रिमिन्नपुरुषसन्निकर्षे विधातुमयोग्येऽपि) सन्निकर्षः सन्निधिस्थितस्तु
मा सूचयति बोधयति 'अमुको भवानि'ति अनुमापयति । अनुमितमेवार्थं निश्चयायोदा-
हरति—कञ्चिदिति । अवगुण्ठनापसारणादिककार्यं राजदाराणामतिविविक्ते प्रियपुत्रा-

रानियाँ—(वेग से समीप जाकर) हा पुत्र ! भरत !

भरत—(कुछ होश में आकर) आर्य !

सुमन्त्र—जय हो महा.....(आधा कहकर ही शोक से रककर) अहा !
कितना स्वरसादृश्य है ? ज्ञात होता है जैसे दशरथ की प्रतिमा ही बोल रही हो ।

भरत—माताओं की क्या अवस्था है ?

रानियाँ—पुत्र, यह हमारी अवस्था है । (धूँधट हटाती है)

सुमन्त्र—देवियों, अपने आवेग को रोकें ।

भरत—(सुमन्त्र को देखकर) सभी प्रकार के व्यवहार में आपकी उपस्थिति
से मुझे जान पड़ता है, आप सुमन्त्र हैं ?

सुमन्त्र — कुमार ! अयं किम् । सुमन्त्रोऽस्मि ।
अन्वास्थ्यमानश्चिरजीवदोषैः कृतघ्नभावेन विडम्ब्यमानः ।
अहं हि तस्मिन् नृपतौ विपन्ने जीवामि शून्यस्य रथस्य सूतः ॥१५॥
भरत — हा तात ! (उच्यते) तात ! अभिवादनक्रममुपदेष्टुमिच्छामि
मातृणाम् ।

सुमन्त्र — यादृम् । इयं तत्रभवतो रामस्य जननी देवी कौसल्या ।

भरत — अम्ब ! अनपराद्धोऽहमभिवादये ।

द्विपरिजनादिमात्रमभिधाने सम्भवति, भवति च सन्निहिते वतामिराचरितमिति
कार्येण रूपादिर्मवादेन चात्र भरतस्य सुमन्त्रपरिचयो बोध्यः ।

अन्वास्थ्यमान इति—चिरजीवदोषैः दीर्घजीविषुष्यसुलभैः स्वप्रियजन-
विषदुपनिपातप्रत्यक्षीकरणादिरूपैर्दूषणैः अन्वास्थ्यमानः अनुगम्यमानः, कृतघ्नभावेन
कृतघ्नतया विडम्ब्यमानः लोकैः कृतघ्नोऽप्यमिति परिहास्यमानः, (स्वामिमरणेऽपि
तदननुवृत्त्या परिहासः) अहं सुमन्त्र तस्मिन् प्रसिद्धपराक्रमे नृपतौ विपन्ने
विषदुष्यस्ते मृत इत्ययं, शून्यस्य राज्ञा रहितत्वेन रिक्तस्य रथस्य सूतश्चालकः
जीवामि अयञ्चित् प्रणान् धारयामि । अयमाशयः—यद्यहं चिरजीविता नाप्स्यम्;
ईदृशं राजमरणरामवनवासादिदर्शनावसरं मनोव्ययकं नाध्यगमिष्यम्, राजनि मृते
तद्गुणवृत्त्यकरणत्वात् कृतघ्नोऽप्यमिति लोकानां परिहासस्य पात्रता नाश्रयिष्यम्, मृते
च राजनि शून्य रथं नावाहयिष्यमिति सर्वमपीदं मदीयचिरजीविताविजृम्भनमिति
विद्मम जीवनम् ॥ १५ ॥

अभिवादानेति—बहुकालं प्रोध्य दृष्टासु मानृषु का केति विशेषमजानन् कस्य
प्रथमं प्रणाममुपनयेदिति व्यामोहेनेदृशं प्रश्नः ।

अनपराद्धः अकृतापराधः, एतेन केकय्या कृते कुकर्मणि स्वासम्भतिः प्रकाशिता ।

सुमन्त्र—कुमार, हाँ मैं सुमन्त्र ही हूँ ।

दीर्घकालजीविता ने सुमन्त्रमें अनेक बुराहयाँ ला दीं । कृतघ्नताने मुझे विडम्बित
किया, और अब मैं राजा के मर जाने पर मुझे रथ का सारथि हूँ ॥ १५ ॥

भरत—हा तात, (उदकर) तात, अब मैं माताओं के प्रणाम करने का क्रम
जानना चाहता हूँ ।

सुमन्त्र—अच्छ । ये हैं राम की माता देवी कौसल्या ।

भरत—अम्ब, निरपराध मैं आपको प्रणाम करता हूँ ।

पितुर्मे नौरस पुत्रो न क्रमेणाभिपिच्यते ।

दयिता भ्रातरौ न स्युः प्रकृतौनां न रोचते ? ॥ १६ ॥

कैकेयी—जात ! शुल्कलुब्धा ननु प्रष्टव्या ?

जाद ! सुतकलुब्धा णणु पुच्छिदव्वा ?

भरतः—वल्कलैर्हृतराजश्रीः पदातिः सह भार्यया ।

वनवासं त्वयाऽऽज्ञप्तः शुल्केऽप्येतदुदाहृतम् ॥ २० ॥ -

कीदृशः सम्बन्धी । पुत्रो न भवति किमित्यर्थं, । आर्यं राज्येऽभिपिच्यमाने त प्रति-
पिच्य मूदर्यं राज्यं याचमानाया भवत्याः राम प्रति पुत्रभावो न स्थित इति भवत्या-
ऽनुचितमाचरितमिति ।

पितुरिति—आर्यं रामः मे मम पितुः औरस धर्मभार्यायां स्वबीजोत्पन्न-
पुत्रो न भवति किम् ? काव्वा तस्य तद्भावोऽभिपेय । क्रमेण वय क्रमेण नामिपि-
च्यते ? पुत्रेषु ययसा प्रथमः-राज्येऽभिपेच्य इति व्यवहारः, किमस्मत्कुले नास्ति ?

अस्त्वेवेत्यर्थः । भ्रातर, आर्यरामादयो मत्सहिताः दयिता, अन्योन्यस्नेहपरायणाः
न स्युः किम् ? न भवन्ति किम् ? सन्त्येवेत्यर्थः । (आर्यत्वाभिपेक) प्रकृतौनाम्
अमात्यादीनां न रोचते न प्रिय किम् ? अयमाशय —रामे पितुरौरसे पुत्रे कुलस-
मुदाचारमनुसृत्य ज्येष्ठक्रमेणाभिपिच्यमाने तदभिपेके बन्धुविरोधस्य प्रकृतिकोपस्य
चासम्भावनाया भवत्या तदभिपेके विघ्नमाचर्यं सर्वथातिदारुणं चरितमिति भावः ॥

प्रष्टव्येति—शुल्के प्रतिज्ञातस्यार्थस्यावश्यप्रदेयतया त याचमानाहं न केनापि
निन्दिताचरणदोषेण मत्संनीयेति भावः ।

वल्कलैरिति—शुल्कप्रतिज्ञातमर्थं याचितुमहमधिकारिणीति मापणेन कुपितो
भरत । पुत्रराज्याभिपेकस्य यथा कथञ्चित्प्राप्तयाचनयोग्यत्वेऽपि रामवनवासस्य सर्व-
थाऽयोग्यत्वमाहानेन । वल्कलैः चीरैर्हृतराजश्री, अपहृतराजलक्ष्मीक, पदातिः पाद-
चारी भार्याया सह भार्यासहितः (आर्यरामः) त्वया वनवासम् आज्ञप्त वने वसेत्या-

क्या वे मेरे पिता के औरस पुत्र नहीं ? क्या उनका अभिपेक ज्येष्ठ के क्रम से
प्राप्त नहीं ? क्या हममें भ्रातृप्रेम का अभाव है ? क्या राम का अभिपेक प्रजातु-
मोदित नहीं ? ॥ १६ ॥

कैकेयी—बेटा, क्या विवाहशुल्क का लालच रखने वाली से ऐसे प्रश्न किए
जाते हैं ?

भरत—तुमने राम को राज्य से वञ्चित कर चीर पहना कर सीतासहित पैदल
को भेजा, यह भी विवाहशुल्क में कहा गया था ? ॥ २० ॥

कैकेयी—जात ! देशकाले निवेदयामि ।

जाद ! देशकाले निवेदेमि ।

भरतः—

अथशसि यदि लोभः कीर्तयित्वा किमस्मान्
किम् नृपफलतर्पः किं नरेन्द्रो न दद्यात् ।

अथ तु नृपतिमातेत्येष शब्दस्त्वयेष्टो
वदतु भवति ! सत्यं किं तवायो न पुत्रः ? ॥ २१ ॥

दिष्टः । शुक्रे एवमपि सभार्यस्यायस्य वनगमनमपि उदाहृत कथितपूर्वम् किम् ?
नाम पुत्रामिषेचनमुदाहृतम्, आर्यवनपमनं तु कदाचिदपि नोदाहृतमितिदानीमकाण्डे
क्लित्तवत्वसीति पिक् त्वां द्रुबुद्धिमिति भावः ॥ २० ॥

निवेदयामि रामवनवासज्ञापदानस्य कारणं समुचिते देये बाले च त्वा बोधयि-
ष्यामीति तदाशयः । एतेन पुत्रस्य प्रलोभनार्थं तथा प्रपञ्चप्रथनप्रकारः प्रकटितः ।

अथशसीति=यदि अथशसि कीर्तयित्वा लोभो यदि चेति अस्मान् कीर्त्त-
यित्वा किम् ? अस्मन्नामकीर्त्तनेन किं प्रयोजनं तेन विनैवायशस सुलभत्वादिति
भावः । एवं चाकीर्त्तिमात्रस्योद्देश्यत्वे प्रकारान्तरेणापि तस्मान्ममत्वे भरतार्थं राज्यं
याच इति मदीयनाम्नः सम्बन्धनस्य तत्र नितरामनावश्यकत्वमिति भावः । नृपफल-
तर्पः राजप्रियत्वप्राप्त्यभ्युत्थस्तुतृष्णा किमु ? नरेन्द्रः किं न दद्यात् ? सर्वार्थात्तरि
राजनि तत्र प्रिये तरुलोमोऽपि तथानुचित एवेत्याशयः । अथ तत्र नृपतिमाता राज-
जननी इत्येव शब्दः (स्वतोषकत्वेन) इष्ट अमिलपितश्चेत्, (अपि) भवति, आर्यः
रामः तत्र पुत्रः न भवति किम् ? इति सत्यं वदतु, सत्यभावेन रामस्य पुत्रत्वे तदव्य-
याभावे वा स्वां भावनामाविष्करोतु । एवं च रामस्य तत्र पुत्रत्वे राजमातेति विरुद्ध-
मपि त्वया तस्मिन्नभिपिच्यमानेऽपि लभ्यतया वृथा कर्तवितोऽयं लोक इति भावः ।
मालिनीवृत्तम्, तल्लक्षणं यथा—'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' इति ॥ २१ ॥

कैकेयी—उचित स्थान और अवसर मिलने पर कभी बतारूँगी ।

भरत—यदि तुम्हें अथश ही मील लेना था तो इस बीच मैं मेरा नाम क्यों ले
लिया ? यदि शसिअर्थ की कामना थी तो महाराज से तुम्हें क्या नहीं मिल सकता
था ? यदि तुम्हें राजमाता कहलाने की लालसा थी तो सच बता, क्या राज तुम्हारे
पुत्र नहीं हैं ? उनके राजा होने से तुम राजमाता नहीं बन सकती थी ? ॥ २१ ॥

कष्टं कृतं भवत्या,

त्वया राज्यैषिण्या नृपतिरसुभिर्नैव गणितः

सुत ज्येष्ठ च त्वं व्रज वनमिति प्रेषितवती ।

न शीर्णं यद् दृष्ट्वा जनकतनयां वल्कलवती-

महो धात्रा सृष्टं भवति ! हृदय वज्रकठिनम् ॥ २२ ॥

सुमन्त्र — कुमार ! एतौ वसिष्ठवामदेवी सह प्रकृतिभिरभिपेक पुर-
स्कृत्य भवन्त प्रत्युद्गतौ विज्ञापयतः—

गोपहीना दधा गावा विलय यान्त्यपालिताः ।

एव नृपतिहीना हि विलय यान्ति वै प्रजाः ॥ २३ ॥

रचयेति । भवांत, राज्यैषिण्या पुत्राद्य राज्य कामयमानया त्वया नृपति राजा

असुभिर्न गणितं प्राणै परित्यज्यमानो नापक्षित (एतेन मनुद्रोह उक्त) ज्येष्ठसर्व-
श्रेष्ठं सुत पुत्र राम च त्व वन प्रेषितवती अस्मात् मदभिपेकदशनसतृष्णात् नगरान्नि-
ष्कासितवती (एष पुत्रद्रोह), जनकतनया सीता वल्कलवती धाराणि वसाना दृष्टवा
यत् तव हृदय न शीर्णम् द्विधा न विदलितं तत् तव हृदय धात्रा वज्रकठिनं वज्रवद्
कर्कशं सृष्टम् । अयमाशय — त्वया राज्यलोभेन भर्तारं विवादय त्वा कठोरता प्रद-
शिता ततोऽपि पुत्रस्य वनवासाकामनया जननीहृदयद्वारा दीरात्म्य व्यञ्जितम्, यथा
कथञ्चिदनयोर्बुंतयोर्लोभप्रालम्ब्यनल्पनीयत्वेऽपि सीतासमाता पुत्रवद्बूलकलानि परि-
दधती वीक्षणानामास्तथ हृदय यन्न मि न तदवश्यं तस्य दृष्टसाधारणं काठिन्यमिति ।

प्रकृतिभि अमात्यादिभि, अभिपेकं तदुपयागिद्रव्यजातम्, पुरस्कृत्य सह नीत्वा ।

गोपहीनेति—यथा गोपहीना गावोऽपालिता (सत्य) विलय विनाश यान्ति
तथैव प्रजा नृपतिहीना राजाविरहिता विलय यान्ति विपद्यन्ते, बाह्यान्तराक्रमणदोषेऽ

सुमने बड़ा बुरा किया—

राज्यलालसा से तुमने महाराजके प्राणों की कुछ चिन्ता न की। अपने बड़े हृदयके
को तुमने वन भेज दिया। जनकदुलारीसीताको वल्कलवसना देखकर भी तुम्हारा
हृदय नहीं विदीर्ण हुआ? विधाता ने तुम्हारे हृदयको वज्र कठिन बनाया है ॥ २२ ॥

सुमन्त्र—कुमार, भगवान् वसिष्ठ और वामदेव, प्रजावर्ग तथा अमात्यो के
साथ आपके राज्याभिपेक के लिये आपको सूचित करते हैं कि—

जिस प्रकार गोपाल के बिना गायें बिनट हो जाती हैं, ठीक उसी तरह राजा
प्रजाओं का नाश हो रहा है ॥ २३ ॥

भरत — अनुगच्छन्तु मां प्रकृतयः ।

सुमन्त्र — अभिपेकं विसृज्य क्व भवान् यास्यति ?

भरत — अभिपेकमिति ! इहात्र नवस्ये प्रदीयताम् ।

सुमन्त्र — क्व भवान् यास्यति ?

भरत — तत्र यास्यामि यत्रासी चर्तते लक्ष्मणप्रियः ।

नायोध्या तं विनायोध्या भ्रायोध्या यत्र राघवः ॥ २४ ॥

(निष्क्रान्ता. सर्वे)

तृतीयोऽङ्कः ।

भ्यस्त्रानुरनावादिति भावः ॥ २३ ॥

अनुगच्छन्तु मदीमांसा पालयन्तु, एतेन राज्यभारस्य स्वीकार, कृत । केवल-
मभिपेकस्य स्वीकारा न कृत । अथवा यत्राह मामि तत्र चल्तु प्रकृतय, तत्रैवा-
भिपेकस्यापि निर्णयो भवेदिति भावः ।

'अनुगच्छन्तु मां प्रकृतय' इत्यनेन गमने सूचिते 'क्व यास्यमी'ति सुमन्त्रेण
पृष्टे बहुतरमाह—तत्रेति । 'लक्ष्मणप्रिय' इत्युक्त्वा यं सम्बोधनात् प्रति ईर्ष्याकां
दोष सुगमम् ॥ २४ ॥

इति संवित्पण्डितश्रीरामचन्द्रमित्रकृते 'प्रतिमाताटकप्रकाशे' तृतीयोऽङ्कः ॥ २ ॥

भरत—प्रजायें मेरे साथ चलें ।

सुमन्त्र—राज्याभिपेक को छोड़ कर आप कहाँ जायेंगे ?

भरत—अभिपेक ? अभिपेक टुनको दिया जाय ।

सुमन्त्र—आप कहाँ जायेंगे ?

भरत—मैं वहाँ जाऊँगा, जहाँ लक्ष्मणप्रिय राम हैं, उनके विना भयोध्या
भयोध्या नहीं रही । राम जहाँ, भयोध्या वहाँ ॥ २४ ॥

(सत्रका प्रस्थान)

तृतीय अङ्क समाप्त ।

(ततः प्रविशति भरतो रथेन सुमन्त्र सूतञ्च)

भरतः—स्वर्गं गते नरपतौ सुकृतानुयात्रे

पौराश्रुपातसलिलेरनुगम्यमानः ।

द्रष्टुं प्रयाम्यकृपणेषु तपोवनेषु

रामाभिधानमपरं जगतः शशाङ्कम् ॥ १ ॥

सुमन्त्रः—एष एष आयुष्मान् भरतः—

दैत्येन्द्रमानमथनस्य नृपस्य पुत्रो

यज्ञोपयुक्तविभक्तस्य नृपस्य पौत्रः ।

भ्राता पितुः प्रियकरस्य जगत्प्रियस्य

रामस्य रामसदृशेन पथा प्रयाति ॥ २ ॥

स्वर्गमिति—सुकृत पुण्यमनुयात्र सहगामि यस्य तस्मिन् सुकृतानुयात्रे पुण्यानुग नरपतौ राजनि स्वर्गं गते दिवमुपयाते पौराणा पुरवासिनामश्रुपातसलिलैर्वापजलैरनुगम्यमानः अहम् अकृपणेषु उदारेषु (रमणीयषु) तपोवनेषु (वसन्तमिति सम्बन्धनीयम्) रामाभिधान रामसङ्गं जगतः ससारस्य अपर प्रसिद्धचन्द्रादतिरिच्यमान शशाङ्क जगदाह्लादकत्वशीतलतीलत्वादिना चन्द्र द्रष्टुं प्रयामि गच्छामि । रामे चन्द्रत्वारोपाहूपकम् । ईदृशाः प्रयोगाः परशापि दृश्यन्ते । यदा नैपधीये—'इदं तमुर्वीतलतीललङ्घतिम्' इति । वसन्ततिलकं वृत्तम् ।

दैत्येन्द्रेति—दैत्येन्द्रोऽसुरश्रेष्ठस्तस्य मान दपंस्तन्मथनस्य दलनकारकस्य असुराधिमाहङ्कारापहारिणो दशरथस्य नृपस्य राज्ञ पुत्रस्तनयः । यज्ञोपयुक्तविभक्तस्य यज्ञार्थविनियुक्तमनसम्पदो नृपस्य अजस्य पौत्रः । पितुः प्रियकरस्य तातेप्सिताचारिणः जगत्प्रियस्य जगतीहितकारिणः । रामस्य भ्राता भरत रामसदृशेन रामतुल्येन पथा

(रथ में बैठे हुए भरत, सुमन्त्र और सारथि का प्रवेश)

भरत—महाराज दशरथ अपने पुत्र्य के बल स्वर्ग गये । मैं पुरवासियों के अधु-प्रवाह का संबल लेकर, उदार, तपोवन में रमते हुए राम को देखने जा रहा हूँ, जो पृथ्वी पर के दूसरे चन्द्र हैं ॥ १ ॥

सुमन्त्र—यह चिरायु भरत—

दत्तराज के अभिमान को दूर करनेवाले दशरथ के पुत्र, समूची राज्यससुद्धि को यज्ञों में लगा देने वाले आज के पौत्र, पितृप्रिय राम के भ्राता, राम ही भौतिक आदर्श-पथ पर जा रहे हैं ॥ २ ॥

भरत — भोस्तात !

सुमन्त्र.—कुमार ! अयमस्मि ।

भरतः—क तत्रभवान् ममायों नामः ? कामी महाराजस्य प्रतिनिधिः ।

क मन्त्रिदर्शनं माख्यताम् ? कासी प्रत्यादेशो राज्यलुब्धायाः
कैकेय्याः ? क तत्र पात्रं यजनः ? कामी नरपतेः पुत्रः ? कासी
सत्यमनुव्रतः ?

मम भानुः प्रियं कर्तुं येन लक्ष्मीयिस्तजिता ।

मार्गेण प्रयाति । याहदीन मार्गेण रामो व्यवहरति, साहदीन विश्वप्रदंरथेन मार्गेण
भरतोऽपि व्यवहरतीति यावत् । अत्र विभृषितामहृत्प्रातृणां तसद्गुणगणकीर्तन
भरतोऽपि तेषां गुणानां स्वभावादिषु स्थितिरायेदिता । विदोषणानां गामिप्रवलय
परिवराऽत्रालङ्कार, विदोषणानां गामिप्रायस्ये परिवर' इति सरलदशानात् ।
पूर्वोक्तमेव वृत्तम् ॥ २ ॥

महाराजस्य प्रतिनिधिः स्वानीय एतेन तस्मिन् भरतस्य वितरीय बहुमान
गृह्यते. 'माख्यतां बालगणितानां तत् समीच्येन निदर्शनात् स्वान्त । प्रत्यादेशेन
तिरस्त्रिया, राज्यप्राप्तये एतेन व्यवहरन्त्याः कैकेय्याः प्राप्तमपि राज्यं गुणाय
मयमानो यथाय प्रतिष्ठमाना रामो भूतिरिय सत्पराभवस्य भवति म्येति भावः ।
नरपते पुत्रः साहदयठोरतरशाशास्त्रेऽप्यमृष्टमनोमायतवा मयार्थभावेन पुत्रवद-
व्यवहारार्हं, एतेन स्वगयाधनवयं व्यक्षितम् । अन्वत्पदमिति लक्षणाभ्याने
स्वयन्मूढनीयम् । अत्र मंत्रं 'प्रत्यादेशो अनुष्मताम्, अयणीविदग्धानाम्, घोरेषः
साहसिकानाम्' इत्यनेनोत्प्रेषालङ्कार, सरलक्षणं यथा— कश्चिद् भेदाद् घटीतृणां
विषयानां तथा क्वचित् । एकस्यनेकप्राप्त्येति मः म उल्लेख उच्यते ॥' इति ।

ममेति—मम भरतस्य मायू' कैकेय्या. प्रियं त्रित कर्तुं येन रामेण लक्ष्मी

भरत—तात !

सुमन्त्र—राजकुमार, यही तो हैं ।

भरत—कहाँ हैं हमारे पूज्य नाम ? कहाँ हैं वे महाराज के प्रिय प्रतिनिधि ?
कहाँ हैं वे धीरों के उत्तम उदाहरण ? कहाँ हैं वे राज्यलुब्धा कैकेयी के तिरस्कर्ता ?
कहाँ हैं वे यशोनिधि ? कहाँ हैं वे महाराज के शार्दन पुत्र ? कहाँ हैं वे सत्यमंकरण ?
मेरी माया की दृष्टिभिन्न के विपु गिन्होंने राज्य में ऐश्वर्य को टुकरा दिया ।

तमहं द्रष्टुमिच्छामि दैवतं परमं मम ॥ ३ ॥

सुमन्त्र — कुमार ! एतस्मिन्नाश्रमपदे—

अत्र रामश्च सीता च लक्ष्मणश्च महायशाः ।

सत्यं शीलं च भक्तिश्च येषु विग्रहवत् स्थिता ॥ ४ ॥

भरत—तेन हि स्थाप्यतां रथः ।

सूत.—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । (तथा करोति)

भरत—(रथादवतीर्थं) सूत ! एकान्ते विश्रामयाश्वान् ।

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । (तिष्ठान्तं ।)

भरत.—भोस्तात ! निवेद्यतां निवेद्यताम् ।

(उपस्थितापि) राज्यश्री. विसर्जिता परित्यक्ता, त मम परम सतताराध्य दैवत द्रष्टुं विलोकयितुम्, अह भरत, इच्छामि इच्छन् यामीति । अन्यदीयमातु प्रियं कर्तुं य. समुपस्थिता राज्यश्रियं परिहरति, सोऽयमसाधारणमाहात्म्यवत्तया देवो-पम श्रद्धयाऽऽराध्य इति तमह द्रष्टुं गच्छामीति तदाशयः ॥ ३ ॥

अत्रेति । महायशा प्रचुरविमलकीर्ति राम., सीता, लक्ष्मणश्च तिष्ठन्तीति शेषः । येषु रामसीतालक्ष्मणेषु सत्यं शीलं भक्तिश्चेति त्रयम् । क्रमशः सरथनिष्ठा, स्नेहो, गुरुजनविषयो भावश्चेति त्रितयं विग्रहवन् मूर्त्तिभागिव स्थितम् । तत्र रामे सत्यं सदा सत्यपालनपराण्यत्वात्, सीताया शीलं परमनुरागाधीनचित्तत्वात् लक्ष्मणे भक्तिः संततज्ञाप्रतिपालनादिति बोध्यम् ॥ ४ ॥

विश्रामय मार्गश्रममपाकर्तुं विश्रान्तान् कारय ।

अपने इन्हीं आराध्य देव के दर्शन की कामना है ॥ ३ ॥

सुमन्त्र—कुमार, इसी आश्रम में—

महायज्ञा राम, सीता और लक्ष्मण वास करते हैं; जहाँ ऐसा मालूम पड़ता है, मानो मूर्त्तिमान् सत्य, भक्ति और शील रहते हों ॥ ४ ॥

भरत—अच्छा, तो रथ रोको !

सूत—जो आज्ञा । (रथ को रूढा करता है)

भरत—(रथ से उतरकर) सारथि, घोड़ों को एक थोर ले जाकर विश्राम करने दो ।

सूत—जो आज्ञा । (प्रस्थान)

भरत—तात, सूचित कीजिए ।

सुमन्त्र—कुमार ! किमिति निवेद्यते ?

भरत—राज्यलुब्धायाः केश्य्याः पुत्रो भरतः प्राप्त इति ।

सुमन्त्र—कुमार ! अलं गुरुजनापवादमभिधातुम् ।

भरत—सुहृ, न न्याय्यं परदोषमभिधातुम् । तेन हि दृश्यताम्—
‘इक्ष्वाकुरुचन्द्रग्रभूतो भगतो दर्शनमभिलषतीति ।

सुमन्त्र—कुमार ! नाहमेवं वस्तुं समर्थः । अथ पुनर्भरतः प्राप्त इति प्रियाम् ?

भरत—न न । नाम केवलमभिधीयमानमहृतप्रायश्चित्तमिद्य मे प्रति-
भाति । किं ब्रह्मज्ञानामपि परेण निवेदनं क्रियते ? तस्मात्
तिष्ठतु तातः । अहमेव निवेदयिष्ये । भो भो ! निवेद्यता निवेद्यता
तत्र भवने पितृवचनरुगाय सपत्न्याय—

परदोषमन्वयदास्यम् न न्याय्यम् अनुचिन्तित्यर्थं । इक्ष्वाकुरुचन्द्रग्रभूत इक्ष्वाकुरुचन्द्रग्रभूत ।

न मेति—केवलं मम नाम नामिदोषमभिधीयते । तत्र हेतुमाह—नामेति ।
एवं पवित्रोपास्यपृष्टकेश्य्या नामोपादानेन मत्प्राप्तिनिवेदनं न वक्तव्यम् । तदेषोपपादकति
बहुनेति । वस्तुतो विद्वन्नाम्य दोषस्य कीर्तननाम्न लभ्यमिवाभिधीयमानं तु
वृत्तान्तापवादप्रामाण्यं भवतीति, तत्रैव मदीयनाम सूचयितुमुत्तममिति भावः ।
ब्रह्मज्ञाना ब्रह्मज्ञानमामानपापकल्पितानाम्, तस्मान्न परेणानिपातुमयोग्यत्वादिति
भावः ।

सुमन्त्र—कुमार, क्या सूचित किया जाय ?

भरत—राज्यलुब्धा केश्य्या का पुत्र भरत आया है ।

सुमन्त्र—सुहृदो की निन्दा आप न किया करें ।

भरत—दोस्त है, दूसरे की निन्दा करना अच्छा नहीं है । यह सूचित कीजिये
कि इक्ष्वाकुरुचन्द्रग्रभूत भरत आपका दर्शन करना चाहता है ।

सुमन्त्र—ऐसा मैं नहीं कह सकता । हाँ, भरत आये हैं, ऐसा निवेदन करें ?

भरत—हाँ, नहीं, केवल नाम लेने से प्रायश्चित्त नहीं हुआ या सुषे मालूम
पटा है । ब्रह्मज्ञानियों की सूचना भी दूसरे देते हैं ? आप रहने दें । मैं सुद
सूचित करूँगा । पिता के वचनों की रक्षा करनेवाले महानुभाव रघुजन्तिलक को
सूचित करो—

निघृणश्च कृतघ्नश्च प्राकृतः प्रियसाहसः ।

भक्तिमानागतः कश्चित् कथं तिष्ठतु यात्विति ॥ ५ ॥

(ततः प्रविशति राम सीतालक्ष्मणाम्याम्)

राम.—(आकर्ष्यं सहर्षम्) सौमित्रे ! किं शृणोषि ? अयि विदेहराज-
पुत्रि ! त्वमपि शृणोषि ?

कस्यासौ सदृशतरः स्वरः पितुर्मे गाम्भीर्यात् परिभवतीव मेघनादम् ।
यः कुर्वन् मम हृदयस्य बन्धुशङ्कां सस्नेहः श्रुतिपथमिष्टतः प्रविष्टः ॥ ६ ॥

निघृणश्चेति—निघृणः दयारहितः, कृतघ्नः कीर्तिविधाती च, प्राकृत-
पामरः, प्रियसाहस अनुचितसाहचर्यप्रेमपरायण, (एतावद्वोपगणसङ्कुलोऽपि)
भक्तिमान् त्वद्विषयेण भक्तिगुणेन युक्त कश्चित् अनिर्देशार्होमिथान आगतः, स कथ
केन प्रकारेण तिष्ठतु त्वद्दर्शनप्रतीक्षाद्वारि सक्तो भवतु यातु दर्शनानर्हताया
दृष्टिगोचरादपसरतु वा ? दोषाधिक्यादपगच्छतु, भक्तिमहिम्ना त्वद्दर्शनं प्रतीक्षता
वेति द्वैते विनिगमनाविरहादिति भावः ॥ ५ ॥

कस्यासाविति—मे मम पितुः सदृशतर मत्पितृस्वरतुलितः कस्य असौ
स्वरः वणंपद्धतिप्रयोगपरिपाटी गाम्भीर्यात् मेघनादं घनरव परिभवति अतिशैत
इव । यः सस्नेहः स्नेहाख्यमानसभावव्यञ्जकः मम हृदयस्य बन्धुशङ्का बन्धुरय-
मिति सन्देह जनयन् इष्टतः इष्टतया कर्णरसायनतया श्रुतिपथ कर्णविवरं प्रविष्टः ।
अयं भावः—कस्यायं मत्तातपादस्वरसदृशो घनगजितानुकारी च शब्दो मम श्रोत्र-
माप्याययन् वर्तते, यमुपश्रुत्य मम बन्धुना कृतोऽयं शब्द इति मम मनः सन्दिग्धे ।
प्रहर्षिणोवृत्तम्. 'मनो ज्यो गल्लिदशयति प्रहर्षिणीमम्' इति तत्तलक्षणम् ॥ ६ ॥

एक नृशंस, कृतघ्न, अधम और उद्वण्ड, किन्तु भक्तिशाली व्यक्ति आया है ।
क्या वह दरवाजे पर प्रतीक्षा में उधरे या लौट जाय ॥ ५ ॥

(राम का सीता और लक्ष्मण के साथ प्रवेश)

राम—(सुनकर, हर्ष के साथ) लक्ष्मण, क्या सुन रहे हो ? जनकपुत्रि,
क्या तुम भी सुन रही हो ?

मेरे पिताजी के स्वर से एक दम मिलनेवाला और गम्भीरता में मेघगर्जन के
समान यह स्वर किसका हो सकता है ? यह स्वर मेरे हृदय में भ्रातृ सन्देह
उत्पन्न करता है, तथा स्नेहपूर्ण रूप में कर्णगोचर हो रहा है ॥ ६ ॥

लक्ष्मण — आर्य । ममापि रत्नवेष स्वरमयोगो बन्धुजनयहुमानमावहति ।
 ण्य हि—

घनः स्पष्टो धीरः समद्वेषभस्निग्धमधुरः
 फलः कण्ठे वक्षस्यानुपहतसञ्चाररमसः ।

यथास्थानं प्राप्य स्फुटकरणनानाक्षरतया
 चतुर्णां वर्णानामभयमिव दानु व्यवसितः ॥ ७ ॥

राम — सर्पथा नायनधान्धस्य स्वरसंयोगः क्लेशयतीव मे हृदयम् ।
 वरस । लक्ष्मण ! दृश्यता दृश्यता तावत् ।

लक्ष्मण — यदाक्षापयत्यार्यः । (परिक्रामति)

घन इति—घना निविड मांसल, स्पष्टो व्यक्ताक्षर धीरो गभीर, समद्वेषभस्निग्धमधुर मत्तवृगस्वरवत् म्निग्धमधुर गरमरमणीय क्व वीमल-ध्वनि स्फुट प्रकट भौष्टवयुक्त वा करण वा वाह्याभ्यन्तरलक्षण प्रयत्नो येषां तानि स्फुटकरणानि नानाक्षरानि यस्मिन् स स्फुटकरणनानाक्षरस्तस्य भावस्तथा प्रयत्नवृत्ताक्षरलभ्यस्फुटीभावेनेत्यर्थः । कण्ठे गले यदापि हृदयदेशे च यदास्थान प्राप्य यस्याक्षरस्य यन् स्थानं तात्वादि तत्तन् स्थानमनभिज्ञमेव सस्पृश्येत्यर्थः । अत एव च स्थानप्रपन्नवृत्तदोषविरहिततया अनुपहतसञ्चाररमस अप्रतिबद्धप्रचार-वेग ण्य हि स्वर चतुर्णां वर्णानां वाह्याणादीनाम् अभय दानु व्यवसित उद्युक्त इव प्रतिभातीति भावः । स्वरस्य यद्योस्तगुणयोगोक्त्या तत्प्रयोगतु चातुर्वर्ण्यरक्षा-चातुर्थं समर्थ्यते । एतेन चातुर्वर्ण्यरक्षाधिकारव्यञ्जकस्वरप्रयोगनर्महापुरुषत्व प्रति-पादितम्, अन्यत्सुगमम् । निखरिणीवृत्तम् ॥

क्लेशयति शार्ङ्गीकरोति स्वजनस्वरम्यैवैव स्वभावो यद्दृश्यमावजंयदिति ।
 तथा च मन्वभूति — 'अविनाशेऽपि य यो नि वलात् प्रह्लादते मन' इति ।

लक्ष्मण—आर्य, निश्चय ही यह स्वर मेरे हृदय में बन्धुजनोचित सम्मान-भाज पैदा कर रहा है, क्योंकि—

यह स्वरमयोग घन, स्पष्ट, गम्भीर, मत्तवाले साँड़ की धावान के तुल्य गरम, मधुर, अभिरामता में भरा, यथास्थान से वर्णोच्चारण वाग, गले और छाती में अप्रतिबद्ध वेग से प्रभावनाली है, जिससे प्रतीत हो रहा है कि चारों वर्णों को वह अभयदान देने को उद्यत हो ॥ ७ ॥

राम—निश्चय ही यह स्वरमयोग किसी अमान्ध जन का नहीं है । इसे सुन कर मेरा हृदय पसीजा जा रहा है । वरस लक्ष्मण, देखो तो ।

लक्ष्मण—जो जाना । (टहलता है)

भरत -- अनुगृहीतोऽस्मि ।

सीता -- एहि वत्स ! भ्रातृमनोरथ पूरय ।

एहि वच्छ ! भादुमणोरह पूरैहि ।

सुमन्त्र -- प्रविशतु कुमारः ।

भरत -- तात इदानीं किं करिष्यसि ?

सुमन्त्र -- अह पश्चात् प्रवेक्ष्यामि स्वर्गं याते नराधिपे ।

विदितार्थस्य रामस्य ममैतत् पूर्वदर्शनम् ॥ १५ ॥

भरत -- एवमस्तु । (राममुपगम्य) आर्य ! अभिवादये, भरतोऽहमस्मि ।

राम -- (सहपम्) एह्येहि इक्ष्वाकुकुमार ! स्वस्ति, आयुष्मान् भव !

वक्षः प्रसारय कपाटपुटप्रमाणमालिङ्ग मा सुविपुलेन भुजद्वयेन ।

अहमिति -- (यत) नराधिपे राजनि दशरथे स्वर्गं याते विदितार्थस्य अक्ष-
गततत्स्वर्गगमनमाचारस्य (कत्तरि पद्ये) रामस्य अधुना मुवि एतत् पूर्वदशन
मम प्रथम साक्षात्कार (अत) अह पश्चात् त्वमि प्रविष्टवनि प्रवेक्ष्यामि । अय-
माशय -- यदवधि दशरथो दिवमुपयातस्तदादि नाह राममैक्षिपि, तदधुना मा दृष्ट्वा
प्रमीत तातमनुस्मृत्य रामो विमनायेत, सा च तदवस्था प्रियभ्रातृसमागमानन्दपरि-
पन्थिनी स्यादतो नाह पूर्वं प्रवेष्टुमिच्छामि, न वा त्वया सह किंतु त्वया पूर्वं
प्रविष्टेन सह समागम कृत्वाऽऽनन्दमनुभूतवति रामे प्रविष्टस्य मम दक्षनेत जनितोऽपि
तातस्मृतिप्रभूतो विपादो नाभूतमानन्द लघयेदिति ॥ १५ ॥

वक्ष इति -- कपाटपुटप्रमाण कपाटोदरविस्तीर्णम्, वक्ष उरोदेशम्, प्रसारय

भरत -- आपका अनुगृहीत हुआ ।

सीता -- आओ वत्स, अपने भाई के मनोरथ को पूर्ण करो ।

सुमन्त्र -- कुमार भीतर जायें ।

भरत -- तात, आप इस समय क्या करेंगे ?

सुमन्त्र -- महाराज जब से स्वर्गवासी हुए हैं, और इसकी सूचना राम को मिली
हे इसके बाद यह मेरी राम से पहली भेंट है, अत मैं पीछे जाऊँगा ॥ १५ ॥

भरत -- ऐसा ही सही । (राम के समीप जाकर) मैं भरत आपको नमस्कार
करता हूँ ।

राम -- (हर्ष से) आओ इक्ष्वाकुकुमार तुम्हारा कल्याण हो । तुम चिरायु होवो ।
बिचाड़ की जोड़ी की तरह चौड़ी अपनी छाती फैलाओ, अपने विशाल बाहुओं

उभामयाननमिदं शरदिन्दुकल्प प्रह्लादय व्यसनदग्धमिद शरीरम् ॥१६॥
 भरत — अनुगृहीतोऽस्मि ।

सुमन्त्र — (उपत्य) जयत्यायुष्मान् ।

राम — हा तात !

गत्वा पूर्वं स्वसैन्यैरभिसरिसमये ख समानैर्विमानै-
 विख्यातो यो विमर्दे स स इति यद्दुश सासुराणां सुराणाम् ।
 सश्रीमास्त्यक्तदेहो दयितमपि त्रिना स्नेहवन्त भवन्तं

विस्तृतं कुरु, तथा च सात त्वदालङ्कनस्य सुखमधिकमनुभवितु शक्नुयामिति भाव मा सुविपुलेन अतिलम्बेन भुजद्वयेन बाहुयुगलेन आलिङ्ग्य परिष्वजस्य । इद गमत्र शरदिन्दुकल्प शारदणवरीदासहृदाम् आननम् उभामय उन्नत कुरु । तथा च सति सकलभागेषु दृष्टिमं व्याप्रियेताधिकमानद च विन्देति (एभिश्च व्यापारै) व्यसनदग्ध तातविभोगत्वद्विच्छेदादिजनितेन दु खेनोपहतम् इद शरीर प्रह्लादय सिगिर्य । शिग्धजनसविमक्त हि दु ख सहावेदत भवतीति श्वायन कियतायेन प्रसादनधिगच्छेमिति भाव । वसततिलक वृत्तम् ॥ १६ ॥

गत्थेति—य पूर्वं पुरा समय सासुराणा देव्यै सहिताना सुराणा देवाना विमर्दे सभ्रामे देवासुरयुद्ध इत्यय , अभिसरे साहायकार्यं प्रस्थानस्य समय समानं देवाभ्युपि- तविमानापमं विमानं श्वोभयानं (कर्ण) स्वमंयैरात्मसैनिकं (सह) ख गत्वाऽऽ- काशमुत्कृत्य स स (बोर्वीर्यतिगयन सर्वेषा पश्यता विस्मयजननन) सोऽय दश- रय इति विख्यात प्रसिद्ध , जात इति शेष । सश्रीमान् लब्धलक्ष्मीक त्यक्तदेह विमुक्तकायो नन्द महााराज दयित प्रियसुहृद स्नेहवत् अनुरागशालिन भवन्त

द्वारा मुझसे भेंटे । शरदृष्टतुके चाँदके सदृश अपने मुखको उठाओ, और शोक की ज्वाला में जलते हुए मरे अर्धोंको शीतल करो ॥ १६ ॥

भरत—मैं आपका अनुगृहीत हुआ ।

सुमन्त्र—(आकर) जय हो आयुष्मान् की ।

राम—हा तात,

आप पहले देवासुर सभ्रानोंमें देवोंकी सहायताके लिए स्वर्ग जाते थे, उस यात्रामें आपके विमान देव विमानोंके सदृश होते थे और उस युद्धमें महाराजकी विजयपर लोग आदर-सम्मान प्रकट करते थे, वही आप अपने प्रीतिपात्रोंके

स्वर्गस्थः साम्प्रतं किं रमयति पितृभिः स्वैर्नरेन्द्रैर्नरेन्द्रः ॥ १७ ॥
सुमन्त्र — (सशोकम्)

नरपतिनिधनं भवत्प्रवासं भरतविषादमनाथतां कुलस्य ।

बहुविधमनुभूय दुष्प्रसह्यं गुण इव बह्वपगद्धमायुषा मे ॥ १८ ॥

सीता—रुदन्तमायपुत्रं पुनरपि रोदयति तातः ।

रोदन्त अय्यउत्त पुणो वि रोदावीअदि तादो ।

राम — मैथिलि ! एष पर्यवस्थापयाम्यात्मानम् । वत्स ! लक्ष्मण !
आपस्तावत् ।

विना अन्तरा स्वर्गस्य रान् अधुना पितृभूतैः पितृकोटिगणनीयैः स्वैरात्मैर् नरेन्द्रैः
रमयति आत्मानं विनोदयति किम् ? न कथमपीति प्रश्नकाकुलम्बोऽर्थः । यः पुरा
त्वया सहितो देवसहायतायै सशरीरं स्वर्गं गतः, स इदानीं त्वा विना शरीर-
त्वक्त्वा तत्र गतोऽपि कथमिवात्मानं विनोदयेत्, सुहृद्विनाकृन्त्वादिति भावः ।
दीर्घातिशयरूपसमृद्धिवर्णनादुदात्तालङ्कारः, 'उदात्तं वस्तुन सम्पदं' इति तद्व-
क्षणात् । पूर्वार्द्धे प्रतीयमानो वीरो रस उत्तरार्धे राजमरणात् प्रतीयमानस्य करुण-
स्याङ्गमिति बोध्यम् । स्रग्धराच्छन्दः, 'अन्मैर्याना श्रेयेण त्रिमुनियतिमुता स्रग्धरा
कोत्तितेयम्' इति हि तल्लक्षणम् ॥ १७ ॥

नरपतीति । नरपतिनिधनं राज्ञो देहावसानम्, भवत्प्रवासं भवता त्रयाणां
वनयात्राम्, भरतविषादं भरतस्य भवत्प्रवासादिनिमित्तं दुःखम्, कुलस्य ईदृगुप्ततस्ये-
श्वदाकुवशस्यानाथताम् अशरणताम्, इत्येव रूपं बहुप्रकारकं दुष्प्रसह्यं कृच्छ्रेण सोढव्यं
दुःखं क्लेशमनुभूय मे मम आयुषा जीवितेन गुणे चिरजीवित्वलक्षणे इव बह्वपराद्धम्
अल्प उपघातं वृत्तं । यद्यहं चिरजीविता नाध्यगमिष्ये तदेतानि दुःखानि नान्वम-
विष्यमिति ममायुषा चिरस्थायितांश्च एवापराधं कृतं इति भावः । पुष्पिताश्रावृत्तम् ॥

विना स्वर्गं भी क्या आनन्द पाते होंगे ? ॥ १७ ॥

सुमन्त्र—(शोकसे) महाराजकी मृत्यु, आपका वनवास, भरतकी तकलीफ
वंशकी अनाथता, वगैरह नाना प्रकारके कष्टोंको दिखाकर हमारी लम्बी उम्रने
गुणोंके साथ दोष ही अधिक दिये ॥ १८ ॥

सीता—रोते हुए आर्यपुत्रको तात और भी रुला रहे हैं ।

राम—मैथिलि, यह देखो, अपने को समाल लेता हूँ । वरस लक्ष्मण जल
ले आओ ।

लक्ष्मण—यदाज्ञापयत्यार्यः ।

भरतः—आर्य ! न खलु न्याय्यम् । क्रमेण शुश्रूपयिष्ये । अहमेव
यास्यामि । (कलशं गृहीत्वा निष्क्रम्य प्रविश्य) इमा आपः ।

राम.—(आचम्य) मैथिलि ! विशीर्यते खलु लक्ष्मणस्य व्यापारः ।

सीता—आर्यपुत्र ! नन्वेतेनापि शुश्रूपयितव्यः ।

अथ उक्त ! ण एदिणा पि सुस्सुसहदव्वी ।

रामः—मुष्टु एत्त्रिह लक्ष्मणः शुश्रूपयतु । तन्नस्यो मां भरतः
शुश्रूपयतु ।

इह स्थास्यामि देहेन तत्र स्थास्यामि कर्मणा ।

नाम्नैव भवतो राज्यं कृतस्त्वं भविष्यति ॥ १६ ॥

पर्यवस्यन्त्यामि प्रकृतावारोपयामि । आपस्तावत् जलमार्हाह्वयताम्, येन मुख-
प्रक्षालनादिना प्रकृतिपुनरापत्तो क्षमेयेति भावः ।

क्रमेण अवरजत्वानुसारेण, योऽवरजः । स श्रेष्ठं शुश्रूषेतेति भावः ।

विशीर्यते विच्छिद्यते, अधुनावधि वने लक्ष्मणस्यैव जलाहरणादि कार्यमासीत्,
अधुना भरतस्तत्र ध्याप्रियत इति तद्विच्छेदः ।

इह वने, तत्रस्यः नगरस्यः शुश्रूषयतु मत्कर्मनुतिष्ठतु, तदप्य शुश्रूपाविभागोऽ-
तिरमणीय इति भावः ।

इहेति । इह त्वया नित्यनिवासेन सनाथीकृते वने देहेन सदेह- स्थास्यामि;
तत्र राजधान्या कर्मणा राज्यपालनात्मकेन कर्त्तव्येन रथास्यामि । कायेनात्र तिष्ठन्
सर्वमपि राजधानीकार्यमनायास सम्पादयिष्यामीति । ननु नित्यावधानसाध्ये राज-

लक्ष्मण—जो आज्ञा ।

भरत—आर्य, यह ठीक नहीं होगा । क्रमसे शुश्रूपा करेंगे । मैं ही जल लरजंगा
(कलश लेकर जाता और आता है) यह लीजिये जल ।

राम—(आचमन करके) मैथिलि, लक्ष्मणका धन्या छूट-सा रहर है ।

सीता—आर्यपुत्र, इनको भी शुश्रूपा करनी चाहिये ।

राम—अच्छा, तो यहाँ लक्ष्मण शुश्रूपा करें और यहाँ भरत शुश्रूपा करेंगे

भरत—आप मुझ पर प्रसन्न हों ।

देहसे मुझे यहाँ रहने दिया जाय, यहाँ केवल भेरा प्रबन्ध रहेगा । रत्ता तो
आपके नाम मात्र से हो जायगी ॥ १६ ॥

रामः—वत्स ! कैकेयीमातः ! मा मैवम् ।

पितुर्नियोगादहमागतो वनं न वत्स ! दर्पात् भयान्न विभ्रमात् ।

कुलं च नः सत्यघनं ब्रवीमि ते कथं भवान् नीचपथे प्रवर्तते ॥२०॥

सुमन्त्रः—अथेदानीमभिपेकोदकं क्व तिष्ठतु ?

रामः—यत्र मे मात्राऽभिहितं, तत्रैव तावत् तिष्ठतु ।

भरत —प्रसीदत्वार्यः । आर्य ! अलमिदानीं व्रणे प्रहर्तुम् ।

कर्मणि भवतोऽत्र दूरदेशे कृतकार्यता कथं सभावरतामत्यत्राह—नाम्नैवति रामस्य राज्यमिति भवन्नामघेयान्वयमाधेण अस्मदायासलेश विनैवेत्यर्थः । कुतरस्य सुरक्षितं मविष्यति । एवञ्चात्र मयि स्थिते न कस्यापि किमपि हीयत इति मा मापत्र स्यातुमिच्छन्त प्रतिपेक्षीति भावः ॥ १९ ॥

कैकेयीमातः कैकेयी माता यस्येति विग्रहे बहुब्रीहौ नमात् 'मातृमातृक-मातृपु वा' इति वार्तिके मातृकमात्रोरुभयोर्निर्देशात् कपो विमल्लनाद्रूपम् ।

पितुरिति—अहं पितुः नियोगात् अनुशामनात् वनं काननम्, आगतं भयाद् वनं नागतं, दर्पाद् वनं नागतं, विभ्रमाद् बुद्धिनाशाद् वनं नागतं । नः अस्माकं कुलं वंशश्च सत्यघनं सत्यपालनव्यसनितया प्रसिद्धम् (तत्) ते ब्रवीमि (त्वया ज्ञायमानमपि) अवधानविशेषदानार्थं बोधयामि । एव स्थिते भवान् नीचपथे राज्यमारग्रहणरूपपित्राज्ञापरित्यागलक्षणे कुत्सितमार्गं कथं केन प्रवर्तते ? न कथमपि भवता तत्र पथि वर्तनीयमिति भावः ॥ २० ॥

अभिपेकोदकम् अभिपेकार्थमाननीतम् अनेकपुष्पतीर्थोद्धृतं जलम् । क्व तिष्ठतु कस्य शिरसि निधातव्यं भवान् मन्यत् इत्यर्थः ।

व्रणे प्रहर्तुम् क्लेशिते बलेशयितुम् । मद्राज्यवात्तंयैव भवान् इमामवस्थां गमित-

सीता—वत्स, कैकेयीमन्दन, नहीं नहीं, ऐसा मत कहिये ।

मैं पिताकी आज्ञासे वन आया हूँ, वत्स ! न तो मैं अभिमानसे यहाँ आया हूँ, न भयसे, और न चित्तविभ्रमसे । हमारा वंश सत्यका पुजारी होता आया है, फिर तुम उससे उतरकर नीच पथपर क्यों उतरना चाहते हो ? ॥ २० ॥

सुमन्त्र—तो घटाइये, अब अभिपेकका जल किसपर छोड़ा जाय ?

राम—जिसपर मेरी माताने कहा, उसीपर दीजिये ।

भरत—आर्य, आप मुझपर दया दिखावें, आर्य, अब कोडेपर नमक मत छिड़कें ।

अपि सुगुण ! ममापि त्वत्प्रसूतिः प्रसूतिः

स खलु निभृतधीर्मांस्ते पिता मे पिता च ।

सुपुरुष ! पुरुषाणां मातृदोषो न दोषो

वरद ! भरतमार्ते पश्य तावद्यथावत् ॥ २१ ॥

सीता—आर्यपुत्र ! अतिकरुणं मन्त्रयते भरतः । किमिदानीमार्य-
अभ्युत्त । अतिक्रमणं मन्त्रयते भरतः । किं दाणि अभ्य-
पुत्रेण चिन्त्यते ।

उनेण चिन्त्यते ।

राम—मैथिलि !

इति छेदभावहते मम राज्याग्निपेकप्रसङ्गं पुरारपि खेद दीपयति, तस्माद्विरम्यता
सथोक्तेरिति भावः ।

अपीति—हे सुगुण, गोमानगुणनिलय ! त्वत्प्रसूति त्वदुत्पत्तिवन्तो ममापि
प्रसूति अपि ममापि प्रमदश्चेदित्यथ । निभृतधीमान् अचञ्चलप्रसस्तधियण स
प्रसिद्धं खलु ते पिता मे चेदिनीहापि मन्वन्त्रनीयम् । हे सुपुरुष ! पुरुषाणां
मातृदोषो मातृकृतोऽपराधो न दोषश्चेत् हे वरद, इत्थितार्थादायिन् । आर्त्तम्
अतिपीडितम् यथावद् यथाहम् भरत पश्य तावदिति वाक्यालङ्कारे । यदि मामपि
रघुवशोद्भव दशरथपुत्रं स्वभ्रातरं च जानासि, मातृकृतापराधेनादण्डनीयं च
प्रतिपद्यसे, तदा मां मांमुपेक्षिष्य इति भावः ॥ २१ ॥

अतिकरुणम् अतिशयहृदयावर्षकम् । चिन्त्यते विचार्यते, नास्ति भरत इत्यं
विलपति कम्पाप्यर्थस्य चित्तनम्यावसरस्तस्मादाशु मरतोत्प्रकारेणानुष्ठानमनु-
जानीतीति द्रुताया सीताया आशयः ।

हे सुगुण, मेरा भी जन्म उसी वशमे हुआ जिसके आप अलवार हैं, मैं भी
उन्हींका पुत्र हूँ जिनके आप वशधर हैं । हे सुपुरुष, मातृदोषसे पुरुषोंको दोषी
नहीं गिना जाता, अतः आप अभिलपित वरदाता होनेके कारण व्यथित भरत
को दयादृष्टिसे देखें ॥ २१ ॥

सीता—आर्यपुत्र, भरतकी बातें अतिकरुणमय हो रही हैं । आप इस समय
क्या सोच रहे हैं ?

राम—मैथिलि,

तं चिन्तयामि नृपतिं सुरलोकयातं

चेनायमात्मजविशिष्टगुणो न दृष्टः ।

ईदृग्विधं गुणनिधिं समवाप्य लोके

धिग भो ! विधेर्यदि बलं पुरुषोत्तमेषु ॥ २२ ॥

वत्स ! कैकेयीमातः !

यत्सत्यं परितोषितोऽस्मि भवता निष्कल्मपात्मा भवां-

स्त्वद्वाक्यस्य वशानुगोऽस्मि भवत. श्यातैर्गुणैर्निजितः ।

किन्त्वेतन्नृपतेर्बचस्तद्वृत कर्तुं न युक्तं त्वया

तं चिन्तयामीति— सुरलोकयात स्वर्गगत त नरपतिं तातमहाराज चिन्तयामि, भरतनिष्ठगुणायलीलासाक्षात्कारवेलायामस्या स्मरामि येन अयं निम्बविलक्षण आत्मजविशिष्टगुण आत्मजेषु चतुष्टयवि स्वनयषु मध्ये विशिष्टगुण सर्वाधिकगुण-पूर्णं न दृष्ट तत्त्वेन साक्षात्कर्तुं न शक्त, इदमीमगुणविकासवसरे तसिधनादि यमीदृशी नगिति । ईदृग्विधम् एतादृश गुणमय पुत्र समवाप्य लब्ध्वा लोके पुरुषोत्तमेषु मानुषश्रेष्ठेषु तातपादसदृशेषु यदि विधेर्भाग्यस्य बल प्रमुखं तर्हि धिग् भो ! एतादृशविशिष्टपुत्रलाभेन घन्यस्यापि तातस्य तदीयगुणसाक्षात्कारणपरि-पन्थिदैवपारवश्यमतीधानुचितमिति भावः ॥ २२ ॥

यत्सत्यमिति— भवता यत्सत्यं वस्तुतः परितोषित स्नेहमयेन सरलेन च व्यवहारेण सन्तुष्टान्तरङ्ग कृतोऽस्मि । भवान् निष्कल्मपात्मा निष्पापबुद्धिः । भवत श्यातं लोकेऽसाधारणतया प्रसिद्धिमाप्तिं गुणैः सौजन्यसारल्यादिभिः निर्जित पराजित स्वायत्तीकृत । (अहम्) त्वद्वाक्यस्य त्वदीयवचनस्य वशानुग वस्योऽस्मि, भवदुक्तमलङ्घनीयं मन्ये इत्यथ । नन्वेवमनुष्ठीयता मद्बचनमित्यत्राह—किन्त्वि-

मैं सुरधामको प्रस्थित पिताजीको सोचता हूँ, जो अपने इन अनुपम गुणोंकी निधि इस पुत्ररत्नको नहीं देख सके। ऐसे गुणागार पुत्रको पाकर भी पिताजी फालकवर्णित हो ही गये, हत दैवको धिक्कार ॥ २२ ॥

वत्स कैकेयीनन्दन,

तुमने मुझे सचमुच बहुत प्रसन्न किया, तुम्हारी अन्तरात्मा अत्यन्त निर्मल है तुम्हारे वचनोने मुझे बशमे कर लिया है, तुम्हारे जगद्विदित गुणोने मुझे जीत लिया है। परन्तु महाराजकी यह आज्ञा है कि भरतको राजगद्दी मिले, उसे असत्य करना उचित नहीं। तुम्हीं यताभो तुम्हारे ऐसे धर्मधुरधर पुत्रको पैदा करके तुम्हारे

किञ्चोरपाद्य भवद्विधं भवतु ते मिथ्याभिघायी पिता ॥२३॥

मरत.—यावद् भविष्यति भवन्नियमावसानं
तावद् भवेयमिह ते नृप ! पादमूले ।

रामः—मैवं, नृपः स्वसुकृतैरनुयातु सिद्धिं
मे शापितो, न परिरक्षसि चेत् स्वराज्यम् ॥ २४ ॥

मरत.—हन्त अनुत्तरमभिहितम् । भवतु समयतस्ते राज्यं परि-

त्यादि । किन्तु एतत् राज्ये मरतोऽभिप्रेक्ष्य इतोद नृपतेर्बन्धो बधनम् अग्नीत
दोषः । तत् त्वया अमृतं मिथ्याभूत (मा निर्वन्धेन राज्येऽभिप्रेक्ष्य तदुत्तरसत्या मा
कारि वत्तु' न युक्तम् । पितुर्बन्धनस्य स्वाद्यौन सुपुत्रेण सर्वदा पालनीयत्वेन आशस्य-
मानत्वाद् इत्याशयः । किञ्च भवद्विधं पुत्रमुत्पाद्यापि ते पिता मिथ्याऽभिघायी अस-
त्याभिघानदोषपातुलो भवतु नैतदुपपद्यत इति भावः । शार्दूलविक्रीडित वृत्तम् ॥ २३ ॥

यावदिति—यावत् यावन्त कालं ध्याप्य भवतो नियमस्य वनवासव्रतस्य
अवसानं समाप्तिर्भविष्यति तावत् इह वने नृप, राजन् ते पादमूले त्वदाश्रितो भवेय
वर्तयेति । यावद् भवान् स्वयनवासापि व्यतियापयति तावदिह भवन्तं शुश्रूषमाण-
स्तिष्ठेषमिति मरतस्यानुगोषः ।

पद्यस्य उत्तरादंभाग रामोक्तमाह—मैवमिति—मैवम् एवं मा वादोरित्यर्थः
नृप तातपाद स्वमुत्तं स्वसत्यवादित्वादित्वादिजनितपुण्यं सिद्धिं फलोदयम् अनुयातु
लभताम् । 'स्वत्कृतं करारज्यास्वोकरणे तु तातस्य मिथ्यावादित्वमिदं प्रथमतयोद्भ-
वत् सिद्धेश्चावयेदतोऽलं तथाभिघायेत्याशयः (एवमपि) स्वराज्यं निज राज-
कर्तव्यं न परिरक्षसि चेत् मे मम दापित अभिशाप्त असि भविष्यसि । वर्तमान-
सामीप्ये लट् अहं रज्जा शापेन विषादयिष्यामीति रामाभिप्रायः ॥ वसन्ततिलकं
वृत्तम् । तल्लक्षणं पूर्वमुक्तम् ॥ २४ ॥

अनुत्तरम् अविद्यमानप्रतिवचनम्, पितुः सत्यवचनतापालनाय त्वया राज्यमञ्जी-

पिता मिथ्याप्रायी वने ? ॥ २३ ॥

मरत—तब तक मैं आपकी चरण-शुश्रूषा में रहूँ, जब तक आपके वनवास
नियमका अवसान हो ।

राम—ऐसा इष्ट मत करो, पिताजी अपने किये 'पुण्योसे निरवच्छिन्न स्वर्ग
भोगें हुम्हें मेरी शपथ, यदि तुम अपना राज्य न सँभालो ॥ २४ ॥

मरत—हाय आपने मुझे अनुत्तर कर दिया। अच्छा, एक शर्तपर आपका राज्य

:- पालयामि ।

राम.—वत्स ! कः समयः ?

भरतः—मम हस्ते निक्षिप्तं तव राज्यं चतुर्दशवर्षान्ते प्रतिगृहीतुमिच्छामि।

राम —एवमस्तु ।

भरत.—आर्य ! श्रुतम् । आर्ये ! श्रुतम् । तात ! श्रुतम् ।

सर्वे—वयमपि श्रोतारः ।

भरत —आर्य ! अन्यमपि वरं हतुमिच्छामि ।

राम.—वत्स किमिच्छसि ! किमहं ददामि ? किमहमनुष्ठास्यामि ?

करणीयमन्यथा शापं प्रदास्यामीत्येव रूपम् । समयतः किमपि निश्चित्य सविद-
मनुसृत्येत्यर्थः—‘समयाः शपथाचारकालसिद्धान्तसविदः’ इत्यमरः, न तु निरवधि-
कालस्य कृते राजा भविष्यामीति भावः ।

कः समयः, तवेष्ट इति शेषः, एतेन त्वयोच्यमानमेव समयमङ्गीकरोमीति
कथनेन रामस्य प्रेमपारवश्य सूचितम् ।

निक्षिप्तं न्यासीकृतम् । चतुर्दशवर्षान्ते चतुर्दशाना वर्षाणा वनवासयापनीया-
नाम् अन्तेऽवसाने । प्रतिग्रहीतुं स्वीकर्तुम् (त्वयेति योजनीयम्) अथवा प्रतिग्रहोक्तं
प्रतिग्राहयितुम् । अन्तर्भावितष्यर्थोऽत्र प्रदिः ।

आर्ये ! धृतमिति—रामकृतसमयाङ्गीकारस्यान्यथाभावमुद्भाव्य सीतालक्ष्मण-
सुमन्त्रान् साक्षिण प्रत्यवस्थापयितुमित्यमुच्यते ।

किमहमिति—किं प्रदाय किमनुष्ठाय वा तोषयेयमिति प्रश्नेन त्वत्कृते मम
किमप्यदेयमननुष्ठेयं वा नास्ति तदहंसि यथारुचि प्रार्थयितुमिति प्रघट्टकार्यः ।

संभालूँगा ।

राम—कौन-सी शर्त ?

भरत—(शर्त यही कि) चौदह वर्षोंके बाद अपना राज्य वापस लें, और
तब तक मैं धरोहरकी तरह आपके राज्यका रक्षक बनूँ ।

राम—एवमस्तु ।

भरत—आर्य, सुना आपने ? आर्ये, आपने सुना ? तात, सुना आपने ?

सभी—हम सभी श्रोता साक्षी रहेंगे ।

भरत—एक वरदान और चाहता हूँ ।

राम—वत्स, क्या चाहते हो ? क्या दूँ, क्या करने को कहते हो ?

भरत—पादोपभुक्ते तव पादुके म एते प्रयच्छ प्रणताय मूर्ध्ना ।
यावद्मघानेप्यति कार्यसिद्धिं तावद्भवित्याम्यनयोर्विधेयः ॥२५॥

राम.—(स्वगतम्) हन्त भोः !

सूचिरेणापि कालेन यशः किञ्चिन्मयाजितम् ।

अचिरेणैव कालेन भरतेनाद्य सञ्चितम् ॥ २६ ॥

सीता—आर्यपुत्र ! ननु दीयते सलु प्रथमयाचनं भरताय ।

अथ्यजत ! न दीयदि सु पुढमजाभ्रण भरदम्स ।

पादोपभुक्ते इति—मूर्ध्ना गिरसा प्रणताय प्रणमते मे मह्यम् एते पादोपभुक्ते चरणाभ्या व्यवहृते पादुके काष्ठनिमित्ते पादप्राणे प्रयच्छ वितर । किमर्थं पादुकायाचनमिदमित्याह—यावदिति । यावन् यदवधि भवान् कार्यसिद्धिम् एष्यति स्वकार्यमवसायागमिष्यति तावन् तावत्कालपर्यन्तमनयो पादुकयोर्विधेय आज्ञाकारी भविष्यामि तदनन्तर तुभ्यं राज्यं प्रत्यर्पयिष्यामीति भावः, तथा च रामायणे—
'चतुर्दश हि वर्षाणि जटाचौरधरो ह्यहम् । कलमूलागतो वीर मनेय रघुनन्दन ।
तव पादुकयोग्यस्य राज्यतन्न परन्तप ॥'

इन्द्रवज्रावृत्तम्, तल्लक्षणं यथा—'म्यादिन्द्रवज्रा यदि तो जगो ग' ॥ २५ ॥

सूचिरेणेति—गुचिरेण कालेन यपि मया किञ्चिददत्त्वं यशः (पित्रान्नापालनपरायणस्वरूपम्) कीर्तिः अजितम् । भरतेनाद्य मामित्यमात्मवशीकुर्वता अचिरेण कालेन अतिशीघ्रतया अजितम् । यादृशस्य पितृमत्तत्वरूपस्य यशसोऽर्जुनाय मया निरबाल परिश्रान्तम्, अद्य तादृशमेव ततोऽपि द्रोतकृष्ट भ्रातृमत्तत्वात्मक यशो भरतेन अचिरेणैव कालेन अजितमित्यहो भरतस्य महापुरुषत्वमिति भावः ॥२६॥

प्रथमयाचनं प्राथम्येन याच्यमानं पादुकाहृत्वं वस्तु । अत्र भवदोषपादुकयोः आवर्जयितुं निक्षेप्तुम् ।

भरत—आपके चरन्कोमें लगी ये चरण पादुकाएँ मुझ नत किङ्करको दीजिये, मैं तय तक उन्हीं पादुकाओंका वशवर्ती रहूँगा जब तक आप अपना कार्य सिद्ध करके जायेंगे ॥ २५ ॥

राम—(स्वगत) महा !

मैंने बहुत दिनोंमें जितना यश सञ्चित किया था, भरतने उतना यश आनन फानन उपार्जित कर लिया ॥ २६ ॥

सीता—आर्यपुत्र, आप भरतको पहिली बार माँगी गई चीज देते हैं ?

राम --तथास्तु । वत्स ! गृह्यताम् ।

भरत --अनुगृहीतोऽस्मि । (गृहोत्वा) आर्य ! अत्राभिपेकोदकमा-
वर्जयितुमिच्छामि ।

राम --तात ! यदिष्टं भरतस्य तत् सर्वं क्रियताम् ।

सुमन्त्र --यदाज्ञापयत्यायुष्मान् ।

भरत --(आत्मगतम्) हन्त भोः !

श्रद्धेयः स्वजनस्य पौररुचितो लोकस्य दृष्टितमः

स्वर्गस्थस्य नराधिपस्य दयितः शीलान्वितोऽहं सुतः ।

भ्रातॄणां गुणशालिना बहुमतः कीर्त्तर्महद् भाजन

सवादेषु कथाश्रयो गुणवता लब्धप्रियाणां प्रियः ॥ २७ ॥

हन्त अत्र प्रसादे हन्तशब्द स च रामानुग्रहसिद्धया कृतकृत्यतया भरतस्य बोध्य, तदेव विवृणाति श्लोकनाप्रमेण ।

श्रद्धेय इति—अहं (सम्प्रति) स्वजनस्य निजबन्धुजनस्य श्रद्धेय विश्वात् भाजनम्, जात इति शेष । एवमग्रेऽपि सर्वत्र जात इत्युक्तनीयम् । पौररुचित पौराणा नागराणा रुचित इष्ट । लोकस्य दृष्टौ दशने क्षम, रामेणानुगृहीतस्य ममे-
दानी बन्धुजनविश्वासपात्रता पौरप्रीतिभाजना लोकान्धनसाक्षात्कारयोग्यता चाभू-
द्विषय । स्वगस्थस्य दिवगतस्य नराधिपस्य राज्ञ शीलान्वित सद्बृत्त दयित, प्रिय सुतश्च पुत्रोऽहं सञ्जात । रामाज्ञया तदादेशानुवर्तनान्तत् प्रियत्वादिकस्यापि रामानुग्र-
हलभ्यत्वमुक्तम् । गुणशालिना भ्रातॄणा बहुमत बहुमानविषय । कीर्त्तं महत् प्रकृत
भाजन जाताऽस्मीति सर्वत्र योज्यम् । गुणवता सवादेषु परस्परालापेषु कथाश्रय

राम--तथास्तु, वत्स ! लो ।

भरत--बड़ी कृपा, (पादुकाएँ लेकर) आर्य, इसपर अभिपेक जल प्रक्षेप करना चाहता हूँ !

राम--तात, भरत जो जो चाहें, सब किया जाय ।

सुमन्त्र--आयुष्मान् की जो आज्ञा ।

भरत--अहा !

अब मैं अपने स्वर्गस्थियेका श्रद्धापात्र, नगरवासियोंका प्रेमभाजन, सखारकी ओर आँख उठाकर देखने योग्य, स्वर्गीय महाराजका सुचरित पुत्र, भाई लोगोंका प्यारा, कीर्त्तिका भाजन, गुणवानोंके परस्पर वात्सालापमें चर्चाका विषय तथा पूर्णमनोरथ जनोंका स्नेही हुआ हूँ ॥ २७ ॥

राम.—वत्स ! कैकेयीमातः ! राज्यं नाम सुहृत्तमपि नोपेक्षणीयम् ।
तस्मादद्यैव विजयाय प्रतिनिवर्ततां कुमारः ।

सीता—हम्, अद्यैव गमिष्यति कुमारो भरतः ।
हं, अज्ज एव गमिस्सदि कुमारो भरतो ।

राम —अलमतिस्नेहेन । अद्यैव विजयाय प्रतिनिवर्ततां कुमारः ।

भरत —आर्य ! अद्यैवाहं गमिष्यामि ।

आशाद्यन्तः पुरे पौराः स्वास्यन्ति त्वद्दृष्टया ।

तेषां प्रीतिं करिष्यामि त्वत्प्रसादस्य दर्शनात् ॥ २८ ॥

प्रस्तावविषय लक्षप्रियाणाम् अधिगतकामानां प्रिय. पूणकामतया तरसाजात्यात्-
त्प्रीतिपात्रमित्यर्थः । एतत्तत्रैव रामकृपाया एव फलमभ्यथा तु जना नैकेयोक्ताप-
राधसम्बन्धेन मामतिजघन्य जानीयुरिति भार । शार्ङ्गलविज्ञोद्धित वृत्तम् ॥ २७ ॥

विजयाय—राज्यकार्यनिर्वहणाय ।

आशाद्यन्त इति—पौराः पुरवासिनः पुरे नगरे (शैषा) त्वद्दृष्टया त्वद-
वलोकनोत्कण्ठया आशावन्तः त्वद्दर्शनविषयशान्दानालिनः स्वास्यन्ति भविष्यन्ति ।
'भरतो राममनुष्य प्रसाद्य चायोध्यामानेष्यन्ति'ति विश्वामेन त्वद्दर्शनं चक्षुःसाफल्य-
सम्भावनाः रायणा. पौरा. स्वास्यन्तीत्यर्थः । तेषां त्वां दिदृक्षमाणानां पौराणां प्रीतिं
प्रसन्नताम् त्वत्प्रसादस्य त्वया दोगमानस्य पादुकारूपस्य वरस्य दर्शनात् पादुका
दर्शयित्वेत्यर्थः, करिष्यामि । त्वां दर्शयितुमशक्ता भरतस्त्वत्पादुकादर्शनेनापि बलव-
दुत्कण्ठिनपुरवासिजनपरितोषाय किमनादीनः कल्पिष्यत इत्यर्थः, एतेनात्र स्थित्या
स्वापरितोषः, अयोध्यापरावृत्त्या च पुरजनपरितोष इति द्वयोरनयो. साध्ययोर्मध्ये
चरम एव समादरः, प्रकृत्यनुरञ्जनस्य भवदादेशावयवत्वादित्याशयः ॥ २८ ॥

राम—वत्स कैकेयीनन्दन, राज्यकी ओरसे थोड़ी दूरक लिए भी असावधानता नहीं करनी चाहिये । इसलिये तुमको आज ही जाना है ।

सीता—क्या भरतकुमार आज ही लौटेंगे ?

राम—अधिक स्नेह मत प्रदर्शित करो, कुमारको राज्यकी दिफाजतके लिए आज ही लौटना है ।

भरत—आर्य, मैं आज ही जाऊँगा ।

नगरनिवासी आशा लगाए आपके दर्शनों के लिए अधीर हो राह देखते होंगे, मैं जाकर आपकी चरणपादुका उन्हें दिखाऊँगा, जिससे प्रसन्नता मिलेगी ॥२८॥

सुमन्त्रः—आयुष्मन् ! मयेदातीं किं कर्तव्यम् ?

रामः—तात ! महाराजवत् परिपाल्यतां कुमारः ।

सुमन्त्रः—यदि जीवामि, तावत् प्रयतिष्ये ।

राम —वत्स ! कैकेयीमातः ! आरुह्यतां ममाप्रतो रथः ।

भरतः—यदाज्ञापयत्यार्यः ।

(रथमारोहतः)

रामः—मैथिलि ? इतस्तावत् । वत्स ! लक्ष्मण ! इतस्तावत् । आश्रम-
पदद्वारमात्रमपि भरतस्यानुयात्र भविष्यामः ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

चतुर्थोऽङ्कः ।



अनुयात्र भविष्याम । अनुममिष्याम । एतेनादरो व्यञ्जितः दूर तु नानुगमि-
ष्याम 'यमिच्छेत् पुनरायात न त दूरमनुप्रजेदिति व्यवहारस्मरणादिति भाव ।
इति मैथिलपण्डितधोरामचन्द्रमिश्रकृते 'प्रतिमानाटक'-प्रकाशे चतुर्थाङ्कः ॥ ४ ॥



सुमन्त्र—आयुष्मन्, अब मुझे क्या करना है ।

राम—तात, महाराजकी जगह आप भरतके साथ रहे ।

सुमन्त्र—यदि जीवा रहा, तो कोशिश करूँगा ।

राम—वत्स कैकेयीनन्दन, मेरे सामने रथ पर चढ़ो ।

भरत—जो आज्ञा ।

(दोनों रथ में बैठते हैं)

राम—मैथिलि, लक्ष्मण, इधर आओ चलो, आश्रमके द्वारतक भरतका
अनुगमन करें ।

(सभी जाते हैं)

चौथा अङ्क समाप्त



अथ पञ्चमोऽङ्कः

(तत्र प्रविशति सीता तापसी च)

सीता—आर्य ! उपहारमुमनआर्क्षीणः सम्मार्जित आश्रमः । आश्रम-
व्यये ! उदहारमुमणाङ्गो सम्मार्जितो ब्रह्मसो । ब्रह्मस-
पदविभवेनानुष्ठितो देवसमुदाचारः । तद् यावदायुषो नाग-
पदविभवेन अनुष्ठितो देवसमुदाचारो । ता जाव ब्रह्मसो ण आश्र-
च्छति, तावदिमान् बालवृक्षानुदकप्रदानेनानुक्रोशयिष्यामि ।
च्छति, ताव इमाणं बालवृक्षानु उदकप्रदानेन अनुक्रोशयिष्यामि ।

तापसी—अविघ्नमस्य भवतु ।
अविघ्नं मे होतु ।

(तत्र प्रविशति रामः)

रामः—(श्लोकम्)

त्यक्त्वा तां गुरुणा मया च रहितां रम्यामयोध्यां पुरी-

उपहारमुमनआर्क्षीणं । देवनिर्मात्यपुण्यार्क्षीणं । सम्मार्जितः पुण्याद्यपनयेन
मंशोध्दम्भोत्तता गमितः । आश्रमपदविभवेन आममन्तान् श्राम्यन्ति तपसा कार्यं
क्लेगमन्ति यत्र स आश्रमः, तदेव पदं स्थानम्, तत्र मुलभेन पुष्पफलाद्युत्तरण-
सम्पदेति नावः, देवसमुदाचारः देवार्चनानिवाचनः । उदकप्रदानेन जलसेवनेन ।
अनुक्रोशयिष्यामि अनुपहोष्यामि ।

प्रविघ्न विघ्नमावः अघ्नोनावममासः ।

त्यक्त्वेति—गुरुणा तावपादेन मया च रहितां दूष्योक्ता रम्या सर्वमनो-
हरामयोध्या नाम निजा पुरीं नगरीं त्यक्त्वा अखिल सम्पूर्णमपि मम वनवासिनी

(सीता और तापसी का प्रवेश)

सीता—आर्य, निर्मात्यपुण्यसे आर्क्षीणं आश्रम झाड़-बुहार दिया है, आश्रम-
मुलम फल-फूल आदि उपकरणोंसे देवपूजन कर लिया है, इस समय इन छोटे-
छोटे पौधोंको ही भींचती हूँ, जब तक आर्यपुत्र नहीं आते ।

तापसी—गुहारा कार्यं निर्विघ्न हो ।

(रामका प्रवेश)

राम—(श्लोकके साथ)

पूज्य पिताजी और सुभ्रतं रहित उस सुन्दर अयोध्या-नगरीको छोड़कर मेरे

कष्टं वनं स्त्रीजनसौकुमार्यं समं लताभिः कठिनीकरोति ॥ ३ ॥

(उपेत्य) मैथिलि ! अपि तपो वर्धते ?

सीता—हम् आर्यपुत्रः । जयत्वार्यपुत्रः ।

हं अय्यउत्तो ! जेदु अय्यउत्तो ।

राम.—मैथिलि ! यदि ते नास्ति धर्मविघ्नः, आस्यताम् ।

सीता—यदार्यपुत्र आज्ञापयति । (उपविशति)

ज अय्यउत्तो आणवेदि ।

रामः—मैथिलि ! प्रतिवचनार्थिनीमिव त्वां पश्यामि किमिदम् ?

यम् न एति नानुभवति ? कष्टं श्लेदावहोऽय विषयः (यत्) लताभिः समं स्त्रीजनसौकुमार्यं लतामादंबोपमेयं ललनाजनमादंबं वनम् (कर्तुं) कठिनीकरोति स्त्रीविधायाससहनशीलं विदधातीत्यर्थः । एष वनवासस्यैव महिमा यदिय मृणालनी मलकाययष्टिः स्वेन करेण दर्पणमपि धारयितुमपारयन्ती पूर्वमिदानीं स्वयं जल्पूणं कलशमादाय वृक्षान् सिञ्चति इति उपजातिवृत्तम्, तद्वक्षणमाहुर्मेया—'स्याद्विद्रवञ्चा यदि तो जगो ग' । उपेन्द्रवञ्चा जतजास्ततो गो । अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजो पादो यदीयावुनजातयस्ता ' इति ॥ ३ ॥

तपः वृक्षमूले जलप्रदानलक्षणं शरीरपरिश्रमसाध्यं पुण्यकर्म । अपि वर्द्धते ? अपि निर्विघ्नं सम्पद्यते अपिशब्दोऽयं प्रश्नार्थोऽपि, तथा च कालिदास — 'जलान्यपि स्नानविदिक्षमाणि ते ? अपि स्वशक्त्या तपसि प्रवर्तते ? अपि प्रसन्नं हृदि णेषु ते मन ? इत्यादि ।

धर्मविघ्नः क्षनुष्टानावसरातिपातः । वृक्षसेचनमवसितं चेदित्यर्थः ।

प्रतिवचनार्थिनी किमपि पिपृच्छिष्यन्तीम् । पश्यामि ओष्ठस्फुरणादिमुखचेष्टानि लक्षयामि ।

उठानेमें भी नहीं थक रहा है । वननिवास लताओंके साथ स्त्रियोंकी भी सुकुमारताको कठोरतामें परिणत कर देता है ॥ ३ ॥

(समीप आकर) मैथिली, तपस्या तो चल रही है ?

सीता—जय हो आर्यपुत्र को ।

राम—यदि तुमको किसी प्रकार का धर्मविघ्न न हो तो बैठो ।

सीता—जो आज्ञा । (बैठती है)

राम—सीते, मालूम होता है तुम कुछ पूछना चाहती हो । क्या बात है ?

सीता—शोकशून्यहृदयस्यैवार्यपुत्रस्य मुखरागः किमेतत् ?
मोक्षमुष्णहिममस्त विद्य अम्यउत्तस्त मुद्गाओ । कि एद ?

राम—मैथिलि ! स्थाने रल्लु कृता चिन्ता ।

कृतान्तशल्यामिहते शरीरे तथैव तावद्घृदयघ्नो मे ।

नानाफलाः शोकशरामिघातास्तत्रैव तत्रैव पुनः पतन्ति ॥४॥

सीता—आर्यपुत्रस्य क इव सन्तापः ?

अम्यउत्तस्त को विद्य मग्दाओ ?

राम—श्वस्तत्रभवतस्तातस्यानुसंभ्रसरश्चाद्धविधिः । कल्पविशेषेण निर्व-
पनक्रियामिच्छन्ति पितरः । तन् कथं निर्वर्तयिष्यामीत्येत-
च्चिन्त्यते । अथवा—

शोकशून्यहृदयस्य शोकेन निमित्तभूतत्र शून्य निर्विषयं तदेकापत्त हृदय यस्य
तस्य । मुखरागः मुखवर्णः लोदान्मविवर्णते-पर्यं ।

स्थाने उचितेऽवश्यममाद्येय विषय चिन्ता कथमिदं निर्वह्यमिति भावना ।
एतेन चिन्ताविषयाभावस्यसमाधेयत्वप्रतिपादनं चिन्तामहत्त्वमुपचीयते ।

कृतान्तेति—कृतान्तशल्यामिहते शल्याद्व्ययवेन कालेन अभिहते आहते
मे शरीरे (पितृविद्योगछेदकिल्लटे) हृदयघ्नः पितृविद्योगशोकलक्षणो मानसिक, छेद-
स्तर्पैव तावत् यथापूर्वावस्य एव न विट्टा न वा विरोहदबन्धः, किन्तु नव एवे-
त्यर्थः । तत्रैव हृदयघ्ने नानाफलाः अनेकप्रयोजना (बहुप्रकारकप्रयोजनानिमित्त-
निमित्ता) शोकशरामिघाता पुनः पतन्ति । तत्रैवेति द्विदक्षिणमंत्रप्रहारस्य निता-
न्तव्यवक्तव्यप्रतीत्ये । अयमर्थः—पितृविरहदुःखशक्त्यमनुसृतमेव यावत्तावन्न नाविद्य-
प्रयोजनोपनिपातचिन्ता मम मानस व्ययपितुमुपतिष्ठन्त इति । उपजातिदण्डः॥४॥

अ. आणामिति दिने । अनुसवत्सरश्चाद्धविधि वापिकं श्राद्धम् । कल्पविशेषेण
सामर्थ्यानुसारेण । निर्वपनक्रिया पिण्डदानविधिम्, इच्छन्ति वामयन्ते । तथा च

सीता—आपके चेहरेपर शोकका चिह्न न देखता हूँ । क्या बात है ।

राम—चिन्ता करनेकी बात तो है ही ।

हुदय के घागप्रहारोंसे व्यथित मेरे हृदयका घाव तो अभी भरा नहीं है, और
फिर नानासुख शोकसत्त्वोंसे दैवने उसी पर प्रहार करना आरम्भ कर दिया है॥४॥

सीता—आर्यपुत्रको किस बातकी चिन्ता है ?

राम—कल पितृजीका वापिक श्राद्धदिवस है, पितरोंको सामर्थ्यानुसार श्राद्ध

गच्छन्ति तुष्टिं खलु येन केन त एव जानन्ति हि तां दशां मे ।
 इच्छामि पूजां च तथापि कर्तुं तातस्य रामस्य च सानुरूपाम् ॥५॥
 सीता--आर्यपुत्र ! निर्वर्तयिष्यति श्राद्धं भरत ऋद्ध्या, अवस्थानुहर्षं
 अय्य उक्त । णिव्वत्तइस्मदि तद्ध भरदो रिद्धं ए, अवस्थापुत्त
 फलोदकेनाप्यार्यपुत्रः । एतत् तातस्य बहुमततरं भविष्यति ।
 फन्नोदण्ण वि अय्य उक्तो । एद तादस्स बहुमदजर नविस्सदि ।

राम.—मैंधिलि !

फलानि दृष्ट्वा दर्भेषु स्वहस्तरचितानि नः ।

स्मरन्ति— जीवतो वाक्यकरणात् क्षयाहे भूरिभोजनात् । गयाया पिण्डदानाच्च
 त्रिभि पुत्रस्य पुत्रता ॥' इति ।

गच्छन्तीति । येन केन येन केनापि प्रकारेण (पुत्रदशानुसारिणा विधिना)
 पितरस्तुष्टिं तृप्तिं यान्ति लभन्ते खलु । हि यत' न एव पितर एव मे मम ता वर्तमान-
 वनवासकालिकीं दशा जानन्ति । एवञ्च स्वमार्गधर्मनुसृत्य वापिक सम्पादयते
 मम व्यवहारेण पितरो मयि न खिचेरन्ति भाव । नन्वेव विज्ञायामि चिन्त्यत इत्य-
 नुचितमित्यत आह—इच्छामीति । तथापि स्वसामर्थ्यानुश्राद्धविधे पितृतृप्तिसाधन-
 ताप्रत्यये नत्यपि तातस्य पितु रामस्य स्वस्य च सानुरूपा योग्याम् , पूजा श्राद्ध-
 क्रिया कर्तुं विधातुमिच्छामि । दिगन्तविख्यातप्रभावस्य पितु प्रथितस्य स्वस्य सानु-
 रूप श्राद्ध विधातुमेव मम चिन्ता न पितृपरितोषविषयेति भाव । अत्र सानुरूपाम्
 इत्यस्य स्थाने 'अनुरूपाम्' इतीयतैव निर्वहि 'स' इति व्यर्थम् । वशस्य वृत्तम् ॥५॥

ऋद्ध्या ममृद्धिसम्पाद्यै. महार्घ्ये पदार्थे, फलादकेन फलेन जलेन चेत्यर्थं,
 फल च उदक चेति द्वन्द्व, 'जातिरप्रणिनाम्' इत्येकवद्भाव ।

फलानीति—दर्भेषु कुशेषु न तु सोवर्णादिपात्रेषु न अस्माकम् स्वहस्तराच-

चाहिष् । उसे मैं किस भोंति पूरा कहूँगा ? यही चिन्ता है, अथवा—

वे जिस भोंति वृत्त होते हों, होवें, उन्हें हमारी स्थितिका ज्ञान तो है ही ।
 तथापि मैं पिताजीकी प्रतिष्ठा तथा अपने सामर्थ्यक अनुरूप पितृश्राद्ध करना
 चाहता हूँ ॥ ५ ॥

सीता-आर्यपुत्र, वडे वैभवके साथ पिताजीका श्राद्ध तो भरत करेंगे ही, आप
 भी अपनी अवस्थाके योग्य फल जलसे श्राद्ध करें, पिताजी इसे ही पर्याप्त मान लेंगे ।

राम—मैंधिलि,

कुशोंपर हमारे अपने हाथोंसे विन्वस्त फलोंको देखते ही हमारे वनवासकी

स्मारितो घनवासं च तातस्तत्रापि रोदिति ॥ ६ ॥

(ततः प्रविशति परिस्राजकवेपो रावणः)

रावण.—एषः भो !

नियतमनियतात्मा रूपमेतद् गृहीत्या खरवधकृतवैरं राघवं वञ्चयित्वा ।
स्वरपदपरिहीणां हव्यधाराभिवाहं जनकनूपसुतां तां हर्तुकामः प्रयामि ॥

तानि निजकरन्यस्तानि न तु भृत्यादिनिहितानि फलानि न तु महापर्वस्तूनि दृष्ट्वा
ततो दशरथ यन्नामम् अस्माकमत्र बने निवासं स्मारितस्तत्र स्वर्गोऽपि रोदिति
विलापिष्यति । अस्माकमसति कृतमुपहारदाग्निद्वेषमालोच्य वनवासितां स्मृत्वा
स्वर्गोऽपि तातो रोदिष्यतीति किमनुष्ठेयतामिति रामस्य चिन्ताया विषयः ॥ ६ ॥

प्रविशति रङ्गमञ्जमवतरति । सीतापहरणं पटयिष्यन् धादप्रसङ्गेन ब्राह्मण-
परिस्राजकवेपस्य रावणस्य प्रवेशमाहानेन प्रसङ्गेन ।

नियतमिति । अनियतात्मा अजितेन्द्रियं अहम् एतद्रूपं वञ्चकपरिस्राजक-
वेप गृहीत्वाह नियत जितेन्द्रियं खरवधकृतवैरं खरो नाम मतिप्रयो राक्षसस्तस्य वधेन
कृतवैरं कृतापराधम्, राघवं वञ्चयित्वा काञ्चनमृगमाययाऽऽधमपदादन्धत्र गमयित्वा
ता राघवविरहिता जनकनूपसुता सीताम्, स्वरपदपरिहीणा स्वरपदविभागवर्जिताम्,
स्वरेण पदेन च दुष्टमन्त्रैर्द्वेष्यो दीयमाना हव्यधारां हविराज्यधाराभिः हर्तुकाम
प्रयामि । प्रयमाशय — यथा मन्त्रदोषेण दीयमानाया हव्यधाराया राक्षसा ग्रहीतारो
भवन्ति, तथैव खरदूषणादिवध विधाय कृतवैरं राम वञ्चयित्वा सीतामहमपहरामीति ।
एतयोपमया स्वस्य सीताप्राप्यनधिकारं सूचयति । अत्र हर्तुं कामो यस्येति विग्रहे
'तुं काममनसोरपो' ति मलाग । 'परिहीणाम्' इति प्रयोगे णत्व चिन्त्यम्, परेरनुप-
सर्गणया णत्वाप्राप्ते । अनुपसर्गत्व च 'अधिपरो अनर्थको' इति कर्मप्रवचनीयसङ्गो-
पसर्गसंज्ञावाधेन बोध्यम् । मालिनोच्छन्दः, लक्षणं पूर्वंमुक्तम् ॥ ७ ॥

यद् अहं जानेसे पिताजी वहाँ भी रो देंगे ॥ ६ ॥

(सन्वासी के वेशमें रावण का प्रवेश)

रावण—अरे यह—

रामने खरका वध करके मेरे साथ वैर बढ़ाया है । मैं आज उसे ढगनेके
लिए अविरक्त होकर भी विरक्तका रूप धारण करता हूँ । मैं सीताका हरण करने
उस प्रकार जा रहा हूँ, जिस प्रकार स्वर तथा पदसे अनुद्ध मन्त्रोच्चारण होमकी
आज्यधारा को हर लेता है ॥ ७ ॥

(परिक्रम्याद्यो विलोक्य) इदं रामस्यान्नमपदद्वारम् । यावदन्न-
रामि । (अवतरति) यावदहमप्यतिथिसमुदाचारमनुष्ठास्यामि ।
अहमतिथिः । कोऽत्र भोः ?

राम—(श्रुत्वा) स्वागतमतिथये ।

रावण—साधु विशेषितं खलु रूपं स्वरेण ।

रामः—(विलोक्य) अये भगवन् । भगवान् ! अभिवाद्ये ।

रावण—स्वस्ति ।

रामः—भगवन् ! एतदासनमास्यताम् ।

रावण—(आत्मगतम्) कथमाज्ञप्त इवास्म्यनेन । (प्रकाशम्)
वाढम् (उपविशति)

रामः—मैथिलि ! पाद्यमानय भगवते ।

साधु स्वभावसुन्दरम्, रूपम् आकृति, स्वरेण श्रवणावर्जकेन शब्देन विशेषित
रमणीयतर कृतमित्यर्थः ।

भगवान् सन्यासिविधेय ।

आस्यताम् इदमासनम् अलङ्कृत्यताम् इति वक्तव्ये आस्यतामिति कथनं
कियन्तमाज्ञाभाव व्यञ्जयति, तद्वद्व्यति आज्ञप्त इवेति ।

पाद्य पादायमुदकम् ।

(घूमकर तथा नीचेकी ओर देखकर) यह है रामाश्रमद्वार । अच्छा, नीचे तो
उतर लें । (उतरता है) अब मैं अतिथिका रूप धारण करता हूँ । मैं अतिथि
आया हूँ, कौन है यहाँ ?

राम—(सुनकर) स्वागत अतिथिका ।

रावण—इसके स्वरने रूपको और चमका दिया है ।

राम—(देखकर) भगवान् हैं ? भगवन्, प्रणाम ।

रावण—कल्याण हो ।

राम—भगवन्, यह है आसन, आप विराजिए ।

रावण—(आत्मगत) यह हुट्टमत क्यों कर रहा है ? (प्रकट) बहुत अच्छा !
(बैठता है) ।

राम—सीता, महारामाके लिए पाद्य जल लाओ ।

सीता—यदार्यपुत्र आहापयति । (निःश्रम्य, प्रविश्य) इमा आपः ।
जं अय्यउत्तो आणवेदि ।
इमा आवो ।

राम—शुश्रूपय भगवन्तम् ।
सीता—यदार्यपुत्र आहापयति ।

जं अय्यउत्तो आणवेदि ।

रावण—(मायाप्रकाशनपर्याकुलो भूत्वा) भवतु भवतु ।

इयमेका पृथिव्यां हि मानुषीणामरुन्धती ।

यस्या भर्तेति नारीभिः सत्कृतः कथ्यते भवान् ॥ ८ ॥

राम.—तेन हि आनय, अहमेव शुश्रूपयिष्ये ।

शुश्रूपय पादप्रक्षालनेनोपचरेत्यर्थः ।

मायाप्रकाशनेति—मायाया स्वकृतस्य कपटपरिभ्राजकवेषस्य प्रकाशनेन प्रकटतया (समावृत्तया) पर्याकुल, व्याकुल । सीतया हि स्वपादे स्पृश्यमाने अजितेन्द्रियस्य रावणस्य रोमाञ्चोद्गमनादिना माया प्रकटोभवेदिनि गच्छाकुलीभाव । भवतु शुश्रूपण परित्यजतु इति ।

इयमेकेति—इय हि निश्चयेन पृथिव्या परित्रीपृष्ठे मानुषीणा मानवीनाम् एका मजातीयद्वितीयरहिणा अरुन्धती पतिव्रताशिरोमणिः । अरुन्धती नाम वनिष्ठ-घर्मपत्नी स्वपातिव्रत्यप्रभावेण महाविमध्ये वसति, इह तत्प्रयोग पतिव्रतासामान्य-पर । यस्याः सीताया भर्ता स्वामीति हेतो भवान् नारीभि सत्कृत पूजित सन् कथ्यते वष्यते । पतिव्रताया सीताया लोकनमस्यत्वम् । तत्पातिव्रत्यप्रभावेण तत्पति-भवानपि यतो लोके पूज्यतेऽनः पतिव्रताप्रधानभूतया सीतया त्रियमाणं पादम्परां मानुष्य इति भावः ॥ ८ ॥

सीता—ओ भाजा (घाहरसे जल लाकर) यह है जल ।

राम—महात्माकी शुश्रूपा करो ।

सीता—जो भाजा ।

रावण—(भेद खुलनेके भयसे हक्का-पक्का होकर) रहने दो रहने दो ।

यह सीता पृथ्वीपरकी अरुन्धती मानवी है, जिसके स्वामी होने के कारण स्त्रियाँ आपका यश गाती हैं ॥ ८ ॥

राम—लाजो, मैं खुद शुश्रूपा करूँगा ।

रावण —अयि, छायां परिहृत्य शरीरं न लङ्घयामि । वाचानुवृत्तिः सत्य-
तिथिसत्कारः । पूजितोऽस्मि । आस्यताम् ।

राम —वाढम् । (उपविशति)

रावण --(आत्मगतम्) यावद्दहमपि ब्राह्मणसमुदाचारमनुष्ठास्यामि ।
(प्रकाशम्) भोः ! काश्यपगोत्रोऽस्मि । साङ्गोपाङ्गं वेदमर्धाये,
मानवीयं धर्मशास्त्रं, माहेश्वर योगशास्त्रं, बाहंस्पत्यमर्थशास्त्र,
मेघातियेर्न्यायशास्त्रं प्राचेतसं श्राद्धकल्पं च ।

रामः--कथं कथं श्राद्धकल्पमिति ।

अयीति—योऽहं मवदीयशरीरस्य सततानुगमनात् छायातुल्या सीतामपि
शुश्रूपायंस्पशंशूषणलक्षणाङ्गनात् परिहरामि, स कथं साक्षाद्भवच्छरीरमेव लङ्घय-
यमित्यर्थः । वाचा सूनुतया गिरा, अनुवृत्ति अनुकूलभाषणम् । तदुक्तमातिथ्यप्रस्तावे
'तृणानि भूमिरुदक वाक् चतुर्थी च सूनुता' इति ।

साङ्गोपाङ्गम् अङ्गैः पद्मं शिखाव्याकरणच्छन्दोनिस्तज्ज्योतिषकल्पामिधैर् ।
उपाङ्गैः पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्ररूपंश्चतुर्भिश्च सहितम् । मानवीयं मनुना
प्रवृत्तितम् । धर्मशास्त्र धर्मानुशासनम् । बाहंस्पत्यं बृहस्पतिना प्रोक्तं राजनीतिप्रति-
पादनप्रधानं शास्त्रविशेषम् । माहेश्वरं माहेश्वराच्छिवादागतं माहेश्वरं भागशास्त्रं
पातञ्जलयोगशास्त्रस्य मूलभूतम् । मेघातियेर्गौतमस्य । प्राचेतसा वरुणेन प्रोक्तं
प्राचेतसं, श्राद्धकल्पं श्राद्धप्रक्रियाम् । अधीये इति क्रियायां सर्वत्र समं सम्बन्धम् ।

कथं कथमित्यादरातिशयद्योतिका द्विरुक्तिः ।

रावण—छायाके समान सीताकी सेवासे निषेध करने वाला मैं शरीरकी सेवा
कैसे ग्रहण करूँगा । सीटे वचनोसे स्वागत ही सच्चा अतिथिसत्कार होता है ।
मेरी शुश्रूपा हो चुकी । आप विराजिष् ।

राम—अच्छा, जो आज्ञा । (वैठता है ।)

रावण—(स्वगत) तब तक मैं ब्राह्मणका आचार करूँ । (प्रकट) अजी मेरा
गोत्र काश्यप है । मैंने साङ्गोपाङ्ग वेद, मानवीय धर्मशास्त्र, माहेश्वर योगशास्त्र,
बृहस्पतिका अर्थशास्त्र, मेघातियेर्न्यायशास्त्र और प्राचेतसाका श्राद्धकल्प इनका
अध्ययन किया है ।

राम—क्या कहा ? श्राद्धकल्प ।

रावण — सर्वाः श्रुतीरतिशय्य श्राद्धकल्पे स्पृहा दक्षिता । किमेतत् ?

राम — भगवन् ! श्रद्धायां पितृमत्तायामागम इदानीमेव ।

रावण — अलं हरिहृत्य, पृच्छतु भवान् ।

राम — भगवन् ! निर्वपनक्रियाकाले केन पितृं स्तर्पयामि ।

रावण — सर्वं श्रद्धया दत्तं श्राद्धम् ।

राम — भगवन् ! अनादरतः परित्यक्तं भवति । विशेषार्थं पृच्छामि ।

रावण — श्रूयताम् । विरूढेषु दर्माः, ओषधीषु तिलाः, कलाय

श्रुती. वेदान् सदङ्गभूतानि शास्त्राण्यपि श्रुतिपदेनात्र सदगृह्णाति प्रपठत् ।

श्रद्धाया समाप्तायाम्, पितृमत्ताया जीवत्पितृकृत्यायाम्, एव एव श्राद्धकल्पे-
एव, आगमः शास्त्रम्, प्रतीतपितृकर्म्य मम श्राद्धकल्प एवोपयोगावहः, प्रयोजनेनापे-
क्षणात् । अपेक्षोपेक्षे हि प्रयोजनतदभावाभ्या सृज्यन्ते पदार्थानाम् इति रामाशयः ।

श्राद्धमिति—पितृनुद्दिश्य श्रद्धया दीयमानं श्राद्धम् । येन केनापि श्रद्धया
दत्तेन पदार्थेन पितरस्तृप्यन्ति, न तु बहुमूल्यानेव पदार्थानपेक्षन्त इति भावः ।
श्राद्धप्रमङ्गं मनुराह—'यत्तद्दाति विधिवत् श्रद्धाभक्तिममन्विन । तत्तान् पितॄणां
भवति परशानन्तमक्षयम् ॥' इति । अनादरत यश्रद्धया, दत्तं परित्यक्तं भवति,
परित्यागमात्रं तत्, न तु श्राद्धमश्रद्धोपहतत्वादिति भावः । विशेषार्थं श्रद्धापूर्वक
दीयमानेषु पदार्थेष्वप्यस्ति कश्चिद्विशेष इति भावः ।

विरूढेषु तृणजातिषु, दर्माः, पुत्राः, ओषधीषु 'ओषध्य. फल्पाकान्ता' इति परि-
भाषितासु, कलाय कालशाक, वार्ध्नीणसः पक्षिभेद 'नीलग्रीवो रक्तशीर्षं कृष्णपाद

रावण—आपने और सभी शास्त्रोंको छोड़कर श्राद्धकल्पमें अत्यादर प्रकट किया
क्या यात है ?

राम—पितृहीन होनेके कारण इस समय हमारे लिए इसीका ज्ञान अपेक्षित है ।

रावण—आपको यह विषय छोड़ना न चाहिये । पृच्छिये ।

राम—महाराज, पिण्डदानके समय किस चीजसे पितरोंको तृप्त करूँ ।

रावण—जो कुछ श्रद्धासे दिया जाय, वह सब श्राद्ध कहलाता है ।

राम—अश्रद्धामें दिया गया तो त्याग कर दिया जाता है । मैं तो विशेष
ज्ञानने के लिए पूछ रहा हूँ ।

रावण—सुनिये । घासोंमें कुश, ओषधियोंमें तिल, शाकोंमें कलाय, मछलियोंमें

शाकेषु, मत्स्येषु महाशकरः, पक्षिषु वार्ध्नीणसः, पशुषु गौः खड्गो
वा इत्येते मानुषाणां विहिताः ।

राम.—भगवन् ! वाशब्देनावगतमन्यदप्यस्तीति ।

रावण.—अस्ति प्रभावसम्पाद्यम् ।

राम —भगवन् ! एष एव मे निश्चयः ।

उभयस्यास्ति सान्निध्यं यद्येतत् साधयिष्यति ।

धनुर्वा तपसि श्रान्ते श्रान्ते धनुषि वा तपः ॥ ६ ॥

रावण —सन्ति । हिमवति प्रतिवसन्ति ।

सितच्छदः । वार्ध्नीणसः स्यात् पक्षीणः' इति लक्षितः । मार्कण्डेयोऽपि 'रक्तपादो
रक्तशिरा रक्तवशुर्विहङ्गमः । कृष्णवर्णेन न तथा पक्षो वार्ध्नीणसो मतः ॥' इति ।
'कालशाक महाशरका' खड्गलोहामिष मधु । आनन्त्यायैव कल्पन्ते मुन्यघ्नानि च
सर्वश ॥' इति मनु । खड्गः गण्डकः पशुभेदः ।

वाशब्देन अनुक्ततमुच्चयार्थकनयात्र प्रयुक्तेन वापदेन । एतेनोक्तावशिष्टमपि
पितृवृत्तये क्षममस्तीति प्रतीयत इति भावः ।

एष एव प्रभावसम्पादितेन द्रव्येण पितृस्तपस्यामीत्येवरूप एव ।

उभयस्योक्ति—मयि मल्लक्षणे जने उभयस्य साधनभूतस्य तपसो धनुषश्चेति
साधकद्वयस्य सान्निध्य समीपवर्तित्वमस्ति । अहं धनुषा तपसा वा यत्किमपि प्रभाव-
सम्पाद्यमाहर्तुमीशः तपोबलक्षानत्रलातिरिक्ततृतीयबलस्याप्रसिद्धेक्षमयोश्च तयोर्मयि
सान्निध्यमिति प्रभावसाध्य नाम ममासाध्य न भवतीति भावः । तदेवाह—तपसि
श्रान्ते प्रयोगातिगयेन क्षिप्ने धनुषि च तथाभूते तपोवने वा व्यापारणीयमिति
मदसाध्य न प्रश्येमीति भावः ॥ ९ ॥

सन्तीति-प्रभावसम्पाद्यानि द्रव्याणि नालीकानीति भावः । स्थानमाह-हिमवतीति ।

महाशकर, पक्षियोंमें वार्ध्नीणस और पशुओंमें गाय या बैँडा, मनुष्योंके लिए ये ही
विहित हैं ।

राम—महाराज, क्या कुछ और है ?

रावण—हाँ, है, किन्तु उसे कोई प्रतापी ही प्राप्त कर सकता है ।

राम—यही मेरा भी निश्चय है ।

जो इस कार्यको सिद्ध करेंगे वे दोनों (तप, बल) साधन मेरे पास मौजूद हैं ।
यदि तपस्या असफल हुई तो बल और बलके असफल होने पर तप ॥ ६ ॥

रावण—हँ तो, परन्तु हिमालय पर रहते हैं ।

रावण—(स्वगतम्) अहो असह्यः सत्वस्यावलेपः । (प्रकाशम्) अये
विद्युत्सम्पात इव दृश्यते । कौसल्यामातः ! इहस्थमेव
भवन्तं पूजयति हिमवान् । एष काञ्चनपार्श्वः ।

राम—भगवतो वृद्धिधरेण ।

सीता—दिष्ट्याऽऽर्यपुत्रो वर्धते

दित्ठिआ अग्गज्जतो वडडइ ।

राम—न न,

तातस्यैतानि भाग्यानि यदि स्वयमिहागतः ।

अर्हत्येव हि पूजायां लक्ष्मणं ब्रूहि मैथिलि ! ॥ १३ ॥

सीता—आर्यपुत्र ! ननु तीर्थयात्रात उपावर्तमानं कुलपति प्रत्युद्ग-
म्यउत्त । ण तित्त्वज्जत्तादो एवावत्तमाण कुम्बदि पच्चुग्ग-

अवलेपे पराङ्गमाभिमान (तदयमहति मायाहृता वञ्चनाम्) इन्म्य हिमवद्दिग्-
गिकाननमप्राप्तमेव । पूजयति निजाङ्गणचारिकाञ्चनमृगोपहारेण समर्चयति । एतेन
गोरवप्रकर्षं उक्तं । वृद्धि प्रभावातिशयः ।

तातस्येति—यदि (काञ्चनमृग) इह मद्व्युपितप्रदेशे स्वयान्तरैव कमपि
प्रयासविशेषमागत प्राप्त एतानि तातस्य पितुं (श्च दरिष्यमाणवापिकथाद्गोपयु-
क्तवस्तुस्वयमुपनिपातहेतुभूतानि) भाग्यानि । एष हि काञ्चनपार्श्वो मृग पूजाया
वापिकविधौ अर्हति उपयुज्यते । मैथिलि सीते, लक्ष्मण ब्रूहि । इममर्थमिति शेषः ।
तथा च न शीघ्रमेवैनमानविष्यतीति भावः ॥ १३ ॥

कुलपति तत्तपोधनप्रधानमृगविदोषम् । प्रत्युद्गच्छ प्रत्युद्यानेन सम्भावय ।

रावण—(स्वगत) इसका धमण्ड तो सहा नहीं जाता । (प्रकट) विजलीकी
सी चमक मालूम पड़ रही है । कौसल्यानन्दन, तुम्हारे यहीं रहने पर भी हिमालय
तुम्हारा आदर कर रहा है, यह है काञ्चनसृग ।

राम—यह आपकी महिमा है ।

सीता—अहोभाय, आप बड़े प्रभावी हैं ।

राम—नहीं, नहीं ।

यह पिताजीका भाग्यातिशय है कि यह काञ्चनसृग खुद यहाँ आ पहुँचा है ।
यह पूजाके लायक है, मैथिलि, लक्ष्मणको खबर दो ॥ १३ ॥

सीता—आर्यपुत्र, लक्ष्मणको तो आपने तीर्थयात्रासे लौटते हुए कुलपति*की

* कुलपतिरक्षण—

मुनीना दशसाहस्र योऽन्नदानादिपोषणात् ।

च्छति सन्दिष्टः मीमित्रिः ।

च्छेहिति सन्दिष्टो सोमिती ।

राम — तेन हि अहमेव यास्यामि ।

सीता — आर्यपुत्र ! अहं किं करिष्यामि ?

अत्युत्त ! अहं किं करिस्सं ?

रामः — शूद्रपयस्व भगवन्तम् ।

सीता — यदायपुत्र आज्ञापयति ।

ज अत्युत्तो आणवेदि ।

(निष्क्रान्तो राम)

रावण — अये अयमर्घ्यमादायोपसर्पति राघवः । एष इदानीं पूजा-
मनवेह्य धावन्तं मृगं दृष्ट्वा धनुरारोपयति राघवः ।

अहो बलमहो वीर्यमहो सरधमहो जवः

चिरप्रवासान् परावृत्तो हि स्निग्धः प्रत्युद्गम्य कुशलादिकं जिज्ञास्यत इति शिष्ट-
समुदाचारः ।

अनवेद्य परित्यज्य ।

अहो बलमिति — महो इत्याश्रये, बल शारीरिकी शक्तिः, वीर्यमान्तरिकः

भगवानीके लिए भेजा है ।

राम — तब तो मैं ही जाऊँगा ।

सीता — आर्यपुत्र ! मैं क्या करूँगी ?

राम — महाराजकी शूद्रपूजा ।

सीता — जो आज्ञा ।

(रामका प्रस्थान)

रावण — अभी तो राम मेरे निमित्त अर्घ्य लिये आ रहे थे, और अभी पूजा-
पराहसुख हो भागे जाते हुए काञ्चनशृंग को देखकर घनुष चढ़ा रहे हैं । अहा !
कैसा बसीम पराक्रम, कैसी अनुपम बद्धादुरी, कैसा लोकोत्तर पौरुष और कैसा

अध्यापयति विप्रर्षिरसौ कुलपति स्मृतः ॥

वहाँ कुलपतिके होनेमें प्रमाण —

एते ते तापसा देवि ! दृश्यन्ते तनुमध्यमे ।

अत्रिः कुलपतिर्यत्र सूर्यवैश्वानरोपमः ॥ (रामायण युद्धकाण्ड १२३ अ०)

सीता—आर्यपुत्र ! परित्रायस्व परित्रायस्व । सौमित्रे ! परित्रायस्व
 अथ्यउत्त ! परित्ताआहि परित्ताआहि । सोमित्तो ! परित्ताआहि
 परित्रायस्व माम् ।
 परित्ताआहि म ।

रावण.—सीते श्रूयतां मत्पराक्रमः ।

भग्नः शक्रः कम्पितो वित्तनाथः कृष्टः सोमो मर्दितः सूर्यपुत्रः ।
 धिग् भो स्वर्गं भीतदेवैर्निविष्टं धन्या भूमिर्वर्तते यत्र सीता ॥१७॥
 सीता—आर्यपुत्र ! परित्रायस्व परित्रायस्व । सौमित्रे ! परित्रायस्व
 अथ्यउत्त ! परित्ताआहि परित्ताआहि । सोमित्तो ! परित्ताआहि
 परित्रायस्व माम् ।
 परित्ताआहि मं ।

रावणः—

रामं वा शरणमुपेहि लक्ष्मणं वा स्वर्गस्थं दशरथमेव वा नरेन्द्रम् ।

भग्न इति—शक्र इन्द्रो भग्नो युद्धे पराजितः, वित्तनाथः कुबेरः कम्पितः
 भयेन चालितः, सोम चन्द्रः कृष्टः कपितः स्वावासदेशादाहृत्य स्वप्राप्तादशिखरे
 स्थापित । सूर्यपुत्रः यमः मर्दितः मानापाकरणेन निस्तेजस्कः कुत इत्यर्थः । एता-
 दशपराक्रमोऽहमस्मीति रावणस्य गर्वः । नन्वेवं तहि स्वर्गं एव त्वया स्वावासभूमिः
 किमिति न कृतेत्यत्राह—धिगिति । भीतदेवः, भीहस्वभावः सुरैः निविष्टमधिष्टित
 स्वर्गं विक्, सा भूमिरिय परित्री धन्या प्रशंसनीया, यत्र सीता (सीतासदृशी
 रमणीयगुणसौन्दर्या स्त्री) वर्तते । शालिनीवृत्तम् ॥ १७ ॥

राम इति—राम शरणं त्रातारमुपेहि गच्छ, लक्ष्मणं वा शरणमुपेहि त्रातार-
 माश्रयस्व, स्वर्गस्थ दशरथं तन्नामानं वा नरेन्द्र शरणमुपेहि त्रातारमाश्रयस्व, नानेन

सीता—आर्यपुत्र, रक्षा करो, रक्षा करो । लक्ष्मण, रक्षा करो, रक्षा करो ।

रावण—सीते, सुनो मेरा पराक्रम ।

मैंने इन्द्रको परास्त किया, कुबेरको कँपाया, सोमको धींच लिया और
 यमराजको मर्दित किया है । धिक्कार है उस स्वर्गको जहाँ मेरे भयसे भीत
 देवगण रहा करते हैं, धन्य तो वह पृथ्वी है, जहाँ सीता रहती है ॥ १७ ॥

सीता—आर्यपुत्र, रक्षा करो, रक्षा करो, लक्ष्मण, मुझे बचाओ, बचाओ ।

रावण—तुम चाहे रामकी शरण लो, लक्ष्मणकी अथवा स्वर्गवासी दशरथकी

किं वा स्यात् कृपुरुषसंश्रितैर्वचोभिर्न स्याद्यं मृगशिशवः प्रधर्षयन्ति ॥
 सीता—आर्यपुत्र ! परित्रायस्व परित्रायस्व ! सौमित्रे ! परित्रायस्व
 द्रम्यवत् ! परित्राशाहि परित्राशाहि । सोमिन्त्री ! परित्राशाहि
 परित्रायस्व माम् ।
 परित्राशाहि म ।

रावण.—

विलपसि किमिदं विशालनेत्रे ! विगणय मां च यथा तवार्थपुत्रम् ।
 विपुलबलयुतो ममैव योद्धुं ससुरगणोऽप्यसमर्थ पद्य रामः ॥१६॥
 सीता—(क्रोधम्) शमांसि ।
 सत्तो सि ।

किमपि साध्यमिति । एतैः कृपुरुषसंश्रितैः कृतिसत्पुरुषावधैः दुर्वलत्वेनातिक्रम-
 पात्ररामलक्ष्मणदशरथविषयैस्त्रायस्वेति ध्वनैर्मम रोषणस्य किं स्यात् ? किमपि
 न च्छेद्येतेति भावः । तत्र दृष्टान्तमाह—न व्याघ्रमिति । व्याघ्र द्वीपिनं मृगशिशवः,
 हरिणशादकाः न प्रधर्षयन्ति नोत्पीडयन्ति । यथा व्याघ्रस्य कृते हरिणशिशवो न
 मयदास्त्वया ममापि कृते रामलक्ष्मणदशरथाः फलव इति वृथा तानाक्रोशसीति
 भावः । प्रहृषिणी वृत्तम् ॥ १८ ॥

विलपसीति—विशालनेत्रे विशालाक्षि, किमिदं विलपसि ? वृथा तवाय
 विलापो मांसकाशात्वा त्रातु कस्याप्यसमर्थत्वादिति भावः । मा तवार्थपुत्रं मर्तारं
 यथा इव विगणय जानीहि । यतोऽहं तव मत्तुं रम्यधिकबलवानतो मामेव मर्तारं-
 मञ्जीकृतित्यर्थः । तथा हि एष त्वया प्राणार्थं प्राप्यमानं विपुलेन महता सैन्येन
 युतः सहितः सुराणां देवानां गणैः समूहैश्च सहितः अपि रामः मम योद्धुं युद्धेऽव-
 स्थातुम् असमर्थ एव । अशक्त एव । तस्मान्मामेव मर्तारं भजेति भावः । एतेन
 रावणस्य मुजबलावलेपो व्यक्तः । पुष्पिताया वृत्तम् ॥ १९ ॥

ही दारण में जाओ । इन कायर पुरुषों की पुकार से मेरा क्या भिगड़ेगा, क्या मुग
 के बच्चों से सिंह का परामव सम्भव है ॥ १८ ॥

सीता—आर्यपुत्र, रक्षा करो, रक्षा करो । लक्ष्मण, मेरा परित्राण करो ।

रावण—हे विशालनेत्रे, अथ तुम यह वृथा विलाप क्यों कर रही हो ? भव से
 अपने आर्यपुत्र की जगह मुझे समझो । समस्त देवों के सहित तथा अपरिमित
 सेना से युक्त होकर भी राम मुझसे युद्ध करने में असमर्थ ही रहेगा ॥ १६ ॥

सीता—(क्रोध से) मैं तुमको शाप देती हूँ ।

१० प्र० ना०

रावण —अहह ! अहो पतिव्रतायास्तेजः ।

योऽहमुत्पतितो वेगाच्च दग्धः सूर्यरश्मिभिः ।

अस्याः परिमितैर्दग्धः शप्तोऽसीत्योभिरक्षरैः ॥ २० ॥

सीता—आर्यपुत्र ! परित्रायस्व परित्रायस्व ।

अञ्जउत्त ! रिताग्राहि रिताग्राहि ।

रावण —(सीता गृहोत्वा) भोः भोः ! जनस्थानवासिनस्तपरिस्वनः !

शृण्वन्तु भवन्तः—

बलादेव दशग्रीवः सीतामादाय गच्छति ।

क्षात्रधर्मे यदि स्निग्धः कुर्याद् रामः पराक्रमम् ॥ २१ ॥

सीता—आर्यपुत्र ! परित्रायस्व परित्रायस्व ।

अञ्जउत्त ! रिताग्राहि रिताग्राहि ।

अहहेति सीताशापोपहासे ।

योऽहमिति—वेगादुत्पतित आकाशं गतो योऽह सूर्यस्य रश्मिभिः भास्करस्य प्रक्षरैः करैर्न दग्धः परितापितोऽस्मि । सोऽहं सूर्यतेजःपरिस्वनसमर्थोऽहम्; अस्या सीतायाः शप्तोऽसि एभिरेतैः परिमितैः त्रिभिरक्षरैर्वर्णैः दग्धः परितापितोऽस्मि ? अपमुपहास सीतानुकूलनाय कृतो बोध्यः । जनस्थानवासिनस्तपोघनाः = जनस्थान दण्डकारण्यमध्यवर्ति मुनिजनाधिष्ठितं तपोवनम्, तत्र वसन्तीति ते । तपोघना म्रुनयः ॥ २० ॥

बलादिति । एषः दश ग्रीवा. कण्ठा यस्य स दशग्रीवः. रावणः बलात् पराक्रमात् बलमास्त्राद्येत्यर्थे लघ्वलोपे पञ्चमी । सीतामादाय गच्छति स्वपुरीमिति दीपः । यदि रामः क्षात्रधर्मे स्निग्धः अनुरागी तदा पराक्रमं कुर्यात् प्रकटयेत् । मया क्रियमाणस्यास्यापराधस्य प्रतिशोधयेदिति भावः ॥ २१ ॥

रावण— ह ह ह !! बाहू रे पतिव्रता का तेज !

जो मैं वेग से आकाश में उड़ने के समय सूर्यकिरणों से नहीं जलता, वही मैं इससे 'मैं तुमको शाप देती हूँ' इन गिने अक्षरोंसे झूलस गया ? ॥ २० ॥

सीता—आर्यपुत्र, रक्षा करो, रक्षा करो ।

रावण—(सीता को पकड़कर) हे वनवासी तपस्वियों, आप सुन लें—

सीता को रावण बलपूर्वक हरण कर लिये जा रहा है, यदि राम को क्षात्रधर्म पर कुछ आस्था हो तो अपना पराक्रम प्रकट करे ॥ २१ ॥

सीता—आर्यपुत्र, रक्षा करो, रक्षा करो ।

रावणः—(परिक्रामन् त्रिलोक्य) अये ! स्वपक्षपक्षनोत्क्षेपक्षुभितवनखण्ड-
श्चण्डवच्चुरभिधावत्येष जटायुः । आः ! तिष्ठेदानीम् ।

मद्भुजाकृष्टनिस्त्रिशकृत्तपक्षतच्युतैः ।

रुधिररार्द्रगात्रं त्वां नयामि यमसादनम् ॥ २२ ॥

(निष्क्रान्ती)

इति पञ्चमोऽङ्कः ।



स्वपक्षयोः निजगहनो पवनेन शीघ्रचालनप्रमूतेन वातेन, य उत्क्षेप उपरिक्षेप-
णम्, तेन क्षुमिता. सञ्चालिता धनखण्डाः वनसमूहा येन तादृशाः । एतेन ससम्प्र-
मपतनेन जटायोरवसरमित्रत्व व्यक्तम् । घण्टा भीषणा तीव्रप्रहारा चञ्चूर्यस्य स ।
अभिधावति मां लक्ष्मीकृत्यायच्छति । एतेन रावणस्य चिन्तोक्ता । आः कोपे ।

मञ्जुजेति—यम भुजेन बाहुना आकृष्टः कोशादुद्बृत्तो यः निम्निनः खड्गस्तेन
कृत्तयोदिच्छन्नयोः पक्षयोयंन् दातं व्रणस्तस्मात् च्युतैर्गलितै रुधिरै रक्तैः आद्राणि
मिक्तानि क्लिन्नानि अङ्गानि गात्राणि यस्य तथाभूत त्वा यमस्य सादनमेव सादनं
गृहं नयामि प्रापयामि । मया क्षतपक्षस्य रुधिरोक्षितस्य तव पाणानचिरेणाहं हरा-
मीत्यर्थं । प्राणहरणस्य यमसादनप्रापणमङ्गघामिधानात् पर्यायोक्तघलद्धारोऽत्र ॥
इति मैथिलपण्डिनद्यौरामचन्द्रमिश्रकृते 'प्रतिमामाटक-प्रकाशे' पञ्चमोऽङ्कः ॥५॥



रावण—(घूमकर तथा देखकर) अरे, अपने पंखोंकी तेज वायुसे सारे धन-
चूर्णोंको कम्पित कर देनेवाला और भयानक चोंचवाला यह जटायु मेरी ही ओर
दौड़ा आता है, आः ! ठहर तो अभी :—

मैं अपने हाथोंसे अपनी तीव्र धारवाली तलवार निकाल कर तेरे पंखोंको
काटता हूँ और शीघ्रतसे भिगाकर तुझे यमलोक भेजता हूँ ॥ २२ ॥

(दोनों का प्रस्थान)

पञ्चम अङ्क समाप्त



तीक्ष्णैरायसकण्ठकैरिष नखैर्भीमान्तरं वक्षसो

वज्राग्रैरिव दार्यमाणविषमाच्छैलाच्छिला पाठ्यते ॥ ३ ॥

द्वितीय — हन्त ! सक्रुद्धेन रावणेनासिना क्रव्यादीश्वरः स दक्षिणास-
देशे हतः ।

उमो—हा धिक् । पतितोऽन्नभवान् जटायुः ।

प्रथम — भोः कष्टम् । एष खलु तत्रभवान् जटायुः—

कृत्वा स्वधीर्यसदृशं परम प्रयत्नं क्रीडामयूरमिव शत्रुमचिन्तयित्वा ।
दीप्तं निशाचरपतेरवधूय तेजो नागेन्द्रभग्नवनवृक्ष इवावसन्नः ॥४॥

महता पराक्रमेण युध्यते इत्यर्थोऽस्मिन्मत्, अथवा वीर्यविषयम् इति परिभूयत्ययम् कर्म,
तथा च वीर्यविषय स्वबललक्ष्यभूत रावण परिभूयत्यथ । अचल स्थिर सत्
तुण्डाभ्या चञ्चूभ्या सुनिष्कृष्ट तीक्ष्ण चयय स्यात्तथा सवहन वेष्टते सम्यग् वेष्टनयुक्त
मथा स्यात्तथा वेष्टते । एव च तुण्डाग्रेण तीक्ष्णेन प्रतिघोद्वार निपत्य निघपति पुन-
र्वलयकारेण वेष्टते चेत्यथ । आपसकण्ठकैरिव लीन्मयै कण्ठकैरिव तीक्ष्णं निशि-
ताप्रमाणं नखै नखरं वक्षस रावणोरस मोममतिमयानक मयोत्पादकम् आन्तरम्
मासादिवज्राग्रं कुलिशकोटिमि दार्यमाणविषमात् पाटितत्वेनान्तरपदायप्रत्यक्षीमा-
वमीषणात् शैलात् पर्वतात् शिलाप्रस्तरशकलमिव पाठ्यते पाठयित्वा गृह्यते । अत्र
कर्तृप्रत्ययकर्मप्रत्ययकृत प्रक्रममङ्गो दोष । स दूलविक्रीञ्चित वृत्तम् ॥ ३ ।

कृत्वेति—स्वीयसदृश निजभुजबलानुरूप परममुत्तम प्रयत्न प्रयास सीताप्र-
रित्राणविषय कृत्वा, शत्रु रावणसदृश विपक्ष क्रीडामयूरमिव क्रीडनकशिखावलमिव
अचिन्तयित्वा अविगण्य पराक्रमवत्तयाऽविभावेति भाव । निशाचरपते राक्षस-

के साथ द्वन्द्व युद्ध कर रहा है, किस प्रकार खूब डटकर अपने तीक्ष्ण चञ्चुयुगल
द्वारा उसे काट खानेकी चेष्टा कर रहा है । वह लौहकण्ठकतुल्य नखों से रावणकी
छातीपर भयानक तथा विस्तृत घाव इस तरह पैदा कर रहा है, मानो वज्राप्रद्वारा
कठोर शिला फाड़ी जा रही हो ॥ ३ ॥

दूसरा—शोक ! क्रुद्ध रावणने गृध्रराजके दाहिने कन्धेपर तलवारका प्रहार
कर दिया ।

दोनों—हा शोक ॥ जटायु गिर गया ।

पहला—खेद ! यह पुण्यात्मा जटायु—

अपने पराक्रमके अनुरूप आखिरी दम तक लडकर, शत्रुके बलवीर्यकी चिता
नफर और राणसराजके प्रचण्ड पराक्रमको दबाकर, इस समय वनराजके द्वारा

उमो—स्वर्ग्योऽयमस्तु ।

प्रथमः—काश्यप ! आगम्यताम् । इमं वृत्तान्तं तत्रभवते राघवाय
निवेदयिष्यावः ।

द्वितीय —घाढम् । प्रथमः कल्पः । (निष्क्रान्ता)

(चिष्कम्भः)

(ततः प्रविरति काञ्चुकीय)

काञ्चुकीयः—क इह भाः ! काञ्चनतोरणद्वारमशून्यं कुरुते ?

(प्रतिपद्य)

प्रतिहारी—आर्य ! अहं विजया । किं क्रियताम् ?

वयम् । अहं विजया । किं करीशुदु ?

काञ्चुकीय—विजये ! निवेद्यतां निवेद्यतां भरतकुमाराय—‘एष खलु

राजस्य दीप्तम् सुममिदम् रजः पराक्रमप्रतापम् अशुभ्य स्वपराक्रमप्रदर्शनेनाद्य-
कृत्वा नागेन्द्रमग्नवनवृक्ष इव बाष्पमज्जमानवाननतत्परिव अवसप्रः अवसादं प्राप्य
पतितः । अत्रैष जटामुरिति पूर्वोक्तेन सम्बन्धः । एवञ्च नास्ति सीतोद्वारं प्रत्या-
येति खेदो व्यक्तः, दसन्ततिलक वृत्तम् ॥ ४ ॥

स्वर्ग्यं स्वर्गाहं, परोपकारत्पत्तदेहत्वात् पुण्यगत्यर्थः । प्रथमः कल्पः आद्यो
विधिः सर्वप्रथममनुष्ठेयः ।

विष्कम्भ इति—वृत्तवर्तिष्यमाणकर्षागनिदर्शकः । स चात्र शुद्धो बोध्यः
मध्यमपात्रप्रयोजितत्वात् ।

काञ्चनतोरणद्वारम् सुवर्णरचितं बहिर्द्वारम् ‘तोरणोऽस्त्री बहिर्द्वारम्’ इत्यमर-
उत्पादितं वनवृक्षकी तरह उखाड़ फेंका गया है ॥ ४ ॥ ।

दोनों—इसको स्वर्ग मिले ।

पहला—काश्यप, भाओ इस समाचारकी सूचना रामको दे ।

दूसरा—बहुत अच्छा ! यह तो सबसे पहला कार्य है । (दोनोंका प्रस्थान)

(मिश्रविष्कम्भक)

(काञ्चुकीका प्रवेश)

काञ्चुकी—काञ्चनद्वार तोरणपर कौन नियुक्त है ? (प्रतिहारीका प्रवेश)

प्रतिहारी—आर्य, मैं हूँ विजया, बहिये क्या आज्ञा है ।

काञ्चुकी—विजये, राजकुमार भरतको सूचित कर दो कि वनमें रामके दर्शनार्थ

लब्धप्रसादशपथे मयि सन्निवृत्ते ।
 दृष्ट्वा किमागत इहात्रभवान् सुमन्त्रो
 रामं प्रजानयनबुद्धिमनोभिरामम् ॥ ७ ॥

काञ्चुकीय — (उपगम्य) जयतु कुमारः ।

भरत — अथ कस्मिन् प्रदेशे वर्तते नत्रभवान् सुमन्त्रः ?

काञ्चुकीय — असौ काञ्चनतोरणद्वारे ।

भरत — तेन हि शीघ्रं प्रवेश्यताम् ?

काञ्चुकीय — यदाज्ञापयति कुमारः । (निष्क्रान्ती)

(ततः प्रविशति सुमन्त्र प्रतिहारी च)

दण्डकारण्यभूमिं प्रपद्य लब्धप्रसादशपथे लब्ध प्रसाद पादुकारूप प्रसन्नताङ्गु,
 शपथं चतुर्दशहायनात्मकवनवासार्थाद्यवसानेऽहमागत्य राज्यं प्रतिग्रहीष्यामीत्यव
 सृक्षणो वागनुग्रहश्च येन तादृशे मयि सन्निवृत्ते रामाधिष्ठितकाननात् प्रत्यागते अथ
 सुमन्त्रं प्रजानां जनानां नयनानां नेत्राणां बुद्धीनां (आहिका प्रत्यक्षानन्तरप्रकट-
 प्रभावा चेतना बुद्धि) धिया मनसा हृदयानाञ्च अभिराम रमणीयम् रामं दृष्ट्वा
 प्रत्यक्षीकृत्य इह राजवान्याम् आगतं प्राप्तं किम् ? यद्येव कृतार्थीवृता वयं तद्विष-
 यकवृत्तान्तावगमावसरलाभादिति भावः । एतेन भरतस्य रामविषयक उत्कट
 कोटिको भावो व्यक्तः । बुद्धिमनसा पृथगुपादानं ग्रहणस्मरणवस्याभेदविवक्षया
 कृतं, तेन रामस्य प्रथमदर्शनसमये स्मरणकाले च प्रजानन्दजनकतया लोकानुराग-
 प्रकर्षं प्रतिपादितं । वृत्तमनन्तरोक्तम् ॥ ७ ॥

पादुकारूप प्रसादं तथा चौदह वर्षांके वाद् राज्यं सम्भालनेका आश्वासनं लेकर
 भानेपर यह आर्य सुमन्त्र प्रजाके नयन, बुद्धि तथा मनके अभिराम धीरामका
 दर्शन कर लौटे हैं क्या ? ॥ ७ ॥

काञ्चुकी—(समीप जाकर) जय हो कुमार की ।

भरत—क्यों, आर्य सुमन्त्र किधर हैं ।

काञ्चुकी—वे स्वर्णतोरणद्वारपर खड़े हैं ।

भरत—उन्हें शीघ्र भीतर बुला लो ।

काञ्चुकी—जो आज्ञा ।

(दोनोंका प्रस्थान)

(सुमन्त्र तथा प्रतिहारीका प्रवेश)

सुमन्त्र —(सद्योक्तम्) कष्टं भोः ! कष्टम् ।

नरपतिनिधनं मया नुभूतं नृपतिसुतव्यसनं मयैव दृष्टम् ।

श्रुत इह स च मैथिलीप्रणाशो गुण इव बह्वपराद्धमायुषा मे ॥ ८ ॥

प्रतिहारो—(सुमन्त्रमुद्दिश्य) एत्वेत्वार्यः । एष भर्ता । उपसर्पत्वार्यः ।

एदु एदु ब्य्यो । एसो मद्दा । उपसर्पदु ब्य्यो ।

सुमन्त्र —(उपसृत्य) जयतु कुमारः ।

भगत.—तात ! अपि दृष्टस्त्वया लोकाविष्कृतपितृस्नेहः । अपि दृष्टं द्विधामृतमरुन्धतीचारित्र्यम् । अपि दृष्टं त्वया निष्कारण-

नरपतीति—नरपते राजो दशरथस्य निधनं मरणम् मया सुमन्त्रेणानुभूतम् प्रत्यक्षीकृतम्, नृपतिसुतानां राममरतलक्ष्मणानां व्यसनं दुःखम् (रामस्य वनगमनम्, मरतस्य सतीऽप्यपि कष्टसाध्यव्रतधारणम्, लक्ष्मणस्य रामानुगमनजन्यवनवामारमनम्) मयैव दृष्टम् । इह अत्रापि सीताप्रणाशे सीतापहारश्च श्रुतः, (तदेवम्) मे आयुषा गुणे बह्वपराद्धम् आयुषो दीर्घत्वं गुणस्य एव चात्र दोषो जात इति भावः । विशैरजिज्ञासार्थां द्रष्टव्या चतुर्धाङ्कगतपट्यादङ्कपद्यव्याख्या ॥ ८ ॥

लोकाविष्कृतपितृमक्ति लोके प्रकटितपितृमक्तिः, कोत्तितपितृमक्तिर्वा, अर्थतः राम एव विवक्षित, तस्यैव तथात्वान्प्रकृतत्वाच्च । अरुन्धतीचारित्र्यं तदभिधानाया वामिष्ठमार्यायाः प्रसिद्धं पातिश्रव्यम् । द्विधामृतम् अपरेण रूपेण सीतालक्षणेन वर्तमानम् । एतेन सीताशक्तिवत्त्वमदात्मन्धतीपातिश्रव्यसादृश्यं प्रतिपादितम् । निष्कारणविहि-

सुमन्त्र—(शोकपूर्वक) शोक, हा शोक !

मेरे फूटे भाग्यने महाराजकी मृत्यु देखनेको मुझे बाध्य किया, रामवनगमन का खेद भी भोगना पड़ा, और अब सीताका हरण भी सुन रहा हूँ । हाय, मेरी इस लम्बी आयुने गुणके बदले अपराध ही अधिक किये ॥ ८ ॥

प्रतिहारी—(सुमन्त्रको लक्ष्य करके) आइये आइये, ये हैं भर्ता, इनसे मिल लें ।

सुमन्त्र—(समीप जाकर) जय हो कुमार की ।

भगत—तात, क्या आपने लोकविख्यात पितृमत्तके दर्शन किये ? आपके द्वितीय अरुन्धतीचरित्र देखनेका अवसर मिला ? क्या आपने अकारण वनवास

भरत.—तात ! कथमिव ?

सुमन्त्र —सुग्रीवो भ्रशितो राज्याद् भ्रात्रा ज्येष्ठेन बालिना ।

हृतदारो वसञ्छैले तुल्यदुःखेन मोक्षितः ॥ १० ॥

भरतः—तात ! कथं तुल्यदुःखेन नाम ?

सुमन्त्रः—(स्वगतम्) हन्त ! सर्वमुक्तमेव मया । (प्रकाशम्) कुमार !

न खलु किञ्चित् । ऐश्वर्यभ्रंशतुल्यता ममाभिप्रेता !

भरत.—तात ! किं गूहसे ? स्वर्गं गतेन महाराजपादमूलेन शापितः

स्याः, यदि न सत्यं ब्रूयाः ।

सुग्रीव इति । ज्येष्ठेन अग्रजन्मना भ्रात्रा बालिना राज्याद् भ्रशितः अपहृत-
राज्यलक्ष्मीकः हृतदारः स्वापत्नीकृतपत्नीकः शैले श्रृप्यमुकामिधाने पर्वते वसन्
सुग्रीवः, तुल्य समानं दुःखं हृतदारत्वलक्षण यस्य तेन रामेण मोक्षितः मोक्ष गमितः ।
बालिनं हत्वा तारानामस्त्रियाः राज्येन च योजित इत्यर्थः । अत्र रामस्य सुग्रीवतु-
ल्यदुःखतोक्त्या तस्यापीहाम्बन्तरे भावार्थपहृतेत्युक्तम् ॥ १० ॥

सुमन्त्रोक्त 'हृतदारो वसञ्छैले तुल्यदुःखेन मोक्षितः' इति वचः श्रुत्वा ताशङ्को
भरतस्तं पृच्छति—तातेति । तुल्यदुःखेन समानकष्टेन इत्याहेति ।

सुमन्त्रः स्वोक्तिमनुपिपाता मन्यमानो मनसि विचारयति—हन्तेति । हन्तेति
खेदे । तुल्यदुःखेनेत्यादि कथितवता मया सर्वमुक्तप्रायमिति नोचितं कृतमिति पुन-
स्तदन्यथा समर्थयन्नाह—कुमारेत्यादिना । ऐश्वर्यतुल्यभ्रंशता राज्यसम्पदो द्वयोर्भ्रंष्ट-
तया तुल्यतेति मत्कथनस्याशय इति ।

स्ववाक्यमन्यथाकृत्य समर्थितवन्त सुमन्त्र भरतस्तथ्यभाषणायोपायान्तरदूष्यतया
पितृशपथ दन्वा पृच्छति तातेत्यादि । गूहसे गोपयसि । स्वर्गं गतेन मृतेन, महाराज,

भरत—तात, सो कैसे ?

सुमन्त्र—सुग्रीवको उसीके बड़े भाई बालिने राज्यच्युत कर दिया था और
उसकी स्त्री भी छीन ली थी । उस सुग्रीवको तत्समानधर्मा रामने बलेशमुक्त कर
दिया है ॥ १० ॥

भरत—तात, 'सुग्रीवसमानधर्मा राम' इसका क्या भाषण ?

सुमन्त्र—(स्वागत) हाँ ! मैंने सब बात खोल दी (प्रकट) कुछ नहीं, मेरा
अभिप्राय राज्यच्युति की समानता है ।

भरत—तात, सच्ची बात क्यों छिपाते हो ? तुमको स्वर्गवासी महाराजकी
शपथ है, यदि मिथ्या बताया ।

सुमन्त्र — का गतिः । श्रूयतां,

धैरं मुनिजनस्यार्थं रक्षसा महता कृतम् ।

सीता मायामुपाश्रित्य रावणेन ततो हता ॥ ११ ॥

भरत — कथं हृतेति ? (मोहमुपगत)

सुमन्त्र — समाश्रसिहि, समाश्रसिहि ।

भरत — (पुन समाश्रस्य) भोः कष्टम् ।

पित्रा च बान्धवजनेन च विप्रयुक्तो दुःखं महत् समनुभूय वनप्रदेशे ।

भार्यावियोगमुपलभ्य पुनर्ममार्यो जीमूतचन्द्र इव से प्रभया वियुक्तः ॥

पादमूलेन महिनृचरणेन धारित शपथं लम्बित ।

भरतनेत्रदशरथशपथं लम्बित सुमन्त्र सम्प्रति सीतापहरणगोपनस्याशक्य-
रशात्सानुतापमाह—येति गतिरक्षसा मम तव भरतस्य वेति क्षेप ।

धैरमिति—मुनिजनस्य ऋषिजनस्यार्थं कृते (रामेण) महता बलिना
रक्षसा निशाचरेण रावणेनेत्यर्थं, धैरं विरोध कृतम् । ततस्तस्माद्रावणेन दशाननेन
मार्यां कपटम्, उपाश्रित्य सीता राघवकुलवधूमण्डली हता चोरिता ॥ ११ ॥

सीताहरणमुपश्रुत्य भृगुमाहतो भरत आह—कथमिति ।

पित्रेति—मम भार्यं राम पित्रा बान्धवजनेन च विप्रयुक्तो दूरीकृतो वनप्रदेशे
शान्तोद्देशे महत् दुःखं दुःखं बलेशमनुभूय लक्ष्म्या भार्यावियोगं सीताविप्रवासजन्य-
पत्नीविरहमुपलभ्य आसाद्य पुन से जीमूतचन्द्र इव मेघावृतवासीय प्रभया ज्योत्स्नया
वियुक्तो जात इति क्षेप । यथाऽऽकाशे वर्तमानस्य राशिनो मेघेनावरणे तदप्रभा वियुज्य
ते तापयति तथैव पित्रा बान्धवैश्च वियुज्य तेषामनुभवतो रामस्य सीताविरहो भूयः
परितापकरो जात इति भाव । अगोपपाऽलङ्कारेण मेघावरणे चन्द्रस्य प्रभयेव

सुमन्त्र—लाचारी है । सुनिये—

सुनियोगी रक्षाके कारण बलवान् राक्षसोंसे शत्रुता हो गयी थी । इसी
कारण रावणने कपटयेव धारणकर सीताका हरण कर लिया ॥ ११ ॥

भरत—क्या सीता हर ली गई ! (मूर्च्छित होता है)

सुमन्त्र—धैर्य धरें, धैर्य धरें ।

भरत—(फिर सभळकर) हा शोक !

मेरे भार्य राम पिता तथा बान्धवों से वियुद्धे, वनों में दाहण दुःख सहे और
अब भार्यावियोग प्राप्त कर गगनमण्डल में मेघावृत चन्द्रमाके समान प्रभाहीन
हो गये ॥

भोः ! किमिदानीं करिष्ये ? भवतु, दृष्टम् ! अनुगच्छतु मां तातः !
सुमन्त्रः—यदाक्षापयति कुमारः ।

(उभो परिक्रामतः)

सुमन्त्रः—कुमार ! न खलु न खलु गन्तव्यम् । देवीनां चतुश्शालमिदम् ।

भरतः—अत्रैव मे कार्यम् । भोः ! क इह प्रतिहारे ?

(प्रविश्य)

प्रतिहारी—जयतु भर्तृदारकः । विजया खल्वहम् ।

जेदु मट्टिदारओ । विजया खु अह ।

भरतः—विजये ! ममागमनं निवेदयात्र भवत्यै ।

प्रतिहारी—कतमस्यै भट्टिन्यै निवेदयामि ?

कदमाए मट्टिणोए निवेदेमि ?

भरतः—या मां राजानमिच्छति ।

रामस्य पुनः सम्भवति सीताया संयोगरूपं वस्तुध्यज्यते । वसन्ततिलक वृत्तम् ॥१२॥

चतुश्शालम् गृहप्रधारभेदः । जम्बोन्ग्यामिमुखशालाचतुष्टयम् ।

राजानमिच्छति—कस्यै देव्यै त्वदागमनं निवेदयामीति प्रश्नस्य भरतेनेत्य-
मुत्तरणे मद्राज्यभामनाकमनर्णमुपस्थापिनघतोति गया वक्तुं वीकेणोव द्रष्टव्येति
गूढो भावः ।

हाय ! अब क्या किया जाय ? अथवा सोच लिया, -आप मेरे साथ आवें ।

- सुमन्त्र—जो आज्ञा ?

(दोनों घूमते हैं)

सुमन्त्र—(भरतको अन्तःपुरकी ओर जाते देखकर) कुमार, मत जाइये,
यह देवियोंका अन्तःपुर है ।

भरत—यहीं मुझे कार्य है । अरे, यहाँ द्वार पर कौन है ?

(प्रतिहारीका प्रवेश)

प्रतिहारी—कुमारकी जय हो । मैं हूँ विजया ।

भरत—विजया, माताजीको मेरे आनेकी सूचना दो ।

प्रतिहारी—कौन-सी महारानीजीको सूचना दूँ ।

भरत—जो मुझे राजा देखना चाहती है ।

प्रतिहारी—(आरमगनम्) हं किन्तु गलु भवेत् ? (प्रकाशम्) भर्तः ! तथा !
ह किणु तु भवे ? मट्टा ! तह !
(निष्क्रान्ता)

(तत. प्रविगति कंचेयो प्रतिहारी च)

कंचेयो—विजये ! मां प्रेक्षितुं भरत आगतः ?
विजए ! मं पेक्खिदु भरदो भाअदो ?

प्रतिहारी—भट्टिनि ! तथा भर्तृदारकस्य रामस्य सकाशात्
मट्टिणि ! तत्र । मट्टिदारकम्म रामस्स सभासादो
तातमुम्भन्न आगतः । तेन सह भर्तृदारको भरतो
सादमुमन्तो भाअदो । तेन मह मट्टिदारको भरदो
भट्टिनीं प्रेक्षितुमिच्छति किल ।
भट्टिणि पेक्खिदु इच्छति किल ।

कंचेयो—(स्वगतम्) केन सल्लुघातेन मामुपालप्स्यते भरतः ?
केण खु उपादेण म उवालम्मिम्मदि भरदो ?

प्रतिहारी—भट्टिनि ! किं प्रविशतु भर्तृदारकः ?
मट्टिणि ! किं पविमदु मट्टिदारको ?

कंचेयो—गच्छ । प्रवेशयैनम् ।
गच्छ । पवेशेहि ण ।

प्रतिहारी—भट्टिनि ! तथा (परिक्रम्योपसृष्ट) जयतु भर्तृदारकः ।
मट्टिणि ! तह जेदु मट्टिदारको ।

उद्घातेन प्रस्तावेन । उपालप्स्यते धिक्करिष्यति .

प्रतिहारी—(स्वगत) न जाने क्या बात हो ? (प्रकट) आपकी जो आज्ञा ।
(जाती है)

(बाद कंचेयी तथा प्रतिहारी का प्रवेश)

कंचेयी—विजया, क्या भरत मुझसे मिलने आया है ?

प्रतिहारी—रानीजी, जी हाँ । राजकुमार रामके पाससे सुमन्त्र लौट आये
हैं । सम्भव है उनके साथ राजकुमार रानीजी से मिलना चाहते हों ।

कंचेयी—न जाने किस उपक्रमसे भारत मुझे उलहना दे ?

प्रतिहारी—रानीजी, क्या राजकुमार आँवें ?

कंचेयी—जाओ भीतर बुला लोओ ।

प्रतिहारी—रानीजी जो आज्ञा । (चलकर तथा पाम आकर) जय हो

प्रविशतु किल ।

पविसदु किल ।

भरतः—विजये, किं निवेदितम् ?

प्रतिहारी—आम् ।

भरत.—तेन हि प्रविशावः । (प्रविशतः)

कैकेयी—जात ! विजया मन्त्रयते—रामस्य सकाशात् सुमन्त्र
जाद ! - विजया मन्त्रेदि—रामस्य समासाद्य सुमन्तो
आगत इति ।

आयद त्ति ।

भरत —अतः परं प्रियं निवेद्यान्यत्रभवत्यै ।

कैकेयी--जात ! अपि कौसल्यां सुमित्रा च शब्दयितव्ये ।

जाद ! अपि कौसल्या सुमित्रा अ सहावइदवा ।

भरत.—न खलु ताभ्यां श्रोतव्यम् ।

कैकेयी—(आत्मगतम्) हं किन्तु खलु भवेद् ? (प्रकाशम्) भण जात !
हं किं णु हं भवे ? मणाहि जादे !

शब्दयितव्या आकारयितव्या, रामसकाशादागतजनातीतवृत्तान्तस्य तथापि श्रोतुमिष्यमाणत्वान्नातृभावेनोचित्वाच्च । ताभ्याम् कौसल्यासुमित्राभ्याम् । भवत्या एव रामनिष्कासनपुण्योपचयशालितया तत्र रामदुःखगाथाश्रवणेऽधिकारो न तयोरिति भरतस्य सोपालम्भ तात्पर्यम् ।

राजकुमार की, आप भीतर चलें ।

भरत—विजया, क्या सूचना दे दी ?

प्रतिहारी—जी हाँ,

भरत—तो भीतर चलें ।

(दोनों भीतर जाते हैं)

कैकेयी—वत्स, विजया कहती है—रामके पाससे सुमन्त्र आये हैं ?

भरत—आपको इससे भी अधिक प्रिय बात सुनावा हूँ ।

कैकेयी—वत्स, तो क्या कौसल्या और सुमित्राको भी बुला लिया जाय ?

भरत—नहीं, उनके सुननेकी बात नहीं ।

कैकेयी—(स्वगत) हाय, न जाने, ऐसी कौन-सी बात है ? (प्रकट)
सुनाओ देव ।

मरतः—श्रयतां,

यः स्वराज्यं परित्यज्य त्वन्नियोगाद् घनं गतः ।

तस्य भार्या हृता सीता पर्याप्तस्ते मनोरथः ॥ १३ ॥

कैकेयी—हं !

मरत—हन्त भोः ? सत्त्वयुक्तानामिद्व्याकृणां मनस्विनाम् ।

घधूप्रधर्षणं प्राप्तं प्राप्याश्रभवतीं घधूम् ॥ १४ ॥

कैकेयी—(आत्मगतम्) भवतु, इदानीं कालः कथयितुम् । (प्रकाशम्)

भोदु दाणि कालो कहेउ ।

जात ! त्वं न जानासि महाराजस्य शापम् ।

जाय ! तुव न जानासि महाराजस्य सव ।

यः राज्यमिति—य. रामः त्वन्नियोगात् त्वत्प्रेरणावशात् स्वस्व्यात्मनो राज्यं परित्यज्य वनं गतस्तस्य भार्या सीता (रावणेन) हृता, (इति) ते तव मनोरथः पर्याप्तः अमिलाय पूरितः । रामस्य वनवासे हेतुत्वं गतायास्तव तद्भार्याहरणवृत्तान्तोऽपि श्रोतुमिष्ट. स्मरदिति मरतस्य सोत्प्लुठनं वचनम् ॥ १३ ॥

'हम्' सीताहरणश्रवणे क्षेदप्रकाशकमध्यपदमिदम् ।

हन्तेति—अत्रभवतीम् पूजनीयाम्भवतीम् (विपरीतलक्षणया निन्दनीयावस्था स्वाम्) घधू प्राप्य घधूभावेन लब्ध्वा सत्त्वयुक्तानां पराक्रमशालिनां मनस्विनाम् मानवनाम् (पूर्वं वदापि मानमङ्गावसरमीदृशमप्राप्तवताम्) इद्व्याकृणां तदाक्ष्य वसोऽभ्यानाम् घधूप्रधर्षणं स्त्रीहरणं प्राप्तमुपनतम् । अतो धिक् त्वामिति भावः ॥

शापम् श्रवणस्य पित्रा प्रदत्तम् । रामस्य वनगमने स. शाप एव कारणं नाहमिति त्वत्कर्तृकं मदुपालम्भत सर्वं त्वदज्ञानमूलकमित्याशयः ।

मरत—सुनो—

जो राम तुम्हारी आज्ञा से राजपाट छोड़कर वन चला गया था, उसकी भार्या सीता (रावण द्वारा) हर ली गई है । अब तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हुआ ॥ १३ ॥

कैकेयी—अहो ?

मरत—हा शोक ? तुम जैसी घट्ट को पाकर महापराक्रमी और मानवाले इक्ष्वाकुवंश को घधूहरण के दिन भी देखने पड़े ॥ १४ ॥

कैकेयी—(स्वगत) अच्छा, अब रहस्य कह देने का मौका आ गया । (प्रकट) वस्स, तुम महाराज के शाप की बात नहीं जानते ।

भरत — किं शप्तो महाराजः ?

कैकेयी—सुमन्त्र ! आचक्ष्व विस्तरेण ।

सुमन्त्र ! आचक्ष्व विस्तरेण ।

सुमन्त्र — यदाक्षापयति भवती । कुमार ! श्रूयताम्—पुरा मृगयां गतेन महाराजेन कस्मिंश्चित् सरसि क्लृप्तं पूरयमाणो वनगज-वृंहितानुकारिशब्दसमुत्पन्नवनगजशङ्कया शब्दवेधिना शरेण विपन्नचक्षुषो महर्षेश्चक्षुर्भूतो मुनितनयो हिंसितः ।

भरत — हिंसित इति । शान्तं शान्तं पापम् । ततस्ततः ?

सुमन्त्र — ततस्तमेवंगतं दृष्ट्वा,

तेनोक्तं रुदितस्यान्ते मुनिना सत्यभाषिणा ।

यथाहं भोस्त्वमप्येवं पुत्रशोकाद् विपत्स्यसे ॥१५॥ इति ।

मृगयाम् आनेटकम् । वृंहित करिगजितम् । तदनुकरोति सादृश्येनानुहरति भूतेन शब्देन हेतुभूतेन उत्पन्नो वनगजोऽयमिति शङ्काभ्रमः तथा । शब्दवेधिना शब्दानुसारेण लक्ष्यमदृष्ट्वैव लक्ष्यवेधिना । विपन्नचक्षुषोऽयस्य महर्षेः ।

तेनोक्तमिति—सत्यं भाषितुं शीलं यस्य तेन कथितवचनेन रुदितस्य रोदनं न्याते यथाऽहं पुत्रशोकाद् (विपद्ये) एव त्वमपि विपत्स्यसे मरिष्यसि । इत्येवमुक्तम् अमिसप्तम् । तथा चात्र संवदति कालिदासः—‘दिष्टान्तमाप्स्यति नवानपि पुत्रशोकादन्ते वयस्यहमिवेति’ ॥ १५ ॥

भरत—क्या महाराज को शाप था ?

कैकेयी—सुमन्त्र, विस्तारपूर्वक कह दो ।

सुमन्त्र—महाराज की जो आज्ञा । कुमार, मुनिये—महाराज एक समय शिकार को गये थे, उन्होंने अन्धमुनि के नयनरूप पुत्र श्रवण को वनगज के भ्रम से मार डाला, जब कि वह जलाशय में घड़ा भर रहा था, जिससे गडगडाहट की धुन आती थी । महाराज ने उसे ही लक्ष्यकर शब्दवेधी वाण छोड़ दिया ।

भरत—मार दिया । महापाप ! इसके बाद क्या हुआ ?

सुमन्त्र—तब उस पुत्र को इस स्थिति में देखकर—

उस सत्यवचन अन्धमुनि ने खूब रो लेने के बाद महाराजको शाप दिया कि—राजन्, मेरी ही तरह तुम भी पुत्रशोक में तडप-तडप कर प्राण दोगे ॥१५॥

मरत — नन्विदं फट्टं नाम ।

कैकेयी—जात ! एतन्निमित्तमपराधे मा निक्षिप्य पुत्रको रामो वन जाद ! एतन्निमित्तं अवराहे मा निक्षिप्य पुत्रो रामो वन प्रेषितः, न गलु राज्यलोभेन । अपरिहरणीयो महर्षिशापः पेशिदो, न ह्य रजजलोहेण । अपरिहरणीओ मन्त्रिसिमाओ पुत्रविप्रवासं विना न भवति । पुत्रविप्रवासे विना न होइ ।

मरत—अथ तुल्ये पुत्रप्रवासे कथमहमरण्यं न प्रेषितः ?

कैकेयी—जात । मातुलकुले वर्तमानस्य प्रवृत्तीभूतस्ते विप्रवासः । जात । मातुलकुले वर्तमानम् पृथ्वीहृदो दे विप्रवासी ।

मरत—अथ चतुर्दश वर्षाणि किं कारणमवेशितानि ।

कैकेयी—जात । चतुर्दश दिवसा इति वक्तुकामया पर्याकुलहृदयया जाद । चतुर्दश दिवस स्ति वतुवामाए पर्याकुलहृदयया

एतन्निमित्तम् मुनिशापश्चरिताय म्यादित्यतद्वयम् । माम् आमानम्, अपर धे निक्षिप्य अपराधिनो भूतम् । रामवनप्रेषणे मुनिशापसार्थक्यकरणमेव कारण न तु रजजलम इति भाव ।

नन्वेव पुत्रवियोगस्य राजमरणसाधनत्वोऽहमेव किमिति न वन प्रेषित इत्यत्राह प्रकृतीति । प्रवृत्तीभूत स्वामाविद्यतामापन्न, तव मातुलकुलवासस्य सावदिकतया राजमरणकारणत्वापगमाद्राम तव वन गमित इत्यर्थ ।

अल्पकालिकेनापि पुत्रप्रवासेन राजो मरणे सिद्धयति किमिति रामश्चतुर्दश-वर्षंवापि वनवासवने दोन कदपित इति पृच्छति मरत — अर्थेति । पर्याकुलहृदयया मन्त्राविनप्रियपुत्ररामवियोगाद् भ्रान्तचित्तया ।

मरत—यह कष्टकर क्या है ।

कैकेयी—इमीलिपू मैंने अपनेको दोषी बनाकर घेटा रामको वन भेजा, राज्य के लोभसे नहीं । अवश्यभावी महर्षिशाप पुत्रवियोगके बिना सफल कैसे होता ?

मरत—पुत्रवियोग तो तुल्य ही था, फिर मुझको ही क्यों न वन भेजा ?

कैकेयी—मातामह कुलमें रहनेके कारण तुम्हारा वियोग महाराजके लिए सख सा हो रहा था ।

मरत—अच्छा तो फिर चौदह वर्षों की अवधि किस लिये लगा दी ?

कैकेयी—मैं तो चौदह दिन कहना चाहती थी, किन्तु मानसिक व्याकुलतासे चौदह वर्ष कहा गया ।

अथ सप्तमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति तापसः)

तापसः—नन्दिलक ! नन्दिलक !

(प्रविश्य)

नन्दिलक—आर्य ! अयमस्मि ।

अयम् । अयं हि ।

तापस—नन्दिलक ! कुलपतिविज्ञापयति—एष खलु स्वदारापहारिणं त्रैलोक्यविद्रावण रावणं नाशयित्वा राक्षसगणविरुद्धवृत्तं गुणगणविभूषणं विभीषणमभिषिच्य देवदेवर्षिसिद्धविमलचारित्रां तत्रभवती सीतामादाय ऋक्षराक्षस-

अयं रावण जितवतो रामस्य सीतया सह तपोवनं प्रति गमनम्, तत्र मातृ-सहितस्य भरतस्य समागमः, मिलिताना सर्वेषां पुनरप्योष्या प्रतिनिवर्त्तनमित्यादि कथावस्तु निवेश्य प्रबन्धमुरगंहस्तु* सप्तमोऽङ्कमारभते—ततः प्रविशतीति ।

कुलपतिः तपोवनाधिष्ठाता मुनिवर । विज्ञापयति बोधयति ।

स्वदारापहारिणम् स्वस्य दाराणां पत्न्या अपहारिणम् अपहृत्तरिम्, त्रयो लोका एव त्रैलोक्यम्, चातुर्वर्ष्यादित्वात्स्वार्थे व्यञ्ज् । तत् विद्रावयति नयद्रुत करोतीति त्रैलोक्यविद्रावणस्तम् । गुणगणविभूषणं गुणानां दशाष्टाक्षिण्यविवेकादीनां गणास्त-मूदास्ते विभूषणानि तदाधितत्वेन शोभाजनकानि यस्य तादृगः, अथवा गुणगणानां विभूषणम् अलङ्कृत्तरिम्, तमाधितवता गुणगणानां शोभासमृद्धेः अमिषिच्य लङ्काराज्याभिषिक्तं कृत्वा । देवर्षिसिद्धविमलचारित्रां देवैर्ऋषिभिः प्रमाणभूतैः साक्षिभिः सिद्धं निश्चित्य प्रत्यापितं निष्कलङ्कतया विमल शुद्धं चारित्र्यं शीलं यस्यास्ताम् । श्रद्ध-

(तपस्वी का प्रवेश)

तपस्वी—नन्दिलक, नन्दिलक,

(नन्दिलक का प्रवेश)

नन्दिलक—आर्य, यह भाया ।

तपस्वी—नन्दिलक, कुलपति आदेश देते हैं कि अपनी स्त्रीको हरकर ले जाने वाले तथा तीनों भुवनों को प्रताप से तबाह करनेवाले रावण का नाश कर, दुराचारी राक्षसों के प्रतिष्कृत आदर्शचरित्र विभीषण को लङ्काराज्य पर अभिषिक्त कर, ऋषियों के समक्ष परीक्षित निष्कलङ्क सीता को साथ लेकर, ऋक्षराज तथा

वानरमुख्यैः परिशृतः सम्प्राप्तस्तत्र भगान् शरद्विमलमलगन-
चन्द्राभिरामो राम । तद्द्यास्मिन्नाश्रमपदेऽस्मद्विभवेन यत्
सङ्कल्पयितव्यम्, तत् सर्वं सज्जीक्रियतामिति ।

नन्दिरक — आर्य ! सर्वं सज्जीकृतम् । किन्तु,
अथ । सर्व सज्जीविद । किन्तु,

तापस — किमेतत् ?

नन्दिरक — अत्र विभीषणसम्यन्धिनो राक्षसाः । तेषां भक्षणनिमित्त
ए-ष विभीषणकेरवा खलसा । तैस भक्षणनिमित्त
कुलपतिः प्रमाणम् ।
कुलवदो पमाण ।

तापस — किमर्थम् ?

नन्दिरक — ते खलु खादन्ति ।
ते तु सज्जन्ति ।

राक्षसवानरमुख्यं शृणुमुख्या जाम्बवाद्य, राक्षसमुख्या विभीषणाद्य, वानर-
मुख्या मुद्रावाद्यस्तैः । शरद्विमलचन्द्राभिराम शरदि तदाश्मत्तु विदोषे विमल
निर्मलप्रकाशो यश्चन्द्रस्तद्रश्मिगमो रमणीयदर्शन । अस्मद्विभवेन आरण्यकसुलभेन ।
सङ्कल्पयितव्यं तदस्वागतार्थं मुनकल्पनीयम् ।

किमेतत् 'किन्तु' इत्यप्रे किं भवता विवक्षितं तदुच्यतामिति माव ।

विभीषणसम्यन्धिनं तदुपचारका परिजना । राक्षसां ब्रव्यादा । भक्षण-
निमित्तम् भक्षणार्थं । कुलपतिं अरण्यवासिमुनिमुख्यम् । प्रमाणं राक्षसभक्षणीयवस्तु-
निर्णयप्रभुम् ।

वानराधीश के दम्बलौ के सहित निर्मल शरदिन्दुसदृश अभिराम राम यहीं आ
रहे हैं । भान हूँ भरण्य म भरण्यसुलभ भोग वैभव के अनुसार उनका स्वागत
करने के लिए जो अभीष्ट है, वह सब सज्जित करके रखा जाय ।

नन्दिरक—सब ठीक कर लिया गया है । किन्तु

तापसि—वह क्या ?

नन्दिरक—जहाँ विभीषण के साथी राक्षस भी आये हुए हैं, उनके भोजन
के विषय में कुलपति ही जानें ।

तापसी—स्यों ?

नन्दिरक—वे खाते हैं (नर) मांस ।

तपस्विदारैर्जतकेन्द्रपुत्री सम्भाष्यमाणा समुपैति मन्दम् ॥ ३ ॥

(ततः प्रविशति सीता तापसी च)

तापसी—हला ! एष ते कुटुम्बिकः । उपसर्पेणम् । न शक्यं त्वामे
हला ! एसी देव कुटुम्बिजो । उपसर्प ण । ण सक्क तुम ए-
काकिनीं प्रेक्षितुम् ।
आइणि पेक्खिदुं ।

सीता—हम् अद्याप्यविश्वसनीयमिव मे प्रतिभाति । (उपसृष्ट)
हं अज्ज वि अविस्ससणीअं मं पडिमादि ।

जयस्वार्यपुत्रः ।

जेदु अय्यउत्तो ।

राम—मैथिलि ! अपि 'जानासि, पूर्वाधिष्ठानमस्माकं जनस्थानमा-
सीत् । अप्यत्र शायन्ते पुत्रकृतका वृक्षाः ।

मिश्र स्तुयेति तपस्विदारैर्मुनिपत्नीभिः स्निग्धतरमतिमधुरं सम्भाष्यमाणा व्याह्वि-
यमाणा जनकेन्द्रपुत्री मन्द धानैः धानैः समुपैति मामुपसर्पति ॥ ३ ॥

कुटुम्बिको मर्ता ।

एकाकिनीम् सहायान्तररहिताम् । तथाविधा भूत्वा त्वमपह्लियसे तेन तथा-
तथाविधा कर्तुं नेच्छामि तेनोपसर्पं प्रियपतिमिति माव ।

अद्यापि प्रियसम्प्रयोगकालेऽपि । अविश्वसनीय विश्वासानर्हम्, मन्दभागिन्या
प्रियप्राप्तिर्न सम्भिनोतिधारणा चिरविरहकदर्पेणया जनिता, तदाधारीकृत्येत्पर्यमुच्यते ।

अपि जानासि स्मरसि किम् ? पुत्रकृतकाः पुत्रनिर्विषेणं परिवद्धितत्वात्
कृत्रिमपुत्रकाः ।

हे । अपनी अपनी अवस्थाके अनुसार कोई मुनिपत्नी सीताको 'सखी', कोई
'सीता', कोई 'जानकी' और कोई 'बहू' कहकर पुकारती है ॥

(सीता और तापसीका प्रवेश)

तापसी—सखी, ये हैं तुम्हारे पतिदेव, उनके पास जाओ । तुम्हें अकेली नहीं
देख सकती हूँ ।

सीता—आज भी मुझे विश्वास नहीं होता । (समीप जाकर) जय हो भार्य
पुत्र की ।

राम—मैथिली, क्या जानती हो कि पहले हम इस जनस्थान में रहा करते थे
और पहचानती हो इन कृतकपुत्र वृक्षों को ?

सीता—जानामि जानामि । अवलोकितपत्रया चक्षे प्रथितव्या इदानीं
जानामि जानामि । आलोक्ष्यपत्रया चक्षे अहदध्वा दाक्षि
-संवृत्ताः ।

संवृत्ता ।

राम—एवमेतत् । निम्नस्थलोत्पादको हि कालः । मैथिलि ! अप्यु-
पलभ्यतेऽस्य सप्तपर्णस्याघस्ताच्छुक्लवाससं भरतं दृष्ट्वा परि-
ग्रस्तं मृगयूथमाभीत् ।

सीता—आर्यपुत्र ! दृढं खलु स्मरामि ।

अप्युक्त ! दिडं तु स्मरामि ।

राम—अयं तु नस्तपसः साक्षिभूतो महाकच्छः । अत्रास्माभिरा-
-सीनैस्तातस्य निर्वापनक्रिया चिन्तयद्भिः काञ्चनपाश्वो नाम
मृगो दृष्टः ।

अवलोकितपत्रया गतिवालतया द्विगपत्रा अत एव च अवलोकितपत्रया दृष्टा ,
(इदानीम्) उल्लोचयित्वा सन्नतत्वाद्बुद्धिनिक्षिप्तचक्षुषा द्रष्टव्या । अ-दुम्भत हि
वातु वीक्षितु चक्षुश्च व्रजापाश्वीयं भवतीति भावः ।

निम्नस्थलोत्पादकं निम्न च स्थल च तपोत्पादकं । निम्नोत्पादकः स्थलो-
त्पादकश्चेति । कश्चिद्दृष्टेः स्वरूपं वालो निम्नभावं गच्छते, कश्चिच्च निम्न-
रूपं स्मलतामापद्यत इत्याशयः । दृष्ट्वाऽनारण्यकोऽयमस्मानुद्भवेदिति
चिन्तया तेषां भूतिः ।

महाकच्छं महान् जलाशयं , (जलप्रायं हि कच्छमाहुः) ।

सीता—याद हे, याद हे, जिन वृक्षों को नन्दे-नन्दे पत्तों वाली अवस्था
में देखा था, अब वे आँसों ऊपर करके देखने योग्य हो गये हैं ।

राम—खिलकुल ऐसी ही बात है, समय ही उत्थान-पतन का कारण है ।
मैथिली, याद है—इस सप्तपर्ण वृक्षके नीचे श्वेतवस्त्रधारी भरत को देखकर मृग-
गण भयभीत हो उठे थे ?

सीता—आर्यपुत्र, याद याद है !

राम—यह हमारे सप का साक्षी महासरोवर है, यहाँ बैठकर हमने पिताजी
की श्राद्धक्रिया की चिन्ता करने के समय काञ्चनपाश्वं मृग को देखा था ।

आर्यासहायमहमद्य गुरुं दिदृक्षुः

प्राप्तोऽस्मि तुष्टहृदयः स्वजनानुवद्धः ॥ ६ ॥

रामः—अम्बाः ! अभिवादये ।

सर्वा.—जात ! चिरं जीव । दिष्टया वर्धामहे अवसितप्रतिज्ञं त्वा
जाद ! चिरं जीव । दिष्टिठआ बडढानो अवसिदपडिण्णं तुर्म

कुशलिनं सह बध्वा प्रेक्ष्य ।

कुशलिन सह बहुए पेक्खिअ ।

रामः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

लक्ष्मणः—अम्बाः ! अभिवादये ।

सर्वाः—जात ! चिर जीव ।

जाद ! चिर जीव ।

लक्ष्मणः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

सीता—आर्याः ! वन्दे ।

अट्या ! वन्दामि ।

मिव तैस्तैर्वाचापि प्रकाशयितुमशक्यैरयोग्यैश्च प्रवृद्धविषयीः नानाप्रकारैः विषमैः
सङ्घटैः विमुक्तम् आर्यासहायम् सीतासनायकामभागम् गुरुम् पितृतुल्यम् पूजनीयम्
दिदृक्षु द्रष्टुमुत्सुकः प्राप्तोऽस्मि । सङ्घटमुक्तस्य रामस्य मेघनिमुंक्तचन्द्रमादृश्यवर्ण-
नाद्रुपमालङ्कार, तथा चोपमया यथा चन्द्रेण जगदाह्लाद्यते तथा रामेणापि मुक्त्वा
स्वगुणं प्रसाद प्रापयिष्यत इति वस्तु व्यज्यते । वृत्तमनुपदोक्तम् ॥ ६ ॥

अवसितप्रतिज्ञम् पूर्णप्रतिज्ञम्, नियतसमयावधिवनवासनिश्चयोऽत्र प्रतिज्ञा ।

उत्तीर्णं तथा सीता सहित अपने गुरुवर के दर्शनार्थं मैं अतिप्रसन्न हृदय से
आत्मीयजनों के साथ यहाँ आया हूँ ॥ ६ ॥

राम—पूज्य माताओ को प्रणाम ।

सर्व—प्रियपुत्र, चिरजीव हो । हमारे धन्यभाष्य, जो हम चौदह वर्षों के
अनन्तर सीता सहित तुमको सादन्द देखती है ।

राम—बड़ी कृपा ।

लक्ष्मण—माताओं को प्रणाम ।

सर्व—चिरञ्जीवी रहो ।

लक्ष्मण—अनुगृहीत हूँ ।

सीता—पूज्य जनो को प्रणाम ।

सर्वा—वत्से ! चिरमङ्गला भव ।

वच्छ । चिरमङ्गला इति ।

मीता—अनुगृहीतास्मि ।

अनुगृहीतास्मि ।

भरत—आर्य ! अभिवाद्ये, भरतोऽहमस्मि ।

रामः—एहोहि वत्स ! इक्ष्वाकुकुमार ! स्वस्ति, आयुष्मान् भव ।

यक्षः प्रसारय क्वाटपुटप्रमाणमालिङ्ग मां सुविपुलेन भुजद्वयेन ।

उन्नामयाननमिदं शरदिन्दुकल्पं प्रह्लादप व्यसनदग्धमिदं शरीरम् । ७।

भरत—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्ये ! अभिवाद्ये भरतोऽहमस्मि ।

मीता—आर्यपुत्रेण चिरसञ्चारी भव ।

अप्यटलेन चिरमञ्चारे इति ।

भरत—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्य ! अभिवाद्ये ।

रक्षण.—एहोहि वत्स ! दीर्घायुर्भव । पारध्वजस्व गाढम् । (मालिङ्गति)

भरत—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्ये ! प्रतिगृह्यता राज्यभारः ।

चिरमङ्गला—अनन्तकालव्यापिनीमाया ।

यक्षः प्रसारयेति—व्याख्यानिर्दिष्टं पद्य पूर्वं (पृ० १११) चतुर्थेऽङ्के ॥७॥

सय—बेटो, मदा सुहागिन रहो ।

सीता—कृपा से अनुगृहीत हुईं ।

भरत—आर्य, मैं भरत आपको अभिवादन करता हूँ ।

राम—आओ, आओ, इक्ष्वाकुकुमार, तुम्हारा कल्याण हो, चिरजीवी रहो ।

किवाडकी चौबटके समान चौड़ी अपनी छाती फैलाओ, अपने विशाल बाहुओंसे मुझसे मिलो । शरदिन्दुकले चाँदसे तुलित अपने मुखड़ेको ऊपर टटाओ और शोकसन्तप्त मेरे हृदयको आहादित करो ॥ ७ ॥

भरत—मैं आपका भतिअनुगृहीत हूँ । आर्ये, मैं भरत आपको अभिवादन करता हूँ ।

मीता—आर्यपुत्रके चिरसहो बनो ।

भरत—बड़ी कृपा । आर्य, नमस्कार ।

लक्ष्मण—आओ आओ, चिरजीवी रहो, जी भरकर गले ढगो । (मँटता है)

भरत—बड़ी कृपा । आर्य, अपना राज्यभार मंमालिपू ।

रामः—वत्स ! कथमिव ?

कैकेयी—जात ! चिराभिलषितः खल्वेव मनोरथः ।

जाद ! चिराहिलसिदो खु एसो मणोरहो ।

(ततः प्रविशति शत्रुघ्न)

शत्रुघ्न—विविधैर्व्यसनैः क्लिष्टमक्लिष्टगुणतेजसम् ।

द्रष्टुं मे त्वरते बुद्धी रावणान्तकरं गुरुम् ॥ ८ ॥

(उपगम्य) आर्य ! शत्रुघ्नोऽहमभिवादये ।

राम.—एहोहि वत्स ! स्वस्ति, आयुष्मान् भव ।

शत्रुघ्न—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्ये ! अभिवादये ।

सीता—वत्स ! चिरंजीव ।

बच्छ ! विरं जीव ।

शत्रुघ्न—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्य ! अभिवादये ।

लक्ष्मण—स्वस्ति, आयुष्मान् भव ।

चिराभिलषितः सुदीर्घकालवाञ्छितः । एषः स्वत्कतृकराज्यमारग्रहणरूपः ।

विविधैरिति—विविधैर्नानाप्रकारकं व्यसनैः सङ्घटैः क्लिष्ट सम्पीडितम्
(तथापि) अक्लिष्टगुणतेजसम् अनुपहतगुणप्रभावम् रावणान्तकरम्, तं गुरुम्
पूज्यमार्यरामं द्रष्टुं मे बुद्धिर्मानस्त्वरते शीघ्रता करोति बलादुत्कण्ठत इत्यर्थः ॥८॥

राम—क्यो ?

कैकेयी—बेटा, यह हमलोगों का चिरमनोरथ है ।

(शत्रुघ्न का प्रवेश)

शत्रुघ्न—नाना प्रकारके संकटोंसे सताये जानेपर भी अतिगुणी तथा तेजस्वी
और रावणसंहारकारी अपने गुरुदेवके दर्शनार्थ मेरा मन उतावला हो रहा है ॥

(पास जाकर) मैं शत्रुघ्न आपको अभिवादन करता हूँ ।

राम—आओ आओ वत्स, तुम्हारा कल्याण हो, तुम चिरायु होवो ।

शत्रुघ्न—बड़ी कृपा । आर्ये, प्रणाम ।

सीता—तुम्हारा कल्याण हो ।

शत्रुघ्न—बड़ा अनुग्रह, आर्य प्रणाम ।

लक्ष्मण—तुम्हारा चिरजीवन मङ्गलमय हो ।

राघुपुत्रः—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्य ! एतौ वसिष्ठनामदेवौ सह प्रकृतिभिर-
भिपेकं पुरस्कृत्य त्वद्दर्शनमभिलषतः ।

तीर्थोदकेन मुनिभिः स्वयमाहूतेन
नानानदीनदगतेन तद्य प्रसादात् ।

इच्छन्ति ते मुनिगणाः प्रथमामिपिक्तं
द्रष्टुं मुखं सलिलसिक्तमिवारविन्दम् ॥ ६ ॥

कैकेयी—गच्छ जात ! अभिलषामिपिक्तम् ।

गच्छ जात ! अभिलषेहि अभिलषेत् ।

रामः—यदाज्ञापयत्यम्ना । (निष्क्रान्त)
(नेपथ्ये)

जयतु भवान् । जयतु स्वामी । जयतु महाराजः । जयतु
देवः । जयतु भद्रमुखः । जयत्वार्यः । जयतु रावणान्तकः ।

एतौ सन्निहितौ, वसिष्ठनामदेवो कुलपुरुषुरोहितो । प्रकृतिभिः प्रजाभिः ।

अभिपेकं पुरस्कृत्य अभिपेचनमुद्दिश्य ।

तीर्थोदकेनेति—मुनिगणाः श्रयपस्तत्र प्रसादात् रावणवधकृतमुलमसञ्चार-
लक्षणान्तरानन्दात् स्वयमाहूतेन नानानदीनदगतेन मित्रमित्रपुण्यसलिलधारा-
सम्बन्धिना तीर्थोदकेन प्रथमामिपिक्तं प्राक्कृतमभिपेकं तत्र मुखं सलिलसिक्तं
जलाम्बुक्षितं कमलमिव द्रष्टुमिच्छन्ति । अचिरमिपिक्तस्य जलकणशालिवदनं
जलसिक्तपद्ममिवेत्युपमा । वस्तुतस्त्वं वृक्षम् ।

राघुपुत्र—मैं आपका आभारी हूँ । ये महर्षि वसिष्ठ और वामदेव, प्रजावर्ग
तथा अमात्योके साथ राज्याभिपेकके उद्देश्यसे आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

मुनिजन इत्य जाकर छोटे-बड़े नदों और भदियोंसे तीर्थजल लाए हैं । उनकी
इच्छा है कि कृपया आप पहले अभिपेक ग्रहण कर लें । उसके बाद अभिपेक जल
से सिक्त आपके मुखको ये लोग जलसिक्त कमलकी तरह देखें ॥ ६ ॥

कैकेयी—जाओ वेदा, राज्याभिपेक स्वीकार करो ।

राम—माताजी की जो आज्ञा ।

(नेपथ्य में)

आपकी जय, स्वामीकी जय, महाराजाधिराजकी जय, देवकी जय, भद्रमुख
की जय, आर्यकी जय, रावणके संहारककी जय ।

कैकेयी—एते पुरोहिताः कञ्चुकिनः पुत्रकस्य मे विजयघोषं वर्ध-
एते पुरोहिता कञ्चुकिणो पुत्रकस्य मे विजयघोषं वर्ध-
यन्त आशीर्षिः पूजयन्ति ।
अन्तो आसीहि पूजयन्ति ।

सुमित्रा—प्रकृतयः परिचारकाः सज्जनाश्च पुत्रकस्य मे विजयं
पद्मीशो परिचारका सज्जना अ पुत्रकस्य मे विजयं
वर्धयन्ति ।
वर्धयन्ति ।

(नेपथ्ये)

भो भो जनस्थानवासिनस्तपस्विनः ! शृण्वन्तु शृण्वन्तु
भवन्तः !

हत्वा रिपुप्रभवमप्रतिमं तमौघं

सूर्योऽन्धकारनिव शौर्यमयैर्मयूखैः ।

सीतामवाप्य सकलाशुभवर्जनीयां

रामो महौ जयति सर्वजनाभिरामः ॥ १० ॥

हत्वेति -- अप्रतिमम् अतुलनीय रिपोः शत्रो प्रभव उत्पत्तिर्यस्य तम् तमसः
सङ्घट्टस्य ओघ समूह सूर्यं अन्धकारनिव शौर्यमयैः पराक्रमरूपै मयूखैः किरणैः
हत्वा विनाश्य सकलं अशुभं रम्यवर्जनीया रहिता सीता प्राप्य सर्वजन मिरामः
सबललोकप्रिय रामः मही पृथ्वी जयति स्वायत्तीकरोति । यथा—सूर्योऽशुभिस्त-
मम ओघ विनाश्य प्रकाशेन भुव व्याप्नोति तथैव रामोऽपि शत्रुघ्नतान् बलेनान्
शौर्येणातिक्रम्य सीता पुनरास्ताद्य तेजसा मुथं व्याप्नोति । उपमाऽत्र स्फुटा । तमस

कैकेयी—अहा, ये पूज्य पुरोहित, कञ्चुकी वगैरह मेरे पुत्रका जयघोष,
आशीर्वाद तथा अभिनन्दन कर रहे हैं ।

सुमित्रा—अहा ! अमात्य, परिचारक तथा अन्य सज्जन वृन्द मेरे पुत्रकी
जयाशंसा कर रहे हैं ।

(नेपथ्य में)

ओ जनस्थाननिवासी तपस्वियों, आप लोग सुन लें ।

जिस तरह सूर्य अपनी प्रखर किरणोंसे अन्धकारका नाश करता है, उसी
तरह शत्रुसे फैलाए हुए अतुल तमःपटलको अपने पराक्रमसे नाशकर मङ्गलमयी
सीताको प्राप्तकर नयनाभिराम रामने समूची पृथ्वीपर अधिकार कर लिया है ॥

कैकेयी—अम्महे ! पुत्रस्य मे विजयघोषणा वर्धते ।
अम्महे ! पुनस्य मे विजयघोषणा बढइइ ।

(ततः प्रविवृति कृतमिषेको रामः मन्त्रिवारः)

रामः—(किलोक्पाकारे) भोस्तात !

स्वर्गेऽपि तुष्टिमुपगच्छ विमुञ्च दैन्यं
कर्म त्वगामिलपितं मयि यत् तदेतत् ।

राजा किलास्मि भुवि सत्कृतभारवाहो
धर्मेण लोकपरिरक्षणमभ्युपेतम् ॥ ११ ॥

मन्त्र — अचिगतनृपशब्दं धार्यमाणातपत्रं

विकसितकृतमौलि तीर्थतोयामिपित्तम् ।

धोषमिति समासे सन्दिग्धाणिनीयः । केचित्तु 'ये ये मान्ताग्ने तेऽन्ता' इत्यामि-
मानेनेदमित्याहुः । १० ॥

स्वर्गोपीति—स्वर्गे अपि (लोके तु त्व नाल्लभास्तुष्टिम्) इदानीं दिव्यपि
तुष्टि मद्राज्यामिषेकजन्मानन्दमुपगच्छ लम्बन्व, दैन्यं खेद मनोरमापूर्तिकृतम्
विमुञ्च जहोहि । त्वया मयि कर्म गत्यारोहणरूपमिलपितमिषमासोत् एतत्
सम्प्रति मत्कर्म राज्यामिषेकमेतत् तत् । त्वयाभोध्यमाण मद्राज्यामिषेकस्य
वार्यमधुना सम्पन्नमिति स्वर्गस्य तत्र प्रगाद खेदत्यागञ्च प्रासावसर इति
मादः । तदेवोपपादयति राजेति । भुवि सत्कृतभारवाहो समाह्वराज्यरूपभारवाहो
राजा अस्मि, धर्मेण धर्मपूर्वकम् लोकपरिरक्षणम् (मया) अभ्युपेतम् अङ्गीकृतम् ।
किलेति वाक्यान्वहारे ॥ ११ ॥

अचिगतेति—अचिगत नृपशब्द राजशब्दवाच्यता येन तम्, धार्यमण-
मानपत्र छत्रं यस्मिन् त समान्यमितराजधार्यस्वेनातपत्र विकसितकृतमौलिम् उक्त-

कैकेयी—अहा, मेरे पुत्रकी जयघोषणा बढ़ रही है ।

(कृताभियेक रामका परिवारके साथ प्रवेश)

राम—(आकाशकी ओर देखकर) पितृदेव,

आप अब स्वर्गमें ही आनन्द प्राप्त करें और कष्ट मूल जाँय । आपने मेरा
राज्याभियेक करना चाहा था, यह अब पूरा हुआ । अब मैं पृथ्वीपर पुण्यभारका
बहन करनेवाला राजा बन गया हूँ । मैंने न्यायपूर्वक प्रजापालनका उत्तरदायित्व
उठा लिया है ॥ ११ ॥

मन्त्र—आज अपने पूज्य आत्मा को देवनेसे मेरी आँसे नहीं सकती । उन्होंने

गुरुमधिगतलीलं चन्द्रमानं जनौघै-

नैवशशिनमिवायं पश्यतो मे न तृप्तिः ॥ १२ ॥

शत्रुघ्न—एतदार्याभिपेकेण कुलं मे नष्टकरमपम् ।

पुनः प्रकाशतां याति सोमस्येवोदये जगत् ॥ १३ ॥

राम—वत्स लक्ष्मण ! अधिगतराज्योऽहमस्मि !

लक्ष्मण—दिष्टथा भवान् वर्धते ।

(प्रविश्य)

कञ्चुकीय—जयतु महाराजः । एष खलु तत्रभवान् विभीषणो

विज्ञापयति—सुग्रीवनीलमैन्दजाम्बवद्धनूमत्प्रमुखाश्वातु

मितमूर्धानम् तीर्थतोयामिपिक्तं गुरु पूज्यम् अधिगतलीलम् आसादितश्रीकम् जनौघै-
लोकसमूहैर्बन्धमानं प्रणम्यमानम् नवशशिनं प्रत्यग्रोदितमिन्दुमिव आयं राम
पश्यतो विलोकयतो मे तृप्तिं मन्तो गो न । मयतीति शेष । यथा सम्भृतशोकस्य
लोकैः प्रणम्यमानस्याधिरोदितस्य चन्द्रमसो दग्धतेन चक्षुषी न तृप्यतस्त्वं वार्यं रा-
मदर्शान्ममापि चक्षुषो न तृप्यत इत्युपमा । मालिनीवृत्तम् ॥ १२ ॥

एतदार्येति—आर्यस्य पूज्यस्य रामस्याभिपेकेण राज्यारोहणेन नष्ट कलमर्ष
कलङ्को (न्यायप्राप्त्येष्टभ्रात्रभिपेक्षान्वावमरमभुम्भ) यस्य तदेतमे कुल सोमस्य
चन्द्रस्योदये जगदिव पुनः प्रकाशता दीप्तिशालिता यापि । स्पष्टमन्यत् ॥ १३ ॥

'महाराज' की पदवी पाहें, राजच्छत्र ग्रहण किया, शिर पर प्रकाशमान मुकुट
पहना, पावन तीर्थजलसे अभिपेक स्वीकार किया और राजगौरव पाया । चारों
ओर प्रजाएँ उनका जयकार करानी हैं, नये चाँदकी भाँति उनका अभिनन्दन
किया जा रहा है ॥ १२ ॥

शत्रुघ्न—जिस प्रकार चन्द्रमाके उदयसे सारा संसार प्रकाशित होने लगता
है, उसी प्रकार आर्यके राज्याभिपेकसे निष्कलङ्क मेरा यह रघुकुल फिरसे प्रकाश-
मान हो रहा है ॥ १३ ॥

राम—वत्स लक्ष्मण, अब मैंने राज्य पा लिया ।

लक्ष्मण—अहोभाग्य, आपको बधाई ।

(कञ्चुकी का प्रवेश)

कञ्चुकी—जय हो महाराज की । यह लङ्काधिपति विभीषण निवेदन करते हैं,

गच्छन्तो विज्ञापयन्ति—'दृष्ट्या भवान् वर्धत' इति ।
 राम—'सहायानां प्रसादाद् वर्धत' इति कथ्यताम् ।

काञ्चुकी — यदाज्ञापयति महाराजः ।

कैकेयी—धन्या खल्वस्मि । इममभ्युदयमयोध्यायां प्रेक्षितुमिच्छामि ।
 वण्णा, खु म्हि । इदं अम्बुदक्ष अग्रोऽत्राअ पेषिखद, इच्छामि ।
 राम—द्रक्ष्यति भवती । (विलोम) अये ! प्रभाभिन्नमिदमखिलं सूर्य-
 वत् प्रतिभाति । (विभाव्य) आः ज्ञातम् । सम्प्राप्त पुष्पकं दिवि
 रावणस्य त्रिमानम् । कृतसमयमिदं स्मृतमात्रमुपगच्छतीति ।
 तत् सूर्यरारुहताम् ।

(सर्वे आरोहन्ति)

रामः—अथैव यास्यामि पुरीमयोध्यां
 सम्बन्धिमित्रैरनुगम्यमानः ।

सूयवत् सूर्ययुक्तम्, अथ सादृश्यार्थं वर्धतप्रत्ययो न, किन्तु आश्रयार्थो मतुवेव ।
 कृतसमयं कृतसिद्धान्तम् । 'समया उपवाचात्कालमिद्वान्तसविदः' इति कोशः ।

अथैवेति—सम्बन्धिमित्रैः सम्बन्धिमिरतप्रभृतिमित्रैः सुप्रोषविभीषणा-
 दिभिश्च अनुगम्यमानोऽऽत्म् अथैव अस्मिन्नेवाहनि (विलम्बमकृत्वैव) अयोध्या तत्रा-
 मस्ववशाराजधानी यास्यामि प्राप्स्यामीति मात्राज्ञा विपालयिवो रामस्योक्तिः । तदेव

सुग्रीव, नील, मैन्द्र, जाम्बवान् तथा हनुमान् वगैरह आपके अनुचर निवेदन करते
 हैं—अहोभाग्य, आपको बधाई ।

राम—'सहायकों की कृपा से सब विजय है' ऐसा कह दो ।

काञ्चुकी—जो आज्ञा ।

कैकेयी—मैं धन्य हूँ । इस अभ्युदयको मैं अब अयोध्यामें भी देखना चाहती हूँ ।

राम—आप वहाँ भी देखेंगी । (देखकर) प्रभापुञ्जसे यह समस्त कानन
 सूर्यकी भाँति चमक रहा है । (विचार कर) अच्छा, समझ गया, आकाश में
 रावण वाला पुष्पक विमान आ रहा है । स्मरणमात्र करनेसे वह ठीक समय पर
 उपस्थित हो जाता है । अब आप लोग इसपर चढ़िये ।

(सब सवार होते हैं)

राम—मैं आज ही अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ मित्रोंको लेकर अयोध्या जा
 रहा हूँ ।

सदमयः—अथैष पश्यन्तु च नागरस्त्वां

चन्द्रं सनक्षत्रमिवोदयस्थम् ॥ १४ ॥

(भरतवाक्यम्)

तथा रामश्च जानक्या पद्भुमिश्च समागतः ।

तथा लक्ष्म्या समायुक्तो राजा भूमिं प्रशास्तु नः ॥ १५ ॥

(निरुत्थानाः सर्वे)

इति सप्तमोऽङ्कः ।



सदमयः सप्तमं प्रति—अदीयेति । नागराः अयोध्यानगरनिवातिनः च त्वाम् उदयस्थम् उदयाचलनिखरारूढम् अम्बुदमपवर्षं च सनक्षत्रं नक्षत्रदण्डपरिवृतं सङ्कर्यायुक्तं च चन्द्रनिव अथैष पश्यन्तु । पश्यन्तु इत्युपमाश्लेषकारः । इन्द्रवज्रायुक्तम् ॥ १४ ॥

भरतवाक्यम्—भरतस्य नटस्य वाक्यं तानाङ्कितान्मुदयाचलनररम् । एव हि समुदापारो यथासौ भवति भरतेन तानाङ्कितान्मुदयादीनां सुमारतननाचरति । ता येन प्रशस्तिः निर्दोषसन्धिचरमाज्ञम् ।

यथा रामश्चेति—राजो यथा जानक्या पद्भुमिश्च समागतः तथा लक्ष्म्या समायुक्तो नोऽप्यार्कं राजा भूमिं प्रशास्तु परिपालयतु ॥ १५ ॥

'निरुत्थानाः सर्वे' इति समाप्तिं तत्तमाङ्कस्य सूचयति ।

चरति रामविषयं बलघनमाननितादी, माति तपसि नापायितापनुनिधौ कितानाद्य प्रतिमानाटकमिदं 'प्रकाश' दूर्तं सम्पूर्णं, अन्तर्गत् इत्यादि विद्वद्भिः रिहातुपरतम् ॥१॥

इति मुञ्जकपुररम्यद्वारात्तर्षति 'पकडी' सङ्कर्यायुक्तानां मुञ्जकपुरस्यनंतमाङ्क-
संस्कारान्हासिद्यालये वेदान्तदर्शनान्ध्यानेन व्याकरणवेदान्तसाहित्याचार्यादिपाठिना
शैवित्तरचितधीरानपद्मसर्मणा प्रणीत. प्रतिमानाटक 'प्रकाशः' सम्पूर्णः ॥

लक्ष्मण—श्रीर भाज ही सभी नगरवासी उद्भाषणगत नक्षत्रसहित चन्द्रना
की भौति आपके दर्शन प्राप्त करें ॥ १४ ॥

(भरत वाक्यम्)

जित प्रकार भगवान् राम जानकी तथा पद्भुमिंके साथ राज्य करते रहे, उसी
तरह राजलक्ष्मीसे युक्त हमारे महाराज (राजसिंह) पृथ्वीका पालन करें ॥ १५ ॥

(सरका प्रस्थान)

प्रतिमानाटक समाप्त



परिशिष्टम्

नोट्स

१ नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः (पृ. १)

इस नाटक में और मास के अन्य कतिपय नाटकों में भी सर्वप्रथम लिखा मिलता है—नान्द्यन्ते इत्यादि । परन्तु अन्य बहिष्कृत नाटकों में पहले यथायोग्य एक या तदधिक श्लोकों में मञ्जुलाचरण निबद्ध करके तब लिखा जाता है—नान्द्यन्ते इति० । यह परिपाटी मास के समय में नहीं थी, मास के मतानुसार सब नट मिल कर पहले नान्दी कर लेते थे, जो परदे के पीछे ही कर ली जाती थी, बाद में बेदल सूत्रधार प्रवेश करता था, जो कथाज्ञापक श्लोक कहता था । यही क्रम मास के नाटकों में सर्वत्र पाया जाता है । इसीलिए नान्दी का बाधुनिक लक्षण इनके मञ्जुल श्लोकों में नहीं पाया जाता, क्योंकि इनकी नान्दी तो अन्य में निबद्ध होती ही नहीं, वह तो पहले ही कर ली जाती है ।

२ प्रतिहाररक्षी (पृ. ४)

यह शब्द स्त्रीलिङ्ग है, 'प्रतिहार रक्षति' इस विग्रह में 'कर्मण्यण्' इस सूत्र में ऋण् प्रत्यय स्त्रीलिङ्ग होने से टित्त्वमूलक डीप् । गिति प्रत्यय करने पर तो प्रतिहाररक्षिणी यह रूप होगा, वत ऋण् ही करना चाहिये ।

३ स्थापना (पृ. ५)

इस स्थापना शब्द से प्रस्तावना विवक्षित है । नाट्यशास्त्र में लिखा है—'प्रसाद्य रङ्ग-विधिवत्कवेर्नाम च कीर्त्तयेत् । प्रस्तावना तत कुर्वात्काव्यप्रख्यापनाश्रयाम्' ॥ इसके अनुसार प्रस्तावना में काव्य की प्रशंसा और उससे पूर्व कविनामनिर्देश हो जाना चाहिये, परन्तु इन प्रथा को मास यदि प्राचीन नाट्यकारों ने मान्यता नहीं दी थी । उस पद्धति को कालिदास ने प्रवृत्त किया, तदनुसार परवर्ती कवियों ने भी आचरण किया । पीछे चलकर वह लोक सी बन गई ।

३४ अभिवादनक्रममुपदेष्टुमिच्छामि (पृ. ८९)

माताओ को किस क्रम से प्रणाम किया जाय, कौन बड़ी माता है जिनकी पहले, उसके बाद भसली माँ को, उसके बाद छोटी माँ को पहचान कर ही ठीक क्रमशः प्रणाम किया जायगा, तदर्थ आप उन्हें परिचित करा दें जिससे यथोचित क्रम से प्रणाम किया जाय । यही इस वाक्य का अर्थ है । इस अर्थ में यह वाक्य अवाचक है, क्योंकि यहाँ 'उपदेष्टुम्' का सम्बन्ध ठीक नहीं बैठ रहा है अतः उसकी जगह—'अभिवादनक्रममुपदिष्टमिच्छामि' ऐसा पाठ मानना चाहिये । बहुत सम्भव है यही पाठ रहा भी हो, पीछे लेखनप्रमाद से वर्तमान पाठ प्रचलित हो गया होगा ।

३५ आक्रुष्ट इवास्म्यनेन (पृ ९०)

कौसल्या ने भरत से कहा—नि सन्तापो भव । इसका अर्थ स्पष्ट है तुम्हारे सन्ताप दूर हो । यहाँ सन्ताप कौसा ? यह विचारणीय है, सभी अपने मन की सोचेंगे । कौसल्या ने कहा कि राम-वनगमन से जो सन्ताप तुमको है वह छूट जाय, उनसे तुम्हें त्राण प्राप्त हो । भरत को दूसरा ही अभिप्राय ज्ञात हुआ । उन्होंने समझा कि ये मुझे ताने दे रही है—रामरूप विरोधी के रहने से जो राज्याप्राप्तिरूप सन्ताप था वह अब दूर हो गया, निश्चिन्त हो जाओ । कौसल्या के कृपण का यही मतलब भरत ने लगाया ।

३६ अतिसन्धितः (पृ. ९०)

अतिसन्धा अतिसन्धानम्, वञ्चनमित्यर्थः, देखिये शाकुन्तल—'परातिसन्धान-मधीयते ये विद्येति ते सन्तु किलासवाच ' सा अतिसन्धा सञ्जाता अस्येति अतिसन्धितः, 'तदस्य सजात तारकादिभ्य इतच्' यही इसकी सिद्धि का उपाय है । या से सीधे क्त प्रत्यय करने पर तो 'अतिसन्धितः' यह रूप होगा । अतिसन्धित=वञ्चित । लक्ष्मण ने जिसे वञ्चित कर रखा है अर्थात् उन्होंने स्वयं राम की सेवा का अवसर प्राप्त कर लिया, भरत को बैसा नहीं करने दिया, यही लक्ष्मण द्वारा यहाँ भरत की अतिसन्धा है ।

३७ इदं प्रयतिष्ये (पृ ९०)

यत् धातु प्रयत्नायंक् तथा अकर्मक है, इसके योग में इदं पद का किसी प्रकार समन्वय नहीं होता है । यहाँ 'इदं प्रयतिष्ये' ऐसा पाठ हो जाय तो सब ठीक हो जायगा ।

३८ अभिषेक पुरस्कृत्य (पृ ९६)

'अभिषेक पुरस्कृत्य' एतमें अभिषेक शब्द से क्रिया नहीं, क्रिया की सामग्री ली गई है, क्रिया करवाई गया जायेगा, उसकी सामग्री - छ । आदि लेकर जाने का प्रसङ्ग भी है ।

३९ प्रत्यादेशो राज्यलुब्धायाः कैवेय्या (पृ १०१)

राम राज्यलुब्धा कैवेयी के लिए तिरस्कार स्वरूप थे । राम राज्य से एकदम निरपेक्ष थे और कैवेयी न राज्य के लिए अति अकसंख्य क्रिया, ऐसी दशा में कैवेयी के विषय में कुछ नहीं कह कर राम का बन जाना ही कैवेयी का पर्याप्त तिरस्कार हो गया । इसी व्यवहार को प्रत्यादेश-तिरस्कार का रूप दे दिया गया है । ऐसे उदाहरण बाण की कादम्बरी में भी अधिक आये हुए हैं—'प्रत्यादेशो धनुष्मताम्, धीरेय माहसिकानाम्, अग्रणीविदग्धानाम् धीरेय साहसिकानाम् ।'

४० इक्ष्माकुकुलन्यङ्गभूतः (पृ. १०३)

'न्यङ्ग' शब्द का अर्थ है 'बलक' । न्यङ्ग शब्द अप्रचलित है । इसका 'नि-अङ्ग' निवृत्त भाग इस अवयवायं का बहुत छोटा भाव आशयार्थ में धाता है ।

४१ पितृवचनकराय (पृ १०३)

करोति इति कर, पितृवचनस्य कर इति पितृवचनकर, तस्मै पितृवचन-कराय । पितृवचन करोति य स तस्मै इस विग्रह में पितृवचनकराय, ऐसा रूप होगा क्योंकि कर्मण्यण् से अण् प्रत्यय हो जायगा । इसीलिए कौमुदी में लिखा है । 'कथं तर्हि गङ्गाधरभूधरादय, कमण शेषत्वविवक्षाया भविष्यन्ति ।'

४२ विशालीक्रियता ते चक्षुः (पृ. १०७)

भरत को देखने के लिए नुम अपनी आँखें विशाल कर लो । अच्छी वस्तु

देखन के लिए बड़ी आँखों का होना वर्णित है, देखिए—'विलोकयन्त्यो वपुरा-
पुरक्षणा प्रकामविस्तारफलं हरिष्य.' (रघुवंश) ।

४३ गुरुरयम्, आर्य ! अभिवादये, आयुष्मान् भव (पृ. १०७)

भरत ने लक्ष्मण के विषय में कहा—'गुरुरयम्' आप श्रेष्ठ हैं; फिर लक्ष्मण के प्रति कहा—'आर्यं अभिवादये', लक्ष्मण ने आशीर्वाद दिया—'आयुष्मान् भव ।' इस कथोपकथन के सिलसिले से प्रकट होता है कि लक्ष्मण बड़े थे और भरत छोटे । भरत ने प्रणाम किया, लक्ष्मण ने श्रेष्ठजनोचित आशीर्वाद दिया । परन्तु यह बात संदिग्ध है, सभी रामायणकार या रामायणाश्रित साहित्यग्रन्थकार भरत को ज्येष्ठ मानते हैं, लक्ष्मण को छोटा । फिर भास को क्या सूझा कि उन्होंने उल्टा लिख दिया ? इस प्रश्न का उत्तर यह दिया जा सकता है कि राम तथा लक्ष्मण ममान चरु भाग-प्रसूत थे, अतः राम की तरह लक्ष्मण भी भरत से ज्येष्ठ हुए । यह भी कहा जा सकता है कि चरुभाग जो पुत्रेष्टियज्ञोपरांत रानियों को दिया गया था उसमें लक्ष्मणजनक चरुभाग प्रथमार्पित रहा हो । इन उत्तरो में सन्तोषक्षमता नहीं है । रामायण की कथा में इस तरह की गलती क्षम्य नहीं है । नाटकीय चमत्कारार्थं कवि ने परिवर्तन किया है यह बात भी नहीं कही जा सकती, क्योंकि नाटकीयांग में कोई चमत्कार उससे नहीं बढ़ पाया है । मैं समझता हूँ कि भास के समय में कोई रामायण ऐसा भी प्रचलित रहा होगा जिसमें लक्ष्मण को भरत से ज्येष्ठ कहा गया होगा । कालक्रम से वह रामायण लुप्त हो गया है । इस तरह की बातें अति असम्भव नहीं कही जा सकती हैं ।

४४ आत्मजविशिष्टगुणः (पृ. ११८)

आत्मज (पुत्र) के विशिष्ट (अद्भुत) गुण । इस वाक्य में समास न करके आत्मजस्य विशिष्टगुण ऐसा कहने से साहित्यिक चमत्कार कम हो जाता, इस-
लिए व्याकरण की परवाह न करके समास कर दिया गया है ।

४५ कः समयः ? (पृ. १२०)

यहाँ समय शब्द का अर्थ है 'शत' 'सिद्धान्त' 'समया'—'शपथाचारकाल-
सिद्धान्तसिद्ध.' (इत्यमरः) 'शर्त्त पर आपका राज्य चला दूँगा' ऐसा भरत ने स्वीकार किया, जिस पर राम ने पूछा कि कौन शर्त्त ?

४६ प्रतिग्रहीतुम् (पृ. १२०)

यहाँ 'प्रतिग्रहीतुम्' पद अन्तर्भावितव्यर्थ मानने पर ही प्राकरणिक सङ्गत अर्थ हो सकेगा, नहीं तो विवक्षितार्थ प्रतीति नहीं होगी। 'प्रतिग्रहीतुम्' का साधारण अर्थ है—लेने के लिए। देखिये, कुमारसम्भव—'प्रतिग्रहीतुं प्रणयि-प्रियत्वादिश्लोचनस्तामुपघक्रमे च'। इसीलिए यहाँ 'प्रतिग्रहीतुम्' में ग्रहणार्थ को अन्तर्भावितव्यर्थ मान लेने से 'ग्रहण कराना चाहता हूँ' यह अन्वय अर्थ होगा।

४७ अवस्थाकुटुम्बिनीम् (पृ. १२६)

'कुटुम्बिनी' शब्द से स्त्री या सहायक स्त्री, यही अर्थ प्रतीत होता है, उसके साथ अवस्था पद जोड़कर राम सीता को प्रशंसा कर रहे हैं। उनके कहने का अर्थ यह होता है कि सीता साधारण विलासलुब्धा स्त्री नहीं, बल्कि हमारी भी दशा की सहायिका स्त्री है।

४८ निवपनक्रियाम् (पृ. १२९)

निवपन शब्द का अर्थ है पितरो के उद्देश्य से किया गया आद्यतर्पण आदि। कालिदास ने भी इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग किया है। देखिये शाकुन्तल—

'अम्मत्परं वत यथाश्रुति सभृतानि । को नः कुले निवपनानि नियच्छतीति ॥'

निवपन, निवाप दोनों समानार्थक हैं। 'येभ्यो निवापाञ्जलयः पितृणाम्' निवाप शब्द से 'निवाप' भी बनकर प्रयुक्त हुआ है—'दशरथदुरवाप प्राप निवापमम्' ॥

४९ स्वरपदपरिहीणाम् (पृ. १३१)

स्वर तथा पद से रहित। यहाँ हीन और परिहीन में कोई अर्थभेद नहीं है, क्योंकि परि निरर्थक है। निरर्थक परि को 'अधिपरी अनर्थको' इससे कर्मप्रवचनीय सजा होगी, उपसर्गसजा का उससे बोध हो जायगा, अतः परिहीण पद में शून्य अयुक्त है, अत एव—कारिकावली में 'सामान्यपरिहीणान्त्सु सर्वे जात्यादयो मताः' ऐसा दृश्यघटित ही पाठ है।

५० 'माहेश्वरं योगशास्त्रम्, मेघातिथेर्न्यायशास्त्रम्
प्राचेतसं श्राद्धकल्पम्' (पृ. १३४)

महेश्वरकृत योगशास्त्र । यह माहेश्वर योगशास्त्र कौन हैं इस विषय में बड़ा सन्देह है, प्रसिद्ध योगशास्त्र तो पातञ्जल ही है । महेश्वरकृत योगशास्त्र, हो सकता है पहले रहा हो, अब तो उसकी प्रसिद्धि नहीं रही । यह भी सम्भव है वह माहेश्वर योगशास्त्र प्रचलित पातञ्जल योगशास्त्र का मूलभूत रहा हो, समय की गति ने उसका लोप हो गया है । आज सर्वत्र जिस पाणिनीय व्याकरण की ख्याति है उसका भी मूलभूत अन्य बहुविध व्याकरण था, जो अब नहीं रहा ।

मेघातिथि की न्यायशास्त्र का प्रवर्तक कहा गया है । मेघातिथि प्रसिद्ध है उनका ग्रथ तो घर्मशास्त्र में ही मिलता है । ये मेघातिथि कौन थे ? इस प्रश्न का उत्तर अब यही दिया जा सकता है कि ये भी कोई प्राचीन आचार्य रहे होंगे जिनसे प्रेरणा प्राप्त कर गौतम का न्याय बना होगा, जो आज प्रचार में है । इन बातों पर अनुसन्धान होना चाहिये । वरुणकृत श्राद्धकल्प की भी यही स्थिति है ।

५१ कौञ्चत्वं वा गमिष्यति (पृ. १३९)

परशुराम और कार्तिकेय महादेव से अस्त्रवेद का सर्वाधि अध्ययन कर रहे थे । दोनों में विद्या के सारस्वत्य का सङ्घर्ष उपस्थित हुआ । महादेव ने परीक्षा के लिए तय किया कि इस पर्वत को बाणों द्वारा जो भिन्न कर देगा उसे प्राथम्य प्राप्त होगा । परशुराम ने वैसा किया, इसीलिए उनको यश के साथ गुदकृपा भी मिली । इन्हीं कारणों से उस शरदालित पर्वत को कालिदास ने—'हस्तद्वार मृगुपतियशोवर्त्म तस्त्रौञ्चरन्ध्रम्' कहा है ।

५२ कव्यात् (पृ. १५०)

'राशस. कौणपः कव्यात्' । 'अदोऽनन्ने' दम सूत्र से कव्योपपदक अद् घातु ने विट् प्रत्यय, उसका सर्वापहार, क्रव्य-आम भाम ।

५३ गुण इव बह्वपराद्धमायुषा मे (पृ. १५५)

अधिक दिनों तक जीना गुण माना जाता है, परन्तु मेरी चिरजीविता गुण जगह दोष हो रही है क्योंकि जीते रहने से ही मूझे अप्रिय घटनायें देखनी

प्रतिमानाटकगतानि सुभाषितानि

१. अनुचरति शशाङ्कं राहुदोषेऽपि तारा ।
२. अलमिदानीं त्रणे प्रहर्तुम् ।
३. अल्पं तुल्यशीलानि द्वन्द्वानि सृज्यन्ते ।
४. विधिरनतिक्रमणोयः ।
५. किं ब्रह्मघ्नानामपि परेण निवेदनं क्रियते ?
६. कुतः क्रोधो विनीतानां लज्जा वा कृतचेतसाम् ।
७. गङ्गायमुनयोर्मध्ये कुनदीव प्रवेशिता ।
८. गोपहीना गावो विलयं यान्ति ।
९. छायां परिहृत्य शरीरं न लङ्घयामि ।
१०. तिर्यग्योनयोऽप्युपकृतमवगच्छन्ति ।
११. न न्याय्यं परदोषमभिधातुम् ।
१२. न व्याघ्रं मृगशिशवः प्रघर्षयन्ति ।
१३. निम्नस्थलोत्पादको हि कालः ।
१४. निर्दोषदृश्या हि भवन्ति नार्यो यज्ञे विवाहे व्यसने वने च ।
१५. पतति च वनवृक्षे याति भूमिं लता च ।
१६. पिपासार्तोऽनुधावामि क्षीणतोयां नदीमिव ।
१७. पुरुषाणां मातृदोषो न दोषः ।
१८. बहुवृत्तान्तानि राजकुलानि नाम ।
१९. भर्तृनाथा हि नार्यः ।
२०. राज्यं नाम मुहूर्त्तमपि नोपेक्षणीयम् ।
२१. शरीरेऽरिः प्रहरति, स्वजनो हृदये ।
२२. सर्वशोभनीयं सुरूपं नाम ।
२३. सर्वोऽपि मृदुः परिभूयते ।
२४. सुलभापराधः परिजतो माम् ।
२५. स्वः पुत्रः कुरुते पितुर्यदि वचः कस्तत्र भो विस्मयः ?
२६. हस्तस्पर्शो हि मातृणामजलस्य जलाञ्जलिः ।

नाटकीय-वस्तुलक्षणानि

नाटकम्—धीरशृङ्गारयोरेकः प्रधानं यत्र वर्णयते ।

प्रख्यातनायकोपेतं 'नाटकं सद्बुदाद्भूतम् ॥

जिममे वीर, शृङ्गार मे अन्यतर रस प्रधान हो, अन्य रस अङ्गभूत रहें और प्रख्यात नायक हो, यह नाटक कहा जाता है ।

पूर्वरङ्ग —यज्ञाद्यवस्तुनः पूर्वं रङ्गविघ्नोपशान्तये ।

कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति पूर्वरङ्गः स उच्यते ॥

नाटकीय कथा की अवतारणा से पहले रङ्गभूमि के विघ्नों को दूर करने के उद्देश्य में नर्तन लोग जो कुछ करते हैं, उसे पूर्वरङ्ग कहते हैं ।

नान्दो—आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।

देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संहिता ॥

देवगण, ब्राह्मण और राजादिकों की आशीर्वाद सहित स्तुति इसके द्वारा की जाती है इसलिए लोग इसे नान्दी कहते हैं ।

सूत्रधार —आसूत्रयन् गुणान् नेतुः कवेरपि च वस्तुनः ।

रङ्गप्रसाधनप्रौढः सूत्रधार इहोदितः ॥

नायक, कवि और कथावस्तु के गुणों को सक्षेप में (नान्दी द्वारा) सूचित करने वाला सूत्रधार नाम से विदित कराया जाता है । इसका रङ्गमञ्च को सजाने की कला में प्रवीण होना भी आवश्यक है ।

१. 'नाटकं ख्यातवृत्ता स्यात् पञ्चसन्धिमुखयुतम् ।

विलासदर्पादिगुणवद्युक्त नानाविभूतिभिः ॥

सुखदुःखसमुद्भूतिर्नानारसनिरन्तरम् ।

पञ्चादिका दशपरास्तत्राञ्छा. परिकीर्तिता ॥

प्रख्यातवशो राजपिर्धोरोदात्त प्रतापवान् ।

विभ्योऽप्य दिव्यादिव्यो वा गुणवान् नायको मतः ।

एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा ।

अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्यं निर्वहणेऽद्भुतम् ।

चत्वारः पञ्च वा मुख्या कार्येभ्यामृतपूरुषा ।

गोपुच्छप्रसमप्र तु बन्धन तस्य कीर्तितम्' इति । (सा० ६०)

टीकाकर्तुः परिचयः

माण्डरसंज्ञकमैथिलभूसुरवंशेऽजनिष्ठ कृती ।
 श्रीमान् 'कन्हाइ'मिश्रो हृतजनताऽज्ञानतामिस्रः ॥ १ ॥
 उदितः 'छाँतन'शर्मा ततः सुमेरोरिवादित्यः ।
 योऽमानि मानिनिवहश्रयान् सुकृतावदातात्मा ॥ २ ॥
 मृतपितृकः स हि बाल्ये मातुलकुलमाश्रितः शरणम् ।
 ग्रामे पकडीनामनि गृहस्थतां प्रापितो न्यवसत् ॥ ३ ॥
 तत्तनयेषु प्रथमो वयसा ज्ञानेन यशसा ।
 'मधुसूदन'मिश्राख्यो भक्तश्चतुराग्रणीरभवत् ॥ ४ ॥
 तत एव श्री'जयमणि'संज्ञाया मातरि प्रापम् ।
 जनिमब्धिरामवसुभूमितशाके 'रामचन्द्रो'ऽहम् ॥ ५ ॥
 प्रभवादष्टमशरदि स्नेहान्मामुपनिनीपन्तम् ।
 तातं सदा स्वतन्त्रा नियतिरकार्षात्कथाशेषम् ॥ ६ ॥
 बाल्ये पण्डित'झिङ्गुरशर्म'कृपाप्राप्तबोधस्य ।
 अथ चक्षुषी चमत्कृतसंस्कृतभाषाप्रयोगेषु ॥ ७ ॥
 उन्मीलिते अभूता श्री'श्रीनाथाख्य'विवुधस्य ।
 मम मातुलस्य चरणौ निपेवमाणस्य न चिरेण ॥ ८ ॥
 गूढं शास्त्ररहस्यं ज्ञातु निखिलं निवद्धकक्षस्य ।
 उपदेशको ममाभू'दीश्वरनाथो' विदां वन्द्यः ॥ ९ ॥
 स्वाभाविक्या कृपया स्नेहेनान्ताप्ररुडेन ।
 मम तादृशा च यो मामपुपत्सोर्दर्यभावेन ॥ १० ॥
 तत्कृपयाधिगताखिलसंस्कृतसाहित्यमर्माणम् ।
 बुधवर'किशोरिशर्मा' मां व्यधिताचार्यपदभाजम् ॥ ११ ॥
 श्रीयुत'जटेश्वरा'भिघविद्वद्वरपादमुपजीव्य ।
 दर्शनशास्त्ररहस्यं न चिरेणाशेषमाचकलम् ॥ १२ ॥
 एतानन्यांश्च गुरुन्मनसि ममावस्थितान्सततम् ।
 ध्यायामि यत्कृपा मे मानुष्यकमञ्जसाऽस्त्राक्षीत् ॥ १३ ॥
 सोऽहं वाक्परिचरणव्यापृतचेताः 'प्रकाश'ममु ।
 निरमामिह विद्वांसः 'कृपास्पृशं' स्वां दृशं दध्युः ॥ १४ ॥

कृष्णदास संस्कृत सीरीज

७४

♦♦♦

भासनाटकचक्रे

अभिषेकनाटकम्

“शशिप्रभा”संस्कृत-हिन्दीन्याख्योपेतम्

व्याख्याकार

डॉ० जमुना पाठकः

एम. ए., पी एच. डी.

संस्कृत विभागः

काशी हिन्दू विश्वविद्यालयः, वाराणसी

प्रस्तावकः

डॉ० श्रीनारायण मिश्रः

रीडर, संस्कृत विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालयः



कृष्णदास अकादमी, वाराणसी.

१९८५

दो शब्द

नाटक-ग्रन्थों की रमणीयता सर्वविदित है—'काव्येषु नाटकं रम्यम्'। कोई भी सहृदय इनसे आकृष्ट हुए बिना नहीं रह सकता। इसी आकर्षण के कारण नाटकों पर कार्य करने के लिए मेरी अभिरुचि उत्पन्न हुई। परिणामतः १९७८ में अभिज्ञानशाकुन्तल की व्याख्या प्रकाशित हुई। तत्पश्चात् अन्य कई नाटकों पर कार्य किया, किन्तु दुर्भाग्यवश वे सभी प्रकाशित नहीं हो सके हैं।

इस नाटक का सम्पादन, डॉ० सुधाकर मालवीय, सस्कृत-विभाग, का० हि० वि० वि०, वाराणसी के निर्देशन में हो सका है। वे मेरे भ्राज हैं। अस्तु, उनसे मैं शुभाकांक्षी हूँ। कृष्णदास अकादमी, वाराणसी के सुयोग्य कर्मठ सचालक का मैं विशेष आभारी हूँ जिन्होंने इस संस्करण के प्रकाशन का श्रेय ग्रहण किया।

अन्ततः, गुरुवर्य डॉ० श्री नारायण मिश्र जी, प्रवाचक, सस्कृत-विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के असीम शुभाशीर्वाद से यह कार्य सम्पन्न हो सका है। अत एव मैं उनके चरण-कमलों में विनयावनत हूँ। इसमें जो कुछ श्री गुण है, वह श्रेय गुरु जी की देन है तथा जितने दोष हैं, वे मेरे हैं। अस्तु,

दीपावली, १९८५

विद्वच्चरणानुरागी-
जमुना पाठक

भूमिका

महाकवि भास

संस्कृत कवियों का मुख्य उद्देश्य विषयवस्तु-रयापन ही था। आत्म-रयापन से वे बहुत दूर रहते थे। यहाँ तक कि कतिपय उपलब्ध ग्रन्थों में उनके कर्ता के नाम का भी अभाव है। महाकवि भास इन्हीं कवियों में एक हैं। नाटक जगत् में इनका नाम प्राचीन-काल से ही प्रसिद्ध है तथा इस क्षेत्र में इनका प्रथम स्थान है किन्तु इनकी किमी भी कृति में इनका नाम तक उपलब्ध नहीं है। अतः इनके कृतियों के कर्त्तृत्व के विषय में भी सन्देह बना रहा है। यद्यपि विद्वानों ने बाह्य तथा अन्त माध्य के आधार पर इन सन्देह का निराकरण किया है फिर भी इन क्षेत्र में पर्याप्त शोध की आवश्यकता है।

भास संस्कृत के प्रथम नाटककार हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं कि संस्कृत-वाङ्मय में इनसे पूर्व नाटकों की रचना नहीं हुई थी प्रत्युत् सम्प्रति उपलब्ध नाटकों में सबसे प्राचीन इन्हीं के नाटक उपलब्ध हैं। प्राचीन अलङ्कार-शास्त्र के आचार्यों ने अपने लक्षण-ग्रन्थों में इनकी कृतियों से अनेक उदाहरण प्रस्तुत किया है। किन्तु बड़े दुःख का विषय है कि ऐसे प्रयत्नशाली नाटककार के जीवन परिचय के विषय में हम बिल्कुल अनभिज्ञ हैं।

भास का स्थिति-काल

भास का स्थिति काल भी अधिक विवादास्पद है। उल्लेख के अभाव में निश्चित-रूप से कुछ भी कहना कठिन है। फिर भी ये कालिदास से पूर्ववर्ती अवश्य थे क्योंकि उन्होंने मालविकाग्निमित्र में बड़ी श्रद्धा के साथ भास के नाम का स्मरण किया है। इससे यह प्रतीत होता है कि कालिदास के समय तक भास नाटककार के रूप में प्रसिद्धि को प्राप्त कर चुके थे।

कालिदास के समय के विषय में भी विद्वानों में अत्यधिक मतभेद है। कतिपय विद्वान् कालिदास को चतुर्थ शताब्दी में मानते हैं अतः उनके अनुसार भास चतुर्थ शताब्दी से पूर्ववर्ती हैं। कतिपय विद्वान् कालिदास को ई० पू० प्रथम-शताब्दी में स्वीकार करते हैं।^१ उनके अनुसार भास का समय ई० पू० प्रथम शताब्दी से पहले निश्चित होता है।

भास के नाटको की खोज के पूर्व सबसे प्राचीन सूद्रक का 'मृच्छकटिक' नाटक माना जाता था किन्तु यह नाटक भास के 'चारुदत्त' नाटक के अनुकरण पर विरचित तथा उसका परिवर्धित रूप है। इस प्रकार चारुदत्त नाटक की रचना मृच्छकटिक के कर्ता सूद्रक से प्राचीन ठहरती है। सूद्रक का शासन काल ई०पू० २२०-१९७ वर्ष था अतः भास को इससे पूर्ववर्ती होना चाहिए।

भास के एक श्लोक को कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में उद्धृत किया है। इसके अतिरिक्त भास ने प्रतिमा नाटक में बृहस्पति के अर्थशास्त्र का उल्लेख किया है। इससे प्रतीत होता है कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र की रचना भास के बाद हुई थी। इस प्रकार भास का समय कौटिल्य के समय से भी पूर्ववर्ती है। कौटिल्य के समय की उच्चतम सीमा ई०पू० चतुर्थ शताब्दी है।

भास कालिदास के पूर्ववर्ती थे अतः उनके समय की निम्नतम सीमा ई० पू० प्रथम शताब्दी है। इस प्रकार भास का समय ई० पू० प्रथम शताब्दी से ई० पू० चतुर्थ शताब्दी के मध्य में निश्चित होता है।

भास की कृतियाँ—नाटकचक्र

सम्प्रति भास-कृत नाटक 'नाटकचक्र' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इसमें १३ नाटको का उल्लेख है। जिसमें ६ नाटको का कथानक महाभारत से लिया गया है—मध्यम-व्यायोग, दूतवाक्य, दूतघटोत्कच, कर्णभार, उरुभङ्ग, पञ्चरात्र। दो नाटको का उपजीव्य रामायण है—प्रतिमा, अभिषेक। एक नाटक भागवत-पुराण पर आधारित है—बालचरित। दो नाटक लोक-कथाओं से

१. विस्तृत-विवरण के लिए - द्रष्टव्य मेरे द्वारा सम्पादित अभिज्ञान-शाकुन्तलम् की भूमिका—पृ० १२-१७

सम्बन्धित है—दरिद्रबाहदत्त और अविमारक। दो नाटक उदयन तथा पर आधित हैं—प्रतिज्ञायोग्धरायण तथा स्वप्नवासदत्तम्। इन सभी नाटकों में भास की मौलिक एवं अनूठी कल्पनाशक्ति तथा अद्भुत नाट्यकुशलता का परिचय मिलता है। रचनाक्रम के आधार पर इन नाटकों का सक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है—

(१) प्रतिज्ञायोग्धरायण—इस नाटक में चार अङ्क हैं। इसमें वत्सराज उदयन तथा उज्जयिनी के राजा प्रद्योत की राजकुमारी वासवदत्ता के प्रेम तथा परिचय का वर्णन है। उदयन को जब प्रद्योत कैद कर लेता है तब उसका (उदयन का) मन्त्री योग्धरायण उसे कैद से छुड़ाने तथा वामवदत्ता के साथ उसका विवाह कराने की प्रतिज्ञा करता है। इसी प्रतिज्ञा के कारण ही इस नाटक का नाम 'प्रतिज्ञायोग्धरायण' रखा गया है। योग्धरायण अपनी प्रतिज्ञानुसार उदयन को वासवदत्ता सहित उज्जयिनी से भगाने में सफल हो जाता है तथा उदयन और वामवदत्ता का विवाह सम्पन्न हो जाता है। यह सुखान्त नाटक है।

(२) स्वप्नवासवदत्तम्—यह छ अङ्कों का नाटक है। इसमें प्रतिज्ञा-योग्धरायण की कथा के बाद की कथा का विवेचन है। वासवदत्ता के परिणय के बाद राजकार्य को छोड़कर उदयन उसमें अत्यधिक आसक्त हो जाता है। इस कमजोरी से उसका एक शत्रु आशुषिण उस पर चढ़ाई करके उसका राज्य छीन लेता है। पुनः राज्य प्राप्ति के लिए योग्धरायण उदयन का विवाह मगधराज दशक की बहन पद्मावती से कराना चाहता है किन्तु वासवदत्ता के रहते उदयन का अन्य स्त्री के प्रति आकृष्ट होना असम्भव जानकर उदयन के आशुषिण के लिए बाहर चले जाने पर शिविर में आग लगवा कर यह कहला दिया कि वासवदत्ता जल कर मर गयी। यह सुनकर उदयन शोकाकुल हो गया। उधर योग्धरायण वासवदत्ता को पद्मावती के पास धरोहर रख देता है। बाद में उदयन का पद्मावती से विवाह हो जाता है। तत्पश्चात् दोनों वत्स और मगध की सेनाओं से आशुषिण पराजित हो जाता है और अपहृत वत्सराज्य उदयन को प्राप्त हो जाता है। पुनः बड़े

नाटकीय ढंग से वासवदत्ता और योगन्धरायण प्रकट होते हैं। यह सुखान्त नाटक है।

(३) उरुभङ्ग—यह एकाङ्की नाटक है। द्रौपदी के अपमान के प्रतिकार-स्वरूप भीम द्वारा दुर्योधन के जङ्घा को तोड़ने का वर्णन है। इसी घटना के आधार पर नाटक का नाम 'उरुभङ्ग' रखा गया है। सम्पूर्ण संस्कृत-साहित्य में केवल यही अकेला दुःखान्त नाटक उपलब्ध होता है।

(४) दूतवाक्यम्—यह भी एकाङ्की नाटक है। इसमें महाभारत-युद्ध के पहले श्री कृष्ण के दौत्यकार्य का वर्णन है। सन्धि कार्य के लिए पाण्डवों की ओर से श्री कृष्ण दूत बनकर दुर्योधन के पास जाते हैं। किन्तु दुर्योधन उनकी बात नहीं मानता और वे निराश होकर लौट आते हैं।

(५) पञ्चरात्रम्—यह तीन अङ्कों का नाटक है। यज्ञ की समाप्ति पर द्रोणाचार्य ने दुर्योधन से दक्षिणा माँगी कि पाण्डवों को आधा राज्य दे दो। दुर्योधन इस शर्त पर तैयार होता है कि यदि पाण्डव पाँच रात्रि के अन्दर ही मिल जाँय तो उन्हें आधा राज्य दे दिया जाएगा। कौरवों ने विराट् की राजधानी पर गायों के लिये चढाई किया। राजकुमार उत्तर ने अज्ञात-वास में स्थित पाण्डवों की सहायता से विजय प्राप्त की। इसी समय पाण्डवों के प्रकाश में आ जाने पर द्रोणाचार्य ने आधा राज्य देने की प्रतिज्ञा का स्मरण दिलाया और दुर्योधन मान लिया।

(६) बालचरित—यह पाँच अङ्कों का नाटक है। इस नाटक में भगवान् श्री कृष्ण की बाललीलाओं का वर्णन है, इसलिए इसका नाम 'बालचरित' रखा गया है। इसमें श्री कृष्ण के जन्म लेकर कंस-वध तक की कथा समायोजित है।

(७) दूतघटोत्कच—यह एकाङ्की नाटक है। इसमें अभिमन्यु की मृत्यु के पश्चात् हिडिम्बापुत्र घटोत्कच दूत बन कर श्री कृष्ण का सन्देश कौरवों के पास ले जाता है। दुर्योधन अपमान करता है जिससे दुर्योधन और घटोत्कच में गरमा गरमी हो जाती है। धृतराष्ट्र शान्त करते हैं। घटोत्कच अभिमन्यु के वध का बदला अर्जुन द्वारा लिये जाने की धमकी देकर वापस

चत्रा जाता है। दीन्य-प्रधान होने के कारण इसका नाम 'दूतघटोत्कच' रखा गया है। कया-वस्तु कवि-कल्पना-प्रभूत है क्योंकि घटोत्कच के दौत्यकार्य का वर्णन महाभारत में उपलब्ध नहीं होता।

(८) कर्णभार—यह भी एकाङ्की नाटक है। शोणाचार्य की मृत्यु के पश्चात् कर्ण कौरवों का सेनापति बनाया जाता है अतः युद्ध का सम्पूर्ण भार कर्ण पर आ जाता है। कर्ण का यह नियम था कि दोपहर के समय वह जल में सड़ा होकर सूर्य को अर्घ्य देता था और उस समय ब्राह्मणों को उनकी उच्छानुमार दान देता था। इसी अवसर पर ब्राह्मण के रूप में उपस्थित होकर इन्द्र ने कर्ण से कवच और कुण्डल की याचना की। कर्ण महर्ष उमें दान में दे देता है।

(९) मध्यमव्यायोग—यह एकाङ्की नाटक है। इसकी रचना मध्यम-पाण्डव भीमसेन की आश्रित करके की गयी है। इसमें भीम द्वारा घटोत्कच के हाथ में एक ब्राह्मण के मध्यम पुत्र की रक्षा करना, भीम की अपने पुत्र घटोत्कच के दर्शन से अग्नन्दानुभूति तथा हिडिम्बा मिन्न का वर्णन है।

(१०) प्रतिमानाटकम्—यह मान अङ्की का नाटक है। राम के वनवास से लेकर रावणवध पर्यन्त चौदह वर्ष की कथाओं का संक्षेप में वर्णन है। राज्याभिषेक के बाद यह नाटक समाप्त हो जाता है। इक्ष्वाकुवशीय राजाओं की प्रतिमा को देखकर उनके मृत्यु का अनुमान भरत को हो जाने के कारण ही इनका 'प्रतिमा' नाम रखा गया है।

(११) अभिषेकनाटकम्—इसमें छ अङ्क हैं। इसमें किष्किन्धा-काण्ड में लेकर युद्धकाण्ड पर्यन्त कथा का वर्णन है। रावण की मृत्यु के पश्चात् राम का राज्याभिषेक भी लङ्का में ही हो जाता है। इसका विस्तृत विवरण जगें प्रस्तुत किया जाएगा।

(१२) अविमारक—छ अङ्की वाले इस नाटक में नीवीर के राजकुमार अविमारक तथा राजा कुन्तिभोज की पुत्री कुरङ्गी की प्रेमलीला का वर्णन है। नायक के नाम पर ही इस नाटक का नाम 'अविमारक' रखा गया है।

(१३) चारुदत्तम्—यह चार अङ्की का नाटक है। नायक के नाम पर ही इस नाटक का नाम 'चारुदत्त' रखा गया है। इसमें निर्धन किन्तु उदारमना

प्राह्मण चारुदत्त तथा वसन्तसेना नामक वेश्या के प्रणय-सम्बन्ध का वर्णन है। यह नाटक अपूर्ण है। सम्भवत यह भास की अन्तिम रचना है, जिसको मृत्युपर्यन्त पूरा नहीं कर सके।

नाटकचक्र के रूपको का एककसृत्व

बाह्य तथा अन्त-साक्ष्य के आधार पर यह सिद्ध होता है। कि 'नाटक-चक्र' के सभी नाटक किसी एक ही कवि की रचनाएँ हैं। जो इस प्रकार है—

१—बाह्य-साक्ष्य—नाटकचक्र के नाटको की आकृति का सूक्ष्म विश्लेषण करने पर निम्नलिखित तथ्य प्राप्त होते हैं—

(१) सभी नाटक सूत्रधार के प्रवेश में प्रारम्भ होते हैं। संस्कृत के अन्य नाटको में मङ्गलाचरण-रूप नान्दीपाठ के पश्चात् सूत्रधार का प्रवेश होता है।

(२) कर्णभार को छोड़कर सभी नाटको में प्रस्तावना के स्थान पर 'स्थापना' शब्द का प्रयोग मिलता है।

(३) इन सभी नाटको में प्ररोचना (कवि परिचय) का अभाव है।

(४) प्रतिज्ञायौगन्धरायण, स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिमानाटकम्, पञ्चरत्नम् तथा उरुभङ्गम्—इन नाटको के प्रथम श्लोक में मुद्रणालङ्कार द्वारा पात्रों के नामों की सूचना मिल जाती है।

(५) इन नाटको की समाप्ति प्रायः समान है। अधिकांश नाटको के 'भरतवाक्य' एक ही है। लगभग सभी नाटको के भरतवाक्य में 'राजसिंह प्रशास्तु न' यह अवश्य प्रयुक्त है।

(६) इन नाटको की भूमिका अन्यन्त छोटी है। उनमें यह विशेषता भी है कि प्रायः एक ही भूमिका कई नाटको में उपलब्ध होती है।

(७) कुछ पात्र भिन्न-भिन्न नाटको में एक ही नाम और कार्य के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

२—अन्त साक्ष्य—'नाटकचक्र' के नाटको का आन्तरिक सूक्ष्म-विश्लेषण करने पर निम्नलिखित तथ्य प्राप्त होते हैं।

(१) सभी नाटकों की भाषा तथा शैली प्रायः समान है। कुछ पद वाक्य तथा पाठ्य समान रूप से पाये जाते हैं। मूक्यवर की सूची के अनुसार समान-पाठ्य इत्यादि की संख्या १२७ है।

(२) इन सभी नाटकों में अपाणिनीय और आर्य शब्दों का अधिक प्रयोग हुआ है। इन शब्दों को पाणिनि व्याकरण द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सकता।

(३) इन नाटकों में अधिशासत अनुष्टुप् छन्दों का ही प्रयोग हुआ है। इनमें मुवदना, दण्डक इत्यादि अप्रचलित छन्दों का भी प्रयोग हुआ है।

(४) इन नाटकों में व्यङ्ग्य शक्ति का अभाव ही वैशिष्ट्य है। इसलिए पताका स्पानक का प्रयोग सर्वत्र मिलता है।

(५) इनमें कुछ नाटक ऐसे हैं जो पूर्णरूपेण एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। प्रतिज्ञायोगन्धरायण स्वप्नवामदत्तम् का पूर्वभाग प्रतीत होता है। प्रतिमानाटक भी अमिपेकनाटक का अङ्ग प्रतीत होता है। दोनों नाटकों में पात्रों की मिश्रता नगण्य है।

उपर्युक्त ममानताओं एवं वैशिष्ट्यों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि सभी नाटक किसी एक ही कवि की कृतियाँ हैं।

नाटकचक्र के नाटकों का भास-कर्तृत्व

'नाटकचक्र' के नाटक भास की ही रचनाएँ हैं। वह इस तथ्य से प्रमाणित हो जाता है कि बाण ने हर्षचरित में भासप्रसन्नक कुछ पद्यों का निर्माण किया है। उसमें उन्होंने यह बतलाया है कि भास ही एक ऐसे नाटककार हैं जिनके नाटकों का आरम्भ सूत्रधार के प्रवेश से होता है।

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकेर्बहुभूमिकैः ।

सपताकैर्यशो भासो देवकुलैरिव ॥

अतः नाटकचक्र के सभी नाटक का आरम्भ सूत्रधार के प्रवेश के साथ होने में वे भासकृत् सिद्ध होने हैं।

राजसेखर ने तो स्पष्ट उल्लेख किया है कि स्वप्नवासवदत्तम् नाटक

भाग के नाटकचक्रों में है और इसकी तुलना में कोई दूसरा नाटक इतना प्रभावशाली एवम् आकर्षक नहीं है—

भासनाटकचक्रेऽपि छेकं क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहको भून्न पावकः ॥

इस प्रकार सिद्ध होता है कि स्वप्नवासवदत्तम् भासकृत नाटक है तथा स्वप्नवासवदत्तम्-युक्त 'नाटकचक्र' के अन्य नाटक भी भास की रचनाएँ हैं ।

भास की नाटककला

भास संस्कृत-साहित्य के सफल नाटककार है । यद्यपि इन्होंने नाट्यशास्त्र के नियमों का अक्षरशः पालन नहीं किया है किन्तु अपनी अनूठी प्रतिभा से उन्हें रोचक बना दिया है । संस्कृत के प्रायः सभी नाटक अभिनेयता की दृष्टि से अनुपयुक्त प्रतीत होते हैं किन्तु भास के सभी नाटक अभिनय की दृष्टि से सफल हैं । भास ने ही सर्व-प्रथम एकाङ्की नाटकों का प्रणयन किया । भास के नाटकों में विषय वस्तु की गह्वटना, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, रसयोजना तथा भाषा-शैली इतनी हृदयग्राही, आकर्षक, उपयुक्त तथा समीचीन है कि उनकी नाट्य-रचनाओं को सहृदय के हृदय का भाजन बना देती है ।

इस प्रकार भास के नाटकों की कथावस्तु कतिपय सार्वक घटनाओं द्वारा उद्घाटित एवं विकसित की गयी है । उसमें कहीं भी अस्वाभाविकता प्रतीत नहीं होती । भास परोक्ष की घटनाओं को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं, मानो प्रेक्षक उनका साक्षात् दर्शन कर रहा हो । जैसे—प्रतिज्ञायौगन्धरायण में उदयन और वासवदत्ता रङ्गमञ्च पर कभी नहीं आते, किन्तु दर्शक उनकी उपस्थिति का निरन्तर आभास करते हैं । भास के नाटकों में अप्रत्यासित घटनाओं का भी बड़े स्वाभाविक ढंग से चित्रण हुआ है ।

भास ने पात्रों का चरित्रचित्रण भी अत्यधिक निपुणता से किया है । पात्रों को इन्होंने वास्तविकता, मनोवैज्ञानिकता एवं मार्मिकता के साथ चित्रित करके सर्वथा नवीन एवं प्रभावोत्पादक बना दिया है । इनके नाटकों के पात्र

जीवन की गहनतम व्यावहारिक अनुभूतियों एवं हृदय की संवेदनाओं को प्रकट करने में पूर्ण समर्थ है। स्वप्नवासवदत्तम् का उदयन यदि प्रेम के लिए अत्यधिक समर्पित है तो वासवदत्ता उसी प्रेम के उत्कृष्ट त्याग की माक्षा मूर्ति है। पद्मावती एक आदर्श की प्रतिमा है तो योगन्धरायण कर्त्तव्यनिष्ठता की मूर्ति है। विदूषक तो गम्भीर से गम्भीर व्यक्ति को हास्यरस में सराबोर कर देते हैं। इस प्रकार भास के सभी पात्र उनकी उत्कृष्ट निपुणता से सजे-सँवरे हैं।

भास के नाटकों में कथोपकथन अत्यधिक नया तुला है। कोई भी पात्र व्यर्थ का वाग्विस्तार नहीं करता और न ही कल्पना का रंग चढाता है। पात्रों का कथोपकथन अत्यधिक संक्षिप्त एवं जीवन्त है। उनका एक-एक वाक्य उनके हृदय के स्तरो को उभाटता हुआ दर्शकों के सामने रख देता है।

भास की भाषा में स्वाभाविकता की अधिकता है जिसमें अनुमान होता है कि उनके समय में मस्त्रुत आम बोल चाल की भाषा थी। वाक्य छोटे छोटे, पद प्रायः समान-रहित हैं। सरलता से समझ में आ जाते हैं। कवि ने स्वाभाविक अलंकारों का ही प्रयोग किया है, जानबूझ कर उनको धोपा नहीं है। वास्तव में भास मूत्र-शाठ के व्यक्ति थे। अति संक्षेप में अपनी बातों को कहना उस समय की परम्परा थी। भास उस परम्परा से अछूते नहीं थे।

भास की शैली ओज, प्रसाद और माधुर्य गुणों से ओतप्रोत है। विवट-बन्ध, त्रिल्लुट-कल्पना, तथा समान भूयत्व का उनमें अभाव है। पदों का विन्यास स्वाभाविक है तथा भावसौष्ठव एवं प्रवाह की प्रचुरता है। भास रस के अनुकूल शैली में भी परिवर्तन कर देते हैं। उन्होंने उपमा, रूपक इत्यादि मग्न एवं प्रचलित अलंकारों का ही अधिकतर प्रयोग किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भास की नाट्यकला उत्कृष्ट है। जिसके कारण उनके नाटक प्रेक्षकों के अन्तःकरण में सरलता से धर कर जाते हैं।

भास का प्रकृति-चित्रण

भास एक नाटककार हैं, काव्यकार नहीं। अतएव उनका प्रकृति-चित्रण कथावस्तु को गतिशील बनाने वाला और संक्षिप्त है। भास प्रकृति का नैसर्गिक

वर्णन करके उसका हृदयग्राही रूप उपस्थित करते हैं। इनका प्रकृति चित्रण आलम्बन-रूप से ही अधिक हुआ है, उद्दीपन-रूप में बहुत कम। भास के चित्र अत्यधिक स्वाभाविक और बिम्बग्राही होते हैं। जैसे भास का सन्ध्या-कालीन सूर्य का वर्णन दर्शनीय है—

अस्तद्रिमस्तकगत प्रतिसहृतांशु
सन्ध्यानुरज्जितवपु प्रतिभाति सूर्य ।
रवतोज्वलाशुकवृते द्विरदस्य कुम्भे
जाम्बूनदेन रचित पुलको यथैव ॥

(अभिषेक ४।२३)

अर्थात् अस्ताचल के शिखर पर स्थित, किरणों को समेटे हुए, सन्ध्या द्वारा लाल बनाए गये भगवान् सूर्य उसी प्रकार मुगोर्भित हो रहे हैं जैसे हाथी के लाल चमकीले रेशमी कपड़े से ढके मस्तक भाग पर सोने का बना गोलाकार आभूषण शोभायमान हो।

सायंकाल का कैसा स्वाभाविक चित्र खींचा है भास ने—

खगावासोपेता सलिलमवगाढो मुनिजन
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवन्तम् ।
परिभ्रष्टो दूराद् रविरपि च सक्षिप्तकिरण
रथ व्यावर्त्यासी प्रविशति जनैरस्तशिखरम् ॥

(स्वप्नवासव १।१६)

अर्थात् चिड़ियाँ अपने-अपने घोंसलों में चली गयी, मुनिलोग स्नान करने लगे, आग जल गयी (जल) तपोवन में धूआँ फैल गया और बहुत ऊँचे से गिरे हुए सूर्य भी किरणों को समेट कर तथा रथ को छोटा करके धीरे-धीरे अस्ताचल को जा रहे हैं।

सूर्यास्त के बाद चन्द्रोदय का कितना बिम्बग्राही वर्णन भास ने किया है—

उदयति हि शशाङ्क क्लिन्नखर्जूरपाण्डु
युवतिजनसहायो राजमार्गप्रदीप ।

तिमिरनिचयमध्ये रमयो यस्य गौराः
दृत्तजल इव पङ्के क्षीरधारा पतन्ति ॥

(चारुदत्त १।२९)

मरम खजूर के समान पीले वर्ण वाला, युवतियों का सहायक, राजमार्गों का दीपक चन्द्रमा उदित हो रहा है अन्धकार की रागि के मध्य में उसकी श्वेत किरणें उमी प्रकार पड़ रही हैं जैसे सूखे जलवाले कीचट में दूध की धारा हो ।

ममूद्र का कितना स्वाभाविक वर्णन है—

क्वचिदफेनोद्गारी क्वचिदपि च मीनाकुलजल
क्वचिच्छह्वाकीर्णं क्वचिदपि च नीलाम्बुदनिभ ।
क्वचिद् वीचीमालः क्वचिदपि च नक्रप्रतिमप
क्वचिद्भीमावर्तं क्वचिदपि च निष्कम्पसलिल ॥

(अभियेक ४।१७)

यह ममूद्र वहीं फेनो को उगलता हुआ, वहीं मछलियों से व्याप्त जल वाला, वहीं बिखरे शह्वो वाला, कहीं काले बादल के समान श्याम वर्ण वाला वहीं तरंगों के ममूह में युक्त, कहीं नक्रों के कारण भयान्क, कहीं भयङ्कर भँवरों वाला और शान्त जल वाला बना हुआ है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भाम सक्षिप्त तथा स्वाभाविक प्रकृति-चित्रण में निष्ठहस्त है ।

अभियेक का सक्षिप्त कथानक

प्रथम अङ्क—प्रथम अङ्क की स्थापना से ज्ञात होता है कि बालि मुग्रीव की पत्नी को बलात् लेकर मुग्रीव को निकाल दिया है । सीता-हरण के पश्चात् सीता को खोजते हुए राम और लक्ष्मण से मुग्रीव की भेंट हो गयी है । राम और मुग्रीव दोनों परस्पर सहयोग के लिये वचनबद्ध हो गये हैं । बाली को मारने की तैयारी हो गयी है ॥ स्थापना समाप्त ॥

उसे लोगो के समक्ष नाटक के रूप में प्रस्तुत किया है। इस परिवर्तन के कारण मूलकथा में थोड़ी नवीनता आ गयी है जिससे दर्शको की उत्सुकता अन्त तक बनी रहती है। कवि द्वारा परिवर्तित स्थल द्रष्टव्य हैं—

(१) रामायणीय कथा में बालि तथा सुग्रीव का स्वरूप एक जैसा होने से राम बालि को पहचान नहीं पाते। अतः सन्देह होने के कारण बालि को मार नहीं पाते। सुग्रीव युद्ध में परास्त होकर भाग जाता है। पुनः गजपुष्पी-लता को गले में धारण करके जाता है तथा इस वार बालि और सुग्रीव को पहचान कर राम बालि का वध करते हैं किन्तु अभिपेक में पहली वार के युद्ध में ही सुग्रीव बालि से मार खाकर गिर जाता है तथा हनुमान् द्वारा प्रतिज्ञा का याद दिलाये जाने पर राम बालि का वध कर देते हैं।

(२) रामायणीय कथा में हनुमान् सीता को विश्वास दिलाने के लिए राम की अङ्गुली ले जाते हैं तथा वापस होते समय राम के विश्वास के लिए सीता की चूडामणि को ले जाते हैं। भात ने इस घटना का परित्याग करके नयापन लाया है। अभिपेकनाटक की सीता बिना किसी चिह्न के ही वात-चीत के चलते हनुमान् और उनकी बातों की विश्वसनीयता की परीक्षा कर लेती है। इसी प्रकार बिना किसी चिह्न के प्रमाण के ही राम भी हनुमान् की बातों पर विश्वास कर लेते हैं।

(३) समुद्र पार करने के लिये रामायणीय कथा में नल और नील द्वारा पुल बनवाया जाता है किन्तु अभिपेकनाटक में स्वयं वरुण राम के सम्मुख उपस्थित होते हैं। पुनः उनकी कृपा से समुद्र का जल दो भागों में बँट जाता है तथा बीच का जल स्थिर हो जाता है जिससे सेना पार चली जाती है।

(४) रामायणीय कथा में मेघनाथ का लक्ष्मण से युद्ध होता है। लक्ष्मण मूर्च्छित हो जाते हैं। सञ्जीवनी बूटी द्वारा जिलाये जाते हैं। पुनः दोनों में युद्ध होता है तथा लक्ष्मण द्वारा मेघनाथ मारा जाता है किन्तु भात ने राम द्वारा ही मेघनाथ का वध दिखलाया है।

(५) रामायणीय कथा में रावण वध के बाद जब राम अयोध्या पहुँचते हैं तब वहाँ उनका राज्याभिषेक होता है किन्तु अभिपेकनाटक में लका में

ह्रीं अग्निदेव दगरध तथा देवों की उपस्थिति में उनका राज्याभिषेक कर देते हैं। मंत्रों की वान तो यह है कि उत्त अदमर पर इन्द्र के आदेश में भरत तथा शत्रुघ्न-सहित सम्पूर्ण अयोध्या के प्रजागण लका में पहुँच जाते हैं।

नाटक का नामकरण—अभिषेक घटना प्रधान नाटक है। घटनाओं के आधार पर ही नाटक का नामकरण हुआ है। इस नाटक में तीन बार राज्याभिषेक हुआ है (१) वाल्मीकि के वध के बाद किष्किन्ध्या के राज्य पर शूरीक का अभिषेक (२) रावण द्वारा निर्वाचित तथा राम की गरण में आये हुए विभीषण का लङ्का के राज्य पर अभिषेक तथा (३) रावण-वध के पश्चात् लङ्का में ही समस्त अयोध्यावासियों की उपस्थिति में अयोध्या के राज्य पर राम का अभिषेक। इन्हीं अभिषेक की घटनाओं के आधार पर इसका 'अभिषेक' नाम उपयुक्त है। इसमें प्रमुख राज्याभिषेक था—अयोध्या राज्य पर राम का। प्रमुखतः राम का राज्याभिषेक ही इस नाटक के नाम का प्रमुख आधार है।

पात्रों का चरित्र चित्रण

राम

नाट्यशास्त्रीय लक्षणों के अनुसार राम इस नाटक के धीरोदात्त नायक हैं। वे स्वभाव से अत्यन्त गम्भीर हैं। रावण के वध के पश्चात् उनसे मिलने के लिए जब सीता जाती हैं तो रावण के घर रहने के कारण उसे अपने पवित्र इक्ष्वाकुवश का कलक कहकर रोक देते हैं। सीता के अग्नि में प्रविष्ट होने के बाद जब अग्निदेव सीता की पवित्रता का प्रमाण देते हैं तब उसे स्वीकार करते हैं। यद्यपि वे जानते हैं कि सीता पवित्र है फिर भी उनकी पवित्रता के विषय में लोगों को विश्वास दिलाने के लिए ऐसा करते हैं।

जानताऽपि च वंदेह्या मुचितां धूमकेतन !

प्रत्यार्थं हि लोकानामेवमेव मया कृतम् ॥ (६। २९)

इस नाटक में राम को अवतारी एक वीर पुरुष के रूप में चित्रित किया गया है। लोकमर्त्यादा एवं धर्म की रक्षा ही उनका परम उद्देश्य है। वाल्मीकि से

राम की व्यक्तिपत्त कोई शत्रुता नहीं थी। उसने अपने छोटे भाई सुग्रीव को राज्य से बाहर निकाल दिया था। इतना ही नहीं बाल्मि ने सुग्रीव की पत्नी के साथ अभियमन किया था, जो अनुचित था।

भवता वानरेन्द्रेण धर्माधर्मौ विजानता ।

आत्मानं मृगमुद्दिश्य भ्रातृदाराभिमर्शनम् ॥ (११२०)

राम शरणागत वत्सल है। शरण में आये हुए शत्रुपक्ष के व्यक्ति को भी स्वामत-सहित अपना कर उसकी रक्षा करते हैं। शरणागत की सहायता एवं उसकी रक्षा ही धर्म है। जब रावण द्वारा परित्यक्त तथा अपमानित विभीषण राम की शरण में आता है तो वे उसे सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं तथा उसे लकाधिराज बना देते हैं—अद्यप्रभृति मद्रचनाल्लकेश्वरो भव' ।

रावण द्वारा भेजे गये दो गुप्तचर शुक और सारण राम की सेना में पकड़े जाते हैं। विभीषण उन दोनों को रावण का अभिन्न गुप्तचर कहकर यथोचित दण्ड देने के लिए जाग्रह करता है किन्तु राम उनके साथ वीरोचित व्यवहार करते हैं—उन दोनों को छोड़ देते हैं—

अनयो. शासनादेव न मे वृद्धिर्भविष्यति ।

क्षयो वा राक्षसेन्द्रस्य तस्मादेतौ विमोक्षय ॥ (४१२१)

इस नाटक में राम को विष्णु का अवतार बतलाया गया है। स्वयं जगत् के कारण-रूप चक्र, शाङ्ग तथा गदाधारी विष्णु मनुष्य का रूप ग्रहण करके लोक मङ्गल के लिए पृथ्वी पर अवतरित हुए हैं—

मानुष रूपमास्थाय चक्रशाङ्गं गदाधरः ।

स्वयं कारणभूतः सन् कार्यार्थी समुपागत ॥ (४११४)

सीता

सीता इस नाटक की स्वीया नायिका है। वह आदर्श भारतीय नारी है। भारतीय स्त्रियों का सबसे बड़ा धर्म है—पातिव्रत-धर्म। वह उनमें कूट-कूट कर भरती है। इस समय वह पति के विरह-वेदना से मग्न है। राक्षस-राज रावण उसे हरण करके अपनी राजधानी लका में ले गया है। वह उसे उरा-धमकर

कर तथा समझा बुझा कर उनमें प्रणय-याचना करता है। किन्तु वह अपने पतिभक्त-धर्म पर अटिग रहता है। और उसे शाप देने के लिए तत्पर हो जाती है—“शप्नोऽमि”। सीता के इस शाप से त्रिभुवन-विजेता रावण घबड़ा जाता है—

देवा सेन्द्रादयो भग्ना दानवाश्च मया रणे ।

मोह मोह गतोऽस्म्यद्य सीतायास्त्रिभिरक्षरैः ॥ (२१९८)

सीता का अपने पति राम के प्रति मन्त्रा अनुराग है। पति के सुख दुःख को अपना सुख दुःख समझती है। जब हनुमान् सीता से राम का समाचार सुनते हैं कि राम आप के वियोग में त्रवन्दा मन्त्रा रहते हैं तो वह दुःखी हो जाती है। वह नहीं चाहती कि राम को किसी प्रकार का कष्ट हो। इसी लिए वे हनुमान् से कहती है कि आप मेरी इस कष्ट की दशा को आर्यपुत्र से ऐसे टग से कहना जिससे वे शोकाभिभूत न हो जाय।

भद्र ! एता मेज्वस्या श्रुन्वायंपुत्रो यथा शोकपरवशी न भवति तथा मे वृत्तान्त भण ।

वह बिरह में अत्यधिक मन्त्रा है। इस समय इसकी अवस्था घूप में फेंकी हुई माला के समान हो गयी है—

अमितभुजकरया धारयन्त्रेववेणो करपरिमितमध्या कान्तसमक्तचिता ।
अनशनकृगदेहा वाष्पममित्तत्रना सरमिजमालेवातपे विप्रविद्धा ॥

(२१८)

उसके लिए पति भक्ति के समस्त सब कुछ तुच्छ है। रावण उन्हें प्रणय के बन्ध अपनी शिशा-शक्ति, धन-मन्त्रि तथा राजवत्समी तक देने को तैयार है किन्तु वह उनको न्याग देती है। रावण के द्वारा यह धमकी दिये जाने पर कि आज मेरे शपथ द्वारा दोनों—राम तथा लक्ष्मण को घराघायी कर दिया जाएगा। वे इस पर विश्वास नहीं मानती। क्योंकि वे राम के पराक्रम से अत्यधिक प्रभावित हैं। अतः रावण की मूर्ख कहती हुई इस कार्य को वह हाथ में मन्दराक्षत उठाना बताती है—

हं मूढः खल्वसि रावणकः यो मन्दरं हस्तेन तुलयितुकामः ।

रावण की माया द्वारा कटे हुए राम तथा लक्ष्मण के सिर को देखकर वह मूर्च्छित हो जाती है तथा रावण से अपने सिर को भी उसी तलवार में अलग करने के लिए प्रार्थना करती है—

भद्र ! येनासिनार्यपुत्रस्यासदृशं कृत तेन मामपि मारय ।

रावण के मार दिये जाने पर वह बड़ी उत्सुकता तथा अभिलाषा के साथ राम से मिलने जाती है किन्तु राम द्वारा रावण के घर में निवास करने के कारण कुलकङ्घिनी कह कर रोक दी जाती हैं। उसे अग्नि में प्रवेश करना पड़ता है। अग्निदेव साथ आकर उसकी पवित्रता का साक्ष्य देते हैं—

इमां गृह्णीष्व राजेन्द्र ! सर्वलोकनमस्कृताम् ।

अपापामक्षता शुद्धा जानकीं पुरुषोत्तम ! ॥ (६१२८)

और वे भी क्यों न। जगत्पावनी जानकी तो भगवती लक्ष्मी हैं। भगवती लक्ष्मी की अवतार-भूता जानकी में अविव्रता कहाँ से प्रवेश करती। जो संसार को पवित्र करने वाली है उनकी पवित्रता के विषय में यह सन्देह? इसी लिए अग्निदेव ने उनकी पवित्रता को प्रमाणित किया।

इमा भगवती लक्ष्मीं जानीहि जनकात्मजाम् ।

सा भवन्तमनुप्राप्ता मानुषी तनुमास्थिता ॥ (६१२८)

हनुमान्

हनुमान् अतुलित बलशाली, महापराक्रमी तथा सच्ची निष्ठा से युक्त बानर है वे सुग्रीव के मन्त्री हैं। विपत्ति में सर्वदा अपने स्वामी का साथ देते हैं। मैत्री हो जाने पर जब राम के द्वारा उत्साहित सुग्रीव बालि से लड़ने जाता है तब बालि के द्वारा आहत कर दिया जाता है। सुग्रीव की ऐसी दशा देखकर हनुमान् अत्यधिक दुःखी होते हैं और बालि को शीघ्र मारने के लिए राम को उनकी प्रतिज्ञा की याद दिलाते हैं—

बलवान् वानरेन्द्रस्तु दुर्वलस्तु पतिमम ।

अवस्था शपथश्चैव सर्वमार्येण चिन्त्यताम् ॥ (१११५)

सीता के अन्वेषण में हनुमान् का प्रमुख हाथ होता है। समुद्र पार लङ्का में प्रवेश करना बड़े साहस और पराक्रम का कार्य है। मत्पाति द्वारा सीता का वृत्तान्त सुनकर हनुमान् अपने बल से समुद्र को लांघ कर लङ्का पहुँच जाते हैं—

लब्ध्वा वृत्तान्त रामपत्न्या खगेन्द्रात् आरुह्यागेन्द्र सद्विपेन्द्र महेन्द्रम् ।
लङ्कामभ्येतुं वायुपुत्रेण शीघ्र वीर्यप्रावत्याल्लङ्घित सागरोऽथ ॥
(२।१)

लङ्का के सभी स्थल म दूढ़ते हुए वे त्रीडोद्यान में पहुँचते हैं। वहाँ अशोक वृक्ष के कोटर में बैठकर सभी वृत्तान्त को समझते हैं। रावण के अभिमान को देख कर उनका क्रोध बढ जाता है किन्तु वे सन्तुलित रहते हैं। वे सोचते है कि यदि मैं रावण को मार देता हूँ तब तो कार्य पूरा हो जाएगा किन्तु यदि मुझे रावण ने मार दिया तो राम का सारा का चीपट हो जाएगा—

यद्यह रावण हन्मि कार्यसिद्धिर्भविष्यति ।

यदि मा प्रहरेद् रक्षो महत् कार्यं विपद्यते ॥ (२।१६)

हनुमान् महान् निर्भीक हैं। जिस रावण से देवता तक कापते हैं। उसे वे लका में अपन आगमन की सूचना दिये बिना नहीं लौटना चाहते। जब रावण को हनुमान् द्वारा अशोक वाटिका उजाड़ दिये जाने का समाचार मिलता है तब वह अपनी सेना सहित अक्षयकुमार को भेजता है। हनुमान् सेना-सहित अक्षयकुमार को मार डालत हैं।

ब्रोघात् मरुत्तनेन त्वरिततरह्य स्यन्दन बाहयन्त

प्रावृक्षालाभ्रकल्प परमलघुतर वाणजालान् वमन्तम् ।

तान् वाणान् निर्विघ्नन्वन् कपिरपि सहसा तद्रथ लङ्घयित्वा

कण्ठे सङ्गृह्य धृष्ट मुदिततरमुखो मुष्टिना निर्जघान ॥ (३।७)

तदन्तर मेघनाथ के पहुँचने पर उसे मारने में मक्षम होने हुए भी उसे मारने नहीं। उनका उद्देश्य तो रावण के सम्मुख उपस्थित होना था, अत मेघनाथ के पास में बँध जाते हैं।

वह पक्का राजनीतिज्ञ भी है। हनुमान् को मारने का निर्देश देते देते झ जाता है। दूत-वध लोकापवाद का विषय है—'दूतवध. मत्तु वचनीय' मेघनाथ का वध सुनकर सभी अग्निष्ठी की जड़ सीता को ही मारना चाहता है किन्तु स्त्रीवध निन्दनीय सुनकर उनका वध नहीं करता।

वह दूढ़-निरश्चय वाला व्यक्ति है। उसे राम से युद्ध करके उग्रे पराजित करना है। जब वह पराक्रम-शाली कुवेर से राज्यलक्ष्मी को छीन सकता है तो मनुष्यरूप राम को क्या समझता। अपनी जाती हुई राज्यलक्ष्मी को उर्ध्व-भारकर रोक लेने का दावा करता है।

बलादेव गृहीतासि तदा वैश्रवणालये ।

बलादेव ग्रहीष्ये त्वा हत्वा राघवमाह्वे ॥ (५१५)

बालि

बालि किष्किन्धा का राजा तथा सुग्रीव का बड़ा भाई है। वह महा-ज्वलशाली है। उसे अपने बल पर बहुत बड़ा गर्व है। अतः सुग्रीव की गर्जना सुनकर वह आग-बबूला हो जाता है। पत्नी के द्वारा रोके जाने पर भी वह अपने बल की सराहना करते हुए उससे युद्ध करने जाने के लिए तैयार हो जाता है।

तारे । मया खलु पुरामृतमन्यनेऽपि

गत्वा प्रहस्य सुरदानवदैत्यसङ्घान् ।

उत्फुल्लनेत्रमुरगेन्द्रमुद्रग्ररूप—

माकृष्यमाणमवलोक्य मुबिस्मितास्ते ॥ (५१५१)

वह अपने बल के सामने इन्द्र, शङ्कर, विष्णु को भी कुछ नहीं जोड़ता। इस लिए सुग्रीव से कहता है कि अब तुम बच नहीं सकते।

इन्द्रो वा शरणं तेऽस्तु प्रभुर्वा मधुसूदनः ।

मच्चक्षुष्यथमासाद्य सजीवो नैव यास्याति ॥ (५१५२)

सुग्रीव ने ताकत कहाँ जो बालि का सामना कर सके। वह तो राम के द्वारा उसे मारने जाने का वादा किये जाने पर उस (बालि) पर आक्रमण

करता है। राम उसे मारते तो अवश्य हैं किन्तु छिपकर। वे भी उसे सामने से मारने में असमर्थ हैं। राम के इस कृत्य को निन्दनीय मानता है।

भवता सौम्यरूपेण यदासौ भाजनेन च ।

छलेन मा प्रहरता प्ररुद्धमयशः कृतम् ॥ (१।१८)

फिर भी चालि समझदार व्यक्ति है। वह अपने छोटे भाई की पत्नी के साथ अभिगमन किया है, जो अनुचित है। राम द्वारा यह तर्क दिये जाने वह अपने वध को न्याय-सगत मान लेता है।

‘अनुत्तरा वयम्’ ।

मरते समय वह सुग्रीव से क्षमा माँगता है तथा अपने पुत्र अङ्गद की सुरक्षा का भार सुग्रीव को सौंप देता है।

मया कृतं दोषमपास्य बुद्ध्या

त्वया हरीणामधिपेन सम्यक् ।

विमुच्य रोष परिगृह्य धर्मं

कुलप्रवाला परिगृह्यता न ॥ (१।२६)

—जमुना पाठक

पात्र-परिचय

पुरुष—

१. राम—दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र ।
२. लक्ष्मण—राम का छोटा भाई ।
३. बालि—सुग्रीव का बड़ा भाई और किष्किन्धा का राजा ।
४. सुग्रीव—बालि का छोटा भाई ।
५. अङ्गद—बालि का पुत्र ।
६. हनुमान्—सुग्रीव का मंत्री ।
७. नील—एक वानर-अधिकारी ।
८. बलाध्यक्ष—वानर-सेनापति ।
९. विलमुख—एक वानर योद्धा ।
१०. ककुभ—एक वानर-अधिकारी ।
११. वानर-काञ्चुकीय—सुग्रीव का कञ्चुकी ।
१२. रावण—लङ्का का राजा ।
१३. विभीषण—रावण का छोटा भाई ।
१४. विद्युज्जिह्व—एक राक्षस ।
१५. शंकुकर्ण—रावण का एक सेवक ।
१६. शुक, सारण—रावण के मंत्री ।
१७. राक्षस-काञ्चुकीय—रावण का कञ्चुकी ।
१८. तीन विद्याधर ।
१९. अग्निदेव ।
२०. वरुणदेव ।

स्त्रियाँ—

१. सीता—रामपत्नी ।
 २. तारा—बालि-पत्नी ।
 ३. राक्षसियाँ ।
 ४. विजया—रावण की प्रतिहारी ।
-

मासनाटकचक्र

अभिषेकनाटकम्

'शशिप्रभा' संस्कृत-हिन्दीव्याख्यांवेतम्

प्रथमोऽङ्कः

(आन्ध्रवेत्तन भविशति सूत्रधारः) ।

सूत्रधारः—

यो गाधिपुत्रमखविघ्नकराभिहन्ता

युद्धे विराधखरद्रूपणवीर्यहन्ता ।

दपौद्धतोल्बणकबन्धकपीन्द्रहन्ता

प्रायात् स धो निशिचरेन्द्रकुलाभिहन्ता ॥ १ ॥

* शशिप्रभा *

अन्वय — य गाधिपुत्रमखविघ्नकराभिहन्ता, युद्धे विराधखरद्रूपणवीर्यहन्ता, दपौद्धतोल्बणकबन्धकपीन्द्रहन्ता, निशिचरेन्द्रकुलाभिहन्ता (अस्ति) सः प्रायात् ।

(नान्दो के पदचात् सूत्रधार प्रवेश करता है ।)

सूत्रधार—जो गाधि के पुत्र (विश्रामित्र) के यज्ञ में विघ्न करने वाले (राक्षसों) का वध करने वाला है, युद्ध में विराध, खर, रूपण (आदि राक्षसों) के पराक्रम का अन्त करने वाला है, अत्यधिक गर्वशाली तथा उग्र बन्ध और कपीश (बाली) को मारने वाला है, तथा राक्षसेन्द्र (रावण) के वश का सहार करने वाला है—वह भगवान् (राम) आप लोगों की रक्षा करें ।

एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि, (परिक्रम्यावलोक्य) अये किन्तु सरु
मयि विज्ञापनव्यप्रे वन्कि इदं श्रूयते । (अङ्ग, पश्योमि,)
(नेपथ्ये)

सुप्रोव ! इत इतः । (प्रविश्य)

पारिपाश्विक—भाव ।

यो गाधिपुत्रेति—य = भगवान्, गाधिपुत्रमखविघ्नकराभिहन्ता =
गाधे चन्द्रवशीयस्य सत्रियविशेषस्य पुत्र. सुत विद्वामिष इत्यर्थं तस्य मत्से
यज्ञे विघ्नकराणां विघ्नविघ्नयकामा अभिहन्ता वधकर्ता, युद्धे = रणे, विराघ-
खरदूषणवीर्यहन्ता = विराघश्च खरश्च दूषणश्च इति विराघखरदूषणा तेषां
वीर्यस्य पराक्रमस्य हन्ता विनाशक, द्रुपदितोल्बणकबन्धकपीन्द्रहन्ता =
द्रुपेण अभिमानेन हन्ता उर्दूगुणो च उन्वणो बन्ध्यासिनी च कबन्ध
राससविशेष कपी च बाली च तयो हन्ता वधकर्ता, निशिच-
रेन्द्रकुलाभिहन्ता = निशिचरुणा राससिना इन्द्र स्वामी तस्य कुलस्य वशस्य
अभिहन्ता ध्वंसक, अस्तीति शेष, स = भगवान् राम, व = युष्मान्,
पायात् = रथात् । अन्त्यानुप्रास अलङ्कार । वसन्ततिलकाछन्द ।

एवमिति—एवम् = अनेन प्रकारेण, आर्यमिश्रान् = पूजनीयान्, विज्ञाप-
यामि = निवेदयामि, परिक्रम्य = परिभ्रम्य, अवलोक्य = दृष्ट्वा, विज्ञापन
व्यप्रे = निवेदनव्यासक्तं, श्रूयते = आकर्ष्यते ।

आप आदरणीय सज्जनो (दर्शको) को मैं यह सूचित करता हूँ । (पुन
कर और देखकर) जरे । जरे द्वारा विज्ञापित करने मे व्यस्त होने पर यह
कैसा क्षब्द सुनायी दे रहा है । अच्छा, देखता हूँ ।

[नेपथ्ये से]

हे सुप्रोव ! इधर से, इधर से आइये ।
(प्रवेश करके)

पारिपाश्विक—हे महाशय !

कुतो नु सन्वेप ममुष्पितो ध्वनि प्रवतते श्रोत्रविदारणो महान् ।
 प्रचण्डवातोद्घृतभीमगामिना बलाहकानामिव मेजभिगर्जनाम् ॥२॥

सूत्रधार—मार्य ! कि नावगच्छसि । एव सन्तु मीनापहरणजनित-
 मन्तापस्य रघुकुलप्रदीपस्य सर्वलोकप्रियताभिगमस्य रामस्य च, शारा-
 भिनगननिविषयोऽनृतस्य सर्वहर्षभराजस्य सुविदुर्महाश्रीवस्य
 मूर्धावस्य च परम्परोपकारकृतप्रतिज्ञयोः सर्वद्वानगधिपति हेमनालिनं
 वालिन हन्तु समुद्योग प्रवर्तते । तत्र एतौ हि—

अन्वय — प्रचण्डवातोद्घृतभीमगामिना मे अभिगच्छता बलाहकानाम् इव
 श्रोत्रविदारण एव महान् ध्वनि कुतो नु सन्तु ममुष्पित प्रवर्तते ।

कुतो इति—प्रचण्डवातोद्घृतभीमगामिना = प्रचण्ड प्रकरणेन घण्टा-
 मीरणाः य वाता वायव तौ उद्घृता उत्थापिता भीम भीषण यथा स्यात्
 तद्वत् गामिना चलितानाम्, मे = आकाशे, अभिगर्जता = अभितः शरित
 गर्जना ध्वनि कुर्वताम्, बलाहकानामिव = मेघानामिव, श्रोत्रविदारण =
 श्रोत्ररो-कर्णयो विदारण भेदक, एव = अयम्, महान् ध्वनि = विपुल
 शब्द, कुतो = कस्मात्स्यात्, नु = इति पृच्छायाम्, सन्तु = निश्चयेन,
 ममुष्पित = त्वत्पुत्र, प्रवर्तते = प्रसरति । उपमालङ्कार । वगम्यछन्द ।

मार्येति—मार्य = हे मारिय, अवगच्छसि = जानासि, मीनापहरणजनित-
 मन्तापस्य = मीनाया नाशकया अपहरणेन अपनुपनेन जनित उन्नादित
 मन्ताप दुःख यस्य तस्य, रघुकुलप्रदीपस्य = रघूणा रघुवर्गीयाना रूपाणा

कानों का फाटना हुआ—यह महान् शब्द कहीं से आ रहा है, माना
 यह प्रबल बाँधों से प्रेरित होकर आराम में दौड़ने वाले मेघों का गर्जन है ।

सूत्रधार—अर ! क्या नहीं जानते हो ।— यह मीनाहरण से पीड़ित-
 सुवस के दीपक सर्वलोकप्रिय राम एव पत्नीहरणपूर्वक निष्कासित
 सम्पूर्ण वानर एक श्रेणी के स्वामी उन्नत शीवा वाले सुधीर की परम्पर
 उपकार करने की प्रतिज्ञा (हुई है, उस प्रतिज्ञा) के अनुसार सम्पूर्ण वानरों
 के स्वामी स्वर्गमालागरी वाली को मारने के लिए उभय हो रहा है ।
 शमीनिए यह—

इदानीं राज्यविभ्रष्टं सुग्रीवं रामलक्ष्मणौ ।
 पुनः स्थापयितुं प्राप्ताविन्द्रं हरिहराविवं ॥ ३ ॥
 (निष्क्रान्तौ)

यत्कुलं च तस्य प्रदीपस्य, — सर्वलोकनेयनाभिरामस्य = सर्वे, च, ते, लोका
 जना तथा नयनाना नैत्राणाम्, अभिराम - रमणीय, रामस्य = राघवस्य,
 दाराभिमर्षणनिविषयीकृतस्य = दाराणां, — स्त्रियां अभिमर्षणम्, आषर्षणम्
 अभिगमनमित्यर्थं — तेन निविषयीकृतस्य बहिष्कृतस्य, सर्वहर्ष्यक्षराजस्य = सर्व
 च ते हरय वानरा ऋक्षाश्च भङ्गुकाश्च तेषां राजा अधिप तस्य, सुविपुल
 महाग्रीवस्य = सुमुष्टु विपुला विस्तृता महती विशाला च ग्रीवा गल यस्य
 तस्य, सुग्रीवस्य = एतन्नामकस्य कैपिराजस्य परस्पररोपकारकृतप्रतिज्ञयो =
 परस्पर अयोज्य य उपकार हितकार्यं तस्मिन् कृता विहिता प्रतिज्ञा
 दृढसङ्कल्प याभ्या तयो, सर्ववानराधिपति = सर्वे सकला ये वानरा
 कपय तेषाम् अधिपति ईसम्, हेममालिने = हेमन् सुवर्णस्य माला हार यस्य
 तम्, बालिन = बालीनामकं राक्षसम्, हन्तु = मारितुम् समुद्योग = समुपायं,
 प्रवर्तते = क्रियते ।

अन्वय — इदानीं हरिहरौ राज्यविभ्रष्टम् इन्द्रम् इव रामलक्ष्मणौ राज्य-
 विभ्रष्टं सुग्रीवं (पुन) राज्यं स्थापयितुं प्राप्ता (स्त) ।

इदानीमिति — इदानीम् = अधुना, हरिहरौ = हरि विष्णु हर च
 षड्भार च, राज्यविभ्रष्ट = राज्यात् राज्याधिकारात् विभ्रष्ट विच्युतम्,
 इन्द्रमिव = पुरन्दरमिव, रामलक्ष्मणौ = राम रामचन्द्र लक्ष्मणे च सौमित्रि
 च द्वौ, सुग्रीवं = एतन्नामकं वानरराजम्, पुन = मुहु, स्थापयितुम् = आरो
 पयितुम्, प्राप्ते = आगतौ उपमालङ्कार । अनुष्टुप् छन्द ।

— इस समय राज्यच्युत सुग्रीव को पुनः राज्य पर स्थापित करने के लिए
 राम और लक्ष्मण आये हैं, मानो इन्द्र को पुनः राज्य पर स्थापित करने के
 लिए आये हुए विष्णु और शिव हो ।

[निकल जाते हैं]

। स्थापना ॥

(ततः प्रविशति रामो लक्ष्मणसुग्रीवो हनुमान्)

रामः—सुग्रीव ! इतः इतः ।

। अस्मिन्निहतमिन्नविकीर्णदेहं मम सायकात्

। त्वं क्षत्रु तवाय सहसा भुवि पातयामि ।

। हे राजन् ! मय त्यज समरे समीपवर्ती ।

दृष्टस्त्वया च समरे निहतः स वाली ॥ ४ ॥

अन्वय — अद्य सहसा मत्सायकात् निहतमिन्नविकीर्णदेहं तव शत्रु भुवि पातयामि । हे राजन् ! त्वं मय त्यज समरे च निहतः स वाली मम अपि समीपवर्ती सन् त्वया दृष्टः ।

मत्सायकेति—अद्य = अस्मिन्दिवस सहसा = अकस्मात्, मत्सायकात् = मम सायकात् वाणात्, निहतमिन्नविकीर्णदेहं = निहत मारित भिन्न छिन्न विकीर्ण इतस्ततः प्रसृत देह शरीर तम्, तव = सुग्रीवस्य, शत्रु = रिपुम्, भुवि = पृथिव्याम्, पातयामि = पतित करोमि, राजन् = हे नृप सुग्रीव ! मय = भीतिम्, त्यज = मुञ्च, समरे च = युद्धे च, निहत = मारित, स = पुरोवर्ती, वाली = एतन्नामक तव अग्रज, मम अपि = मम रामस्य अपि, समीपवर्ती = समीपस्य, सन् त्वया = सुग्रीवेण, दृष्ट = विलोकित । वसन्त-तिलकाछन्दः ।

॥ स्थापना समाप्त ॥

(सत्पश्चात् राम, लक्ष्मण, सुग्रीव और हनुमान् प्रवेश करते हैं)

रामः—हे सुग्रीव ! इधर से, इधर से आजो !

आज मैं अपने बाणों द्वारा तुम्हारे शत्रु (वाली) के शरीर को विदीर्ण करके (उसे) धरासायी कर रहा हूँ । हे राजन् ! मेरे समीप में रहकर मम छोटी-मम भी तुमि युद्ध में-अरे नृप वाली को देखो रे ! हे सुग्रीव !-हे महाराज ! आप की छत्रा से मैं शत्रुताओं के राज्य की आशा करता हूँ, शत्रुओं के राज्य की समाप्ति है ।

सुग्रीवः—देव ! अह खल्वार्यस्य प्रसादात् देवानामपि राज्यमाशङ्के-
नि पुनर्वानराणाम् । कुतः—

मुक्तो देव ! तवाद्य बालिहृदय भेत्तु न मे सशय-
सालान् सप्तमहावने हिमगिरेः शृङ्गोपमाञ्छीधर !

भित्वा वेगवशात् प्रविश्य धरणी गत्वा च नागालय
मज्जन् वीर ! पयोनिधौ पुनरय सम्प्राप्तवान् सायक ॥५॥

देवेति—देव=हे महाराज । अह=सुग्रीव , खलु=निश्चयेन,
आर्यस्य=पूजनीयस्य भवते , प्रसादात्=अनुग्रहात् , देवानामपि=सुराणा-
मपि , राज्य=राज्याधिकारम् , आशङ्के=आशसे ।

अन्वयः—हे देव ! श्रीधर ! (त्वया) मुक्त तव अय सायक महावने
हिमगिरे शृङ्गोपमान् सप्त सालान् भित्वा वेगवशात् धरणी प्रविश्य नागालय
च गत्वा पयोनिधौ मज्जन् पुन अद्य बालिहृदय भेत्तु प्राप्तवान् (इति) मे न
सशय (अस्ति) ।

मुक्त इति—श्रीधर देव=हे लक्ष्मीनाथ देव ! मुक्त=क्षिप्त,
तव=रामस्य, अय=पुरोवर्ती, सायक=बाण, महावने=विशालारण्ये,
हिमगिरे=हिमालयस्य, शृङ्गोपमान्=शिखरसदृशम् सप्त=सप्त सरयवान्
सालान्=एतन्नामकवृक्षविशेषान् भित्वा=छित्वा, वेगवशात्=ज्वकार-
णात् धरणी=पृथिवीम्, प्रविश्य=प्रवेश कृत्वा नागालय च=सर्पगृह
पातालपुर च, गत्वा=यात्वा, पयोनिधौ=समुद्रे मज्जन्=अवगाहमान,
पुन=भूय, अद्य=अस्मिन्दिवसे, बालिहृदय=बालिन एतन्नामकराक्षसस्य
हृदय=अन्तःकरणम्, भेत्तु=छेत्तुम् प्राप्तवान्=गतवान्, मे=मम, न=
नहि, सशय=सन्देह, अस्तीति श्लेषः, दीपकालङ्कारः, शार्दूलप्रितीति
छन्दः ॥ ५ ॥

हे लक्ष्मीनाथ देव ! आपके छोडा हुआ बाण महावन मे (हिमालय के
शिखरो जैसे सात साल वृक्षों को तोड़कर, तेजी से पृथिवी में घुसकर, पाताल
मे जाकर सर्प समुद्र मे डूबता हुआ, हे वीर ! आज बाली का हृदयभेदन
करने के लिए (आपके पास) आ रहा है—इसमे मुझे सन्देह नहीं है ॥ ५ ॥

हेनुमान्— तव रूप ! मुखनिःसृतवचोभिः—
 विगतभया हि वयं विनष्टशोकाः।
 रघुवर ! हरये जयं प्रदातुं, —
 गिरिमभिगच्छ सनीरनीरदाभम्-॥

लक्ष्मणः— आर्य ! सोपस्नेहतयोर्वनान्तरस्याभितः खलु
 किष्किन्धया भवितव्यम् ।

सुग्रीवः—सम्यग्गह कुमारः ।

अन्वय.—हे रूप ! मुखनिःसृत वचोभिः वयं हि विगतभयाः
 विनष्ट-शोका च (स्म) हे रघुवर ! विजयं प्रदातुं सनीरनीर-दाभम् गिरिम्
 अभिगच्छ ।

तवेति—रूप=हे राजन्, मुखनिःसृत=मुखात् वचनात् निःसृत
 विनिर्गतं, तव=रामस्य, वचोभिः=वचनैः, वयं=हनुमानादयः, विगत-
 भया=भयरहिता, विनष्टशोका=शोकरहिता । रघुवर=हे रघुश्रेष्ठ ।
 हरये=वानराय, विजयं=जयम्, प्रदातुं=वितरितुम्, सनीरनीरदाभं=
 सनीरण जलेन सह वर्तमान सनीर सनीर चासौ नीरद बादल तस्य
 आभा कान्ति इव आभा यस्य तम्, गिरिं=पर्वतम्, अभिगच्छ=अभियाहि ।
 उपमालङ्कार । पुष्पिताग्राच्छन्द ।

सोपस्नेहतयेति—सोपस्नेहतया=स्वच्छतया, वनान्तरस्य=अरण्यसमी-
 पस्य, किष्किन्धया=एतन्नामकनगर्या, भवितव्यं=भवनीयम् ।
 सम्यग्गति—सम्यक्=उचितम् ।

हेनुमान्—हे राजन्, आपने मुख से निकले वचनों से हम लोग निर्भय
 एवं शोकरहित हो गये हैं । हे रघुवर ! वानर (सुग्रीव) को विजय प्रदान
 करने के लिए जलपूर्ण बादल के समान इस पर्वत पर चलिऐं ।

लक्ष्मण—हे आर्य ! (अज्ञान के) स्वच्छ होने के कारण (जति होता है
 कि) इस वन के पास ही किष्किन्ध्या होना चाहिये । (गिरि) पर्वत है
 सुग्रीव-कुमार (लक्ष्मण) ने ठीक ही कहा ।

सम्प्राप्ता हरिवरबाहुसम्प्रगुप्ता किंकिन्धा त्वं नृप ! बाहुसम्प्रगुप्ता ।
तिष्ठ त्वं नृवर रंकरोम्बहे विसंज्ञीनादेन प्रबलमहीधरं नृलोकम् ॥७॥

रामः—भवतु, गच्छ ।

सुग्रीवः—यदाज्ञापयति देवतात्पीरत्मी) भोः ।

नृपः—अग्निप्रथमनुद्दिश्य परित्यक्तकर्त्तव्या विभो ! — युद्धे त्वत्पादशुश्रूषां सुग्रीवः कर्तुमिच्छति ॥७॥

अन्वयः—हे नृप ! (पूर्व) हरिवरबाहुसम्प्रगुप्ता (सम्प्रति) तव बाहुसम्प्र-
गुप्ता किंकिन्धा सम्प्राप्ता । हे नृवर ! त्वं तिष्ठ, अहं नादेन प्रबलमहीधरं
नृलोकं (च) विसंज्ञं करोमितीति । सम्प्राप्तेति—नृप=हे राजन् ! (पूर्वम्) हरिवरबाहुसम्प्रगुप्ता=
हरिवरस्य वानरक्षेष्ठस्य बाहुभ्या भुजाभ्या सम्प्रगुप्ता संरक्षिता, (सम्प्रति)
तव=भवत, बाहुसम्प्रगुप्ता बाहुभ्या भुजाभ्या सम्प्रगुप्ता संरक्षिता, -किंकिन्धा
=एतन्नामकनगरी, सम्प्राप्ता=आगता । नृवर=हे नरक्षेष्ठ ! त्वं=भवान्,
तिष्ठ=स्थिति विधास्यतु, अहं=सुग्रीव, नादेन=गर्वनेन, नृलोकं=नरजगत्,
विसंज्ञं=चेतनारहितम्, प्रबलमहीधरं=कल्पमानपर्वतम् करामि विदये ।
अन्त्यानुप्रासालङ्कारः । प्रहयिणीच्छन्दः ।

अन्वयः—हे विभो ! अपराधम् अनुद्दिश्य त्वया परित्यक्त सुग्रीव युद्धे
त्वत्पादशुश्रूषा कर्तुम् इच्छति ।

अपराधेति—विभो=हे प्रभो ! अपराधम्=दोषम्, अनुद्दिश्य=न
निरूप्य, त्वया=बालिना, सुग्रीवः=अहं सुग्रीव, युद्धे=रणे, त्वत्पादशुश्रूषा=
तव पादो चरणौ तयोः शुश्रूषा सेवाम्, कर्तुं=विधातुम्, इच्छति=चाञ्छति ।

हे राजन् ! पहले कपिराज (बाली) के बाहुओं से रक्षित (किन्तु अब)
आपके भुजाओं के, अधीन किंकिन्धा आ गयी । हे नृवर ! आप रुकिए ।
मैं गर्जने से पर्वत को प्रकम्पित तथा नरलोक को चेतनाविहीन कर रहा हूँ ।

राम—अच्छा, बाली ने जो अपराध किया है, उसे मैं क्षमा कर दूँगा ।
हे सुग्रीव ! महाराज जैसी आज्ञा देते हैं । (धूमकर) ब्रह्मा !

हे महाराज (बाली) ! बिना अपराध को बताए आपके द्वारा निकाल
दिया गया यह सुग्रीव युद्ध में आपके चरणों की सेवा करना चाहता है ।

बाली—कय कय सुप्रीव इति ।
 तारे ! विमुञ्च मम वस्त्रमनिन्दिताङ्गि !
 प्रसस्तवक्त्रनयने ! किमसि प्रवृत्ता !
 सुप्रीवमद्य समरे विनिपात्यमानं तं पश्य शोणितपरिप्लुतसर्वगात्रम् ॥१॥

- अन्वयः—हे अनिन्दिताङ्गि तारे ! मम वस्त्र विमुञ्च । हे प्रसस्तवक्त्र-
 नयने ! किं प्रवृत्ता असि । अद्य समरे विनिपात्यमानं तं सुप्रीव शोणित-
 परिप्लुतसर्वगात्रं पश्य ।

तारे इति—अनिन्दिताङ्गि = हे मनोहराङ्गि ! तारे = हे मम पत्नी
 तारे ! मम वस्त्र = मम वसनम्, विमुञ्च = त्यज । प्रसस्तवक्त्रनयने = हे
 शिथिलनेत्रे ! किं = केन कारणेन, प्रवृत्ता असि = सलग्ना असि, अद्य =
 अस्मिन्दिवसे, तं = पुरोवर्तमानम्, सुप्रीव = एतन्नामकं ममानुजम्, समरे =
 युद्धे, विनिपात्यमानं = विनाश्यमानम्, शोणितपरिप्लुतसर्वगात्रं = शोणितेन
 रधिरेण परिप्लुतं परिपूर्णं सर्वं सम्पूर्णं गात्रं शरीरं यस्य तम्, पश्य =
 विलोक्य । वसन्ततिलकाञ्छन्दः ।

[नेपथ्ये मे]

—कया सुप्रीव आया है ।

[पद्मस्थात् वस्त्रं पकडी हुई तारा के साथ बाली प्रवेश करता है]

बाली—कया सुप्रीव आया है ।

हे अनिन्दिताङ्गि तारा ! मेरे वस्त्र को छोड़ो । हे उदासीन मुख और
 नेत्रों वाली ! क्यों मुझे (शोकिते मे) लगी ही आज युद्ध में (मेरे द्वारी)
 मारे जाते हुए तथा प्रकृत से लक्ष्य पर शरीर वाले सुप्रीव को देखो ॥१॥

तारा—पसीअउ पसीअउ महाराओ । अप्पेण कारणेण ण आग-
मिस्सइ सुग्गीओ । ता अमच्चवग्गेण सह सम्मतिअं गन्तेव्वं । [प्रसीदतु
प्रसीदतु महाराजः १- अल्पेन कारणेन नागमिष्यति सुग्रीवः १- तदमात्यवर्गेण
सह सम्मन्वय गन्तव्यम् ।]

बाली—आः,

शक्रो वा भवतु गतिः शशाङ्कवक्त्रे !—
शत्रोर्मे निशितपरश्वधः शिवो वा ।
नालं, मामभिमुखमेत्य सम्प्रहर्तुं
विष्णुर्वा विकसितपुण्डरीकनेत्र ॥ १० ॥

अल्पेनेति—अल्पेन=लघुना, कारणेन=हेतुना, न आगमिष्यति, न
आयास्यति । तत्=अत एव, अमात्यवर्गेण=मन्त्रिदलेन, सम्मन्वय=मन्त्रणा
कृत्वा, गन्तव्यं=गमनीयम् ।

अन्वय.—हे शशाङ्कवक्त्रे ! शक्र वा निशितपरश्वध शिव वा विकसित-
पुण्डरीकनेत्र विष्णु वा मे शत्रो गति भवतु, अभिमुखम् एत्य मा सम्प्रहर्तुं
न अलम् ।

शक इति—शशाङ्कवक्त्रे=चन्द्रमुखि, शक्र वा=इन्द्र वा, निशित-
परश्वध=निशितो तीक्ष्णो परश्वधो परशुकुठारो यस्य स, शिव वा=शङ्कर
वा, विकसितपुण्डरीकनेत्र=प्रफुल्लितकमलनयन, विष्णु वा=नारायणं वा,
मे=मम, शत्रो=अरे सुग्रीवस्य, गति=रक्षक, भवतु=जायते, मम,
अभिमुखं=सम्मुखम्, एत्य=आगत्य, माम्=बालीम्, सम्प्रहर्तुं=आहन्तुम्,
न अलं=न समर्थं । उपमालङ्कारः । प्रहृषिणीच्छन्दः ।

तारा—हे महाराज ! प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये । साधारण कारण से
सुग्रीव नहीं आएगा । तो मन्त्रीवर्ग से मन्त्रणा करके जाना चाहिये ।

बाली—ओह !

हे शशिशुक्ली ! मेरे । शक्र (सुग्रीव) के रक्षक इन्द्र ही अथवा हाथ मे
तीक्ष्ण परशु धारण करने वाले शिव हो अथवा विकसित कमल के समान नेत्रो
वाले विष्णु हो, (मेरे) सामने आकर भी मुझ पर प्रहार नहीं कर सकते ।

बाली—ओह ! मेरी बात मानो, तुम अन्दर जाओ ।

तारा—यह मैं जाती हूँ । (निकल जाती है ।)

बाली—ओह ! तारा अन्दर चली गयी । तब मैं सुग्रीव की गर्दन तोड़ता हूँ । (शीघ्रता से जाकर) हे सुग्रीव—रुको, रुको ।

इन्द्र—तुम्हारे रक्षक हूँ अथवा अग्नेवादा विष्णु, मेरे शत्रुओं के सामने आकर

तुम जीवित नहीं जाओगे ।

इधर से, उधर से ।

सुग्रीव—जो महाराज की आज्ञा है, मैं करता हूँ ।

सुग्रीव—यदाज्ञापयति महाराजः ।

ममेति—वशानुवर्तिनी = ममाज्ञापालिका, अभ्यन्तरम् = रनिवासम्, प्रविश = प्रवेश कुरु ।

प्रविष्टेति—प्रविष्टा = प्रवेश कृता, भनग्रीव = सण्डितगलम् ।

अन्वयः—इन्द्र वा प्रभु मधुसूदन वा ते शरणम् अस्तु मच्चक्षुष्पथम् आसाद्य सजीव न एव यास्यमि ।

इन्द्रो वेति—इन्द्र वा = शक्र वा, प्रभु = स्वामी, मधुसूदन वा = विष्णुः वा, ते = तव सुग्रीवस्य, शरण = सरक्षक, अस्तु = भवतु, मच्चक्षुष्पथम् = मम चक्षु नयन तस्य पन्थान मार्गम्, आसाद्य = प्राप्य, सजीव = जीवित, न एव यास्यमि = नैव गमिष्यसि । अनुष्टुप् छन्द ।

बाली—ओह ! तारा अन्दर चली गयी । तब मैं सुग्रीव की गर्दन तोड़ता हूँ । (शीघ्रता से जाकर) हे सुग्रीव—रुको, रुको ।

इन्द्र—तुम्हारे रक्षक हूँ अथवा अग्नेवादा विष्णु, मेरे शत्रुओं के सामने आकर

तुम जीवित नहीं जाओगे ।

इधर से, उधर से ।

सुग्रीव—जो महाराज की आज्ञा है, मैं करता हूँ ।

सुग्रीव—यदाज्ञापयति महाराजः ।

(उभौ निपुढोऽङ्कः ।)

रामः—एष एष बाली, इति ।

सन्दष्टोऽष्टश्वण्डसरक्तनेत्रो मुष्टि कृत्वा गाढमुद्वृत्तदंष्ट्रं
गर्जन् भीम वानरः भाति, मुद्वे सवर्ताग्निः सन्दिधन्नुयमेव ॥ १३ ॥

लक्ष्मणः—मुषीवमपि पश्यत्वार्थः

विकसितशतपत्ररक्तनेत्रः कनकमयाद्भदनद्वपीतबाहुः ।

हरिवरमुपमातिवानरत्वाद्गुरुमभिभूय सता विहाय वृत्तम् ॥ १४ ॥

अन्वयः—वानरः सन्दष्टोऽष्टश्वण्डसरक्तनेत्रः उद्वृत्तदंष्ट्रः च मुष्टि गाढं

कृत्वा भीमं गर्जन् मुद्वे (गर्जन्) सन्दिधन्नुयमेव सवर्ताग्निः यथा एव भाति

सन्दष्टोऽष्टेति—वानर = कवि बाली, सन्दष्टोऽष्ट = सन्दष्टः दन्त-
खण्डितः अष्ट दन्तच्छद येन स, चण्डसरक्तनेत्र = चण्डेन क्रोधेन सरक्ते
लोहिते नेत्रे नयने यस्य स, उद्वृत्तदंष्ट्र = उद्वृत्ता बहिनिःसृता दंष्ट्रा
दन्तविशेष दाड यस्य स, मुष्टि = वज्रपाणिम्, गाढ = कठोरम्, कृत्वा =
विधाय, भीम = भोषणम् गर्जन् = गर्जनं विधास्यन्, मुद्वे = रणे, सवर्ताग्निः
यथा = प्रलयान्निव इव, भाति = ध्राजते उपमालेद्धारः । शालिनीच्छन्दः ।

अन्वयः—विकसितशतपत्ररक्तनेत्रः कनकमयाद्भदनद्वपीतबाहुः वानरत्वाद्
सता वृत्त विहाय, गुरुम् अभिभूय हरिवरम् उपमाति ।

[दोनों युद्ध करते हैं ।]

राम—यह बाली,

वानर (बाली) दाँतों से ओठ काटे, क्रोध में अस्त्र लाल किये, दाड ऊपर
किये (तथा) भयङ्कर रूप से गरजता हुआ युद्ध में (गर्जत को) भस्म कर
 देने वाली प्रलय-अग्नि की तरह चमक रहा है ।

लक्ष्मण—महाराज मुषीव को भी देखिए,

खिले हुए कमल के समान लाल ओंखों तथा सोने के बाजूबन्दों से बँधी
 मोटी मुजाबो वाला (बह) वानर होने के कारण सज्जनों का आचरण त्याग
 कर (अपने) श्रेष्ठ (भाई) का अपमान करके वानरराज (बाली) पर आक्रमण
 कर रहा है ।

युक्तं भो ! नरपतिधर्ममास्थितेन युद्धे। मां छलयितुमक्रमेण राम !
वीरेण व्यपगतधर्मसशयेन लोकानां छलमपत्तेतुमुद्यतेन ॥१७॥
हन्त भो !

भवता सौम्यरूपेण यशसो भाजनेन च ।

छलेन मां प्रहरता प्रहृष्टमयशः कृतम् ॥ १८ ॥

भो राघव ! चीरवल्कलधारिणा वेपविपर्यस्तचित्तेन मम भ्रात्रा
सह युद्धव्यग्रस्याधर्म्यं खलु प्रच्छन्नो वध ।

अन्वय.—भो राम ! नरपतिधर्मम् आस्थितेन व्यपगतधर्मसशयेन लोकानां
छलम् अपत्तेतु उद्यतेन वीरेण स्वया युद्धे अक्रमण-माम्-छलयितु-युक्तम्-
युक्तमिति—भो राम = हे राम ! नरपतिधर्म = नृपतिकर्तव्यम्, आस्ति-

तेन = आश्रितेन, व्यपगतधर्मसशयेन = व्यपगत असन्दिग्ध, धर्मसशय धर्मसन्देह
यस्य तेन, लोकानां = जनानां, छल = कपटम्, अपत्तेतुम् = अपाकर्तुम्, उद्य-
तेन = सन्नद्धेन, वीरेण = वीरपुरुषेण, युद्धे = रणे, अक्रमेण = अन्यायेन, माम्,
छलयितु = प्रतारयितुम्, युक्त = उचितम्, अस्तीति शेष । प्रहयिषीच्छन्द ।

अन्वय — सौम्यरूपेण यशस भाजनेन छलेन माम् प्रहरता भवत अयश
प्रहृष्ट कृतम् ।

भवतेति—सौम्यरूपेण = प्रियाकारेण, यशस = कीर्ति, भाजनेन = पात्रेण,
भवता = रामेण, छलेन = कपटेन, मां = बालीम्, प्रहरता = प्रहार कुर्वता,
अयश = अपकीर्ति, प्रहृष्ट = अश्चुरितम्, कृत = विहितम् ।

भो राघवेति—चीरवल्कलधारिणा = चीररूपे वल्कल वृक्षत्वक् धारय-
तीति तेन, वेपविपर्यस्तचित्तेन = वेपेण परिधानेन विपर्यस्त विपरीत चित्त

हे राम ! राजा के धर्म पर आरुढ़, असन्दिग्ध धर्मज्ञान वाले, संसार का
छलप्रवर्त्तन दूर करने में संलग्न वीर वीर। आप के द्वारा अन्याय से छलना
(अन्यायपूर्वक छल से मारना) क्या उचित है ।

ओह, खेद है ।

सौम्यरूप वाले तथा यश के पात्र-आपके द्वारा उक्तपूर्वक-मेरे-ऊपर
प्रहार करते हुए (आप) के द्वारा महान् अपयश अश्चुरित (प्राप्त) किया गया ।

रामः—कथमधर्म्यं त्वलु प्रच्छन्नो वध इति ।

वाली—क' संशय ।

रामः—न खल्वेतत् । पश्य,

वागुराच्छन्नमाश्रित्य मृगाणामिष्यते वधः ।

वध्यत्वाच्च मृगत्वाच्च भवाच्छन्नेन दण्डितः ॥ १९ ॥

वाली—दण्डय इति मा भवान् मन्यते ।

रामः—क सशय ?

वाली—केन कारणेन ?

मन्यमान्य तेन, युद्धव्यग्रयस्म = युद्धे रणे व्यग्रय व्यासक्तस्य, अधर्म्यं = धर्म-
प्रतिकूल, प्रच्छन्न = अप्रकट., वध = घात कृत् ।

अन्वयः—वागुराच्छन्नम् आश्रित्य मृगाणां वधः इष्यते । वध्यमानत्वात् च
मृगत्वात् च भवान् छन्नेन दण्डितः ।

वागुरेति—वागुराच्छन्नं = वागुरा जालं च छन्नं छदनं च तम्, आश्रित्य
= आश्रय कृत्वा, मृगाणां = पशूनाम्, वधः = हननम्, इष्यते = अनुमन्यते, वध्य-
त्वात् = वधाहंत्वात्, मृगत्वात् च = पशुत्वात् च, भवान् = वाली, छन्नेन =
प्रच्छन्नेन मया इति शेषः, दण्डितः = दण्ड दत्तः । काव्यलिङ्गम् अलङ्कारः ।
अनुष्टुप्छन्दः ।

हे राम ! चीरखलुल धारण करने वाले (फिर भी) वेप के विपरीत
हृदय वाले आपके द्वारा, भाई के साथ युद्ध में स्वस्त मेरा छिपकर मारा
जाना अधर्म है ।

राम—छिपकर मारना कैसे अधर्म है ?

वाली—क्या इसमें सन्देह है ।

राम—यह नहीं है, देखो,

जाल और छिपाव का आश्रय लेकर पशुओं का वध अनुमत है । वध-
योग्य और पशु होने के कारण छिपे हुए मैंने आपको दण्ड दिया है ।

वाली—आप भुक्तको दण्डनीय मानते हैं ।

राम—(इसमें) क्या सन्देह है ।

वाली—किस कारण से (मुझे दण्डनीय मानते हैं) ।

२ अ०

रामः—अगम्यागमनेन ।

बाली—अगम्यागमनेनेति । एपोऽस्माक धर्मं ।

रामः—ननु युक्त भो ।

भवता वानरेन्द्रेण धर्माधर्मौ विजानता ।

आत्मान मृगमुद्दिश्य भ्रातृदाराभिमर्शनम् ॥ २० ॥

बाली—भ्रातृदाराभिमर्शनेन तुल्यदोषधोरहमेव दण्डितो, न सुग्रीव ।

अगम्येति—अगम्यागमनेन = अगम्या अभिगन्तुम् अयोग्या तस्या गमन सम्भोगा तेन ।

अन्वय — धर्माधर्मौ विजानता वानरेन्द्रेण मृगम् उद्दिश्य भवताभ्रातृदाराभिमर्शनेन युक्तम् ?

भवतेति—धर्माधर्मौ = धर्मश्च, अधर्मश्च तौ, विजानता = बुध्यमानेन, वानरेन्द्रेण = वानराणा कपीनाम् इन्द्रेण स्वामिना, भवता = त्वया बालिना, मृग = पशुम्, उद्दिश्य = कथयित्वा, भ्रातृदाराभिमर्शनम् = भ्रातु अनुजस्य सुग्रीवस्य दाराणा पत्न्या अभिमर्शनम् अभिगमनम्, युक्तम् = उचितम् । अनुष्टुप्छन्द ।

भ्रातृदारेति—भ्रातृदाराभिमर्शनेन = अनुजपत्न्याभिगमनेन, तुल्यदोषधयो = समानापराधयो, दण्डित = दण्ड प्राप्त ।

राम—अगम्यागमन के कारण (तुमको दण्डनीय मानता हूँ ।)

बाली—अगम्यागमन के कारण ? यह तो हमारा धर्म है ।

राम—अरे ! क्या यह उचित है ।

धर्म और अर्थ को जानते हुए आप वानरेन्द्र के द्वारा अपने को (साधारण) मृग कहकर भाई की पत्नी को दूषित किया जाना (क्या उचित है ।)

बाली—भाई की पत्नी को दूषित करने के कारण समान अपराध वाले (मुझ तथा सुग्रीव) दोनों में मैं ही दण्डित हुआ, सुग्रीव क्यों नहीं (दण्डित)

बालो—मुयोवेणाभिमृष्टाऽमूद् घर्मपत्नी नुगेमम ।

तस्य दारामिमर्शेन कथं दण्ड्योऽस्मि राघव । ॥ २१ ॥

राम.—न त्वेव हि कदाचिज्ज्येष्ठस्य यवीयमो दारामिमर्शनम् ।

बालो—हन् अनुतरा वयम् । भवता दण्डित्वाद् विगतपापोऽहं ननु ।

राम.—एवमस्तु ।

मुश्रीव —हा धिक् ।

राम —दण्डितस्त्व हि दण्ड्यत्वाद्, अदण्ड्योर्नैव दण्डयते ।

अन्वय.—मुश्रीवो गुरो मम घर्मपत्नी अभिमृष्टा अमूत् तस्य दारामि-
मर्शेन हे राघव । (अहं) कथं दण्डय अस्मि ।

मुश्रीवेण—मुश्रीवो = एतन्नामकेन यमानुतेन, नुगे = अग्रस्य मम, घर्म-
पत्नी = भार्या तारा, अभिमृष्टा = अभिमता, अमूत् । तस्य = मुश्रीवस्य, दारा-
मिर्शेन = पत्न्याभिमर्शनेन, राघव = हे राम । कथं = कस्मात्कारणाद्, दण्ड्य
= दण्डनीय, अस्मि । अनुश्रुप्तुच्छन्द ।

हन्तीति—अनुतरा = उल्लग्नरहिता । विगतपाप = पावरहित ।

राम—दण्डनीय होने का कारण तुम (बाली) ही दण्डित हुए । दण्डनीय न होने के कारण (मुश्रीव) दण्डित नहीं हुआ ।

बाली—हे राम ! मुश्रीव के द्वारा मुझ बड़े (भाई) की पत्नी दूषित की गयी । (तब) उनकी पत्नी को दूषित करने के कारण मैं ही क्यों दण्डनीय हूँ ?

राम—ओह (भाई) के मन में बड़े (भाई) की पत्नी इस प्रकार (दूषित) नहीं होनी है ।

बाली—ओह ! हम निरुत्तर हो गये । आपके द्वारा दण्डित किया गया मैं निष्पाप हो गया ।

राम—ऐसा ही है ।

मुश्रीव—ओह ! धिक्कार है ।

करिकरसदृशी गजेन्द्रगामि-

स्तव रिपुशस्त्रपरिक्षताङ्गदौ च ।

अवनितलगती समीक्ष्य बाहू

हरिवर ! हा पततीव मेऽद्य चित्तम् ॥ २२ ॥

बाली—सुग्रीव ! अलमल विपादेन । ईदृशो लोकधर्म ।

(नेपथ्ये)

हा हा महाराओ ।

बाली—सुग्रीव ! सवार्यता सवार्यता स्त्रीजन । एवगत नाहंति मा
द्रष्टुम् ।

अवन्य —हे गजेन्द्रगामिन् ! हरिवर ! तव करिकरसदृशी रिपुशस्त्रपरि-
क्षताङ्गदौ अवनितलगती च बाहू समीक्ष्य हा ! मे चित्तम् अद्य पतति इव ।

करिकरेति—हे गजेन्द्रगामिन् = हे गजेन्द्रगामिन् ! हरिवर = कपिराज !
करिकरसदृशी = करिण हस्तिन कर शूण्ड सेन सदृशी समानी रिपुशस्त्र
परिक्षताङ्गदौ = रिपो शत्रो शस्त्रेण आयुधेन परिक्षते भग्ने अङ्गदे केयू-
ययो ती, अवनितलगती = अवन्या पृथिव्या तल अघ गती प्राप्ती, तव =
भवत, बाहू = भ्रुजौ, समीक्ष्य = विलोक्य, हा = वेदे, मे = मम सुग्रीवस्य,
चित्त = मम, पतति = स्र सते । उत्प्रेक्षालङ्कार । पुष्पिताम्राच्छन्द ।

सुग्रीवेति—सवार्यता = निरुद्धयत्ताम्, स्त्रीजन = नारीलोक एव गत =
एता दशा प्राप्तम् द्रष्टु = विलोकयितुम् न अहंति = समर्थ नास्ति ।

हे गजराज के समान गति वाले कपिराज (बाली) ! हाथी की मूढ व
समान, शत्रु के शस्त्र से टूट गये बाजूबन्दा वाली तथा भूतल पर पड़ी हुई
मुजाओ को देखकर मेरा मन आज मानो बैठा जा रहा है ।

बाली—हे सुग्रीव ! विपाद करना व्यर्थ है । यह तो ससार का
नियम है ।

[नेपथ्य मे]

हाय ! हाय ! महाराज !

बाली—हे सुग्रीव ! स्त्रियो को रोको, रोको । ऐसी अवस्था मे पडे हुए
(ने) देख नही सकती ।

सुग्रीवः—यदाज्ञापयति महाराजः । हनूमन् ! एव क्रियताम् ।

हनूमान्—यदाज्ञापयति कुमार । (निष्प्रान्त')

(ततः प्रविशत्यङ्गदो हनूमान्च)

हनूमान्—अङ्गद ! इत इतः ।

अङ्गद —

श्रुत्वा कालवशं यान्त हरिमृक्षगणेश्वरम् ।

समापतितसन्तापः प्रयामि शिथिलक्रमः ॥ २३ ॥

हनूमन् ! कुत्र महाराज ।

हनूमन्—एव महाराज ,

अन्वयः—ऋक्षगणेश्वर हरि काव्यवशं यान्त श्रुत्वा समापतितसन्ताप
(अह) शिथिलक्रम प्रयामि ।

श्रुत्वेति—ऋक्षगणेश्वर=ऋक्षाणां भल्लूकानां गणस्य समूहस्य ईश्वर
स्वामिनम्, हरि=वानर बालीमित्यर्थः, कालवशं=कालस्य मृत्यो वशम्
अधीनताम्, यान्त=गच्छन्तम्, श्रुत्वा=आकर्ष्य, समापतितसन्तापः=समा-
पतितः समागतः सन्ताप शोकः यस्मिन् स, शिथिलक्रम =शिथिल मन्द-
क्रम पादप्रक्षेप यस्य न, प्रयामि=गच्छामि । वाक्यत्रिङ्गमलङ्कारः । अनुपु-
प्चच्छन्दः ।

सुग्रीव—महाराज जो आज्ञा देते हैं । हे हनुमान् ! ऐसा करो ।

हनूमान्—कुमार जो आज्ञा देते हैं । (निकल जाता है) ।

(तत्पश्चात् अङ्गद और हनुमान् प्रवेश करते हैं)

हनूमान्—हे अङ्गद ! इधर से, इधर से (आइए) ।

अङ्गद—वानरगण और ऋक्षगण के स्वामी (बाली) का यमपुर में
जाना (मृत्यु को प्राप्त होना) सुनकर खिन्न (और) शिथिल अङ्गो वाला मैं
चल रहा हूँ ।

हे हनुमान् ! महाराज कहाँ हैं ?

हनूमान्—ये महाराज हैं—

क्षन्तुमर्हसि ।

रामः—बाढम् ।

बाली—सुग्रीव ! प्रतिगृह्यतामस्मत्कुलघन हेममाला ।

सुग्रीवः—अनुगृहीतोऽस्मि । (प्रतिगृह्णाति)

बाली—हनूमान् ! आपस्तावन् ।

हनूमान्—यज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रम्य प्रविष्य) इना आप ।

बाली—(आचम्य) परित्यजन्तीव मा प्राणाः । इमा गङ्गाप्रभृतयो महानद्य एता उर्वश्यादयोऽप्सरसो मामभिगताः । एष सहस्रहसप्रयुक्तो वीरवाही विमानः कालेन प्रेषितो मा नेतुमागतः । अयमयमागच्छामि । (स्वर्गति) ।

=वानराणा कपीणा चापला चाञ्चल्यम्, अन्तुं = मर्पयितुम्, अर्हसि = योग्योऽसि । बाढम् = स्वीकारे । प्रतिगृह्यता = स्वीक्रियताम्, अस्मत्कुलघन = अस्माक कुलस्य वंशस्य घनं सम्पत्तिः, हेममाला = हेमन मुवर्णस्य माला हार । अनुगृहीत = उपकृत । आप = जलम् ।

परित्यजेति—मा = बालिम्, प्राणा = प्राणवायव, परित्यजतीव =

सुग्रीव) को वानर चपलता को समा कीजिएगा ।

राम—ठीक है ।

बाली—हे सुग्रीव ! हमारे कुल की सम्पत्ति (इस) तुवर्ण की माला को ग्रहण करो ।

सुग्रीव—मैं अनुग्रहीत हूँ ।

बाली—हे हनुमान् ! पानी लाओ ।

हनूमान्—जो महाराज की आज्ञा ! (निष्कल कर प्रवेष्ट करके) वह पानी है ।

बाली—(आचमन करके) मेरे प्राण मुझे छोड़ रहे हैं । वे शङ्का इत्यादि नदियाँ, उर्वशी इत्यादि अप्सराएँ मुझे लेने आ रही हैं । यह हजार हसो वाला वीरवाही (नामक) यमराज द्वारा भेजा गया विमान मुझे लेने के लिए आ गया है । अच्छा, यह मैं आ रहा हूँ । (स्वर्ग चला गया)

सर्वे—हा हा महाराज । ।

राम—हन्त स्वर्गं गतो वाली । सुग्रीव ! क्रियतामस्य मन्कार ।

सुग्रीव—यदाज्ञापयति देव ।

रामः—लक्ष्मण ! सुग्रीवस्याभिपेकः कल्प्यनाम् ।

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यायं ।

(निष्प्रान्ता सर्वे)

प्रथमोऽङ्क

—०—

उज्जन्ति इव । अभिगता = प्रत्यागता । महस्रहसप्रयुक्त = महस्रमस्यकं हर्मं पद्मिनिनेर्षं प्रयुक्त आकृष्ट, विमान = यानम्, वागेन = यमन, प्रेषिन = प्रेरित । आगच्छामि = आयामि ।

सस्कार = अन्त्येष्टि । अभिपेक = राज्याभिपेक , कल्प्यता = क्रियताम् ।

॥ इति प्रथमोऽङ्क ॥

—०—

सभी—हाय, हाय महाराज ।

राम—हाय, वाली स्वर्गं चला गया । हे सुग्रीव इसका सस्कार करो ।

सुग्रीव—जो महाराज की आज्ञा ।

राम—ह लक्ष्मण ! सुग्रीव के अभिपेक की तैयारी करो ।

लक्ष्मण—जो आप की आज्ञा ।

(सभी निकल जाते हैं)

॥ प्रथम अङ्क समाप्त ॥

—०—

अहो व्यर्थो मे परिश्रम । भवतु, एतद्धर्म्याग्रिमार्हृचावलोकयामि ।
 (तथा कृत्वा) अये अय प्रमदवनराशि । इम प्रविश्य परीक्षिष्ये ।
 (प्रविश्यावलोक्य) अहो प्रमदवनसमृद्धि इह हि,
 कनकरचितविद्रुमेन्द्रनीलैर्विकृतमहाद्रुमपङ्क्तिचित्रदेशा ।

भवनप्रासादहर्म्येषु पानागारनिशान्तदेशविवरेषु च अह बहुश आक्रान्तवान्
 अस्मि । भो सर्वं विचितम् च, नृपते पत्नी न एव मया दृश्यते ।

गर्भागारेति—गर्भागारविनिष्कुटेपु= गर्भस्य अन्तरस्य, आगाराणि
 गृहाणि च विनिष्कुटेपु उद्यानेषु, शालाविमानादिषु=शाला गृहाणि
 विमानानि आदि येषा तेषु, स्नानागारनिशाचरेन्द्रभवनप्रसादहर्म्येषु=स्नाना
 गाराणि स्नानगृहाणि निशाचरेन्द्रस्य राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य भवनानि गृहाणि
 प्रसादा आट्टालिकानि हर्म्याणि राजगृहाणि च तेषु, पानागारनिशान्तदेशविवि-
 रेषु च=पानागाराणि मधुशाला निशान्ता नि शब्दा देशविवराणि
 सुरङ्गानि तेषु च, अह=हनूमान्, बहुश = बहुप्रकारेण, आक्रान्तवान् अस्मि=
 समन्तात् भ्रमन् अस्मि । भो=अरे ! सर्वं=सम्पूर्णम्, स्थानमितिशेष, विचित
 =अन्विष्टम्, नृपते = राज रामस्य, पत्नी=दारा सीता, न एव = नहि
 एव, मया = हनुमता, दृश्यते = विलोक्यते । शार्दूलविक्रीडित छन्द ।

अहो इति—व्यर्थ = प्रयोजनरहित, परिश्रम = श्रम, एतत् पुरोवर्तमान,
 हर्म्याग्रम् = राजभवनशिखरम् आरुह्य = ऊर्ध्वं गत्वा, अवलोकयामि = विलो-
 कयामि । प्रमदवनराशि = विलासोद्यानपक्ति । परीक्षिष्ये = निरीक्षण
 करिष्ये, प्रमदवनसमृद्धि = विलासोद्यानसम्पन्नता ।

अन्वय — कनकरचितविद्रुमेन्द्रनीलै विकृतमहाद्रुमपक्तिचित्रदेशा रुचिर

ओह ! मेरा परिश्रम व्यर्थ हो गया । अच्छा, इस महल पर चढ़कर
 देखता हूँ । (बैसा करके) अरे ! यह तो प्रमदवन है । इसमें प्रवेश करके
 खोजता हूँ । (प्रवेश करके देखकर) अहा ! प्रमदवन की रमणीयता (कैसी)
 अद्भुत है) । क्योंकि यहाँ—

स्वर्ण खचित मूँगे (प्रवाल) तथा इन्द्रनील से बना हुआ, विचित्र
 १८ बड़े बड़े वृक्षों की पाक्तियों से रङ्ग विरङ्गा स्थान यह चमकीले पर्वतों

रुचिरतरनगा विभानि शुभ्रा नभसि सुरेन्द्रविहारभूमिकल्पा ॥५॥

अपि च—

चित्रप्रन्वृतहेमघानुरुचिरा. शैलाश्च दृष्टा मया

नानावारिचराण्डजैर्विरचिता दृष्टा मया दीधिका ।

नित्य पुष्पफण्डघपादपयुता देगाश्च दृष्टा मया

सर्वं दृष्टमिदं हि रावणगृहे सीता न दृष्टा मया ॥ ६॥

तरनगा शुभ्रा नभसि सुरेन्द्रविहारभूमिकल्पा विभाति ।

वनकरचित्तेनि—वनकरचित्रविद्रुमेन्द्रनीलैः = वनकरचित्रा सुवर्ण-
रचित्रा विद्रुमा प्रवाला इन्द्रनीला च नीलकण्ठमलय च तैः, विवृतमहा-
द्रुमपण्डिचित्रदेशा = विवृता परिवर्तनं प्राप्ता ये महान्त विशाला द्रुमा
वृक्षा देगा पत्किभि श्रेणिभि चित्रा कबुरा देशा म्यानानि यस्या सा,
रुचिरतरनगा = रुचिरतरा देशोप्यमाना नगा पर्वता यस्या मा, शुभ्रा =
उज्ज्वला, नभसि = आकाशे, सुरेन्द्रविहारभूमिकल्पा = इन्द्रविहारभूमिमदृशा,
विभाति = शोभते ।

अन्वय — मया चित्रप्रन्वृतहेमघानुरुचिरा शैला च दृष्टा, मया नाना
वारिचराण्डजैर्विरचिता दीधिका, मया नित्य पुष्पफण्डघपादपयुता
देगा च दृष्टा । इदं सर्वं हि दृष्टं (चिन्तु) मया रावणगृहे सीता न दृष्टा ।

चित्रप्रन्वृतेनि—मया = हनुमता, चित्रप्रन्वृतहेमघानुरुचिरा = चित्रा.
विविधा प्रन्वृत प्रस्पन्दिन य हन्त सुवर्णस्य घातु खनिज तेन रुचिरा

से युक्त तथा उज्ज्वल बनी हुई ऐसी शोभायमान है जैसे आकाश में इन्द्र की
विहार भूमि (जममगाती है) ।

और भी—

मेरे द्वारा नाना प्रकार के तथा रिये हुए सुवर्ण घातु से चमकीले पर्वत
देख लिये गये । अनेक प्रकार के जलचर-जीवाँ और पक्षियों से शोभायमान
बावलियाँ देख ली गयीं । मेरे द्वारा सर्वदा पुष्पों और फलों से सम्पन्न वृक्षों
वाले स्थान भी देख लिये गये । यह सब कुछ (मेरे द्वारा) देख लिया गया
किन्तु रावण के घर में मेरे द्वारा सीता नहीं देखी गयी ।

किमिदानी करिष्यते । भवतु, दृष्टम् । एनमशोकपादपमारुहं
कोटरान्तरितो भूत्वा दृढ वृत्तान्तं ज्ञास्यामि । (तथा कराति ।)

(ततः प्रविशति रावण सपरिवार ।)

रावण —

दिव्यास्त्रं सुरदैत्यदानवचमूविद्रावण रावण

युद्धे क्रुद्धसुरेभदन्तकुलिशव्यालीडवक्ष स्थलम् ।

सीता मामविवेकिनी न रमते सक्ता च मुग्धेक्षणा

क्षुब्धे क्षनियतापसे ध्रुवमहोदैवस्य विघ्नक्रिया ॥१०॥

मणिविरचितेति—मणिविरचितमौलि = मणिविरचित रत्नरचित
मौलि मुकुट यस्य स, चारुताम्रायताक्षी = चारुणि मनोहराणि च ताम्रार्णि
रक्तवर्णानि च आयतानि विशालानि च अक्षीणि नयनानि यस्य स, मदम-
लितगामी = मदेन गर्णेण शललित राविलास यथा स्यात्तथा गच्छतीति गामा,
मत्तमातङ्गलील = मत्त मादोत्कट य मातङ्ग गज तद्वत् लीला क्रीडा यस्य
स, युवतिजननिकाये = स्त्रीवर्गसमूहे, चेष्टमान = चेष्टा कुर्वन्, असौ =
पुरोवर्तमान, राक्षसेश = राक्षसेन्द्र रावण, हरिणीता = मृगीण्याम्, अन्तरे =
मध्ये, हरि इव = सिंह इव, भाति = शोभते । उपमात्-द्वार । मालिनीच्छन्दः ।

किमेति—अशोकपादप = अशोकवृक्षम्, आरुह्य = आरोह कृत्वा, वा-
रान्तरित = कोटरेण क्रोडेन अन्तरित व्यवहित, दृढ = निश्चयपूर्वकम्
वृत्तान्त = समाचारम्, ज्ञास्यामि = उपलप्स्य ।

अन्वय — अविवेकिनी मुग्धा सीता दिव्यास्त्रं सुरदैत्यदानवचमूविद्रावण

अब क्या करे । अच्छा ! (उपाय) ममज्ञ गया । इस अशोक के पेड़ पर
चढ़ कर कोटर में छिप कर सभी समाचार को मालूम करूँगा ।

(तत्पश्चात् सपरिवार रावण प्रवेश करता है)

रावण—दिव्य अस्त्री द्वारा देवता तथा राक्षसों की सेना को खदेड़ देने
वाले तथा युद्ध में शोधित ऐरावत के दन्तरूपी वज्र से क्षत हुए वन स्थल-
वाले मुझ (रावण) पर भोली भाली नादान सीता अनुरक्त होकर रमण नहीं
करती, क्षुब्ध क्षनिय—तपस्वी पर अनुराग करती है, निश्चय ही (मरे)
दर्भाय का यह विघ्न-कार्य है ।

(ऋध्वं मवलोन्य) एष एष चन्द्रमा,
रजतरचितदपंणप्रकाश करनिकरैर्हृदय ममाभिपीडय ।
उदयति गगने विजृम्भमाणः कुमुदवनप्रियवान्धव शशाङ्क ॥११॥

युद्धे क्रुद्धसुरेभदन्तकुलिशध्यालीढवक्षस्थल मा न रमते, क्षुद्रे क्षत्रिय-
तापसे च मक्ता ।

दिव्यास्त्रे इति—अविवेकिनी = मूढा, मुग्धा = मनोहरा, सीता =
जानकी, दिव्यास्त्रे = दिव्यायुधै मुरदैत्यदानवधमूविद्रावण = मुरा देवा
दैत्याश्च दानवा राक्षसाश्च तेषा चमूना मेनाना विद्रावणम् अपकर्त्तरिम् युद्धे
= रणे, क्रुद्धसुरेभदन्तकुलिशध्यालीढवक्षस्थलम् = क्रुद्धा कुपिता ये मुराणा
देवाना इमा गजा तेषा दन्ता दगना कुलिशा वज्रा इव तै ध्यालीटम्
आस्वादितम् वक्षस्थलम् उरस्थल यस्य तम्, मां रावणम्, न रमते = न रमयति,
क्षुद्रे = तुक्षे, क्षत्रियतापसे = क्षत्रिय चासौ तापम तपस्वी तस्मिन्, च, मक्ता
= अनुरक्ता, अस्तीति शेष, अहो = आश्चर्यम्, ध्रुव = निश्चयेन, देवस्य =
भागस्य, विघ्नत्रिया = बाधनम् । उपमालङ्कार । गार्हूलविक्रीडित छन्दः ।

अन्वय — रजतरचितदपंणप्रकाश कुमुदवनप्रियवान्धव शशाङ्क गगने
विजृम्भमाण करनिकरं मम हृदयम् अभिपीडय उदयति ।

रजतेति—रजतरचितदपंणप्रकाश = रजतेन रोप्येन रचित निर्मित
य दपंण मुकुर तस्य इव प्रकाश आलोक यस्य स, कुमुदवनप्रियवान्धव =
कुमुदाना कैरवाणा यत् वन ममूह तस्य प्रियवान्धव स्नेहीवान्धव शशाङ्क
चन्द्र, गगने = आकाशे, विजृम्भमाण = प्रसरन्, करनिकरं = रश्मिसमूहं,
मम = रावणस्य, हृदयम् = अन्तस्थलम्, अभिपीडय = मन्ताप्य, उदयति =
उदेति । उपमालङ्कार । पुष्पिनाप्राच्छन्द ।

(ऊपर देखकर) यह, यह चन्द्रमा—

चाँदी में निर्मित दपंण के प्रकाश के समान प्रकाश वाला, अपने सामर्थ्य
को प्रदर्शित करना हुआ, कुमुद-समूह का प्रियवन्धु, (यह) चन्द्रमा अपने
किरणों में मुझ (रावण) के हृदय को (काम से) पीड़ित करता हुआ आकाश
में उदित हो रहा है ।

सीता—हस्ती खु रावणओ, जो वअणगदसिद्धि वि ण जाणादि ।
[हास्य खलु रावणक , यो वचनगतसिद्धिमपि न जानाति ।]

हनूमान्—(सक्रोधम्) अहो रावणस्यावलेप ।

तौ च बाहू न विज्ञाय तच्चापि सुमहद्घनु ।

सायक चापि रामस्य गतायुरिति भापते ॥ १५ ॥

न शक्नोमि रोप धारयितुम् । भवतु अहमेदार्यरामस्य कार्यं साधयामि । अथवा,

हास्य इति—रावणक = कुत्सित रावण , खलु = निश्चयेन, हास्य = हसनीय , वचनगतसिद्धि = वचने कथने गता स्थिता सिद्धि निष्पत्ति ताम्, न जानाति = न वेत्ति ।

अहो इति—अवलेप = अभिमान ।

अन्वय —रामस्य तौ च बाहू तत् च अपि सुमहद् घनु सायक च अपि न विज्ञाय गतायु इति भापते ।

तौ चेति—रामस्य = राघवस्य, तौ = प्रतिद्वौ बाहू = भुजौ, तत् = प्रसिद्धम्, च अपि, सुमहद् = सुविशालम् घनु = चापम् सायक = वाणम्, च अपि, न विज्ञाय = न ज्ञात्वा, इति = एव प्रकारेण भापते = कथयति । अनुष्टुपच्छन्द ।

न शक्नोमीति—शक्नोमि = समर्थोऽस्मि, रोप = क्रोधम्, धारयितु = धारण कर्तुम् । कार्यं = रावणवधरूप अनुष्ठानम्, साधयामि = करोमि ।

सीता—निश्चित ही नीच रावण उपहार (हँसी) के योग्य है जो बालने का ढंग भी नहीं जानता है ।

हनुमान्—(क्रोध के साथ) ओह ! (यह) रावण का अभिमान है ।

(यह रावण) राम के उन हाथों को (उनके) उस विशाल धनुष को तथा वाण को बिना जाने ही (राम का) समाप्त आयु वाला कह रहा है ।

मैं (अपने) क्रोध को धारण करने (रोकने) में समर्थ नहीं हूँ । अच्छा, राम का कार्य कर दे रहा हूँ । अथवा—

यद्यह रावण हन्मि कार्यसिद्धिमविष्यति ।
यदि मा प्रहरेद् रक्षो महत् कार्यं विपद्यते ॥ १६ ॥

रावणः—

वरतनु ! तनुगात्रि ! कान्तनेत्रे ! कुवलयदामनिभा विमुच्य वेणीम् ।
बहुविधमणिरत्नभूषिताङ्गं दशशिरस मनमा भजस्व देवि ॥ १७ ॥

अन्वयः—यदि अह रावण हन्मि कार्यसिद्धि भविष्यति, यदि रक्ष मा प्रहरेद्, महत् कार्यं विपद्यते ।

यद्यहमिति—यदि=चेत्, अह=हनुमान्, रावण=दशाननम्, हन्मि=मारयामि, कार्यसिद्धि=कार्यस्य रावणवधन्यस्यानुष्ठानस्य सिद्धि निश्चयति, भविष्यति, यदि=चेत्, रक्ष=राक्षस रावण, मा, प्रहरेद्,=मारयेद्, महत्=विपुलम्, कार्यं=रामस्य भीताप्रत्यानयनन्यपमनुष्ठानम्, विपद्यते=निष्फलीभवति । अनुष्टुप्छन्दः ।

अन्वयन्—हे वरतनु ! तनुगात्रि ! कान्तनेत्रे ! कुवलयदामनिभा वेणी विमुच्य हे देवि । बहुविधमणिरत्नभूषिताङ्गं दशशिरस मनमा भजस्व ।

वरतन्विति—वरतनु=हे मुन्दरि, तनुगात्रि=हे कृणाङ्गी । कान्तनेत्रे=हे मुनयने । देवि=हे मीने । कुवलयदामनिभा=कुवल्याना नीलकमलाना यद् दाम माला तत्रिमा=तन्मदुगाम् वेणी=कवरीम्, विमुच्य=विहाय, बहुविधमणिरत्नभूषिताङ्गं=बहुव अनेकाः विधा प्रकारा येषां तानि यानि मणिरत्नानि बहुभूत्या पाषाणविशेषा तै भूषितानि सुगोभितानि अङ्गानि गात्राणि यस्य तम्, दशशिरस=दशानन मा रावणम्, मनसा=चित्तने, भजस्व=स्वीकृत । उपमानाङ्कार । पुष्पिताग्राछन्दः ।

यदि मैं रावण को मार हूँगा (तो मीता प्राप्तिरूपी) कार्य सिद्ध (पूरा) हो जाएगा । यदि राक्षस (रावण) मुझे मार देगा (तो मीता प्राप्ति रूपी) कार्य नष्ट हो जाएगा ।

रावण—हे मुन्दरी ! हे कृणाङ्गी ! हे मुनयने देवि (मीने) ! नीलकमल की माला के समान (इस) वेणी को छोड़कर अनेक प्रकार के मणियों तथा रत्नों से भूषित शरीर वाले (इस) दशानन (रावण) को मन से स्वीकार करो ।

सीता—ह विपरीओ खु धम्मो, ज जीवदि खु अअ पापरक्खसो ।
[ह, विपरीत खलु धर्म, यद् जीवति खल्वय पापराक्षस ।]

रावणः—ननु देवि ।

सीता—सत्तो सि । [शप्तोऽसि]

रावण—हहह, अहो पतिव्रतायास्तेज ।

देवा सेन्द्रादयो भग्ना दानवाश्च मया रणे ।

सोऽह मोह गतोऽस्म्यद्य सीतायास्त्रिभिरक्षरै ॥ १८ ॥

(निपद्ये)

हमिति—ह=खेदे । विपरीत = विरुद्ध, पापराक्षस = पाप पाप-
युक्त चासौ राक्षस निश्चर, रावण इत्यर्थ ।

अन्वय—सेन्द्रादय देवा दानवा च मया रणे भग्ना । स अहम् अद्य
सीताया त्रिभि अक्षरै मोह गत अस्मि ।

देवा इति—सेन्द्रादय = इन्द्रादिभि सह, देवा = सुरा, दानवा =
दैत्याश्च, मया = रावणेन, रणे = युद्धे, भग्ना = पराजिता, स = प्रसिद्ध,
अह = रावण, अद्य = अस्मिन्दिवसे, सीताया = जानक्या, त्रिभि =
त्रिसङ्ख्यकै, अक्षरै = वणै, 'शप्तोसि' इत्यात्मकै, मोह = मुग्धताम्, गत =
प्राप्त, अस्मि । अनुष्टुप्छन्द ।

सीता—ओह ! धर्म भी बडा उल्टा है, जो पापी राक्षस (अभी) जी
रहा है ।

रावण—हे देवि ।

सीता—(मेरे द्वारा) शाप दे दिये जाओगे ।

रावण—ओह ! पतिव्रता का तेज (आश्चर्यजनक) है ।

सम्पूर्ण इन्द्र इत्यादि देवता तथा राक्षस मेरे द्वारा युद्ध मे पराजित कर
विये गये, वही मैं आज सीता के (शप्तोऽसि—इन) तीन अक्षरों के द्वारा मुग्ध
हो रहा हूँ ।

[निपद्य मे]

जयतु देव । जयतु लङ्केश्वर । जयतु स्वामी । जयतु महाराज-
दश नाडिका पूर्णा । अतिक्रामति स्नानवेला । इत इतो महाराज ।

(निष्क्रान्ता सपरिवारो रावण)

हनूमान्—हन्त निर्गतो रावण, सुप्ताश्च राक्षसस्त्रिय । अय
वालो देवीमुपसर्पितुम् । (कोटरादवगच्छ) जयत्वविधवा ।

प्रेषितोऽह नरेन्द्रेण रामेण विदितात्मना ।

त्वद्गतस्नेहसन्तापविकल्बीकृतचेतसा ॥ १९ ॥

जयत्विति—लङ्केश्वर = लङ्का रावण, नाडिका = घटिका, पूर्णा =
समाप्ता, स्नानवेला = स्नानसमय, अतिक्रामति = अत्येति ।

हन्तेति—हन्त = रोधे । निर्गत = निर्यात, सुप्ता = शयिता, राक्षस-
स्त्रिय = राक्षसानाममुराणा स्त्रिय नार्य, अयम् = एव, काल = समय,
देवी = सीताम्, उपसर्पितुम् = उपयातुम् अविधवा = सीतामावती ।

अन्वय — विदितात्मना त्वद्गतस्नेहसन्तापविकल्बीकृतचेतसा नरेन्द्रेण
रामेण अहं प्रेषित ।

प्रेषित इति—विदितात्मना = ज्ञातमूर्ति, त्वद्गतस्नेहसन्तापविकल्बी-
कृतचेतसा = त्वयि सीताया गत स्थित य स्नेह प्रणय तस्मात् य सन्ताप,
दुःख तेन विकल्बीकृत विह्वलीकृत चेत मन यस्य तेन, नरेन्द्रेण = राजा
रामेण = रामेण प्रेषित अस्मि = प्रहित अस्मि । अनुष्टुप्छन्द ।

देव विजयी हावे, लङ्केश्वर विजयी होवे, स्वामी विजयी होवे, महाराज
विजयी होवे । दश वज गया । स्नान का समय बीत रहा है । महाराज
इधर, इधर से (चलिए) ।

(सपरिवार रावण निकल जाता है)

हनूमान्—अरे ! रावण निकल गया और राक्षसा की स्त्रियाँ सो
गयी । देवी (सीता) के समीप चम्पने का यह (उचित) समय है । (कोटर से
उतर कर) सुहागिनी (आप) की जय हो ।

आप (सीता) के स्नेह के सन्ताप से व्याकुल हृदय वाले आत्मज्ञ राजा
राम के द्वारा मैं भेजा गया हूँ ।

सीता—(आत्मगतम्) को पृ खु अत्रं, पापरक्तो अय्यउत्तकेरजोति
अत्ताणं वधदिसिअ वाणररूवेण मं वञ्चिदुकामो भवे । भोदु, तुह्मिआ
भविस्सं । [को नु खत्वयं, पापराक्षत आर्यपुत्रसम्बन्धीत्यात्मानं वरदिस्य
वानररूपेण मा वञ्चयितुकामो भवेत् । भवतु, तूष्णीका भविष्यामि ।]

हनूमान्—कथ न प्रत्येति भवती । अलमन्यशङ्कया । धोतुमहंति
भवती ।

इक्ष्वाकुकुलदीपेन सन्धाय हरिणा त्वहम् ।

प्रेषितस्त्वद्विचित्यर्थं हनूमान् नाम वानरः ॥ २० ॥

कोन्विति—पापराक्षत = पाप पापयुक्त राक्षत निशाचर, आर्यपुत्र-
सम्बन्धी = आर्यपुत्रस्य प्राणनापस्य सम्बन्धी सम्बन्धवान्, आत्मानं = स्वम्
वरदिस्य = कथयित्वा, वञ्चयितुकाम = वञ्चयितुं प्रतारयितुं कामः
अभिलाष यस्य स । तूष्णीका = शान्ता ।

कथमिति—प्रत्येति = विश्वासिति । अन्यशङ्कया = अन्यथा चिन्तता ।

अन्वयः—इक्ष्वाकुकुलदीपेन सन्धाय हरिणा त्वद्विचित्यर्थम् अहं हनूमान्
नाम वानर प्रेषित ।

इक्ष्वाकुकुलेति—इक्ष्वाकुकुलदीपेन = रघुवशधेष्ठेन रामेण, सन्धाय =
सन्धि कृत्वा, हरिणा = वानरेण सुग्रीवेण, त्वद्विचित्यर्थं = तव ते सीतायाः
विचिन्तितः अन्वेषण तस्मै, अहं = हनूमान्, हनूमान् = पवनतनय, नाम, वानरः
= कपि, प्रेषित = प्रहित । उपमालङ्कार । अनुष्टुप्छन्दः ।

सीता—(अपने मन में) यह कौन है ? यह कोई पानी राक्षस (अपने
को) आर्यपुत्र (राम) का सम्बन्धी बतला कर वानर के रूप से मुझे छुटना
चाहता है । ठीक है, चुपचाप रहूँगी ।

हनूमान्—आप विश्वास क्यों नहीं करती हैं । अन्यथा मोचना व्यर्थ है ।
आप सुनिए—

वानरो से सन्धि करके आप की खोज करने के लिए इक्ष्वाकुकुल
दीपक (राम) के द्वारा भेजा गया मैं हनूमान् नामक नामक वानर हूँ ।

सीता—(आत्मगतम्) जो वा को वा भोदु । अय्यउत्तणामशङ्गित-
णेण अह एदेण अभिभासिस्म । (प्रवासम्) भद्र ! वुत्तन्तो अय्यउत्तस्स ।
(यो वा को वा भवतु । आर्यपुत्र नामसङ्कीर्तनेनाहमेतेनाभिभाषिय्ये । भद्र !
को वृत्तान्त आर्यपुत्रस्य ?)

हनूमान्—भवति ! श्रूयताम्,

अनशनपरितप्त पाण्डु स क्षामवक्त्र

तव वरगुणचिन्तावीतलावण्यलीलम् ।

वहति विगतधैर्यं हीयमान शरीर

मनसिजशरदग्ध वाष्पपर्याकुलाक्षम् ॥ २१ ॥

यो वेति—आर्यपुत्रनामसङ्कीर्तनेन = आर्यपुत्रस्य प्राणनाथस्य नाम्नः
नामधेयस्य सङ्कीर्तनेन उच्चारणेन, अह = सीता, एतेन = पुरोवर्तमानेन
हनूमता, अभिभाषिय्ये = आलपिष्यामि । वृत्तान्त = समाचार ।

भवतीति—श्रूयताम् = आकर्ष्यताम् ।

अन्वयः—स अनशनपरितप्त पाण्डु क्षामवक्त्र तव वरगुणचिन्तावीतलावण्य-
लील मनसिजशरदग्ध विगतधैर्यं वाष्पपर्याकुलाक्ष हीयमान शरीर वहति ।

अनशनेति—स = राम, अनशनपरितप्त = अनशनेन अनाहारेण परितप्त
पीडितम्, पाण्डु = पीतवर्णम्, क्षामवक्त्र = शुष्कमुखम्, तव = सीताया,
वरगुणचिन्तावीतलावण्यलील = वरगुणा श्रेष्ठगुणा तेषा चिन्तया
चिन्तनेन, वीतलावण्यलील ममाप्तसौन्दर्यविलासम् मनसिजशर-
दग्ध = कामवाणपीडितम्, विगतधैर्यं = धैर्यरहितम् वाष्पपर्याकुलाक्ष =

सीता—(अपने मन में) जो कोई भी हो । आर्यपुत्र का नाम देने के
कारण इससे बातें करूँगी । (प्रकट रूप में) हे भद्र ! आर्यपुत्र का क्या
समाचार है ।

हनूमान्—हे देवि ! सुनिष्—

वे राम अनाहार के कारण सन्तप, पीत वर्ण वाले, सूखे हुए मुख वाले,
आप के श्रेष्ठ गुणों का चिन्तन करने के कारण सौन्दर्य और विलास से
रहित, कामदेव के वाणों से जले हुए धैर्य-रहित, अथु पूर्ण अर्खाँ वाले,
दुर्बल शरीर को धारण कर रहे हैं ।

सीता—(आत्मगतम्) हृदि वीलिजा खु म्हि मन्दभाषा एव सो-
 अन्त अव्यउत्त सुणिअ । अव्यउत्तस्स विरहपरिस्तम वि मे सफलो स-
 वृत्तो त्ति पेक्खामि, जदि खु अज वाणरो सच्च मन्नेदि । अव्यउत्तस्स
 इमस्सि जणे अणु वक्कीस परिस्तम च सुणिअ चुहत्त दुक्खत्त अ
 अन्तरे डोलाआदि विअ मे हिअअ । (प्रकाशम्) भद् ! कह तुम्मेहि
 अव्यउत्तस्स सङ्गामो जादो । [हा धिाब्रीडिना खन्वस्मि मन्दभागा एव
 शोचन्तमार्यपुत्र ध्रुवा । आर्यपुत्रस्य विरहपरिधमोऽपि मे सफलं सवृत्त इति
 पश्यामि, यदि खल्वय वानर सत्य मन्त्रयते । आर्यपुत्रस्यास्मिन् जनेऽनुक्रोश-
 परिधम च ध्रुत्वा सुखस्य दुःखस्य चान्तरे दोलायत इव मे हृदयम् । भद्र !
 कय मुष्माभिरार्यपुत्रस्य सङ्गमो जात] ।

हनुमान्—भवति ! श्रूयताम्—

अध्रुपूर्वनेत्रम्, हीयमान = क्षीयमाणम्, शरीर = देहम् वहति = धारयति ।
 काव्यलिङ्गमलङ्कार । मालिनीच्छन्द ।

हा धिनेति—ब्रीडिता = लज्जिता, मन्दभाषा = दुर्भाग्यशालिनी, शोचन्त
 = चिन्तयन्तम् । विरहपरिधम = वियोगवेद, सवृत्त = जात, मन्त्रयते =
 कथयति । जस्मिन् जने = भवि सीतायाम्, अनुक्रोश = अनुसम्पाम्, परिधम =
 श्रमम्, अन्तरे = मध्ये, मे = मम, सीताया, हृदयम् = अन्तःकरणम्, दोलायत
 इव = दोला प्रेक्षा वृद्धत्वाचरण करोति इव । सङ्गम = समागम ।

सीता—(पपने मन मे) ओह ! धिक्कार है । इस प्रकार (मेरे प्रति)
 शोक करते हुए आर्यपुत्र (के समाचार) को सुनकर मैं अभागिनी लज्जित हो
 रही हूँ । यदि यह वानर सत्य कह रहा है तो मेरा आर्यपुत्र विषयक विरह-
 कष्ट भी सफल हो गया, ऐना मैं देखती (समझती) हूँ । आर्यपुत्र का इस
 व्यक्ति (मुझ सीता) के प्रति दया और सन्ताप को सुनकर मेरा हृदय मानो
 झूले के समान सुख और दुःख के बीच लटक रहा है । (प्रकट रूप मे)
 हे भद्र ! कैसे आर्यपुत्र को आप से भेंट हुई ।

हनुमान्—आप, सुनिए—

हत्वा वालिनमाह्वे कपिवर त्वत्कारणादग्रज

सुग्रीवस्य कृत नरेन्द्रतनये । राज्य हरीणा तत ।

राजा त्वद्विचयाय चापि हरय सर्वा दिश प्रेषिता-

स्तेषामस्म्यहमद्य गृध्रवचनात् त्वा देवि । सम्प्राप्तवान् ॥ २२ ॥

अपि च, ईदृशामिव ।

सीता—अहो अकरुणा कसु इस्तरा एव सोअन्त अय्यउत्त कर-
अन्तो [अहो अकरुणा खल्वीद्वरा एव सोचन्तमार्यपुत्र कुर्वन्त ।]

अन्वय —हे नरेन्द्रतनये ! त्वत्कारणात् अग्रज कपिवर वालिन हत्वा तत हरिणा राज्य सुग्रीव वृतम् । राजा च त्वद्विचयाय हरय सर्वा दिश प्रेषिता । हे देवि ! तेषाम् अहम् अद्य गृध्रवचनात् त्वा सम्प्राप्तवान् अस्मि ।

हत्वेति—नरेन्द्रतनय=हे राजपुत्री !, त्वत्कारणात्=तव हेतो, अग्रज =ज्येष्ठभ्रातरम् कपिवर=वानरज्येष्ठम् वालिन=एतन्नामक सुग्रीवाग्रजम्, हत्वा=मारयित्वा, तत=तत्पश्चात् हरीणा=वानराणाम्, राज्य=राज्य-कार्यम्, सुग्रीवस्य=एतन्नामकस्य वानरेन्द्रस्य, वृत=विहितम्, राजा=सुग्रीवेण, त्वद्विचयाय=तव विचयाय अन्वेयणाय, हरय=वानरा च सर्वा=निखिला, दिश=दिशा, प्रेषिता=प्रहिता । देवि=हे महिषि ! तेषा=कपीनाम्, अह=हनुमान्, अद्य=अस्मिन्दिवसे, गृध्रवचनात्=गृध्रस्य सम्पाते वचनात् कथनात्, त्वा=सीताम्, सम्प्राप्तवान्=आगतवान् अस्मि । शौर्द्धलविब्रीडित छन्द ।

हे राजकुमारी ! आप के कारण युद्ध में सुग्रीव के बड़े भाई कपीन्द्र वाली को मारकर तत्पश्चात् (सुग्रीव) को वानरों का राज्य (दिया) । (तदनन्तर) आप को खोजने के लिए राजा (सुग्रीव) के द्वारा सभी दिशाओं में वानर भेजे गये हैं । हे देवि ! उन्हीं में से मैं आज गृध्र (जटायु) के वचनानुसार आप को पा सका हूँ ।

और भी, ऐसा ही है ।

सीता—ओह ! आर्यपुत्र को चिन्तित करना हुआ ईश्वर निश्चित ही निष्कुर है ।

हनूमान्—भवति मा विपादेन । रामो हि,

प्रगृहीतमहाचापो वृतो वानरसेनया ।

समुद्धर्तुं दशग्रीवं लङ्कामेवाभियास्यति ॥ २३ ॥

सीता—किष्णु सिविणो मए दिट्ठो । भद्र ! अवि सच्चं । ण
आणामि । [किन्तु खलु स्वप्नो मया दृष्टः । भद्र ! अपि सत्यम् ? न जानामि ।]

हनूमान्—(स्वगतम्) भो ! कष्टम् ।

एव गाढं परिजाय भर्तारं भर्तृवत्सला ।

न प्रत्यायति शोकार्ता यथा देहान्तरं गता ॥ २४ ॥

अहो इति—अकरुणा = निष्ठुराः, ईश्वरा. = देवाः । निष्पादन =
शाकेन ।

अन्वयः—प्रगृहीतमहाचाप वानरसेनया वृत (राम.) दशग्रीवं समुद्धर्तुं
लङ्काम् एव अभियास्यति ।

प्रगृहीतेति—प्रगृहीतमहाचाप = प्रगृहीतः धृतः महान् चापः धनु येन
सः, वानरसेनया = कपिबलेन, वृतः = परिवृत्तः, दशग्रीवं = रावणम्, समुद्धर्तुं
= विनाशयितुम्, लङ्कामेव = एतन्नामकनगरीमेव, अभियास्यति =
आक्रमिष्यति ।

किन्निवति—मया = सीतया, स्वप्न. = स्वाप. दृष्ट. = विलोकित. ।

अन्वयः—भर्तृवत्सला भर्तारम् एव गाढ परिजाय शोकार्ता न प्रत्या-
यति यथा देहान्तरं गत ।

हनुमान्—आप शोक न करे । क्योंकि राम—

विशाल धनुष को धारण करने वाले, वानर सेना से युक्त (राम) दशानन
(रावण) को मारने के लिए लङ्का पर शीघ्र ही आक्रमण करेगा ।

सीता—क्या मेरे द्वारा स्वप्न देखा जा रहा है । है भद्र ! क्या सच है ।
मैं नहीं जानती हूँ ।

हनुमान्—(अपने मन में) ओह ! कष्ट है ।

पतिपरायणा तथा शोकार्ता (सीता) पति के विषय में इस प्रकार भली-
भाँति जानकर भी विश्वास नहीं कर रही है, जैसे (यह) लोकान्तर गयी
हुई हो ।

(प्रकाशम्) भवति ! अयमिदानीं,

समुद्रिनवरचापवाणशानि पतिमिह राजमुने ! तवानयामि ।

भव हि विगतमशया मयि त्व नरवरपाश्र्वंगता विनीतशोका ॥२५॥

सीता—भद्र ! एत मे अवय्य मुनित्र अव्यडतो जट मोत्रपरवसो
प होड, तह मे उत्तन्नं भणेहि । [भद्र ! एता मंत्रम्या शुन्वायंतुवो यथा
शोक-परवसो न भवति, तथा मे वृत्तान्त मा ।]

एवमेति—भवृवमन्त्रा=वृत्तिप्रिया, मन्त्रार=पतिम्, एवम्=अनेन
प्रकारेण, गाह=पूजया, परिशान=शांता, शोकार्ता=दुःख पीडिता, न=
नहि, अयमायति=विश्वमिति, यथा=यैत प्रकारेण, देहान्तर=द्वितीय
शरीरम्, एत.=प्रात । जमुष्टुप्लन्द ।

जन्वत्र—हे राजमुने ! समुद्रिनवरचापवाणशानि तव पतिम् इह
वानयामि, त्वं हि मयि विगतमशया नरवरपाश्र्वंगता [विनीतशोका भव ।

समुद्रिनेति—राजमुने=हे राजशुमारि ! समुद्रिनवरचापवाणशानि=
समुद्रिनीं उच्यते च वगे विनाशो च चापवाणो धनुश्च. च शानो यस्य तम्,
तव=मीनाया, पति=भर्ताम्, इह=अत्र, वानयामि=प्राणयामि, त्व=
मीता, हि=निश्चयेन, मयि=ममविरुद्धे, विगतमशया=सन्देहरहिता,
नरवरपाश्र्वंगता=नरवरस्य नरश्रेष्ठस्य रामस्य पार्श्वे स्तानीय मता प्राप्ता,
विनीतशोका=शोकग्रहिता, भद्र=म्या । पुनिताप्राच्छन्द ।

भद्रेति—भद्र=हे कन्यागणारक ! मे=मय, एता=पूरोवर्तमानाम्
अवम्या=दशाम्, शुवा=आकल्पं, यथा=यैत प्रकारेण, शोकपरवस=दुःख-

(प्रकट न्य मे) हे पूजनीय ! यह अब—

हे राजशुमारो ! हाथ में विनाश धनुष और बाण धारण करने वाले
तुम्हारे पति (राम) को (लड्डा में) लाऊँगा । मेरे प्रति निशुद्ध हो गए ।
आप (मीत्र ही) नरेन्द्र (राम) की समीपवर्ती तथा शोक-रहित होंगी ।

मीना—हे भद्र ! मेरी ऐसी अवस्था का मुनकर बायंतुव शोकाभिभूत न
हो जाय, इस प्रकार मेरे समाचार को (उतमें) कहता ।

हनूमान्—यदाज्ञापयति ।

सीता—गच्छ, कथ्यसिद्धी होतु । (गच्छ, कार्यसिद्धिर्भवतु ।)

हनूमान्—अनुगृहीतोऽस्मि । (परिक्रम्य) कथमिदानीं ममागमन
रावणाय निवेदयामि । भवतु, दृष्टम् ।

परभृतगणजुष्ट पद्मपण्डाभिराम

सुरुचिरतरुपण्ड तोयदाभ त्रिकूटम् ।

करचरणविमर्दं कानन चूर्णयित्वा

विगतविषयदर्पं राक्षसेश करोमि ॥ २६ ॥

पराधीन, न भवति, तथा = तेन प्रकारेण, मे = मम, वृत्तान्त = रामाचारम्,
भण = कथय ।

अनुगृहीत इति—अनुगृहीत = अनुकम्पित, निवेदयामि = सूचयामि,
दृष्ट = चिन्तितम् ।

अन्वय—करचरणविमर्दं परभृतगणजुष्ट पद्मपण्डाभिराम सुरुचिरतरु-
पण्ड तोयदाभ त्रिकूट कानन चूर्णयित्वा राक्षसेश विगतविषयदर्पं करोमि ।

परभृतेति—करचरणविमर्दं = करचरणं हस्तपादै विमर्दं मर्दनं,
परभृतगणजुष्ट = परभृतानां कोकिलानां गणेन समूहेन जुष्टं सेवितम्,
पद्मपण्डाभिराम = पद्मानां कमलानां पण्डेन समूहेन अभिरामं शोभायमानम्,
सुरुचिरतरुपण्ड = सुरुचिरा मनोहरा ये तरुपण्डा वृक्षसमूहा यस्मिन् तत्,

हनूमान्—आप जैसी आज्ञा देती है । (वैसा ही करूँगा) ।

सीता—जाओ । कार्य पूरा होवे ।

हनूमान्—मैं अनुगृहीत हूँ । (घूमकर) अपने आने की सूचना रावण को
कैसे दूँ । अच्छा, (उपाय) सूझ गया ।

कोयलो के समूह से सेवित, कमल-कुलो से शोभायामन रमणीय वृक्षो
वाले, मेघ के समान श्यामल इस त्रिकूट (नामक) उपवन को (अपने) हाथो
तथा पैरो के घातो से मर्दित करके राक्षसेन्द्र (रावण) को गर्व रहित कर
रहा हूँ ।

(निगन्तौ)

॥ इति द्वितीयोऽङ्कः ॥



तोषदामं=वादलमदुग्मम्, शिङ्कटं=शय विनय्यकाः कुटा. शंकरशुद्धाणि
 यस्मिन् तद्, कातनं=वनम्, सुगंधित्वा=मर्दित्वा, गलमेगं=गलमेगं
 रात्रमम्, विगतविषयदर्पं=विगत नष्ट. विषयदर्पं. अस्मिन्मनः मस्य तम्,
 करोमि=विदयामि । इदमालङ्कारः । भाषितोच्छ्रितः ।

॥ इति द्वितीयोऽङ्कः ॥



(दोनों निकल जाते हैं)

॥ द्वितीय अङ्क समाप्त ॥



अथ तृतीयोऽङ्कः

(तत प्रविशति शङ्कुकर्णं)

शङ्कुकर्णः—क इह भोः ! काञ्चनतोरणद्वारमशून्यं कुरुते ।

(प्रविश्य)

प्रतिहारी—अय्य ! अहं विजया । किं करीअदु । [आर्यं ! अहं विजया । किं क्रियताम् ?]

शङ्कुकर्णः—विजये ! निवेद्यतां निवेद्यतां महाराजाय लङ्केश्वराय—भग्नप्रायाशोकवनिकेति । कुतः,
यस्या न प्रियमण्डनापि महिषी देवस्य मन्दोदरी
स्नेहाल्लुम्पति पल्लवान् च पुनर्वीजन्ति यस्यां भयात् ।

कइहेति—इह=अत्र, काञ्चनतोरणद्वार=काञ्चनस्य सुवर्णस्य, तोरणद्वारंबहिर्द्वारम्, अशून्यं=न शून्य रहितम्, कुरुते=विधत्ते ।

विजयेति—निवेद्यता=सूच्यताम्, लङ्केश्वराय=रावणाय, भग्नप्राया=भग्नः विनिष्टः प्रायः बाहुल्य यस्या सा, अशोकवानिका=अशोकवनिका ।

अन्वयः—यस्या देवस्य महिषी मन्दोदरी प्रियमण्डना अपि सती स्नेहात् पल्लवान् न लुम्पति, यस्या च पुन करै अपृष्टबालद्रुमा वीजन्त मलया-

(तत्पश्चात् शङ्कुकर्णं प्रवेश करता है)

शङ्कुकर्णं—यहाँ काञ्चनतोरण द्वार पर कौन उपस्थित है ?

(प्रवेश करके)

प्रतीहारी—हे आर्य ! मैं विजया हूँ । क्या किया जाय ।

शङ्कुकर्णं—हे विजया ! सूचित करो, महाराजा लङ्केश्वर (रावण) को सूचित करो कि अशोकवाटिका भग्नप्राय हो गयी । क्योंकि—

आभूषण-प्रिया (आभूषण को पसन्द करने वाली) भी महाराज (आप) की महारानी मन्दोदरी स्नेह के कारण जिस (अशोकवाटिका) में पत्ते नहीं

बीजन्तो मलयानिला अपि करैरस्पृष्टवाल्द्रुमाः

सेय शत्रुरिपोरशोकवनिना भग्नेति विज्ञाप्यताम् ॥ १ ॥

प्रतिहारी—अर्थ 'णिञ्च भट्टिपादमूले वर्तमानम् जणस्स अदिट्टुपुरुषो अञं सम्ममो । कि एद । [अर्थ ' नित्य भट्टिपादमूले वर्तमानस्य जनस्यादृष्टपूर्वोऽयं मन्त्रम । किमेतद् ।]

शट्कुकर्णः—भवति । अतिपाति कार्यमिदम् । शीघ्र निवेद्यता

लिना अपि भयात् न बीजन्ति, सा इय शत्रुरिपो अशोकवनिना भग्ना इति विज्ञाप्यताम् ।

यस्यामिति—यस्याम् = अशोकवाटिकायाम्, देवस्य = महाराजस्य, भट्टिपो = राज्ञी मन्दोदरी, प्रियमण्डना अपि = आभूषणप्रिया अपि, स्नेहान् = प्रेम्ण, पश्यन् = किमल्लयान्, न लुम्पति = न त्रोटयति, यस्याम् = अशोकवाटिकायाम्, बीजन्त = चल्न्त, मलयानिला अपि = मलयवायव अपि, भयात् = भोते, न पुन बीजन्ति = नैव बहन्ति, मा = अशोकवाटिका च, करै = हस्तै, अस्पृष्टवाल्द्रुमा = अस्पृष्टा न परामृष्टा वाल्द्रुमा लघुवृक्षा यस्या मा, सा = पूर्वोक्ता, इय = पुरावर्तमाना, शत्रुरिपो = रावणस्य, अशोकवनिना = अशोकवाटिका, भग्ना = टिन्ना-भिन्ना जाता । शार्ङ्गलविक्रीडिन इन्द ।

आर्येति—नित्य = प्रतिदिनम्, भट्टिपादमूले = स्वामीचरणतले, वर्तमानस्य = विद्यमानस्य, जनस्य = द्यक्ते मन्त्रम = वैकथ्यम् ।

भवतीति—अतिपाति = आकस्मिकम् ।

तोडती थी, हुआ करने वाले मलयानिल भी (आप के) भय से जिसमें पाना नहीं मिलते थे । जिसके वृक्ष के पत्ते नहीं छुए गये हैं, इन्द्रमनु (रावण) की वही अशोकवाटिका तोड जाती गयी—ऐसा (रावण से) सूचित कर दो ।

प्रतिहारी—हे आर्य ! प्रतिदिन स्वामी के चरणों में रहने वाले व्यक्ति (आप शट्कुकर्ण) का यह अपूर्वदृष्ट (इतनी अधिक) घबराहट क्यों है । यह क्या (बात) है ?

शट्कुकर्ण—हे पूजनीय ! यह कार्य बहुत शीघ्रता वाला है । सूचित करो,

निवेद्यताम् ।

प्रतिहारी—अय्य ! इय णिवेदेमि । (निष्क्रान्ता) [आर्यं ! इय निवेदयामि ।]

शङ्कुकर्ण—(पुरतो विलोक्य) अये, अय महाराजो लङ्केश्वर इत एवाभिवर्तते । य एय ,

अमलकमलसन्निभोग्रनेत्र कनकमयोज्ज्वलदीपिकापुरोग ।

त्वरितमभिपतत्यसौ सरोपो युगपरिणामसमुद्यतो ययार्कं ॥ २ ॥

(तत प्रविशति यथानिदिष्टो रावण)

अये इति—अभिवर्तते = आगच्छति ।

अन्वय —अमलकमलसन्निभोग्रनेत्र कनकमयोज्ज्वलदीपिकापुरोग सरोप असौ यथा युगपरिणामसमुद्यत एक (तथा) त्वरितम अभिपतति ।

अमलकमलेति—अमलकमलसन्निभोग्रनेत्र = अमल स्वच्छ यत् कमल जलज तत्सन्निभे तत्सदृशे उग्रे भीषणे नेत्रे नयने यस्य स कनकमयोज्ज्वलदीपिकापुरोग = कनकमया सुवर्णयुक्ता उज्ज्वला शुभ्रा दीपिका उत्का पुरोगा अग्रगामिन्य यस्य स सरोप = सक्रोध, असौ = पुरोवतमान रावण इति शेष, यथा = येन प्रकारेण युगपरिणामसमुद्यत = युगपरिणामाय युगान्ताय समुद्यत उद्युक्त, एक = मूय यथा = इव त्वरित = शीघ्रम् अभिपतति = अभिगच्छति । उपमालङ्कार । पुष्पिताग्राच्छन्द ।

शीघ्र सूचित करो ।

प्रतिहारी—हे आर्य ! यह मैं सूचित करती हूँ । (निकल जाती है)

शङ्कुकर्ण—(चारो ओर देखकर) अरे ! यह महाराज लङ्केश्वर इधर ही आ रहे हैं । जो यह—

निमल कमल के समान तथा भीषण आँखा वाले आगे आगे चलने वाले सुवर्णमय उज्ज्वल दीपक से युक्त ये (महाराज रावण) क्रोध के साथ प्रलयकालिक सूर्य की भाँति शीघ्रता से आ रहे हैं ।

(तत्पश्चात् यथोक्त अवस्था वाला रावण प्रवेश करता है)

रावणः—

कय कय भो नववाक्यवादिञ्छृणोमि शीघ्र वद केन चाद्य ।

मुमुर्षुणा मुक्तभयेन घृष्ट वनाभिमर्दान् परिर्घपितोऽहम् ॥ ३ ॥

शङ्कुकर्णः—(उपमृत्य) जयतु महाराज । अविदितागमनेन केनचिद् वानरेण समरम्भमभिमृदिताशोकवनिका ।

रावणः—(भावज्ञम्) कय वानरेणेति । गच्छ, शीघ्र निगृह्याणय ।

शङ्कुकर्णः—यदाज्ञापयति महाराज. । (निष्क्रान्त) ।

अन्वयः—भो नववाक्यवादिन् ' शृणोमि, शीघ्र वद, मुमुर्षुणा मुक्त-भयेन केन च कय कयम् अद्य वनाभिमर्दान् अहं घृष्ट परिर्घपित ।

कथमिति—भो नववाक्यवादिन् = ह नूननवाक्यवक्ता धृणोमि = यवण करोमि, शीघ्र = त्वरितम्, वद = कयम्, केन, मुमुर्षुणा = मृत्युमभिलषता, मुक्तभयेन = निर्भयेन, अद्य = अस्मिन् दिवसे, वनाभिमर्दान् = वनस्य अशोक-वाटिकाया. अभिमर्दान् भङ्गात्, अहं = रावण, घृष्ट = घृष्टतापूर्वकम्, परिर्घपित = तिरस्कृत, अस्मीति शेष । उपेन्द्रव्याचछन्दः ।

जयत्विति—अविदितागमनेन = अविदितम् अज्ञातम् आगमनम् यस्य तेन, समरम्भं = सङ्ग्रामम्, अभिमृदिता = अभिमर्दिता ।

कथमिति—निगृह्य = गृहीत्वा, आणय = प्राणय ।

रावणः—

अरे नयी बात कहने वाले । मैं मृत रहा हूँ । शीघ्र बत-गयो—अपनी मृत्यु को चाहने वाले अत एव निर्भय किस (व्यक्ति) के द्वारा घृष्टतापूर्वक वन का विनाश करने के कारण मैं अपमानित किया गया हूँ ।

शङ्कुकर्णः—(समीप जाकर) महाराज विजयी हूँ। अकरमाद् आये हुए निमी वानर के द्वारा शीघ्रता से अशोकवाटिका उजाड़ दी गयी है ।

रावणः—(तिरस्कार पूर्वक) क्या वानर के द्वारा (अशोकवाटिका उजाड़ दी गयी) । जाओ शीघ्र एकड़कर ले आओ ।

शङ्कुकर्णः—जैसी आज आज्ञा देते हैं । (निष्क्रान्त है) ।

रावणः—भवतु भवतु ।

युधि जगत्त्रयभीतिकृतोऽपि मे यदि कृत त्रिदशैरिदमप्रियम् ।
अनुभवन्त्वचिरादमृताशिन फलमतो निजशाठ्यसमुद्भवम् ॥ ४ ॥

(प्रविश्य)

शङ्कुकर्ण—जयतु महाराज । महाराज ! महाबल खलु स
वानर । तेन खलु मृणालवद्द्रुत्पाटिता सालवृक्षा, मुष्टिना भग्नो दारु-
पर्वतक, पाणितलाभ्यामभिमृदितानि लतागृहाणि, नादेनैव विसर्जो-

अन्वय—यदि युधि जगत्त्रयभीतिकृत अपि मे इदम् अप्रिय त्रिदशै कृत
(तर्हि) अमृताशना अत निजशाठ्यसमुद्भव फलम् अचिरात् अनुभवन्तु ।

युधीति—यदि=चेत्, जगत्त्रयभीतिकृत अपि=लोकत्रयभयकारकस्य
अपि, मे=मम, इदम्=एतद्, अप्रियम्=अप्रीतिकरम्, त्रिदशै=देवै, कृत
=विहितम्, तर्हि, अमृताशिन=देशा, अत=अस्मात् कारणात्, निजशाठ्य-
समुद्भव=निज स्वकीय शाठ्य धूर्तता तस्मात् समुद्भव उत्पत्ति यस्य तत्,
फल=परिणामम्, अचिरात्=शीघ्रमेव, अनुभवन्तु=प्राप्नुवन्तु । द्रुत-
विलम्बित छन्द ।

जयत्विति—महाबल=अतिबलशाली, तेन=वानरेण, सालवृक्षा=
सालनामकतरव, मृणालवत्=कमलदण्डवत्, उत्पाटिता=उन्मूलिता,
दारुपर्वतक=दारुनामक पर्वत, मुष्टिना=मुष्टिकया, भग्न=विनाशित,
लतागृहाणि=कुञ्जानि, पाणितलाभ्या=करतलाभ्याम्, अभिमृदितानि=

रावण—अच्छा, अच्छा !

युद्ध मे तीनों लोको को भयभीत करने वाले मुझ रावण का यदि देवताओं
द्वारा यह अप्रिय (कार्य) किया गया है तो अमृत का भोजन करने वाले वे
(देवता) अपनी दुष्टता से उत्पन्न फल को शीघ्र प्राप्त करेंगे ।

[प्रवेन करके]

शङ्कुकर्ण—महाराज विजयो हे । हे महाराज ! यह वानर बड़ा बल
शाली है । उसके द्वारा ही साल के वृक्ष कमलनाल की तरह उखाड़ दिये गये,
मुष्टिका (के प्रहार) से दारु पर्वत तोड़ दिया गया, करतल (हथेली) से लता-

कृता. प्रमदवनपालाः । तस्य ग्रहणसमर्थं बलमाज्ञापयितुमर्हति
महाराजः ।

रावण.—तेन हि किङ्कराणा सहस्र बलमाज्ञापय वानरग्रहणाय ।

शङ्कुकर्णः—यदाज्ञापयति महाराजः (निष्क्रम्य प्रविश्य) जयतु
महाराजः ।

अस्मदीयैर्महावृक्षैरस्मदीया महाबल ।

क्षिप्रमेव हतास्तेन किङ्करा द्रुमयोधिना ॥ ५ ॥

विदन्तिताति, प्रमदवनपाला = प्रमदोद्यानरक्षका, नादेन = गर्जनेन, विसं-
जीवृता मूर्च्छितकृता । तस्य = वानरस्य, ग्रहणसमर्थं = ग्रहणे आरोधे समर्थम्
समम्, बलं = सैन्यम्, आज्ञापयितु = आदेश्चुम्, अर्हति = समर्थोऽस्ति ।
तेन हि इति—किङ्कराणा = सैनिकानाम् सहस्रमश्याकम्, बल = सेनाम्,
अज्ञापय = आदिश ।

अन्वय.—द्रुमयोधिना तेन अस्मदीयैः महावृक्षैः अस्मदीयाः महाबलाः
किङ्करा क्षिप्रम् एव हता ।

अस्मदीयैः इति—द्रुमयोधिना = द्रुमै बृक्षै युद्धयते युद्धं करोतीति
तयोक्तेन, तेन = वानरेण, अस्मदीयैः = अस्माकीनै, महावृक्षैः = महातरुभिः,
अस्मदीया = अस्माकीना, महाबला = महाबलयुक्ता, किङ्कराः = भृत्याः,
क्षिप्र = त्वरितम्, एव, हता = मारिता । अनुष्टुप्छन्द ।

यह मसल दिये गये, गर्जन से ही प्रमदवन के रक्षक मूर्च्छित कर दिये गये ।
उसको पकड़ लाने में समर्थ सैनिक को महाराज आज्ञा दीजिए ।
रावण—तो भृत्यों की एक हजार सेना को वानर को पकड़ने के लिए
आदेश दे दो ।

शङ्कुकर्ण—जैसी आप की आज्ञा । (निकल कर पुन प्रवेश करके)
महाराज विजयी होवे ।

वृक्ष से युद्ध करने वाले (उस वानर) के द्वारा हमारे ही वृक्षों से (प्रहार
करके) हमारी बलशाली सेना शीघ्र ही मार दी गयी ।

रावणः—कथं हता इति । तेन हि कुमारमक्षमाज्ञापय वानर-
ग्रहणाय ।

शङ्कुकर्ण—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रान्त ।)

रावणः—(विचिन्त्य)

कुमारो हि कृतास्त्रश्च शूरश्च बलवानपि ।

प्रसह्य चापि गृह्णीयाद्धन्याद् वा त वनौकसम् ॥ ६ ॥

(प्रविश्य) -

शङ्कुकर्णः—अनन्तरीय बलमज्ञापयितुमर्हति महाराज ।

रावणः—किमर्थम् ?

अन्वयः—कुमारः कृतास्त्रः शूरः बलवान् अपि (अस्ति), प्रसह्य च अपि
तं वनौकसं गृह्णीयात् हन्यात् वा ।

कुमार इति—कुमार = अक्षय, हि = निश्चयेन, कृतास्त्रः = कृतानि
शिखितानि अस्त्राणि आपुधानि येन, शूर = वीर, बलवान् अपि = बलशाली
अपि, अस्त्र इति शेष । प्रसह्य = बलात्, त = पूर्वोक्तम्, वनौकस = वानरम्,
गृह्णीयात् = ग्रहणं कुर्यात्, हन्यात् वा = ध्वाराश्येत् वा । अनुष्टुप्छन्द ।

अनन्तरीयमिति—अनन्तरीयम् = अतन्तरवति, बल = सैन्यम्, आज्ञाप-
यितुम् = आदेशितुम्, अर्हति = समर्थ अस्ति ।

रावण—क्यो मार दी गयी ? तो कुमार अक्ष को वानर को पकडने के
लिए आदेश दे दो ।

शङ्कुकर्ण—जो महाराज की आज्ञा । (निकल जाता है)

रावण—(सोच कर)—

कुमार ने अस्त्र (बलाना) सीखा है । (वह) वीर तथा बलशाली है ।
उस वानर को पकड लेगा या मार डालेगा ।

[प्रवेश करके]

शङ्कुकर्ण—मुरक्षित सेना को महाराज आदेश दीजिए ।

रावण—किस लिए ।

शङ्कुकर्णः—श्रोतुमर्हत महाराज । कुमार वानरमभिगच्छन्त
दृष्ट्वा महाराजेनानाज्ञापिता अप्यनुगता पञ्च सेनापतय ।

रावण.—ततस्तत ?

शङ्कुकर्णः—ततस्तानभिद्रुतान् दृष्ट्वा किञ्चिद् भीतेन इव
तोरणमाश्रित्य काञ्चनपरिमुद्यम्य निपातितस्तेन हरिणा पञ्च सेना-
पतय ।

रावण.—ततस्तत ?

शङ्कुकर्ण —तत कुमारमक्ष-

क्रोधात् सरक्तनेत्र त्वरिततरह्य स्यन्दन वाहयन्त

प्रावृट्कालाभ्रकल्पन परमलघुतर वाणजालान् वमन्तम् ।

श्रोतुमिति—वानर—कपि प्रति अभिगच्छन्त = अभियान्तम्, कुमारम् =
अक्षम्, दृष्ट्वा = विगमय, महाराजेन = भवता, अनाज्ञापिता अपि =
बनादिष्टा अपि, अनुगता = अनुयाता ।

ततस्तानिति—अभिद्रुतान् = अत्मान प्रति पलायितान्, तान् = अनुयातान्
सेनापतीन्, दृष्ट्वा = वि-नेत्र्य, किञ्चित्, = ईपत्, भीत = भय प्राप्त, तोरण =
बहिद्वारम्, आश्रित्य = उपगम्य, काञ्चनपरिध = सुवर्णमुसलम्, उद्यम्य =
उत्थाप्य, तेन = पूर्वोक्तेन, हरिणा = वानरेण, निपातित = मारित ।

अन्वय —क्रोधात् सरक्तनेत्र त्वरिततरह्य स्यन्दन वाहयन्त प्रावृट्काला-
भ्रकल्प परमलघुतर वाणजालान् वमन्त (कुमार) तान् वाणान् निविधून्वन्

शङ्कुकर्ण—सुनिह महाराज । वानर की ओर जाते हुए कुमार (अक्ष)
को देखकर आप की आज्ञा बिना ही पाँच सेनापति (उसके) पीछे गये ।

रावण—तय, तव (क्या हुआ) ।

शङ्कुकर्ण —तय आक्रमण के लिए आते हुए उन (सेनापतियों) को
देखकर कुछ डरे हुए के समान होकर उस वानर के द्वारा काञ्चनद्वार पर
चढ़कर सुवर्णमय परिध के प्रहार से पाँचो सेनापति मार डाले गये ।

रावण—तय, तव ।

शङ्कुकर्ण —तय कुमार अक्ष को—

क्रोध के कारण लाल आँखा वाले, बड़े धेग से घोड़े और रथ की हाँकते

तान् वाणान् निविधुन्वन् कपिरपि सहसा तद्रथं लङ्घयित्वा
 कण्ठेसङ्गृह्य धृष्टं मुदिततरमुखो मुष्टिना निजघान ॥ ७ ॥
 रावणः—(सरोषम्) आः, कथं कथं निर्जघानेति !
 तिष्ठ त्वमहमेवनमासाद्य कपिजन्तुकम् ।
 एष भस्मीकरोम्यस्मत्क्रोधानलकणैः क्षणात् ॥ ८ ॥

कपि अपि सहसा तद्रथं लङ्घयित्वा कण्ठे सङ्गृह्य मुदिततरमुखः धृष्टं मुष्टिना निर्जघान ।

क्रोधादिति—क्रोधात्=पञ्चसेनापतिवधात् रोपात्, संरक्तनेत्रं=संरक्तं रक्तवर्णं तयने यस्य तम्, त्वरिततरहर्यं=त्वरिततर. द्रुततर. ह्य अश्वः यस्य तम्, स्पन्दनं=रथम्, बाहयन्तं=चालयन्तम्, प्रावृट्कालाभ्रकल्पं=प्रावृट्काल-वर्षासमयः तस्य अभ्रस्य मेघस्य कल्पं सद्दाम्, परमलघुतरं=परमम् अत्यन्त लघु. त्वरितं यथास्वात्तया, वाणजालान्=दारसमूहान् वमन्तं=वर्षन्तम् कुमारम्=अक्षम्, तान्=पूर्वोक्तान्, वाणान्=शरान्, निविधुन्वन्=अपाकुर्वन्, कपि.=वानर, सहसा=अकस्मात्, तस्मै=कुमारस्य, रथं=स्पन्दनम्, लङ्घयित्वा=आरुह्य, कण्ठे=गले, संगृह्य=गृहीत्वा, मुदित=हृष्टम्, धृष्टं=घृष्टतापूर्वकम्, मुष्टिना=मुष्टिकया, निर्जघान=हतवान् । उपमालङ्कारः । सङ्घराच्छब्दः ।

अन्वयः—त्वं तिष्ठ, एषः अहम् एव एत कपिजन्तुकम् आसाद्य भस्मत्क्रो-
 धानलकणैः क्षणात् भस्मीकरोमि ।

तिष्ठेति—त्वं=सङ्कुण्ठं, तिष्ठ=विरम, एष=अयम्, अहमेव=

हुए, वर्षाकालीन मेघ की भाँति शीघ्रतापूर्वक वाणसमूहों को छोड़ते हुए (कुमार अक्ष) को, उन वाणों को काटता हुआ वानर भी उनके रथ पर हमला करके घृष्टतापूर्वक गला दवाकार प्रमत्तमुख से मुष्टिका के द्वारा मार डाला ।

रावण—(क्रोध के साथ) क्या, क्या मार दिया ?

तुम रको । मैं ही उस क्षुद्र वानर को अपने क्रोधाग्नि के कणों से शीघ्र भस्म करता हूँ ।

शङ्कुकर्णः—प्रसीदतु प्रसीदतु महाराजः । कुमारमक्ष निहतं युत्वा
क्रोधाविष्टहृदयः कुमारेन्द्रजित् अभियतवांस्त वनौकसम् ।

रावणः—तेन हि गच्छ । ज्ञायतां वृत्तान्तं ।

शङ्कुकर्णः—यदाज्ञापयति महाराजः ! (विप्रान्तः)

रावणः—कुमारो हि कृतास्त्रश्च,

अवश्यं युधि वीराणां वधो वा विजयोऽथवा ।

तथापि क्षुद्रकर्मदे मह्यमीपन्मनोज्वर ॥ ९ ॥

रावण एव, एनम् = इमम्, कपिजन्तुक = तुच्छजन्तुम् आसाद्य = प्राप्य, अस्म-
त्क्रोधानलकर्णे. = अस्माकं क्रोधस्य कोपस्य एव अनलस्य अग्ने कणौ, लवं,
शशात् = शीघ्रमेव, भस्मीकरोमि = दहामि ।

प्रसीददिति—निहतं = मारितम्, युत्वा = आकर्ष्यं, क्रोधाविष्टहृदय =
क्रोधाविष्ट कोपाभिभूत हृदयम् अन्तकरण यस्य स, कुमारेन्द्रजित् =
कुमार. इन्द्रजित् मिथनाथ, अभियतवान् ।

अन्वयः—युधि वीराणाम् अवश्य वध वा विजयः अथवा तथापि इदं
क्षुद्रकर्म मह्यम् ईपत् मनोज्वर. (अस्ति) ।

अवश्यमिति—युधि = युद्धे, वीराणा = शूराणाम्, अवश्य = निश्चित-
रूपेण, वध = हननम्, विजय वा = जय वा, तथापि, इदम् = एतत् क्षुद्र-
कर्म = वानरमारणस्य क्षुद्र तुच्छ कर्म कार्यम्, मह्य = मम कृते, ईपत् =
किमपि, मनोज्वर = चित्तसन्ताप, अस्तीति शेष । रूपकालङ्कारः ।
अनुपुम्बुच्छन्दः ।

शङ्कुकर्ण—प्रसन्न होइए, प्रसन्न होइए महाराज । कुमार अक्ष का
भारा जाना सुनकर क्रोधपूर्ण हृदय वाले कुमार इन्द्रजित् (मिथनाथ) उस
वानर के समीप गये हैं ।

रावण—तो जाओ । फिर समाचार मालूम करो ।

शङ्कुकर्ण—जो महाराज की आज्ञा । (निकल जाता है)

रावण—और कुमार अस्त्राभ्यासी है ।

युद्ध में निश्चित ही वीरो की मृत्यु होती है अथवा विजय । तो भी यह
नीच कर्म है, अतः मुझको शेद है ।

(प्रविश्य)

शङ्कणं.—जयतु महाराज. । जयतु लङ्केश्वर. ! जयतु भद्रमुख !

संवृत्त तुमुलं युद्धं कुमारस्य च तस्य च ।

ततः स वानरः शीघ्रं बद्धः पाशेन साम्प्रतम् ॥ १० ॥

रावण.—कोऽत्र विस्मयं इन्द्रजिता शाखामृगो बद्ध इति ।
कोऽत्र भोः !

(प्रविश्य)

राक्षसः—जयतु महाराज. !

रावण—गच्छ विभीषणस्तावदाहूयताम् !

अन्वयः—कुमारस्य च तस्य च तुमुल युद्धं संवृत्तम् । ततः शीघ्र सः
वानरः साम्प्रतं पाशेन बद्धः अस्ति ।संवृत्तमिति—कुमारस्य च=मेघनाथस्य च, तस्य च=वानरस्य
हनुमत च, तुमुलं=भयानकम्, युद्धं=संग्राम, संवृत्तं=जातम्, ततः=
तत्पश्चात्, शीघ्रं=त्वरितम्, स=पूर्वोक्त, वानर=कपि, साम्प्रतम्=
अधुना, पाशेन=ब्रह्मपाशेन, बद्ध=बन्धन प्राप्त । अनुष्टुप्छन्द ।कोऽत्रेति—विस्मय=आश्चर्यम्, शाखामृग=वानर, इन्द्रजिता=
मेघनाथेन, बद्ध=बन्धन प्राप्त ।

[प्रवेश करके]

शङ्कुकर्ण—महाराज विजयी होवे, लङ्केश्वर विजयी होवे, भद्रमुख
विजयी होवे ।कुमार (मेघनाथ) तथा उस (वानर) के बीच घोर युद्ध हुआ । तत्पश्चात्
वह वानर शीघ्रतापूर्वक (कुमार के द्वारा) पाश से बाँध लिया गया है ।रावण—इन्द्रजित् (मेघनाथ) के द्वारा वानर बाँध लिया गया, इसमें
क्या आश्चर्य है । अरे ! यहाँ कौन है ।

[प्रवेश करके]

राक्षस—महाराज विजयी होवे ।

रावण—तो जाओ, विभीषण को बुला लाओ ।

राक्षस — यदाज्ञापयति महाराज ! (निष्ठात)

रावण — त्वमपि तावद् वानरमानय ।

शङ्कुकर्णं. — यदाज्ञापयति महाराज ! (निष्ठात ।)

रावण — (विनित्य) भो ! कष्टम् ।

अचिन्त्या मनसा लङ्का सहितं सुरदानवं ।

अभिमूय दशग्रीव प्रविष्टः किल वानर ॥ ११ ॥

अपि च,

जित्वा त्रैलोक्यमाजी समुरदनुमुत यन्मया गवितेन

ब्रान्त्वा कैलासमीज स्वगणपरिवृत साकमानम्प्य देव्या ।

अन्वय — लङ्का सहितं सुरदानवं मनसा (अपि) अचिन्त्या (आमीत्) ।
दशग्रीवं अभिमूय वानरः किल प्रविष्टः ।

अचिन्त्येति — लङ्का = एतन्नाकनगरी, सुरदानवं = सुरा देवा दानवा
च अमुरा च तै, मनसा = चित्तेन, अचिन्त्या = अचिन्तनीया, आमीदिति
शेषः । दशग्रीवं = रावणम् अभिमूय = तिरस्कृत्य, वानरः = बनि, किल =
निश्चयतः प्रविष्टः = प्रवेशः प्राप्तः । अनुशुशुब्धदः ।

अन्वय — यन् आजी समुरदनुमुत त्रैलोक्य जित्वा गवितेन मया कैलास
ब्रान्त्वा देव्या साक स्वगणपरिवृतम् ईशम् आनम्प्य तस्माद् प्रमाद लब्ध्वा

राक्षस — जो महाराज की आज्ञा । (निकल जाता है)

रावण — ता तुम भी वानर को ले आओ ।

शङ्कुकर्ण — जो महाराज की आज्ञा । (निकल जाता है)

रावण — (मौन कर) ओह ! कष्ट है ।

जो लङ्का देवता तथा दानवा द्वारा मन से भी अनाघनीय (अनाक्रमणीय)
है, दशानन (रावण) को तिरस्कृत करके (उत्तम) वानर प्रवेश कर गया है ।

और भी —

क्याकि युद्ध में देवता और दानव सहित तीनों लोको को जीतकर, कैलास
को लूट कर पार्वती के साथ अपने गणों से घिरे हुए शङ्कर को दृष्टि कर, उन
(महादेव) से प्रमाद प्राप्त करके, अभिमान में आये हुए मेरे द्वारा अपमानित

लब्ध्वा तस्मात् प्रसाद पुनरगसुतया नन्दिनानादृतत्वाद्
दत्त शप्त च ताम्या यदि कपिविकृतिच्छप्रना तन्मम स्यात् ॥१२॥

(तत् प्रविशति विभीषण)

विभीषण.—(सविमशंम्) अहो नु खलु महाराजस्य विपरीता बुद्धि
सवृत्ता । कुत.—

अनादृतत्वात् पुन अगसुतया नन्दिना च ताम्या तत् शप्तम् दत्त, यदि कपि-
विकृतिच्छप्रना मम तत् स्यात् ।

जित्वेति—यत्=यत, आजौ=युधि, समुरदनुसुत=सुरा देवा दनु-
सुता दानवा तै सह त्रैलोक्य=लोकत्रयम्, जित्वा=पराजित्य, गवितेन=
अभिमानिता, मया=रावणेन, कैलाशम्=एतन्नामकपवतम्, क्रात्वा=
अभिक्रम्य, देव्या=पार्वत्या, साक=सह, स्वगणपरिवृत्त=स्वगणेन नन्दि-
प्रमथादयेन परिवृत्त परिगतम्, ईश=शङ्करम्, आकम्प्य=कम्पयित्वा,
तस्मात्=आकम्पनात्, प्रसाद=अनुग्रहरूपेण चन्द्रहासम्, लब्ध्वा=प्राप्य,
अनादृतत्वात्=तिरस्कारात्, अगसुतया=पर्वतपुन्या पार्वत्या, नन्दिना=
शङ्करस्य प्रधानगणेन, ताम्याम्=उभाभ्याम्, शप्त=शापम्, दत्त=प्रति-
पादितम् । यदि=इति सम्भावनायाम्, कपि=वानर हतृमान्, निवृत्त=
तस्य शापस्य वानररूपेण परिणमन् विक्रिया, छप्रना=तस्य व्याजेन, तत्=
शापः, स्यात्=भवेत् । व्याजापह्नु तिरलङ्कार । सगंधराच्छन्द ।

अहो इति—महाराजस्य=रावणस्य, विपरीता=प्रतिकूला, बुद्धि=
मति, सवृत्ता=जाता ।

किए जाने के कारण पार्वती और नन्दी दोनों ने शाप दे दिया । सम्भवत
वानर के बहाने वह (शाप) काम कर रहा है ।

(तत्प्रश्चात् विभीषण प्रवेश करता है)

विभीषण—(सोच कर) ओह ! महाराज की बुद्धि विपरीत हो गयी
है । क्योंकि—

रावणः—छिद्यतामेवा कथा । त्वमपि तावद् वानरमानय ।

विभीषणः—यदाज्ञापयति महाराज । (निष्क्रान्त ।)

(तत प्रविशति राक्षसैर्गृहीतो हनुमान्)

सर्वे—आ इत इत ।

हनुमान्—

नैवाह धर्षितस्तेन नैर्ऋतेन दुरात्मना ।

स्वय ग्रहणमापन्नो राक्षसेशदिदृक्षया ॥ १४ ॥

(उपगम्य) भो ! राजन् ! अपि कुशली भवान् ?

रावणः—(सावज्ञम्) विभीषण ! किमस्य तत् कर्म ?

कथा=वार्ता, छिद्यता=समाप्यताम् ।

अन्वय—दुरात्मना तेन नैर्ऋतेन अहम् न एव धर्षित, राक्षसेशदिदृक्षया स्वय ग्रहणम् आपन्न ।

नैवाहमिति—दुरात्मना=दुर्मना, तेन=प्रेषणायेन, नैर्ऋत्येन=राक्षसेन, अह=हनुमान् नैव=नहि एव, धर्षित=अभिभूत, किन्तु, राक्षसेशदिदृक्षया=राक्षसेशस्य राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य दिदृक्षया विलोकितु इच्छया, स्वयमेव=आत्मना एव, ग्रहण=बन्धनम्, आपन्न=प्राप्त । अनुष्टुप्छन्दः ।

भो राजनिति—कुशली=कुशलपूर्वकम्, तत्=पूर्वोक्तम्, कर्म=कार्यम् ।

रावण—इस वार्ता को छोड़ो । तो तुम भी वानर लेते आओ ।

विभीषण—जो महाराज की आज्ञा । (निकल जाता है)

(तत्पश्चात् राक्षसो द्वारा पकडे गये हनुमान् प्रवेश करते हैं)

सभी—अरे ! इधर से, इधर से चलो ।

हनुमान्—मैं उस दुष्ट राक्षस द्वारा नहीं पकडा गया हूँ । राक्षसेन्द्र (रावण) को देखने की इच्छा से मैं स्वय बँध गया हूँ ।

(समीप जाकर) हे राजन् ! आप सकुशल तो हैं ?

रावण—(तिरस्कारपूर्वक) हे विभीषण ! क्या इस (वानर) ने ही वह (अशोकवाटिका को उजाहना इत्यादि) कार्य किया है ।

विभीषण.—महाराज ! अतोऽप्यधिकम् ।

रावण —कथं त्वमवगच्छसि ?

विभीषण —प्रष्टुमर्हन्ति महाराज कस्त्वमिति ।

रावण --भो वानर ! कस्त्रम् ? केन कारणेन धर्षितोऽस्माक
मन्त पुर प्रविष्ट ।

हनुमान्—भो ! श्रूयताम्

अञ्जनाया समुत्पन्नो मारुतस्यौरस सुत ।

प्रेषितो राघवेणाह हनुमान् नाम वानर ॥ १५ ॥

विभीषण —महाराज ! किं श्रुतम् ?

अत अपि = अस्मादपि, अधिकम् = अतिरिक्तम् । अवगच्छसि = जानासि, अर्हसि = योग्योऽसि, अन्त पुरम् = अवरोधकम्, प्रविष्ट = प्रवेश कृत ।

अन्वय —अञ्जनाया समुत्पन्न मारुतस्य औरस सुत हनुमान् नाम वानर जह राघवण प्रेषित (अस्मि) ।

अञ्जनायामिति—अञ्जनायाम् = एतन्नाम्न्या वानर्याम्, समुत्पन्न = जात, मारुतस्य = वायो औरस सुत = पुत्र हनुमान् नाम = एतन्नामक, वानर = कपि, राघवण = रामेण प्रेषित = प्रहित अस्मीति शय । अनुष्टुप्छन्द ।

विभीषण—हे महाराज ! उससे भी अधिक ।

रावण—तुम कैसे जानते हो ?

विभीषण—महाराज आप (इससे) पूछिए कि तुम कौन हो ?

रावण—हे वानर ! तुम कौन हो ? किम कारण से बिना मोचे समझे हमारे अन्त पुर में प्रवेश किया ।

हनुमान्—अरे ! सुनिए,

अञ्जना के गर्भ से उत्पन्न मैं पवन (देव) का औरस पुत्र हनुमान् नामक वानर, रामचन्द्र के द्वारा भेजा गया हूँ ।

विभीषण—हे महाराज ! क्या सुन लिया आप ने ?

रावण — किं श्रुतेन ।

विभीषण — हनूमन् ! किमाह तत्रभवान् राघव ।

हनूमान् — भो श्रूयता रामशासनम् ।

रावण — कथं कथं रामशासनमित्याह । आ हन्यतामय वानर ।

विभीषण — प्रसीदतु प्रसीदतु महाराज ! सर्वापराधेष्वध्या खलु
दूता । अथवा रामस्य वचनं श्रुत्वा पश्चाद् यथेष्टं कर्तुमर्हति
महाराज ।

रावण — भो वानर ! किमाह स मानुष ?

हनूमान् भो ! श्रूयता,

वरशरणमुपेहि शंकर वा प्रविश च दुर्गम रसातल वा ।

शरवरपरिभिन्नसर्वगात्र यममदन प्रतियापयाम्यह त्वाम् ॥ १६ ॥

हनूमनिति—तत्रभवान्=पूज्य, राघव=राम, किमाह=कि
अकथयत् । रामशासन=रामादेशम्, हन्यता=मार्यताम् । सर्वापराधेषु=
सर्वे च ते अपराधा आगासि तेषु, अवध्या=अमारणीया । पश्चात्=
तदन्तरम् यथेष्ट=इच्छानुसारम् ।

अन्वय—वरशरणं शङ्कर वा उपेहि दुर्गतम रसातल वा प्रविश च,
शरवरपरिभिन्नसर्वगात्र त्वाम् अह यममदन प्रतियापयामि ।

रावण—सुनने से क्या (प्रयोजन) !

विभीषण—हे हनुमान् ! पूजनीय राघव ने क्या कहा है ?

हनूमान्—अरे सुनिए, राम का आदेश ।

रावण—क्या, क्या यह राम का आदेश कहता है तो मार दिया जाय
यह वानर ।

विभीषण—प्रसन्न होइए, हे महाराज ! सभी अपराध मे दूत अवध्य
होते है । अथवा राम का आदेश सुनकर तत्पश्चात् आप अपनी इच्छानुसार
कीजिएगा ।

रावण—हे वानर ! उस मनुष्य राम ने क्या कहा है ।

हनूमान्—अरे ! सुनिए,

रावणः—ह ह. ह. !

दिव्यास्त्रैस्त्रिदशगणा भयाभिभूता

दैत्येन्द्रा मम वशवतिन ममस्ता. ।

पौलस्त्योऽप्यपहृतपुष्पकोऽवसन्नो

भो ! राम. कथमभियाति मानुषो माम् ॥ १७ ॥

वरशरणेति—वरशरण = श्रेष्ठाश्रयम्, शङ्कर वा = शिवम् वा, उपेहि = उपदन्त, दुर्गमम् = अतिदुर्गमम्, रमातन् वा = पातालम् वा, प्रवेश = प्रवेश कुरु । शरवरपरिभिन्नमर्षगात्र = शरवरेण वाणश्रेष्ठेन परिभिन्नानि परिछिन्नानि सर्वाणि गात्राणि अङ्गानि यस्य तम्, त्व = रावणम्, अह = राम, ममसदन = ममराजगृहम्, प्रतिपापयामि = प्रेषयामि । पुष्पिताप्राच्छन्द ।

अन्वयः—मया दिव्यास्त्रैस्त्रिदशगणा अभिभूता, ममस्ता दैत्येन्द्रा मम वशवतिन (मन्ति) अपहृतपुष्पक पौलस्त्य अवसन्न । भो ! मानुष राम कथं माम् अभियाति ।

दिव्यास्त्रैरिति—मया = रावणेन, दिव्यास्त्रै = दिव्यायुधै, त्रिदशगणा = देवमूढा, अभिभूता = परास्ता, ममस्ता = सम्पूर्णा, दैत्येन्द्रा = दानवेन्द्रा, मम = रावणस्य, वशवतिन = वशीभूता, सन्तीति शेष । अपहृत-पुष्पक = अपहृत अटिन्नि पुष्पन एतन्नामक विमान यस्मात् म, पौलस्त्य =

शङ्कर के श्रेष्ठ शरण में जाओ अथवा दुर्गम पाताल में प्रवेश करो । मैं (राम) वाणों से छिन्न भिन्न हुए शरीर वाले तुम (रावण) को ममराज के घर भेजूंगा ।

रावण—अहा !

मेरे द्वारा दिव्यास्त्रों से देवगण परास्त कर दिये गये । सम्पूर्ण राक्षस-राज मेरे वशीभूत है । (मेरे द्वारा) छीन लिए गये पुष्पक (नामक विमान) वाले कुबेर भी नष्ट हो गये हैं । अरे ! मनुष्य राम मुझ पर कैसे आक्रमण करेगा ।

वक्तुम् । मा तावद् भो !

नक्तञ्चरापद ! रावण ! राघव त

वीराग्रगण्यमतुल त्रिदशेन्द्रकल्पम् ।

प्रक्षीणपुण्य ! भवता भुवनैकनाथ

वक्तु किमेवमुचित गतसार ! नीचै ॥ २१ ॥

राघव.—कथ कथ नामाभिधत्ते । हन्यतामय वानर । अथवा दूत-
वध खलु वचनीय । शङ्कुकर्ण ! लाङ्गूलमादीप्य विसृज्यतावय
वानर ।

राघव = रामम्, एवम् = अनेन प्रकारेण, वक्तु = कथितुम्, किं युक्तम् =
किमुचितम्, अस्तीति शेष ।

अन्वयः—हे नक्तञ्चरापद ! प्रक्षीणपुण्य गतसार रावण वीराग्रगण्यम्,
अतुल त्रिदशेन्द्रकल्प भुवनैकनाथ त राघव एव नीचै वक्तु भवता उचित
किम् ?

नक्तञ्चरेति—नक्तञ्चरापद = हे राक्षसाग्रम् । प्रक्षीणपुण्य = हे नष्ट-
सत्कर्म ! गतसार = हे विनष्टबल ! रावण = हे दशानन ! वीराग्रगण्य = वीरेपु-
शूरेषु अग्रगण्य मुख्य तम्, अतुलम् = अद्वितीयम्, त्रिदशेन्द्रकल्प = इन्द्रसदृ-
शम्, भुवनैकनाथ = भुवनस्य जगत एकम् एकमात्र नाथ प्रभु तम्, त =
पूर्वोक्तम्, राघव = रामम्, एवम् = अनेन प्रकारेण, नीचै = सावशम्, वक्तु
= कथितुम्, भवता = रावणेन, किम् उचित = युक्तम्, अस्तीति शेष ।
उपमालङ्कार । वसन्ततिलकाच्छन्द ।

कथमिति—नाम = रावणेति मम नाम, अभिधत्ते = उच्चारयति । दूत-

ऐसा कहा जाना क्या उचित है । अरे ! ऐसा नही—

हे राक्षसाग्रम् ! हे नष्ट पुण्य वाले ! हे समाप्त बल वाले ! हे रावण !
अद्वितीय, वीरो में अग्रगण्य, इन्द्र के समान, भुवनो के अकेले स्वामी राम के
प्रति आप के द्वारा इस प्रकार कहा जाना क्या उचित है ?

राघव—क्यों (मिरा) नाम ले रहा है । मार दिया जाय यह वानर ।
अथवा दूत का वध निन्दनीय है । हे शङ्कुकर्ण ! पूँछ में आग लगाकर यह

शङ्कुकर्ण—यदाज्ञापयति महाराज । इन इन ।

रावण.—अथवा एहि तावत् ।

हनुमान्—अयमस्मि ।

रावण.—अभिधीयता मद्वचनात् त मानुष ।

अभिभूतो मया राम । दारापहरणादसि ।

यदि तेऽस्ति धनुश्लाघा दीयता मे रणो महान् ॥ २२ ॥

हनुमान्—अचिराद् द्रक्ष्यसि,

वध = दूतमारण, वचनीय = निन्दनीय । लाङ्गूल = पुच्छम्, आदीप्य = प्रज्ज्वालय, विमृज्यता = मुच्यताम्, अभिधीयता = वक्ष्यताम्, मद्वचनात् = ममादेशात्, स = पूर्वोक्त, मानुष = मनुष्य राम ।

अन्वय—हे राम दारापहरणात् मया अभिभूत अमि । यदि ते धनु-श्लाघा अस्ति (तहि) मे महान् रण दीयताम् ।

अभिभूत इति—राम=हे रावण । दारापहरणात्=दाराया धर्म-पत्या अपहरणात् आनयनात्, मया=रावणेन, अभिभूत = पराजित, असि, यदि=चेत्, ते=तव, धनुश्लाघा=धनुष चापस्य श्लाघा अभिमान, तहि, मे=मम रावणस्य, महान्=घोरम्, रण = मङ्ग्राम, दीयता = प्रत्यर्प्यताम् । अनुपुच्छन्द ।

अचिरादिति—अचिरात्=शीघ्रम्, द्रक्ष्यसि = अवलोकयिष्यसि ।

वानर छोड दिया जाय ।

शङ्कुकर्ण—जो महाराज की आज्ञा । इधर से, इधर से (आओ)

रावण—अथवा इधर आओ ।

हनुमान्—यह मैं हूँ ।

रावण—मेरी ओर से उस मनुष्य से कहता—

हे राम ! (तुम्हारी) पत्नी का अपहरण होने के कारण मेरे द्वारा अप-मानित हुए हो । यदि तुम्हें धनुष पर भरोसा हो तो मुझको महान् युद्ध प्रदान करो (अर्थात् मेरे साथ युद्ध करो) ।

हनुमान्—शीघ्र देखोगे—

विभीषणः—अभय दातुमर्हति महाराज ।

रावणः—दत्तमभयम् । उच्यताम् ।

विभीषणः—बलवद्विग्रहश्च ।

रावणः—(सरोपम्) कथ कथ बलवद्विग्रहो नाम ?

शत्रुपक्षमुपाश्रित्य मामय राक्षसाधम ।

क्रोधमाहारयस्तीव्रमभीरुरभिभापते ॥ २४ ॥

कोऽय ?

ममानवेक्ष्य सौभ्रात्र शत्रुपक्षमुपाश्रितम् ।

नोत्सहे पुरतो द्रष्टु तस्मादेष निरस्यताम् ॥ २५ ॥

गूहसे = गोपायसे, अभय = अभयदानम् । उच्यता = उच्यताम् । बलवद्विग्रह
= बलवता प्रबलेन रामेण विग्रह युद्धम् ।

अन्वय — शत्रुपक्षम् उपाश्रित्य अभीरु अय राक्षसाधम (मम) क्रोधम्
आहारयन् मा तीव्रम् अभिभापते ।

शत्रुपक्षमिति — शत्रुपक्षम् = अरिपक्षम्, उपाश्रित्य = आश्रय गृहीत्वा,
अभीरु = निर्भय, अयम् = एष, राक्षसाधम = नीचराक्षस विभीषण,
तीव्र = कटु, क्रोध = कोपम्, आहारयन् = जनयन्, अभिभापते = कथयति ।
अनुष्टुप्छन्द ।

अन्वय — मम सौभ्रात्रम्, अनवेक्ष्य शत्रुपक्षम्, उपाश्रितम्, (एत) पुरत
द्रष्टु न उत्सहे, तस्मात् एष निरस्यताम् ।

विभीषण—हे महाराज ! मुझे अभय प्रदान करे ।

रावण—अभय दे दिया । कहो ।

विभीषण—बलवान् से विरोध ।

रावण—(क्रोध के साथ) कैसा, कैसा बलवान् से विरोध ?

यह राक्षसाधम (नीच राक्षस विभीषण) शत्रु (राम) का पक्ष लेकर
मुझको तीव्र क्रोध उत्पन्न करता हुआ निडर बातें कर रहा है ।

यहाँ कौन है ?

मेरे सौभ्रात्र (उत्तम भ्रातृभाव) की उपेक्षा करके शत्रुपक्ष से मिल जाने

विभीषण — प्रसीदतु महाराजः अहमेव यास्यामि ।

शमितोऽह त्वया राजन् ! प्रयामि न च दोषवान् ।

त्यक्त्वा रोप काम च यथा कार्यं तथा कुरु ॥ २६ ॥

(परिक्रम्य) अयमिदानीम्—

अद्यैव त कमललोचनमुप्रचाप

राम हि रावणवधाय कृतप्रतिज्ञम् ।

समेति—मम = रावणस्य, सीमात्र = मुञ्जातृत्वम्, अनवेद्य = अविचार्यं, शत्रुपक्ष = वैरिपक्षम्, उपाश्रितम् = आश्रयगत विभीषणम्, पुरत = अग्ने, द्रष्टुं = विलोकितुम्, न उत्सहे = न शक्नोमि, तस्मात् = तस्मात् करणात्, एष = विभीषण, निरम्यता = निष्काम्यताम् । अनुष्टुप्छन्द ।

अन्वय — हे राजन् ! त्वया शासित अह प्रयामि (अहं) च दोषवान् न (अस्मि) । रोप काम च त्यक्त्वा यथा कार्यं तथा कुरु ।

शामित इति—राजन् = हे नृप ! त्वया = रावणेन, शासित = आदिष्ट, अह = विभीषण, प्रयामि = गच्छामि, च, दोषवान् = अपराधी, न = नहि अस्मि । रोप = क्रोधम्, काम = विषयभोगेच्छाम् च, त्यक्त्वा = परित्यज्य, यथा = येन प्रकारेण, कार्यं = करणीयम्, तथा = तेन प्रकारेण, कुरु = विधेहि । अनुष्टुप्छन्द ।

अन्वय — अद्य एव कमललोचनम् उपचाप रावणवधाय कृतप्रतिज्ञ सश्रितहितप्रथित नृदेव सश्रित्य नष्ट निशाचरकुल पुन उद्धरिष्ये ।

वाले (इस विभीषण को) सामने देखने के लिए उरसाह (इच्छा) नहीं करता हूँ, अतः यह दूर किया जाय ।

विभीषण—महाराज प्रसन्न होइए, मैं ही जा रहा हूँ ।

हे राजन् ! आप के द्वारा आदेश दिया गया मैं जा रहा हूँ । (इसमें) मैं दोषी नहीं हूँ । (आप) क्रोध एवं काम का परित्याग करके जैसा किया जाना चाहिए, वैसा कीजिए । (धूमकर) अब यह मैं,

आज ही उस कमल के समान नेत्र वाले, महाधनुर्धारी, रावण के वध के लिए वृत्तप्रतिज्ञ तथा आश्रित जनों की भलाई करने में प्रसिद्ध मनुष्यदेव

सश्रित्य सश्रितहितप्रथित नृदेव
नष्ट निशाचरकुल पुनरुद्धरिष्ये ॥ २७ ॥

रावण.—हन्त निर्गतो विभीषण । यावदहमपि नगररक्षा सम्पा-
दयामि ।

(निष्क्रान्ता)

॥ इति तृतीयोऽङ्कः ॥

—*—

अद्यैवेति—अद्य एव = अस्मिन्दिवसे एव, कमललोचन = राजीवनयनम्,
उग्रचाप = भीषणधनु, रावणवधाय = दशाननमारणाय, कृतप्रतिज्ञ = विहित-
प्रणम्, सश्रितहितप्रथितम्, = सश्रितानाम् आश्रितानां हितप्रथितम् उपकार-
स्वातम्, नृदेव = नरेन्द्रम्, तम् = पूर्वोक्तम् राम = राघवम् सश्रित्य = आश्रित्य,
नष्ट = विनष्टम्, निशाचरकुल = राक्षसवशम् पुन = भूय, उद्धरिष्ये = उद्धार
करिष्ये । उपमालङ्कार । वसन्ततिलकाच्छन्दः ।

हन्तेति—निर्गत = निर्यात । नगररक्षा = पुरीरक्षणम्, सम्पादयामि
= करोमि ।

॥ इति तृतीयोऽङ्कः ॥

—*—

राम का आश्रय लेकर नष्ट राक्षस कुल का फिर उद्धार कर्हेगा ।
(निकल जाता है)

रावण—ओह ! विभीषण निकल गया । तो मैं भी नगर की रक्षा
कर्हेगा ।

(निकल जाता है)

॥ तृतीय अङ्क समाप्त ॥

—*—

अथ घनुर्योऽङ्कः

(तत्र प्रविशति वानरवाञ्छुकीय)

काञ्चुकीयः—भो भो वनाध्यक्ष ! मन्नाहमाज्ञापय वानरवाहिनीम् ।

(प्रविश्य)

वनाध्यक्षः—आयं ! किं कृतोऽयं समुद्योगः ?

काञ्चुकीयः—तत्र भवता हनुमन्तानीतं मन्नाहमाज्ञापय देव्या
मीताया वृत्तान्तः ।

वनाध्यक्ष—किमिति किमिति ?

काञ्चुकीयः—श्रुयता,

भो भो इति—भो = हे । वनाध्यक्ष = वनाध्यक्ष । वानरवाहिनीम् =
वानराणां वनीनां वाहिनीं मेनाम्, मन्नाह = मन्नाहम्, आज्ञापय = आदिश ।
किं कृतं = केन विहितम्, समुद्योगः = समुद्योगः ।

तत्र भवतेति—हनुमन्ता = पवनव्रतपते, आनीत = आहूतः । वृत्तान्तः =
ममाचारः ।

(तत्र प्रविशति वानरवाञ्छुकीयः प्रवेशं कृत्वा)

वाञ्छुकीय—ह, ह मेनाध्यक्ष ! वानरमेता का तैयार होने का आदेश
दीजिए ।

(प्रवेशं कर्त्वे)

मेनाध्यक्ष—हे आयं ! किमिति यद् तैयारी की जा रही है ।

काञ्चुकीय—पूवनीय हनुमान् के द्वारा मीता देवी का आयं राम के
प्रति ममाचार लया है ।

मेनाध्यक्ष—वना, क्या (ममाचार है) ?

काञ्चुकीय—मुनि—

लङ्काया किल वर्तते नृपमुता शोकाभिभूता भृश
 पौलस्त्येन विहाय धर्मसमय सकलेश्यमाना तत ।
 श्रुत्वैतद् भृशशोकतप्तमनसो रामस्य कार्याधिना
 राज्ञा वानरवाहिनी प्रतिभयासन्नाहमाज्ञापिता ॥ १ ॥

बलाध्यक्षः—एवम् । यदाज्ञापयति महाराज ।

काञ्चुकीयः—यावदहमपि सन्नद्धा वानरवाहिनीति महाराजाय
 निवेदयामि ।

अन्वयः—भृश शोकाभिभूता धर्मसमय विहाय पौलस्त्येन सकलेश्यमाना
 नृपमुता लङ्काया वर्तते किल । तत एतत् श्रुत्वा भृशशोकतप्तमनस
 रामस्य-
 कार्याधिना राज्ञा प्रतिभय वानरवाहिनी सन्नाहम् आज्ञापिता ।

लङ्कायामिति—भृश = अत्यधिकम्, शोकाभिभूता = शोकसन्तप्ता, धर्म-
 समय = धर्माचरणम्, विहाय त्यक्त्वा, पौलस्त्येन = रावणेन, सकलेश्यमाना =
 पीड्यमाना, नृपमुता = राजकुमारी सीता, लङ्कायाम् = एतन्नामकनगर्याम्,
 वर्तते = अस्ति । तत = हनुमत, एतत् = वृत्तान्तम्, श्रुत्वा = आकर्ण्य, भृश-
 शोकतप्तमनस = भृशेन अत्यधिकेन शोकेन दुःखेन तप्त पीडित मन चित्त
 यस्य तस्य, रामस्य = राघवस्य, कार्याधिना = कार्यच्छुकेन, राज्ञा = नृपेन
 सुप्रीवेण, प्रतिभया = भीतिकरा, वानरवाहिनी = कपिसेना, सन्नाह =
 सज्जताम्, आज्ञापिता = आदिष्टा । शार्दूलविक्रीडित छन्द ।

यावदिति—सन्नद्धा = सज्जा, निवेदयामि = सूचयामि ।

‘धर्म मर्यादा का उलङ्घन करने वाले रावण के द्वारा (नाना प्रकार से)
 पीडित की जाती हुई अत्यधिक शोकसन्तप्ता राजकुमारी (सीता) लङ्का मे है’
 यह सुनकर अत्यन्त शोक से सन्तप्त हृदय वाले राम के (सीता-प्राप्ति-रूपी)
 कार्य को करने की इच्छा वाले राजा सुप्रीव के द्वारा शत्रुओं को भयभीत करने
 वाली वानरसेना को तैयार होने का आदेश दिया गया है ।

सेनाध्यक्ष—ऐसी बात है । महाराज की जैसी आज्ञा ।

काञ्चुकीय—तब तक मैं भी महाराज (सुप्रीव) को सूचित कर दूँ कि
 वानर-सेना तैयार है ।

(निष्प्रान्ती)

॥ इति विष्कम्भकः ॥

(ततः प्रविशति रामो लक्ष्मणः सुग्रीवो हनुमाश्च)

रामः—

आक्रान्ताः पृथुसानुकुञ्जगहना मेघोपमाः पर्वताः

सिंहव्याघ्रगजेन्द्रपीतसलिला नद्यश्च तीर्णा मया ।

क्रान्तं पुष्पफलाढ्यपादपयुतं चित्रं महत् कानन

सम्प्राप्तोऽस्मि कपीन्द्रसैन्यसहितो वेलातट सम्प्रतम् ॥ २॥

अन्वय — पृथुसानुकुञ्जगहना मेघोपमा पर्वता आक्रान्ताः, सिंहव्याघ्र-
गजेन्द्रपीतमलिला नद्यश्च मया तीर्णा, पुष्पफलाढ्यपादपयुत चित्र महत्
कानन क्रान्तम्, कपीन्द्रसैन्य सहित (अहं) सम्प्रत वेलातट सम्प्राप्त अस्मि ।

आक्रान्ता इति—पृथुसानुकुञ्जगहना = पृथूनि विशालानि यानि सानूनि
शिखरानि तेषु ये कुञ्जाः गुह्यानि तै गहना घना, मेघोपमा. = मेघसदृशा,
पर्वता. = गिरय, आक्रान्ता = लङ्घिता । सिंहव्याघ्रगजेन्द्रपीतसलिला =
मिहा केशरिण. च व्याघ्रा शार्ङ्गलाञ्च गजेन्द्रा मजराजाश्च तै पीतानि
पानकृतानि यानि सलिलानि जलानि यामा ता, नद्य = सरित च, मया =
रामेण, तीर्णा. = पारं गतवान् पुष्पफलाढ्यपादपयुत = पुष्पाणि कुसुमानि
फलानि प्रमवानि च तै. आड्या. परिपूर्णा पादपा वृक्षा तै युत युक्तम्, चित्र =
आश्चर्यजनकम्, महत् = विशालम्, कानन = वनम्, क्रान्त = लङ्घितम् । कपी-
न्द्रसैन्यसहित = कपीन्द्रस्य वानरेन्द्रस्य सुग्रीवस्य सैन्येन सेनया सहित युक्त,

(दोनों निकल जाते हैं)

॥ विष्कम्भक समाप्त ॥

(तत्पश्चात् राम, लक्ष्मण, सुग्रीव तथा हनुमान् प्रवेश करते हैं)

राम—विशाल शिखरो पर वर्तमान कुञ्जो के कारण घने तथा बादल के
सदृश पर्वत मेरे (द्वारा) लाँघ दिये गये, अब वानरेन्द्र (सुग्रीव) की सेना के
साथ समुद्र तट पर मैं उपस्थित हूँ ।

लक्ष्मणः—एष एष भगवान् वरुण ,
 सजलजलधरेन्द्रनीलनीरो
 विलुलितफेनतरङ्गचारुहार ।
 समधिगतनदीसहस्रबाहु-
 हरिरिव भाति सरित्पति शयान ॥ ३ ॥

रामः—कथं कथं भो !

रिपुमुद्धर्तुमुद्यन्त मामय सक्तसायकम् ।
 सजीवमद्य त कर्तुं निवारयति सागर ॥ ४ ॥

ज्ञाम्प्रतम् = इदानीम्, वेलातट = समुद्रतीरम्, सम्प्राप्त अस्मि = आगत अस्मि ।
 उपमालङ्कार । शार्दूलविक्रीडित छन्द ।

अन्वय.—सजलजलधरेन्द्रनीलनीर विलुलितफेनतरङ्गचारुहार समधि-
 गतनदीसहस्रबाहु सरित्पति शयान हरि इव भाति ।

सजलेति—सजलजलधरेन्द्रनीलनीर = सजल जलभरित य जलधर
 मेघ तद्वत् य इन्द्रनील इन्द्रनीलमणिरिव नीरम् जलम् यस्य स, विलुलित-
 फेनतरङ्गचारुहार = विलुलिता उत्क्षिप्ता ये फेनतरङ्गा फेनवीचय तै चारु
 सुन्दर हार माला यस्य स, समधिगतनदीसहस्रबाहु = समधिगतानि
 प्राप्तानि ये नदीसहस्राणि सरित्सहस्राणि तदेव बाहुव भुजा य तथाभूत,
 सरित्पति = नदीश्वर वरुण, शयान = स्वपन् । हरि इव = विष्णु इव,
 भाति = शोभते । उपमालङ्कार । पुष्पिताग्राच्छन्द ।

अन्वय —अयं सागर रिपुम् उद्धर्तुम् उद्यन्त सक्तसायकं माम् अद्य त

लक्ष्मण—यह, यह भगवान् वरुण,

जल से युक्त बादल के समान काले जल वाले, फैली हुई तरङ्ग-रूपी
 सुन्दर हार वाले सरित्पति (वरुण) सोते हुए सहस्रभुज (विष्णु) के समान,
 मिलने वाली नदी रूपी हजार हाथों से युक्त (होकर) शोभायमान हो रहे हैं ।

राम—अरे ! क्यों क्यों ?

उस (रावण) को सजीव बनाये रखने के लिए यह समुद्र आज शत्रु

सुग्रीवः—अये वियति,

सजलजलदसन्निभप्रकाश

कनकमयामलभूपणोज्ज्वलाङ्गः ।

अभिपतति कुतो नु राक्षसोऽसौ

शलभ इवाशु हुताशन प्रवेष्टुम् ॥ ५ ॥

हनुमान्—भो भो वानरवीरा ! अप्रमत्ता भवन्तु भवन्त ।

मजीवं कर्तुं निवारयति ।

रिपुमिति—अयम् = एष, माण = समुद्र, रिपुं = शत्रुम्, उद्धतुं = विनाशयितुम्, उद्यतम् = उद्यतम्, मत्तमायक = आरोग्यवशात्, माम् = रामम्, अद्य = अस्मिन् दिवसे, त = रावणम्, सजीव = जीवन्तम्, कर्तुं = विधातुम्, निवारयति = रणद्धि । अनुष्टुप्छन्द ।

अन्वय — मजलजलदसन्निभप्रकाश कनकमयामलभूपणोज्ज्वलाङ्ग अमौ राक्षसः । आशु हुताशन प्रवेष्टुं शलभ इव वुत नु अभिपतति ।

सजलेति—मजलजलदसन्निभप्रकाश = सजलेन सतीरेण य जलद वादन तसन्निभः सदृश प्रकाश कान्ति यस्य स, कनकमयामलभूपणोज्ज्वलाङ्ग = कनकमयानि सुवर्णयुक्तानि अमलानि निर्मलानि च यानि भूषणानि आभूषणानि तै उज्ज्वलानि देदीप्यमानानि अङ्गानि अवयवा यस्य स, असौ = अयम्, राक्षस = निगाचर, आशु = शीघ्रम्, हुताशनम् = अग्निम्, प्रवेष्टुम् = प्रवेश कर्तुं, शलभ इव = पतङ्ग इव, वुत = कस्मात्, नु = निश्चयेन, अभिपतति = अभिमुखम् आयाति । उपमालङ्कार । पुष्पितायाच्छन्द ।

रावण को नष्ट करने के लिए उद्यत तथा धनुष धारण करने वाले मुझको रोक रहा है ।

सुग्रीव—अरे दुर्भाग्य !

जल से युक्त बादल के समान कान्ति वाला, सुवर्णयुक्त निर्मल आभूषणों से शोभायमान अङ्गों वाला यह राक्षस आग में प्रवेश करने के लिए (उद्यत) पतङ्ग के समान क्यों आ रहा है ।

हनुमान्—हे, हे वानर-वीरो ! आप लोग सावधान हो जायें ।

शैलद्रुमं सम्प्रति मुष्टिवन्धैदन्तैर्नखैर्जानुभिरुग्रनादै ।

रक्षोवधार्थं युधि वानरेन्द्रास्तिष्ठन्तु रक्षन्तु च नो नरेन्द्रम् ॥ ६ ॥

रामः—राक्षस इति । हनूमन् ! अलमल सम्भ्रमेण ।

हनूमान्—यदाज्ञापयति देव ।

(तत प्रविशति विभीषण)

विभीषण.—भो ! प्राप्तोऽस्मि राघवस्य शिविरसन्निवेशम् ।

(विचिन्त्य) अकृतदूतसम्प्रेषणमविदितागमनममित्रसम्बन्धिन कथं नु
खलु मामवगच्छेत् तत्रभवान् राघव । कुत ,

भो भो इति—वानरवीरा = कपिशूरा , अप्रमत्ता = सावधाना ।

अन्वय—सम्प्रति वानरेन्द्रा शैलं द्रुमं मुष्टिवन्धै दन्तै नखै जानुभि
उग्रनादै (च) युधि रक्षोवधार्थं तिष्ठन्तु, न नरेन्द्र च रक्षन्तु ।

शैलं इति—शैलं = पर्वतैः, द्रुमं = वृक्षैः, मुष्टिवन्धै = मुष्टिकाप्रहारैः,
दन्तै = द्विजैः, नखै = नखरैः, जानुभि = उरुभिः, उग्रनादै = उच्चगजैः,
युधि = युद्धे, रक्षोवधार्थम् = राक्षसमारणाय, तिष्ठन्तु = स्थिता भवन्तु, न =
अस्माकम्, नरेन्द्र = राजानम्, च रक्षन्तु = पाल्यु । उपजाति छन्दः ।

राक्षस इति—सम्भ्रम = सभयम्, अल = व्यर्थम् ।

भो इति—राघवस्य = रामस्य, शिविरसन्निवेश = शिविरस्य सेनानि-
वासस्य सन्निवेश स्थानम्, प्राप्त अस्मि = आगत अस्मि । अकृतदूतसम्प्रेषण =

पर्वतो, पेड़ो, मुष्टि प्रहारो, दाँतो, नाखूना, जङ्घाओ तथा घनघोर गर्जना
से (आप) वानर गण युद्ध में राक्षसों के वध के लिए उद्यत रह और हमार
महाराज की रक्षा करें ।

राम—राक्षस है । हे हनुमान् ! घबडाता व्यर्थ है

हनुमान्—जो महाराज को आज्ञा

(तत्पश्चात् विभीषण प्रवेश करता है)

विभीषण—अरे ! राघव के शिविर के समीप आ गया हूँ । (सोचकर)

बिना दूत भेजे, अतर्कित भाव से उन्स्थित मुख सन्नुसम्बन्धी को पूजनीय
राघव क्या समयेंगे । क्योंकि—

क्रुद्धस्य यस्य पुरतः सहितोऽप्यशक्तः
 स्यातुं सुरैः सुररिपोर्युधि वज्रपाणिः ।
 तस्यानुज रघुपति शरणागत मां
 किं वक्ष्यतीति हृदय परिशङ्कित मे ॥ ७ ॥

अथवा,

दृष्टघर्माथं तत्त्वोऽय साधुः सश्रितवत्सलः ।
 शङ्कनीय कथं रामो विशुद्धमनसा मया ॥ ८ ॥

अवृत्तम् अविहितं दूतसम्प्रेषणं दूतसम्प्रेरणम् येन तम्, अविदितागमनम् =
 अविदितम् अज्ञातम् आगमनम् उपस्थापनं यस्य तम्, अमित्रसम्बन्धिनम् =
 अमित्रस्य शत्रोः सम्बन्धिनं वाग्धवम्, अवगच्छेत् = अवधारयेत् ।

अन्वयः—क्रुद्धस्य यस्य सुररिपो पुरतः सुरैः सहितः अपि वज्रपाणिः
 स्यातुम् अगम्य तस्य शरणागतम् अनुज माम् रघुपति किं वक्ष्यति इति मे
 हृदय परिशङ्कितम् ।

क्रुद्धस्येति—क्रुद्धस्य = कुपितस्य, यस्य = रावणस्य, देवरिपो = देवशत्रोः
 रावणस्य, पुरतः = अग्रे, सुरैः = देवैः, सहितं = सह अपि, वज्रपाणिः =
 इन्द्रः, म्यातु = स्थिरं भवितुम्, अशक्तः = असमर्थः, तस्य = रावणस्य,
 शरणागतम् = आश्रयप्राप्तम्, अनुजम् = कनिष्ठभ्रातरम्, मा = विभीषणम्,
 रघुपति = रामः, किं वक्ष्यति = किं वक्ष्यिष्यति, इति, मे = मम विभीषणस्य,
 हृदय = अन्तःकरणम्, परिशङ्कितम् = आशङ्कितम्, अस्तीति शेषः ।
 अर्यापतिरलङ्कारः । वसन्ततिलकाच्छन्दः ।

अन्वयः—दृष्टघर्माथं तत्त्वः सश्रितवत्सलः अथ साधु राम विशुद्धमनसा

युद्धं मे क्रोधितः जिस देव-शत्रु (रावण) के सामने देवताओं के साथ वज्र-
 पाणि (इन्द्र) भी स्थिर रहने में असमर्थ थे, उसी के शरणागत अनुज मुझ
 (विभीषण) को राम क्या कहेंगे? यह मेरे हृदय में आशङ्का है ।

अथवा,

धर्म और अर्थ के तत्त्व को जानने वाले, आश्रित जनों (शरणागत लोगों)

(अधोऽवलोक्य) इदं रघुकुलवृषभस्य स्कन्धावारम् । यावदतरामि ।
(अवतीर्त्त) हन्त इह स्थित्वा ममागमनं देवाय निवेदयामि ।

हनूमान्—(ऊर्ध्वमवलोक्य) अये कथं तत्रभवान् विभीषणः !

विभीषणः—अये हनूमान् ? हनूमन् ! ममागमनं देवाय निवेदय ।

हनूमान्—वाढम् । (उपगम्य) जयतु जयतु देव ।

राजस्त्वत्कारणादेव भ्रात्रा निर्विषयीकृतः ।

विभीषणोऽयं धर्मात्मा शरणार्थमुपागतः ॥ ९ ॥

मया कथं शङ्कनीयं ।

दृष्टधर्मार्थेति—दृष्टधर्मार्थतत्त्व = दृष्ट ज्ञात धर्मार्थतत्त्व धर्मार्थयाथा-
र्थम् येन स, सश्रितवत्सत्त्व = सश्रितेषु शरणागतेषु बत्सल स्नेहयुक्त,
अयम् = एष पुरोविद्यमान, साधु = सज्जन, राम = राघव, विशुद्धमनसा
= पवित्रचेतसा, मया = विभीषणेन, कथं = केन प्रकारेण, शङ्कनीयं =
शङ्क्य । अनुष्टुप्छन्दः ।

इदमिति—इदम् = एतत्पुरोवर्तमानम्, रघुकुलवृषभस्य = रघुवशश्रेष्ठस्य,
स्कन्धाधार = सेनानिवासम्, स्थित्वा = स्थितिं प्राप्य, मम = आत्मनः ।

अन्वयः—हे राजन् ! त्वत्कारणात् एव भ्रात्रा निर्विषयीकृतं अयं धर्मात्मा

से प्रेम करने वाले तथा सज्जन ये राम पवित्र हृदय वाले मुझ (विभीषण) के
द्वारा शङ्का करने योग्य कैसे है ।

(नीचे की ओर देखकर) यह रघुकुल-श्रेष्ठ (राम) की सेना का निवास-
स्थल है । तो उतरता हूँ । (उतरकर) अरे ! यहाँ (ही) रुककर अपने
आगमन को महाराज (राम) को सूचित करता हूँ ।

हनूमान्—(ऊपर देखकर) अरे ! क्या पूजनीय विभीषण है ?

विभीषण—अरे ! क्या हनूमान् है ? हे हनूमान् ! मेरे आने को
महाराज से सूचित कर दो ।

हनूमान्—बचला । (समीप जाकर) विजयी हो, महाराज विजयी हो ।

हे राजन् ! आप (राम) के कारण ही भाई (रावण) के द्वारा निष्कासित
ये धर्मात्मा विभीषण आश्रय के लिए आये हैं ।

रामः—कयं विभीषण. शरणागत इति ? वत्स लक्ष्मण ! गच्छ, सत्कृत्य प्रवेश्यतां विभीषणः ।

लक्ष्मण—यदान्नापयत्यायं ।

रामः—मुग्धीव ! वक्नुकाममिव त्वा लक्षये ।

मुग्धीवः—देव ! बहुमायाश्छलयोघिनश्च राक्षसाः । तस्मात् सम्प्रधायं प्रवेश्यतां विभीषण ।

हनुमान्—महाराज ! मा मैवं,

देवे यया वयं भक्तास्तया मन्ये विभीषणम् ।

विभीषण. शरणार्थम् उपागत ।

राजनिति—राजन्=हे नृप । स्वत्कारणाद्=तव हेतो, भ्रात्रा=अग्रजेन रावणेन, निविपयोवृत्त=देशाद् निष्कामित, अयम्=एष पुरोविद्यमान., धर्मात्मा=धर्मशील, विभीषण=एतन्नामक रावणस्यानुज, शरणार्थम्=आश्रयार्थम्, उपागत=उपायान । अनुष्टुप्छन्द ।

कयमिति—वत्स=हे भ्रात्रा, मत्कृत्य=मन्कार कृत्वा, प्रवेश्यता=प्रविष्टः त्रियताम् । वक्नुकामम्=वक्तुं कथितुं काम. इच्छा यस्य तम्, लक्षये=पश्यामि । बहुमायेति—बहुमायाश्छलयोघिनः=बहुमाया बह्वी विपुत्रा माया. मोहनोच्चाटनादिकं येषां ते छलेन कपटेन युद्धयन्ते युद्धं कृवंन्तीति । सम्प्रधायं=विचार्यं । प्रवेश्यता=प्रविष्टः त्रियताम् ।

अन्वयः—देवं यया वयं भक्ता तथा विभीषणं मन्ये । पूर्वं मया पुरे

राम—क्या विभीषण शरण में आये हैं ? हे भाई लक्ष्मण ! जाओ, सत्कार करके विभीषण को ले जाओ ।

लक्ष्मण—जो आप को आना ।

राम—हे मुग्धीव ! मैं समझता हूँ कि (आप) कुछ कहना चाहते हैं ।

मुग्धीव—हे महाराज ! राक्षस बहूत मायावी और छलपूर्वक युद्ध करने वाले होते हैं । तो विचार करके विभीषण को प्रवेश कराया जाय ।

हनुमान्—हे महाराज ! नहीं, ऐसा नहीं ।

जैसे हम महाराज आप के भक्त हैं वैसे ही विभीषण को भी मैं समझता

भ्रात्रा विवदमानोऽपि दृष्ट. पूर्व पुरे मया ॥ १० ॥

रामः—यद्येवं गच्छ, सत्कृत्य प्रवेश्यतां विभीषणः ।

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यं । (परिक्रम्य) अये विभीषणः ।

विभीषण ! अपि कुशली भवान् !

विभीषणः—अये कुमारो लक्ष्मणः ? कुमार ! अद्य कुशली संवृत्तोऽस्मि ।

लक्ष्मणः—विभीषण ! उपसर्पावस्तावदार्यम् ।

विभीषणः—वाढम् ।

(उपसर्पत.)

भ्रात्रा विवदमान. अपि दृष्ट. ।

देवे इति—देवे = महाराजे त्वयि, यथा = येन प्रकारेण, ध्य = हनुमानादयः, भक्ताः = भक्तिपूर्णाः, तथा = तेन प्रकारेण, विभीषणम् = एतन्नामकरावणानुजम्, मन्थे = अवगच्छामि । पूर्वम् = पूर्वकाले, मया = हनुमता, पुरे = लङ्कायाम्, भ्रात्रा = अग्रजेन रावणेन, विवदमान = विवादं कुर्वन्, दृष्टः = विलोकितः । उपमालङ्कारः । अनुष्टुप्छन्द ।

यदाज्ञापयेति—कुशली = कुशलयुक्तः, उपसर्पावः = समीपं गच्छावः ।

हैं । क्योंकि मेरे द्वारा (लङ्का) नगर में (आप के लिए) भाई के साथ झगडा करते हुए देखा गया था ।

राम—यदि ऐसा है तो जाओ, सत्कार करके विभीषण को ले जाओ ।

लक्ष्मण—जैसी आर्य की आज्ञा । (घूमकर) अरे विभीषण हैं ! हे विभीषण हैं ! आप सकुशल तो हैं ?

विभीषण—अरे कुमार लक्ष्मण हैं ! हे कुमार ! आज सकुशल हो गया हूँ ।

लक्ष्मण—हे विभीषण ! आर्य (राम) के समीप चलिए ।

विभीषण—अच्छा ।

(दोनों समीप जाते हैं)

लक्ष्मणः—जयत्वार्यः ।

विभीषणः—प्रसीदतु देवः । जयतु देवः ।

रामः—अये विभीषणः । विभीषण ! अपि कुशली भवान् ?

विभीषण—देव ! अद्य कुशली संवृत्तोऽस्मि ।

भवन्तं पद्मपत्राक्षं शरण्यं शरणागतः ।

अद्यास्मि कुशली राजंस्त्वद्दर्शनविकल्प ॥ ११ ॥

रामः—अद्यप्रभृति मद्दचनाल्लङ्केश्वरो भव ।

विभीषण—अनुगृहीतोऽस्मि ।

रामः—विभीषण ! त्वदागमनादेव सिद्धमस्मत्कार्यम् । सागरतरणे

अन्वयः—हे राजन् ! पद्मपत्राक्षं शरण्यं भवन्तं शरणागत (अहं) अद्य कुशली त्वद्दर्शनविकल्प च अस्मि ।

भवन्तमिति—राजन् = हे भूपाल ! पद्मपत्राक्ष = कमलदलनपत्रम्, शरण्यं = शरणागतरक्षकम्, भवन्तं = रामम्, शरणागत = आश्रयप्राप्तः, अद्य = अस्मिन् दिवसे, त्वद्दर्शनविकल्प = तव दर्शनेन विकल्पः निष्पापः, अस्मि = भवामि । उपमालङ्कारः । अनुपुच्छन्दः ।

अद्येति—अद्यप्रभृति = अस्मात् दिवसात्, मद्दचनात् = ममादेशात्, लङ्केश्वरः = लङ्केशः, अनुगृहीतः = अनुकम्पितः । त्वदागमनात् = तव आगमनात् ;

लक्ष्मण—आर्यं विजयी हो ।

विभीषण—प्रसन्न होइए महाराज ! आप को विजय हो ।

राम—अरे विभीषण है । है विभीषण ! आप सकुशल तो हैं ?

विभीषण—है महाराज ! आज सकुशल हो गया हूँ ।

हे राजन् ! कमल-पत्र के समाप्त नेत्र वाले, (शरणागत लोगो के) आश्रय आप की शरण मे आया हुआ मैं आज आप के दर्शन से पाप-रहित होकर सकुशल हो गया हूँ ।

राम—आज से आप मेरे आदेश से लङ्केश्वर होइए ।

विभीषण—अनुगृहीत हूँ ।

राम—हे विभीषण ! आप के आने से ही हमारा कार्य निम्न हो गया ।

खलूपायो नाधिगम्यते ।

विभीषणः—देव ! किमत्रावगन्तव्यम् । यदि मार्गं न ददाति, समुद्रे दिव्यमस्त्रं विस्रष्टुमर्हति देवः ।

रामः—साधु विभीषण ! साधु । भवतु, एवं तावत् करिष्ये ।
(सहसोत्तिष्ठन् सरोणम्)

मम शरपरिदग्धतोयपङ्कं हतशतमत्स्यविकीर्णभूमिभागम् ।

यदि मम न ददाति मार्गमेतं प्रतिहतवीचिरय करोमि शीघ्रम् ॥१२॥

सिद्धं=पूर्णम्, अस्मत्कार्यं=अस्माकं कार्यम् । सागरतरणे=समुद्रलङ्घने, उपायः=युक्तिः, न अधिगम्यते=न ज्ञायते । विस्रष्टुं=प्रक्षेप्तुम् ।

अन्वयः—यदि मम मार्गं न ददाति (तर्हि) शीघ्रम् एव एतम् मम शरपरिदग्धतोयपङ्कं हतशतमत्स्यविकीर्णभूमिभागं करोमि ।

ममेति—यदि=चेत्, मम=मह्यम्, मार्गम्=पन्थानम्, न ददाति=न प्रयच्छति, शीघ्रं=त्वरितम्, एतं=समुद्रम्, मम=रामस्य, शरपरिदग्धतोयपङ्कं=शरेण बाणेन परिदग्धे प्लुष्टे तोयपङ्कं जलकदंभी यस्य तम्, हतशतमत्स्यविकीर्णभूमिभागं=हता मृत शतानि अनेकसङ्ख्यकानि ये मत्स्या मीना तं विकीर्णं व्याप्त भूमिभागः भूमिप्रदेशः यस्य तम्, प्रतिहतवीचिरय=प्रतिहतः समाप्तः वीचिरय तरङ्गशब्दः यस्य तम्, करोमि=विदधे । पुष्पिताग्राच्छन्दः ।

समुद्र पार करने का उपाय नहीं समझ मे आ रहा है ।

विभीषण—हे महाराज ! इसमें क्या समझना है । यदि (समुद्र) रास्ता नहीं देता तो आप समुद्र में दिव्यास्त्र छोड़ सकते हैं ।

राम—ठीक है, हे विभीषण ! ठीक है । अच्छा, तो ऐसा ही करता हूँ ।

(महमा उठकर क्रोध के साथ)

(यह समुद्र) यदि मुझको रास्ता नहीं देता तो इस (समुद्र) को मैं शीघ्र ही अपने बाणों से दग्ध जल तथा पङ्क वाला, (जल सूख जाने से) मरी हुई सैकड़ों मछलियों से व्याप्त-स्थान वाला तथा समाप्त तरंग-ध्वनि वाला बना रहा हूँ ।

(तत प्रविशति वरुणः)

वरुणः—(सप्तमध्रमम्)

नारायणस्य नररूपमुपाश्रित्य

कार्यार्थमभ्युपगतस्य कृतापराधः ।

देवस्य देवरिपुदेहहरात् प्रतूर्णं

भीतः शराच्छरणमेनमुपाश्रयामि ॥ १३ ॥

(विलोक्य) अये अय भगवान्,

मानुष रूपमास्थाय चक्रशाङ्कगदाधरः ।

स्वयं कारणभूतं सन् कार्यार्थी समुपागतः ॥ १४ ॥

अन्वयः—नररूपम् उपाश्रितस्य नारायणस्य कार्यार्थम् अभ्युपगतस्य देवस्य कृतापराधः (अहं) देवरिपुदेहहरात् शरात् भीतः सन् प्रतूर्णम् एन शरणम् उपाश्रयामि ।

नारायणस्येति—नररूप = मानुषस्वरूपम्, उपाश्रित्यस्य = धारयत, कार्यार्थं = कार्याय, अभ्युपगतस्य = ससारे आपतस्य, नारायणस्य = विष्णो, देवस्य = महाराजस्य, कृतापराधः = विहितदोषः, अहमिति दोषः, देवरिपु-देहहरात् = देवरिपुणा सुरशत्रूणा देहाणा शरीराणा हरात् हरति विनाशयति इति तस्मात्, शरात् = बाणात्, भीतः = भस्तः, प्रतूर्णं = शीघ्रम्, एन = रामम्, शरणम् = आश्रयम्, उपाश्रयामि = गृह्णामि । काव्यलिङ्गमलङ्कारः । वसन्ततिरकाञ्छन्दः ।

अन्वयः—स्वयं कारणभूतं चक्रशाङ्कगदाधरं मानुषं रूपम् आस्थाय

वरुण—(घबराहट के माथ)

मानुष्य का रूप धारण करने वाले, कार्य के लिए आये हुए विष्णुरूप महाराज (राम) के प्रति अपराधी बना हुआ मैं देवताओं के शत्रुओं के शरीर का नाश कर देने वाले बाण से डरा हुआ शीघ्र इनकी (राम की) शरण लेता हूँ । (देखकर) अरे ! ये भगवान् हैं,

स्वयं (ससार के) कारणरूप तथा चक्र, शाङ्क और गदाधारी (विष्णु)

रामः—कथमन्तर्हितो भगवान् वरुणः । विभीषण ! पश्य पश्य
भगवत्प्रसादान्निष्कम्पवीचिमन्तं सलिलाधिपतिम् ।

विभीषण.—देव ! साम्प्रतं द्विधाभूत इव दृश्यते जलनिधिः ।

रामः—क्व हनुमान् ?

हनुमान्—जयतु देवः ।

रामः—हनुमन् ! गच्छाग्रतः ।

हनुमान्—यदाज्ञापयति देवः ।

(सर्वे परिक्रामन्ति)

रामः—(विलोक्य सविस्मयम्) वत्स लक्ष्मण ! वयस्य विभीषण !
महाराज सुग्रीव ! सखे हनुमन् ! पश्यन्तु पश्यन्तु भवन्तः । अहो
विचित्रता सागरस्य इह हि,

अस्ति । एष. = अयम्, मार्गे = पन्था, प्रयातु = गच्छतु ।

कथमिति—अन्तर्हितः = तिरोहित, भगवत्प्रसादात् = भगवत्. वरु-
णस्य प्रसादात् अनुग्रहात्, निष्कम्पवीचि = निष्कम्पा. निश्चला वीचयः
तरङ्गा यस्य सम, सलिलाधिपति = जलस्वामिनम्, । देवेति—देव = हे
महाराज ! जलनिधिः = समुद्र, द्विधाभूत. इव = दृयोः भागयोः
विभक्त. इय ।

वत्सेति—वयस्य = हे मित्र ! विचित्रता = आश्चर्यजनकता ।

राम—क्या भगवान् वरुण अन्तर्धान हो गये । हे विभीषण ! देखिए,
देखिए । भगवान् वरुण देव की कृपा से समुद्र स्थिर तरंगो वाला हो गया है ।

विभीषण—हे महाराज ! समुद्र अब दो भागों में बँटता हुआ-सा
दिखलायी पड़ रहा है ।

राम—हनुमान् कहीं हैं ?

हनुमान्—महाराज विजयी होवे ।

राम—हे हनुमान् ! आगे चलो ।

हनुमान्—जैसी महाराज की आज्ञा ।

(सभी घूमते हे)

राम—(देखकर आश्चर्यपूर्वक) हे भाई लक्ष्मण ! हे मित्र विभीषण !

क्वचित् फेनोद्गारी क्वचिदपि च मीनाकुलजल
 क्वचिच्छङ्खाकीर्णं क्वचिदपि च नीलाम्बुदनिभ ।
 क्वचिद् वीचीमाल क्वचिदपि नक्रप्रतिभय
 क्वचिद् भीमावर्तं क्वचिदपि च निष्कम्पसलिल ॥१७॥
 भगवत्प्रसादादतीत सागर ।

अन्वय — क्वचित् फेनोद्गारी क्वचित् अपि मीनाकुलजल, क्वचित्
 शङ्खाकीर्णं क्वचित् अपि च नक्रप्रभृतय क्वचित् भीमावत क्वचित् अपि च
 निष्कम्पमलिल (अस्ति) ।

क्वचिदिति—क्वचित्=कस्मिंश्चित् प्रदेशे, फेनोद्गारी=फेनम्
 हिष्डीरम् उद्गिरति उद्गमति इति स मीनाकुलजल =मीनं मत्स्यं आकुल
 व्याप्त जल नीर यस्य स, क्वचित्=कस्मिंश्चित् स्थान, शङ्खाकीर्ण =
 शङ्खं बम्बुभि आशीर्ण व्याप्त क्वचिदपि=कस्मिंश्चित् प्रदेशस्य नीलाम्बु-
 दनिभ =नील नीलवर्णं य अम्बुद बादल तन्निभ तत्पदार्थ, क्वचित्=
 कस्मिंश्चित् स्थले,, वीचीमाल =वीचीना तरङ्गाना माला धेणी यस्मिन् स,
 क्वचिदपि =कस्मिंश्चिदधिष्ठाने, नक्रप्रतिभय =नक्रं कुम्भीरं प्रतिभय
 भयङ्कर, क्वचित्=कस्मिंश्चिद्देशे, भीमावर्तं =भीमा भयङ्करा आवर्ता-
 जलध्रमय यस्मिन् स, क्वचिदपि=कस्मिंश्चित्प्रदेशे, निष्कम्पसलिल =
 निश्चलजल, अस्ति । शिखरिणीच्छद ।

भगवदिति—अतीत =लङ्घित । सागर =समुद्र ।

हे महाराज सुश्रीव ! हे मित्र हनुमान् ! देखिए देखिए आप लोग । यहाँ
 समुद्र की कैसी विचित्रता है, क्याकि—

(यह समुद्र) कहीं फेन से व्याकुल, कहीं मछलियां से परिपूर्ण जल वाला,
 कहीं शङ्खों से व्याप्त, कहीं नीले बादल के समान जल (-युक्त), कहीं तरङ्ग
 समूहों वाला, कहीं नक्रों के कारण भयानक, कहीं भयङ्कर भँवरों से युक्त और
 कहीं स्थिर शांत-जल से युक्त है ।

भगवान् (वरुण) की कृपा से समुद्र पार कर लिया गया ।

हनूमान्—देव ! इयमियं लङ्का ।

रामः—(चिरं विलोक्य) अहो राक्षसनगरस्य श्रीरचिराद् विपत्स्यते ।

मम शरवरवातपातभग्ना कपिवरसैन्यतरङ्गताडितान्ता ।

उदधिजलगतेव नौविपन्ना निपतति रावणकर्णधारदोपात् ॥ १८ ॥

सुग्रीव ! अस्मिन् सुवेलपर्वते क्रियतां सेनानिवेशः । (उपविशति)

अन्वय.—मम शरवरवातपातभग्ना कपिवर सैन्यतरङ्गताडितान्ता
(लङ्कापुर्या. श्री.) रावणकर्णधारदोपात् विपन्ना उदधिजलगता नौ इव
निपतति ।

अहो इति—राक्षसनगरस्य = राक्षसस्य रावणस्य नगरस्य पुरम्य,
श्रीः = समृद्धि, अचिरात् = शीघ्रमेव, विपत्स्यते = विनश्यति ।

ममेति—मम = रामस्य, शरवरवातपातभग्ना = शरवर वाणश्रेष्ठः
एव वात वायु तस्य पातेन आक्रमणेन भग्ना भिन्ना, कपिवरसैन्यतरङ्ग-
ताडितान्ता = कपिवरस्य सुग्रीवस्य सैन्यानि सैनिका एव तरङ्गा. वीचय तै-
ताडिताः आहता अन्ता प्रान्तभागा. यस्या सा, उदधिजलगता = समुद्रजल-
स्थिता, नौ. इव = नौका इव, निपतति = मज्जतीत्यर्थं । उपमा रूपक-
लङ्कारी । पुष्पिताप्राञ्चन्दः ।

हनूमान्—हे महाराज ! यह लङ्का है ।

राम—(देर तक देखकर) ओह ! राक्षस-नगर (लङ्का) की समृद्धि
शीघ्र ही नष्ट हो जायेगी ।

रावण-रूपी कर्णधार के अपराध के कारण मेरे वाण-रूपी वायु के गिरने
से चूर, तथा वानर-श्रेष्ठ (सुग्रीव) की सेना-रूपी तरंगों से उसी प्रकार नष्ट
हो जाएगी जैसे समुद्र के जल में स्थित नौका (वातचालित होकर तरङ्गों
द्वारा विनष्ट कर दी जाती है) ।

हे सुग्रीव ! इस सुवेल पर्वत पर सेना का निवास बनाइए । (बैठ
जाते हैं) ।

मुग्रीयः—यदाज्ञापयति देव । नील । एव त्रियताम् ।
(प्रविश्य)

नीलः—यदाज्ञापयति महाराज । (निष्क्रम्य प्रविश्य) जयतु देव ।
क्रमात्रिवेश्यमानासु मेनासु वृन्दपरिग्रहेषु परीक्ष्यमाणेषु पुस्तकप्रामाण्यात्
कुत्रश्चिदप्यविज्ञायमानो द्वौ वनीरसौ गृहीतो । वयं न जानीम
वत्तन्थम् । देवस्तस्मान् प्रमाणम् ।

रामः—शौत्र प्रवेशयत्वेतौ ।

नील —यदाज्ञापयति देव । (निष्क्रम्य)

मुग्रीवेति—अस्मिन् = वनमान गुणवपवंते = गुणैरनामकगिरी, सना-
निवेश = सैन्यनियाम, त्रियता = त्रिधीयताम् ।

यदाज्ञापयतीति—यत् = यथा, आज्ञापयति = आदिनति, क्रमात् =
क्रमशः, निवेश्यमानासु = म्याप्यमानासु, मेनासु = सैन्यसु, वृन्दपरिग्रहेषु =
वृदाना रीतिवन्मूहाना परिग्रहेषु ग्रहणेषु, परीक्ष्यमाणेषु = अवश्यमाणेषु,
पुस्तकप्रामाण्यात् = पुस्तकानां पत्रिकानां प्रामाण्यात् प्रमाणाधारात्,
अविज्ञायमानो = अप्रत्यक्षविज्ञायमानो वनीरसौ = वानरौ, गृहीतो = धृती ।
वत्तन्थम् = करणीयम्, न जानीम = न जानामि । तस्मात् = अत एव,
देव = महाराज भवान् ।

मुग्रीयः—जीमी थाप की आज्ञा । हे नील । ऐसा ही करो ।
(प्रवेश करके)

नील—जीमी महाराज की आज्ञा । (निकल कर पुनः प्रवेश करके)
महाराज विजयी हो । क्रमानुसार सनाथा के प्रणय जाने के समय (सिना के)
समूह की गिनती करने पर श्लेष (त्रिष्ट) के महारे परिश्रम करने पर किसी
प्रकार भी न पहचान में आने वाले दो वानर पकड़े गये हैं । हम नहीं जानते
कि (उनके प्रति) क्या किया जाय । अतः आप ही प्रमाण हैं ।

राम—वे दोनों शीघ्र लाये जाय ।

नील—महाराज की जीमी आज्ञा । (निकल जाता है)

(तत प्रविशति नीलो वानरैर्गृह्यमाणी वानररूपधारिणी
सम्पुटिकाहस्तौ शुकसारणी च)

वानरा — अङ्घो भणथ । के तुम्हे भणथ । [अङ्घो भणतम् । कौ युवा
भणतम् ।]

उभौ—भट्टा ! अम्हे अय्यकुमुदस्य सेवका । [भर्त ! आचामार्य
कुमुदस्य सेवकी ।]

वानरा — भट्टा ! अय्यकुमुदस्य सेवकत्ति अत्ताण अवदिसन्ति ।
[भर्त ! आयकुमुदस्य सेवकावित्यात्मानमपदिशत ।]

विभीषण — (सावधान शुकमारणी विलोक्य)

स्वसैनिकौ न चाप्येतौ वनोकसौ ।

प्रेपितौ रावणेनैतौ राक्षसौ शुकसारणी ॥ १९ ॥

यदिति—वानरै = कपिभिः गृह्यमाणी = आकृष्यमाणी, वानररूपधा
रिणी = कपिस्वरूपधारिणी, सम्पुटिकाहस्तौ = सम्पुटिका पेटिका हस्ते बरे
यमो तौ ।

अङ्घो इति—भणत = कथयतम्, आर्यकुमुदस्य = आर्यस्य पूजनीयस्य
कुमुदस्य एतन्नामकस्य सुग्रीवसेनापते, सेवकी = भृत्यी । आत्मन = स्वम्,
अपदिशत = छलपूर्वकं कथयत ।

अन्वय — एतौ न च अपि स्वसैनिकौ न च अपि एतौ वनोकसौ
(स्त) । एतौ (तु) रावणेन प्रेषितौ शुकसारणी राक्षसौ (स्त) ।

(तत्पश्चात् नील तथा वानरो द्वारा पकड़े गये, पेटि बँधी हाथ वाले
वानररूप धारी शुक और सारण प्रवेश करते हैं)

वानर—अरे ! बताओ, तुम दोनों कौन हो ?

दोनों—हे स्वामी ! हम आर्य कुमुन्द के सेवक हैं ।

वानर—हे स्वामी ! ये दोनों आर्य कुमुद का सेवक बतलाते हैं ।

विभीषण—(सावधानी से शुक और सारण को देखकर)

ये दोनों न अपने सैनिक हैं और न दोनों वानर ही हैं । ये दोनों रावण
द्वारा भेजे गये शुक और सारण (नामक) राक्षस हैं ।

उभौ—(आत्मगनम्) हन्त कुमारेण विज्ञातौ स्व । (प्रकाशम्)
 आर्यं । आवां खलु राक्षसराजस्य विप्रतिपत्त्या विपद्यमान राक्षसकुलं
 दृष्ट्वास्पदमलभमानौ आर्यमश्रयार्थं वानररूपेण सम्प्राप्तौ ।
 राम.—वयस्य ! विभीषण ! कथमिव भवान् मन्यते ।
 विभीषण—देव !

एतौ हि राक्षसेन्द्रस्य सम्मतौ मन्त्रिणौ नृप ।

प्राणान्तिकेऽपि व्यसने लङ्घ्ये नैव मुञ्चत ॥ २० ॥

स्वसैनिकौ इति—एतौ=दुभौ पुरोविद्यमानौ, स्वसैनिकौ=स्वो
 म्वकीयो सैनिकौ भटौ, न=नहि स्त, न च=न चापि, इमौ, वनौकमौ=
 वानरौ, स्त । एतौ=इमां, रावणेन=दशाननेन, प्रेषितौ=प्रहितौ,
 सुकमारणौ=एतन्नामकौ, राक्षसौ=निशाचरो, वनेतौ । अनुष्टुप्छन्द ।
 हन्तेति—कुमारेण=विभीषणेन, विज्ञातौ=प्रत्यभिज्ञातौ, आवा=द्वौ,
 राक्षसराजस्य=राक्षसेन्द्रस्य राजस्य, विप्रतिपत्त्या=विपरीतबुद्ध्या, विप-
 द्यमानं=दिनश्यमानम्, राक्षसकुलं=रजनीचरवगम्, दृष्ट्वा=बिलोक्य,
 आस्पदं=म्यानम्, अलभमानौ=न प्राप्तवन्तौ, आर्यमश्रयार्थं=भक्त.
 शरणाय, सम्प्राप्तौ=आगतौ ।

अन्वय—हे नृप ! एतौ राक्षसेन्द्रस्य सम्मतौ मन्त्रिणौ स्त प्राणान्तिके
 व्यसने अपि लङ्घ्ये न एव मुञ्चत ।
 एतौ इति—नृप=हे राजन् । राक्षसराजस्य=राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य,

दोनों—(अपने मन में) ओह ! कुमार (विभीषण) द्वारा हम दोनों
 पहचान लिये गये । (प्रकट रूप में) हे आर्य ! राक्षसराज (रावण) की
 बुद्धि के कारण विपत्ति में पड़े राक्षसकुल को देखकर स्वयं पाने की इच्छा
 में वानर के रूप में हम दोनों आप की शरण में आये हैं ।

राम—हे मित्र विभीषण ! आप क्या समझते हैं ?

विभीषण—हे महाराज !

हे राजन् ! ये दोनों राक्षसेन्द्र (रावण) के अतिप्रिय मन्त्री हैं । प्राणान्त-
 कारक कष्ट में लङ्घ्ये (रावण) को नहीं छोड़ेंगे ।

तस्मात् यथार्हं दण्डमाज्ञापयतु देवः ।

रामः—विभीषण ! मा मैवम् ।

अनयोः शासनादेव न मे वृद्धिर्भविष्यति ।

क्षयो वा राक्षसेन्द्रस्य तस्मादेती विमोचय ॥ २१ ॥

लक्ष्मण. —यदि विमुञ्चेत्, सर्वस्कन्धावारं प्रविश्य परीक्ष्य पुनर्मोक्षमाज्ञापयत्वार्थः ।

सम्मतो = प्रियो, मन्त्रिणो = अमात्यो, स्त इति शेषः । प्राणान्तिकेऽपि = प्राणपातकेऽपि, व्यसने = सङ्घटे, लङ्केश = रावणम्, नैव = नहि एव, मुञ्चत = त्यजतः । अनुष्टुप्छन्दः ।

तस्मादिति—तस्मात् = अत एव, यथार्हं = यथोचितम् दण्डम् = शासनम्, आज्ञापयतु = आदिशतु ।

अवयव — अनयो. शासनात् एव मे वृद्धि राक्षसेन्द्रस्य क्षय. वा न भविष्यति, तस्मात् एतो विमोचय ।

अनयो इति—अनयो. = एतयो, शासनात् = दण्डात्, एव, न = नहि, मे = मम रामस्य, वृद्धि = अभ्युदय, वा = अथवा, राक्षसेन्द्रस्य = रावणस्य, क्षय = नाश, भविष्यति, तस्मात् = अतएव, एतो = इमो, विमोचय = मुक्तो कारय । अनुष्टुप्छन्दः ।

यदीति—विमुञ्चेत् = मुक्तं कुर्यात्, सर्वस्कन्धावारं = सर्वश्चासौ स्कन्धावार सेनानिवासम्, प्रविश्य = गत्वा, परीक्ष्य = निरीक्ष्य, मोक्ष = विमुक्तिम्, आज्ञापयतु = आदिशतु ।

अत. आप यथायोग्य दण्ड का आदेश दीजिए ।

राम—हे विभीषण ! ऐसा मत कहो ।

इन दोनों को दण्ड देने से मेरा अभ्युदय अथवा राक्षसेन्द्र (रावण) को अवनति नहीं होगी, अतः इन दोनों को छोड़ दीजिए ।

लक्ष्मण—यदि छोड़ना है तो सेना-निवास में प्रवेश कराकर (घुमाकर) तथा (सम्पूर्ण सैनिकों को) दिखलाकर तब आप छोड़ने का आदेश दीजिए ।

राम — मम्यगभिहित लक्ष्मणेन । नील ! एव क्रियताम् ।

नील — यदाज्ञापयति देव ।

राम — जयवा एहि तावत् ।

उभौ — इमौ स्व

राम — अभिधीयता मद्रचनात् स राक्षसेन्द्र ,

मम दारापहारेण स्वयद् ग्राहितविग्रह ।

आगतोऽहं न पश्यामि द्रष्टुकामो रणानियि ॥ २२ ॥

उभौ — यदाज्ञापयति देव । (निःशब्दौ)

राम — विभीषण ! वयमपि तावदानन्तरीय बल परीक्षिष्यामहे ।

सम्यगिति—मम्यङ् = उचिनम् अभिहित = वधितम् क्रियताम् = अनुष्ठीयताम् ।

अन्वय — मम दारापहारण स्वयग्राहितविग्रह आगत रणानियि (अहं) द्रष्टुकाम (त्वा) न पश्यामि ।

ममेति—मम = रामस्य, दारापहारण = मायापहरणेन स्वयग्राहितविग्रह = स्वयम् आमना एव ग्राहित ग्रहण कारित विग्रह युद्धम् यस्य न, आगत = आयात, रणानियि = रणाय युद्धाय अनियि आगन्तुक, द्रष्टुकाम = वि-त-किन्तुमभिलाष न = नन्वि पश्यामि = अवलोकयामि । अनुष्णुपठद ।

राम — शब्द क द्वारा टीक कहा गया । ह नाल ! एना ही करा ।

नील — ना महाराज की आज्ञा ।

जयवा — तब तक यहाँ आजा ।

राम — मर कयनानुसार रावण म कह देना —

मेरी (राम की) पत्ना का अपहरण करके आप के द्वारा स्वयं अनुष्ठा ग्रहण की गयी है । अतः युद्ध क लिय आया हुआ अनियि मैं (आप का) इत्तना चाहता हूँ किन्तु दत्त नहीं रहा हूँ ।

दोनों — ना महाराज को आना । (दाना निकल जात हैं)

राम — ह विभीषण ! तब तक हम भी जपन आन्तरिक सेना की

विभीषण — यदाज्ञापयति देव ।

राम — (परिक्रम्य विन्धोत्रय) अये अस्तमितो भगवान् दिवाकर ।
सम्प्रति हि,

अस्ताद्रिमस्तकगत प्रतिसहृताशु
सन्ध्यानुरञ्जितवपु प्रतिभाति सूर्य ।
रक्तोज्ज्वलाशुकवृते द्विरदस्य कुम्भे
जाम्बूनदेन रचित पुलको यथैव ॥ २३ ॥

विभीषणेति—वयम् = राम, अवि, आन्तरीय = मानीष्यम् बल =
सैन्यम्, परीक्षिष्यामहे = निरीक्षिष्यामहे । अस्तम् इत = अस्ताचल गत,
दिवाकर = सूर्य ।

अन्वय — अस्ताद्रिमस्तकगत प्रतिसहृताशु सन्ध्यानुरञ्जितवपु सूर्यं
रक्तोज्ज्वलाशुकवृते द्विरस्य कुम्भे जाम्बूनदेन रचित पुलक यथा एव
प्रतिभाति ।

अस्ताद्रीति—अस्ताद्रिमस्तकगत = अस्तस्य अस्तगमनस्य अद्रि =
पर्वत तस्य मस्तक शिखर मत यात, प्रतिसहृतानु = प्रतिसहृता मद्धो-
चिता अशव किरण येन स, सन्ध्यानुरञ्जितवपु = स ज्यया भायकालेन
अनुरञ्जित रक्तीकृत वपु शरीर यस्य स सूर्य = भानु, रक्तोज्ज्वला
शुकवृते = रक्त लोहवर्ण उज्ज्वल शुभ्र यत् अशुक कौशेयवस्त्र तेन वृते

जांच कर लें ।

विभीषण—जो महाराज की आज्ञा ।

राम—(धूमकर और देखकर) अरे ! भगवान् सूर्य डूब रहे हैं । क्याकि
इस समय—

अस्ताचल के शिखर पर पहुँचे हुए, ममेटे हुए किरण समूह वाले तथा
सन्ध्या कालीन लालिमा से युक्त शरीर वाले सूर्य ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे
लाल तथा उज्ज्वल वस्त्र आच्छादित गजकुम्भ पर सुवर्ण से बनाया गया
तिलक हो ।

चतुर्धाऽङ्क

(निष्प्राप्ता सर्वे)

॥ इति चतुर्धाऽङ्क ॥

—*—

वेष्टिते, द्विरदक्ष = कृतितन, कृष्णे = मरुतने, जाम्बूनदेम = गुणवर्धन, रक्षित =
निमित्त, पुण्डवः इव = सिल्व इव, प्रतिभाति = शोभते । उपमाङ्ककारः ।
वसन्ततिलकाच्छन्द ।

॥ इति चतुर्धाऽङ्क ॥

—*—

(सभी निबल जाते हैं)

॥ चतुर्थं अङ्क समाप्त ॥

राक्षसः—प्रसीदतु प्रसीदतु महाराज । अतिपानिवृत्तान्तनिवेदन-
त्वरयावस्थान्तर नावेक्षितम् ।

रावणः—ब्रूहि ब्रूहि । किं कृत मनुजतापमेन ।

राक्षसः—श्रोतुमर्हति महाराज तेन खलु,

उदीर्णसत्त्वेन महाबलेन लङ्केश्वर त्वामभिभूय शीघ्रम् ।

सलक्ष्मणेनाद्य हि राघवेण प्रसह्य युद्धे निहत. मुतस्ते ॥ ११ ॥

रामेणेति—अतिपातिवृत्तान्तनिवेदनत्वरयावस्थान्तर=अतिपाति अत्या-
वश्यक य वृत्तान्त. समाचार तस्य निवेदनस्य विज्ञापनस्य त्वरया शीघ्रतया
अवस्थान्तरम् अन्य अवस्था स्थिति इति अवस्थान्तरम्, न अवेक्षितम्= न
ध्यान दत्तम् । मनुजतापसेन=मनुष्यतापस्विना, किं=किं कार्यम्, कृतं=
विहितम् ।

अन्वयः—उदीर्णसत्त्वेन महाबलेन सलक्ष्मणेन राघवेण हि लङ्केश्वर त्वा
शीघ्रम् अभिभूय युद्धे अद्य प्रसह्य हि ते मुतः निहत. ।

उदीर्णेति—उदीर्णसत्त्वेन=दृढनिश्चययुक्तेन, महाबलेन=अतिबलशा-
लिना, सलक्ष्मणेन=लक्ष्मणमहितेन, राघवेण=रामेण, हि=निश्चयेन, त्वा
=भवन्तम्, लङ्केश्वरं=लङ्काधिपतिम्, शीघ्रं=त्वरया, अभिभूय=
तिरस्कृत्य, युद्धे=रणे, अद्य=अस्मिन्दिवसे, प्रसह्य=बलात्, ते=तव, मुतः
=पुनः, हत =व्यापादितः । अनुष्टुप्छन्द. ।

राक्षस—प्रसन्न होइए, महाराज प्रसन्न होइए । अत्यावश्यक समाचार
की सूचना देने की शीघ्रता के कारण (मेरे द्वारा) अन्य अवस्था का ध्यान
नहीं दिया गया ।

रावण—कहो, कहो उस मनुष्य तपस्वी द्वारा क्या किया गया ।

राक्षस—महाराज सुनिए । उसके द्वारा,

बड़े हुए निश्चय वाले, महाबलशाली लक्ष्मण के साथ (उस) राम के
द्वारा, आप लङ्केश्वर (रावण) को शीघ्र तिरस्कृत करके, आज युद्ध में आप
का बेटा (मेघनाथ) बलात् मार दिया गया ।

रावण —आ दुरात्मन् ! समरभीरो !

देवा. सेन्द्रा जिता येन दैत्याश्चापि पराङ्मुखा ।

इन्द्रजित् सोऽपि समरे मानुषेण निहन्यते ॥ १२ ॥

राक्षस —प्रमीदतु महाराज । महाराजपादमूले कुमारमन्तरेणा-
नृत नाभिधीयते ।

रावणः—हा वत्स ! मेघनाद ! । (इति मूर्च्छित पतति)

राक्षसः—महारा ! ज समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

रावणः—(प्रत्यभिज्ञाय)

हा वत्स ! सर्वजगता ज्वरकृत् ! कृतास्त्र !

हा वत्स ! वामवजिदानतवैरिचक्र ! ।

अन्वयः—येन सेन्द्राः देवाः जिता दैत्या च अपि पराङ्गमुखाः, स अपि इन्द्रजित् समरे मानुषेण निहन्यते ।

देवा. इति—येन=मेघनादेन, सेन्द्रा =इन्द्रेण सहिता, देवा =सुरा,
दैत्याश्च=असुराश्च, अपि, पराङ्गमुखा =विमुखा अभवन्, म =इन्द्रजित्
मेघनाद अपि, समरे=युद्धे, मानुषेण=मानवेन, निहन्यते=मार्यते ।
अनुपुपुच्छन्दः ।

अन्वयः—हा वत्स ! सर्वजगता ज्वरकृत् ! कृतास्त्र ! हा वत्स ! वास-
वजित् ! आनतवैरिचक्र ! हा वत्स ! वीर ! गुरुवत्सल युद्धशीण्ड ! हा वत्स !

रावण—अरे दुरात्मा ! युद्ध मे हरने वाले !

जिस (मेघनाथ) के द्वारा इन्द्र के सहित देवता पराजित कर दिये गये
तथा दैत्य (युद्ध से) भगा दिये गये, वह इन्द्रजित् भी युद्ध मे मनुष्य के
द्वारा मार दिया गया ।

राक्षस—महाराज प्रसन्न होइए । कुमार (मेघनाथ) के विषय मे आपके
समक्ष झूठ कैसे बोलूँगा ।

रावण—हाय बेटा मेघनाथ ! (मूर्च्छित होकर गिर जाता है) ।

राक्षस—हे महाराज ! धैर्य रखिए ।

रावण—(पहचान कर) हाय बेटा ! हे सभी लोको को ज्वर पैदा करने
वाले ! असुरो के अभ्यासी ! हाय बेटा ! इन्द्र को पराजित कर देने वाले !

तृतीय — एते चापि द्रष्टव्या भवद्भ्या,

निशितविमलखड्गा क्रोधविस्फारिताक्षा

विमलविकृतदष्ट्रा नीलजीमूतकल्पा ।

हरिगणपतिसैन्य हन्तुकामा समन्ताद्

रभसविवृतवक्त्रा राक्षसा सम्पतन्ति ॥ ४ ॥

एते इति — एते = पुरोविद्यमाना, पादपशैभग्नशिरस = पादपा वृक्षा शैला च पर्वता च तै भग्नानि खण्डितानि शिरासि मस्तकानि येषां ते मुष्टि प्रहारं, मुष्टीना = मुष्टिकाना प्रहारं आघातं, हता = मारिता, क्रुद्धं = कुपितं अतिबलं = अति अतिशयिने बल मामर्थ्यम् येषां तै, उत्पुच्छकर्णं = उत् ऊर्ध्वं पुच्छानि लाङ्गूलानि कर्णा च श्रोत्राणि च येषां तै, वानरयूथपं = वानराणां साक्षामृगाणां यूथपं दलपतिभि, वृता = परिवेष्टिता, कण्ठ ग्राहविवृतुङ्गनयनं = कण्ठस्य गलप्रदेशस्य ग्राहेण गहणेन विवृतानि घृणितानि अतएव तुङ्गानि उच्चानि निर्गतानि नयनानि तत्राणि येषां तै, दष्टोष्ठ तीव्रं = दष्ट्रा दन्तै खण्डिता ये ओष्ठा दतच्छदा तै तीव्रं भीषणै, मुखं = आननं रक्षोगणा = राक्षसानां गणा समूहा, समरे = युद्धे वज्रैण = इन्द्र कुलिशेन, हता = मारिता, शैला इव = पर्वता इव, आशु = शीघ्रम्, पातिता = घराशायिन कृता । उपमालङ्कार । शार्दूलविक्रीडित छन्द ।

अन्वय — निशितविमलखड्गा क्रोधविस्फारिताक्षा विमलविकृतदष्ट्रा नीलजीमूतकल्पा हरिगणपतिसैन्य हन्तुकामा रभसविवृतवक्त्रा समन्ताद् सम्पतन्त राक्षसा (द्रष्टव्या) ।

निकली हुई आँखों वाले तथा दाँतो से कटे हुए ओठ के कारण भयङ्कर मुख वाले राक्षसों के समूह (इन्द्र द्वारा) वज्र से मारे गये पर्वत के समान युद्ध में शीघ्र (मार कर) गिरा दिये गये हैं

तृतीय — और आप दोनों के द्वारा ये भी देखे जानें चाहिए ।

तेज और चमकते हुए खड्गों वाले, क्रोध के कारण विस्फारित आँखों वाले, स्वच्छ (सफेद) और भयङ्कर दाढ़ों वाले, नीले बादल के समान,

प्रथमः—अहो नु खलु,

वाणाः पात्यन्ते राक्षसेर्वानरेषु

द्वितीयः—शैला क्षिप्यन्ते वानरैर्नैश्रुतेषु ।

तृतीयः—मुष्टिप्रक्षेपैर्जानुमद्घट्टनंश्च

सर्वे—भीमश्चित्रं भोः ! सम्प्रमदंः प्रवृत्तः ॥ ५ ॥

निशितेति—निशितविमलरङ्गाः = निशिता स्तीक्ष्णा च ये विमलाः स्वच्छा च सङ्गाः कृपाणा, क्रोधविस्फारिताशा = क्रोधेन कोपेन विस्फारिते स्फारीकृते अग्निपी नग्ने र्गं. ते, विमलविद्वृतदष्टा = विमला. स्वच्छा विहता. कराला दन्ता. दीर्घदन्ता. येषां ते; नीलजीभूतकल्पा = नीला श्यामा ये जीभूता. येषां. तेषां कल्पाः सदृशाः, हरिगणपतिर्गन्धं = हरीणां वानराणां ये गणा समूहाः तेषां ये पतयः अर्घ्यशाः तेषां सैन्यं सैन्याम्, हन्तुकामाः = हन्तुं श्यापारवितुं काम अभिलाषः येषां ते, रक्षसविद्वृतवक्त्रा = रक्षसेन केनेन विद्वृतानि उद्घाटितानि वक्त्राणि मुखानि र्गं ते, समन्तात् = परितः, सम्पतन्तः = आक्रमण कुर्वन्तः, राक्षसाः = असुराः, (भवद्भ्यां द्रष्टव्याः) ।

अन्वय—राक्षसैः वानरेषु वाणाः पात्यन्ते वानरैर्नैश्रुतेषु शैलाः क्षिप्यन्ते, मुष्टिप्रक्षेपैः जानुसद्घटनैः च भीम सम्प्रमदंः प्रवृत्तः इति भो ! चित्रम् ।

वाणैति—राक्षसैः = असुरैः, वानरेषु = कपिषु, वाणाः = शराः, पात्यन्ते

वानरों के समूहों के प्रधानों की सेनाओं को मारने की इच्छा वाली, तथा युद्ध के उत्साह के कारण मुँह बाये हुए ये राक्षस शारों और ते (वानर-सेना) पर दूट रहे हैं ।

प्रथम—ओह ! आश्चर्य है—

राक्षसों के द्वारा वानरों पर वाण फेंके जा रहे हैं... ।

द्वितीय—वानरों के द्वारा राक्षसों पर पर्वत चक्रे जा रहे हैं... ।

तृतीय—मुष्टिप्रहारों तथा घुटनों की टक्करो द्वारा... ।

सभी—अरे भयङ्कर युद्ध हो रहा है ।

प्रथमः—रावणमपि पश्येता भवन्ती,

कनकरचितदण्डा शक्तिमुल्लालयन्त

विमलविकृतदष्ट्र स्पन्दन वाहयन्तम् ।

उदयशिखरमध्ये पूर्णविम्ब शशाङ्क

ग्रहमिव भगणेश राममालोक्य रुष्टम् ॥ ६ ॥

==क्षिप्यन्ते, वानरं = कपिभिः, नैऋतेषु = राक्षसेषु, शीला = पर्वता, क्षिप्यन्ते = पात्यन्ते, मुष्टिप्रक्षेपं = मुष्टिना मुष्टिकानाम् प्रक्षेपे प्रहारः, जानुसङ्घटनं = जानुभ्याम् उरुपर्वम्भा, सङ्घटनं अभिघातं. च, भीम = भयङ्कर, सम्प्रमदं = सम्पीडनम्, प्रवृत्त = आरब्धः, इति भो, चित्रम् = आश्चर्यकरम्, वर्तते इति योजनीयम् । वेश्वदेवीच्छन्दः ।

अन्वयः—कनकरचितदण्डा शक्तिम् उल्लालयन्त, विमलविकृतदष्ट्रं स्पन्दन वाहयन्तं, उदयशिखरमध्ये पूर्णविम्ब भगणेश शशाङ्कम् आलोक्य रुष्टं ग्रहम् इव रामम् आलोक्य रुष्टं (रावण पश्येताम्) ।

कनकैति—कनकरचितदण्डा = कनकेन सुवर्णेन रचितं निर्मितं दण्डः यष्टिः यस्यां ताम्, शक्तिः = प्रक्षेपास्त्रविशेषम्, उल्लालयन्तम् = उपरि घूर्णयन्तम्, विमलविकृतदष्ट्रं = विमला निर्मला विकृता भयङ्करा च दष्ट्रा दीर्घदशन यस्य तम्, स्पन्दन = रथम्, वाहयन्त = चालयन्तम्, उदयशिखरमध्ये = उदयस्य सूर्योदयस्य शिखरी पर्वत तस्य मध्ये मध्यभागे, पूर्णविम्ब = अविकलमण्डलम्, भगणेश = भाना ग्रहनक्षत्राणां ईशम् अधिपतिम्, शशाङ्क = शश शशक अङ्क चिह्नं यस्मिन् तम्, चन्द्रमित्यर्थः, आलोक्य = विचोक्य, रुष्टं = क्रुद्धम्, रावणमपि पश्येताम् । उपमालङ्कारः । मालिनीच्छन्दः ।

प्रथम—आप दोनो इस रावण को देखिए—

सुवर्ण-निर्मित दण्ड वाली शक्ति को ऊपर घुमाते हुए, श्वेत और भयङ्कर दाढ़ी वाले, रथ को हाँकते तथा उदयाचल के मध्य पूर्णमण्डल वाले नक्षत्रेश चन्द्रमा को देखकर क्रोधित राहु के समान राम को देखकर क्रोधित हुए (रावण को देखिए) ।

द्वितीयः—राममपि पश्येता भवन्ती ।

सव्येन चापमवलम्ब्य करेण वीर-

मन्येन सायकवर परिवर्तयन्तम् ।

भूमौ स्थित रयगत रिपुभोक्षमाण

कौञ्चं यया गिरिवरं युधि कार्तिकेयम् ॥ ७ ॥

तृतीयः—हहह ॥

रावणेन विमुक्तेय शक्ति कालान्तकोपमा ।

रामेण स्मयमानेन द्विधा छिन्ना धनुष्मता ॥ ८ ॥

अन्वय —सव्येन करेण चापम् अवलम्ब्य अन्येन (दक्षिणेन) सायकवर पण्डितंभूम् भूमौ स्थित युधि गिरिवर कौञ्चम् ईक्षमाणम् कार्तिकेय यया (राम पश्येताम्) ।

नन्येनेति—सव्येन = वामेन, करेण = हस्तेन, चाप = धनु, अवलम्ब्य = अवश्याय, अन्येन = वामेनरुण दक्षिणेन, सायकवर = बाणश्रेष्ठम्, परिवर्तयन्त = प्रमयन्तम्, भूमौ = पृथिव्याम्, स्थित = वर्तमानम्, युधि = युद्धे, गिरिवर = पर्वतश्रेष्ठम्, कौञ्च = एतप्रामक पर्वतविशेषम्, ईक्षमाणं = पश्यन्तम्, कार्तिकेय यया = कार्तिकेयमिव, युधि = युद्धे, रिपु = शत्रु रावणम्, ईक्षमाणम्, वीर = शूरम्, राममपि पश्येताम् ।

अन्वय.—रावणेन कालान्तकोपम इय शक्ति विमुक्ता धनुष्मता रामेण स्मयमानेन द्विधा छिन्ना ।

द्वितीय—आप दोनों राम को भी देखिए—

बाएँ हाथ में धनुष पकड़ कर दूमेरे (दाहिने) हाथ से उत्तम बाण को घुमाने हुए, भूमि पर खड़े तथा युद्ध में परवश्रेष्ठ श्रीश्व को देखते हुए कार्तिकेय के समान रयस्थ (रथ पर सवार) शत्रु (रावण) को देखते हुए वीर (राम) को भी देखिए ।

तृतीय—ओह !

रावण के द्वारा (राम पर) छोड़ी गयी तथा हँसते हुए प्रलयकालीन मृत्यु-मदुश यह शक्ति, धनुषांसी राम के द्वारा दो भागों में काट दी गयी ।

वाहितो रथः ।

द्वितीयः—उपस्थित मातलिं दृष्ट्वा तस्य वचनाद् रथमारूढवाद्
रामः ।

तृतीयः—एष हि,

सुरवरजयदर्पदेशिकेऽस्मिन् दितिसुतनाशकरे रथे विभाति ।

रजनिचरविनाशकारणः सस्त्रपुरवधाय यथा पुरा कपर्दी ॥ १२ ॥

= द्योतितः इव, युद्धसामान्यजनितशङ्कं न = युद्धस्य समरस्य सामान्य समानता
तस्मिन् जाता उत्पन्ना शङ्का सशयः यस्य तेन, महेंद्रेण = शक्रेण, प्रेषितः =
प्रहितः, मातलिवाहित = मातलिना एतन्नामकेन सारथिना वाहितः कालित-
रथः = स्यन्दनः ।

उपस्थितमिति—उपस्थितम् = आगतम्, मातलि = इन्द्रसारथिम्,
दृष्ट्वा = अवलोक्य, तस्य = मातले, वचनाद् = कथनाद्, रामः = राघवः,
रथं = स्यन्दनम्, आरूढवान् ।

अन्वयः—सुरवरजयदर्पदेशिके दितिसुतनाशकरे अस्मिन् रथे एष हि
रामः रजनिचरविनाशकरणं सन् पुरा त्रिपुरवधाय कपर्दी यथा विभाति ।

सुरवरेति—सुरवरजयदर्पदेशिके = सुरवरस्य इन्द्रस्य जयदर्पयोः देशिके-
उपदेशिके, दितिसुतनाशकरे = दितिसुताना राक्षसाणां नाशकरे क्षम-
कारिणे, रथे = स्यन्दने, एषः = पुरोवर्तमानः, राघवः = रामः, हि = निश्चयेन,
रजनिचरविनाशकारणः = रजनिचरस्य रावणस्य विनाशस्य संहारस्य कारणं

भेजा गया मातलि-वाहित (= मातलि द्वारा हांका जाता हुआ) रथ है ।

द्वितीय—आये हुए मातलि को देखकर उसके कहने से राम रथ पर
चढ़ गये ।

तृतीय—यूँकि यह—

इन्द्र की विजय और गर्व का उपदेशक तथा दैत्यो के विनाशकारी इस
रथ पर (आरूढ) और राक्षस (रावण) के विनाश के लिए कारण बने हुए
राम इस प्रकार शोभायमान हो रहे हैं जैसे प्राचीनकाल में त्रिपुर (नामक-
राक्षस) के बध के लिए शङ्कर हैं ।

प्रथमः—अहो महत्प्रवृत्त युद्धम् ।

शरवरपरिपीततीप्रवाण नरवरनेश्रुतयो. नमोक्ष्य युद्धम् ।

विरतविविधशस्त्रपातमेने हरिवरराक्षसमैनिका म्यिताञ्च ॥१३॥

द्वितीय.—अहो नु गन्धु,

चारिभिरेतौ परिवर्तमानौ रथे म्यितौ वाणगणान् वमन्तौ ।

श्वरश्मिजाशंघंरणि दहन्तौ मूर्याञ्च द्वौ नममि भ्रमन्तौ ॥ १४ ॥

हेतु मन, पुग = प्राचीनकाले, त्रिपुत्रघाय = त्रिपुत्रमुरविनाशाय, कपर्दी यथा
= गह्वर इव, विमानि = शामने । उपमा—द्वार । पुगिनाप्राच्छन्द ।

अन्वय — नरवरनेश्रुतयो शरश्वरपरिपीततीप्रवाण युद्ध मर्माक्ष्य एते
हरिवरराक्षसमैनिका विरतविविधशस्त्रपात म्यिता च ।

शरवरेणि—नरवरनेश्रुतयो = शरश्वरपरिपीततीप्रवाण =
शरवरेण उभयैः वाणैः परिपीता विनाशिता तीव्रा तीक्ष्णा शाना शरा
यस्मिन् तम्, युद्ध = शरश्वर मर्माक्ष्य = दृष्टवा एते = पुरावर्तमाना हरिवर-
राक्षसमैनिका = हरिवरस्य मूर्खावस्य राक्षसस्य शस्त्रस्य च मैनिका, मन्व-
रणा, विरतविविधशस्त्रपात = विरत निरुद्ध विविधानाम् अनेकप्रकाराणां
शस्त्राणाम् आमुघाना पान प्रक्षेप यस्मिन् तम्, म्यिता च = म्यिवन्त ।
पुगिनाप्राच्छन्द ।

अन्वय — रथे म्यितौ चारोभिः परिवर्तमानौ, वाणगणान् वमन्तौ एतौ
नममि भ्रमन्तौ श्वरश्मिजाशंघंरणि दहन्तौ द्वौ मूर्या इव (विभात्र) ।

चारोभिर्गति — रथे = मन्दन, म्यितौ = आन्दौ, चारिभिः = गतिभिः,

प्रथम—अहो ! मयद्गुर युद्ध हो रहा है—

पुरुषोत्तम (शम) तथा (शरवण) के युद्ध, जिसमें (शम के) उदृष्ट
वाण (शरवण के) तीक्ष्ण शानों को निगूँ रहूँ है, को देखकर मैं हरिवर
(मूर्खाव) तथा राक्षस (शरवण) के मैनिक (अपने) अनेक शस्त्रों के प्रहार
से विरत हो गये हूँ ।

द्वितीय—अहो ! आश्चर्य है—

रथ पर जब म्यित, (युद्ध के उपरान्त) चारों से घूमते हुए, वाण-ममूह

तृतीय — रावणमपि पश्येता भवन्तौ ।

शरैर्भीमवेगंहंयान् मर्दयित्वा ध्वज चापि शीघ्र बलेनाभिहत्य ।
महद् वाणवर्षं सृजन्त नन्दन्त हसन्त नृदेव भृश भीषयन्तम् ॥१५॥

प्रथमः—एष हि राम ,

परिवर्तमानौ = परिभ्रमन्तौ, वाणगणान् = शरसमूहान्, वमन्तौ = उद्गिरन्तौ,
एतौ = पुरोवर्तमानौ रामरावणौ, नभसि = आकाशे, भ्रमन्तौ = भ्रमण
कुर्वन्तौ, स्वरश्मिजालं = आत्मीयकिरणसमूहै, धरणि = पृथिवीम्, दहन्तौ =
प्लोपन्तौ, द्वौ सूर्यो इव = द्वौ भास्करी इव, विभात शोभत ।

अन्वय — भीमवेगे शरै हयान् मर्दयित्वा, ध्वज च अपि बलेन शीघ्रम्
अभिहत्य महद् वाणवर्षं सृजन्त नन्दन्त हसन्त नृदेव भृश भीषयन्तम् (रावण
मपि पश्येताम्) ।

शरैर्भीमैरिति — भीमवेगे = भयङ्करवेगे शरै = वाणै, हयान् =
रथस्य अश्वान्, मर्दयित्वा = जर्जरीकृत्य, ध्वजाश्च = पताकामपि, बलेन =
बलपूर्वकेण, शीघ्र = त्वरितम्, अभिहत्य = आक्रम्य, महद् = विपुलम्, वाण-
वर्षम् = शरवृष्टिम्, सृजन्त = जनयन्तम् नन्दन्त = गर्जन्तम्, हसन्त = स्मय-
मानम्, नृदेव = रामम्, भृशम् = अत्यन्तम्, भीषयन्त = भाषयन्तम्, रावणम्
अपि पश्येताम् । दीपकालङ्कार । भुजङ्गप्रयात छन्द ।

को छोड़ते हुए ये दोनों (राम और रावण) ऐम शोभायमान हो रहे हैं
मानो आकाश में घूमते हुए तथा अपनी किरण से पृथिवी को जलाते हुए दो
सूर्य हो ।

तृतीय—आप दोनों रावण को भी देखिए—

भयङ्कर वेग वाले वाणों से (राम के रथ के) घोड़ों को क्षत विक्षत करके
तथा क्षण्डे पर शीघ्र ही बलपूर्वक आघात करके महान् वाणों की वर्षा करते
हुए, गर्जन करते हुए (रावण को देखिए) जो हँसते हुए नरपति (राम) को
अत्याधिक डरा रहा है ।

प्रथम—यह राम भी—

स्थानाक्रामणवामनीकृततनु किञ्चित् समाश्वास्य वै
 तीव्र वाणमवेक्ष्य रक्तनयनो मध्याह्नसूर्यप्रभ ।
 व्यक्त मातलिना स्वय नरपतिदंतास्पदो वीर्यवान्
 क्रुद्ध सहितवान् वरास्त्रममित पैतामह पाथिव ॥ १६ ॥

द्वितीयः—एतदस्त्र,

रघुवरभुजवेगविप्रमुक्त ज्वलनदिवाकरयुक्ततीक्ष्णधारम् ।

अन्वय —स्थानाक्रामणवामनीकृततनु किञ्चित् समाश्वास्य तीव्र वाणम्
 अवेक्ष्य रक्तनयन मध्याह्नसूर्यप्रभ मातलिना स्वय दंतास्पद वीर्यवान्
 नरपति क्रुद्ध सन् अमित पैतामह वरास्त्र सहितवान् ।

स्थानेति—स्थानाक्रामणवामनीकृततनु = स्थानेन दृढस्थित्या आक्राम
 णम् आक्रमण तस्मिन् वामनीकृता न्युजीकृता तनु शरीर यत स, किञ्चित्
 = ईपत् वै = निश्चयेन, समाश्वास्य = श्वासग्रहण कृत्वा तोत्र = तीक्ष्णम्,
 वाण = शरम्, अवेक्ष्य = विलोक्य रक्तनयन = लोहितनेत्र, मध्याह्नसूर्यप्रभ =
 मध्याह्नसमयस्य सूर्यस्य भास्वरस्य प्रभा कान्ति इव कान्ति यस्य स, व्यक्त
 = स्पष्टम् मातलिना = इन्द्रसारथिना, स्वयम् = आत्मना दंतास्पद = दंत
 त्यक्तम् आस्पद स्थान यस्मै स, वीर्यवान् = वीर, नरपति = नरेन्द्र
 पाथिव = राम, क्रुद्ध = क्रुपित सन्, अमितम् = अपरिमयम्, पैतामह =
 ब्राह्म, वरास्त्रम् = श्रेष्ठप्रक्षेपास्त्रम्, सहितवान् = धारोपितवान् । उपमा
 दीपय चालङ्कारो । शार्दूलविशीलित छन्द ।

अन्वय —रघुवरभुजवेगविप्रमुक्त ज्वलनदिवाकरयुक्ततीक्ष्णधार (अस्त्र)

दृढ-स्थिति से आक्रमण में शरीर को बोना बनाए हुए थोड़ा स्थिर
 होकर, (रावण के) तीक्ष्ण वाण को देखकर ताल बाँधें किये, मध्याह्न-
 कालीन सूर्य के तेज के समान तेज वाले, स्पष्टतः मातलि के द्वारा स्वय
 (रथ में खिसककर) दिये हुए स्थान से युक्त, वीर राजा (राम) ने क्रुद्ध होकर
 (अपने) पितामह द्वारा प्राप्त उत्कृष्ट ब्रह्मास्त्र को चढ़ा लिया है ।

द्वितीय—यह अस्त्र,

राम के बाहु वेग से छोड़ा गया, अग्नि और सूर्य से युक्त तेज धार

रजनिचरवर निहत्य सङ्क्षे पुनरभिगच्छति राममेव शीघ्रम् ॥१७॥
सर्वे—हन्त निपातितो रावण ।

प्रथमः—

रावण निहत दृष्ट्वा पुष्पवृष्टिनिपातिता ।

एता नदन्ति गम्भीर भेर्यस्त्रिदिवसद्यनाम् ॥ १८ ॥

द्वितीयः—भवतु । सिद्ध देवकार्यम् ।

सङ्क्षे रजनिचरवर निहत्य पुन शीघ्र रामम् एव अभिगच्छति ।

रघुवरेति—रघुवरभुजवेगविप्रमुक्त = रघुवरस्य रामस्य भुजस्य बाहो
वेगेण रयेण विप्रमुक्त त्यक्तम्, ज्वलनदिवाकरयुक्ततीक्ष्णधार = ज्वलन अग्नि
दिवाकर च सूर्ये च साध्मा युक्ता मिलिता तीक्ष्णा निशिता धारा अग्नि
मस्य तत्, एतत् = पुरोवर्तमानम्, अस्त्र = ब्रह्मास्त्रम्, रात्रये = युद्धे, रजनिचर-
वर = रजनिचरेषु राक्षसेषु वर मुख्य रावणम्, निहत्य = हत्वा, पुन = भूय,
शीघ्र = स्वरितम्, रामम् एव = राघवमेव, अभिगच्छति = अभियाति ।
पुष्पिताग्राच्छन्द ।

अन्वय — रावण निहत दृष्ट्वा पुष्पवृष्टि निपातिता एता त्रिदिवस-
गद्यना भेर्ये गम्भीर नदन्ति ।

रावणमिति—रावण = दशाननम्, निहित = मारितम्, दृष्ट्वा =
अवलोक्य, पुष्पवृष्टि = पुष्पाणा प्रसूनाता दृष्टि वर्षम्, निपातिता =
उपरिष्ठात् देवादिभि कृता । एता = इमा, त्रिदिवसद्यना = देवानाम्, भेर्ये
= हुन्दुभय, गम्भीर = उच्चम्, नदन्ति = ध्वनि कुर्वन्ति । अनुष्टुपच्छन्द ।

सिद्धमिति—सिद्ध = पूर्णम्, देवकार्यं = राक्षसविनाशरूपसुरकार्यम् सर्व-
वाला (यह ब्रह्मास्त्र) युद्ध में राक्षस श्रेष्ठ (रावण) को मारकर फिर
शीघ्रतापूर्वक राम के पास आ रहा है ।

सभी—ओह ! रावण गिर गया ।

प्रथम—रावण को मारा हुआ देखकर (देवताओं द्वारा) पुष्पवर्षा की
गयी तथा (स्वर्ग में) देवताओं की हुन्दुभी बज रही है ।

द्वितीय—ठीक है, देवकार्य पूरा हो गया ।

प्रथम—तदागम्यताम् । वयमपि तावत् सर्वहिन राम सम्भाव-
यिष्याम ।

उमौ—वाढम् । प्रथम कल्प ।

(निष्प्रान्ता सर्वे)

॥ इति विष्कम्भक ॥

(तत प्रविशति राम)

राम —

हत्वा रावणमाह्वेऽद्य तरसा मदबाणवेगादित

वृत्वा चापि विभीषण शुभमति लङ्केश्वर साम्प्रतम् ।

तीर्त्वा चैवमनल्पसत्वचरित दोभ्यां प्रतिज्ञाणव

लङ्कामभ्युपयामि बन्धुसहित सीता समाश्वासितुम् ॥ १९ ॥

हित = सकलहितकारकम् सम्भावयिष्याम = सत्करिष्याम । प्रथम = उत्तम,
कल्प = विचार ।

॥ इति विष्कम्भक ॥

अन्वय — अद्य आह्वे मद्बाणवेगादित रावण तरसा ह्वा शुभमति
विभीषण च साम्प्रत लङ्केश्वर वृत्वा दोभ्याम् अनल्पसत्वचरित प्रतिज्ञाणव च
तीर्त्वा बन्धुसहित (अह) सीता समाश्वासितु लङ्काम् अभ्युपयामि ।

हृत्वेति—अद्य = अस्मिन् दिवस आह्वे = युद्ध मद्बाणवेगादित = मद्बाण
मम शर तस्य वेगेण रणेण आदितम् आहतम् रावण = दानवम् तरसा =

प्रथम—तो आओ हम लोग भी सभी लोगो का कल्याण करने वाले
राम का अभिनन्दन करें ।

दोनो—ठीक है (यह) अच्छा विचार है ।

(सभी निकल जाते हैं)

॥ विष्कम्भक समाप्त ॥

(तत्पश्चान् राम प्रवेश करते हैं)

राम—आज युद्ध में मेरे बाण के वेग से पीड़ित रावण को मारकर,
और पवित्र बुद्धि वाले विभीषण को लङ्का का राजा बनाकर बड़े बड़े

(प्रविश्य)

लक्ष्मण—जयत्वार्यं । आर्यं । एषा ह्यार्यायिस्य समीपमुपसर्पति ।

रामः—वत्स ! लक्ष्मण !

अपायाच्च हि वैदेह्या उपिताया रिपुक्षये ।

दर्शनात् साम्प्रत धैर्यं मन्युर्मो वारयिष्यति ॥ २० ॥

शीघ्रम्, हत्वा = श्यापाद्य, शुभ्रनति = विमलबुद्धिम् विभीषण च = रावणानुज
च, साम्प्रतम् = इदानीम्, लङ्केश्वर = लङ्कात्रिपतिम्, कृत्वा = विधाय
दोर्भ्याम् = बाहूभ्याम्, अनल्पसत्त्वचरित = अनल्पानि महान्तिसत्त्वचारितानि
बलकार्याणि यस्मिन् तम्, प्रतिज्ञार्णव = प्रतिज्ञा प्रण एव अर्णव ममुद्र तम्,
तीर्त्वा = पार कृत्वा, बन्धुसहित = बन्धुना बान्धवेन सहित युक्त, सीता =
जानकीम्, समाशवासितुम् = आशवासन दातुम्, लङ्का = एतन्नामकनगरम्,
अभ्युपयामि = अभिगच्छामि । रूपकदीपको अलङ्कारौ । शार्दूलविक्रीडित
छन्द ।

अन्वय — अपायात् हि रिपुक्षये उपिताया च वैदेह्या दर्शनात् मन्यु मे
धैर्यं साम्प्रत वारयिष्यति ।

अपायेति—द्रमपगमनात्, रिपुक्षये = रिपो रावणस्य क्षये शूदे,
उपिताया निवासिताया, वैदेह्या = सीताया, दर्शनात् = विलोकनात्, मन्यु

सात्त्विक आचरणो वाले प्रतिज्ञा रूपी सागर को अपनी भुजाओं के (बल)
द्वारा पार करके अब भाई लक्ष्मण के साथ सीता को आश्वस्त करने के लिए
लङ्का को जा रहा है ।

(प्रवेश करके)

लक्ष्मण—आर्यं विजयी ह्रीवे । हे आर्यं ! यह आर्या (सीता) आर्यं (आप)
के समीप आ रही है ।

राम—हे भाई लक्ष्मण !

(मुष्टसे) दूर चली जाने के कारण तथा शत्रु (रावण) के घर में निवास
किये हुई जानकी को देखकर मेरा क्रोध धैर्य को निश्चित ही रोक देगा ।

सदमणः—यदाज्ञापयन्व्यायं । (निष्काल)

(प्रविश्य)

विभीषण.—जयतु देवः ।

एषा हि राज्ञस्त्व घर्मपत्नी त्वद्वाहृवीर्येण विधूनुस्त्वा ।

लक्ष्मीः पुरा दैत्यकृतच्युतेन तव प्रमादान् समुपस्थिता सा ॥ २१११

रामः—विभीषण ! तत्रैव तावन् निष्ठतु रजनिसगरावममंज्ञानकल्मषा इध्वाकृतकृत्याद्धृता । राजान दगरथ पितरमुद्दिश्य न युक्त भो

=श्रोत्रः, हि=निश्चयेन, मे=मन, धैर्यम्=उत्साहम्, वारिष्यन्ति=रोम्यन्ति । काथ्यदिग्गमलक्ष्माः । अनुष्ठुपुच्छन् ।

अन्वयः—हे राजन् ! त्वद्वाहृवीर्येण विधूनुस्त्वा एषा हि सा तव घर्मपत्नी पुरादैत्यकृतच्युता लक्ष्मीः इव तव प्रमादान् (स्वां) समुपस्थिता ।

एषेति—राजन् = हे राजन् । त्वद्वाहृवीर्येण = तव गमस्य वाह्यैः मूत्रयोः वीर्येण शौर्येण, विधूनुस्त्वा = विधूनु निगृह्य तु म कष्ट मया सा, एषा = पुरावर्तमाना, सा = पूर्वोक्ता, तव = रामस्य, घर्मपत्नी = भासां, पुरा = प्राचीनकाले, दैत्यकृतच्युता = शतवर्षममृता, लक्ष्मीः इव = श्रीदेव, तव = रामस्य, प्रमादान् = अनृपशान्, समुपस्थिता = आगता । उपमालक्ष्माः । उपज्ञानि छन्दः ।

विभीषणंति—रजनिसगरावममंज्ञानकल्मषा = रजनिसगरस्य राजस्य य

लक्ष्मण—जैमी आप के आजा । (निकट जाता है)

(प्रवेश करके)

विभीषण—महाराज विजयी होये ।

हे राजन्, आप के बाहुरंग के हाथ दूर हुए कष्टों वाली, यह वही आप की घर्मपत्नी, प्राचीन-काल में दैत्य-कृत में उन्मुक्त लक्ष्मी की भाँति, आप की रूपा में आप के पास उपस्थित हैं ।

राम—हे विभीषण ! लक्ष्मण (राजण) के मरण में दूषित (धन एव) इध्वाकृत-वन की कलकल-स्वप्ना हुई वह (मीना) तब तब वही रहे । हे लक्ष्मण ! पिता दगरथ का विचार करने उम (मीना साँ) मेरे द्वारा देव

लङ्काधिपते ! मां द्रष्टुम् । अपि च,

मज्जमानमकार्येषु पुरुषं विपयेषु वै ।

निवारयति यो राजन् ! स मित्रं रिपुरन्वया ॥ २२ ॥

विभीषणः—प्रसीदतु देव ।

रामः—नाहंति भवानतः पर पीडयितुम् ।

(प्रविश्य)

रुक्मणः—अयत्वार्यं । आर्यस्याभिप्रायं श्रुत्वैवाग्निप्रवेगात् प्रनादं

अवमर्शं सम्पर्कं तेन जातम् उत्पन्नं बलमपि व्यञ्जनं यस्या सा, इन्द्राद्युक्तस्त
 =रपुत्रगत्य, अङ्गभूता=कलङ्कभूता, उद्दिश्य=लक्ष्योद्देश्य, न युक्तम्=
 उचितम् नास्ति ।

अन्वय —हे राजन् ! यः अकार्येषु विपयेषु मज्जमानं पुरुषं निवारयति,
 स वै मित्रम् अन्वया रिपु ।

मज्जमानेति—हे राजन्=भो हृषिकेश ! यः, अकार्येषु=कृत्यमयोग्येषु
 कर्मषु, विपयेषु=इन्द्रियोपभोग्यवस्तुषु मज्जमानं=निमग्नोभवन्तम्, पुरुषं
 =जनम्, निवारयति=हरीकरोति, स=पूर्वोक्तः जनः, वै=निश्चयेन,
 मित्रं=सखा, अन्वया=इतरथा, रिपुं=शत्रुः, अस्तीति शेषः । अनुप-
 नृञ्जद ।

नाहंतीति—न अहंति=न योग्योऽस्ति, भवान्=विभीषणः, अतः=
 अत्नात्, परम्=अधिकम्, पीडयितुं=पीडित्वा कर्तुं ।

आर्यस्येति—आर्यस्य=पूजनोपत्यं भवतु रामस्य, अभिप्रायम्=
 जाना उचित नहीं है । और भी—

हे राजन् ! जो अकार्योप विपयो मे इतने हुए 'मित्र' को हटाता है,
 वही मित्र है अन्यथा वह शत्रु है ।

विभीषण—हे महाराज प्रसन्न होइए ।

राम—आप इतने अधिक मुझे अप्ट न दें ।

(प्रवेश करके)

रुक्मण—आर्यं विजयो हवे । आप के अभिप्राय को सुनकर आर्य

प्रतिपालयत्यायां ।

रामः—लक्ष्मण ! अस्याः पतिव्रतायाश्छन्दमनुतिष्ठ ।

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यायंः । (परिऋष्य) भोः कष्टम् !

विज्ञाय देव्याः शीघ्रं च श्रुत्वा चार्यस्य शासनम् ।

धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ता बुद्धिर्दोलायते मम ॥ २३ ॥

कोऽत्र ।

(प्रविश्य)

हनुमान्—जयतु कुमारः ।

आशयम्, श्रुत्वा=आकर्ष्यं, अग्निप्रवेशाय=अग्नी बहो प्रवेशाय प्रवेष्टुम्,
आयां=पूजनीया मीता, प्रसादम्=अनुमतिम्, प्रतिपालयति=प्रतीक्षते ।

अस्याः इति—पतिव्रतायां=सत्याः नारायण, छन्द=इच्छाम्, अनु-
तिष्ठ=कुरु ।

अन्वय—देव्या शीघ्रं विज्ञाय चार्यस्य च शासने श्रुत्वा धर्मस्नेहान्तरे
न्यस्ता मम बुद्धिर्दोलायते ।

विज्ञायेति—देव्या = महिष्याः मीताया, शीघ्रं=शिव्रताम्, विज्ञाय =
अवबोधय, चार्यस्य = रामस्य, शासनम् = आज्ञाम्, श्रुत्वा = आकर्ष्यं,
धर्मस्नेहान्तरे = धर्मानुरागमर्ष्यं, न्यस्ता = भिद्यता, मम, = लक्ष्मणस्य, बुद्धिः =
मति, दोलायते = द्रुं घीभवति । सन्देहालङ्कारः । अनुष्टुप्छन्दः ।

(सीता) अग्नि में प्रवेश करने के लिए (आप के) अनुमति की प्रतीक्षा कर
रही है ।

राम—हे लक्ष्मण ! इस पवित्रता (सीता) की इच्छा पूरी करो ।

लक्ष्मण—जैमी आप की आज्ञा । (घूमकर) अरे ! कष्ट है ।

देवी (सीता) की पवित्रता जानकर तथा चार्य (राम) का आदेश सुनकर
धर्म और स्नेह के बीच में पड़ी बुद्धि झूल रही है ।

यहाँ कौन है ?

(प्रवेश करके)

हनुमान्—कुमार विजयी होवे ।

रामः—(सविस्मयम्) किमिति किमिति ।

लक्ष्मणः—अहो, आश्चर्यम् ।

(प्रविश्य)

सुग्रीवः—जयतु देव ।

को नु खल्वेप जीवन्तीमादाय जनकात्मजाम् ।

प्रणम्यरूप सम्भूतो ज्वलतो हव्यवाहनात् ॥ २६ ॥

लक्ष्मणः—अये अयमार्या पुरस्कृत्येत एवाभिवर्तते भगवान्
विभावसुः ।

वर्धिता वृद्धि प्राप्ता प्रभा कान्ति यस्या सा, स्खलनात्=अग्ने, निविकार=
विकाररहितम्, उपगता=बहिर्निर्गता । परिकराङ्कुर. छेकानुप्राप्त
चालङ्कारो । अनुष्टुप्छन्द ।

अन्वय —जीवन्ती जनकात्मजाम् आदाय ज्वलत हव्यवाहनात् सम्भूतः
प्रणम्यरूप क नु खलु एप (अस्ति) ।

को नु इति—जीवन्ती=सजीवताम्, जनकात्मजा=जानकीम्, आदाय
=गृहीत्वा, ज्वलत =देदीप्यमानात्, हव्यवाहनात्=अग्ने, सम्भूत =
उद्गत, प्रणम्यरूप.=प्रणम्य वन्दनीय रूप स्वरूप यस्य स, क नु=वितर्क,
खलु=निश्चयेन अस्ति ।

अयमिति—अय =पुरीवर्तमान, आर्या =सीताम्, पुरस्कृत्य=अग्ने
कृत्वा, विभावसु =अग्नि, अभिवर्तते=आगच्छति । उपसर्गाम.=समीप
गच्छामः, नारायण.=विष्णु, देवेश=देवेश्वर ।

राम—(आश्चर्यं के साथ) यह क्या, यह क्या ?

(प्रवेश करके)

सुग्रीव—महाराज विजयी होवे ।

जीवित जानकी को लेकर जलती अग्नि से निकला हुआ वन्दनीय स्वरूप
वाला यह कौन है ।

लक्ष्मण—अरे ! आर्या (सीता) को आगे करके यह भगवान् अग्निदेव
स्वर ही आ रहे हैं ।

राम—अये अय भगवान् हुताशन. उपसर्पामस्तावत् ।

(सर्वे उपसर्पन्ति)

(ततः प्रविशत्यग्निं सीता गृहीत्वा)

अग्निः—एष भगवान् नारायण. । जयतु देव ।

रामः—भगवन् ! नमस्ते ।

अग्निः—न मे नमस्कारं कर्तुंमर्हति देवेश ।

इमा गृहीष्व राजेन्द्र ! सर्वलोकनमस्कृताम् ।

अपापामक्षता शुद्धा जानकी पुरुषोत्तम ! ॥ २७ ॥—

अपि च,

इमा भगवती लक्ष्मी जानीहि जनकात्मजाम् ।

सा भवन्तमनुप्राप्ता मानुषी तनुमास्थिता ॥ २८ ॥

अन्वय—हे राजेन्द्र ! पुरुषोत्तम ! सर्वलोकनमस्कृता अपापाम् अक्षता शुद्धाम् इमा जानकी गृहीष्व ।

इमामिति—राजेन्द्र=हे नृपेन्द्र ! पुरुषोत्तम=हे नरश्रेष्ठ, सर्वलोक-नमस्कृता=सर्वे सकला ते लोका जगन्ति तं नमस्कृता प्रणताम्, अपापा=पापरहिताम्, अक्षता=क्षतिरहिताम्, शुद्धा=पवित्राम्, इमा=पुरोवर्तमानाम्, जानकी=जनकात्मजाम्, गृहीष्व=स्वीकुरु । अनुष्टुप्छन्द ।

अन्वय—इमा जानकात्मजा भगवती लक्ष्मी जानीहि । मानुषी तनुम् आस्थिता सा भवन्तम् अनुप्राप्ता ।

राम—अरे ! ये भगवान् अग्निदेव हैं तो (उनके) समीप चलते हैं ।

(सभी लोग समीप जाते हैं)

(तत्पश्चात् सीता को लेकर अग्निदेव प्रवेश करते हैं)

अग्नि—ये भगवान् विष्णु हैं । महाराज विजयी होंगे ।

राम—हे भगवान् ! आपको नमस्कार है ।

अग्नि—देवाधिपति को मुझे नमस्कार नहीं करना चाहिए ।

हे पुरुषोत्तम राजेन्द्र ! सभी लोगों द्वारा नमस्कार की जाने वाली,

विष्णुपत्नी, अक्षत तथा पवित्र इस सीता को स्वीकार कीजिए ।

और भी—

इम जानकी को आप भगवती लक्ष्मी समझिए । मनुष्य-देह में स्थित यह

स्वैरं रूपमुपस्थितेन भवता देव्या यथा साम्प्रतं
हत्वा रावणमाहवे न हि तथा देवाः समाश्वासिताः ॥ ३१ ॥

अग्निः—भद्रमुख ! एते देवदेवपिसिद्धविद्याधरगन्धर्वाप्सरोगणा-
स्वविभवैर्भवन्त वर्धयन्ति ।

रामः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

(समाश्वासिताः) यथा स्वैर रूपम् उपस्थितेन आहवे रावण हत्वा देव्या
(सह) भवता साम्प्रतं समाश्वासिता ।

मग्नेयमिति—जले=तोये, मग्ना=वृद्धिता, इयम्=एपा, भूमि=पृथिवी, हि=निश्चयेन, वराहवपुषा=शूकरशरीरेण, त्वया एय=भवता एव, उद्धृता=उपरि आनीता । सुरपते=हे सुरेश ! त्वया=भवता, पादत्रयेण=पादाना पादक्रमणा त्रयेण त्रिकेन, भुवनत्रयं=लोकत्रयम्, विक्रान्त=लङ्घितम्, तदानीमिति शेष, देवाः=सुराः, न हि=नैव, तथा=तेन प्रकारेण, यथा=येन प्रकारेण, स्वैर=स्वेच्छया, रूप=स्वरूपम्, उपस्थितेन=प्राप्तेन, आहवे=युद्धे, रावणं=दशाननम्, हत्वा=मारयित्वा, देव्या=सीतया, भवता=त्वया, साम्प्रतम्=अधुना, समाश्वासिता=आश्वासिताः । शार्दूल-विक्रीडित छन्दः ।

भद्रमुखेति—भद्रमुख=हे कल्याणमुख ! एते=पुरोवर्तमाना, देवदेवपि-सिद्धविद्याधरगन्धर्वाप्सरोगणा=देवा सुरा देवर्षयः दिव्यर्षय सिद्धाः देव-योनिविशेषा विद्याधराः देवयोनिविशेषा अप्सरस देवयोनिविशेषाश्च तेषां गणाः समूहाः । स्वविभवैः=आरमीय स्वित्यर्थं, भवन्त रामम्, वर्धयन्ति=स्वेच्छानुसार रूप-धारण करने वाले आप के द्वारा (उस समय) देवता वैसे नही आश्वस्थ किये गये जैसे इस युद्ध ने रावण को मार कर देवी (सीता के) साथ (आप द्वारा) इस समय आश्वस्त हुए ।

अग्नि—हे भद्रमुख ! देवता, देवर्षि, सिद्ध, विद्याधर, गन्धर्व, अप्सरागण अपनी स्थितियों के अनुसार आप को बधाई दे रहे हैं ।

राम—मैं अनुगृहीत हूँ ।

अग्निः—भद्रमुख ! अभिषेकार्यमित इतो भवान् ।

रामः—यदाज्ञापयति भगवान् ।

(निष्प्रान्तौ)

(नेपथ्ये)

जयतु देवः । जयतु स्वामी । जयतु भद्रमुखः । जयतु महाराज ।

जयतु रावणान्तकः । जयत्यामुष्मान् ।

विभीषणः—एष एष महाराजः,

तीर्त्वा प्रतिज्ञार्णवमाह्वेऽथ

सम्प्राप्य देवीं च विधूतपापाम् ।

देवं समस्तैश्च कृताभिषेको

विमानि शुभ्रे नभसीव चन्द्र ॥ ३२ ॥

वर्धापनं ददति । अभिषेकार्यम् = राज्याभिषेकाय, रावणान्तकः = रावणस्य दशाननस्य अन्तकः विनाशकः ।

अन्वय — प्रतिज्ञार्णवः तीर्त्वा आह्वे अथ विधूतपापः देवीं च सम्प्राप्य समस्तैः देवैः कृताभिषेकः च एष महाराजः शुभ्रे नभसि चन्द्र इव विमाति ।

तीर्त्वेति—प्रतिज्ञार्णवः = प्रणसमुद्रम्, तीर्त्वा = अतिप्रम्य, आह्वे = युद्धे,

अग्नि—हे भद्रमुख ! अभिषेक के लिए आप इधर आइए ।

राम—जो आप की आज्ञा ।

(दोना निरग्न जाते हैं)

(नेपथ्य में)

देव विजयी होंगे । स्वामी विजयी होंगे । भद्रमुख विजयी होंगे । महाराज विजयी होंगे । रावण का अन्त करने वाले विजयी होंगे । चिरञ्जीवी विजयी होंगे ।

विभीषण—ये, ये महाराज,

प्रतिज्ञा-रूपी सागर को पार करके युद्ध में आज (रावण का वध करने)

निष्कलङ्क महारानी (सीता) को प्राप्त कर सभी देवताओं के द्वारा अभिषिक्त

रामः—भगवन् ! प्रहृष्टोऽस्मि ।

अग्निः—इमे महेन्द्रादयोऽमृतभुजो भवन्तमभिवर्धयन्ति ।

रामः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

अग्निः—भद्रमुख ! किं भूय. प्रियमुपहरामि ।

रामः—यदि मे भवान् प्रसन्नः, किमत. परमहमिच्छामि ।
(भरतवाक्यम्)

भवन्त्वरजसो गाव. परचक्रं प्रशाम्यतु ।

इमामपि मही कृत्स्नां राजसिंहः प्रशास्तु न ॥ ३५ ॥

भरतशत्रुघ्नो पुर.सरो अग्रगो यासा तथा भूता., प्रकृतय. = प्रजाजना., समु-
पस्थिता. = उपगतः । प्रहृष्ट = प्रसन्नः, अमृतभुज = देवा, उपहरामि =
करोमि ।

अन्वयः—गावः अजरसं भवन्तु, परचक्रं प्रशाम्यतु, न राजसिंह. अपि
इमा कृत्स्ना मही प्रशास्तु ।

भवन्त्विति—गावः = इन्द्रियाणि, अजरस = निवृत्तरजोगुणा, पर-
चक्रं = शत्रुमण्डलम्, प्रशाम्यतु = शान्तिं गच्छतु । न = अस्माकम्, राजसिंह
अपि = राजश्रेष्ठ अपि, इमाम् = एताम्, कृत्स्ना = समग्राम्, मही = पृथि-
वीम्, प्रशास्तु = परिपालयतु । आशीरलंकार । अनुष्टुप्छन्द ।

राम—हे भगवन् ! मैं प्रसन्न हूँ ।

अग्नि—ये इन्द्रादि देवता आप की अभ्यर्थना कर रहे हैं ।

राम—मैं अनुगृहीत हूँ ।

अग्नि—हे भद्रमुख ! मैं आप का और क्या प्रिय करूँ ।

राम—यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो इससे अधिक मैं क्या चाहता हूँ—
(भरतवाक्य)

हमारी इन्द्रियाँ रजोविकार से रहित हों, शत्रु-मण्डल शान्त हो जाय ।
और हमारा 'राजसिंह' भी सम्पूर्ण पृथिवी पर शासन करे ।

। (निष्क्रान्ता सर्वे)

॥ इति पद्योद्धः ॥

॥ अभिपेकनाटकं समाप्तम् ॥

—*—

॥ इति पद्योद्धः ॥

॥ अभिपेकनाटकं समाप्तम् ॥

—*—

(सभी निकल जाते हैं)

॥ पद्योद्ध समाप्त ॥

॥ अभिपेकनाटक समाप्त ॥

॥ अभिपेक नाटक पर 'शशिप्रधानाम्नी' हिन्दी-संस्कृत व्याख्या समाप्त ॥

—०—

अभिषेक नाटक के सुभाषित तथा लोकोक्तियां

श्लोक अथवा श्लोकखण्ड

- अवश्यं युधि वीराणां वधो वा विजयोऽपवा । (३ । ९)
 अहो दैवत्य विघ्नक्रिया ! (२ । १०)
 कथं लम्बसदः सिंहो मृगेण विनिपात्यते ।
 गजो वा चुनहात् नतः शृंगालेन निहन्यते ॥ (३ । २०)
 धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ता बुद्धिदौलायते मे । (६ । २३)
 मज्जमानमकार्येषु पुरुषं विषयेषु वै ।
 निवारयति यो राजन् ! स मित्रं रिपुरत्यया ॥ (६ । २२)
 वागुराच्छन्नमाश्रित्य मृगाणामिष्यते वधः । (१ । १९)

गद्य

| | पृष्ठ | पंक्ति |
|--|-------|--------|
| अदण्डघो नैव दण्ड्यते । | १९ | ८ |
| अघर्मं खलु प्रच्छन्नो वधः । | १७ | २ |
| अमात्य-वर्गेण सह संमन्त्र्य गन्तव्यम् । | १० | ४ |
| अवश्यं स्त्री-वधो न कर्तव्यः । | १२१ | ५ |
| सहो अकरुणाः खल्वीश्वराः । | ४७ | ८ |
| अहो नु खल्वतुलबलता कुमुमघ्नन्तर । | १०९ | ५ |
| दूतवधः खलु वचनीयः । | ७२ | ८ |
| न त्वेव हि कदाचिज्ज्येष्ठस्य यवीयसो दाराभिमर्शनम् । | १९ | ४ |
| निर्वेद एव खल्वनुक्तग्राहिणं स्वामिनमुपाश्रितस्य श्रुत्यजनस्य । | ६५ | ८ |
| बहुमायारुछलयोधिनिश्च राक्षताः । | ८७ | ६ |
| सर्वपिराद्धेष्ववध्याः खलु दूताः । | ६८ | ६ |

शतोजानुक्रमणिका

| श्लोक | संख्या | श्लोक | संख्या | श्लोक | संख्या |
|-----------------|--------|--------------------|--------|---------------------|--------|
| अचित्वा मनसा | ३१० | इमा भगवती | ६१०८ | गर्भागारविनि | २१८ |
| अञ्जनाया ममु | ३११५ | इय मा राज | २११३ | घण्टारद्गाहृत | ५११६ |
| अतिबलमृग | ११२५ | उदीर्णगर्जेन | ५१११ | षारीभिरेतो | ६११८ |
| अद्वैत स कमल | ३१२७ | एता प्राप्य दश | २१३ | धित्रप्रभृत | २१६ |
| अनयो नामना | ४१२१ | एता रावण | ६११० | जानतापि च | ६१२९ |
| अननपरि | २१२१ | एते तयोर्मानु | ५१८ | जिवा श्रीलोक्य | ३१११ |
| अपराधमनु | ११८ | एते पादप | ६१३ | स्य मृग मृग | ११६ |
| अपापा च त्रि | ६१२० | एतो हि राशमे | ४१२० | तारे मया सप्त | १११२ |
| अपाम्य भोगान् | २११० | एव गात्र परि | २१२४ | तारे विमुञ्च | ११९ |
| अपास्य मापया | ३११८ | एषा वनक | ६१२५ | तिष्ठन्मह | ३१३ |
| अभिभूता मया | ३१२२ | एषा विहाय | ५१४ | तीर्था प्रतिज्ञा | ६१३० |
| अभिहनवर | ३१०३ | एषा हि राज | ६१२१ | ती च बाहू न | २११५ |
| अमलकमल | ३१२ | एष्य कथ भो | ३१३ | दिव्यास्त्रे मुर | २११० |
| अवदय मुग्धि | ३१९ | एष्य लम्बमट | ३१२० | दिव्यास्त्रेम्प्रदो | ३११७ |
| अमितभुजग | २१८ | वनकरचितघाप | ६१११ | दृष्टधर्मार्थ | ४१८ |
| अम्नाद्रिमस्तक | ४१२३ | वनकरचितधित्र | २१२ | दवा सेन्द्रा | २११८ |
| अस्मदीयैर्महा | ३१५ | वनकरचितचण्डा | ६१६ | देवा सेन्द्रादयो | २११८ |
| आगता पृथु | ४१२ | वनकरचितविद्रु | २१५ | देवे यथा वयं | ४११० |
| इश्याकृष्ट | २१२० | क्षरिक्करमदुनी | ११२२ | धनुषि निहित | ५११५ |
| इश्याकृष्ट | ६११ | कृतोनु मन्वेय | ११० | नक्षत्ररापसद | ३१२१ |
| इदानी राज्य | ११३ | कुमारो हि कृता | ३१६ | नारायणस्य | ४११३ |
| इदानी राज्य | ११२ | कोनु मन्वेय | ६१०६ | निद्रा मे निद्रि | ५१६ |
| इदानीमपि | ५११४ | क्रुद्धस्य मय्य | ८१३ | निगिनविमल | ६१८ |
| इन्द्रो वा दारण | १११२ | त्रोघ्रात्तरस्त | ३१३ | नैवाह घणित | ३११४ |
| इमा शृङ्गीष्य | ६१२७ | वचिन्तु फेनोद्गारी | ६११७ | परमृतगण | २१२६ |

| | | | | | |
|------------------|------|-----------------------|------|-------------------|------|
| प्रगृहीतमहा | २।२३ | यमवर्णकुबेर | ६।३३ | रात्रो वा भवतु | १।१ |
| प्रसीद राजन् | ३।१९ | यस्या न प्रिय | ३।१ | रात्रपक्षमुपा | ३।२ |
| प्रहस्तप्रमुखा | ५।२ | युक्तं भो नर | १।१७ | शरनिभिन्नहृदय | १।२२ |
| प्रेषितोहं नरे | २।१९ | युधि जगत्त्रय | ३।४ | शरवरपरिपीत | ६।११ |
| बलवान् बानरे | १।१९ | येनाह कृत | ६।३४ | शरभीमिवेगै | ६।१९ |
| बलादेव गृही | ५।५ | यो पाधिपुत्र | १।१ | शासितोहं त्वया | ३।२३ |
| बाणाः पात्यन्ते | ६।५ | रघुवरभुज | ६।१७ | शैलद्रुमैः सम्प्र | ४।६ |
| ब्रह्मा ते हृदयं | ६।३० | रजतरचित | २।२ | ध्रुत्वा कालवशं | १।२ |
| भवता बानरे | १।२० | रजनीचरशरीर | ६।२ | सवृत्तं तुमुलं | ३।१ |
| भवता सौम्य | १।१८ | राक्षसीभिः परि | २।७ | सजलजलद | ४। |
| भवन्तं पपप | ४।११ | राजस्वत्वाकारणा | ४।९ | सजलजलधरे | ४। |
| भवन्त्वरजसो | ६।३५ | राजपुत्र कुत. | ४।१६ | सन्देष्टोष्णघण्ड | १।१ |
| भग्नेयं हि जले | ६।३१ | रावण निहित | ६।१८ | समावृत्तं सुरै | ५।१ |
| भज्जमानः मफा | ६।२२ | रावणेन विमु | ६।८ | समुदितवरचाप | २।२ |
| भणिविरचित | २।९ | रिपुमुदत्तं मुद्यन्तं | ४।४ | सम्प्राप्ताहरिवर | १। |
| भणिविरचित | ४।१५ | रुधिरकलित | १।१६ | सव्येन चापम | ६। |
| भत्सायकाग्निह | १।४ | लङ्काया किल | ४।१ | सीते त्यज त्वं | २।११ |
| भदनवशगतो | ५।३ | लब्ध्वा वृत्तान्तं | २।१ | सीते त्यज त्वं | ५।१ |
| भम दाराय | ४।२२ | वञ्चीभकुम्भतट | ५।१६ | सीते भावं परि | ५।१ |
| भम शरपरि | ४।१२ | वरतनुतनुगात्रि | २।१७ | सुप्रीवेणाभिमृ | १।२१ |
| भम शरवर | ४।१८ | वरक्षरणमुपेहि | ३।१६ | सुरवरजयदर्प | ६।१२ |
| भमानवेक्ष्य | ३।२५ | बागुराच्छन्न | १।१९ | स्थानाक्रामण | ६।१ |
| भया कृतं दोष | १।२६ | विकसितशत | १।१४ | स्वसैनिको न | ४।१९ |
| भयोक्तो मैथिली | ६।१३ | विकसितशत | ६।२४ | हत्वा रावण | ६।१२ |
| मानुषं रूप | ४।१४ | विज्ञाय देव्या | ६।२३ | हत्वा वालिन | २।२२ |
| मुक्तो देव | १।५ | व्यक्तमिन्द्रजिता | ५।१० | हा वत्स सर्वं | ५।१२ |
| मयह रावण | २।१६ | सार्क्त निपातिता | ६।९ | | |